श्री वीतरागाय नमः

श्री शिवकोटि आचार्य (शिष्य समन्तभद्राचार्य) विरचित

मूलाराधना

अपरनाम

भगवती आराधना

भाषा टीकाकार :

स्व० पं० सदासुख जी जैन कासलीवाल, जयपुर

* * *

स्व० श्रीमती बिमलादेवी जैन की पुण्य स्मृति में

* * *

प्रकाशक :

प्रकाश चन्द शील चन्द जैन, जौहरी

१२६६, चाँदनी चौक, देहली-६

प्रबन्ध सम्पादक :

बिशम्बर दास महाबीर प्रसाद जैन, सर्राफ

१३२५, चाँदनी चौक, देहली - ११० ००६

* * *

ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दश्यां वि० सं० २०४९ वीर नि० सं० २५१८

श्री १००८ देवाधिदेव श्री शान्तिनाथ भगवान का जन्म, तप, मोक्ष कल्याणक दिवस

(दिनाँक ३१-५-१९९२ प्रथम पुण्यतिथी स्व० बिमला देवी जैन)

मुद्रक :

Jaico Printers & Publishers (P) Ltd.
F-34/5 Okhla Ind. Area Phase II, New Delhi - 110 020
Phone : 631978

ग्रंथ प्राप्ति स्थान :

प्रकाश चन्द शील चन्द जैन, जौहरी

१२६६, चाँदनी चौक, देहली-६

卐 शास्त्र स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण 卐

ओं नमः सिद्धेभ्यः, ओं जय जय जय, नमोस्तु! नमोस्तु!! नमोस्तु!!!

णमो अरहंताण, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियांण,
णमो उवज्झायांण, णमो लोए सव्व साहूणं।।

ओकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः

अविरल शब्द घनौघ प्रक्षालित सकल भूतलमल कलकां
मुनिभिरुपासित तीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान्

अज्ञान तिमिरान्धानां ज्ञानांजन शलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरूवे नमः

सकल कलुष विध्वसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्म सम्बन्धकं, भव्य जीव मनः प्रतिबोध कारकमिंद शास्त्रं श्री भगवती आराधना नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवा स्तदुत्तर ग्रन्थ कर्त्तारः श्री गणधर देवाः प्रति गणधरदेवास्तेषां वचोनुसार मासाद्य श्री शिवकोटि आचार्येण विरचिंत, श्रोतारः सावधानतया श्रृण्वन्तु।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं मौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।

卐 जिनवाणी स्तुति 卐

वीर हिमाचल तै निकसी गुरु गौतम के मुख कुण्ड ढरी है।
मोह महाचल भेद चली, जग की जड़ता ताप दूर करी है।।
ज्ञान पयोनिधि मांहिरली बहु भंग तरंगनि सो उछरी है।
ता शुचि शारद गंगनदी प्रति मैं अंजुरी करि शीश धरी है।
या जग मन्दिर में अनिवार अज्ञान अन्धेर छयो अति भारी।
श्री जिनकी दीप शिखा सम जो नहिं होत प्रकाशन हारी।।
तो किस भांति पदारथ पांति कहां लहते, रहते अविचारी।
या विधि संत कहैं धनि हैं धनि हैं जिन बैन बड़े उपकारी।।

जा वाणी के ज्ञान ते, सूझे लोक अलोक।
सो वाणी मस्तक चढ़ो, सदा देत हूँ धोक।।

सम्पादकीय

''स्वाध्याय परमम् तप:''

भगवती आराधना जिसका अपरनाम मूलाराधना भी है जैन साधुओं के आचार का वर्णन करने वाला एक प्राचीन वृहद् ग्रंथ है जिसके मूलरचयिता शिवकोटयाचार्य हैं (भावी तीर्थंकर समन्तभद्राचार्य के शिष्य) जिन्होंने 1900 वर्ष पूर्व आराधक साधुओं के 17 मरण का 40 अधिकारों में विस्तार से वर्णन किया है। ग्रंथराज में 2179 गाथा हैं। ये सन् 1909-1932, 1935, 1977, 1978 में भी प्रकाशित हो चुका है।

स्व० बहन बिमला देवी जैन ने गृहस्थ में अनोखा समाधिमरण किया। अंतिम समय में एक वर्ष से वो इसी ग्रंथराज का स्वाध्याय कर रही थी ग्रंथ अप्राप्य है छप जावे तो भव्य जीव स्वाध्याय कर आत्म कल्याण कर सकेंगे उनकी इच्छानुसार प्रकाशित करा रहे हैं।

स्व० श्री चाँदमल जी जैन सरावगी गोहाटी वालों ने सन् 1977 में भगवती आराधना का भाषा अनुवाद पं. सदासुख जी जैन कासलीवाल जयपुर वालों का प्रकाशित कराया था जिसका सम्पादन पं. भंवर लाल जी जैन वीर प्रेस मनिहारों का रास्ता जयपुर ने किया था। उसी को पुन. प्रकाशित करा रहे हैं। पं. सदासुख जी आचार्य कल्प पं. टोडरमल जी की परम्परा के विद्वान थे। उनका जन्म वि०सं. 1852 में जयपुर में हुआ था। उन्होंने सारा जीवन मां सरस्वती की उपासना में व्यतीत किया। कई ग्रंथों की वचनिका लिखी। भगवती आराधना का ढूंढारी भाषा का अनुवाद भादो सु 2 स1908 बृहस्पतवार को समाप्त किया था। आप विद्यागुरु पं. मन्नालाल जी के गुरु प. जयचंद जी छाबड़ा थे जिनका जन्म वि.स. 1805 में हुआ जो पं. टोडर मल जी के शिष्य थे। पं. सदासुख जी पं. टोडर मल जी की तरह धर्मपालन में शिथिलता के कट्टर विरोधी थे। पं. जी की 70 वर्ष की उम्र में इकलौते पुत्र का स्वर्गवास हो गया तो पं. जी को सेठ मूलचंद जी सोनी सं. 1922 में अजमेर ले गये ढाढस बंधाया और कहा कि मैं भी पुत्र की जगह हूँ घबराइये नहीं। स. 1924 में धर्मध्यानपूर्वक अजमेर में पं. जी का स्वर्गवास हो गया। उनके कुटुम्ब में अब कोई भी नहीं हैं।

ग्रंथराज को आधार बनाकर आचार्यों ने संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़ में अनेक कथा ग्रंथ रचे हैं। आराधनासार, आराधना कथा प्रबन्ध, आराधना, आराधना कथा कोष, वृहत्कथा कोष प्राचीनतम है, बड्ढाराधना, अप्रमुख कथा कोष इत्यादि एवं पं. सूरजचंद का समाधिमरण ग्रंथराज का आधार लेकर बनाये गये हैं।

जैनधर्म में सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप ये चार आराधनायें कहीं गई हैं जिनसे भेद विज्ञान की प्राप्ति होती है। इन चारों आराधनापूर्ण जीवन ही सच्चा जीवन है और आराधना पूर्वक मरण ही यथार्थ मरण है उसके अभाव में न जीवन जीवन है और न मरण मरण है। द्वादशांग में आराधना दो प्रकार कही है। सम्यक्त आराधना और चारित्र आराधना। सम्यक्त्व में ज्ञान एवं चारित्र में तप गर्भित है। चारों आराधना का फल निर्वाण है। अरहंतादि को भक्ति के बिना आराधना नहीं होती। भावों से ही सुगति दुर्गति होती है। परमात्म ध्यान से पहले अर्हंत देव का ध्यान फिर उसमें स्थिरता प्राप्त होने पर निकल परमात्मा सिद्ध भगवान का ध्यान होता है। निज शुद्धात्म स्वरूप में स्थिरता व निर्विकल्प अनुभूति ही ध्यान की उत्कृष्ट अवस्था है। समस्त व्रतों में धर्मध्यान मुख्य हैं और शुक्लध्यान श्रेष्ठ है मोक्ष का कारण है।

ग्रथंराज का मुख्य विषय मरण समाधि है जिसे समाधिमरण, सल्लेखना मरण, सन्यास मरण एवं मृत्यु महोत्सव भी कहते हैं। शरीर और कषाय को कृश करते हुए स्वस्वरूप ध्याते हुए शान्तिचित्त पूर्वक शरीर रूपी गृह को त्यागना सो सुमरण है। कषाय भावों से मरण को आत्मघात कहते हैं। समाधिमरण दो प्रकार का होता है। 1. **सविचार समाधिमरण** जिसका उत्कृष्ट काल 12 वर्ष है। 2. **अविचार समाधिमरण** -अचानक मृत्यु आने

पर किया जाता है। समाधिमरण के समय शुद्ध मन पूर्वक राग द्वेष मोह का त्याग कर सबसे क्षमा माँगें एवं क्षमा करें। पाँच अतिचारों से बचे। बारह भावना, समाधिमरण, आत्मचिन्तवन, संसार शरीर भोगों से विरक्त करने वाली चर्चा करे तथा जो बड़े-बड़े सुकुमाल मुनि, गज कुमार मुनि, सुकौशल मुनि आदि सत्पुरुषों ने भारी परीषह उपसर्ग जय कर समभावों पूर्वक समाधिमरण साधा है उनकी कथाएँ सुने। सतरह प्रकार के मरण को पाँच में गर्भित करके उनका विवेचन ग्रंथराज में किया है!

1. **पंडित पंडित मरण:-** दर्शन ज्ञान चारित्र का अतिशय करि सहित कषाय रहित केवली भगवान् का निर्वाण गमन जिसमें फिर जन्म धारण नहीं करना पड़ता।

2. **पंडित मरण:-** आचारांग की आज्ञा प्रमाण यथोक्तचारित्र के धारक मुनियों का मरण जिसके होने पर दो तीन भव में मोक्ष की प्राप्ति होती है। पंडित मरण तीन प्रकार का होता है। 1. **भक्त प्रतिज्ञा:-** में संघ से भी वैयावृत्य करावे तथा स्वयं भी करें एवं अनुक्रम से अहार, कषाय, देह का त्याग करे। 2. **इंगिनी मरण:-** में पर से वैयावृत्य नहीं करावे तथा आहार पान रहित एकाकी वन में देह का त्याग करे, अपनी टहल आप करे। 3. **प्रायोपगमन:-** में वैयावृत्य आप भी न करे पर से भी न करावे, सूखा काष्ठवत् वा मृतकवत् सर्व काय वचन की क्रिया रहित यावज्जीव त्यागी हो धर्मध्यान सहित मरण करे।

3. **बाल पंडित मरण:-** देशसयंमी के होता है अर्थात् श्रावक श्री ग्यारह प्रतिमाओं में से जो कोई भी प्रतिमाधारी समाधिमरण करता है। इससे सोलहवें स्वर्ग तक ही प्राप्ति होती है। ये तीनों मरण प्रशंसा के योग्य है।

4. **बाल मरण:-** अविरत सम्यग्दृष्टि व्रत संयम रहित केवल तत्व श्रद्धानी का मरण जिससे बहुधा स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

5. **बाल बाल मरण:-** जिसके सम्यक्त्व और व्रत कुछ भी नहीं हो ऐसे मिथ्यादृष्टि का मरण जो चतुर्गति भ्रमण का कारण है।

इस महान ग्रंथराज का स्वाध्याय कर स्व. बहन बिमलादेवी जैन ने गृहस्थ में अनोखा समाधिमरण किया उसका कुछ विवेचन:-

अनादि काल से जीव चार गतियों चौरासी लाख योनियों में जन्म मरण के दुख उठा रहा है। मनुष्य जन्म बहुत दुर्लभ है उस पर भी जैन कुल मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। ये सब मिलकर भी जिसने समाधिमरण नहीं किया मुनिव्रत, आर्यिका व्रतधारण नहीं किये या इनका श्रद्धान नहीं रखा तो मनुष्य जन्म निरर्थक ही समझिये।

बहन बिमला देवी जैन की शादी 54 वर्ष पूर्व ला. शीलचन्द जी जैन जौहरी से हुई थी। वो बहुत ही धार्मिक और शांत परिणामी थी। भारत के सभी जैन तीर्थों की यात्रा कई बार की थी। दस वर्षों से लगातार 20-20 रोज श्रवणबेलगोला में भी मैं उनके साथ रहा। सात वर्षों में लाखों रुपयों का जो जैन साहित्य निशुल्क वितरण हुआ उसमें उनका भी बहुत सहयोग रहा। प्रातः एवं दोपहर 2-2 घंटे मंदिर जाना, घर पर भी स्वाध्याय एवं ध्यान करना उनकी नित्य चर्या थी। वर्षों से एक बार प्रातः 10 बजे के बाद भोजन करना एवं शाम को फल लेती थी। रात्रि को पानी भी 25 वर्षों से नहीं पीती थी। जिमीकन्द, बाजार की चीज खाने का बहुत वर्षों से त्याग था। मुनिदर्शन एवं उन्हें आहारादि चारों प्रकार के दान में रूचि थी। श्रावक के षट कर्मों को रूचि पूर्वक करती थी! दशलाक्षणी व्रत एवं चारित्रशुद्धि के 1234 व्रत करती थी (1000 हो चुके थे)

बहन जी ने 25-8 से 4-9-90 तक दशलाक्षणी के व्रत किये। अक्तूबर में तबीयत खराब हुई तो कहने लगी अस्पताल में दाखिल मत कराना। ला. शीलचन्द जी ने उनके नियमों एवं सेवा में अंतिम समय तक सावधानी बरती। ठीक होने पर बहन जी ने कुटुम्ब सहित हमारे साथ 21 से 28.2.91

तक सिद्धचक्र विधान किया। मैं वर्ष में 3 बार 20-21 रोज के लिए शिखर जी की यात्रा को जाता हूँ। 4 मार्च 91 को गया 27 को लौटा। मेरे पीछे उनकी तबियत खराब हुई फिर संभली नहीं, भूख घटती गई। ऐसी तीव्र बीमारी की हालत में भी धार्मिक क्रियाओं, व्रतों को सावधानी पूर्वक करती रही। पं. पद्मचंद जी शास्त्री, भाई बाबू लाल जी जैन, ब्र.कु. कुंदलता, ब्र.कु. आभा, श्रीमती कुसुम जैन के संबोधनों से उन्हें आत्मचिंतवन में बल मिला। उनकी स्वयं की अपूर्व चेतना ने उन्हें त्यागी जैसा बना दिया था। उन्होंने एक माह पूर्व सभी से ममत्व छोड़ दिया था। दो दिन पूर्व रात्रि को 2-2.30 घंटे सुनने के बाद कहने लगी बस। आध घंटे बाद ही बोली फिर सुनाओ भाई। प्रातः 4.30 बजे कहने लगी तुम जाओ भाई तुम्हारे मंदिर जी का जाने का समय हो गया है। मैंने कहा स्वार्थी बनो, मात्र अपनी आत्मा की ओर सन्मुख रहो, अरहंत सिद्ध भगवान का निरन्तर चिंतवन करती रहो। कहने लगी मुझे किसी से भी राग द्वेष नहीं है, आत्मा में स्थिर हूँ मुझे फिर जन्म मरण नहीं करना है, सिद्ध शिला पर जाना है। प्राणी मात्र से क्षमा माँगती हूँ, क्षमा करती हूँ।

पहले दिन स्वयं चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया था। अंतिम समय हमने कहा श्री सम्मेदशिखर जी की पार्श्व प्रभु जी की टोंक का ध्यान करो कि वहाँ तुम मनुष्य हो पुरुष हो बैठे हो सब कपड़े उतार कर नग्न दिगम्बर मुनि बन जाओ, केशलोच करो। उन्होंने आँखे बन्द कर ली हमेशा की तरह ध्यान में जैसे बैठती थी। थोड़ी देर बाद बोली मैं मुनि बन गया हूँ केशलोच कर लिया है पीच्छी दो। हमने नई पीच्छी दे दी। थोड़ी देर ध्यान लगाने को कहा। ध्यान लगा कर बोली कि सिद्ध शिला जाना है फिर जन्म नहीं लेना है। काफी देर तक ये ही रट लगाती रही कहने लगी सब दरवाजे खोल दे। सब दरवाजे खोल दिये। मुझे सिद्ध शिला जाना है जन्म नहीं लेना है। अर्हंत सिद्ध कहते हुए उन्होंने 31.5.91 शुक्रवार दोपहर 12.40 पर समाधिपूर्वक अपनी भौतिक देह को त्याग दिया। ऐसा जीव निश्चित रूप से यथाशीघ्र भविष्य में मुक्ति पद को प्राप्त करेगा।

ला. शीलचंद जी, उनके सभी सुपुत्रों पुत्र वधुओं पुत्रियों एवं पौते पौतियों ने जिस प्रेम और सद्भावना से उनकी सेवा व धार्मिक क्रियाओं में सहयोग दिया वो अविस्मरणीय रहेगा!

स्वाध्याय ही सर्वोत्कृष्ट तप है। सद्शास्त्रों का पठन पाठन करने से सद्ज्ञान या सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है। संसार में सभी वस्तुएं उपलब्ध हो सकती हैं पर सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होना बड़ा दुर्लभ है "धन कन कचंन राज सुख सबहि सुलभ कर जान, दुर्लभ है संसार में एक यथारथ ज्ञान"। उस सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति आगमोक्त शास्त्रों के स्वाध्याय से ही हो सकती है। इस हेतु प्रकाशकों ने ग्रंथराज "भगवती आराधना" का प्रकाशन कराया है जो आपके कर कमलों में है। इसके छपने में पूर्ण सावधानी रखी है फिर भी त्रुटियों का रह जाना संभव है उसके लिए क्षमा याचना करते हैं।

ग्रंथ के मुद्रण में श्री रतनचन्द जी जैन ने बड़ी तत्परता से सहयोग देकर पुण्योपार्जन किया है।

ऐसे अपूर्व आगम ग्रंथराज का प्रकाशन कर प्रकाशकों ने भगवान महावीर स्वामी के सिद्धांतो का प्रचार प्रसार किया जिससे निश्चय ही ज्ञानावरणीय कर्म का विशेष क्षयोपशम होकर परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है। प्रकाशकों के लिए ढेर सारी शुभकामनायें। भव्य जन ग्रंथराज का स्वाध्याय कर आत्मकल्याण करें इसी शुभ भावना सहित।

दिनांक 8.5.92 शुक्रवार
बैसाख सुदी ६ सं २०४९ वीर नि सं २५१८
श्री १००८ देवाधिदेव भगवान् अभिनन्दन नाथजीका,
गर्भ एवं मोक्ष कल्याणक

जिन चरण सेवक
महावीर प्रसाद जैन, सर्राफ
1325, चांदनी चौक, देहली

स्व० श्रीमती बिमलादेवी जैन

जन्म : २७-७-१९२४

समाधिमरण : ३१-५-९१

शुक्रवार, जेठ बदी ३, वि० सं० २०४८

स्व० श्रीमती बिमलादेवी जैन

जन्म : २७-७-१९२४

समाधिमरण : ३१-५-९१
शुक्रवार, जेठ वदी ३, वि० सं० २०४८

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
मंगलाचरण पूर्वक आराधना वर्णनकी प्रतिज्ञा	१
आराधना का स्वरूप	२
आराधना किसके होती है ?	२
आराधना के दो भेद	२
सम्यक्त्व बिना ज्ञान अज्ञान है	३
ज्ञान व श्रद्धान पूर्वक चारित्र	५
ज्ञान दर्शन का सार	६
समिति, गुप्ति और उनके अतिचार	७
आराधना के लिए साधन	८
सत्रह प्रकारका मरण और उनका स्वरूप	११
सत्रह प्रकार के मरण का संक्षिप्त पांच प्रकार मरण	१४
पंच प्रकार का मरण किसके होता है	१५
सम्यग्दृष्टि जीव का स्वभाव	१६
मिथ्यादृष्टि कौन है	१८
बाल बाल मरण	१९
सम्यक्त्व के अतिचार	१९
सम्यक्त्व के गुण	२०
मिथ्यादृष्टि किसी आराधना का आराधक नहीं है।	२४
पंडित मरण	२७
भक्त प्रत्याख्यान मरण के भेद	२७
सविचार भक्त प्रत्याख्यान का स्वरूप	२७
सविचार भक्त प्रत्याख्यान के चालीस अधिकार	२८
१ अर्ह अधिकार	२९
२ लिंगाधिकार	३२
उत्सर्ग लिंग के चार भेद	३३
सन्यास धारणकरने वाली स्त्री का लिंग	३३
निर्ग्रन्थ लिंग के गुण	३४
लोच वर्णन	३७
देह ममत्व त्याग और उसका उपयोग	३९
पिच्छिका और उसका उपयोग	४०
३ शिक्षा अधिकार	४१
४ विनय अधिकार	४७
ज्ञान विनय	४७
दर्शन विनय	४८
चारित्र विनय	४८
तप विनय	४९
उपचार विनय के भेद	५०
प्रत्यक्ष कायिक विनय	५०
वचन उपचार विनय	५१
मन उपचार विनय	५२
परोक्ष विनय	५२
विनय का महात्म्य	५३
५ समाधि अधिकार	५५
मन की चचलता दोष है	५५
६ अनियत विहार अधिकार	५८
नाना देश विहार उपयोगी	५८
संक्षेप समाचार (सम-आचार) के १०भेद	६१
एक विहारी का निषेध	६३
आचार्य कैसा होय	६४
आचार्य दीक्षा कैसे व्यक्ति को दे	६४
उपाध्याय का स्वरूप	६६
विस्तार रूप समाचार	६७
आचार्य पद कौन धारण कर सकता है	६७
आचार्य प्रति मुनि वन्दना	६८
आर्यिकाओं का उपदेश दाता आचार्य कैसा हो	६९
आर्यिकाओं के समाचार	७०
आर्यिका कहां रहे	७०
आर्यिका आचार्य से कितनी दूर बैठे	"

विषय	पृष्ट
रजस्वला आर्यिका के कर्तव्य	७०
साधु के विशेष समाचार	"
७ परिणाम अधिकार	७३
८ उपधि त्याग अधिकार	७६
कमंडलु पिच्छिके अतिरिक्त संपूर्ण उपधि का त्याग	७६
पंच प्रकार की शुद्धि	७७
पंच प्रकार का विवेक	७८
९ क्षिति अधिकार	८१
साधु को आचार्य ही से वचनालाप योग्य है	८२
साधु परस्पर में प्रयोजनवश प्रमाणीक वार्तालाप करें	"
१० भावना अधिकार	८३
सक्लेश भावना के कदर्प आदि पांच भेद और उनका स्वरूप	८४
असंक्लेश रूप भावना धारण करने योग्य है। उसके ५ भेद हैं	८७
तप भावना	"
श्रुत भावना	८९
सत्व भावना	"
एकत्व भावना	९३
धृतिबल भावना	९४
११ सल्लेखना अधिकार	९५
सल्लेखना के दो भेद	९६

विषय	पृष्ट
बाह्य सल्लेखना का उपाय	९६
बाह्य तप के अनशनादि छह भेद	"
अनशन	"
अवमौदर्य	९७
रस परित्याग	"
वृत्ति परिसंख्यान	९९
कायक्लेश	१०१
विविक्त शयनासन	१०२
विविक्त वसतिका कैसी होय	१०३
४६ दोष रहित आहार	"
१६ उद्गम दोष	१०४
१६ उत्पादन दोष (धात्री आदि)	१०५
१० एषणा दोष	१०७
१ संयोजना दोष	"
१ अप्रमाण दोष	"
१ धूम दोष	"
१ अगार दोष	"
साधु की वसतिका कैसी होय	१०८
संवर पूर्वक निर्जरा	१०९
साधु के योग्य तप	"
बाह्य तप के गुण	"
भोजन की शुद्धि अष्ट दोष रहित होती है, इसका विशेष वर्णन	११३
गृहस्थाश्रय १६ उद्गम दोष अध: कर्म उद्दिष्ट आदि	"

विषय	पृष्ठ
पात्राश्रय उत्पादन के धात्री दूत आदि १६ दोष	११८
एषणा के शकित आदि १० दोष	१२१
भोजन के छह कारण	१२३
भोजन त्याग के छह कारण	१२४
नवधा भक्ति	"
दातार के ७ गुण	"
१४ मल दोष	१२५
साधु के भोजन योग्य काल, क्रिया, स्थान, गोचरी आदि वृत्ति	१२६
भोजनार्थ गमन कर्ता साधु के ३२ अन्तराय	१२८
शरीर सल्लेखना हेतु अनेक प्रकार तप	१२९
भक्त प्रत्याख्यान का काल	१३०
अभ्यन्तर शुद्धता के अभाव में दोष और उनका निराकरण	१३२
१२ **दिशा अधिकार** (आचार्य पद छोड अन्य योग्य साधु को आचार्य पद देने का वर्णन)	१३७
१३ **क्षमण अधिकार** (नये आचार्य से क्षमा कराना)	१३९
१४ **अनुशिष्टि (शिक्षा) अधिकार**	१३९
नवीन आचार्य के प्रति शिक्षा	१४०
गण संघ को शिक्षा	१४४
वैयावृत्य और उसके प्रकार	१४[illegible]

विषय	पृष्ठ
वैयावृत्य से १६ गुणो की उत्पत्ति	१४६
आर्यिका संगति त्याग	१५३
पार्श्वस्थादि भ्रष्ट मुनि का रूप तथा उनकी संगति त्याग	१५५
दुर्जन संगति त्याग	१५८
सज्जन संगति के लाभ	१५६
स्व प्रशंसा, पर-निन्दा त्याग	१६२
१५ परगण चर्या अधिकार	१६८
आचार्य अपने संघ को छोड अन्य संघ में गमन करे	१६८
१६ मार्गणा अधिकार (निर्दोष निर्यापकाचार्यका तलाश)	१७४
निर्यापक गुरु की तलाश करने का क्रम	१७५
संघ में परस्पर परीक्षा करना	१७८
निवासके हेतु अस्थाई और स्थाई आज्ञा	,,
१७ सुस्थित अधिकार	१८१
संन्यास काल में शरण लेने योग्य निर्यापक आचार्य के आचारवान आदि अष्ट गुण	१८१
१ आचारवान	१८२
२ आधारवान	१८६
३ व्यवहारवान	१६१
४ प्रकर्त्ता	१६५
५ अपायोपाय विदर्शी	१६६
६ अवपीडक	२००
७ अपरिश्रावी	२०४
८ निर्यापक	२०७
अगश्रुत ज्ञान एव अंगबाह्य श्रुतज्ञान का स्वरूप एव भेद प्रभेद	२०८
निर्यापक गुरु कैसा होय	२४७
१८ उपसम्पत अधिकार	२४६
१६ परीक्षा अधिकार	२५०
२० प्रतिलेखन अधिकार	२५१
२१ आपृच्छा अधिकार	२५२
२२ प्रतीच्छन अधिकार	२५३
२३ आलोचना अधिकार	२५४
आलोचना शुद्धि	२५५
आचार्य भी अन्य मुनि की साक्षी से प्रायश्चित्त ले	२५५
छद्मस्थ की शुद्धता गुरु के निकट हो	२५६
आलोचना कैसे करे	२५७
२४ आलोचना के गुण दोष अवलोकन अधिकार	२६४
१. आकम्पित दोष	२६४
२ अनुमानित ,,	२६६
३. दृष्ट ,,	२६७
४. बादर ,,	२६८
५. सूक्ष्म ,,	२६६
६. छन्न ,,	२७०
७. शब्दाकुलित ,,	२७१
८ बहुजन दोष	२७२
६ अव्यक्त ,,	२७३
१० तत्सेवी ,,	२७४
अन्य दोष	२७५
आलोचना की विधि एव अन्य भेद	२७५
क्षपककी आलोचनाके प्रति गुरुका कर्तव्य	२७६
२५ शय्या अधिकार	२८३
अयोग्य वसतिका	२८३
कैसी वसतिका में ठहरे	२८४
२६ संस्तर अधिकार	२८५
चार संस्तर भूमि संस्तरमय शिला संस्तर फलकमय तृणमय	२८६
२७ निर्यापक अधिकार	२८७
निर्यापक के गुण	२८८
४८ मुनि द्वारा क्षपक का उपकार	२८६
प्रतिचारक मुनि	२८६
चार मुनि परिचार करे	२८६
चार मुनि धर्म कथा कहे	२६०
आक्षेपणी आदि चार कथाये	२६१
मरण समय विक्षेपणी कथा अयोग्य	२६१
चार मुनि भोजन की कल्पना करे	२६२
चार मुनि पेय पदार्थ की कल्पना करे	२६२
चार मुनि उपकल्पित भोजनपान की रक्षा करे	२६३
उपकल्पना का अर्थ	२६३

विषय	पृष्ठ
चार मुनि मलमूत्र क्षेपण व वस्तिकादि शोधन करे	२९३
चार मुनि वसतिका द्वार की रक्षा करे	२९४
चार मुनि सभा द्वार की रक्षा करे	२९४
चार मुनि रात्रि में जागृत रहे	"
चार मुनि उस स्थान की क्षेम कुशल देखते हैं	"
चार मुनि आगन्तुकों को धर्म कथा करते हैं	"
चार मुनि धर्म कथा कर्ताओं का संरक्षण करते सभा में इधर उधर घूमते हैं	२९५
भरतऐरावत क्षेत्र में पंचमकाल में ४४ या कमसे कम दो निर्यापक तक होते हैं	२९५
समाधिमरण करने वाले के निकट जाने सम्बन्धी नियम	२९८
समाधिमरण करने वाले सात आठ भव से अधिक ससार परिभ्रमण नही करता	२९९
क्षपक के पास भोजनादिक कथा नही करना	३००
आहार त्याग के अवसर पर तैल या कषायले द्रव्य के कुरले करना	"
२८ प्रकाशन अधिकार	३०१
आहार त्याग के अवसर पर पहले आहार दिखावे	३०१
क्षपक आहार देखकर आस्वादन आदि कर लम्पटता का त्याग करे	३०२
२९ आहार हानि अधिकार	३०३
क्षपक आहारादिकसे लम्टता नहीं छोड़े तो आचार्य समझावे	३०३
३० प्रत्याख्यान अधिकार	३०४
पान आहार के ६ भेद	३०४
३१ क्षामण अधिकार	३०६
सर्व संघ को क्षमा करना	३०७
३२ क्षपण अधिकार	३०८
३३ अनुशिष्टि अधिकार	३०९
क्षपक को शिक्षा	३०९
मिथ्यात्व त्याग का उपदेश	३१०
मिथ्यात्वी के चारित्र निरर्थक है	३१३
सम्यक्त्व शून्य चारित्र नही होता	३१३
सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है सो भ्रष्ट है	३१४
सम्यक्त्व समान अन्य कोई वस्तु नही	३१५
जिनेन्द्रादिक भक्ति आवश्यक	३१६
अभ्यन्तर और बाह्य भक्ति	३१६
आगम व पंचपरमेष्ठी की भक्ति	३१७
आत्मानुराग ही भक्ति है	"
भक्ति बिना रत्नत्रय नही होता	३१८
पंच नमस्कार	३१९
ज्ञानोपयोग आवश्यक है	३२०
ज्ञान शून्य क्रिया निरर्थक है	३२१
अहिंसा महाव्रत	३२४
किसी भी स्थिति में जीव घात का चिन्तवन नहीं करना	३२६
अहिंसा महान है	३२६
हिंसक परिणामों से भी हिंसक ही है	३३०
हिंसा सम्बन्धी क्रियायें	३३२
जीवगत हिंसा आधार के १०८ भेद	३३३
अजीवगत हिंसा के आधार के ४ भेद एव प्रभेद	३३४
अहिंसा धर्म की रक्षा के उपाय	३३५
सत्य महाव्रत	३३७
असत्य वचन के चार भेद	"
प्रथम असत्य वचन का स्वरूप	"
मनुष्य तिर्यंच के अकाल मृत्यु का निषेध प्रथम असत्य वचन हैं	३३८
द्रव्य क्षेत्रादि के बिना विचारे कथन प्रथम असत्य वचन है	३३९
असद्भूत को प्रकट करना द्वितीय असत्य वचन है	३४०
विद्यमान को अन्य जाति रूप कथन तृतीय असत्य वचन है	"
गर्हित सावद्यादि वचन चतुर्थ असत्य वचन	"

विषय	पृष्ठ
कर्कश भाषा के १० भेद	३४२
सत्य की महिमा	३४३
अचौर्य व्रत	३४८
ब्रह्मचर्य महाव्रत	३५४
ब्रह्मचर्य की परिभाषा	३५५
अब्रह्मचर्य के १० भेद	"
कामसे विरक्त होने का उपाय	"
कामकृत दोष	"
काम के दस वेग	३६०
काम शरीर एवं गुणों को नष्ट करता है	३६२
विषयी के अनेक दोष	३६६
स्त्री कृत दोष	३७४
पुरुष भी सदोष है। स्त्रियों की विशेषता, स्त्रियां धर्मात्मा हैं, देवो द्वारा पूज्य है	३८८
महान स्त्रियो का वर्णन	३८६
देह का अशुचित्व वर्णन ११ भेदों से	३६०
देह का बीज	"
शरीर की उत्पत्ति का क्रम	३६१
देहोत्पत्ति क्षेत्र	३६२
देह का आहार	३६३
शरीर का जन्म	३६४
शरीर की वृद्धि	"
शरीर के अवयवों का निर्गमन	३६५
मैल निर्गमन	३६८
देह की अशुचिता	३६६
शरीर मे व्याधियां	४०१
देह की अध्रुवता	"
देह की अशुचिता	४०६
गुणो से वृद्ध-संगति कल्याणकारी	"
स्त्री के संसर्ग से दोष	४१०
स्त्रीके वशमे नही होनेवालोकी महिमा	४१५
परिग्रह त्यागव्रत	४१८
अभ्यन्तर व बाह्य भेद	४१६
वस्त्र त्याग ही नही सर्व परिग्रह त्यागी सयमी होता है	४२०
परिग्रहासक्त में सर्व दोष है	४२१
परिग्रही सदा व्याकुल रहता है	४२८
अचित्त और सचित्त परिग्रह के दोष	४३०
परिग्रही सदा दुख सहता है	३२२
परिग्रह त्याग से ही दोष दूर हो गुण प्राप्त होते हैं	४३३
परिग्रह त्यागमे सुखातिशय की प्राप्ति	४३६
महाव्रतों की सार्थकता	४३७
रात्रि भोजन त्याग आवश्यक	४३७
अष्ट मातृका, ५ समिति ३ गुप्तिका वर्णन	४३८
तीन गुप्तियां	४३८
पांच समितियां	४३६
ईर्या समिति	४३६
भाषा समिति और उसके भेद	४४०
सत्य वचन के भेद	४४०
सत्य के १० भेद	४४१
अनुभय वचन के १० भेद	४४३
एषणा समिति	४४४
आदान निक्षेपण समिति	४४५
प्रतिष्ठापना समिति	"
व्रतो की पाच पाच भावनाएँ	४४७
तीन शल्य रहित के व्रत होते हैं	४४६
निदान शल्य	"
सम्यग्ज्ञानी क्या वांछा करता है	४५२
उच्च नीचपना का सुख दुख सकल्प से होता है	४५४
निदान ससार भ्रमण का कारण है	"
भोगो में दोष विचारने वाले के भोगादिक का निदान नही होता	४५६
निदान सहित चारित्र धारण भी व्यर्थ है	४५७
काय से मुनिव्रत आदि धारण करके भी अन्तरग परिग्रह सहित साधु नट समान	४५६
भोगो से तृष्णा दुख बढते हैं	४५८
इन्द्रिय जनित सुख शत्रु है	४६४
भोगों का निदान दुखकारी है	४६५
मायाशल्य कृत्य दोष	४६८
मिथ्यात्व शल्य कृत दोष	"
शुभ भावना साधु की रक्षा है	४६६
अवसन्न भ्रष्ट मुनि	४७०
पार्श्वस्थ भ्रष्ट मुनि	"

विषय	पृष्ठ
कुशील भ्रष्ट मुनि	४७१
यथाछन्द जाति भ्रष्ट मुनि	४७३
संसक्त ,,	४७४
इन्द्रियासक्त मुनि भ्रष्ट है	४७५
इन्द्रिय कषाय बिजयी के ज्ञान कार्यकारी है	४८१
बाह्य साधुकासा ग्राचरण ग्रौर ग्रन्तरंग मलीन वृथा है	४८४
बाह्य प्रवृति शुद्धकर ग्रात्माकी शुद्धता ग्रपेक्षित है	४८४
ग्रभ्यन्तर शुद्ध के बाह्य क्रिया नियम से शुद्ध होगी	४८४
बाह्य शुद्धता ग्रभ्यन्तर शुद्धता का सूचक है	४८५
इन्द्रियासक्त व्यक्तियों के दृष्टान्त	४८६
क्रोध कृत दोष	४८७
मान कृत दोष	४९०
मायाचार कृत दोष	४९२
मायाचारी कुम्भकार का दृष्टान्त	४९३
लोभ कृत दोष	,,
मृगध्वज का दृष्टान्त	४९४
कार्तवीर्य का दृष्टान्त	४९५
सामान्य इन्द्रिय कपाय जनित दोष ग्रौर निराकरण के उपाय	४९५
क्रोध कृत दोष जीतने का उपाय	५०१
मानकृत दोष ,,	५०३
मायाचार कृत दोष ,,	५०४
लोभ कृत दोष ,,	५०६
निद्रा विजय का उपाय	५०६
तप महिमा	५०९
शरीर सुख मे ग्रासक्त के तप मे दोष	५१०
ग्रालसी के तप मे दोप	५१०
तपश्चरण के गुण	५११
निर्यापकाचार्य के उपदेश से सस्तर प्राप्त साधु प्रसन्न होता है	५१६
उपदेश सुन, सस्तर से उठ, गुरु वन्दना ग्रादि किस प्रकार करे	५१७
३४ सारणा ग्रधिकार	
क्षपक के देने योग्य ग्राहार	५१९
क्षपक के वेदना होने पर ग्रन्य साधु का कर्तव्य	५२०
३५ कवच ग्रधिकार	५२४
शिथिलता दूर करने हेतु मीठे वचन द्वारा साधु को संबोधना	५२५
साधु को चलायमान नही होना	५२७
विभिन्न परिषह सहने वाले दृष्टान्त	५३१
नरक में उष्ण वेदना	५३८
नरक मे शीत वेदना	५३८
नरक के ग्रन्य दु ख	५३८
तिर्यंचगति के दु.ख	५४४
देव मनुष्यगति के दु ख	५४६
कर्मोदय जनित वेदना को कोई दूर नही कर सकता	५५२
संयमी को मरण भला पर संयम-नाश ठीक नही	५५३
कर्म सबसे बलवान है	५५४
ग्रसाता में क्लेशित होना उचित नहीं	५५५
व्रत भंग पाप है	५५७
प्रत्याख्यान का भग मरण से बुरा है	५५८
ग्राहार की लपटता सर्व पापों को कराती है	५५९
ग्राहार लम्पटी के दृष्टान्त	५६२
ग्राहार लम्पटी के क्लेश	५६५
शरीर ममत्व त्याग का उपदेश	५६७
३७ समता ग्रधिकार	५७१
इष्टानिष्ट में राग द्वेष नही करना	५७२
समस्त पदार्थों में समभाव रखना	५७३
साधु की मैत्री कारुण्य मुदिता एव उपेक्षा भावना का स्वरूप	५७४
३७ ध्यान ग्रधिकार	५७५
क्षपक शुभ ध्यान करता है, ग्रशुभ नही	,,
ग्रार्त्त ध्यान के भेद	५७६
ग्रनिष्ट सयोगज ग्रार्त्तध्यान	,,
इष्ट-वियोगज ग्रार्त्तध्यान	५७७

विषय	पृष्ठ
वेदना जनित आर्त्तध्यान	५७८
निदान आर्त्तध्यान	५७९
रौद्रध्यान का स्वरूप	५८०
हिंसानन्द रौद्रध्यान	"
मृषानन्द रौद्रध्यान	५८३
चौर्यानन्द रौद्रध्यान	५८४
परिग्रहानन्द रौद्रध्यान	"
धर्मध्यान का स्वरूप	५८५
धर्मध्यान का आलम्बन	
स्वाध्याय और उसके भेद	५८६
आज्ञा विचय धर्मध्यान	५८७
अपाय विचय धर्मध्यान	५८९
विपाक विचय धर्मध्यान	"
संस्थान विचय धर्मध्यान	"
द्वादश भावना	"
अनित्य भावना	५९०
अशरण भावना	५९४
पुण्य पाप के उदय से सुख दुख होते हैं	५९५
कोई किसी का शरण रक्षक नही है	५९७
देवी देवता रक्षक नही है	५९९
एकत्व भावना	"
अन्यत्व भावना	६०१
संसार भावना	६०६
लोकानुप्रेक्षा	६१२
अशुभ भावना (अशुचित्वानुप्रेक्षा)	६१७

विषय	पृष्ठ
धन की अशुभता	६१७
काम की अशुभता	"
देह की अशुभता	६१८
जलौषधादि ऋद्धियां	६१९
ऋद्धि सहित आर्य	"
ऋद्धि रहित आर्य और उनके भेद	६१९
चारित्रार्य के भेद	६२०
दर्शनार्य के भेद	"
ऋद्धि प्राप्तार्य के बुद्धचादि दस भेद	६२१
बुद्धि ऋद्धि के १८ भेद और स्वरूप	"
१५ वी अष्टाग निमित्तज्ञता नामा ऋद्धि के अन्तरिक्ष भौमादि ८ भेद और उनका स्वरूप	६२३
प्रज्ञा श्रवणत्वादि ऋद्धियां	६२४
क्रियाऋद्धि के भेद चारणऋद्धि और उसके भेद जल चारण ऋद्धयादि	६२४
क्रिया ऋद्धि के भेद आकाश गमित्वादि	६२५
विक्रिया ऋद्धि के अणिमादि ११ भेद	"
तपोतिशय ऋद्धि के ७ भेद	"
बल ऋद्धि के ३ भेद	६२६
औषध ऋद्धि के ८ भेद	६२७
रस ऋद्धि के ६ भेद	"
क्षेत्र ऋद्धि के २ भेद	६२८
आश्रव भावना	६२८
कर्म होने योग्य पुद्गल द्रव्य समस्त लोक मे है	६२९

विषय	पृष्ठ
आश्रव के भेद	६३०
राग द्वेष का महत्व	"
तीन प्रकार गारव	६३१
पाच इन्द्रिय	"
चार सज्ञा	"
सज्ञाओ की उत्पत्ति का कारण	"
विषयाभिलाष कर्मबन्ध का कारण	६३२
शुभोपयोग पुण्य अशुभोयोग पाप के आश्रव का कारण है	६३३
ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मो के आश्रव के कारण	६३४
असाता वेदनीय कर्मके आश्रवका कारण	६३५
साता वेदनीय कर्मके आश्रव का कारण	"
दर्शन मोहनीय कर्मके आश्रव का कारण	६३६
चारित्र मोहनीय " "	६३७
वेद के आश्रव के कारण	"
चार प्रकार की आयु के कारण	६३८
अशुभ नाम कर्म के कारण	६३९
शुभ नाम कर्म के कारण	६४०
तीर्थंकर नाम कर्म के आश्रव का कारण षोडश कारण	६४०
नीच गोत्र के आश्रव का कारण	६४१
उच्च गोत्र के आश्रव के कारण	"
अन्तराय कर्म के आश्रव के कारण	६४२
आस्रव के भेद	६४३

विषय	पृष्ठ
संवर भावना	६४४
निर्जरानुप्रेक्षा	६४६
धर्म भावना	६४६
बोधि दुर्लभ भावना	६५१
धर्म्य ध्यान ध्याता के आलम्बन	६५४
शुक्ल ध्यान	६५५
पृथक्त्व वितर्क विचार	६५६
एकत्व वितर्क अवीचार	६५७
सूक्ष्म क्रिया	"
समुच्छिन्न क्रिया	६५८
ध्यान का महात्म्य और फल	६५६
३८ लेश्या अधिकार	६६३
लेश्या का स्वरूप और कर्म	"
लेश्या धारक के लक्षण	६६५
कषाय की शक्ति के चार स्थान	६६६
लेश्याओं में आयु बंध	"
लेश्या के अधीन गति	६७०
गुणस्थानों में लेश्यायें	६७३
लेश्या की शुद्धता का उपाय	६७४
लेश्या के भेद से आराधना में भेद	६७५
३६ आराधना का फल	६७७
आराधना के धारक सिद्ध होते हैं	६७८
पूर्णकर्म नष्ट नहीं होने पर अर्हमिद्रादिगति	६७६
आराधना से च्युत को सुगति नहीं	६८१
अवसन्नादि पंच प्रकार के भ्रष्ट साधु	६८२
अन्य प्रकार के भ्रष्ट साधुओं की गति	६८४
भावनाओं और क्रियाओं से गति प्राप्ति	६८५
४० विजहना अधिकार	६८७
क्षपक की निषीधिका कैसी होय	६८८
साधु के मरण पर ले जाने का अवसर न होय तो क्या करे	६८६
साधु के शव को ले जाने	६६१
भूमिपर रखने आदि का विधान	६६३
नक्षत्रों में मरण से भावी सूचना	"
समाधिमरण स्थान पर की क्रिया	६६४
साधगति निमित्तज्ञान से जानना	६६६
सविचार भक्तप्रत्याख्यान मरणकीमहिमा	"
आराधक के दर्शन की महिमा	६६७
अविचार भक्त प्रत्याख्यान के भेद	६६८
निरुद्ध भक्त प्रत्याख्यान	६६६
निरुद्धतर भक्त प्रत्याख्यान	७००
परम निरुद्ध "	७०१
शुक्लध्यान से मुक्ति प्राप्ति	७०२
अल्पकाल में निर्वाण कैसे इसका उत्तर	"
इंगिनी मरण	७०३
प्रायोपगमन मरण	७११
बाल पंडित मरण	७१४
देशव्रत का विवेचन	७१४
सम्यक्त्व का वर्णन व पंचलब्धियां	७१५
स्थिति बन्ध व चलमलादि दोष	७२३
आप्त, आगम, गुरु का लक्षण	७२४
मिथ्यादृष्टि कौन है	७२५
सम्यग्दर्शन के २५ दोष, तीन मूढतायें आठ मद, निशंकित आदि गुण, प्रशम संवेगादि का वर्णन	७२६
गृहस्थ के देशव्रत, अणुव्रत, शिक्षाव्रत	७३२
व ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन	७३८
ग्यारह प्रतिमा में से कोई एक प्रतिमा धारी के बालपंडित मरण संभव है	७४१
बाल पंडितमरण करनेवाला वैमानिक देव होता है और सातभव में मुक्ति नियम से पाता है	७४२
पंडित पंडित मरण	७४३
अपूर्वकरण अनिवृतिकरण आदि गुणस्थान में प्रकृतियों का नाश, समुद्घात वर्णन, कर्मप्रकृतियों के क्षयसे जीव का ऊर्ध्व गमन, सिद्ध शिला की स्थिति	७५३
सिद्धों का आकार व स्थिति	७५४
सिद्धो के अनन्त सुख	७५७
आराधना महिमा व ग्रन्थकर्त्ता प्रशस्ति	७६०

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

卐 भगवती आराधना 卐

सिद्धे जयप्पसिद्धे, चउव्विहाराहणाफलं पत्ते ।
वंदित्ता अरहते, वोच्छं आराहणा कमसो ॥ १ ॥
सिद्धान्जगत्प्रसिद्धांश्चतुर्विधाराधनाफलं प्राप्तान् ।
वन्दित्वाऽर्हतो वक्ष्याम्याराधनाः क्रमशः ॥ १ ॥
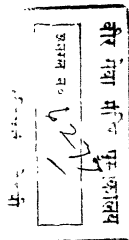
अर्थ—अहं कहिये मैं जो शिवकोटि नामा मुनि जो हूँ सो जगतमें प्रसिद्ध, अर चार प्रकार की आराधना का फलनै प्राप्त हुवा ऐसे सिद्ध परमेष्ठी, तिन्हैं, अरहत परमेष्ठी तिन्हैं वंदना करिके अनुक्रमतै आराधना जो है, ताही कहूँगो ।

भावार्थ—यह ग्रन्थ आराधना का स्वरूपकूं साक्षात् करने वाला है । यातै जो संसार का परिभ्रमणतै भयभीत होय, सो पुरुष इस ग्रंथ का अर्थनै धारण करि आराधना में नित्य ही प्रवर्तन करिके अर संसार परिभ्रमण का अभाव करे–ऐसा भव्य जीवां का हितनै हृदय में धारण करि श्रीशिवकोटि नामा मुनीश्वर, इस शास्त्र की आदि विषै आराधना का फलनै प्राप्त हुवा जो सिद्धपरमेष्ठी और अरहंत परमेष्ठी त्यानै विघ्न का नाश के अर्थि वंदना करि आराधना कहिवा की प्रतिज्ञा करी है । कोऊ प्रश्न करै—जो परमेष्ठी ने नमस्कार करिवा करि विघ्ननाश कैसै होय ? सो उत्तर यह जानना—जो, परमेष्ठी का स्वरूपनै हृदय में साक्षात् करि जो भाव नमस्कार करे है, ताके शुद्ध भाव का प्रभाव करि विघ्न को कारण जो अंतराय कर्म, तामैं रस जो अनुभाग, सो नाश कूं प्राप्त होय है । तातै विघ्न का नाश के अर्थि परमात्मस्वरूप परमेष्ठी कूं नमस्कार करना उचित ही है । आगै आराधनानि का नाम वा स्वरूप कहे हैं । गाथा—

उज्जोवणमुज्जवणं, णिव्वहणं साहणं च णिच्छरणं ।
दंसणणाणचरित्तं, तवाणमाराहणा भणिया ।। २ ।।

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक् तप इनिका जो उद्योतन कहिये उज्ज्वल करना, अर इनिको पूर्णता में उद्यम करना, इनिका निराकुलतातै निर्वाह करना, इनिका निरतिचार सेवन करना, अर आयु का अंतपर्यंत निर्विघ्न सेवन करि परलोकतांई लेजावना, ताकूं जिनेन्द्र भगवान् आराधना कही है। तिनिमें दर्शन का उद्योतन तौ शंकादिक दोष नहीं लगाय आप्त का कह्या तत्त्व में अचल प्रतीति करना है। बहुरि ज्ञान का उद्योतन प्रमाणनयनिकरि निर्णय करि संशय-विपर्यय-अनध्यवसायरहित जानना है। बहुरि चारित्र का उद्योतन निरतिचार मूलगुण-उत्तरगुणनिका धारना है। बहुरि तपका उद्योतन असंयम का अभावरूप आत्मा की विशुद्धिता करना है। बहुरि जिस मार्गकरि ये दर्शन ज्ञान चारित्र तप आराधना आपकै प्राप्त होय वा अधिकाधिक विशुद्धता होय तिस मार्ग में प्रवर्तना वा आराधना के धारकनिकी संगति वा मन वचन कायनिकी प्रवृत्ति वा ग्रहण त्याग जैसे आराधना होय तैसे करना सो उद्यमन है। बहुरि आराधना का विराधक जे परीषह उपसर्ग वेदनादिक आवता संता भी आकुलता रहित धारना यह निर्वहण जानना। बहुरि आराधना का "जे आप्तके वचन का पठन श्रवण तथा साधु संगति जिनकरि आराधना की विशुद्धिता होय ते कारण" मिलावना यह साधन है। बहुरि जिस रीति चार आराधना परलोकतांई आपतै नहीं छूटे तिस रीति जो आयु का अंततांई प्रवृत्ति करना यह निस्तरण है। आगै संक्षेपकरि दोय प्रकार आराधना कहे हैं। गाथा—

दुविहा पुण जिणवयणे, भणिया आराहणा समासेण ।
सम्मत्तम्मि य पढमा, विदिया य हवे चरित्तम्मि ।। ३ ।।

अर्थ—बहुरि जिनेन्द्रका परमागम जो द्वादशांग, ताके विषै आराधना संक्षेपकरि दोय प्रकार कही है। एक तौ सम्यक्त्व आराधना; दूजी चारित्र आराधना। आगे संक्षेपकरि दोय आराधना कही, ताका हेतु कहे हैं। गाथा—

दंसणमाराहंतेण णाणमारायहियं हवे णियमा ।
णाणं आराहंतेण दंसणं होइ भयणिज्जं ।।४।।

अर्थ—दर्शन आराधना करता जो पुरुष सो नियमकरि ज्ञान आराधनानें प्राप्त होय है। अर ज्ञान आराधना करता पुरुषकै दर्शन आराधना होय वा नहीं होय ।।

भावार्थ—जिस जीवकै सम्यग्दर्शन होय, तिस जीवकै तौ नियमकरि सम्यग्ज्ञान होय ही। अर ज्ञान आराधना करै ताकै सम्यग्दर्शन होने का नियम नाहीं। आगै सम्यक्त्व विना ज्ञान है, सो अज्ञान है ऐसें कहे हैं ।। गाथा—

सुद्धणया पुण णाणं, मिच्छादिट्ठिस्स विंति अण्णाणं ।
तह्मा मिच्छादिट्ठी, णाणस्साराहवो णेव ।।५।।

अर्थ—बहुरि शुद्धनयके धारक जे भगवान् गणधर देव ते मिथ्यादृष्टि का ज्ञान कूं अज्ञान कहत हैं। तातैं मिथ्यादृष्टि ज्ञान का आराधक नहीं है ऐसा जानना। इहां कोई कहै–मिथ्यादृष्टि का ज्ञान सूक्ष्मतत्त्व के जानने में मिथ्या कहो सो तौ ठीक, परंतु घट, पट, स्तंभ, पृथ्वी, पर्वत, जल, अग्नि इत्यादिकानें तौ मिथ्या नहीं जाने है। घटकूं घट ही कहे है, पटकूं पट ही कहे है, पृथ्वीकूं पृथ्वी ही कहे है, सो इत्यादि ज्ञान तो सम्यक् है। ताका उत्तर—जो, मिथ्यादृष्टि घटपटादिकनिकूं घटपटादिक ही जाने है, तौभी इनका ज्ञान मिथ्या ही है। इहां कारण कहा है, जो, घटपटादिका नें जन्मतें इन्द्रिय द्वारकरि याका नाम वा स्वरूप वा क्रिया श्रवण करता आया है वा देखता आया है, सो नामादिक और तरह कैसें कहै? परंतु घट पट स्तंभ पृथ्वी पर्वत अग्नि स्त्री पुरुष रत्न सुवर्ण इत्यादि सर्ववस्तुनिविषै कारणविपरीती, स्वरूप विपरीतो, भेदाभेदविपरीती ये तीन तौ बणि ही रहे हैं। सो कारणविपरीती तौ ऐसे जानना, जो ए घटादि रूपी हैं तिनिका कारण ब्रह्माद्वैतवादी कहे है "इनिका कारण एक ब्रह्म ही है"। सांख्यमती कहे है "रूपादिकनिका कारण एक नित्य अमूर्तिक प्रकृति ही है"। नैयायिक वैशेषिक कहे है "पृथ्वी का परमाणुनिमैं तौ स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये चार गुण हैं, जलके परमाणुनिमैं गंध विना तीन गुण हैं, अग्निके परमाणुनिविषै स्पर्श वर्ण ये दोय ही गुण हैं, पवन के परमाणुनिविषैं एक स्पर्श ही गुण है, सो इनिका गुण कदाचित् घटै बढै नाहीं। पृथ्वी के परमाणुनितें पृथ्वी ही उपजै, जलकेतें जल ही उपजै, अग्निकेतें अग्नि ही उपजे, पवनकेतें पवन ही उपजै"। तथा बौद्ध "पृथ्वी इत्यादि चार भूत माने हैं, वर्ण गंध रस स्पर्श ये भूतांका धर्म माने हैं, इनि आठनिका समुदायरूप परमाणु होय है, इनि परमाणुनिकरि कार्य उपजता माने हैं"। तथा चार्वाक "पृथ्वी जल अग्नि पवन ये भूतचतुष्टय इनिकरि, जीव पुद्गल घटपटादिक की

उत्पत्ति माने हैं अर भूतचतुष्टयका परमाणु बिखरि पृथिव्यादिरूप होजाय ताकूं जीव पुद्गलादिका नाश माने है"। इत्यादिक तौ कारण में बहुत प्रकार विपरीत कल्पना करे हैं। तथा स्वरूप में विपरीत माने है, जो, "ये घटपटादि सर्वथा नित्य ही हैं वा अनित्य ही हैं वा निर्विकल्प हैं वा ये घटपटादि दृष्टिगोचर हैं ते हैं ही नांही, यो घटपटादिकके आकार परिणयो ज्ञान ही है।" इत्यादि वस्तुका स्वरूप में विपरीत माने हैं। तथा भेदाभेद विपरीत जो "कारण तैं कार्य सर्वथा भिन्न ही है तथा अभिन्न ही है तथा पृथिव्यादि परमाणु नित्य ही हैं, इनितैं ये स्कंधादिक उपजे हैं ते भिन्न ही हैं, तथा गुणीतैं गुण भिन्न ही हैं तथा घट पट वन पर्वत पृथ्वी इत्यादि ये ब्रह्म तैं उपजे हैं ते ब्रह्म ही हैं" इत्यादि जहां भेद हैं तहां अभेदकल्पना करे हैं, जहां अभेद तहां भेदकल्पना करे हैं। इत्यादि वस्तुका स्वरूपमें भेदाभेदविपरीत माने हैं। तातैं मिथ्यादृष्टिका ज्ञान घटपटादिकनै घटपटादि जाणतो भी तीन विपरीती नहीं छोडे हैं, तातैं मिथ्या ही है। आगे चारित्र आराधनामें गर्भित तप आराधना दिखावे है।। गाथा—

संजममाराहंते तवो आराहिवो हवे णियमा।
आराहंतेण तवो, चारित्तं होइ भयणिज्जं ॥६॥

अर्थ—संयम जो चारित्र ताहि आराधना करता जो जीव सो नियमतैं तप आराधना करी, अर तप आराधना करता जीवको चारित्र आराधना होय वा नहीं होय।

भावार्थ—कर्मबन्ध करने वाली क्रिया का त्याग सो चारित्र है। चारित्र धारण कीया जो जीव सो निश्चयथकी तप धारण करे ही है। अर तप धारण करता जीव चारित्र धारै वा नहीं धारै। आगे कहे हैं, जो, अविरतसम्यग्दृष्टी कैंभी तपश्चरण महान् उपकारक नहीं होय है। गाथा—

सम्मादिट्ठिस्स वि अविरदस्स, ण तवो महागुणो होइ।
होदि हु हत्थिण्हाणं चुन्दच्चुदकम्मतत्तस्स ॥ ७ ॥

अर्थ—अविरतसम्यग्दृष्टीकैंभी तप महागुणकारी नहीं है। काहेतै ? अविरत कहिये असंयमभाव है यातैं अविरत सम्यग्दृष्टी का तपहू हस्तीका स्नानवत् जानना। जैसें हस्ती स्नान करिकैंभी आपकी ही सूंडिमें धूली लेय अपना शरीरपरि क्षेपे है, तैसें अविरती एक दिन तौ अनशनादिक तप करे है दूसरे दिन असंयमरूप आरम्भ विषय कषाय कुशीलादिकरि

आपनें मलिन करे है। तथा जैसें माथनीमें रईकी डोरी एक बोडो खुलती जाय दूजो बोडो बन्धती जाय तैसें जानना। तातैं सम्यक्त्व चारित्र दोऊ मिलेही कल्याणनें प्राप्त होय है। गाथा--

अहवा चारित्ताराहणाए आराहियं हवइ सव्वं।
आराहणाए सेसस्स चारित्ताराहणा भज्जा॥ ८॥

अर्थ--अथवा चारित्र आराधना होता संता सर्व ज्ञानादिक आराधना आराधित होत हैं। शेष--ज्ञानदर्शनतप आराधना होता संता चारित्र आराधना भजनीय है, होय भी नहीं भी होय। आगें, चारित्र आराधना है सो ज्ञानदर्शन आराधनापूर्वक होय है यह दिखावे हैं। गाथा--

कायव्वमिणमकायव्व यत्ति णाऊण होइ परिहारो।
तं चेव हवइ णाणं, तं चेव य होइ सम्मत्तं॥९॥

अर्थ---यह करिवेजोग्य है, यह नहीं करवेजोग्य है—इस प्रकार जाणिकरिही परिहार कहिये त्याग होय है, सोही ज्ञान तथा सम्यक्त्व होत है।

भावार्थ--सम्यक् त्याग जो चारित्र सो ज्ञानश्रद्धानविना होय नाहीं, तातैं श्रद्धानज्ञानपूर्वकही चारित्र जानना। आगें तपका स्वरूप कहे हैं। गाथा--

चरणम्मि तम्मि जो उज्जमो य आउंजणा य जो होइ।
सो चेव जिणेहिं तवो, भणिदो असठं चरंतस्स॥१०॥

अर्थ---मायाचाररहित आचरण करता जो जीव, ताकै जो चारित्रमें उद्यम तथा उपयोग लगावना, सोही जिनेन्द्र भगवान् तप कह्या है॥ आगें ज्ञान दर्शन चारित्र का सार कहै हैं॥ गाथा—

णाणस्स दंसणस्स य सारो चरणं हवे जहाखादं।
चरणस्स तस्स सारो, णिव्वाणमणुत्तरं भणियं॥११॥

अर्थ—ज्ञानदर्शनका सार तो यथाख्यात चारित्र है अर चारित्रका सार सर्वोत्कृष्ट निर्वाण भगवान् कह्या है। गाथा—

चक्खुस्स दंसणस्स य सारो सप्पादिदोसपरिहरणं।
चक्खू होइ णिरत्थं, दट्ठूण विले पडंतस्स ॥१२॥

अर्थ—नेत्रनिकरि देखने का सार, सर्प कंटक बिलादिक दोषांको निवारण करि चलना–गमन करना है। अर नेत्र-निसूं देखिकरि बिल–खाडेमें पडता पुरुष के नेत्र निरर्थक हैं। गाथा—

णिव्वाणस्स य सारो अव्वाबाहं सुहं अणोवमियं।
कायव्वा हु तदट्ठं, आदहिदगवेसिणा चेट्ठा ॥१३॥

अर्थ—निर्वाण पावने का सार कहा है? जो अव्याबाध कहिये बाधारहित, अनौपम्य कहिये उपमारहित अतीन्द्रिय निराकुलता लक्षण सुख का पावना है। यातें आत्महित का इच्छुक हैं ते निर्वाण की प्राप्ति के अर्थि चेष्टा करहू। गाथा—

जह्मा चरित्तसारो भणिया आराहणा पवयणम्मि।
सव्वस्स पवयणस्स य, सारो आराहणा तह्मा ॥१४॥

अर्थ—यातें प्रवचन जो भगवान का आगम ताविषें चारित्र का सार फल आराधना कही है। तातें सर्व जिनागम का सार आराधना है। गाथा—

सुचिरमवि णिरविचारं विहरित्ता णाणदंसणचरित्ते।
मरणे विराधयित्ता अणंतसंसारिओ दिट्ठो ॥१५॥

अर्थ—चिरकाल कहिये बहुत कालहू अतिचाररहित ज्ञानदर्शनचारित्रविषें प्रवृत्ति करिकेंभी कोई पुरुष मरणकालविषें च्यारि आराधना का विनाश करि अनंत संसारी हुवा भगवान् देख्या। तातें मरणकालमें जैसें आराधना नहीं बिगडै तैसें यत्न करना। गाथा—

समिदीसु य गुत्तीसु य दंसणणाणे य णिरदिचाराणं ।
आसावणबहुलाणं उक्कस्सं अंतरं होई ॥१६॥

अर्थ—समिति कहिये परमागम की आज्ञा प्रमाण प्रमादरहित यत्नाचारसूं गमन करना, तथा हित मित निःसंदेह सूत्रकी आज्ञाप्रमाण बोलना, तथा दोषरहित आचारांग का हुकमप्रमाण भोजन करना, तथा प्रमादरहित देखि सोधि शरीरादिक उपकरण का मेलना उठावना, तथा निर्जन्तु भूमिविषें यत्नाचारपूर्वक मल मूत्र कफ नासिकामल नखकेशादिकका क्षेपना ये समिति हैं। बहुरि सर्वसावद्ययोग जो पापसहित मनवचनकायकी प्रवृत्तिका रोकना ये गुप्ति हैं। बहुरि वस्तुका स्वरूप जैसा है तैसा श्रद्धान करना यह दर्शन है। तथा वस्तुका सत्यार्थस्वरूप संशय विपर्यय अनध्यवसाय जे ज्ञानके दोष तिनिकरि रहित वस्तुको यथावत् जानना यह ज्ञान है। सो पंचसमितिविषैं तीन गुप्तिविषैं दर्शनविषैं अतिचाररहित प्रवृत्ति करता जीवके अर आसावनाबहुल कहिये विराधना वा अतिचारसहित प्रवर्तन करता पुरुषकै उत्कृष्ट अन्तर कहिये बडा भारी अन्तर है।

भावार्थ—गमन करता भूमिका सम्यक् अवलोकन नहीं करना वा पर्वत वन वृक्ष नगर बजार तिर्यक् मनुष्यरूप अवलोकन करता गमन करना इत्यादि ईर्यासमितिके अतिचार हैं।। बहुरि देशकालकै योग्य अयोग्यका विचार नही करिकै बोलना व परिपूर्ण सुण्याविना जाण्याविना बोलना इत्यादि भाषासमितिके अतिचार हैं।। बहुरि उद्गमादिदोषनिविषैं कोई दोष लगाय भोजन करना वा अतिरसकी लंपटतातैं वा प्रमाण अधिक भोजन करना इत्यादि एषणासमितिके अतिचार हैं। बहुरि भूमि वा शरीरादि उपकरणनिका शीघ्रतासूं सोधि उठावना मेलना अच्छीतरह नेत्रनिसूं नही अवलोकन करना वा मयूरपिच्छिकासूं सम्यक् प्रतिलेखन नही करना—उतावलिसूं करना इत्यादि आदाननिक्षेपण समितिके अतिचार हैं। बहुरि अशुद्ध भूम्यादिविषैं मलमूत्रादि क्षेपना इत्यादि प्रतिष्ठापनासमितिके अतिचार हैं। बहुरि असावधानीतैं कायकी क्रियाका त्याग वा एकपादादिकरि तिष्ठवो वा सचित्तभूमीमैं तिष्ठवो वा गर्वथकी निश्चय तिष्ठवो वा शरीरमैं ममतासहित कायोत्सर्ग करवो वा कायोत्सर्गका बत्तीस दोष कह्या त्यामेंसूं दोष लगायवो इत्यादि कायगुप्तिके अतिचार हैं। बहुरि रोषतैं वा रागतैं वा गर्वतैं मौन धारना सो वचनगुप्तिका अतिचार है। बहुरि रागादिसहित स्वाध्याय में प्रवृत्ति वा अन्तरंगमें अशुभ परिणाम ये मनोगुप्तिके अतिचार हैं। बहुरि शंका कांक्षा विचिकित्सा मिथ्यादृष्टिनिको मनकरि प्रशंसा वा वचनकरि स्तवन ये सम्यक्त्वके अतिचार हैं। बहुरि द्रव्यक्षेत्रकालभावनिकी शुद्धिताविना पठन करना

वा अक्षरपदमात्रा हीनाधिक पठना तथा विपरीत है अर्थ जिनिमें ऐसे ग्रन्थनिका पठन पाठन करना ये ज्ञानके अतिचार हैं। सो अतिचाररहित समितिमें तथा गुप्तिमें तथा दर्शनज्ञानमें प्रवर्तन करना यह ही कल्याण है। आगे आराधना का अतिशयरूप फल कहे हैं। गाथा—

दिठ्ठा अणादिमिच्छादिठ्ठी जह्मा खणेण सिद्धा य।
आराहया चरित्तस्स तेण आराहणा सारो॥ १७॥

अर्थ—जातें अनादिमिथ्यादृष्टि जे भद्रणादि राजपुत्र, ते तिसही भवमें त्रसपणानें प्राप्त भये, ते जिनपादके निकट धर्मश्रवण करि सम्यग्दर्शन अर संयम प्राप्त होय बहोत थोड़ा कालमें रत्नत्रयकी पूर्णता करि सिद्ध भये। तातें आराधनाही सार है। इहां गाथामें क्षण शब्दका अर्थ अल्पकाल जानना। आगे इहां कोई यह आशंका करे है—जो, मरणकालमें ही आराधना करणी, शेषकालमें तपमें वा चारित्रमें काहेकूं खेद करना? गाथा—

जदि पवयणस्स सारो मरणे आराहणा हवदि दिठ्ठा।
किं दाइं सेसकालं जदिज्जदि तवे चरित्ते य॥ १८॥

अर्थ—जो मरणकालमें आराधना ही भगवान का आगमका सार है ऐसें दिष्ठा कहिये अंगीकार कह्या तौ अब सर्वकाल में आराधना काहेकूं ग्रहण करवेकूं तपके विषें चारित्रविषें जतन करिये? कोई ऐसी आशका करै, ताक अमन्लो अगली गाथामें दृष्टांतरूप उत्तर करे हैं। गाथा—

आराहणाए कज्जे परियम्मं सव्वदाहि कायव्वं।
परियम्मभाविदस्स हु सुहसज्झाराहणा होइ॥१९॥

अर्थ—आराधना का करवारूप कार्यविषें सर्वकाल कहिये सदाकाल निरन्तर परिकर जो सामग्री सो करना योग्य है। जातें आराधनाका परिकर अच्छी तरह भावतारूप कीया, ताकै आराधना सुखकरिकै साधिवा योग्य होय है।

भावार्थ—आराधनाका परिकर सामग्री संगति सदाकाल करवोजोग्य है। जो सामग्री भावनाकरि राखै तौ आराधना मरणकालमें सहज सुखसूं होय है। आगे दृष्टान्त कहे है। गाथा—

जह रायकुलपसूओ जोग्ग णिच्चमवि कुणइ परिकम्मं ।
तो जिदकरणो जुद्धे कम्मसमत्थो भविस्सदि हि ॥२०॥

अर्थ--जैसे राजकुलमें उत्पन्न हुवा जो राजपुत्र सो अपनी इन्द्रियाकूं वशी करता आपके योग्य जो शस्त्रादिकका अभ्यासरूप परिकर वा सुभटादि सामग्री नित्यही अभ्यासरूप वा संचयरूप करतो रहै तौ जुद्धका अवसरमें शत्रूनिपरि प्रहारादिक करनेमे समर्थ होय है । अर शत्रूनिका प्रहारते आपकी रक्षारूप कर्म ताविषै समर्थ होत है ।

भावार्थ--जो राजपुत्र युद्धका अवसर पहली ही शस्त्रविद्या अभ्यासकरि राखी होय, वा युद्धकी सामग्री बलवान् योद्धादिक शस्त्रादिक बनाय राख्या होय, तौ वैरीनिसूं युद्धका अवसरमै विजय पावै । अर जो प्रमादी होय ऐसें विचारै, जब हमारे उपरि शत्रूनिकी सेना आवेगी, तदि आयुधादिकां को अभ्यास करूंगो वा युद्धका करवाजोग्य सुभट सेवक राखूंगो, तो तत्काल युद्धका अवसरमे कुछ करवा समर्थ नहीं होय, राज्य भ्रष्ट होय । तातै पहलीही योग्यसामग्रीको परिचय करवो श्रेष्ठ है । आगे दृष्टांत कहे हैं । गाथा--

इय सामण्णं साधू वि कुणदि णिच्चमवि जोगपरियम्मं ।
तो जिदकरणो मरणे झाणसमत्थो भविस्सदि हि ॥२१॥

अर्थ--तैसेंही साधु जो है सोभी सामान्य आपका रत्नत्रयकी रक्षाके योग्य परिकर्म कहिये सामग्री नित्यही करै तौ जितेन्द्रिय हुवो संतो मरणका अवसरमें धर्मध्यानादिकमें समर्थ होय ।

भावार्थ--जैसें राजकुलमें उपज्यो राजपुत्र, सो राजविद्या वा शस्त्रविद्या वा मंत्री, प्रधान, सेना, गढ, कोट, भंडार, पहरी बण्या राखै अर याकी रक्षाको अभ्यास करवो करै, तौ शत्रूनिसूं युद्धका अवसरमें विजय पावै । तैसेंही साधु तथा श्रावक वा अविरत सम्यग्दृष्टि जे हैं तेहू कषायनिका जीतनेका, इन्द्रियनिग्रह करनेका, अनशनादितपके बधायवेका, शुद्ध-भावना भायवेका, सर्वमें समताभाव होनेका, परीषह सहनेका, देहादिका में ममता घटायवेका शाश्वता अभ्यास करवो करैं, तो मरणकालमें रोगादिकतै वा उपसर्गतै वा क्षुधादिपरीषहतै वा देहादि कुटुम्बादिका ममत्वतै रत्नत्रय न बिगाडै, अर व्रतकी अखंडता करिकै अर धर्मध्यानादिकतै कर्मनिकूं जीति विजयकूं प्राप्त होय है । गाथा--

जोग्गो भाविदकरणो सत्तू जेदूण जुद्धरंगम्मि ।
जह सो कुमारमल्लो रज्जवडायं बला हरदि ॥२२॥

अर्थ—जैसे शत्रूनिपरि आपका शस्त्र निष्फल न जाय अर वैरीनिका बहोत शस्त्रनिकी वार उकाय जाय, आपकै लगने न देवै; अर कुमार अवस्थाहीतै मल्लविद्याका अभ्यास कीया ऐसा युद्धके योग्य जो राजपुत्र सो युद्धकी रंगभूमिविषै शत्रूनिनै जीतिकरिकै बलात्कारतै राज्यपताका ग्रहण करत है । गाथा—

तह भाविदसामण्णो मिच्छत्तादी रिवू विजेदूण ।
आराहणापडायं हरइ सुसंथाररंगम्मि ॥ २३ ॥

अर्थ—तैसैंही भलेप्रकार अभ्यास कीया है साम्यभाव जानैं ऐसा जो मुनि वा श्रावक सो संस्तररूप रंगभूमिविषै कर्मका उदयकी हजारांवार उकाय, मिथ्यात्व असंयम कषायरूप शत्रूनिकूं जीतिकरि आराधनारूप पताका ग्रहण करत है । गाथा—

पुव्वमभाविदजोग्गो आराधेज्ज मरणे जदि वि कोई ।
खण्णुगदिट्ठंतो सो तं खु पमाणं ण सव्वत्थ ॥२४॥

अर्थ—यद्यपि कोई पुरुष मरणका अवसरपहली आराधना की सामग्री न ही भावना करी, न ही अभ्यास करी तो, भी मरणकालमें आराधनाकूं प्राप्त भया देख्या, ऐसें सकल भव्यनिकूं आराधनाके अभ्यासमें निरुद्यमी रहना योग्य नहीं। जैसे कोई पुरुष पृथ्वीकूं खोदै था, सो पृथ्वीमेंतें निधि कहिये बहोत धन हाथि लग गया। तौ यह दृष्टान्त सर्वही स्थानमें प्रमाण नहीं जानना। धन तौ कुमाया उद्यम कीयाही हाथि आवेगा। कोई कोटि पुरुषांमें एकपुरुषकै पृथ्वी खोदता धन हाथि लग गया, तौ साराही उद्यम छोडि बैठे जो म्हाकैभी धन हाथि लग जायगा, सो प्रमाण नहीं। तैसें कोई मिथ्यात्वी असंयमी अंतकालमें शुभभावकूं प्राप्त होय रत्नत्रय ग्रहणकरि आराधनानें आराधि कल्याणनें प्राप्त हुवा तैसें सर्वहीकूं पूर्वकालमें साधनविना आराधनासहित मरण न होय है। तातें आराधनाकी भावना व्रतसंयमादि साधन सर्वकाल भाय आत्मानें उज्ज्वल करना जोग्य है। इति पीठिकावर्णन समाप्त कीया। आगे सप्तदश प्रकार मरणनिविषै पंचप्रकार मरण का वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा करै है। गाथा—

मरणाणि सत्तरस देसिदाणि तित्थंकरेहि जिणवयणे ।
तत्थ वि य पंच इह संगहेण मरणाणि वोच्छामि ॥२५॥

अर्थ--तीर्थंकर देव जे हैं ते परमागमके विषै सतरह प्रकार मरणका उपदेश कीया है । तिनि सतरह मरणनिमेंतैं इस भगवती आराधना ग्रन्थविषै सग्रहकरि प्रयोजनभूत पंचप्रकार मरण जानि कहनेकी प्रतिज्ञा करत है ।

भावार्थ--यो जीव अनन्तकालसूं जन्ममरण अनन्ते कीये ते कुमरण कीये, एकवारभी सम्यङ्मरण नहीं किया । सो अब जो एकवार भी सम्यङ्मरण जो च्यारि आराधनासहित मरण करै तौ फेरि मरणका पात्र नहीं होय । तातैं करुणानिधान वीतराग गुरु अब शुभमरणका उपदेश करे है । मरणके भेद सतरह हैं--१. आवीचिकामरण, २. तद्भवमरण ३. अवधिमरण, ४. आद्यंतमरण, ५. बालमरण, ६. पंडितमरण, ७, आसन्नमरण, ८. बालपंडितमरण ,९. सशल्यमरण, १०. पलायमरण, ११. दशार्त्तमरण, १२. विप्राणमरण, १३. गृध्रपृष्ठमरण, १४. भक्तप्रत्याख्यान मरण, १५. इंगिनी-मरण, १६. प्रायोपगमनमरण, १७. केवलिमरण, ऐसैं सतरह इनिका संक्षेप स्वरूप ऐसा--

१. जो आयुका उदय समय समय आयकरि घटे हैं सो समयसमयमरण है । यह आवीचि--जो समुद्रमें लहरोकी-नांई समय समय आयुका उदय होय पूर्ण होता जाय सो आवीचिमरण कहिये ।

२. बहुरि जो वर्तमानपर्याय का अभाव होना सो तद्भवमरण है, सो अनन्तवार जीवकै हुवा ।

३. बहुरि जैसा मरण वर्तमानपर्यायका होय तैसाही आगिली पर्यायका होयगा सो अवधिमरण है । याके दोय भेद हैं, तहां जैसा प्रकृति स्थिति अनुभाग वर्तमान आयुका उदय आया, तैसाही आगिली आयु का बांधै वा उदय आवै सो सर्वावधिमरण है, अर एकदेश बन्ध उदय होय तौ देशावधिमरण कहिये ।

४. बहुरि जो वर्तमानपर्यायका स्थिति आदिक जैसा उदय था तैसा आगिली पर्यायका सर्व प्रकारतैं वा एकदेशतैं बन्ध उदय नहीं होय सो आद्यंतमरण है ।

५. पांचवा बालमरण है, सो बाल पंचप्रकार है, अव्यक्तबाल, व्यवहारबाल, दर्शनबाल, ज्ञानबाल, चारित्रबाल । तहां जो धर्म अर्थ काम इनि कार्यनिकूं न जाने, इनिका आचरणकूं समर्थ जाका शरीर न होय, सो अव्यक्तबाल है । जो लौकिक अर शास्त्रका व्यवहारकूं नहीं जानै तथा बालक कहिये छोटी अवस्था होय सो व्यवहारबाल है । जो स्वपरतत्त्वका

श्रद्धानरहित मिथ्यादृष्टि होय सो दर्शनबाल है, वस्तुका यथार्थज्ञानरहित होय सो ज्ञानबाल है। जो चारित्ररहित होय सो चारित्रबाल है। इनि पंचप्रकार बालनिका मरण सो बालमरण है। इहां प्रधानपणे दर्शनबालहीका ग्रहण हैं, जातें सम्यग्दृष्टि अन्य च्यारप्रकारका बालपणा होतें भी दर्शनपंडितताका सद्भावतें पंडितमरणविषेही गणिये हैं। तहां दर्शनबालका संक्षेपतें दोयप्रकार मरण कह्या है, एक इच्छाप्रवृत्त, दूजा अनिच्छाप्रवृत्त। तहां अग्निकरि, धूमकरि, शस्त्रकरि, विषकरि, जलकरि, पर्वतके तटतें पडनेकरि, उच्छ्वास रोकनेकरि, अतिशीतल उष्णमें पडनेकरि, रस्सी सांकल जेवडेनके बन्धनकरि, क्षुधाकरि, तृषाकरि, जीभ उपाडनेकरि, विरुद्ध आहार सेवनेकरि बाल जो अज्ञानी चाहिकरि मरैं सो इच्छाप्रवृत्तबालमरण है। अर जो जीवनेका इच्छुक होय अर मरैं सो अनिच्छाप्रवृत्तबालमरण है। इतने बालमरणनिकरि दुर्गतिगामी वा विषयासक्त वा अज्ञानपटलकरि आच्छादित वा ऋद्धि सात रस गौरवयुक्त जीव मरण करे हैं। सो ये बालमरण बहुत तीव्रपापकर्मका आस्रवके कारण जन्मजरामरण करनेकूं समर्थ हैं।

६. बहुरि पंडितमरण च्यारि प्रकार है, व्यवहारपंडित, सम्यक्त्वपंडित, ज्ञानपंडित, चारित्रपंडित। तहां लौकिकशास्त्रका व्यवहारविषैं प्रवीण होय सो व्यवहारपंडित है, सम्यक्त्वसहित होय सो सम्यक्त्वपंडित है, सम्यग्ज्ञानसहित होय सो ज्ञानपंडित है, सम्यक्चारित्रसहित होय सो चारित्रपडित है। इहां दर्शनज्ञानचारित्रसहित पंडितका ग्रहण है. जातें व्यवहार पंडित मिथ्यादृष्टिबालमरण में आगया।

७, बहुरि जो मोक्षमार्गमें प्रवर्तनेवाले साधु संघतें भ्रष्ट होय संघ बारैं निकलि गया ताकूं आसन्न कहिये है, तिनिमै पार्श्वस्थ, स्वच्छन्द, कुशील, संसक्त भी लेणें। ऐसे पंचप्रकार भ्रष्ट साधुनिका मरण सो आसन्नमरण है।

८. बहुरि सम्यग्दृष्टि श्रावकका मरण सो बालपंडितमरण है।

९. बहुरि सशल्यमरण दोय प्रकार है, तहां मिथ्यादर्शन माया निदान ए तीन तौ भावशल्य हैं, अर नारक अर पंचस्थावर अर त्रसमे असंज्ञी ए द्रव्यशल्य हैं। तिनिमैं भावशल्यसहितका जो मरण सो सशल्यमरण है।

१० बहुरि जो प्रशस्तक्रियाविषैं आलसी होय प्रमादी होय व्रतादिकविषैं शक्तीकूं छिपावैं ध्यानादिकतें दूरि भागै ऐसाका मरण सो पलायमरण है।

११. वशार्त्तमरण च्यारि प्रकार है, सो आर्त्तरौद्रध्यानसहित मरण है, तहां पांच इन्द्रियनिके विषयनिके विषैं

रागद्वेषसहित मरै सो इन्द्रियवशार्तमरण है, सो पांच प्रकार है। तिनिविषै जो देवमनुष्यतिर्यंचनिकरि तथा अचेतनकृत जे तत वितत घन सुषिर शब्दनिविषै जो रागी द्वेषी हुवा मरण करै तथा च्यारि प्रकार आहारविषै रागीद्वेषीका मरण तथा देव मनुष्य तिर्यक् अचेतनसम्बन्धी सुगन्धदुर्गन्धविषै रागीद्वेषी का मरण तथा देव मनुष्य तिर्यक् अचेतन सम्बन्धी रूप संस्थानविषै रागीद्वेषीका मरण तथा देव मनुष्य तिर्यक् वा अचेतनसंबंधी मनोज्ञ अमनोज्ञ स्पर्शविषै रागीद्वेषीका जो मरणसो इन्द्रियवशार्तमरण है। तथा वेदनावशार्त्त मरण दोयप्रकारका है, तहां जो शरीरसम्बन्धी वा मनसम्बन्धी दुःखमें लीन होय मरै सो दुःखवशार्त्त मरण है। तथा जो शारीरमानसिक सुखमें लीन होयकरि मरै, ताकै सातवशार्तमरण है। बहुरि कषायवशार्तमरण च्यारि प्रकार है, तहां जो बांध्या है रोष जानै आपविषै वा परविषै वा आपपर दोऊनिमें क्रोधी होय मरै, ताकै क्रोधवशार्तमरण कहिये। तथा मानवशार्त्त मरण अष्टप्रकार है। तहां जो मै विख्यातकुलविषै वा विस्तीर्णकुलविषै वा उन्नतकुलविषै उत्पन्न भया हूं याप्रकार चिंतवन करते का जो मरण, सो कुलमानवशार्तमरण है, तथा हमारे इन्द्रिय उज्ज्वल हैं, सम्पूर्ण शरीर तेजस्वी है, नवीन यौवन है, सकलजनसमूहका चित्तमे हर्ष करनेवाला रूप है इस भावनासहित का मरण सो रूपवशार्तमरण है, तथा मैं वृक्षपर्वतादिकनिका उपाडनेमें समर्थ हूं, युद्धमें समर्थ हूं, मित्रोंका सहायको हमारै बल है। इत्यादि बलका अभिमानसहितका जो मरण, सो बलाभिमानवशार्तमरण है, तथा हमारी बहोत परिवार सेना नगर देशपरि आज्ञा वर्ते है इत्यादि ऐश्वर्यका गर्वसहितका जो मरण सो ऐश्वर्यमानवशार्तमरण है। मै लौकिक वेद समय सिद्धान्तशास्त्र पढ्यो हूं याप्रकार श्रुतका मानकरि उद्धतका मरण सो श्रुतमानवशार्तमरण है, तथा हमारी बुद्धि तीक्ष्ण है, सर्व लौकिक कलाविद्यामै अरोक वर्ते है, याप्रकार बुद्धिका मदसहितका जो मरण सो प्रज्ञावशार्तमरण है। तथा हमारै व्यापारादिक करता संता सर्वमें लाभ है याप्रकार लाभमानकूं भावना करताका मरण सो लाभवशार्तमरण है। हमारे समान तपश्चरणकोऊ करनेकूं समर्थ नहीं। याप्रकार तपका मानकै वशी होय मरै ताकै तपोमानवशार्तमरण है। बहुरि जो धनविषै वा अन्य कार्यविषै करी है अभिलाषा जानै ताकै जो कपट सो निकृतिनामा माया है, तथा सम्यग्भावनिका आच्छादन करि धर्मका छल करि चोरी इत्यादि दोषनिमें प्रवृत्ति सो उपधिनामा माया है, तथा अर्थविषै विसंवाद अर आपका हस्तविषै स्थापन किया द्रव्यका हरण वा दूषण वा प्रशंसा सो सातिप्रयोगमाया है, तथा अन्यद्रव्यमें अन्यका मिलावना कूडा भूंठा ताखडी वा तोला घाटि बाधि देने लेनेमे राखना वा खोटे धनकूं साचा दिखावना सो प्रणधिमाया है। तथा आलोचना करता अपने दोष छिपावना सो प्रतिकुंचनमाया है, इत्यादि मायाकै वशी मरण सो मायावशार्तमरण है। बहुरि उपकर-

एनिविषै तथा भोजनपानविषै तथा शरीरविषै वा निवासस्थानविषै इच्छा वा मूर्च्छासहितका जो मरण सो लोभवशार्त-मरण है। बहुरि हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्री-पुं-नपुंसक वेदनिकरि मूढबुद्धीनिका जो मरण सो नोकषायवशार्तमरण है।

१२. बहुरि जो अपना व्रत क्रियाचारित्रविषै उपसर्ग आवै सो सह्याभी न जाय अर भ्रष्ट होनेका भय आवै तब अशक्त भया अन्नपाणीका त्याग करि मरै सो विप्राणमरण है।

१३. बहुरि जो शस्त्रग्रहणकरि मरण होय सो गृध्रपृष्ठमरण है।

१४. बहुरि जो अनुक्रमसूं आहार पाणीका यथाविधि त्याग करि मरै सो भक्तप्रत्याख्यानमरण है।

१५. बहुरि जो संन्यास करै अर अन्यपासि वैयावृत्य न करावै सो इंगिनीमरण है।

१६. बहुरि जो प्रायोपगमन संन्यास करै अर काहूपासि वैयावृत्य न करावै, अपना आपभी न करै, जैसे काष्ठका लकडा तथा मृतकशरीर तथा काष्ठपाषाणकी मूर्ति तैसै प्रतिमायोग रहै सो प्रायोपगमनमरण है।

१७. बहुरि जो केवली मुक्ति प्राप्त होय सो केवलिमरण है।

ऐसे सतरहप्रकार मरण कहे तिनिका संक्षेप ऐसाकिया है, जो मरण पांच प्रकार है—१. पंडितपंडित, २. पंडित ३. बालपंडित, ४. बाल, ५. बालबाल। तहां दर्शनज्ञानचारित्रका अतिशयकरि सहित जो केवली भगवानका मरण होय सो तो पंडितपंडित है। अर रत्नत्रयकी सामान्यताका धारक ऐसा प्रमत्त आदि गुणस्थानवर्ती मुनीनिका मरण सो पंडितमरण है। सम्यग्दृष्टिश्रावकका मरण सो बालपंडितमरण है। अर पूर्वे च्यारि प्रकार पंडित कहे तिनिमैंसूं एकभी भाव जाकै नांही सो बाल है। अर जो सर्वतै न्यून होय सो बालबाल है। इनिमें सतरह मरण आगये। तातै भगवान् तीर्थंकर परमदेव विस्तारकरि सतरह मरण कहे संक्षेपकरि पंचप्रकारकरि कहे हैं। अब पंचप्रकारके नाम कहे हैं। गाथा—

पंडिदपंडिदमरणं पंडिदयं बालपंडिदं चेव।
बालमरणं चउत्थं पंचमयं बालबालं च ॥२६॥

अर्थ—एक पंडितपंडितमरण, दूजा पंडित, तीसरा बालपंडित, चौथा बाल, पांचवा बालबाल। आगे तीन मरण प्रशंसायोग्य है सोही कहे है। गाथा—

पंडिदपंडिदमरणं च पंडिदं बालपंडिदं चेव ।
एदाणि तिण्णि मरणाणि जिणा णिच्चं पसंसंति ।२७।

अर्थ--जिनेन्द्र भगवान् जे हैं ते पंडितपंडितमरण, पंडितमरण, बालपंडितमरण इनि तीन मरणनिकूं नित्यही प्रशंसा करत हैं। आगे ये पांच प्रकार मरण कौनकै होय सो स्वामी कहे हैं। गाथा—

पंडिदपंडिदमरणे खीणकसाया मरंति केवलिणो ।
विरदाविरदा जीवा मरंति तदियेण मरणेण ॥२८॥
पायोपगमणमरणं भत्तपइण्णा य इगिणी चेव ।
तिविहं पंडिदमरणं साहुस्स जहुत्तचारिस्स ॥२९॥
अविरदसम्मादिट्ठी मरन्ति बालमरणे चउत्थम्मि ।
मिच्छादिट्ठी य पुणो पंचमए बालबालम्मि ॥३०॥

अर्थ—क्षीण कहिये नाश हुये हैं कषाय जिनिके ऐसे भगवान् केवलीका निर्वाणगमन सो पंडितपंडितमरण है। बहुरि विरताविरत जे देशव्रतसहित श्रावक ते सूत्रकी अपेक्षा तृतीयमरण जो बालपंडितमरण ताविषै मरे हैं। बहुरि आचारांगकी आज्ञाप्रमाण यथोक्तचारित्रके धारक साधुमुनि तिनिकै पंडितमरण होय है, सो पंडितमरण तीन प्रकार है। एक भक्तप्रतिज्ञा, दूजा इंगिनी, तीजा प्रायोपगमन। तिनिमें भक्तप्रतिज्ञा में तो संघसूं वैयावृत्य करावै वा आपकी वैयावृत्य आप करै वा अनुक्रमसूं आहार कषाय देहको त्याग करे है। अर इंगिनीमरणविषै परकरि वैयावृत्य नहीं करावै तथा आहारपानरहित एकाकी वनमें देहका त्याग करै, कदाचित् ऊठना बैठना चालना पसारणा संकोचना सोवना याप्रकार आपकी टहल आप करै, परसूं नहीं करावै। कदाचित् विनाकराया कोई करै, तो आप मौनी रहै। बहुरि प्रायोपगमनविषै आपका वैयावृत्य आपभी न करै परसूं भी नहीं करावै। सूका काष्ठवत् वा मृतकवत् सर्व कायवचनकी क्रिया रहित यावज्जीव त्यागी होय धर्मध्यानसहित मरण करै। ये तीन पंडितमरणके भेद हैं, ते आगे विस्तारसहित वर्णन करसीही। बहुरि अविरतसम्यग्दृष्टि व्रतसंयमरहित केवल तत्त्वनिकी श्रद्धाकरि सहित मरण करै सो बालमरण जानना। बहुरि जाकै सम्यक्त्व व्रत दोऊ नहीं ऐसा मिथ्यादृष्टि का मरण सो बालबालमरण है। आगे दर्शनाराधना कौनजीवकै होय सो कहे है। गाथा—

तत्थोवसमियसम्मत्तखइयं खवोवसमियं वा ।
आराहंतस्स भवे सम्मत्ताराहणा पढमा ॥३१॥

अर्थ--तहां आराधनाविषें उपशमसम्यक्त्व तथा क्षायिकसम्यक्त्व तथा क्षायोपशमिकसम्यक्त्व इनि तीन सम्यक्त्वनिमें कोई एक सम्यक्त्व आराधन कहिये सेवन करता पुरुषकै प्रथम सम्यक्त्वाराधना होय है । आगे सम्यग्दृष्टि जीव का स्वभाव कहे है । गाथा--

सम्मादिट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहइ ।
सद्दहइ असब्भावं अयाणमाणो गुरुणियोगा ॥३२॥
सुत्ता-दो तंसम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि ।
सो चेव हवइ मिच्छादिट्ठी जीवो तदो पहुदि ॥३३॥

अर्थ--सम्यग्दृष्टि जीव है सो उपदेश्या जो प्रवचन कहिये जिनागम ताहि श्रद्धान करत है, अर आपकै तो विशेष ज्ञान नहीं होय तो आपकूं गुरु जैसा उपदेश दीया ताकूं सर्वज्ञकथित मानि गुरुका सबंधतै सत्य जानि असद्भाव कहिये असत्यार्थहू का श्रद्धान करत है । बहुरि कोई सम्यग्ज्ञानी आपकूं जिन सूत्रतै सत्यार्थ दिखाया पदार्थका स्वरूप कूं हठग्राहतै तथा अभिमानतै नहीं ग्रहण करै तौ तिसही कालतै सो जीव मिथ्यादृष्टि होत है ।

भावार्थ--आपकूं तौ विशेष ज्ञान नहीं था अर गुरु आपनै असत्यार्थ पदार्थका रूप बतायो तीनै सत्यार्थ परमागमका उपदेश जाणि ग्रहण कीयो सो भगवानका परमागममें श्रद्धाका सद्भावतै सम्यग्दृष्टि ही रह्यो । अर बहुरि सूत्र का अर्थ कोई ज्ञानी सम्यक् दिखायो अर कहो, जो यो अर्थ पूर्वं समझ्या सो नहीं, अब अविरुद्ध सत्यार्थ ग्रहण करो, अब फेरि अभिमानादिकतै नहीं ग्रहण करै तौ सूत्रकी अवज्ञातै उसही कालतै मिथ्यादृष्टि होत है । अब सूत्र कौनकरिके कथित है सो कहे हैं । गाथा--

सुत्तं गणधरकहियं तहेव पत्तेयवुद्धिकहियं च ।
सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुव्विकहियं च ॥३४॥

अर्थ—ए च्यार सूत्रकार परमागममें प्रसिद्ध हैं, इनिके वाक्यनिमें सत्यार्थ पदार्थही प्रगट होय हैं, कदाचित् केवली को दिव्यध्वनितें तफावत नहीं है। सो सूत्र–गणधर कहिये च्यारि ज्ञानके धारक, अर सात प्रकारकी ऋद्धिनिमैंतें कोई ऋद्धिके धारक, ताका कह्या सूत्र जानना। तथा श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशमतें परके उपदेशविना आपकी शक्ति का विशेषतेंही ज्ञानसंयमका विधानविषै जाके निपुणता प्रवीणता ज्ञायकता होय सो प्रत्येकबुद्धि जानना, सो दूसरा सूत्रकार कह्या। बहुरी जो द्वादशांगका पारगामी (द्वादशांग शास्त्रका ज्ञाता) सो श्रुतकेवली है सो तीसरा सूत्रकार जानना। बहुरि परिपूर्ण दशपूर्वका ज्ञाता सो अभिन्नदशपूर्वका धारी चौथा सूत्रकार जानना। इनके वचन केवली भगवान का वचन-तुल्य सत्यार्थ जानना। आगे इन च्यार प्रकार सूत्रकारनिकी तुल्य और कौनका वचन ग्रहण करना सो कहे हैं। गाथा—

गिहिदत्थो संविग्गो अच्छुवदेसेण संकणिज्जो हु।
सो चेव मंदधम्मो अच्छुवदेसम्मि भजणिज्जो ॥३५॥

अर्थ—जो गृहीतार्थ कहिये आगमका अर्थकूं प्रमाणनयनिक्षेपनिकरि तथा गुरुपरिपाटीकरि तथा शब्दब्रह्मका सेवनकरि तथा स्वानुभवप्रत्यक्षकरि भलेप्रकार सत्यार्थ ग्रहण करया होय, बहुरि संसारदेहभोगतें विरक्त होय, पापतें भयभीत होय ऐसा सम्यग्ज्ञानी अर वीतरागी शास्त्रार्थका उपदेशमें नहीं शंका करने योग्य है।

भावार्थ—ज्ञानी वीतरागीका वाक्य निःशंक ग्रहण करना। अर जो उपदेशदाता धर्ममें मन्द होय, संसारपरि-भ्रमणका जाकै भय नाहीं होय सो अर्थका उपदेशविषै भजनीय कहिये प्रमाण करनेयोग्य भी है अर प्रमाण नहीं करने योग्य भी है।

भावार्थ—जो परमागमकी परिपाटीसूं अर्थ मिलि जाय तदि तो प्रमाण करनेयोग्य है अर आगमसूं विरुद्ध हिंसा की प्रवृत्तिरूप वा रागादिरूप कहै तौ शंका करने योग्य है। आगे सम्यक्त्वाराधनाका धारकका स्वरूप कहे हैं। गाथा—

धम्मा धम्मागासाणि पोग्गला कालदव्व जीवे य।
आणाए सद्दहन्तो समत्ताराहओ भणिदो ॥३६॥

अर्थ—धर्म अधर्म आकाश पुद्गल काल जीव ये छह द्रव्य जे हैं तिन्हैं भगवानका आज्ञाकरि श्रद्धान करतो जीव सम्यक्त्वका आराधक कह्या है। और भी सम्यक्त्वीका कार्य कहे हैं। गाथा—

संसारसमावण्णा य छव्विहा सिद्धिमस्सिवा जीवा।
जीवणिकाया एदे सद्दहिदव्वा हु आणाए ।। ३७ ।।

अर्थ—पृथ्वी-जल-अग्नि-पवन-बनस्पतिरूप है काय जिनिकै ऐसे पंच स्थावर, अर एक त्रस ये छहकायके संसारी जीव अर सिद्धि जो अनन्तगुण केवलज्ञानादिक त्यानै प्राप्त भये जे मुक्तजीव ते भगवान् सर्वज्ञकी आज्ञाकरि श्रद्धान करने योग्य हैं। तथा सम्यग्दृष्टीकू औरभी पदार्थ श्रद्धान करने योग्य हैं, तिन्हैं कहे हैं। गाथा—

आसवसंवरणिज्जरबन्धो मुक्खो य पुण्णपावं च।
तह एव जिणाणाए सद्दहिदव्वा अपरिसेसा ।।३८।।

अर्थ—जिनि भावनिकरि कर्म आत्मामैं आवै ते मिथ्यात्व अविरति कषाय योग ये आस्रव हैं। बहुरि आवते कर्म जिनि भावनिकरि रुकि जाय ते तीन गुप्ति, पंच समिति, दशलक्षण धर्म, बारह भावना, बाईस परीषह जीतना अर पंच प्रकार चारित्र पालना ये संवर हैं। बहुरि आत्मप्रदेश अर कर्मप्रदेश परस्पर एकक्षेत्रावगाहरूप होना सो बन्ध है। बहुरि आत्मा का प्रदेशांथकी एकदेश कर्मका नाश होना झडना सो निर्जरा, बहुरि आत्माथकी सर्व कर्मप्रदेश छूटि जाना सो मोक्ष है। वांछित सुखकारी वस्तुनै प्राप्त करै सो पुण्य है। दुःखकारी संयोग मिलावै सो पाप है। ये नव पदार्थ जिनेन्द्रकी आज्ञातैं श्रद्धान करने योग्य हैं। आगे जो सूत्रका एक पद वा एक अक्षरका भी जो श्रद्धान नहीं करै सो मिथ्यादृष्टि है—ऐसै कहे हैं। गाथा—

पदमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं।
सेसं रोचन्तो वि हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ।। ३९ ।।

अर्थ—जो पुरुष जिनेन्द्र सूत्रका कह्या हुवा एक पद तथा एक अक्षरभी श्रद्धान न करै सो और समस्त श्रद्धान् करतोहू मिथ्यादृष्टि जानना। आगे मिथ्यादर्शनका स्वभाव कहे है। गाथा—

मोहोदएण जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं अणुवइट्ठं वा ।।४०।।

अर्थ—मोह जो मिथ्यात्व ताका उदयकरिकैं यो जीव परमगुरुनिका उपदेश्या हुवाहू प्रवचन जो परमागम ताहि नहीं श्रद्धान करे है अर असत्यार्थ तत्त्वकूं मिथ्यादृष्टिनिकरि उपदेश्या अथवा नहीं उपदेश्या श्रद्धान करे है। गाथा—

मिच्छत्तं वेदन्तो जीवो विवरीयदंसणो होइ।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु त्ति रसं जहा जरिदो ॥४१॥

अर्थ—मिथ्यात्व जो दर्शनमोह ताका उदयकूं अनुभव करता जीव सो विपरीत-श्रद्धानी होत है. बहुरि जैसे ज्वर का रोगीकूं मधुर मिष्ट रस नहीं रुचै, तैसे धर्म नहीं रुचे है; धर्मकथनी धर्मका आचरण आछा नहीं लागे है। आगे अश्रद्धानी जीव बहुत बालबालमरण कीये है सो दिखावे हैं ॥ गाथा—

सुविहियमिमं पवयणं असद्दहंतेणिमेण जीवेण।
बालमरणाणि तीदे मदाणि काले अणंताणि ॥४२॥

अर्थ—भले प्रकार कह्या हुवाहू भगवानका परमागमकूं नहीं श्रद्धान करता यह जीव अतीतकाल कहिये गये काल में अनन्ते बालबालमरण कीये। इहां गाथामैं बाल शब्द है, ताका अर्थ बालबाल समझना। आगे ज्ञानीकूं यह बुद्धि करनी योग्य है। गाथा—

णिग्गंथं पव्वयणं इणमेव अणुत्तरं सुपरिसुद्धं।
इणमेव मोक्खमग्गोत्ति मदी कायव्विया तम्हा ॥४३॥

अर्थ—इहां प्रवचनशब्दकरि निर्ग्रन्थ रत्नत्रय कह्या है, यहही भलैप्रकार शुद्धरागादिरहित केवल आत्माका स्वभाव है, यह रत्नत्रयही निर्ग्रंथ है। इहां निर्ग्रंथ कहा? जो ग्रन्थि कहिये संसारकूं रचै, दीर्घ करै सो ग्रन्थ-मिथ्यात्वादिक, ताका अभाव सो निर्ग्रंथ है, अर रत्नत्रयही अनुत्तर कहिये सर्वोत्कृष्ट है, यहही मोक्षका मार्ग है। या प्रकार बुद्धि करना योग्य है। आगे सम्यक्त्वके अतीचार कहे हैं। गाथा—

सम्मत्तादीचारा संका कंखा तहेव विदिगिंछा।
परदिट्ठीण पसंसा अणायदणसेवणा चेव ॥४४॥

अर्थ—ये पांच सम्यक्त्वके अतीचार कहिये मल दोष हैं ते टालनेयोग्य हैं। शंका कहिये भगवानके वचनामें संशय। कांक्षा कहिये सुन्दर आहार स्त्री वस्त्र आभरण गंध माल्यादि विषयनिविषै आसक्तता—आगामी कालमें वांछा। विचिकित्सा कहिये मलिनवस्तूकूं देखि वा दुःखकारी क्षेत्रकालादि देखि वा अशुभकर्मका उदय देखि ग्लानि करना। परदृष्टिप्रशंसा कहिये मिथ्यादृष्टीका तप ज्ञान विद्या क्रिया तिनिकी मनवचनकरि प्रशंसा करना। अनायतनसेवा कहिये मिथ्यात्व अर मिथ्यात्वका धारक, बहुरि मिथ्याज्ञान अर मिथ्याज्ञानका धारक, बहुरि मिथ्याचारित्र अर मिथ्याचारित्रका धारक, ये छहप्रकार धर्मके आयतन कहिये स्थान नाहीं, तातै अनायतन कहिये, इनका जो सेवन सो अनायतनसेवन कहिये। ये पांच अतीचार सम्यग्दृष्टि नहीं लगावै। आगे और सम्यक्त्वके गुण कहे है।

उवगूहणठिदिकरणं वच्छल्लपभावणा गुणा भणिदा।
सम्मत्तविसोधीए उवगूहणकारया चउरो॥ ४५॥

अर्थ—उपगूहन कहिये धर्मविषै वा धर्मात्माविषै कोईकै अज्ञानतातै वा अशक्ततातै दोष लाग्या होय तो धर्मसूं प्रीति करि दोष आच्छादन करै सो उपगूहन गुण है। भावार्थ—यो जिनेन्द्रधर्म अति उज्ज्वल है, अज्ञानी कोऊ यामैं दोष लगावै तौऊ मलिन होय नहीं, तौभी मिथ्यादृष्टिजन ऐसा दोष श्रवण करेंगे तौ धर्मकी निन्दा करेंगे—जो इस धर्ममें कहा है? जे धारे हैं ते खोटेही होय हैं। इसप्रकार धर्ममार्गसूं लोकनिकूं शिथिल करै तौ बडा दोष है, तातै धर्मात्माके दोष आच्छादन करना सो उपगूहन गुण है। तथा आपकी बडाई न करै अर जैसै होना भगवान देख्या तैसै होसी इत्यादिक भवितव्य भावनामैं रत होय सो उपगूहनगुण जानना। बहुरि कोऊ व्रती धर्मात्मा रोगकरि पीडित हुवा तथा आहार पान नहीं मिलवाकरि तथा दुष्टकृत ताडन मारणकरि तथा असहायताकरि वा दुर्भिक्षादिककरि धर्मसूं चलायमान होता होय तौ ताकूं धर्मका उपदेश करि थांभना—जो हे साधो! आप जिनेन्द्रधर्म धारया है, सो यामै कष्ट दुःखभी कर्मका उदयकरि आवे है, जो अब व्रतसूं चलायमान होहू तोहू कर्म छांडे नहीं, अर दृढ रहोगे तोहू कर्म छांडे नहीं तातै कायर होय धर्मसै चलायमान होय दोऊ लोक बिगाडना योग्य नहीं। अर कर्म परलोकमैं भी नहि छांडेगा। तातै अब धर्मतै चलायमान होनेतै धर्मकी निन्दा होयगी, गुरुकुल लज्जायमान होयगा, अर धर्मकी विराधनातै अब अनन्तानन्त कालमें भी धर्म प्राप्त नहीं होयगा, अर जो या कहो—हमारै क्षुधावेदना वा तृषावेदना वा रोगवेदना वा शीतउष्णवेदनादिक बहोत है, सो वेदनातै

थंम्या जाय नहीं, तौ हो ज्ञानी हो? विचारो—तिर्यंचगतिमें अनादिकी वेदनाही भुगती। तथा नरकगतिकी वेदनानें विचारो, ऐसीवेदना कैसी है जो अनन्त बार अनन्तकाल नहीं भोगी ? अर इहां वेदना कितनीक है ? मरण ही होयगा, मरणतें कछु अधिक नहीं, सो एकबार एक देहमें मरना अवश्यही है, सो अब धैर्य धारण करि आराधना का शरणतें मरण भी करो तो आगे होनहार जे अनन्त जन्ममरण त्यांतें छूटि जावो, तातें आराधनाका शरण ग्रहण करो। ऐसी ऐसी वेदना अनन्तबार भोगी। इत्यादि उपदेश करि चलतेकूं थांभै, तथा आहार पान देय वैयावृत्य करै, तथा देहकी सेवा करै, हस्तपादादिकका मर्दन करना, पूंछना, मल मूत्र कफादिक शरीरके मल उठाय दूरि प्रासुकभूमिमैं क्षेपना, तथा देहका संकोचना, पसारना, कलोट लिवावना, उठावना, बैठावना, शयन करावना, मलमूत्रादिककी बाधा मिटावना, निकट रहना, रात्रिमें जागृत रहना इत्यादि शरीरकी टहल करि, जैसें रोगीका मन चलायमान नहीं होय, परमधर्ममें स्थिर होय तैसें सेवा करना। बहुरि तैसें ही व्रती श्रावक तथा अव्रतसम्यग्दृष्टि इनिमैं कोऊ प्रकार दुःख आवै तौ तिनिकूं हू धर्मोपदेश देयकरि तथा शरीर मै रोगादिक होय तौ शरीरकी सेवा करि तथा वस्त्र देनेकरि, आहार पान औषध देनेकरि, आजीविका देनेकरि, धन देनेकरि, रहनेका मकान देनेकरि धर्ममें स्थिर करना, सो स्थितीकरण अंग जानना। बहुरि दर्शनज्ञानचारित्रतपके धारक धर्मात्मा पुरुषनिमैं प्रीति करना सो वात्सल्य अंग है, तथा अपने रागादिरहित शुद्ध वीतराग धर्ममय परिणाम तातें प्रीति करना धारना सो वात्सल्य अंग है। जातें संसारी जीवनिकी स्त्री, पुत्र, मित्र, कुटुम्ब, धन शरीरादिकमें अत्यन्त प्रीति लगि रही है, इनिके अर्थि धर्म बिगाडि हिंसा असत्य परधनहरण कुशील परिग्रह इनिमैं अत्यन्त प्रीति करे हैं, रात्रि दिन देहकूं धोवना, खानपान करावना, इन्द्रिय विषय साधना, सोवना इत्यादि शरीरही का सेवनमैं काल व्यतीत करे है, तथा स्त्री पुत्रमित्रादिक के अर्थि धन उपार्जन करना, विदेशमें धर्मरहितदेशनिमें गमन करना, वनसमुद्रनिमें परिभ्रमण करना, संग्राममें जावना, दुष्टनिकी सेवा करना, अभक्ष्य भक्षण करना, धर्मतें द्रोह करना इत्यादिक नरकतिर्यंचगतिके कारणनिमैं वात्सल्यअंगरहित हुवा प्रवर्ते है। तातें धर्ममें वात्सल्यही जीवका कल्याण है। बहुरि सम्यग्ज्ञान तप उपदेश तथा पापाचारका त्याग शील ऐसें प्रकट करै, जैसें जैन्यांका अहिंसाव्रत सत्य शील निर्लोभता विनय ज्ञानाभ्यास दृढता देखि अन्यमार्गी भी प्रशंसा करैं— जो 'मार्ग तौ सत्यार्थ यही है'। सो प्रभावना—जो सम्यक्त्व की शुद्धि ताके अर्थि उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य अर चोथा प्रभावना—ये सम्यक्त्व के बधावने वाले गुण हैं, सो सम्यग्दृष्टि के बहोत आदरतें ग्रहण करने जोग्य है। आगे दोय गाथा मे सम्यग्दर्शन का विनय कहे हैं। गाथा—

अरहन्तसिद्धचेइय सुदे य धम्मे य साधुवग्गे य ।
आयरिय उवज्झाए सुपवयणे दंसणे चावि ॥४६॥
भत्ती पूया वण्णजणणं च णासणमवण्णवादस्स ।
आसादणपरिहारो दंसणविणओ समासेण ॥ ४७ ॥

अर्थ—अरहंत, सिद्ध, अर इनिके चैत्य कहिये प्रतिबिंब, श्रुत जो शास्त्र, धर्म दशलक्षणभाव, साधुसमूह जे रत्नत्रयके साधक, आचार्य जे पंचाचार आप आचरण करे और भव्यजीवानें आचरण करावें, उपाध्याय जे आप श्रुत पढ़ें ग्रन्थ शिष्यानें पढ़ावें, प्रवचन जिनेन्द्रकी वाणी, अर सम्यग्दर्शन ये दश स्थान कहे । तिनिविषें भक्ति जो इनिके गुणनिमें अनुराग आनन्द उपासना करना तथा पूजा करना, तिनिमें पूजा दोय प्रकार—द्रव्यपूजा तो अरहंतादिकके निमित्त जल गंध अक्षत पुष्पादिकरि अर्घ्यदान करना, अर भावपूजा ऊठि खडा होना, प्रदक्षिणा करना, अंजुली करना, तिनके गुण स्मरण करना इत्यादि हैं । बहुरि वर्णजनन कहिये वर्ण नाम यशका है ताका प्रकट करना । भावार्थ—ज्ञानी जनाकी सभाके मध्य अरहंतादिक जो कहे तिनिके महान् गुणनिका प्रकाश करना । बहुरि अवर्णवाद जो दुष्टजनकरि लगाया दोष अपवादका नाश करना । बहुरि याकी विराधनाका परिहार इत्यादि यह दर्शनविनयका संक्षेप है । आगें सम्यक्त्वका आराधकका स्वरूप कहे हैं । गाथा—

सद्दहया पत्तियया रोचय फासंतया पवयणस्स ॥
सयलस्स जे णरा ते सम्मत्ताराहया होंति ॥४८॥

अर्थ—जे पुरुष सम्पूर्ण प्रवचनकूं श्रद्धान करें, प्रतीति करें, रुचि करें, स्पर्शन कहिये अङ्गीकार करें ते सम्यक्त्वके आराधक होत हैं । गाथा—

एवं दंसणमाराहंतो मरणे असंजदो जदि वि कोवि ॥
सुविसुद्धतिव्वलेस्सो परित्तसंसारिओ होइ ॥४९॥

अर्थ—या प्रकार कोई विशुद्ध भई है तीव्र लेश्या जाकी ऐसा असंयमीहू मरणकालमें दर्शन जो सम्यग्दर्शन ताहि आराधिकरि परीतसंसारी कहिये संसारका अभाव करे है । भावार्थ—कल्पवासी देवनिमें तथा उत्तममनुष्यनिमें अल्प

परिभ्रमण करै—बहोत परिभ्रमणका अभाव होय है । आगे सम्यक्त्वाराधनाके तीन प्रकार अर तिनिका फल होय गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

> तिविहा सम्मत्ताराहणा य उक्कस्समज्झिमजहण्णा ।
> उक्कस्साए सिज्झदि उक्कस्ससुक्कलेस्साए ॥५०॥
>
> सेसा य हुंति भवसत्त मज्झिमाए य सुक्कलेस्साए ।
> संखेज्जाऽसंखेज्जा वा सेसा भवजहण्णाए ॥५१॥

अर्थ—सम्यक्त्वआराधना तीन प्रकार है, उत्कृष्ट मध्यम जघन्य । उत्कृष्ट शुक्ललेश्यासहित सम्यक्त्वाराधनाकरि निर्वाणनै प्राप्त होय है । तात्पर्य ऐसा—सो उत्कृष्ट शुक्ललेश्या क्षपकश्रेणीमें क्षीणकषायकै वा सयोगी भगवानकै होय, त्यांकै निर्वाण होयही । बहुरि मध्यम शुक्ललेश्यासहित जो सम्यक्त्वाराधनाकरि संसारमें बहोत रहे तो सप्त अष्ट मनुष्य वा कल्पवासी देवका भव धारि निर्वाणनै प्राप्त होय । मध्यमशुक्ललेश्यासहित श्रद्धानी देशव्रती श्रावक वा महाव्रती साधु होय है । सो सात आठ भवसिवाय संसारपरिभ्रमण नहीं करे है । बहुरि जघन्य शुक्ललेश्यासहित जो सम्यक्त्वाराधनाका धारक अविरतसम्यग्दृष्टि ताकै संख्यातभव तथा सम्यक्त्व छूटि जाय तो असख्यातभव अवशेष रहे हैं । आगे ये तीन प्रकार सम्यक्त्वाराधनाका स्वामी कहे हैं । गाथा—

> उक्कस्सा केवलिणो मज्झमिया सेससम्मदिट्ठीणं ।
> अविरदसम्मादिट्ठिस्स संकिलिठ्ठस्स दु जहण्णा ॥५२॥

अर्थ—उत्कृष्ट सम्यक्त्वाराधना भगवान् केवलीक होय है । अवशेष जे महाव्रती वा देशव्रती सम्यग्दृष्टीनिकै मध्यम होय है । संक्लेशसहित अविरतसम्यग्दृष्टिकै जघन्य-सम्यक्त्वाराधना होय है । आगे सम्यक्त्वाराधनासहित मरण करै तिनिकी गतिविशेष कहे हैं । गाथा—

> वेमाणियणरलोये सत्तट्ठभवेसु सुक्खमणुभूय ।
> सम्मत्तमणुसरंता करंति दुक्खक्खयं धीरा ॥५३॥

अर्थ—सम्यक्त्वाराधनाकू प्राप्त होते जे धैर्यवान् जीव ते वैमानिकदेवनिके वा उत्तम मनुष्यभवके सप्त अष्ट जन्ममें सुख अनुभवन करिकै संसारका दुःखको अभाव करत है । आगैं जे सम्यक्त्वतैं भ्रष्ट होय हैं तिनिको गतिविशेष दिखावे हैं । गाथा—

जे पुण सम्मत्ताम्रो पब्भट्ठा ते पमाददोसेण ॥
भामेंति दुब्भवा वि हु. संसारमहण्णवे भीमे ॥५४॥

अर्थ—बहुरि जे जीव सम्यग्दर्शनतैं छूटे चिगे प्रमादादि दोषकरि, ते भव्य हैं तोहू भयानक संसाररूप महासमुद्रमें भ्रमण करत हैं । भावार्थ-भव्य हैं तोहू जो असावधानीतैं सम्यग्दर्शनतैं चिग जाय तो बहुरि सम्यक्त्वका मिलना बहोत दुर्लभ है । जो तीव्र मिथ्यात्व होजाय तो अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र काल त्रसस्थावर योनिमैं परिभ्रमण करे है । कैसा है अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल ? जामें अनन्त अवसर्पिणी व्यतीत होजाय हैं । तातैं सम्यग्दर्शन पाय प्रमादी होय बिगाडना बड़ाही अनर्थ है । आगैं सम्यग्दर्शनका लाभका माहात्म्यनें प्रगट करे हैं । गाथा—

संखेज्जमसंखेज्जगुणं वा संसारमणुसरित्तूणं ॥
दुक्खक्खयं करंते जे सम्मत्तेणणुसरंति ॥५५॥
लद्धूण य सम्मत्तं मुहुत्तकालमवि जे परिवडंति ॥
तेसिमणंताणंता ण भवदि संसारवासद्धा ॥५६॥

अर्थ—जे जीव सम्यग्दर्शनका अनुसरण करे हैं, ते संख्यात वा असंख्यात भव संसारपरिभ्रमण करिकैं बहुरि दुःखको क्षय करत हैं । बहुरि जे पुरुष अन्तर्मुहूर्तकालमात्रभी सम्यक्त्वनें प्राप्त होय बहुरि सम्यक्त्वतैं पडत हैं, तिनिकूंहू अनन्तानन्तसंसार वसनेका काल नहीं होत हैं । भावार्थ—अल्पकाल में संसारका अभाव करत है ॥ इति बालमरणं समाप्तम् ॥

आगे मिथ्यादृष्टि कोऊही आराधनाको आराधक नहीं यह दिखावे हैं । गाथा—

जो पुण मिच्छादिट्ठी दढचरित्तो अदढचरितो वा ।
कालं करेज्ज ण हु सो कस्सहु आराहओ होदि ॥५७॥

अर्थ—चारित्रमें दृढ होऊ वा चारित्रमें शिथिल होऊ जो मिथ्यादृष्टि मरण करे सो कोईही आराधना का आराधक नहीं होत है। भावार्थ–मिथ्यादृष्टि व्रतत्यागसहित सावधानीसूं मरण करो वा व्रतत्यागरहित मरण करो वाकै एकहू आराधना नहीं। मिथ्यादृष्टीका कुमरणही जानना। आगे मिथ्यात्वके कितने प्रकार हैं सो कहे हैं। गाथा—

तं मिच्छत्तं जमसद्दहणं तच्चाण होइ अत्थाणं।
संसइयमभिग्गहियं अणभिग्गहियं च तं तिविहं ॥५८॥

अर्थ—जो तत्वार्थौंका अश्रद्धान सो मिथ्यादर्शन है। सो मिथ्यात्व तीन प्रकार है, एक संशयित, दूजा अभिगृहीत तीसरा अनभिगृहीत। तहां संशय ज्ञानसहित जो श्रद्धान सो संशयितमिथ्यात्व है। बहुरि परोपदेशकरि ग्रहण कीया जो मिथ्यात्व सो अभिगृहीत कहिये। अर परोपदेशविनाही जो विपरीतश्रद्धान सो अनभिगृहीत है, सो अनादितै संसारी जीवनिकै है। आगै मिथ्यात्वका माहात्म्य प्रकट करे हैं। गाथा—

जे वि अहिंसादिगुणा मरणे मिच्छत्तकडुगिदा होंति।
ते तस्स कडुगदोद्धियगदं व दुद्धं हवे अफला ॥५९॥
जह भेसजं पि दोसं आवहइ विसेण संजुदं संतं।
तह मिच्छत्तविसजुदा गुणा वि दोसावहा होंति ॥६०॥

अर्थ—जे अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहत्याग गुण ते मरणका अवसरमें मिथ्यात्वकरिकै कटुकताने प्राप्त भये, ते कड़वी तूंबीमें प्राप्त भयो जो दुग्ध ताकीनाईं निष्फल होत हैं। भावार्थ–जैसे दुग्ध मिष्ट है, सुगंध है, बलकारी है, तथापि कडवी तूंबीमें धरचा हुवा कटुकताने प्राप्त होत है, तैसे अहिंसादिकव्रतहू मिथ्यादृष्टीकै संसारपरिभ्रमणका कारण है तथा निष्फल है। बहुरि दूसरा दृष्टांत कहे हैं—जैसे औषध महासुन्दरगुणसहित रोगापहारीहू विषकरि सयुक्त हुवा दोषका बहने वाला होय है, तैसे मिथ्यात्वसंयुक्त अहिंसादि शीलसंयमादि गुणहू संसारपरिभ्रमणदोषका कारण होय है। औरभी मिथ्यात्वके दोष बहनेका दृष्टांत कहे हैं। गाथा—

दिवसेरा जोयरासयं पि गच्छमाराो सगिच्छिदं देसं ।
अण्णंतो गच्छन्तो जह पुरिसो रोव पाउरादि ॥६१॥
धरिाइं पि संजमंतो मिच्छादिट्ठी तहा रा पावेई ।
इट्ठं रिाव्वुइमग्ग उग्गेरा तवेण जुत्तो वि ॥६२॥

अर्थ–जैसं कोई पुरुष एकदिनमे सो योजन गमन करताहू उलटै मारग चाले तो आपका वांछित देशकूं प्राप्त नहीं होय है । तैसंही मिथ्यादृष्टि अतिशय करिकै संयममें प्रवर्ततो संतो उग्र जो तीव्र तपकरि संयुक्त हुवो संतोभी इष्ट ऐसा निर्वारामार्ग जो मोक्षका उपाय, ताहि नहींही प्राप्त होय है ।

भावार्थ–जैसें कोई पुरुषमें एक दिनमें सो योजन जानेकी शक्ति थी, अर पूर्वदिशामैं एक योजन आपके प्राप्त होने योग्य इष्टस्थान था, परन्तु पश्चिम दिशाकूं चाल्या, सो ज्यों ज्यों जाय त्यों त्यों आपका इष्टस्थान दूरि रहता चल्या जाय; तैसं कोई पुरुष मोक्षका मार्ग जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र त्यांसूं अपूठो बहोत तप व्रत करतोभी मोक्ष मार्गकूं नांहीं प्राप्त होय है । जो व्रतशीलतपसंयुक्त ही मिथ्यादृष्टि संसारपरिभ्रमरा करै, तो जो व्रतादिरहित मिथ्यादृष्टि संसारपरिभ्रमरा करै सो तो ठीक ही है या दिखावे हैं । गाथा––

जस्स पुरा मिच्छदिट्ठीस्स रात्थि सीलं वदं गुराो चावि ।
सो मरराो अप्पारां कह रा कुराइ दीहसंसारं ॥६३॥

अर्थ–जा मिथ्यादृष्टीकै मरराका अवसरमें शील नहीं, व्रत नहीं, गुरा नहीं, सो आपनै दीर्घसंसारपरिभ्रमरारूप कैसैं नहीं करै ? करैही करै । आगे औरहू मिथ्यात्वजनित दोष कहे हैं । गाथा––

एक्कं पि अक्खरं जो अरोचमाणो मरेज्ज जिरादिठ्ठ ।
सो वि कुजोरिािरावुड्डो किं पुरा सव्वं अरोचन्तो ॥६४॥

अर्थ–जो जिनेन्द्रका उपदेश्या एकहू अक्षर नहीं रुचि करै, नहीं प्रीति करै, सोभी कुयोनि जो एकेन्द्रियादि तिनिमें डूबत है; तो सर्व जिनवचन नहीं रुचि करतो जिनवचनसूं पराङ्मुख कैसैं संसारमें नहीं डूबे ? डूबेही । गाथा––

संखेज्जासंखेज्जाणंता वा होंति बालबालम्मि ।
सेसा भव्वस्स भवा णंताणंता अभव्वस्स ।।६५।।

अर्थ—जे भव्यजीव मिथ्यात्वसहित बालबालमरणविषै मरण करे है तिनिकै संख्यात वा असंख्यात वा अनन्तभव संसारमें बाकी है । अर जे अभव्य है तिनिकै अनन्तानन्त भवपरिभ्रमण होयगा, भवका अन्त नहीं होयगा ।

इति बालबालमरणं समाप्तं । या प्रकार बालमरण तथा बालबालमरण तो कह्या, अब पंडितमरणका वर्णनमें आचार्य कहनेकी प्रतिज्ञा करे हैं । गाथा—

पुव्वं ता वण्णेसि भत्तपइण्णं पसत्थमरणेसु ।
उस्सण्णं सा चेव हु सेसाणं वण्णणा पच्छा ।।६६।।

अर्थ—प्रशस्तमरण जो पंडितमरण ताके विषै प्रथमही भक्तप्रत्याख्यान नामा मरणकूं कहिस्यूं । मरणविषै अतिशयकरि यहही प्रशंसायोग्य है । शेष जे इंगिनीमरण, प्रायोपगमनमरण, पंडितपंडितमरण पीछे कहियेगा । आगै भक्त-प्रतिज्ञामरणके भेद कहे हैं । गाथा—

दुविहं तु भत्तपच्चक्खाणं सविचारमध अविचारं ।
सविचारमणागाढे मरणे सपरक्कमस्स हवे ।।६७।।

अर्थ—भक्तप्रत्याख्यानमरण दोय प्रकार है । एक सविचार, दूजा अविचार । जहां मरण का निश्चय नहीं होय, बहोत कालमें मरण होणहार होय तहां तो आगे कहेंगे जे चालीस अर्हादिक अधिकार, तिनिका विचार जो विकल्प, तिनिकरि सहित मरण, पराक्रमसहित जो आराधना मरणमे उत्साहसहित जीव, ताकै होय है । बहुरि अविचार भक्त-प्रत्याख्यान अर्हादि चालीस अधिकारका विचाररहित शीघ्र आया जो मरण सो उत्साहरहितकै होय है । आगै सविचार भक्तप्रत्याख्यानकूं कहे हैं । गाथा—

सविचारभत्तपच्चक्खाणस्सिणमो उवक्कमो होइ ।
तत्थ य सुत्तपदाइं चत्तालं होंति णेयाइं ।। ६८ ।।

अर्थ—इहां सविचारभक्तप्रत्याख्यानको आरम्भ होय है। तहां सविचारभक्तप्रत्याख्यानमें चालीस अधिकार जाणिवेजोग्य हैं। आगें चालीस अधिकारनिके नाम कहे हैं। गाथा—

अरिहे लिंगे सिक्खा विणय समाधी य अणियदविहारे।
परिणामोवधिजहणा सिदी य तह भावणाओ य ॥६९॥
सल्लेहणा दिसा खामणा य अणुसिट्ठि परगणे चरिया।
मग्गण सुट्ठिय उवसंपया य पडिछा य पडिलेहा॥ ७०॥
आपुच्छा य पडिच्छणमेगस्सालोचयणा य गुणदोसा।
सेज्जा सथारो वि य णिज्जवग पयासणा हाणी ॥७१॥
पच्चक्खाणं खामण खमणं अणुसट्ठिसारणाकवचे॥
समदाज्झ णे लेस्सा फल विजहणा य णेयाइं ॥७२॥

अर्थ-१. अर्ह, २. लिंग, ३. शिक्षा, ४. विनय, ५. समाधि, ६. अनियतविहार, ७. परिणाम, ८. उपधित्याग, ९. श्रिति, १०. भावना, ११. सल्लेखना, १२. दिशा, १३. क्षमरण, १४. अनुशिष्टि, १५. परगणचर्या, १६. मार्गण, १७. सुस्थित, १८. उपसंपदा, १९. परीक्षा, २०. प्रतिलेख, २१. आपृच्छा, २२. प्रतिच्छन्न, २३. आलोचना, २४. गुणदोष, २५. शय्या, २६. संस्तर, २७. निर्यापक, २८. प्रकाशन, २९. हानि, ३०. प्रत्याख्यान, ३१. क्षामण, ३२. क्षमण, ३३. अनुशिष्टि, ३४. सारणा, ३५. कवच, ३६. समता, ३७. ध्यान, ३८. लेश्या, ३९, फल, ४०. शरीरत्याग, या प्रकार चालीस अधिकार पंडितमरणका भेद सो सविचारभक्त प्रत्याख्यान ताकेविषै जानने।

इनिका सामान्य अर्थ ऐसा है। जो ऐसा पुरुष सविचार भक्तप्रत्याख्यानकै योग्य है अर ऐसा योग्य नहीं—सो अर्ह अधिकारमें ऐसा वर्णन है। बहुरि आराधना करने के योग्य लिंगका लिंगाधिकार में वर्णन है। बहुरि श्रुताध्ययन की शिक्षा ऐसा शिक्षाधिकार में वर्णन है। विनय करनेका अधिकार चौथा। मनकी एकता शुद्धोपयोग में वा शुभोपयोगमें करना यह समाधि अधिकार पांचमा। अनेकक्षेत्रनिमें विहार करना ऐसा अनियत विहार अधिकारमें है। आपकै करने

योग्य कार्यका है विचार जामैं ऐसा परिणाम अधिकार है। परिग्रहका त्यागका उपधित्याग अधिकार है। शुभभावनिकी निश्रेणीरूप श्रिति अधिकार है। भावना का भावना अधिकार है। विषयकषाय क्षीण करनेका सल्लेखना अधिकार है। परलोककी राह दिखावने हाले आचार्यनिका वर्णन दिशा अधिकारमें है। अपने संघकूं क्षमा ग्रहण कराय अन्यसंघमें जानेका अवसरमें क्षमा ग्रहण करनेका क्षमण अधिकार है। अपने संघके मुनिनिकूं तथा नवीन आचार्यकूं शिक्षाकरि परसंघमें जाय है तहां शिक्षाका वर्णनका अनुशिष्टि अधिकार है। परगणगमनका परगणचर्या अधिकार है। आपकं रत्नत्रयकी शुद्धितासहित समाधिमरण करावने वाले आचार्यका तलाश करना ऐसा मार्गण अधिकार है। परका वा आपका उपकारमें सम्यक् तिष्ठनेका सुस्थित अधिकार है। आचार्यनिकूं प्राप्त होनेरूप उपसंपदा अधिकार है। संघका वा वैयावृत्य करनेवालेका वा आराधना करनेवालेका उत्साह वा आहार में अभिलाष त्यजने मे समर्थता असमर्थताका है वर्णन जामैं ऐसा शिक्षा अधिकार है। आराधना होने का निश्चय के अर्थि निमित्त देखना वा देशकालादिका विचार ऐसा प्रतिलेख अधिकार है। आराधना को विक्षेपरहित सिद्धि होसी वा नहीं होसी, हमारे यह मुनि ग्रहणयोग्य है वा नहीं है, ऐसा संघकूं प्रश्न करना सो आपृच्छा अधिकार है। संघका अभिप्रायपूर्वक क्षपकका ग्रहण करना प्रतिच्छन्न अधिकार है। गुरुनिकों आपका अपराध कहना ऐसा आलोचना अधिकार है। गुणदोष दिखावनेरूप गुणदोषाधिकार है। आराधककै योग्य वसतिकाका शय्या अधिकार है। संस्तरका वर्णनरूप संस्तर अधिकार है। आराधककै आराधनामें सहायरूप निर्यापकनिका वर्णनका निर्यापकाधिकार है। अन्तमें आहारका प्रकाशनका प्रकाशन अधिकार है। क्रमतै आहारका त्यागका हानि नामा अधिकार है। त्रिविध आहारका त्यागका प्रत्याख्यानाधिकार है। आचार्यादि निर्यापकनिकूं क्षमा करावना क्षामण अधिकार है। आप क्षमा करना क्षमण अधिकार है। निर्यापकाचार्य हैं ते संस्तरमें तिष्ठते क्षपककूं शिक्षा करे, तहां शिक्षाका अनुशिष्टि अधिकार है। दुःखवेदनातैं मोहनैं प्राप्त हुवा वा अचेत हुवाकै चेतना प्रवर्तावना सारणा अधिकार है। जैसैं कवच जो वकतर तातैं सैंकडा बाणनिका निवारण होय है, तैसैं धर्मोपदेशादि वाक्यनिकरि दुःखनिवारणता रूप कवच अधिकार है। जीवन मरण लाभ अलाभ संयोग वियोग सुखदुःखादिमैं रागद्वेषका निराकरणरूप समता अधिकार है। एकाग्र चित्त रोकनेरूप ध्यानका अधिकार है। लेश्यानिका वर्णनरूप लेश्याधिकार है। आराधनाकरिकै साध्य होय सो फलाधिकार है। आराधकका शरीरका त्यागका देहत्याग अधिकार है। ऐसे भक्तप्रत्याख्यानमरणमें चालीस अधि-

कार हैं । तिनिकूं अब भिन्नभिन्न वर्णन करिये हैं । आगे ऐसा पुरुष आराधनाके जोग्य है वा ऐसा जोग्य नहीं है ऐसे अर्ह नामा अधिकार छह गाथानिकरि कहे हैं । गाथा--

३० भग आर

वाहिव्व दुप्पसज्झा जरा य सामण्णजोग्गहाणिकरी ।
उवसग्गा वा देवियमाणुसतेरिच्छिया जस्स ॥७३॥
अणुलोमा वा सत्तू चारित्तविणासया हवे जस्स ।
दुब्भिक्खे वा गाढे अडवीए विप्पणठ्ठो वा ॥७४॥
चक्खुं व दुब्बल जस्स होज्ज सोदं व दुब्बलं जस्स ।
जंघाबलपरिहीणो जो ण समत्थो विहरिदुं वा ॥७५॥
अण्णम्मि चावि एदारिसम्मि आगाढकारणे जादे ।
अरिहो भत्तपइण्णाए होदि विरदो अविरदो वा ॥७६॥
उस्सरइ जस्स चिरमवि सुहेण सामण्णमणदिचारं वा ।
णिज्जावया य सुलहा दुब्भिक्खभयं च जदि णत्थि ॥७७॥
तस्स ण कप्पदि भत्तपइण्णं अणुवट्ठिवे भये पुरदो ।
सो मरणं पच्छिन्तो होदि हु सामण्णणिव्विण्णो ॥७८॥

अर्थ--ऐसा पुरुष भक्तप्रत्याख्यानके योग्य है-जाकै व्याधि दुःखकरिकंहू दूरि होने समर्थ नहीं होय । तथा श्रमण जो साधुपणाकी प्रवृत्तिकी हानि करनेवाली जाकै जरा आई होय-जिस जरातै चारित्रधर्म पालवेमैं समर्थ नहीं होय । जराका कहा अर्थ है ? जीर्यन्ते कहिये रूप आयु बलादिक गुण जा अवस्थामें विनासनै प्राप्त हो जाय सो जरा है । तथा देव मनुष्य तिर्यंच अचेतनकृत उपसर्ग जाकै आया होय, तथा जाकै चारित्रधर्मका विनाश करनेहाला शत्रु कहिये बैरी अनुकूल होय अथवा अनुकूल कहिये कुटुम्बादिक बांधव स्नेहतै वा मिथ्यात्वकी प्रबलतातै वा अपने भरणपोषण के लोभतै चारित्रधर्म विनाशनेकूं उद्यमी होय, तथा जगतका नाशका करनेहाला दुर्भिक्ष आजाय, जामैं अन्नपान मिलना कठिन हो

जाय, तथा महान् वनमें दिशा भूल होय वनके मध्य चल्यो जाय—जहां मार्ग बतावनेवाला कोऊ नहीं वा जिसतरफ जाय तिसतरफ सैकडा कोंसां वनही होय—तहां वनमें सन्यासकी योग्यता है ही। तथा नेत्र जाका दुर्बल होजाय जो ईर्यापथादि सोधने समर्थ नहीं होय। तथा कर्ण इन्द्रिय शब्दग्रहणसमर्थ नहीं होय। तथा जंघा बलरहित हो जाय जो विहार करनेकूं वा खडे आहार लेनेकूं समर्थ नहीं होय। इत्यादि औरहू दृढ कारण होते संते विरत जो साधु वा देशव्रती श्रावक वा अविरत जो अव्रतसम्यग्दृष्टि भक्तप्रत्याख्यानमरणकै अर्ह कहिये योग्य है।

भावार्थ—एते पूर्वे कहे जे धर्म अर आयु विनशनेके कारण तिनके आवता सता अनन्तकालमें फेरि मिलना है दुर्लभ जाका ऐसा धर्मकी रक्षाके अर्थि आराधनामरण अंगीकार करना। देह तो विनाशीक है, विनसैहीगा, कोटि उपायनिकरि नहीं रहै, अर अनन्तवार धारण करिकरि छोड्या, याकी रक्षाकरि कहा? अर यह आराधनामरण जामै देह मरै अर ज्ञानदर्शनसहित आत्मा नहीं मरै, ऐसा मरण कदेही नहीं हुवा। जो आराधनामरण होता तो बहुरि संसार परिभ्रमण नहीं करता, तातै पूर्वोक्त कारण होता आराधनामें मंदोद्यमी नहीं रहना।

बहुरि जाकै बहोत काल सुखकरिकै मुनिपणा निरतिचार चारित्र पलता होय अर आराधनाका प्रवर्त्तक निर्यापक आचार्यभी सुलभ होय अर दुर्भिक्षादिकका भयभी नहीं होय औरभी असाध्य रोगादिक शरीरमे नाहीं आया होय तथा औरहू मरणका कारण सन्मुख नहीं होय ताकूं भक्तप्रत्याख्यान नामा मरण करना योग्य नहीं। अर जो दशलक्षण धर्म रत्नत्रयधर्म देहसूं आछी रीति पलता होय, धर्ममें भङ्ग नहीं दीखता होय. अर धर्म सधतांहू जो मरण चाहे है अर आहार त्यागिकरि मरण करे है सो रत्नत्रयधर्मसूं विरक्त हुवा। जातै त्याग जैसे तपसूं पराङ्मुख हुवा जो जैसेतैसे मरि जावना मुनिव्रतसूं अपूठाही हुवा। दीर्घ आयु विद्यमान होता अर धर्मसेवन बनता अर आहारपान आचारांगकी आज्ञा प्रमाण प्राप्त होतां भी जो आहारत्याग करि अकालमें मरण करे है सो आत्मघाती है॥

भावार्थ—धर्म पलतांभी भोजन त्यागि संन्यासमरण करे ताकै कहा सिद्ध होय है? देहनै मारयां कहा होयगा? अन्यपर्याय और धारण करेगा। या देहकू त्याग्यां कहा होय? मरण करि व्रत बिगाड्या अर नवा देह और धाया, परन्तु कर्ममय कार्माणदेह–अनन्तानन्तदेह धारण करनेका बीज, सो तो आहार त्यागि मरि गया नहीं हो छूटैगा, नवीन नवीन अन्यदेह धारण करेगा। तातै देहधारण करनेतै विरक्त भये जे सम्यग्ज्ञानी ते औदारिक देहकूं तो योग्य आहार

देय रक्षा करे है, अर अष्टकर्ममय कार्माणदेह ताके मारनेमें यत्न करे हैं। जो यो विद्यमान औदारिकदेह है, याहीनें मारया जन्ममरणतें छूटि जाय, तौ याका मारना तौ सुलभ है। अग्निमें बलि मरि जाय, शस्त्रघाततें मरि जाय, जलमें डूबनेतें मरि जाय, श्वासके रोकनेतें, विषभक्षणकरनेतें, पर्वतवृक्षादिकनितें पडनेतें, भूमीमें गडनेतें, आहारत्याग करनेतें मरि जाय, इस देहकूं मारे कुछभी कल्याण नहीं है। यो दुर्लभ मनुष्यका देह पाय अखण्ड रत्नत्रयधर्मकी आराधना करि अष्टकर्ममय कार्माणदेहकूं मारना योग्य है। जितने या देहतें सामायिकादिक आवश्यक तप व्रत संयमादिक सधता दीखें तितने रक्षा ही करनी।

अर जहां धर्म रहता नहीं दीखे तथा अवश्य मरणका कारण अतिवृद्धपणा असाध्यरोग दुष्टनिकृत उपसर्ग आजाय, तहां कायरता छोडि परमधर्मका शरण ग्रहण करि सल्लेखनामरण करना योग्य है। अर आछी रीति धर्म सधतांहू जो सल्लेखनामरण करि मरयो चाहै सो रत्नत्रयधर्मसूं पराङ्मुखही हुवो आत्मघातकरि संसारपरिभ्रमण करेगा। रत्नत्रयका लाभ ताकै अनन्तकालहूमें दुर्लभ होयगा। तातें कर्मका दीया शुभ अशुभका उदयतें आत्माकूं भिन्न करि रत्नत्रयाराधना करना उचित है। अर पूर्वोक्त संन्यासके कारण प्राप्त होय तदि संन्यासमरण करनेमें विलम्ब नहीं करना अर निरन्तर समाधिमरण करनेमें वांछा तथा उद्यम राखना श्रेष्ठ है।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यान के चालीस अधिकारनिमें अर्हं नामा पहला अधिकार छ गाथानिमैं समाप्त किया। आगे लिंगाधिकार गाथा बावीसकरि कहे हैं। गाथा--

उस्सग्गियलिंगकदस्स लिंगमुस्सग्गियं तयं चेव।
अववादियलिंगस्स वि पसत्थमुवसग्गियं लिंगं ॥७९॥

अर्थ--जाकै सर्वोत्कृष्ट जो निर्ग्रन्थलिंग ताकै तो औत्सर्गिकलिंगही संन्यासका अवसरमें श्रेष्ठ है। अर जाकै अपवादिकलिंग होय ताकैहू औत्सर्गिकलिंग धारण करना प्रशंसायोग्य है। गाथा--

जस्स वि अव्वभिचारी दोसो तिट्ठाणिगो विहारम्मि।
सो वि हु संथारगदो गेण्हेज्जोस्सुग्गियं लिंगं ॥८०॥

अर्थ—जाके विहारविषे त्रैस्थानिक दोष नहीं व्यभिचरै सोहू संन्यासकूं प्राप्त हुवा सर्वोत्कृष्ट निर्ग्रन्थलिंग धारण करै। इहां त्रैस्थानिकदोषका विशेष हमारे जाननेमै नहीं आया तातै विशेष नहीं लिख्या है। गाथा—

आवसधे वा अप्पाउग्गे जो वा महड्ढिओ हिरिमं।
मिच्छजणे सजणे वा तस्स होज्ज अववादियं लिंगं ॥८१॥

अर्थ—जातै पूर्वे भक्तप्रत्याख्यानमरण करनेवालाकी योग्यतामै संयमी तथा अव्रती असंयमी गृहस्थकूं वर्णन किया है, तहां जो अव्रती वा अणुव्रती गृहस्थ भक्तप्रत्याख्यानसंन्यासमरण धारण कीयो चाहै, अर जाकै संन्यासकै योग्य स्थान वसतिका नहीं होय–अयोग्य होय, अथवा आप गृहस्थ महान् ऋद्धिमान् राजादिक वा मंत्री वा राजश्रेष्ठी होय, वा संन्यास करनेवाला गृहस्थ लज्जावान् होय–जो लज्जा दूरि करनेकूं समर्थ नहीं होय अथवा जाके स्वजन जे स्त्रीपुत्रादिक मिथ्यादृष्टि होय, ताकूं उत्कृष्टलिंग जो निर्ग्रन्थलिंग होना न बनै, तातै अपवादलिंग जो उत्कृष्ट श्रावकका लिंगही होय है। आगे इहां लिंगमें च्यार प्रकार भेद हैं सो कहे हैं। गाथा—

अच्चेलक्कं लोचो वोसट्टसरीरदा य पडिलिहणं।
एसो हु लिंगकप्पो चदुव्विहो होदि उस्सग्गे ॥८२॥

अर्थ—इहां उत्सर्गलिंगविषे च्यार प्रकार हैं। १. आचेलक्य कहिये वस्त्रादिक सर्व परिग्रहका त्याग, अर २. लोच कहिये हस्तकरि केशनिका उपाडना, अर ३. व्युत्सृष्टशरीरता कहिये देहसूं ममत्वका त्याग करि देहमें रहना, ४. प्रतिलेखन कहिये जीवदयाका उपकरण मयूरपिच्छिका राखना। ये च्यारि निर्ग्रन्थलिंगके चिह्न हैं। भावार्थ–एक तो वस्त्र आभूषण शस्त्र इत्यादिक समस्तपरिग्रहरहितपणा, दूजा लिंग–मस्तक मूंछ डाढीके केशनिका लोंच, तीसरा लिंग-देहसूं ममतारहितपणा, चौथा लिंग-मयूरका पांखांकी पींछी राखना, ये च्यारि मुनिपणाके बाह्यलिंग हैं। इनिमै एकभी घाटि होय तो मुनिपणा नहीं है, तदि वन्दनादिक आदरकै योग्य कैसे होय? आगे जो स्त्री पर्यायमें संन्यास धारण करनेकी इच्छा करै, ताका लिंग कहे हैं। गाथा—

इत्थीवि य जं लिंगं दिट्ठं उस्सग्गियं च इदरं वा।
तं तह होदि हु लिंगं परित्तमवधिं करेंतीए ॥८३॥

अर्थ—बहुरि अल्पपरिग्रहकू धारती जे स्त्री तिनकंहू औत्सर्गिकलिंग वा अपवादलिंग दोऊ प्रकार होय है । तहां जो सोलह हस्तप्रमाण एक सुफेद वस्त्र अल्पमोलका तातं पगकी एडीसूं लेय मस्तकपर्यंत सर्व अंगकूं आच्छादन करि अर मयूरपिच्छिका धारण करती, अर ईर्यापथ में दृष्टि धारण करती, लज्जा है प्रधान जाकं, सो पुरुषमात्रमे दृष्टि नहीं धारती, पुरुषनितं वचनालाप नहीं करती, अर ग्रामके वा नगरके अति नजीकहू नहीं, अर अतिदूरहू नहीं, ऐसी वसतिकामे अन्य आर्यिकानिका संघमें वसती, गणिनीकी आज्ञा धारण करती, बहोत उपवासादिक तपश्चरणमे प्रवर्तती, श्रावकके घर अयाचिकवृत्तिकरि दोषरहित अन्तरायरहित आपके निमित्त नहीं कीयो जो प्रासुक आहार ताहि एकबार बैठिकरि मौनतं ग्रहण करती, आहारका अवसरविना गृहस्थनिके घर धर्मकार्यविना नहीं गमन करती, निरन्तर स्वाध्यायध्यानमें लीन रहती, एकवस्त्रविना तिलतुषमात्रहू परिग्रह नहीं ग्रहण करती, पूर्व अवस्थासम्बन्धी कुटुम्बादिसूं ममत्वरहित वसती ऐसी जो स्त्री ताकं जो ए पंचपापनिका "मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनातं" त्याग करि व्रतधारण समितिका पालना सोही आर्यिकाका व्रतरूप औत्सर्गिकलिंग कहिये सर्वोत्कृष्ट लिंग है । स्त्रीपर्यायमें व्रतनिकी याही परिपूर्णता है, तातं उपचार करि महाव्रत कहिये हैं । अर निश्चयकरि तो स्त्रीके अणुव्रत ही हैं, जातं भगवानका परमागममें स्त्रीनिके पांच गुणस्थान ही कहे हैं—देशव्रतपर्यंतही होय है । बहुरि जो गृहमें वसिकरि, अणुव्रत धारण करि, शील संयम संतोष क्षमादिरूप रहना यह स्त्रीनिकं अपवादलिंग है । सो संस्तरमें दोऊही होय हैं । आगे कोऊ कहै, जो, रत्नत्रयकी उत्कृष्ट भावना करिकंही मरण करना, वस्त्रादिरहितलिंग ग्रहणकरि कहा गुण होय है ? तातं लिंगग्रहणमे गुण दिखावे है । गाथा—

जत्तासाधणचिह्नकरणं खु जगपच्चयादठिदिकरणं ।
गिहिभावविवेगो वि य लिंगग्गहणे गुणा होंति ॥८४॥

अर्थ—यात्रा जो मोक्षके अर्थि गमन, ताका कारण जो रत्नत्रय ताका चिह्नका करणा निर्ग्रंथलिंग है, अथवा यात्रा जो शरीरकी स्थितिका कारण जो भोजन, ताका साधन जो कारण ताका यह निर्ग्रंथलिंग चिह्न कारण है । भावार्थ—निर्ग्रन्थलिंगतं भोजनहू सुलभ होत है, जातं गृहस्थवेषकरिकं तिष्ठतो गुणवानहू सर्व लोकांकं अंगीकार करने योग्य नहीं होय है, ताकूं कोऊ भोजनदानहू बाहुल्यताकरि नहीं देत है, दानभी गृहस्थनं याचनाविना सुलभ नहीं अर भोजनविना शरीरकी स्थिति नहीं, शरीरकी स्थितिविना रत्नत्रयभावनाको आधिक्यता नहीं, तातं निर्दोष आहार अयाचिकवृत्तिकरि रत्नत्रयकी प्रवृत्तिके अर्थि ग्रहण करता जो साधु ताकं यह निर्ग्रन्थलिंग ही प्रधान है ।

बहुरि जगत जो लोक, ताकै निर्ग्रन्थलिंग प्रतीतिका कारण है। जातै देहादिकमें ममत्वका त्यागी होयगा सोही यह सर्व परीषह सहनेकूं समर्थ हुआ निर्ग्रन्थलिंग धारेगा, तातै निर्ग्रन्थलिंग वीतरागी मोक्षका मार्ग है, यह प्रतीति करे है। बहुरि यह निर्ग्रन्थलिंग आपका आत्माकी स्थितीकरणका कारण है। जातै मोक्षके अर्थि सर्वपरिग्रहको त्यागि दिगम्बर जो मैं ताकै रागकरि कहा प्रयोजन है? तथा द्वेषकरि वा मानकरि तथा मायाकरि वा लोभकरि मोहकरि शरीर का संस्कारकरणकरि परीषहउपसर्गतैं कायर होनेकरि कहा प्रयोजन है? मै तो सर्वका त्यागी निर्ग्रन्थ हूं ऐसे आत्माकूं रत्नत्रयमें स्थिर करना है।

बहुरि गृहस्थभावतै जुदापणाहू निर्ग्रन्थलिंग होतें होत है। जातै निर्ग्रन्थलिंग धारें ताकै यह भावना होय, जो, मै त्यागी होय दुर्गतिका कारण जो क्रोध मान माया लोभ इनिमैं कैसे प्रवर्तूं? गृहस्थकीसी क्रिया करूं तो लोकनिंद्यभी हूं अर दुर्गतिभी जाऊं? तातै संयमरूप प्रवर्तनाही श्रेष्ठ है। या प्रकार निर्ग्रन्थलिंगतै गुण प्रकट होय हैं। आगे औरहू निर्ग्रन्थलिंग के गुण कहे हैं। गाथा—

गंथच्चाओ लाघवमप्पडिलिहणं च गदभयत्तं च।
संसज्जणपरिहारो परिकम्मविवज्जणा चेव ॥८५॥

अर्थ—निर्ग्रन्थ होय ताकै परिग्रहमें मूर्च्छा ही उठि जाय है, स्वप्नांमें भी चाह नहीं उपजै, तातै परिग्रहत्याग गुण निर्ग्रन्थलिंगतैंही होय, वस्त्रादिसहितकै परिग्रहमें ममता रहैही। बहुरि परिग्रहत्यागीकै आत्माके उपरिसूं सर्व भार उतरि गया यातै हलकापणा होय है। बहुरि प्रतिलेखन कहिये बहोत सोधना नहीं होय है, जातै वस्त्रसहित जो ग्यारह प्रतिमाधारक ताकै वस्त्रादिकनिका बहोत सोधन होय है अर निर्ग्रन्थनिकै मयूरपिच्छिकाकरि शरीरपरि फेरना यहही अल्प प्रतिलेखन है। बहुरि निर्ग्रन्थलिंगीकै चित्तको व्याकुलता का कारण जो भय ताकरि रहितपणा होय है, जातै परिग्रहरहितकै भय काहेका? वस्त्रादिक राखै ताकै भय होय है। बहुरि वस्त्रसहितके वस्त्रमें जूंवा लीखां वा सन्मूर्च्छनजीवका त्याग नहीं हो सके है, आपकै वा अन्यजीवकै बड़ी बाधा उपजे है, अर निर्ग्रन्थलिंगमें जीवांकी उत्पत्तिही नहीं होय है, बहुरि निर्ग्रन्थलिंगमें याचना सींवना प्रक्षालना सुकावना इत्यादि स्वाध्याय ध्यानमें विघ्न करने वाले दोष नहीं होत है। बहुरि निर्ग्रन्थलिंगीके शीत उष्णता दंशमशकादि सर्व परीषहनिका जीतना होय है, तातैं पूर्वोपार्जितकर्मनिकी बडी निर्जरा होय है, अर रत्नत्रयमार्गमें दृढता होय है, तात निर्ग्रन्थलिंगही श्रेष्ठ है। आगे औरहू निर्ग्रन्थलिंगके गुण कहे हैं।

विस्सासकरं रूवं अणादरो विसयदेहसुक्खेसु ।
सव्वत्थ अप्पवसदा परिसह अधिवासणा चेव ॥८६॥

अर्थ—यह निर्ग्रन्थलिंग सर्वके विश्वासकारी है, जातैं यह निर्ग्रन्थता परजीवांका घातकारी नाहीं, जामैं शस्त्रादि ग्रहण नाहीं, तथा शरीरका संस्कार नाहीं तातैं कुशील नाहीं। बहुरि विषयांका तथा सुखमें अनादरता प्रकट होत है। बहुरि सर्वक्षेत्रनिमैं आत्मवशता होत है, जातैं निर्ग्रन्थलिंगधारी जहां प्रासुक भूमी देखै तहांही गमन करै वा शयन करै वा आसन करै। जो यह भय नाहीं–जो, मैं इहां गमन करूंगा वा शयन करूंगा तौ हमारा यह वस्तु जाता रहेगा वा लुटि जाऊंगा वा हमारै इस क्षेत्रमें यह कार्य है सो गमन करना वा नहीं करना इत्यादि सर्वक्षेत्रनिमें पराधीनतारहित होत है। बहुरि शीत उष्ण दंश मशक क्षुधा तृषादि बाईस परीषहनिका सहना होय है। या प्रकार गुण निर्ग्रन्थलिंगहीकै प्रकटे हैं। आगे औरहू नग्नत्वके गुण कहे हैं। गाथा—

जिणपडिरूवं विरियायारो रागादिदोसपरिहरणं ।
इच्चेवमादिबहुगा अच्चेलक्के गुणा होंति ॥८७॥

अर्थ—यह निर्ग्रन्थलिंग साक्षात् जिनेन्द्रका प्रतिबिंब है, जातैं जाकूं जिनसदृश होना होय ताका यह निर्ग्रन्थलिंग प्रतिबिंब है नमूना है। भावार्थ—जो जाका अर्थी होय सो तिसरूपके अनुकूलही प्रवर्ते। बहुरि निर्ग्रन्थलिंग धारया जानैं वीर्याचार प्रकट कीया। बहुरि रागादिक दोषका परिहार होय, जातैं शरीरादिकनिमें जाका अनुराग होय तातैं निर्ग्रन्थ-लिंग नहीं धारया जाय है। इत्यादि औरभी याचनादीनतारहितपणा बहोतगुण निर्ग्रन्थलिंगमें प्रकट होय हैं। आगे वस्त्र-रहितताके औरभी गुण प्रकट करे हैं। गाथा—

इय सव्वसमिदकरणो ठाणासणसयणगमणकिरियासु ।
णिगिणं गुत्तिमुवगदो पग्गहिददरं परक्कमदि ॥८८॥

अर्थ—या प्रकार स्थानमें आसनमें शय्यामें गमनक्रियामें सर्व इन्द्रिय मर्यादरूप जाके होगये ऐसा पुरुष नग्नतानैं गुप्तिनैं प्राप्त हुवा उत्कृष्ट पराक्रमकूं धारण करे है। भावार्थ—जो निर्ग्रन्थलिंग धारण करै ताकै यह विचार होय है,

जो, सर्व परिग्रहका त्यागी जो मैं, ताके शरीरकी ममता करिकै कहा ? अब तपश्चरणमें यत्नकरि कर्मक्षपण करनाही श्रेष्ठ है । आगे कहे हैं, जो अपवादलिंगकूं प्राप्त हुवा ताकैंहू अनुक्रमकरिके शुद्धता होयही है । गाथा—

अववादियलिंगकदो विसयासत्तिं अगूहमाणो य ।
णिंदणगरहणजुत्तो सुज्झदि उवधिं परिहरंतो ॥८९॥

अर्थ—अपवादलिंगनैं प्राप्त हुवा जे श्रावक अथवा श्राविका क्षुल्लक आर्यिका तेहू आपकी शक्तीकूं नहीं छिपावता निन्दा गर्हा करिके युक्त परिग्रहकूं त्यागता संता शुद्धताकूं प्राप्त होय हैं ।

इति लिंगाधिकारे अचेलत्वम् । आगे लिंग नामा अधिकारविषै लोचका वर्णन पांच गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

केसा संसज्जन्ति हु णिप्पडिकारस्स दुपरिहारा य ।
सयणादिसु ते जीवा दिट्ठा आगंतुया य तहा ॥९०॥

अर्थ—जो निःप्रतीकारक कहिये तैलादिसंस्कार रहित केश राखै ताकै यूका लिक्षाकी केशनिमैं उत्पत्ति होय है । बहुरि सम्मूर्छनजीवनिकी उत्पत्ति दुःखकरिकैंहू निवारी नहीं जाय है । बहुरि शयनादिकमें निद्राके वशीभूत हुवाके केशनि में प्राप्त हुये जे कीड़ा कीड़ी मच्छर मकडी बीछू कणसला तिनिकी बाधा नहीं टले है । तातैं केश राखना बडी हिंसाही है । तथा औरभी दोष दिखावे हैं । गाथा—

जूगाहिं य लिक्खाहिं य बाधिज्जंतस्स संकिलेसो य ।
संघट्टिज्जंति य ते कंडुयणे तेण सो लोचो ॥९१॥

अर्थ—जूवा लिक्षाकरिकै बाधानैं प्राप्त भया ताकै बडा संक्लेश ऊपजे है, सो संक्लेश अशुभपरिणाम तथा पापास्रवरूप है, याकरि आत्मविराधना होय है, बहुरि बाधा नहीं सही जाय तदि जो हस्तादिकरि खुजावै तो ते जीव संघट्टनैं प्राप्त होय, तातैं आगमकी आज्ञाप्रमाण उत्कृष्ट दोय महीनामें, मध्यम तीन महीनामैं, जघन्य च्यार महीनामै मस्तकके तथा डाढीमूंछनिके केश हस्तके अंगुलीनिकरि उपाडना यहही श्रेष्ठ है, जातै जो केश राखै तदि सो पूर्वोक्त दोष आवै, अर जो क्षौर करावै तो कोड़ी नांहि, तथा शूद्रादिककनैं बैठना स्पर्शना पराधीन होना यह बड़ा दोष है, तथा जो पाछिणा

कतरणी मकचूटा राखै तो निर्ग्रन्थलिंग जगतमैं निंद्य हो जाय, तथा शस्त्रधारी भयंकर नग्नरूप उसकी कौन प्रतीति करै ? तातै लोचही श्रेष्ठ है । गाथा—

लोचकदे मुंडत्तं मुंडत्ते होइ णिव्वियारत्तं ।
त्तो णिव्वियाकरणो य पग्गहिददरं परक्कमदि ॥९२॥

भगव. आरा.

अर्थ—लोच करनेतैं मुंडन होत है, मुंडनतैं निर्विकारपणा होय, जातैं अन्तरंगविकार तो लीलासहित गमन भृङ्गार कटाक्ष इत्यादिक तिनिका मुंडनतैं अभाव अर बहिरंग विकार शरीरविषै मलधारण खाजि दाद इत्यादिक होय है, यातैं अंतररंग बहिरंगविकार रहितपणातैं अतिशयरूप रत्नत्रयमें उद्यमरूप होत है । और भी लोचजनित गुण कहे हैं । गाथा—

अप्पा दमिदो लोएण होइ ण सुहे य संगमुवयादि ।
साधीणदा य णिद्दोसदा य देहे य णिम्ममदा ॥९३॥
आणक्खिदा य लोचेण अप्पणो होदि धम्मसद्धा य ।
उग्गो तवो य लोचो तहेव दुक्खस्स सहणं च ॥९४॥

अर्थ—लोच जो हस्तकरि केशनिका उपाडनेकरि आपको आत्मा वशीभूत होत है । तथा शरीरसम्बन्धी सुखमें आसक्ततारहित होत है । जातैं देहका सुखमें आसक्त होय ताकै लोच कैसे होय ? बहुरि लोचतैं स्वाधीनता होत है । जातैं जो क्षौर करावै तो नाईके वा अन्य करायदेवाहालाके आधीनता होत है । अर जो केश राखै तो केशनिमें आसक्तता तथा ऊंछना धोवना सुकावना इत्यादिकरि पराधीनता और संयमका नाश होत है । तातैं लोचतैंही स्वाधीनता अर संयमकी रक्षा होत है । बहुरि लोचतैं किंचिन्मात्रहू सयमका बिगडना नाहीं, याचनाहू नाहीं, पराधीनता नाहीं । तातैं निर्दोष है । बहुरि देहमें निर्ममता जो यह देह हमारा, मैं याका, वा देह सो मैं हूं, मै हूं सो देह है, याप्रकार ममताका अभाव जाकै होय ताकैही लोच होय है । बहुरि लोचकरिकै आपको धर्ममें श्रद्धा प्रतीति दिखाई जाय है, जो चारित्रधर्ममें श्रद्धा नहीं होय तो एता बड़ा केशनिके उपाटनेका दुःसह क्लेश कोन आरम्भे ? बहुरि लोच है सो कायक्लेशनामा उग्र तप है तथा

दुःख सहनाभी होय है, जातें समभावतें दुःखका सहना परमनिर्जरा है। इति लिंगाधिकारविषै लोचलिंगका गुण समाप्त कीया।

आगे लिंगका व्युत्सृष्टशरीरता कहिये देहसंस्काररहितता नामा तीसरा चिह्न तीन गाथानिकरि कहे है ।। गाथा—

सिण्हाणब्भंगुव्वट्टणाणि णहकेसमसु संठप्पं।
दंतोठ्ठकण्णमुहणासियच्छिभमुहाइं संठप्पं ।।६५।।
वज्जेदि बंभचारी गंधं मल्लं च धूववासं वा।
संवाहणपरिमद्दणपिणद्धणादीणि य विमुत्तो ।।६६।
जल्लविलित्तो देहो लुक्खो लोयकदवियडबीभत्थो।
जो रूढणक्खलोमो सा गुत्ती बंभचेरस्स ।।६७।।

अर्थ—जो जिनलिंग धारै ऐसा जो ब्रह्मचारी कहिये अपने आत्मस्वरूपमें चर्या करनेवाला दिगम्बर यति सो यावज्जीव स्नान अर अभ्यंग कहिये तैलमर्दन तथा उद्वर्त्तन कहिये उबटना तथा नखकेशनिका संस्कार तथा दंत ओष्ठ कर्ण मुख नासिका नेत्र भ्रकुटी आदिशब्दकरि हस्तचरणादि इनिका संस्कारका त्यागही करे है। जातें जलकरि देहका प्रक्षालन करना याका नाम स्नान है, सो स्नान शीतलजलकरिकें करिये तदि जलकायजीव तथा त्रसजीव तिनिका घात होय, तथा कर्दमका बालुकाका मर्दनतें वा जलका क्षोभतें वा जल ऊपरि सिवाल कमोदनीका घातकरि वा जलचर जे मत्स्यमंडूक जलौकाने आदि ले त्रसस्थावर जीवांकी विराधनातें महान् असंयम होय है। बहुरि जो उष्णजलकरि स्नान करिये तौ भूमीउपर गमन करते जे कीड़ी—कीड़ा मच्छर मकड़ी तिनिका तथा बिलविर्षे तिष्ठते जीव तिनिका तथा बाल-तृणादिकांका घाततें महान् असयम होय है। बहुरि सप्तधातुमय जो देह ताका स्नानतें शौचताहू नहीं होत है, जैसें मलका भरघा फूटा घडाने धोवता धोवता मलही स्रवे है, तैसें यह शरीरहू धोवता धोवताहू मुखमेतें लाल, कफ, नासिकातें नासिकामल, नेत्रनितें नेत्रमल, कर्णनितें कर्णमल वा सर्वशरीरविर्षे पसेव तथा मलमूत्र निरंतर स्रवे है, याकी स्नानकरि शौचता कैसी होय ? बहुरि आत्मा अमूर्तिक अत्यन्त पवित्र ता प्रति स्नान पहुंचेही नहीं, तातें स्नानतें अंतरंग बहिरंग

दोऊ प्रकार शौचताका अभावतैं तथा हिंसा राग प्रमाद शृंगार सुख कुशील ताका बधवातैं महान् अनर्थरूप जा'न जैनके दिगम्बर स्नानका यावज्जीव त्यागही करे है, तिनहीकैं ब्रह्मचर्य होय है। बहुरि वीतरागीनिकैं देहसूं ममता नहीं तथा कामादिवासनारहित तातैं तैलमर्दन सुगन्ध उबटना नख केशसंस्कार, मुखप्रक्षालन दंत ओष्ठ कर्ण नासिका नेत्र भ्रकुटी इत्यादिकनिका संस्कारसूं प्रयोजन नाहीं। जिनूंनें आत्माको उज्ज्वल करनेमै उद्यम कीया तिनिकै विनाशीक देहका संस्कारतैं पराङ्मुखता होयही होय। जो देहहीनैं आत्मा जाने है सो आत्मविशुद्धतारहित हुवा शरीरकी सेवाहीमे रात्रि दिन व्यतीत करे हैं, तिनिकै ब्रह्मचर्यहू नाहीं। बहुरि रागी पुरुषके योग्य सुगन्धविलेपन पुष्प धूपवासना जा चन्दन अगरु तथा मुखवास जो जायफल इलायची इत्यादि तथा चरणमर्दन सर्वशरीरमर्दन कुट्टन इत्यादिहू सर्वशरीरका संस्कार ब्रह्मचारी जो जैनका दिगम्बर ते त्यागे हैं, जातैं ये शरीरके संस्कार निर्ग्रंथलिंगकै योग्य नहीं, तातैं इनिका त्याग करिकै अर पसेवनिकरि व्याप्त तथा लूखो तथा लोच करनेकरि विकृत वीभत्स ग्लानिरूप दीखतां तथा दीर्घ-छोटा बड़ा अध टूट्या नखरोमसहित जो देह धारना सो ब्रह्मचर्यकी रक्षा है।

इति लिंगाधिकारविषै व्युत्सृष्टशरीरत्याग नामा गुण समाप्त कीया। आगैं लिंगमे प्रतिलेखन कहिये पिच्छिका राखना यह चौथा चिह्न तीन गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

इरियादाणणिखेवे विवेगठाणे णिसीयणे सयणे।
उव्वत्तणपरिवत्तण पसारणाउं टणामरसे ॥९८॥
पडिलेहणेण पडिलेहिज्जइ चिण्हं च होइ सगपक्खे।
विस्सासियं च लिंगं संजय पडिरूवदा चेव ॥९९॥
रयसेयाणमगहणं मद्दव सुकुमालदा लघुत्तं च।
जत्थेदे पंच गुणा तं पडिलिहणं पसंसंति ॥१००॥

अर्थ—गमन आगमनविषै तथा ज्ञानोपकरण पुस्तक संयमोपकरण पिच्छिका तथा शौचोपकरण कमंडलु इनिका ग्रहण कहिये उठावना निक्षेपण कहिये मेलना तथा मलमूत्रादिका क्षेपना तथा स्नान आसन शयन इनिविषै पहली नेत्रनिसूं अवलोकन करि मयूरपिच्छिकासूं प्रतिलेखन करना पीछै प्रवर्त्तन करना, बहुरि अपने शरीरका उद्वर्तन कहिये सूधा शयन

भगव
आरा

परिवर्तन कहिये पसवाडेकरि शयन बहुरि प्रसारण बहुरि संकोचन बहुरि स्पर्शन इत्यादि क्रियानिविषै मयूरपिच्छिका जमी ऊपरि तथा शरीर ऊपरि तथा उपकरण ऊपरि फेरिकरि कार्य करना यह यत्नाचारकी परम हद्द है ताते साधुका चालना हालना बैठना ऊठना सोवना संकोचना पसारना पलटना मेलना उठावना सर्व क्रिया पिच्छिकातै सोधेविना नहीं होय है। बहुरि आपका पक्ष जो दयाधर्म ताका पालनेका चिह्न यह मयूरपिच्छिका है। बहुरि मयूरपिच्छिकासहितपना लोकनिकै प्रतीतिका उपजावनेवाला चिह्न है, जातै यह साधु कुंथवादिजीवांकी रक्षाके अर्थि पिच्छिका राखै हैं सो हम सारिखे बड़े जीवनिकूं कैसे बाधा करै ? बहुरि यह पींछीसहितपना संयमका प्रतिबिंब है, जो साक्षात् संयमका रूपकूं दिखावे है। बहुरि मयूरपिच्छिकामें पांच गुण है सो कहे हैं। एक तो सचित्त अचित्त रज लागै नहीं, दूजा गुण पसेव लागै नहीं—जो पसेव लगै तौ सूकिकरि करड़ी हो जाय, तदि जीवनै बाधा करै, सो मयूरपिच्छिकाकै पसेव लगै ही नहीं। तीजा गुण मार्दव कहिये कोमलता—जो जीवनिका नेत्रनिमें फिरे तोहू किंचिन्मात्रभी पीड़ाकारी नाहीं। चौथा गुण सुकुमालता—जाका स्पर्श अति सुहावना लागै। पांचमा गुण लघुपणा कहिये अत्यन्त हलकापणा—जो पीछीके नीचे जीव दबै नाहीं, भिचै नहीं, बोझ नहीं। यह पांच गुण जामैं होय सो प्रतिलेखन, ताकूं दयावत भगवान् प्रशंसा करे है।

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारनिविषै लिंगनामा दूजा अधिकार बावीस गाथानिकरि समाप्त कीया। आगै शिक्षा नामा अधिकार त्रयोदश गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

णिउणं विउलं सुद्धं णिकाचिदमणुत्तरं च सव्वहिदं।
जिणवयणं कलुसहरं अहो य रत्ती य पढिदव्वं ॥१॥

अर्थ—भो आत्मन्! यह जिनेन्द्र भगवानका वचन दिन रात्रि निरंतर पढ़ना योग्य है। कैसा है जिनवचन ? प्रमाण नयके अनुकूल जीवादिक पदार्थ तिनिनै निरूपण करे है, तातै निपुण है। बहुरि प्रमाण नय निक्षेप निरुक्ति अनुयोग इत्यादिविकल्पनिकरि जीवादिपदार्थनिका विस्तारसहित निरूपण करै तातै विपुल है। बहुरि पूर्वापरविरोधादिकदोषनिकरि रहिततातै शुद्ध है। बहुरि जो अर्थ प्रकाशै सो कोई प्रकार चलायमान नहीं होय अत्यन्तदृढपणातै निकाचित है। बहुरि जिनवचनतै और उत्कृष्ट त्रैलोक्यमें कोऊ नांहीं, तातै अनुत्तर है। बहुरि सर्वप्राणीनिका हितरूप कोऊका विराधक नाहीं, तातै सर्वहित है। बहुरि द्रव्यमल जो ज्ञानावरणादिक अर भावमल जे रागादिक क्रोधादिक तिनिका नाश करनेतै कलुष-

हर है । ऐसा जिनेन्द्रका वचनही निरंतर पठन पाठन करना उचित है । भावार्थ—जिनवचनविना कोऊ शरण नहीं, यातें सर्वप्रकार हितरूप जानि मनुष्यजन्म जिनागमकी आराधना करिकेंही सफल करो । आगें जिनागमतें जे गुण प्रकट होय, तिनिनें संक्षेपकरि कहे हैं । गाथा—

आदहिदपइण्णा भावसंवरो णवणवो य सवेगो ।
णिक्कंपदा तवो भावणा य परदेसिगत्तं च ॥२॥

अर्थ—आत्महितका परिज्ञान जिनागमतें होत है । जातें अज्ञानी जन इन्द्रियजनित सुखहीको हित जानत है । कैसा है इन्द्रियजनितसुख ? वेदनाका इलाज है, क्षुधाकी वेदना होयगी ताकूं भोजनकी प्रति चाह उपजेगी, सोही भोजन करनेकूं सुख मानेगा । अर तृषावेदना पीडा करेगी ताकै जलकी चाह उपजेगी, सोही जल पीवनेमें सुख मानेगा । अर जाकै शीतवेदनाकी पीडा होयगी, सोही रूईके वस्त्रादिक चाहेगा, सोही बहोत वोढनेतें सुख मानेगा । अर जाकै गर्मी उपजेगी सोही शीतल पवनादि उपचार चाहेगा । अर जाकै कामादि वेदना उपजेगी, सोही दुर्गंध अङ्गजनित जगतनिंद्य मैथुन चाहेगा । जाकै वेदना पीडाही नाहीं सो खावना, पीवना, वोढना, पवन लेना, काम सेवना यह प्रकट संक्लेशरूप कार्य नहीं वांछा करेगा । तातें अज्ञानी जीव यह इन्द्रियजनित सुखदुःखका इलाज मात्र ताहि हित मानि सेवे हैं । अर सम्यग्ज्ञानी जन या विषयानैं " तृष्णाका बधावनेवाला, आकुलताका उपजावनेवाला, पराधीनता लिये, अल्पकाल थिरताके वहनेवाला तथा भयका वहनेवाला, दुर्गतीको ले जानेवाला" जानि परिहारही करे है । अर जो चारित्रमोहका उदयतें वा शरीरकी शिथिलतातें वा देशकाल त्यागनेयोग्य नहीं मिलनेतें जो इन्द्रियविषय भोगे है, सो जगतनें भोगता दीखो, परन्तु अन्तरङ्ग अत्यन्त उदासीन वरते है, जैसें कोऊ रोगी कडवी औषधी पीवना वा सेकका करना वा गूमड़ा घावनें चिरावना, कटावना अत्यन्त बुरा जाने है, तथापि वेदना रोगकी नहीं सही जाय, तातें आदरसूं कडवी औषधी पीवे है, सेक करावे है, दुर्गंध तैलादि लगावे है, परन्तु अन्तरंगमें या जाने है "जो वह धन्य दिन कब आवैगा ? जा दिन मैं औषधी नहीं अङ्गीकार करूंगा" । तैसें सम्यग्ज्ञानी भोगताहू विरक्त जानना । जातें जिनागमतेंही आत्महितका ज्ञान होय है । बहुरि जिनागमका अभ्यासतें मिथ्यात्व अविरत कषाय योग के अभावतें भाव संवर होय है । बहुरि जिनागम का अभ्याससतें धर्मके विषैं वा धर्मका फलविषैं तीव्र अनुराग निरंतर बधनेतें नवीन नवीन संवेग होय है । बहुरि जिनागम के अभ्यासतें रत्नत्रयधर्ममें

अत्यन्त निष्कंपता होय है, जातें जिनागमतें दर्शनज्ञानचारित्र अचल निजरूप जानेगा, सोही धर्ममें निष्कंपतानें धारण करेगा । बहुरि जिनागमतें स्वपरका भेद जानेगा, सोही कषायमल आत्मातें दूरि करनेकूं तपश्चरण करेगा, तातें जिनागमतेंही तपोभावना होत है । बहुरि जिनेंद्रका स्याद्वादरूप आगम आछीतरह जान्या होय ताहीके प्रमाणनयनिकरि यथावत् च्यारि अनुयोगनिका उपदेशदायकपणा बणै है, तातें जिनागमतेंही परोपदेशिकता होय है । ऐसे जिनागमके सेवनेके गुण कहे । आगै आत्महित जाननेतें कहा होय ? सो कहे हैं । गाथा—

णाणेण सव्वभावा जीवाजीवासवादिया तहिया ।
णज्जदि इहपरलोए अहिदं च तहा हियं चेव ॥३॥

अर्थ—आत्मज्ञानकरिकेंही जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्षरूप सर्व पदार्थ तथ्य कहिये सत्य जाणिये है, तथा इसलोकपरलोकसंबंधी हित अहित जानिये है । आगें आत्महित नहीं जानै ताके दोष दिखावे हैं । गाथा—

आदहिदमयाणंतो मुज्झदि मूढो समादियदि कम्मं ।
कम्मणिमित्तं जीवो परीदि भवसायरमणंतं ॥४॥

अर्थ—आत्महितकूं नहीं जानता जो मूढ सो मोहनें प्राप्त होय है, मोहतें कर्मबंध होत है, कर्मबंधतें जीव अनन्तसंसारसमुद्रमें परिभ्रमण करत है । आगें आत्महितका जाननेवालेके गुण कहे हैं । गाथा—

जाणंतस्सादहिदं अहिदणियत्ती हिदपवत्ती य ।
होदि य तो से तम्हा आदहिदं आगमेदव्वं ॥५॥

अर्थ—जातें आत्महित जाननेवालेकी हितमें प्रवृत्ति अहिततें निवृत्ति होत है, तातें आत्महित सीखनेयोग्य है । आगें जिनागमतें अशुभभावनिका संवर जो रोकना, ताहि दिखावे है । गाथा—

सज्झायं कुव्वंतो पंचेंदियसंवुडो तिगुत्तो य ।
हवदि य एयग्गमणो विणयेण समाहिदो भिक्खू ॥६॥

अर्थ—स्वाध्याय करता जो साधु सो पांचूं इन्द्रियांका संवररूप होय है । आप स्पर्श रस गंध रूप शब्द इन पंच

प्रकारके विषयनितें रुके है, तथा मन वचन कायकी तीनू गुप्तिरूप होय है, तथा मनकी एकाग्रतारूप होय हैं, तथा विनय-करि सहित होय है, तातें स्वाध्यायहीतें इन्द्रियद्वारें मनवचनकायद्वारें कषायद्वारें आवता कर्मरुके है, यातें बडा संवर होय है । आगें स्वाध्यातें नवीन नवीन संवेगकी उत्पत्तिका अनुक्रम कहे हैं । गाथा—

जह जह सुदमोग्गाहदि अदिसयरसपसरमसुदपुव्व तु ।
तह तह पल्हादिज्जदि णवणवसंवेगसड्ढाए ॥७॥

अर्थ–जैसे जैसे श्रुतका अवगाहन करे है, अभ्यास करे है, अर्थचितवन करे है, तैसे तैसे नवीन नवीन धर्मानुरागरूप संवेगकी श्रद्धाकरि आनन्दकूं प्राप्त होय है । कैसा है श्रुत? पूर्वे अनन्तानन्त काल तें नहीं श्रवण कीया । अर जो कदाचित् कोई पर्यायमें श्रवण कीयाभो तोहू यथार्थ अर्थका श्रद्धान अनुभवन आस्वादन ताका अभावतें नहीं श्रवण कीयातुल्यही भया । बहुरि कैसा है श्रुत ? अतिशयरूप रसका है फैलाव जामैं, जातें ज्ञान आत्माका निजरूप है–जामै सकल पदार्थ प्रतिबिंबित होय हैं । सो जैसे जैसे अनुभव करें, तैसेतैसे अज्ञानभावका नाशपूर्वक अपूर्व आनन्द उझले है । ऐसा श्रुतका जैसे जैसे अभ्यास करे है तैसे तैसे नवीन नवीन धर्मानुराग तथा संसारभोगतें भयभीतता बधै है । यातें नवीन नवीन संवेगका कारणहू यह जिनेन्द्रका परमागमका सेवनही है । और जिनेन्द्रका आगमका अभ्यासतें वा श्रद्धा पूर्वक अनुभवनतें निष्कंपता जो दृढता धर्ममें अचलताहू होय है सो कहे हैं । गाथा—

आयापायविदण्हू दंसणणाणतवसंजमे ठिच्चा ।
विहरदि विसुज्झमाणो जावज्जीवं च णिक्कंपो ॥८॥

अर्थ—आगमका जाननेवालाही परमागमका अभ्यासतें रत्नत्रयकी वृद्धि तथा हानिकूं जाने है, अर रत्नत्रयकी हानिवृद्धिकूं जानेगा सोही हानिके कारणनिकूं त्यागता अर वृद्धिके कारणनिकूं अङ्गीकार करि, विशुद्धतानें प्राप्त होता संता दर्शनमें ज्ञानमें तपमें संयममें तिष्ठिकरि यावज्जीव निश्चल प्रवर्ते है । भावार्थ—सम्यग्दर्शनकी वृद्धि तो निःशंकित आदि गुणनिकरि होय है अर दर्शनकी हानि शंका कांक्षादि दोषनिकरि होय है । बहुरि अर्थव्यंजन उभय शुद्धताकरि तथा स्वाध्यायमें निश्चल उपयोग लगावनेकरि ज्ञानकी वृद्धि होय । बहुरि अविनयादिकरि तथा स्वाध्यायमें उद्यम उपयोग छोड़नेकरि अपूर्व अर्थका नहीं ग्रहण करनेकरि ज्ञानकी हानि होय है । बहुरि वीर्यका नहीं छिपावनेंकरि तथा इन्द्रियनिके

विषयनिकूं जीतनेकरि तपकी वृद्धि होय है। बहुरि शरीरके सुखमें मग्नताकरि तपकी हानि होय हैं। बहुरि चारित्रकी पचीस भावनाकरि यत्नाचाररूप प्रवृत्तिकरि संयमकी वृद्धि होय है। अर अयत्नाचारीकै संयमकी हानि होय है। तातैं भगवानका आगमविना गुणनिकूं वा दोषनिकूं ही नहीं जानै, तदि गुणग्रहण कैसे करै ? अर दोषत्याग कैसे करै ? अर शिक्षामें आदर कैसे करै ? अर सत्यार्थ आप्त आगम गुरु वा असत्यार्थ आप्त आगम गुरु इनिका भेदही नहीं जानै, तदि दर्शनज्ञानचारित्रतपमें निष्कंप कैसे होय ? तातैं जिनेन्द्रका आगमका सेवनहोतैं चार आराधनामै दृढ़ता उपजै है। आगै सर्व तपनिविषै स्वाध्यायतपकी प्रधानता दिखावे हैं। गाथा—

बारसविहम्मि य तवे सब्भंतरवाहिरे कुसलदिट्ठे ।
ण वि अत्थि ण वि य होहिदि सज्झायसमं तवो कम्मं ॥९॥

अर्थ—प्रवीण पुरुष जे श्रीगणधरदेव तिनिकरि अवलोकन कीया जो बाह्य आभ्यंतर द्वादश प्रकार तप, ताके विषै स्वाध्यायसमान तप कदे नहीं हुवा, नहीं होसी, नहीं होय है। भावार्थ—यद्यपि अनशनादिभी तप, अर स्वाध्यायभी तप, तथापि स्वाध्यायका बलविना सर्व तप निर्जराका कारण नाहीं, ज्ञानसहितही तप प्रशंसायोग्य है। बहुरि आत्माकी उज्वलता परमवीतरागता स्वाध्यायका बलहोतैं होय तथा आत्माका अर मोहरागादि कर्मनिका दोऊनिका उलझना ज्ञान हीमें अनुभवगोचर होय है। अर ज्ञानमें दीखै तदिही सुलझावनमें प्रवर्ते—जो ये तो रागादिक कर्मजनित भाव हैं, अर यो मै ज्ञानदर्शनमय शुद्ध आत्मा हूं सो ये रागादिक ऐसें दूर होयगा, या प्रकार समझिकरि अनशनादि तप करै ताहीकै कर्म निर्जरा होय है। यातैं ज्ञानसहित तपमें उद्यम करना सफल होय है, तातैं स्वाध्यायसमान तप तीन कालमें हुया नहीं, होयगा नहीं, होता है नहीं। गाथा—

जं अण्णाणी कम्म खवेदि भवसयसहस्सकोडीहिं ।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि अंतोमुहुत्तेण ॥१०॥

अर्थ—सम्यग्ज्ञानरहित जो अज्ञानी सो जा कर्मकूं लक्षभव कोटीभव पर्यंत तपश्चरणकरि क्षिपावै, ता कर्मकूं सम्यग्ज्ञानी तीन गुप्तिरूप हूवो अंतर्मुहूर्तमें क्षिपावे है— नाश करे है। गाथा—

छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं अण्णाणियस्स जा सोही ।
तत्तो बहुगुणदरिया होज्ज हु जिमिदस्स णाणिस्स ॥११॥

अर्थ—अज्ञानीकै बेला तेला तथा च्यार उपवास तथा पांच उपवास इत्यादि तपकरि जो शुद्धिता होय है, तातैं बहुतगुणी शुद्धिता भोजन करताभी सम्यग्ज्ञानी ताकै होय है। भावार्थ—मिथ्याज्ञानी जो तप करे है, सो इस लोकके परलोकके भोगविषय चाहता करे है वा यश कीर्तन वा लोभ वा मिष्टभोजन वा प्रसिद्धता वास्ते करे है, तातैं वांछासहित जीवकै नवीन नवीन कर्मका बंधही होय, अर सम्यग्दृष्टि भोजन करता भी वांछाके अभावतैं मंदरागद्वेषतैं निर्जराही करे, रागद्वेषके अभावतैं नवीन कर्मबंध नहीं होय, यह शुद्धता है अर कर्मबंध करै यह अशुद्धता है। आगै स्वाध्यायतैं गुप्ति होना कहे हैं। गाथा—

सज्झायभावणाए य भाविदा होंति सव्वगुत्तिओ।
गुत्तोहिं भाविवाहिं य मरणे आराधओ होदि ॥१२॥

अर्थ—स्वाध्यायभावनाकरिकै, कर्मके आगमनके कारण जे मन वचन कायके व्यापार तिनिका अभावतैं तीन प्रकारकी गुप्ति होय है। गुप्ति होनेतैं मरणविषै आराधना निर्विघ्न होय है, तातैं स्वाध्यायही आराधनाका प्रधानकारण है। इहां विशेष ऐसा है, जो स्वाध्यायभावनामै रत होय सोही परजीवनिकूं उपदेश देनेवाला होय, अन्य कोऊ परके उपकारमें समर्थ नहीं। आगै परकूं उपदेशदाता होनेमें कौन गुण प्रकट होय सो कहै हैं। गाथा—

आदपरसमुद्धारो आणा वच्छल्लदीवणा भत्ती।
होदि परदेसगत्ते अव्वोच्छित्ती य तित्थस्स ॥१३॥

अर्थ—पर जे भव्यजन, तिनिकूं सत्यार्थधर्मका उपदेश देनेतैं आपका तथा अन्य श्रोताजनांका संसारतैं भयभीतता होय, परमधर्ममें प्रवर्तनतैं संसारपरिभ्रमणका अभाव होय है। तातैं आपका परका उद्धार जिनवचनका उपदेशतैंही होय है। बहुरि जिनेन्द्रका आगमका उपदेश आपका आत्माकूं तथा अन्य जीवांकूं करनेतैं भगवान् सर्वज्ञकी आज्ञाका पालना होय है। बहुरि जिनेन्द्रका धर्ममें अति प्रीति जाकै होय सोही निर्वांछक अभिमानरहित हुवा धर्मोपदेश करे है, तातैं वात्सल्यगुणहू प्रकट होय है बहुरि जाकै जिनेन्द्रका धर्मका उपदेश देयकरि धर्मका प्रभाव प्रकट करनेमें उत्साह होय वा आत्मगुण बधावनेकी वांछा होय, ताकै प्रभावना नामा गुण होयही है। बहुरि जाकै स्याद्वादरूप परमागममें अति प्रीति होय, ताकै धर्मका उपदेशकपणा होय, तातैं भक्तिगुणहू प्रकट होय है। बहुरि परमागमका सत्यार्थ उपदेशकरि धर्मतीर्थकी अव्युच्छित्ति होय

है, परिपाटी नहीं टूटे है, सर्वजन धर्मका स्वरूप जानता रहे है वा बहोत कालपर्यंत धर्मका संतान वर्ते है। तातें आपका अर परका उद्धार, अर भगवानकी आज्ञाका पालना तथा वात्सल्य तथा प्रभावना तथा भक्ति तथा धर्मतीर्थकी अव्युच्छित्ति, धर्मोपदेशके वातापणातें जानि आगमकी आज्ञाप्रमाण धर्मोपदेशमें प्रवर्तन करना, यहही परमकल्याण है।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारनिविषें शिक्षा नामा तीजा अधिकारका व्याख्यान त्रयोदश गाथासूत्रनिकरि समाप्त कीया। आगें विनय नामा चौथा अधिकार तेईस गाथानिकरि कहे हैं। जातें लिंगग्रहणके अनंतर ज्ञानकी सम्पत्ति करिवो योग्य है। अर ज्ञानसंपदाविषें प्रवर्तता पुरुषकूं विनय आचरण करना योग्य है। सो विनय पंच प्रकार है, ताहि कहे हैं। गाथा—

विणओ पुणओ पंचविहो णिद्दिट्ठो णाणदंसणचरित्ते।
तवविणवो य चउत्थो चरिमो उवयारिओ विणओ ॥१४॥

अर्थ—बहुरि विनय पंच प्रकार कह्या है। एक ज्ञानविनय। दूजा दर्शनविनय। तीसरा चारित्रविनय। चौथा तपविनय। पांचमा उपारविनय। आगें ज्ञानाविनयके भेद कहे है। गाथा—

काले विणये उवधाणे बहुमाणे तहे व णिण्हवणे।
वंजण अत्थ तदुभये विणओ णाणम्मि अट्ठविहो ॥१५॥

अर्थ—संध्याकालतथा सूर्यचन्द्रादिकका ग्रहणकाल, उल्कापातादिका कालको त्याग करिकै जो सूत्रका अध्ययन करना, सो काल नाम ज्ञानका विनय है। बहुरि जो श्रुतका वा श्रुतके धारकका स्तवन करना, गुणांमै अनुराग करना यह विनय नामा ज्ञानविनय है। बहुरि जितने काल यह सूत्रसिद्धांतशास्त्रश्रवणमे वा पठनमें समाप्त नहीं होय, तितनै या वस्तु मैं नहीं भक्षण करूं वा उपवासादि करूं—या प्रकार संकल्प करना प्रतिज्ञा करना सो उपधाननामा ज्ञानविनय है। बहुरि अन्तरंग बहिरंग उज्ज्वल होयकरि हस्तकी अंगुली जोडिकरि तथा विक्षेपरहितचित्त होयकरि आदरसहित अध्ययन करना यह बहुमान नामा ज्ञानविनय है। बहुरि कोऊके निकटि श्रुतका अध्ययन करिकै अन्यगुरुका नाम न लेना, आपका गुरुका नाम नहीं छिपावना सो अनिह्नव नामा ज्ञानका विनय है। बहुरि शब्दकी शुद्धता करि पढ़ना यह व्यंजन नामा ज्ञानका

विनय है। बहुरि गुरुपरिपाटीतें निर्णयरूप सत्यार्थ अर्थ कहना यह अर्थनामा ज्ञानका विनय है। बहुरि शब्द शुद्ध पढना अर्थ शुद्ध कहना सो उभयशुद्धि नामा ज्ञानका विनय है। ऐसें ज्ञानके विषै विनय अष्टप्रकार होत है। आगें दर्शनका विनय कहे है। गाथा--

उवगूहणमादिया पुव्वुत्ता तह भत्तियादिया य गुणा।
संकादिवज्जणं पि य णेओ सम्मत्तविणओ सो ॥१६॥

अर्थ--जो परका दोष ढांकना तथा अपनी प्रशंसा नहीं करनी यह उपगूहन गुण है। बहुरि आत्माकूं वा परकूं धर्मविषै निश्चल करना यह स्थितीकरण गुण है। बहुरि धर्मात्मामें वा रत्नत्रयधर्ममें प्रीति करना यह वात्सल्यगुण है। बहुरि पूर्वे कहे जे अरहंतादिकांमें भक्ति तथा पूजा तथा अरहंतादिकनिका उज्ज्वल गुणनिका यशका प्रकाशन यह वर्ण-जनन गुण है। तथा अवर्णवाद जो दुष्टकरि लगाया दोष ताका विनाश करना तथा विराधनाका त्याग इत्यादि पूर्वकथित भक्त्यादिगुणकरि जो प्रभावना करना तथा आप्त आगम पदार्थविषै शंकाका वर्जना तथा इहलोकपरलोकसंबन्धी विषयमें कांक्षा जो वांछा ताका परित्याग करना तथा रोगी दुःखी दरिद्री वृद्ध मलिन चेतन अचेतन पदार्थमें ग्लानिका त्याग करना तथा मिथ्याधर्मीकी प्रशंसा नहीं करना या प्रकार अष्ट अंगनिकूं दृढ अङ्गीकार करना यह दर्शनका विनय है। आगें च्यारि गाथानिकरि चारित्रविनयकूं कहे है। गाथा--

इंदियकसायपणिधाण पि य गुत्तीओ चेव समिदीओ।
एसो चरित्तविणओ समासदो होइ णायव्वो ॥१७॥
पणिधाणं पि य दुविहं इंदिय णोइंदियं च बोधव्वं।
सद्दादि इंदियं पुण कोधाईयं भवे इदरं ॥१८॥
सद्दरसरूवगंधे फासे य मणोहरे य इदरे य।
जं रागदोसगमणं पंचविहं होदि पणिधाणं ॥१९॥

णोइंदियपणिधाणं कोधो माणो तहेव माया य ।
लोभो य णोकसाया मणपणिधाणं तु तं वज्जे ।।२०।।

अर्थ—इन्द्रिय और कषाय इनिविषै जो अप्रणिधान कहिये नहीं परिणतिनै प्राप्त होना तथा मनवचनकायकी प्रवृत्ति रोकनेरूप गुप्ति धारण करना तथा सम्यक् यत्नाचारतैं प्रवृत्तिरूप समिति पालना, यह चारित्रका विनय संक्षेपथकी जानना । बहुरि प्रणिधान जो संसारी जीवकी प्रवृत्ति सो दोय प्रकार है, एक इन्द्रियद्वारैं इन्द्रियरूप है, एक मनद्वारैं नोइन्द्रियरूप है । तहां इन्द्रियद्वारैं प्रवृत्ति तौ इन्द्रियनिके विषय जे शब्दादि तिनिविषै होय है, मनद्वारैं प्रवृत्ति क्रोधादिरूप होय है । बहुरि जो मनोहर अमनोहर ऐसे शब्द रस गंध रूप स्पर्श जे इन्द्रियनिके विषय तिनिविषै मनोहरमें राग करना अमनोहरमें द्वेष करना ये इन्द्रियप्रणिधान पंच प्रकार है । बहुरि क्रोध मान माया लोभ हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद इनि कषायनोकषायरूप मनका करना यह नोइन्द्रियप्रणिधान है । या प्रकार जे इन्द्रियनोइन्द्रियप्रणिधान इनका वर्जन करना—जीतना यह चारित्रविनय है । भावार्थ—विषयांसूं इन्द्रियनिका रोकना कषायनितैं मनका रोकना यह चारित्रका विनय परम कल्याणरूप है । आगैं तपोविनयका निरूपण दोय गाथानिकरि कहे है । गाथा—

उत्तरगुणउज्जमणे सम्मं अधिआसणं च सद्धाय ।
आवासयाणमुचिदाण अपरिहाणी अणुस्सेओ ।।२१।।
भत्ती तवोधिगंमि य तवम्मि य अहीलणा य सेसाणं ।
एसो तवम्मि विणओ जहुत्तचारिस्स साहुस्स ।।२२।।

अर्थ—उत्तरगुणनिविषै उद्यम तथा क्षुधादि परीषहका सम्यक् समभावनिकरि सहना बहुरी तपश्चरणमें श्रद्धान करना । बहुरि उचित जे षट् आवश्यक तिनिमैं हीनता नहीं करना तथा उद्धतताका अभाव करना बहुरी तपविषै तथा तपकरि अधिक जे साधु तिनिविषै भक्ति करना, बहुरि तपकरि न्यून होय वा तपश्चरणरहित होय तिनिका तिरस्कार अवज्ञा अपमान नहीं करना सो तपका विनय है, सो यथोक्त आचारांगकी आज्ञाका प्रमाण आचरण करता साधुकै होय है । आगैं उपचारविनय नव गाथानिकरि कहे हैं । तथा—

काइयवाइयमाणसिओत्ति तिविधो हु पंचमो विणओ।
सो पुण सव्वो दुविहो पच्चक्खो चेव पारोक्खो ॥२३॥

अर्थ—पंचमविनय जो उपचारविनय सो कायिक कहिये कायसम्बन्धी, वाचिक कहिये वचनसम्बन्धी, मानसिक कहिये मनसम्बन्धी ऐसा तीन प्रकार है। बहुरि सो तीन प्रकार विनय प्रत्यक्षपरोक्षकरि दोय दोय प्रकार है। आगें प्रत्यक्ष कायिकविनय च्यारि गाथानिकरि कहे हैं।

अब्भुट्ठाणं किदियम्मं णवणं अंजली य मुंडाणं।
पच्चुग्गच्छणमेते पच्छिदस्स अणुसाधणं चेव ॥२४॥
णीचं ठाणं णीचं गमणं णीचं च आसणं सयणं।
आसणदाणं उवकरणदाणमोगासदाण च ॥२५॥
पडिरूवकायसंफासणदा पडिरूवकालकिरिया य।
पेसणकरणं संथारकरणमुवकरणपडिलिहणं ॥२६॥
इच्चेवमादिविणओ जो उवयारो कीरदे सरीरेण।
एसो काइयविणओ जहारिहो साहुवग्गम्मि ॥२७॥

अर्थ—महान् मुनि जो संघमें आवे तदि तो ऊठि खडा होना, तथा सम्मुख गमन करना, पीछें कृतिकर्म जे भक्ति-वंदनाके पाठ ते पढना, पीछे नमस्कार करना, बहुरि अंजुलि मस्तक चढावना, बहुरि उनका प्रयाण जो गमन होता पाछे गमन करना, बहुरि गुरुजननिकूं खड़ा रहता संता अभिमानरहित खडा होना, गुरुजनतें नीचा आसन करना, जैसें आपके हस्त पाद श्वासादिकनिकरि गुरुनिकैं उपद्रव नहीं होय तैसें बैठना, तथा अग्रभागमे सम्मुख आसनकूं वर्जिकरि वामे पसोडे उद्धततारहित किंचित् मस्तक नमायकरि बैठना, तथा गुरुनिको आसन जो काष्ठपाषाणमय सिंहासन फालक शिलातलपरि बैठता संता आप भूमिविषे बैठना, बहुरि गमन करते गुरुनिके पीछे चालना वा वामभागमे उद्धततारहित गमन करना, बहुरि जैसें गुरुनिका नाभिप्रमाण पृथ्वीमें आपका मस्तक होय तैसें शयन करना, तथा जैसें अपने हस्तपादादिकनिकरि गुरुनिकैं उपद्रव नहीं होय तैसें शयन करना, तथा आपका अधोअंगकाभी स्पर्श नहीं होय तैसें शयन करना, बहुरि गुरुनि-

का बैठनेका अभिप्राय होता संता साधुजनके योग्य प्रासुक भूमिका भाग वा शिलाकाष्ठमय आसनादिक नेत्रनिसूं अवलोकन करि पश्चात् कोमल मयूरपिच्छिकातें प्रमार्जन करि समर्पण करना, यह आसनदान है। बहुरि ज्ञानका वा संयमका उपकार करनेवाले जे पुस्तक पीछी उपकरण तिनिका ग्रहण करनेकी इच्छा जानिकरि विनयपूर्वक शोधि दोऊ हस्तनितें सोंपना यह उपकरणदान है, अथवा उद्गम उत्पादन इत्यादिदोषरहित श्रापक प्राप्त हूवा जो प्रतिलेखन कहिये पिच्छिका वा पुस्तक तिनिका विनयकरि भेट करना, यह उपकरणदान है। बहुरि शीतपीडित होय ताकूं पवनशीतादिरहित स्थान देना, तथा उष्णताकरि पीडित होय तिनिकूं शीतल स्थान देना,तथा साधुके योग्य–दोषरहित प्रासुक वसतिका देना, यह स्थानदान है। बहुरि गुरुजननिका शरीरके अनुकूल जैसें शरीरकी वेदना पीडा मिटि जाय तैसें स्पर्शन करना, तथा किंचित् निकट होयकरिकै पीछिकातें तीनवार कायकूं शोधन करिकै आगंतुक जीवनिकी बाधाका परिहार करना, तथा गुरुनिका शरीरके बलके अनुकूल मर्दन करना, जैसें उष्णवेदनासहितकै शीतलता प्रकट होय, शीतवेदनासहितकै उष्णता प्रकट होय तैसें अवस्थाके अनुकूल, बलतें अनुकूल, ऋतुके अनुकूल सेवन करना। बहुरि गुरुजनकी आज्ञाप्रमाण तृण काष्ठ फलकशिलामय शुद्धभूम्यादिविषै गुरुनिका शयन आसनवास्ते संस्तर करना, तथा उपकरण शोधना, सूर्य अस्त होनेके पहिली तथा प्रातःकाल सूर्यका उदय होता गुरुनिका ज्ञानसंयमका उपकरण शोधना। इत्यादि जो शरीरकरिकै यथायोग्य साधुसमूहनिके विषै उपचार करना, सो कायसम्बन्धी उपचारविनय जानना। आगैं दोय गाथानिकरि वचनसम्बन्धी उपचारविनय कहे हैं। गाथा—

पूयावयणं हिदभासणं च मिदभासणं महुरं च।
सुत्ताणुवीचिवयणं अणिठ्ठुरमकक्कसं वयणं ॥२८॥
उवसंतवयणमगहित्थवयणमकिरियमहीलणं वयणं।
एसो वाइयविणओ जहारिहो होदि कादव्वो ॥२९॥

अर्थ—बहुरि जो गुरुनितें वचनालाप करना सो या प्रकार करना–हे भट्टारक! आप जो आज्ञा करी सो आनन्दपूर्वक ग्रहण करूं हूं वा हे भगवन्! आपका चरणारविंदकी आज्ञाकरिकै यह कार्य करनेकी इच्छा करत हूं, तथा हे स्वामिन्! आपका वचन प्रमाण है, इत्यादि पूजावचन बोलना। तथा गुरुजननिका दोऊ लोकसम्बन्धी हितरूप विनती करना सो

हितभाषरण है । बहुरि जितना वचनकरि प्रयोजनरूप अर्थ ग्रहरण हो जाय, तितना प्रामारिणक अक्षर गुरुजननिके निकट बोलना, निरर्थक प्रलाप नहीं करना, यह मितभाषरण है । बहुरि कर्णादिकू प्रिय बोलना वा उदयकालमें जाका फल मीठा होय ऐसा मधुरवचन है । बहुरि सूत्रके अनुकूल बोलना, जिनसूत्रतें विरुद्धवचन नहीं बोलना, यह अनुवीचिवचन है । बहुरि परचित्तकू पीडा नहीं उपजावै ऐसा वचन अनिष्ठुर है । बहुरि परजीवांका मर्मच्छेद करनेवाला नहीं होय सो अकर्कश वचन है । बहुरि जा वचनके सुननेतें परिरणामको परहित हो जाय, रागरहित हो जाय, सो उपशांतवचन है । बहुरि मिथ्यादृष्टीनिकै बोलनेयोग्य वा असंयमीके बोलनेयोग्य श्रद्धानरहित रागसहित द्वेषसहित आरम्भादिसहित वचन नहीं बोलने अर श्रद्धान संयम वीतरागतानैं धारण करते वचन बोलने सो अगृहस्थवचन है । बहुरि जो पापरूप छ कर्म जो खेती विरणज आरम्भ इत्यादिककी क्रियारहित बोलना सो अक्रियवचन है । बहुरि परका तिरस्कार जा वचनकरि नहीं होय ऐसा वचन बोलना सो अहीलनवचन है इत्यादिक निर्दोषवचन गुरूनिके निकट बोलना यह वचनसम्बन्धी उपचारविनय जानना । आगें मनसम्बन्धी उपचारविनय कहे है । गाथा—

पापविसोत्तिय परिरणामवज्जरणं पियहिदे य परिरणामो ।
रणायव्वो संखेवेरण एसो मारणस्सिओ विरणओ ॥३०॥

अर्थ—जा परिरणामकरि आपकै पापका प्रवाह आवै ऐसा परिरणाम "गुरु जे साधु मुनिजन तिनिमै" नहीं करना सो पापविश्रोतकपरिरणामवर्जन है । जो यह गुरु हमारा आचरणमें दोष प्रकट करे है वा हमारा बहोत विनयहू नहीं करे तथा जैसें पूर्वकालमें मोतें सभाषरण करते थे, तैसें अब नहीं करै, अन्य शिष्यनिकू विद्या उपदेश करै तैसें हमकू नहीं करे है, इत्यादि परिरणाममें क्रोधभाव राखना, वा यह गुरु हमारा कहा उपकार करे है ? हमही घोरतपस्वी हैं, इत्यादि अभिमानभाव राखना, तथा गुरुनिका विनयमें आलसी होना, तथा गुरुनिका दोष हेरना, निंदा करना, गुरुनितें प्रतिकूलपरिरणाम राखना ये सर्व पापविश्रोत परिरणाम हैं । इनिकू वर्जन कीये मनसम्बन्धी विनय होय है । बहुरि गुरुनिकै गुरणनिमैं शिक्षा में वा वचनमें चारित्रमें अनुरागरूप रहना, गुरुनिकै जो प्रिय होय वा गुरुनिका जातैं हित होय तामै परिरणाम राखना, यह संक्षेपकरि मनसम्बन्धी विनय जानना । आगें कायिक वाचिक मानसिक जे तीन प्रकारके विनय, तिनिके प्रत्यक्ष परोक्ष दोय दोय भेद कहे हैं । गाथा—

इय एसो पच्चक्खो विणओ पारोक्खिओ वि जं गुरुणो ।
विरहम्मि विविट्टिज्जइ आणाणिद्देसचरियाए ॥३१॥

अर्थ—या प्रकार यह प्रत्यक्षविनय गुरुजन निकट विद्यमान होते होय, ताते प्रत्यक्षविनय है । बहुरि गुरुनिको परोक्ष होते वा अभाव होते जो गुरुनिकी आज्ञाप्रमाण दर्शनज्ञानचारित्रमें प्रवर्तना सो परोक्षविनय अङ्गीकार करनेयोग्य है । आगे गुरुनिविषेंही विनय करना, अन्यविषें नहीं करना, ऐसा नियम नहीं हैं, इनिविषेंभी विनय करना सो कहे हैं । गाथा—

राइणिय अराइणीएसु अज्जासु चेव गिहिवग्गे ।
विणओ जहारिहो सो कायव्वो अप्पमत्तेण ॥३२॥

अर्थ—जाकूं दीक्षा लिये आपतें एक रात्रिहू अधिक होय सो रात्र्यधिक कहिये, अर जो आपतें एकदिन पाछेहू दीक्षा लीनी होय ताकूं ऊनरात्रि कहिये । जो रात्रिकरि आपतें अधिक होय ताकाहू यथायोग्य विनय करै, अर आपतें रात्रिन्यून होय ताकाहू यथायोग्य विनय करै, तथा आर्यिकानिका तथा गृहस्थजन जे हैं तिनिकाहू यथायोग्य विनय करना, विनयमें प्रमादी होना योग्य नहीं । आगे विनयहीनके दोष दिखावे हैं । गाथा—

विणयेण विप्पहूणस्स हवदि सिक्खा णिरत्थिया सव्वा ।
विणओ सिक्खाए फलं विणयफल सव्वकल्लाणं ॥३३॥

अर्थ—विनयरहितकी सर्व शिक्षा निरर्थक होत है । शिक्षा पायाका फल तो विनयरूप प्रवर्त्तना है । अर विनयका फल सर्वकल्याण है—स्वर्गलोक अहमिंद्रलोक बहुरि निर्वाण प्राप्त होना यह सर्व विनयहीका फल है । आगे तीन गाथानि-करि विनयका माहात्म्य प्रकट करे हैं । गाथा—

विणओ मोक्खद्दारं विणयादो संजमो तवो णाणं ।
विणयेणाराहिज्जइ आयरिओ सव्वसंघो य ॥३४॥

आयारजीदकप्पगुणदीवण। अत्तसोधि णिज्झंझा।
अज्जव मद्दव लाघव भत्ती पल्हादकरणं च ॥३५॥
कित्ती मित्ती माणस्स भंजणं गुरुजणे य बहुमाणे।
तित्थयराणं आणा गुणाणुमोदो य विणयगुणा ॥३६॥

अर्थ—यह विनय है सो मोक्षका द्वार है, जो विनयधर्ममें प्रवर्त्या सो मोक्षद्वारमें प्रवेश कीया। विनयतें संयम होय है। विनयतें तप होय है। विनयतें ज्ञान होय है। बहुरि विनयतेंही आचार्योंकूं आराधना होय है। विनयतेंही सर्व संघकी आराधना होय है, सर्वसंघका विनय करना यहही सर्वसंघकी आराधना है। बहुरि आचारशास्त्रमें प्ररूपण कीये जे प्रायश्चित्तादि गुण, ताका प्रकाशनहू विनयतेंही होय है। बहुरि आत्मविशुद्धिताहू अभिमानके अभावतें विनयहीतें होय है। बहुरि विनयवानकें एकहू संक्लेश कलह नहीं प्राप्त होय है। विनयवंतकें आर्जवगुण प्रकट होय। विनयवंतकें मार्दव जो कोमलभाव सोहू प्रकट होय है। बहुरि विनयवान् है सो गुणमें अनुरागरूप भक्तीकूं प्राप्त होय है, अविनयीकें पूज्यपुरुषानिके गुण सुणतेंही अदेखसका भाव उपजे तब भक्ति काहेकी होय? तातें अभिमानीकें भक्ति नहीं। बहुरि आचार्यनिमें समर्पण कीया है सर्व आपा जानें, जो मोकूं तो भगवान् गुरु जैसी आज्ञा करें तैसे बोलना चालना बैठना सोवना खाना पढ़ना रहना, हमारा आत्मा आचार्यनिके आधीन है, ऐसा गुरुनिकी आज्ञाका विनय करनेवाला ताको लाघव कहिये भाररहितपनाहू होय है। बहुरि विनयवानही गुरुनिकें आनन्द करे है, तातें प्रहलादकरणहू विनयहीका गुण है। बहुरि यह विनयवान् है, उद्धत नहीं, हठी नहीं, या प्रकार विनयकी जगतमें कीर्ति विस्तरे है। बहुरि जो विनयवंत होय ताका जगत् मित्र होजाय। विनयवानकें दुःख कोऊही नहीं चाहै। बहुरि विनयवानहीको मानका अभाव होय है। बहुरि गुरु जे ज्ञानकरि अधिक, तपकरि अधिक, चारित्रकरि अधिक, दीक्षाकरि अधिक इनि सर्वनिका विनयवंतही बहोत मान सत्कार स्तवन करै है। विनयधर्मसूं जो अपूठो होय सो उपकारी गुरुजननिका उपकार लोप करि अहंकाररूप हुवा गुरांकी अवज्ञा निन्दाही करे है। बहुरि ज्ञानका मूल, चारित्रका मूल भगवान् तीर्थंकरदेव विनयही कह्या है। जानें विनय अंगीकार कीया तानें तीर्थङ्करांकी आज्ञा पालन करी। बहुरि जाके गुणांमें प्रीति आनन्द होयगा सोही गुणवन्तनिमें विनय करेगा।

भावार्थ—पूर्वे जो पंच प्रकार विनय कह्या सोही मोक्षका द्वार है, सोही संयम है, तथा तप है, ज्ञान है। अर विनयकरिकैंही आचार्यनिकी आराधना, सर्व संघकी आराधना, तथा आचारांग के गुणनिका प्रकाश तथा आत्मविशुद्धता बहुरि क्लेशका अभाव अर आर्जव मार्दव लाघव भक्ति प्रह्लादकरण जगतमें कीर्ति सर्वजीवनिसूं मैत्रीभाव तथा मानकषाय का भंजन, गुरुजनांमें बहुमानता तीर्थंकरांको आज्ञाका पालना, गुणांमें अनुमोदना इत्यादि अनेक गुण जानि, अभिमान छोडि निरन्तर विनयमें प्रवर्तन करो, यहही भगवानकी आज्ञा है, आत्मकल्याणके अर्थीके विनयविना कोऊ कल्याणकारी नाहीं।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरण के चालीस अधिकारनिविषे चौथा विनय नामा अधिकार समाप्त किया। आगे समाधि नामा पांचमा अधिकार दश गाथानिकरि कहै हैं। गाथा—

चित्तं समाहिदं जस्स होज्ज वज्जिदविसोत्तियं वसियं।
सो वहदि णिरदिचारं सामण्णधुरं अपरिसंतो॥३७॥

अर्थ—जाका मन अशुभपरिणतिरहित होय तथा जिस पदार्थमें जोडे तिसमेंही तिष्ठे ऐसा आपके वशवर्ती होय, तथा हित अहित जाणता संता सावधान होय, सोही पुरुष रागद्वेषादि उपद्रवरहित तथा क्लेशरहित मुनिनिका चारित्र भार वहिवेकूं समर्थ होय है। जाका मन चलाचल है ताकै चारित्रका पालना नहीं होय है। आगे जाका मन स्थिर नहीं ताके दोष दिखावे हैं। गाथा—

चालणिगयं व उदयं सामण्णं गलइ अणिहुदमणस्स।
कायेण य वायाए जदवि जधुत्तं चरदि भिक्खू॥३८॥

अर्थ—जाकै मन वशीभूत नहीं सो साधु आचारांगकी आज्ञाप्रमाण यथावत् कायकरिके वा वचनकरिकैं सत्यार्थ चारित्र पाले हैं, तोहू मनका वशीभूतपणाविना ताका चारित्र जैसें चालिनीमे प्राप्त हुवा जल नहीं ठहरे, तैसें विनसिजाय है, तातें मनकी निश्चलता ही करना उचित है। आगे मनकूं वश कीये बिना श्रमणपणा मुनिपणा नहीं है तातें मनका निग्रहबिना जो दोष होय हैं, तिनिकूं पांच गाथानिकरि दिखावे हैं। गाथा—

वादुब्भामो व मणो परिधावइ अद्दिदं तह समन्ता ।
सिग्घं च जाइ दूरं पि मणो परमाणुदव्वं वा ॥३९॥
अंधलयवहिरमूगो व्व मणो लहुमेव विप्पणासेइ ।
दुक्खो य पडिणियत्तेदुं जो गिरिसरिदसोद वा ॥४०॥
तत्तो दुक्खे पंथे पाडेदुं दुद्दमो जहा अस्सो ।
वीलणमच्छोव्व मणो णिग्घेत्तुं दुक्करो धणिदं ॥४१॥
जस्स य कदेण जीवा संसारमणंतयं परिभमन्ति ।
भीमासुहगदिबहुलं दुक्खसहस्साणि पावन्ता ॥४२॥
जम्हि य वारिदमेत्ते सव्वे संसारकारया दोसा ।
णासन्ति रागदोसादिया हु सज्जो मणुस्सस्स ॥४३॥

अर्थ--जैसैं पवनका भवूलया दोडै तैसैं यह आत्मस्वरूपतैं चलायमान हुवा मन सर्व पृथ्वीमें विषयनिमे तथा जलमें स्थलमें नगरमें ग्राममें पर्वतमें समुद्रमें वनमें आकाशमें दिशामें धनमें भोजनमें पात्रमें वस्त्रमें मित्रमे शत्रुमे, होती वस्तुमें अणहोती में, जीवनमें मरणमें हारीमें जीतीमे सर्वतरफ अरोक भ्रमे है । बहुरि जैसैं परमाणु नामा द्रव्य एकसमयमें चौदह राजू जाय, तैसैं स्वच्छन्द यह मनहू दूरक्षेत्रवर्ती, निकट क्षेत्रवर्ती सर्वपदार्थनिमें शीघ्रतासूं जाय है । बहुरि जैसैं अंधा देखे नाहीं, बहिरा सुणै नाहीं, गूंगा बोले नाहीं, तैसैं यह मनहू कोऊ विषयमें आसक्त हो जाय तदि नेत्रादिक पांचूं इन्द्रियां ही अन्य निकटवर्ती विषयहूकूं देखे नाहीं, सुणे नाहीं, बोले नाही, सूंघे नाहीं, स्पर्शे नाहीं, तदि चारित्रमें कैसे लगे ? बहुरि जैसैं पर्वततैं पडता नदीका प्रवाह बहुत कष्टकरिकेहू नहीं रुके है, तैसैं संयमतै पडता यह मनहू राद्वेष कामादिकमें चलायमान हुआ बडा कष्ट करिकेहू रोक्या नहीं रुके है । बहुरि जैसे दुष्ट घोडा असवारकूं दुःख जैसैं होय तैसे विषममार्ग में पटके है, तैसैं यह दुष्ट मन हू आत्माकूं अनन्तानन्त काल दुःख जैसैं होय तैसैं मिथ्यात्व असंयम कषायनिमें पटके है । बहुरि जैसैं बीलण जातिका मत्स्य पकडनेकूं रोकनेकूं असमर्थता है, तैसैं यह बिगड्या हुवा मनहूकूं रोकनेमें असमर्थता है

बहुरि इस दुष्ट मनको चेष्टाकरिके ही यह जीव अनन्तानन्त भयानक नरक निगोदादि अशुभगति की है बहुलता जामैं ऐसा संसार, तामैं जन्म मरण क्षुधा तृषादि हजारां दुःखनिनै प्राप्त होता परिभ्रमण करे है । बहुरि या मनकूं स्वाध्याय, शुभ ध्यान, द्वादश भावना इनिमें रोकनेतैं ये संसारपरिभ्रमण करावनेवाले रागद्वेषादिक दोष शीघ्रही नाशकूं प्राप्त होय हैं ।

भावार्थ—यह जीव अनादिकालतैं निगोदहीमें अनन्तानन्त जन्ममरण कीया अर कदाचित् कोई निगोदतैं निसरचा तो पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय पवनकाय प्रत्येकवनस्पतिकाय तथा वेइन्द्रिय त्रीइन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय तिर्यंच कुमानुष, नरकमें परिभ्रमण करता बहुरि निगोद गया, कदाचित् कोई मनुष्य उच्चकुलादि इन्द्रियपूर्णतादि सामग्री पावे तो ऐठे मनकूं मिथ्यात्व विषय कषाय परिग्रहादिमै लगाय फेरि निगोदवास जाय करे हैं । कैसी है निगोद ? जामैतें अनन्तानन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल व्यतीत हो जाय तोहू निकसना नहीं होय है । बहुरि कैसीक है ? जामै मन नहीं, इन्द्रिय नहीं, विषय नहीं, एक श्वासमें अठारे बार जन्ममरण करना है । तातैं दुःखतैं जो उवरचो चाहो हो तो मनकूं मिथ्यात्वादि हिंसाकषायादि पापनितैं रोकना योग्य है । आगे औरहू कहे है । गाथा—

इय दुट्ठयं मणं जो वारेदि पडिट्ठवेदि य अकंपं ।
सुहसंकप्पपयारं च कुणदि सज्झायसण्णिहिद ।।४४।।

अर्थ—या प्रकार जो दुष्टमनकूं रोकिकरि श्रद्धानपरिणामादिविषै निश्चल स्थापन करे है, ताहीके शुभ संकल्प होय है, सोही आत्मानं स्वाध्यायमें तत्पर लीन करे है । गाथा—

जो विर्यविणिप्पडंतं मणं णियत्तेदि सह विचारेण ।
णिग्गर्हादि य मणं जो करेदि अदिलज्जियं च मणं ।।४५।।

अर्थ—जो पुरुष बाह्यविषयकषायनिमें पडतो गमन करतो जो मन, ताहि अध्यात्मभावनाकरिकैं तथा द्वादश-भावना तथा धर्मध्यानकरिके रोकत है, सो मनको निग्रह करे है तथा मनको अतिलज्जित करे है । गाथा—

दासं व मणं अवसं सवसं जो कुणदि तस्स सामण्णं ।
होदि समाहिदमविसोत्तियं च जिणसासणाणुगदं ।।४६।।

अर्थ—जो जिनेन्द्रका आगमका अनुभवनकरि तथा सत्यार्थ आत्मिकसुखका अनुभवकरिके जो अ–वश मन ताहि दासीपुत्रकीनाई स्ववश कहिये आपके वशीभूत करे है, ताके मुनिपणा पापास्रवरहित जिनशासनके अनुकूल आत्महितमें लीन ऐसा होय है ।

इति भक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषे पांचमा समाधि नामा अधिकार समाप्त कीया । आगे अनियतविहार नामा छट्ठा अधिकार बारह गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

दंसणसोधी ठिदिकरणभावणा अदिसयत्तकुसलत्तं ।

खेत्तपरिमग्गणावि य अणियदवासे गुणा होंति ॥४७॥

अर्थ—जो यतीनिकूं एकस्थानविषे नहीं रहना, नानादेशामैं विहार करना, याका नाम अनियतविहार है । सो अनियतविहारमें एते गुण प्रकट होय हैं । १. दर्शनकी शुद्धता, २. स्थितीकरण, ३. भावना, ४. अतिशयार्थकुशलता, ५. क्षेत्रपरिमार्गणा । भावार्थ—नानादेशनिविषे विहार करनेतें सम्यग्दर्शनकी उज्वलता होय है तथा रत्नत्रयमें शिथिलताका अभाव होय स्थितीकरण गुण होय है । बहुरि धर्ममें बारम्बार प्रवृत्ति परीषहसहनरूप भावना होय है तथा अतिशयरूप अर्थमें प्रवीणता होय है तथा संन्यासके योग्य क्षेत्र जान्या जाय है । तातैं नानादेशमें विहार करनाही कल्याण है । आगे दर्शनविशुद्धता गुण कहे हैं । गाथा—

जम्मण–अभिणिक्खवणं णाणुप्पत्ती य तित्थणिसिहीओ ।

पासंतस्स जिणाणं सुविसुद्धं दंसणं होदि ॥४८॥

अर्थ—जो नानादेशनिमें विहार करनेतें जिनेन्द्रभगवानका जन्मकल्याणककी भूमि तथा तपकल्याणकका तथा ज्ञानकल्याणकका तथा समवसरणका स्थान तिनके अवलोकनतें तथा ध्यानके स्थाननिके अवलोकनतें निर्मल सम्यग्दर्शन होय है । इति दर्शनविशुद्धिः । आगे नानाक्षेत्रनिमें विहार करनेवाला जो मुनि सो अन्य क्षेत्रनिमें मिलते जे साधु तिनिकैं स्थितीकरण गुण प्रकट करे हैं । गाथा—

संविग्गं संविग्गाणं जणयदि सुविहिदो सुविहिदाणं ।

जुत्तो आउत्ताणं विसुद्धलेस्सो सुलेस्साणं ॥४९॥

अर्थ—उत्तम है चारित्र जिनिका ऐसे साधुनिका नानादेशनिमें विहार करना कैसा है ? जो विरागी अन्य साधु जन तिनिकै अतिशयरूप संसारदेहभोगनितैं विरक्तता उपजावे है जो इनिका सत्यार्थ वीतरागपणा देखि हजारां जन वीतरागताने प्राप्त होय हैं, तो अन्य संयमीनिकै विरक्तता नहीं बधै कहा ? बधैही। बहुरि उत्तमचारित्रके धारीनिकै चारित्रमें अति उत्साह करे है। बहुरि योग्य आचरणके धारीनिके तपमें युक्त करे हैं। बहुरि उज्वललेश्यानिके धारकनिके लेश्याकी अतिउज्वलता करे है।

भावार्थ—उत्तम चारित्रके धारकनिका नानादेशनिमें विहार होनेतैं जे धर्मात्मा हैं, तिनिकै तौ धर्ममें अत्यन्त तत्परपणा होय है। अर जे चारित्रमें शिथल हैं, ते चारित्रमें अत्यन्त निश्चल हो जाय हैं। अर जे धर्मरहित होय तिनिके धर्ममें अत्यन्त उत्साहतैं प्रवृत्ति हो जाय है। अर जे अज्ञानी हैं तिनिकूं धर्मका महिमा जान्या जाय है। अर देहमात्रमें अत्यन्त विरक्त आचारांगकी आज्ञाप्रमाण छियालीस दोष टालि कदाचित् किंचित् आहार ग्रहण करता, तृणकांचनमें समानबुद्धीका धारक ऐसे निर्ग्रंन्थनिकूं देखि अनेक मिथ्यादृष्टिजनहू कषायविष उगलि परम शांतताने प्राप्त होय है। आगे नानादेशनिमें विहारके औरहू गुण कहे हैं गाथा—

पियधम्मवज्जभीरू सुत्तत्थविसारदो असढभावो।
संवेगाविदि य परं साधू णियदं विहरमाणो ॥५०॥

अर्थ—सदाकाल विहार करता जो साधु सो पर जे अन्यलोक तिनकूं धर्मानुरागरूप वीतरागरूप करे है। कैसा है साधु ? अत्यन्त प्रिय है दशलक्षणधर्म जाकूं ऐसा, बहुरि पापतैं अत्यन्त भयभीत, बहुरि सूत्रका अर्थमें प्रवीण, बहुरि मूर्खतारहित ऐसा साधु नानादेशनिमें विहार करता नानादेशके प्राणीनिकूं धर्ममें प्रीतिरूप करेही करे। या प्रकार पर-जीवनिकूं स्थितीकरण करनेरूप गुण कह्या। आगे नानादेशनिमें विहार करनेतैं आपका आत्माकाहू धर्ममें स्थितीकरण होय है—यह दिखावे हैं—

संविग्गवरे पासिय पियधम्मवरे अवज्जभीरुवरे।
संयमवि पियथिरधम्मो साधू विहरंतओ होदि ॥५१॥

अर्थ—नानादेशनिमें बिहार करनेतें अनेक जे संसारदेहभोगनितें विरक्त तिनिके देखनेतें, तथा प्रिय है धर्म जिनिकूं ऐसे धर्मानुरागीनिके देखनेतें, तथा पापका है भय जिनिके ऐसे दुराचरणरहित तिनिके देखनेतें साधु जो संयमी सो आपहू धर्ममें प्रीतियुक्त तथा धर्ममें स्थिर निश्चल अनियतविहार करनेवाला होय है ।इति, या प्रकार अनियतविहार करनेतें स्थितिकरण गुण कह्या । आगे नानादेशनिमें विहार करनेतें परीषहसहनरूप भावना होय है, सो कहे हैं । गाथा—

चरिया छुहा य तण्हा सीदं उण्हं च भाविदं होदि ।

सेज्जा वि अपडिबद्धा य विहरणेणाधिआसिया होदि ॥५२॥

अर्थ—तीक्ष्ण शर्करा पाषाण कांकरी कांटा वा शीत वा उष्ण तथा कर्कशभूमि इनिपरि पादत्राणरहित चरणनिकरि गमन, तथा मार्गका चालना इनकरि उपजी जो वेदना, ताकूं संक्लेशभावरहित सहना यह चर्याभावना कहिये मार्गतें उपज्या परीषहका समभावकरि सहना । बहुरि पूर्वे नहीं किया है परिचय जिनमें ऐसे देशनिमें विहार तथा तिनि देशनिमें भोजनका नहीं मिलना तथा अन्तराय होना तिनिकरि उपजी जो क्षुधावेदना, ताका संक्लेशरहित सहना, यह क्षुधापरीषहका सहना । बहुरि ग्रीष्मऋतुमैं विहार करना तथा प्रकृतिविरुद्ध आहार करना तथा उपवासनिका पारणामैं थोरे जल का लाभ होना वा जल नहीं मिलना इत्यादिकरि उपज्या तृषापरीषहका समभावनिकरि सहना । बहुरि शीत उष्णपरीषहका समभावनिकरि सहना । बहुरि कर्कश कठोर कांकरी ठीकरी कंटक कठोर तृण इनिकरि सहित भूमि तथा शीतभूमि तथा उष्णभूमि तथा विषम—नीचउच्चभूमिमें एक पसवाडे संकुचित अग सोवना या प्रकार शय्याजनित परीषह समभावनिकरि सहना वा शय्या जो वसतिका तामैं अप्रतिबद्धा कहिये 'या वसतिका हमारी' या प्रकार ममताभावरहितता । ये सर्वपरीषह सहना नानादेशनिमें विहार करनेतें होय है । इति भावना । या प्रकार अनियतविहारमें भावना गुण कह्या । आगे नानादेशनिमैं विहार करनेतें अतिशयरूप अर्थमें प्रवीणता होय है सो दिखावे हैं । गाथा—

णाणादेसे कुसलो णाणादेसे गदाण सत्थाणं ।

अभिलाव अत्थकुसलो होदि य देसप्पवेसेण ॥५३॥

अर्थ—नवीन नवीन देशनिमे विहार करनेतें नानादेशनिका आचरण तथा देशनिकी रीति तथा चारित्र पालने की योग्यता वा अयोग्यताका जानना होय है । बहुरि नानादेशनिमैं प्राप्त भये जे शास्त्र तिनिमें प्रवीणता होय है । बहुरि

नानादेशनिकी भाषा तथा अर्थनिमें प्रवीणता होय है । आगे अतिशयरूप अर्थमें कुशलता नामा गुण कहे हैं । गाथा—

सुत्तत्थथिरीकरणं अदिसयिदत्थाण होदि उवलद्धी ।
आयरियदंसणेण दु तह्मा सेवेज्ज आयरियं ।।५४।।

अर्थ—नानादेशनिमें विहार करनेतें अन्य आचार्यका देखना होय है तथा अन्य आचार्यनिके देखनेतें उनके मुखतें सूत्रका अर्थ श्रवण होय तदि अतिशयरूप अर्थकी प्राप्ति होय है। बहुरि पूर्वे जो अर्थ आप समझि राख्या ताहि भांति अन्य आचार्यनितें सुननेकरि सूत्रका अर्थमें स्थिरीकरण होय है । नानादेशनिमें विहार करनेतैं आचार्यनिका सेवन होय है । आगे अन्य प्रकारकरिकैंहू अतिशयरूप अर्थमें कुशलपणा दिखावे हैं । गाथा—

णिक्खवणपवेसादिसु आयरियाणं बहुप्पयाराणं ।
सामाचारीकुसलो य होदि गणसंपवेसेण ।।५५।।

अर्थ—बहुतप्रकारके जे आचार्य तिनिके संघमें प्रवेशकरिके निष्क्रमणप्रवेशादिक जे क्रिया तिनिविषें समाचारी प्रवीण होय है । भावार्थ—केईक अन्य साधु आचरण करे तैसें आपहू करे हैं । केईक जिनसूत्रकूं गुरुके निकट आच्छी तरह समझि सूत्रमें कह्या तैसें जानिकरि करे हैं । केईक आचारका श्रम बहोत देखेहू है अर जिनसूत्रहू बहोत अवलोकन करे हैं तातें दोऊके ज्ञाता हैं, तिनिके आचार नानादेशनिमें विहार करनेतें जाण्या जाय है । सोही कहे हैं । समाचार जो सर्व मुनीनिका समान आचरण ताहि समाचार कहिये है । सो समाचार दोय प्रकार, एक सक्षेपरूप एक विस्ताररूप । तिनिमैं संक्षेपसमाचार दशप्रकार है—१. इच्छाकार, २. मिथ्याकार, ३. तथाकार, ४. इच्छानुवृत्ति, ५. आशी, ६. निषिद्धिका, ७. आपृच्छन, ८. प्रतिप्रश्न, ९. आनिमंत्रण, १०. संश्रय ।

१. जो साधूकूं आपके निमित्त वा अन्य साधुके निमित्त पुस्तककी इच्छा होय वा आतापन योगादिक धारनेकी इच्छा होय तदि आचार्यके निकट विनयसहित याचना करना यह इच्छाकार है ।

२. बहुरि जो मैं दुष्टकर्म किया, जिनसूत्रकी आज्ञाविना किया, सो मिथ्या होहू, अब ऐसा दुराचार कदेही नहीं करूं । या प्रकार मनकी प्रवृत्ति करना सो मिथ्याकार है ।

३. बहुरि आचार्यादिक पूज्यपुरुष तत्त्वार्थका उपदेश करता होय, तहां श्रवण करता जे साधु, ते आदरपूर्वक कहे, जो, भगवद्वचन जो आपके वाक्यतें अन्यथा नहीं तैसेंही है, प्रमाण है, सो तथाकार है ।

४. बहुरि पूर्वे ग्रहण कीया जो अनशन तप तथा आतापनयोग तथा उपकरणादिक तिनिविषै आचार्यनिकी इच्छाके अनुकूल प्रवर्तना सो इच्छानुवृत्ति है । भावार्थ—ये आचार्य भगवान सर्व देशकालके ज्ञाता है अर हमारी तथा सर्वसंघके साधुजननिकी प्रकृति संहनन परिणाम जाने हैं, सो इनिकी इच्छाके अनुकूल प्रवर्तना सोही हमारा हित है अर विनयधर्मका लाभ है ।

५. बहुरि जा पर्वत, नदी, पुलिन, वृक्षके कोटरे, गुफा वसतिकादिक स्थानमें एकदिन वा रात्रि वा प्रहर दोय प्रहर तिष्ठिकरि बिहार करे तदि आप बोलै—भो ! स्थानकके स्वामी हो ! हम तुम्हारे स्थानमें इतने काल तिष्ठे, अब गमन करे हैं, तुम्हारे क्षेम सहित उदय होहू । या प्रकार व्यन्तरादिकनिकूं इष्टरूप आशीर्वाद देना पाछे विहार करना सो आशी है ।

६. बहुरि जा स्थानमें प्रवेश करना होय तहां कहै, जो, भो ! स्थानके निवासी हो ! तुम्हारी इच्छाकरिके इहां हम तिष्ठे हैं । याप्रकार व्यन्तरादिकनिकी बाधाका दूरी करना सो निषिद्धिका है । ऐसें निषिद्धिका कीये पीछे वस्तिका गुफा स्थानादिकमे मुनिकूं तिष्ठनेका भगवानका हुकुम है ।

७. बहुरि नवीन ग्रन्थका आरम्भ तथा केशनिका लोंच तथा कायशुद्धिक्रियादिकविषै आचार्यादि पूज्यपुरुषांकूं प्रश्न करना सो आपृच्छना है ।

८. बहुरि जो कोऊ महान् कार्य करना होय तदि आचार्यनिनै विनयकरि पूछि बहुरि पूछना यह प्रतिप्रश्न है ।

९. बहुरि जो पुस्तक तथा उपकरण पूर्वे आपकूं दीया जो तुम्हारा कार्य कर लेहू, तदि आप ग्रहण करि पठनादि क्रिया करि लीनी अर फेरिहू वांछा उपजे तदि फेरि गुरुनिकूं जनावना सो आनिमत्रण है ।

१०. बहुरि विनयसंश्रय, क्षेत्रसंश्रय, मार्गसंश्रय, सुखदुःखसंश्रय, सूत्रसंश्रय ये पांच प्रकार संश्रय हैं । तहां कोऊ परसंघका मुनिकूं आवता देखिकरिकै अर आनन्दतें ऊठिकरिकैं, अर सप्त पेंड सम्मुख जाय उनकै योग्य वन्दना करि अर आसनका देना इत्यादिकरि मार्गका खेद दूरि करिके अर रत्नत्रयकी कुशल पूछना, यह विनयसंश्रय है ॥१॥ बहुरि जा क्षेत्रमें दुष्ट राजा होय तथा राजाही नहीं होय तथा देश पापरूप होय, तथा जामैं शीत बहुत होय, तथा उष्णताकी बाधा

बहोत होय तथा जीवनिकी बाधा बहोत होय, ऐसा क्षेत्रकूं छोडिकरि जा क्षेत्रमें बाधारहित संघका निर्वाह होय, परिणामकूं सुखदायक होय ऐसा क्षेत्रनिमें निवास करना यह दूसरा क्षेत्रसंश्रय है ।।२।। बहुरि आगन्तुक मुनीनकूं मार्गका आवनेमें जो सुखदुःख उपज्या होय ताकूं पूछना सो तीसरा मार्गसंश्रय है ।।३।। बहुरि जो आगन्तुक मुनीनके मार्गविषै चोरनिकी बाधा भई होय वा रोगकी बाधा भई होय वा राजाकी बाधा हुई होय वा औरभी तिर्यंच दुष्टमनुष्यादिजनित बाधा हुई होय तिनिकूं आहार औषधि वसतिका इत्यादिकरि तथा शरीरकी टहल सेवाकरि सुख उपजावना तथा सुखमें दुःखमें मैं आपका हूं, इत्यादि वचनकरि चित्तकूं प्रसन्न करना—यह चौथा सुखदुःखसंश्रय है ।।४।। आगे पांचमा सूत्रसंश्रय कहे हैं ।

कोऊ मुनि पूर्वे आपके गुरुनिके चरणांके निकट समस्त शास्त्र पढि लिया होय बहुरि स्वमतका वा परमतका वा लौकिक ग्रन्थ ग्रन्थका अर्थ जाननेकी अभिलाषा होय, तदि भक्तिपूर्वक आपके गुरुनिकूं नमस्कार करि विनति करै–हे स्वामिन् ! आपका चरणारविंदांका प्रसादथकी अन्य दूसरा मुनीन्द्रका संघकूं देखनेकी हमारै वांछा वर्ते है । ऐसें विनयपूर्वक प्रश्न करै, अर जब गुरुनिकी आज्ञा होय जाय–जो, जावो, तदि फेरि अवसर पाय प्रश्न करै, जो, हे भगवन् ! मोकूं अन्य संघमें जावनेकी कहा आज्ञा है ? तदि दूसरी बारहू गुरु आज्ञा करे जावो । फेरिहू अवसर पाय कितनेक प्रहर दिवस मासका अन्तराल करिकै फेरिफेरि प्रश्न करै, अर बारंबार आज्ञा होय तब अन्य एक मुनि वा दोय अन्य मुनि वा बहोत अन्य मुनिनिकरि सहित गमन करै, एकाकी गमन नहीं करै । जातै ऐसा मुनिकै एकविहारीपणा होय है, जाकै श्रुतज्ञान अवधिज्ञान होय सो प्रबल होय, अर वज्रवृषभनाराच वा वज्रनाराच वा नाराच उत्तम तीन संहननका धारक होय, अर मनोबलसहित होय, जाका मनकूं देव मनुष्य तिर्यंच घोर उपसर्ग करिकैंहू चलायमान नहीं करिसकै ऐसा होय, बहुरि आत्मभावना वा अनित्यादि द्वादशभावनाका निरन्तर भावनेकरि कदाचित्हू आर्त्तरौद्ररूप परिणतिकूं नहीं प्राप्त होय, बहुरि बहुतकालतै दीक्षित होय, गुरुके निकट निरतिचार चारित्रसेवन करया होय, क्षुधादि बाईस परीषह सहवानै समर्थ होय, ताकै एकाकी विहार होय है । एते गुणरहित स्वेच्छाचारी पुरुषका एकाकी विहार करना वैरीकाहू मति होहू । जो इतने गुणरहित एकाकी विहार करै तो श्रुतका संतानकी व्युच्छित्ति होय । जातै स्वेच्छाविहारी हुवा तदि श्रुतकी परिपाटी कहा रही ? यथेच्छ प्ररूपण करे है । बहुरि अनवस्थाहू होय है । जातै एकाकी प्रवर्त्या तदि मुनिधर्मकी खानमें, पानमे, बोलनेमें, विहारमे, शयनमें, आसनमें मर्यादाहू नही रहीं । कोऊ कैसे प्रवर्ते, कोऊ कैसे प्रवर्ते, कोऊ गुरु प्रवर्तक नहीं रह्या,

कोऊको लज्जा नहीं रही । बहुरि संयमका नाश होय है, जातें एक विहारीकै आहार विहार शयन आसनविषै प्रवृत्तिकी शुद्धता नहीं होय है । बहुरि जातें पूर्वोक्तगुणरहित एकाकी विहार किया तातें जिनेन्द्रकी आज्ञाका भंगहू किया । बहुरि पूर्वोक्तगुणरहित जो एकाकी विहार किया, सो धर्मकी तथा गुरुकी अपकीर्तिहू करावे है । बहुरि गुणरहित एकविहारी अग्निकरिकै तथा जलकरिकै तथा विषकरिकै तथा अजीर्णादि रोगकरिकै आर्त्तरौद्रध्याननै प्राप्त होय, आपका आत्माकाहू नाश करे है । तातें पूर्वोक्तगुणरहितकूं एक विहारी होना अयोग्य है ।

बहुरि आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणधर ये पंच प्रधानपुरुष जिस संघमें होय, तिस संघकूं प्राप्त होय । अब आचार्य कैसा होय सो कहे हैं । बहुरि जो संग्रह कहिये शिष्य जे धर्मानुरागी तिनिका ग्रहणमें प्रवीण होय । कैसा है शिष्य ? संसारपरिभ्रमणतें अत्यन्त भयभीत होय, बहुरि विनाशीक जो देह तातें अतिविरक्त होय, बहुरि दुर्गतिके कारण अर अतृप्तिताके करनेवाले तृष्णाके बधावनेवाले जे इन्द्रियनिके भोग, तिनिमें अति उदासीन होय, अर संसार देह भोगतें उपज्या संक्लेशरूप अग्निकरि जाका हृदय अत्यंत दग्ध होता होय तदि संसारदेहभोगसंबंधी क्लेशरूप अग्नि बुझायवेकूं अविनाशी पदका आनन्दरूप अमृतकूं हेरता होय बहुरि सुननेकी इच्छा वा श्रवणादिक तिनिकरि जाकी पुण्यरूप उज्वल बुद्धि होय, बहुरि बुद्धिका प्रभावकरि अच्छी तरह मिथ्यादृष्टीनिका आप्त आगम आचार धर्मनिका दूषण परीक्षा करिकै जानि लीया होय, बहुरि ऐसे धर्मकूं प्राप्त होयकरि अत्यंत हर्षितचित्त होय । कैसा है धर्म ? प्रमाणनयस्वरूप युक्तिकरि युक्त होय—प्रमाणनयकरि जामें बाधा नहीं आवै, बहुरि सर्वज्ञ वीतरागका कह्या हुवा होय, जातें आपकी रुचिविरचित अल्पज्ञानीका कह्या प्रमाण नहीं, तथा रागीद्वेषीका अभिप्रायही शुद्ध नहीं तब वाका कह्या वचन कैसे प्रमाणरूप होय ? बहुरि पापका जीतनेवाला होय, बहुरि संसारसमुद्रमें डूबता प्राणीनिकूं हस्तावलंबन देनेवाला होय, बहुरि दयाकरि संयुक्त होय, बहुरि स्वर्गमोक्षका सुखका देनेवाला होय ऐसा धर्ममें प्रीतियुक्त होय । सो वीतरागगुरुमें प्राप्त होयकरिकै अर प्रार्थना करै, हे स्वामिन् ! मोकूं संसारपरिभ्रमणका निवारण करने वाली दयामयी दीक्षा देहु । बहुरि परमार्थका अर व्यवहारका जाननेवाला मोहरहित आचार्यहू विनाविचारया दीक्षा नहीं देवे । एते गुणसहित होय ताकूं दीक्षा देवै ।

ते गुण कौनसे? सो कहे हैं—प्रथम तौ उत्तम देशका उपज्या होय । देशका प्रभावहू परिणाममें वा संहननमें व्याप्या विना रहे नहीं । तातें देश शुद्ध होय । बहुरि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीन वर्णकरि श्रेष्ठ हो । बहुरि अंगकरि पूर्ण होय—हीन अंग अधिक अंग नहीं होय । बहुरि राजकरि विरुद्ध नहीं होय, जातें जो राजाका महामात्यादिक होय अर राजाकी

आज्ञाबिना दीक्षा लेता होय अर जो वाकूं दीक्षा देवे तो राजकृत उपद्रव संघ उपरि आजाय—जो यह साधु राजाका अपराधी है। बहुरि लोकविरुद्ध नहीं होय, लोकविरुद्ध जो दुराचारी, चोर, पासोगर, दीन, परउच्छिष्टादि भक्षण करने वाला, वा खोटे विणज, खोटे व्यवहार करनेवाला होय, महा निर्दय होय, खोटी जीविका करनेवाला, वा परधन खाने वाला, वा ऋणसहित होय वा हत्या करनेवाला, उन्मत्त, जातिकुलका अपराधी, ताकूं दीक्षा देना योग्य नहीं।

जो लोकविरुद्धकूं दीक्षा देवै तो जगतमें धर्मका बडा अपवाद होय। लौकिकजन ऐसें निंदै—जो सर्वजगतका पापी ठिग अपराधी इस संघमें बसे है, जा अपराधीकूं कहूंही ठिकाणा नहीं होय सो दीक्षित दिगम्बर होय है। ऐसी धर्मकी महा निंदा होय। तातैं लौकिक अपराध जामैं एकहू नहीं होय ताकूंही दीक्षा देना उचित है। बहुरि जाकूं स्त्री पुत्र माता पिता कुटुम्बादिक दीक्षाकी आज्ञा दे दीनी होय, जातैं जो कुटुम्बतै नहीं छुट्या अर जाकूं दीक्षा देवै तो सर्व लोक वैरी हो जाय—जो यह साधु दयारहित हैं, जगतका भोला जीवानैं बहकाय ले जाय हैं, अनेक घरके डबोवने वाले हैं। कोईकी स्त्री रोवे है, कोईका बालक पुत्र रोवे है, कोईकी माता रोवे है, कोईका वृद्ध पिता रुदन करे है, ये साधु काहेके हैं, घर खोऊ हैं, जगतका बालकानै भोला जीवानैं ठिगता फिरे हैं। या प्रकार सर्वलोकनिमैं अवज्ञा हो जाय। तातैं कुटुम्बतै ममता छुडाय, कुटुम्ब बांधवांकी राजीतैं दीक्षा लेवै, ताकूंही दीक्षा देना उचित है। बहुरि जाकै मोह जाता रह्या होय, जातैं जाकै विषयामैं ममता होय ताकूं दीक्षा उचित नहीं, जो दीक्षा देवै तो धर्मको वा गुरुको वा संघको अपवादही होय। बहुरि जाका शरीरमें श्वेतकुष्ठ तथा मृगी इत्यादिक बडा रोग नहीं होय, ताकूं दीक्षा उचित है। तातैं आचार्य भगवान् ज्ञाता है, जाकूं जोग्य जाने है अर जायकी सर्व संघमें धर्मकी वृद्धि अर मोक्षमार्गका प्रवर्तन जानैं ताहीकूं दीक्षा देवे है। जातैं जो अयोग्यकूं दीक्षा देकरि उनके सप्रदाय वधावना नहीं, कुछ चाकरी टहल करावना नहीं, कुछ जगतकूं बहोत शिष्य दिखाय आडम्बर बधावना नहीं, जाकरि धर्मका मार्गकी वृद्धि होय सो कार्य करना उचित है। तातैं आचार्य होय सो शिष्यांका ग्रहण करनेमें तथा उपकार करनेमें समर्थ होय, बहुरि श्रुतज्ञानमें अर चारित्रमें लीन होय, बहुरि पंच प्रकार के आचार आप आचरे अर अन्य शिष्यानैं आचरण करावै ऐसा होय। बहुरि चारित्रमें अतिचारदोष मलरहित होय, जातैं आचार्यहीके अतिचार लागै, जब संघका अन्य मुनीनके अतिचारका भय नहीं रहे है। बहुरि मनकी दृढताका बल-सहित होय। बहुरि गंभीरपणासहित होय। जातैं गंभीरपणाबिना संघका निर्वाह करवानैं समर्थ नहीं होय। बहुरि बाल वृद्ध शक्त अशक्त सर्व सघका निर्वाह करवारूप कृपाकरि सहित होय। बहुरि घोर परीषह तथा देवमनुष्यतिर्यंक् अचेतन

कृत घोर उपसर्ग सहनेकूं समर्थ जाका अरोक धैर्यगुण होय, इत्यादि औरहू अनेकगुणसहित आचार्य होय है ।

बहुरि आगे उपाध्यायके लक्षण कहे हैं । संसारका छेदवाहाला जिनेन्द्रकथित परमागम, ताके पढनेमें तथा पढावनेमें जो लीन होय, जाका वचनरूप अमृतका पानकरि मिथ्यात्व विषयकषायरूप विष विनसि जाय, सो उपाध्याय जानना । बहुरि आगे प्रवर्तकका लक्षण कहे हैं । जो जिनधर्मकी प्रभावना करनेवाला अर आहारपानकी वा शीत उष्णता की वा दुष्ट मनुष्यतिर्यंचाकी बाधा संघमें नहीं आवे तैसें संघका विहार वा स्थान करावनेवाला, अर जगतके आदर व. जोग्य वचनका अतिशयकरि संयुक्त अर संघको परमशांतता अर धर्मकी वृद्धि ताके योग्य देशकालका जाननेवाला ऐसा परमोद्यमी प्रवर्तक साधु होय है । आगे स्थविरका लक्षण कहे हैं । मर्यादारीति पूर्वला आचार्यातें चली आई ताकूं जानने वाला होय, अर गुणांकरि स्थित होय ऐसा स्थविर होय है । आगे गणधरका लक्षण कहे है । जो संघकी रक्षा करनेमें समर्थ होय, बहोत काल गुरुकुल सेया होय अर पूर्व कह्या जे आचार्यनिके गुण ते जामैं विद्यमान होय सो गणधर होय है ।

अब जो पूर्वें वर्णन कीया जो मुनि सो दोय तीन चार मुनीश्वरनिकरि सहित गुरांकी आज्ञातें अन्य आचार्यनिका संघमें जावे, बहुरि जा संघमें आचार्य उपाध्याय प्रवर्तक स्थविर गणधर होय ता संघमें प्राप्त होय, बहुरि परसंघका आचार्य अपने संघसहित सन्मुख आवता अर 'अभ्युत्तिष्ठ' इत्यादि वाक्य तथा नमस्कार तथा अंगीकार करनेकी इच्छा तथा वात्सल्य इनि कारणनिकरि आचार्यनिनें प्राप्त होयकरिकें अर आचार्यनिकूं तथा सर्वसंघकूं प्रीतितें अवलोकन करि अर भक्तियुक्ती संघकूं अर संघका अधिपति जे आचार्य तिनिकूं वन्दना करिकें बहुरि मार्गमें आवनेका अतीचारका नियम समाप्त करिके अर औरहू क्रिया करनेयोग्य होय ताही समाप्त करिके अर सर्व संघकूं वा संघका स्वामीकूं वन्दना करिके अर तादिन तो संघमें विश्राम करे, बहुरि दूसरे दिन वा तीजे दिन संघकी वा संघका स्वामी आचार्यकी दयाभावमें तथा इन्द्रियांका दमबामें तथा आवश्यकक्रिया करनेमें योग्य अयोग्य क्रियाकूं जानें, बहुरि दूजे दिन वा तीजे दिन आचार्यनिं प्राप्त होय अर नमस्कार करिकें अर मार्गमें जो उपकरण वा शिष्य प्राप्त हुवा होय तिनिकूं भेट करिके अर विनय संयुक्त होय आपके वांछित होय ताकी विनती करै । बहुरि आचार्य है सोहू नवीन आया मुनिनकी परीक्षा करिके अर जो गुरुपरिपाटी करिके शुद्ध होय, तदि तो संघमें ग्रहण करै । अर जो गुरुकुलशुद्ध नहीं होय वा आचरणशुद्धि नहीं होय तो प्रायश्चित्त यथायोग्य छेद वा उपस्थापनादिक जो नवीन व्रतमें आरोपणादिक करिके शुद्ध होय जावे तदि संघमें ग्रहण करे, और प्रकार नहीं करै ।

बहुरि पाषाणकी शिलासमान, तथा फूटा घडासमान, बकरासमान, मींडासमान, घोडासमान, मांटीसमान, चालिनोसमान, सूवासमान, मच्छरसमान, मार्जारसमान, सर्पसमान, भैंसासमान, ऐसे श्रोता तो उपदेशके योग्यही नहीं । बहुरि जो बुद्धिवान्, विनयवान् श्रोताकूं विद्यमान होता भी जो अविनयी वा मन्दबुद्धि वा पूर्वे कहे जे शिलासमान सर्पसमान श्रोता तिनिकूं जो मोहकरिके उपदेश करे सो उपदेशदाता अधम है, सो अधम उपदेशदाता रत्नत्रयरूप जिहाजरहित होय संसारसमुद्रमें डूबे है, ऐसा आगमका उपदेश है । ताहि चितवन करि अर आगन्तुक मुनीनकूं पूछे–जो, तुमारा पूर्व अवस्था की स्थिति स्थान कौन है ? अर तप ग्रहण कीये केता काल हुवा ? अर तुमारा दीक्षा देनेवाला गुरु कौन है ? अर तुम कौन कुलमें उपजे हो ? अर तुमारा नाम कहा है ? अर कौन कौन शास्त्र पढे हो ? अर कौन कौन आगम गुरांके निकट श्रवण कीये हैं ? अर कौन प्रतिक्रमणादि अंगीकार कीये हैं ? अबार आवना काहतें कौन क्षेत्रतें भया ? अर चतुर्मास कहा व्यतीत किया ? इत्यादिक पूछिकरिके अर संयममें आसनमें गमनमें तीन दिनपर्यंत परीक्षा करिके गुरुपरिपाटी अर चारित्रकी शुद्धता जानि अंगीकार करे । अर गुरुनिकरि अंगीकार किया जो आगन्तुक मुनि सोहू आपकी शक्तीकूं गुरुनैं जणाय पाछें गुरुनिकरि व्याख्यान किया जो आपका वांछित श्रुत ताका विनयकरि पढना यह सूत्रसश्रय है ।।५।। ऐसैं संक्षेपथकी अधिक समाचार दश प्रकार का कह्या ।

अब आगे विस्तारसमाचार अनेकभेदरूप है, ताकूं उदाहरणसहित प्रकट करनेकूं कौन समर्थ है ? जातें जो संयमीनिका रात्रिविषें वा दिवसविषें जो आचरण करे है, सो जिनेन्द्रका कह्या हुवा विस्तारसमाचार जानना । तहां साधु जो है सो आपकी शक्तिके अनुसारि भक्ति करिके अर निर्वाणकी वांछा करिके क्रियाकलापका सूत्र तथा आचारांग तथा परमपुरुषनिके पुराण तथा त्रिलोकका वर्णनका शास्त्र तथा सिद्धांत तर्कशास्त्र तथा द्वादशांग अर अंगबाह्य शास्त्र तिनिनें बडा अनुराग करि पठन करे । बहुरि आचार्यपद कौनके होय सो कहे हैं–जो दर्शनज्ञानचारित्रका स्थानक होय, अर सत्पुरुषांके शरणयोग्य होय, तथा महानपणा पराक्रमीपणा गंभीरपणा धैर्यादिगुणकरि भूषित होय, अर चिरकालका दीक्षित होय, इन्द्रियनिका दमननेवाला होय, सिद्धांत की परिपाटी जाके प्रकट होय, दयावान् होय, वात्सल्यतासहित होय, शांत होय, जाके कषाय मन्द होय, आचार्यपदके योग्य होय, संघके मान्य होय एते गुणनिका धारक होय सो प्रायश्चित्तादि शास्त्र पढि अर आचार्यनिकरि दीया आचार्यपदनें प्राप्त होय है । बहुरि जो पहिली शिष्यपणा आचरण नहीं करिके अर आचार्यपणा करनेकूं चाहै है सो शिक्षारहित अश्वकीनांई उन्मार्गगामी होत है ।

भावार्थ—जो बहोत काल गुरुकुल सेया होय अर पूर्वोक्त गुणनिका धारक होय सोही आचार्यपदके योग्य है। अर इनि गुणनिविना उन्मार्गगामीही जानना। बहुरि साधुनिकूं सर्व प्राणीनिमें मैत्रीभाव करना, सम्यग्दर्शनादि गुणनिके धारकनिमें प्रमोदभाव करना, बहुरि दुःखितजीवनिमें करुणाभाव करना, बहुरि मिथ्यादृष्टि, हठग्राही, व्यसनी, उन्मार्गगामीनिविषें माध्यस्थ्य कहिये रागद्वेषरहित भाव करना। बहुरि साधुजन हैं ते अरहंतानें तथा सिद्धानें तथा आचार्यानें तथा उपाध्यायानें तथा जगतका गुरु साधूनिनें तथा जगतके हितकारक धर्मनें वन्दना करैं। अन्यकूं वन्दना नहीं करैं। बहुरि छींक आवे तदि तथा अचानक देहमें पीडा उपजे तदि, तथा भय होतां तथा जंभाई आवतां तथा इष्टकार्यका आरंभ करतां तथा आखडतां चिगता तथा शयन करता तथा विस्मय होता इतने कार्यमें आदि जिनेन्द्रका स्मरण करना योग्य है।

अब आचार्यनिकूं कैसे वन्दना करै सो कहे हैं। जा अवसरमें गुरु सुखकरिकै बैठे होय अर संघकी तरफकी कुछ आकुलता नहीं होय अर सन्मुख होय ता अवसरमें आचार्यनितें एक हस्तमात्र अन्तराल छोडि खडा रहिकरि अर मुखतें कहे—हे स्वामिन्! वन्दना करूं हूं। ऐसें विनती करि अर कतरणीकीनांई आपका अष्ट अंगनिनें अर भूमिनें स्पर्शन करिके अर पींछीसहित अंजुली मस्तक चढाय पशुकी अर्धशय्याकीनांई नम्रीभूत होयकरिके वन्दना करे। अर आचार्यहू ऋद्धयादिकनिका गर्वरहित हुवा संता पींछीसहित अंजुली मस्तक चढाय प्रतिवन्दना करैं। बहुरि जो परके दोष हेरनेवाले तथा सत्यार्थ सम्यग्दर्शनादि गुणनिके अपवाद करने वाले ऐसे पार्श्वस्थमुनि तपश्चरण करै है तौऊ वन्दनेयोग्य नाहीं। तातें जैन के यति, पार्श्वस्थादि भ्रष्ट मुनि तिनिकूं वन्दना नहीं करे हैं। बहुरि गुरुनिके आगे यथेष्ठ तिष्ठना योग्य नहीं। बहुरि गुरुनिकूं पूछना होय तदि, तैसें प्रश्न करैं, जैसें गुरुनिका परिणाममें कोप नहीं उपजै, तथा तिनिका कह्या वचनकूं अंगीकार करै, अर तामें तत्पर होय। बहुरि गुरुनिकूं पुस्तकादिका सोंपना होय तौ दोऊ हस्तनितें सोंपैं अर जो गुरु आपकूं सौंपें तो विनयसहित दोऊ हस्तनितें ग्रहण करै।

बहुरि मुनीनिकूं समस्तमतमें प्रशंसायोग्य "नमोऽस्तु" या प्रकार नति करना प्रशंसायोग्य है। बहुरि मुनीनिकूं कोऊ नमस्कार करै तब मुनि कहा कहै, सो कहे हैं। जो आर्यिका नमस्कार करै तथा उत्कृष्ट श्रावक ग्यारह प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी नमस्कार करे तदि ता "कर्मक्षयोऽस्तु ते" तुम्हारे कर्मका नाश होऊ अथवा "समाधिरस्तु" ऐसा कहै, जो तुम्हारे परिणामनिमें परमसमता होऊ। अर जो गृहस्थी नमस्कार करै तौ ताकूं "धर्मवृद्धिरस्तु" अथवा "शुभमस्तु" अथवा "शान्तिरस्तु" जो तुम्हारे धर्मकी वृद्धि होऊ अथवा सातिशय पुण्य होऊ अथवा तुम्हारे कल्याणरूप कार्यनिमें अन्तरायका

नाश होऊ। अर जो चांडालादिक नमस्कार करै ताकू "पापक्षयोऽस्तु" तुम्हारे पापका नाश होऊ, ऐसा आशीर्वाद देवे है। बहुरि सम्यग्दृष्टि तथा सम्यग्ज्ञानी ऐसे मुनि अन्य श्रेष्ठगुणनिकरि रहितहू होय तौऊ मान्य है, पूज्य है। जैसे श्रेष्ठरत्न सारणपरि नहीं चढ्या तौऊ मोलके योग्यही है, बहोत मोल पावे ही है। बहुरि साधुनिकू आचार्यनिकरि सहित बोलना योग्य है। अन्य योगीनितै प्रयोजनके अर्थि बोलना, विनाप्रयोजन वचनालाप नहीं करना। अर श्रावकजन वा अन्य स्वजन वा मिथ्यादृष्टिजन तिनितै वचनालाप करै अथवा न करै।

भावार्थ—मुनिनिकू आचार्यनितै बोलना उचित है, अन्य मुनिनितै प्रयोजनके वशतै बोलै। विनाप्रयोजन 'जैसे अन्य भेषी दशपांच मेले होय वचनालाप किया करे तैसे' न करै। अर श्रावकनितै वा मिथ्यादृष्टिजननितै जो आपका परका हित होता दीखे तौ बोले अर आपका वा परका हित नहीं होता दीखे तो नहीं बोले। बहुरि कदाचित् कापालिक कपाल राखनेवाले भेषीकी अथवा चांडालादिक वा रजस्वला स्त्री इनिका स्पर्श हो जाय तो प्रासुक जल मस्तकपरि ऐसे नाखै 'जैसे दंड जलमें प्रवेश करे' तैसे जल डारि, अर जा दिन उपवास करता संता पंचनमस्कार मंत्र जपे, बहुरि दिनका प्रभात काल अर अस्तकाल दोऊ कालमें उद्योतका अवसरमें संस्तर जो शय्या आसन उपकरण सोधना अर आवश्यकादिकनिमें प्रवृत्ति करना उचित है। बहुरि जो एकाकी आर्यिका प्रश्न करे तो एकाकी मुनि वचन नहीं बोले। अर जो गणिनीनै आगे करि अर प्रश्न करे तौ, पूछ्याको उत्तर करे। सो हरेक कोऊ साधु तौ उत्तरही नहीं करे। अर जो अनेक गुणनिका धारक होय सो उत्तर देवे। बहुरि संयमी आर्यिकानितै वृथा आलाप कथा नहीं करे तथा जा स्थानमें आर्यिका होय ता स्थानमें भोजन न करे, खडा नहीं रहे, आसन बैठना नहीं करे, शयन नहीं करे, व्याख्यान नहीं करे। बहुरि जो मुनि आपका सम्यक् आचार तथा धर्मका आपका जस चाहे सो स्त्रीनिके आवनेके कालमें एकांतमें अकेला कदाचित् नहीं ही तिष्ठे। जाका नामही परिणाम बिगाडे तो अंगका देखना तो कहा कहा अनर्थ नहीं करे? कामकरि भ्रष्टही होय। जातै यह चिरकालका दीक्षित है, यह आचार्य है, यह वृद्ध है, वा गुणनिकरि स्थिर है, यह श्रुतका पारगामी है, यह तपस्वी है, या प्रकार कामकै गिणती नहीं है। सर्वकू तत्काल भ्रष्ट करे है। विधवाकू तथा तपस्विनीकू तथा कन्याकू तथा कुलटाकू तथा वेश्यादिकनिकू संग करता साधु क्षणमात्रमें अपवादको स्थान होय है। यातै साधुनिकू स्त्रीमात्रहीका संग, अवलोकन, वचनालाप, उपदेश त्यजना योग्य है। बहुरि जाका अंग निश्चल होय, अतिगंभीर होय, कोईकरि परिणाम न चलै, तथा समस्त क्षुधादि परिषहका सहनेवाला होय, अतिशयरूप जाका ज्ञान चारित्र होय, प्रमाणीक वचन बोलने वाला

होय सो आर्यिकानिका उपदेशक होय है। अर जो येते गुणसमूहरहित कोऊ यति संयमी मदका उदयतैं आर्यिकानिकूं उपदेशदाता हो जाय, तो जिनेन्द्रकी आज्ञाभंगादि महादोषनिको पात्र होय है।

बहुरि अब प्रकरण पाय आर्यिकानिहूका समाचार कहे हैं। जो आर्यिकाका समूह लज्जा विनय वैराग्य सम्यक् आचरणकरि भूषित, ते दोय चार दस बीस इत्यादि सामिल रहे, एकाकी नहीं रहे। अर जो स्थानक गृहस्थसूं मिल्यो हुवो नहीं होय तथा गृहस्थांका गृहनितैं अति दूरिहू नहीं होय, अर अति नजीकहू नहीं होय, पापवर्जित शुद्धस्थान होय तैठे बसैं। अर परस्पर रक्षा अर अनुकूलताकी वृत्तिमें तत्पर वे बाकी रक्षा करे वे बाकी करे। एकेक वृद्ध आर्यिका सामिल होय मौनकरिके भिक्षाके अर्थि गृहस्थनिमें उच्चकुलके गृहस्थनिके घरनिप्रति परिभ्रमण करे। बहुरि कदाचित् भोजनका अवसरविनाहू अवश्य गृहस्थके घर जावाजोग्य धर्मकार्य होय तौ, गणिनीकी आज्ञातैं दोय तीन च्यार इत्यादि गमन करे, एकाकी गृहस्थके घर नहीं ही जाय। बहुरि आर्यिका पांच हाथका अन्तरकरि आचार्यनिकूं नमस्कार करे, षट् हस्तके अन्तराले होयकरि उपाध्यायकूं नमस्कार करे, सप्त हस्तके अन्तराले होयकरि साधुनिकूं नमस्कार करे। सो नमस्कार पशुशय्या करिके करे। और कर्मभूमिकी द्रव्यस्त्रीके आदिका तीन संहनन नहीं होय है, तथा वस्त्रग्रहण करनेतैं चारित्रहू नहीं होत है। तातैं द्रव्यस्त्रीके मुक्ति कहना मिथ्या है। अर जो चारित्र होय तो देशचारित्र पंचमगुणस्थानही होय, अर जो व्रतमात्रतैंही मुक्ति हो जाय, तो पुरुषांके नग्नपणा धारण करना वृथा होय, गृहस्थकैंभी मुक्ति होजाय, तथा तिर्यंच देशव्रतीकेभी रत्नत्रय होय है, ताकेभी मुक्ति होना होय। तातैं स्त्रीके मुक्ति नहीं हो है।

बहुरि जो आर्यिका रजस्वला होय तो तीन दिनपर्यंत नीरस भोजन करे वा एकांतरे भोजन करे वा तीन उपवास करे, चौथे दिन स्नान करि अर समीचीन पंच परमगुरुका जाप्य करती शुद्ध होय है। बहुरि आर्यिका गान गीत नहीं करे, तथा रुदन स्नान विलेपनादिकरि रहित होय है, तथा जाति कीर्ति अर उचित आचारसंयुक्त होय है, तथा ज्ञानाभ्यास तथा क्षमा तथा आर्जवगुणसंयुक्त होय है। बहुरि विकाररूप वस्त्र वेष जाके नहीं होय है अर आपका देहहूमें निःस्पृह होय है। अर पढना पढावना व्याख्यानादि करना ऐसा आर्यिका का समाचार परमागममें कह्या है।

अब औरहू साधुका समाचार कहे हैं। जो मुनीश्वर आपका आवासदेशतैं निकलनेकी इच्छा करे, शीतलस्थानतैं उष्णस्थानमें जाय तथा उष्णस्थानतैं शीतलस्थानमें जाय तदि पींछीतैं शरीरका प्रमार्जन करना उचित है। तैसेंही प्रवेश करताहू शीत उष्ण जीवकी बाधा दूरि करनेकूं प्रमार्जन करना उचित है। तथा श्वेत रक्त कृष्ण गुणसहित भूमिविषें

अन्यभूमिका अन्यभूमिमैं प्रवेश करना होय तहां कटिप्रदेशनीचे प्रमार्जन पीछीतै करना उचित है। तथा जलमें प्रवेश करनेतैं सचित्त अचित्त रज पदादिकविषै लागि होय, सो जितने काल चरणनितै न गिरे तितने गमन नहीं करे, जलके समीपही तिष्ठै। बहुरि जो महान् नदीका उतरने में बोले, तटभागविषै सिद्धवन्दनाका पाठपूर्वक सिद्धवन्दना करिके अर प्रतिज्ञा करे–जितने पैले तटकूं नहीं जाऊं तितने मैं सर्व शरीर वा भोजन वा उपकरण त्याग करूं हूं। ऐसे प्रत्याख्यान जो भोजनादिकनिका त्यागग्रहणकरि अर चित्तकूं सावधान करिके नावविषै चढै अर परतटमें नावतै उतरिकरि अतीचार दूरि करनेकूं कायोत्सर्ग करे। ऐसेंही महावनीमें प्रवेश करे तदि आहारादिकका त्याग करे, जो, वनीके पार हो जाऊंगा तदि भोजन करूंगा तथा वनीमेतै निकले तदि कायोत्सर्ग करे।

बहुरि भिक्षा भोजनके निमित्त गृहांमें प्रवेश करनेका इच्छुक होय, तदि पूर्वेंही अवलोकन करे—जो–ऐठें बलध वा भैंस वा प्रसूतीकूं प्राप्त भई गाय या दुष्ट मींडा व दुष्ट श्वान वा भिक्षानै आये श्रमण मुनि हैं, अक नहीं हैं। जो नहीं होयतो प्रवेश करे। अथवा जिस गृहमें तिर्यंच भयनै प्राप्त नहीं होय तहां प्रवेश करे। अर जहां तिर्यंच भयभीत होय तो यतीकूं बाधा करे अथवा भयकरिके भागे तो त्रसस्थावरजीवनिकूं बाधा करे, तथा तिर्यंच क्लेशनै प्राप्त होय तथा खाडा गर्त इत्यादिकमें पडै तौ मरणकूं प्राप्त होय। तातै जैसे तिर्यंचनिके बाधा नहीं उपजती जानै तथा तिर्यंचनितै आपके बाधा नहीं होय तैसे प्रवेश करे। बहुरि गृहस्थके घरमें अन्य भिक्षा लेनेवाला नहीं होय वा भिक्षा लेय निकलि आये होय तदि गृहस्थका घरमें प्रवेश करे। अर जो अन्य भिक्षा लेनेवालाहू होय अर आपहू प्रवेश करे, तदि कोई दातार विचारे "बहोत भिक्षुक आगये अब कौनकूं देवें? बहोतकूं देनेकूं हम असमर्थ हैं", या विचारि कोऊकूं भी नहीं देवे, तदि भोगांतराय-कर्मका बन्ध होवे। तथा अन्य भिक्षा लेनेवाले अनेक भेषधारीहू साधुनिका तिरस्कार करे—"जो हम तौ आशा करि इस गृहमें आये अर हमारे देनेके मध्य यह कौन आया?" या प्रकार ईर्षा करि तिरस्कार करे हैं। तातै अन्य भिक्षाचारी नहीं होय तदि प्रवेश करे।

बहुरि गृहस्थनिके गृहनिमें अन्य भिक्षाचारी जेठें स्थिति करि भिक्षा लेवे अथवा जा स्थानमें तिष्ठतेनिकूं गृहस्थ भिक्षा देवे तितना प्रमाण भूमिका भागमे यति प्रवेश करे। बहुरि सकडे द्वारमें बहोत जननिके सामिल होय प्रवेश नहीं करे, अर प्रवेश करे तौ शरीरमें पीडा होय अथवा संकुचित अग हुवा प्रवेश करता देखे तो कोऊ अन्य निकसते प्रवेश करते क्रोध करै वा हास्य करे तथा आपकी विराधना होय, तथा मिथ्यात्वको

आराधना होय तथा द्वारके पसवाडेमें तिष्ठते जीवनिके पीडा होय, आपके पीडा होय । तथा ऊपरितें लटकते तिनिके बाधा करे तातें ऊपरि नीचे पसवाडेमें अवलोकन करि बहोत सघट्टरहित प्रवेश करना उचित है । बहुरि भूमि जो तत्कालकी लिप्त होय तथा जल सींचनेकरि आली होय तथा हरित पत्र फल पुष्पादिकरि व्याप्त होय वा जीवनिके बिल जामें बहोत होय वा गृहस्थजन भोजनवास्ते मंडल चोका करि राख्या होय वा देवतासहित होय वा निकट लोकनिका शयन आसन होय वा मलमूत्रादिकरि व्याप्त होय ऐसी भूमिमें प्रवेश नहीं करै । इत्यादि समाचारमें कुशलपणा बहोत प्रकारके आचार्यनिका संघमें प्रवेश करनेतें होय है । औरहू योगीश्वरनिकी स्थान भोजन गमन आगमन इत्यादि क्रियाका ज्ञाता होय है । मैं गुरुकुलमें बसनेवाला हूं, सूत्रका अर्थका ज्ञाता हूं, मोकूं आचारका क्रम तथा सूत्रका अर्थ अन्यपासि नहीं जानना बाकी है, याप्रकार अभिमान नहीं करना, गुरुनिकी शिक्षामें उद्यमी रहनाही उचित है । गाथा—

कंठगदेहिं वि पाणेहिं साहुणा आगमो हु कादव्वो ।

सुत्तस्स य अत्थस्स य सामाचारी जध तहेव ॥५६॥

अर्थ—कंठगतप्राणनिकरि सहितहू साधुकूं आगम पढना सीखना उचित है । जैसें सूत्रका अर्थका समाचारी होय तैसें आगमकाही आराधना करहू ।

इति या प्रकार अनियतविहार नामा छटा अधिकारमें अतिशयार्थकुशलपणा च्यारि गाथानिकरि दिखाया । अब क्षेत्रपरिमार्गण जो आराधनाके योग्य क्षेत्रका अवलोकनहू अनियतविहारतें होय सो दिखावे हैं । गाथा—

संजदजणस्स य जहिं फासुविहारो य सुलभवुत्ती य ।

तं खेत्तं विहरन्तो णाहिदि सल्लेहणाजोग्गं ॥५७॥

अर्थ—देशांतरनिमें विहार करता जो साधु सो जिस देशमें जीवबाधारहित बहोत जल कर्दम हरित अंकुर त्रसरहित क्षेत्रमें मुनिनिका प्रासुक विहार जीवबाधारहित गमनके योग्य होय तिस क्षेत्रकूं जानै । बहुरि जा देशमें साधुकूं आहार पान मिलना सुलभ होय तथा शीत उष्णादिककी बाधारहित आपके वा परके सल्लेखना के योग्य क्षेत्र होय ताकूं जानेगा, तातें अनियतविहार योग्य है । आगे कहे हैं—जो-देशांतरनिमें विहार करनेहीतें अनियतविहारी नहीं होय है, याप्रकारहू होय है, सो कहे हैं । गाथा—

वसधीसु य उवधीसु य गामे णयरे गणे य सण्णिजणे ।
सव्वत्थ अपडिबद्धो समासदो अणियदविहारो ॥५८॥

अर्थ—वसतिकामें, उपकरणमें, ग्राममें, नगरमें, संघमें, श्रावकनिमें, ममताका बन्धनने नहीं प्राप्त होय ताकै अनियत विहार है । या वसतिकाविक हमारो, मै याका स्वामी, याप्रकार संकल्परहित सर्व परद्रव्य परक्षेत्र परकाल परभावादिकनिमें नहीं परिणामकरि बंध्या, ताकै अनियतविहार होय है ।

इति भक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषै अनियतविहार नामा छटा अधिकार बारह गाथानिमें समाप्त किया । आगे परिणाम नामा सातमा अधिकार आठ गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

अणुपालिदो य दीहो परियाओ वायणा य मे दिण्णा ।
णिप्पादिदा य सिस्सा सेयं खलु अप्पणो कादुं ॥५९॥

अर्थ—मैं बहोत कालपर्यंत पर्यायकोहू पालना करी, रक्षा करी । कैसी पर्याय ? दर्शन ज्ञान चारित्र तपरूप । अर जिनसूत्रके अनुसार परके अर्थि निर्दोष ग्रन्थनिका अर्थनिकी वाचना करि ज्ञानदानहू दिया । बहुरि व्युत्पन्न कहिये ज्ञान की परम हद्द ताकूं प्राप्त भये ऐसे शिष्यहू उत्पन्न किये । ऐसें आपका अर परजीवनिका उपकार करि काल व्यतीत किया । अब आत्माका कल्याण करना उचित है, ऐसे परिणाम करे । गाथा—

किण्णु अधालंदविधी भत्तपइण्णेंगिणी य परिहारो ।
पादोवगमणजिणकप्पियं च विहरामि पडिवण्णो ॥६०॥

अर्थ—तो, कहा करना ? भक्तप्रतिज्ञा तथा इंगिनी तथा प्रायोपगमन नामा जिनकल्पित मरणकी विधिनें प्राप्त होय प्रवर्तन करस्यूं । गाथा—

एवं विचारयित्ता सदि माहप्पे य आउगे असदि ।
अणिगूहिदबलविरिओ कुणदि मदिं भत्तवोसरणे ॥६१॥

अर्थ—याप्रकार विचार करिके अर स्मरणका महिमानै होता संता, अर आयुकूं मन्द रहतां संता अपना बलवीर्यकूं नहीं छिपायकरिके भक्तप्रत्याख्यान जो क्रमकरि आहारका त्याग तामें बुद्धि करे। भावार्थ—ज्ञानी ऐसा विचार करे, जो मैं बहोत काल देहकी पालनाहू करी अर निर्दोष ग्रन्थनिका आराधनहू किया अर चारित्रधर्ममें प्रवर्तनेवाले शिष्यहू उत्पन्न कीये। तातें अब जितने मनद्वारे स्मरण जो यादिगीरी सो बणी रही है, तितने भक्तप्रतिज्ञा नामा संन्यास मरण, तामें मोकूं उद्यम करना उचित है, अब विलंबका अवसर नहीं है, आयु अल्प रहगई है। तातें अब धीरे धीरे भोजनका त्यागादिकमें जतन करना योग्य है। आगे भक्तप्रत्याख्यानका औरहू कारण कहे हैं। गाथा—

पुव्वुत्ताणण्णदरे सल्लेहणकारणे समुप्पण्णे ।

तह चेव करिज्ज मदिं भत्तपइण्णाए णिच्छयदो ॥६२॥

अर्थ—जैसें अल्प आयु होता सल्लेखनामरण करै, तैसें पूर्वे कहि आये जे असाध्यरोगादिक भक्तप्रत्याख्यानके कारण, तिनिमैंतें एकहू कारण उत्पन्न होतां, अनुक्रमकरि भोजनका त्यागरूप भक्तप्रत्याख्यानमरणमेंहू निश्चयतें बुद्धि करे। आगे आराधना करनेवालेका परिणाम तीन गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

जाव य सुदी ण णस्सदि जाव य जोगा ण मे पराहीणा ।

जाव य सद्धा जायदि इन्दियजोगा अपरिहीणा ॥६३॥

जाव य खेमसुभिक्खं आयरिया जाव णिज्जवणजोग्गा ।

अत्थि तिगारवरहिदा णाणचरणदंसणविसुद्धा ॥६४॥

ताव खमं मे कादुं सरीरणिक्खेवणं विदुपसत्थं ।

समयपडायाहरणं भत्तपइण्णाणियमजण्णं ॥६५॥

अर्थ—जो पूर्वकालमें अनुभव कीया जो स्व अर पररूप पदार्थ. ताकूं यादि करना यह स्मृति है। सो ये स्मृति वस्तुका यथावत् जनावनेवाला मतिज्ञान है। या स्मृतिहीतें श्रुतज्ञान होय है। अर स्मृतिहीतें यथावत् चारित्रका पालन होय है। तातें सर्वव्यवहार परमार्थका मूल स्मृतिही है। सो जेतें मेरे स्मृति नहीं बिगडे तितनें सल्लेखना करनेमें सावधान होय उद्यम

करना। तैसेंही विचित्रतपकरि कर्मकी विपुलनिर्जराका करनेका इच्छुक जो मैं, ताके शक्तिके घटनेतैं आतापनयोगादिक तप करने की सामर्थ्य नहीं बिगडे, तितने सल्लेखनामें उद्यमी होना। अथवा जेतैं मेरी मनवचनकायरूप जोगनकी प्रवृत्ति पराधीन नहीं होय तेतैं मोकूं सल्लेखनामैं उद्यमी होना। तथा जेतैं रत्नत्रय आराधनेकी श्रद्धा दृढप्रतीति बनी रही है तितने मोकूं सल्लेखनामैं सावधान होना। जातैं प्रबलमोहका उदयकरि कदाचित् श्रद्धान बिगडि जाय तो फेरि होना दुर्लभ है। बहुरि जेतैं नेत्रादिक इन्द्रियनिके देखना, श्रवण करना इत्यादि रूपादिक विषयनिका ग्रहण करनेरूप सामर्थ्य नहीं बिगडे, तितने मोकूं सल्लेखनामें सावधान होना। जातैं इन्द्रियनिकै देखने सुनिनेकी सामर्थ्यही नहीं रहेगी तदि संयम रहना कठिन है। बहुरि जेतैं स्वचक्रपरचक्रका तथा शरीरसम्बन्धी व्याधिका तथा मारीका अभावरूप क्षेम प्रवर्तै है तथा प्रचुरधान्यका उपजनारूप सुभिक्षपणा वर्तै है तितने मोकूं सल्लेखना करनेका यत्न करना। जातैं क्षेम अर सुभिक्ष नहीं होय तो निर्यापक आचार्यनिका मिलना दुर्लभ होय है। बहुरि जेतैं ऋद्धिका गर्वरहित तथा रसका गर्वरहित तथा सुखका गर्वरहित ज्ञानदर्शनचारित्रकरिके विशुद्ध ऐसे सल्लेखनाके करावनेवाले निर्यापकपणाके योग्य आचार्य सुलभ हैं, तेतैं मोकूं सल्लेखनामरणमें उद्यमयुक्त होना श्रेष्ठ है। जातैं जाकै ऋद्धिका गर्व होय सो आपही असंयमतैं नहीं डरे है, सो परके असंयमके कारणानैं कैसैं दूरि करेगा ? अर जाके रसरूप भोजन मिलनेतैं गर्व होय ऐसा रसगर्वका धारक तथा जाकै साताका उदयमें गर्व ऐसे रसगारव सातगारवके धारक आपके किंचिन्मात्रहू क्लेश सहनेमें असमर्थ सो आराधकका शरीरको वैयावृत्ति टहल कैसे करेगा ? जो आपही रागी सो परके कैसैं वैराग्य प्राप्त करै ? तातैं ऋद्धिगारव रसगारव सातगारवरहितही निर्यापक होय है।

बहुरि जीवादिक पदार्थनिका याथात्म्य श्रद्धान सो दर्शनशुद्धि, तथा जीवादिपदार्थनिका याथात्म्य जानना सो ज्ञानशुद्धि, तथा रागद्वेषरहित आत्माकी परिणति सो चारित्रशुद्धि, सो दर्शन ज्ञान चारित्र शुद्ध जाकै होय सोही आपका अर परका उपकारक निर्यापक आचार्य होय है। निर्यापकविना रत्नत्रयका निर्वाह होना कठिन है। जातैं ऋद्धिगारव रसगारव सातगारवरहित दर्शन ज्ञान चारित्रकरि शुद्धही निर्यापक गुरु होय है। तातैं जितने हमारी स्मृति नहीं बिगडे तथा मन वचन काय पराधीन नहीं होय तथा श्रद्धान न बिगडे तथा इन्द्रियहीन नहीं होय तथा क्षेम सुभिक्ष बण्यो रहे तथा आराधना मरणका सहायक निर्यापक गुरु सुलभ होय तितने मोकूं पंडितांके प्रशंसायोग्य ऐसा शरीरका निक्षेपण कहिये शरीरका त्यजना युक्त है। कैसी रीति शरीर त्यजना ? जामैं समय जो धर्म ताकी जीतिकी पताका जैसे ग्रहण होय तैसे

आराधनामरण करना। बहुरि भोजनका क्रमकरि है त्याग जामैं, अर अतका उपजावनेवाला ऐसा समाधिमरण अवलंबन करना योग्य है। आगे परिणामका गुणकी महिमा कहे हैं। गाथा—

एवं सदिपरिणामो जस्स दढो होदि णिच्छिदमविस्स।
तिव्वाए वेदणाए वोच्छिज्जदि जीविदासा से ॥६६॥

अर्थ—समाधिमरणमें निश्चित है बुद्धि जाकी ताकै तीव्रवेदना होतां भी ऐसा दृढ परिणाम होय है, जो जीवनेमें वांछाका अभाव होय जाय है। भावार्थ—जाकै आराधनामरण करनेमें दृढ परिणाम होय है, ताकै तीव्र वेदना होतांभी ऐसा परिणाम नहीं होय है-जो मरणवेदना बहोत बुरी! अबै कोई इलाजतें जीवना होय तो श्रेष्ठ है! ऐसी वांछा ही का अभाव होय है।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषै परिणाम नामा सातमां अधिकार पूर्ण भया। आगे उपधित्याग नामा आठमा अधिकार नव गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

संजमसाधणमेत्तं उवधिं मोत्तूण सेसयं उवधिं।
पजहदि विसुद्धलेस्सो साधू मुत्तिं गवेसन्तो ॥६७॥

अर्थ—जाके लेश्याकी उज्ज्वलता भई ऐसा वीतरागी साधु सो संयमका साधनमात्र जो कमंडलु पींछीबिना और संपूर्ण उपधि जो परिग्रह ताका त्याग करे है। कैसा है साधु? मोक्ष जो कर्मनितैं छूटना ताहि अवलोकन करे है। गाथा—

अप्पपरियम्म उवधिं बहुपरियम्मं च दोवि वज्जेइ।
सेज्जा संथारादी उस्सग्गदं गवेसंतो ॥६८॥

अर्थ—उत्सर्गपद जो सर्वोत्कृष्ट त्यागपदकूं अवलोकन करता जो साधु, सो जामें अल्प परिकर्म कहिये— जामैं अल्प सोधनादिक अर बहुपरिकर्म कहिये जामै बहोत सोधन अवलोकन ऐसो शय्या वा संस्तर इत्यादिक दोऊ उपधिका त्याग करे है। गाथा—

पंचविहं जे सुद्धि अपाविदूण मरणमुवणमन्ति ।
पंचविहं च विवेगं ते खु समाधि ण पावेन्ति ।।६९।।

अर्थ—पंचप्रकारकी जो शुद्धि अर पंचप्रकार जो विवेक ताही नहीं प्राप्त होय करिके जे मरणकूं प्राप्त होय हैं, ते समाधिमरणकूं नहीं पावत हैं । गाथा—

पंचविहं जे सुद्धि पत्ता णिखिलेण णिच्छिदमदीया ।
पचविह च विवेगं ते हु समाधि परमुवेंति ।।७०।।

अर्थ—जे निश्चितबुद्धि पंचप्रकारकी शुद्धि तथा पंचप्रकारका विवेक, ताहि समस्तपणाकरि प्राप्त होय हैं, ते सर्वोत्कृष्ट समाधिमरणकूं प्राप्त होय हैं । आगे पंचप्रकार शुद्धि कहा है ? सो कहे हैं । गाथा—

आलोयणाए सेज्जासंथारुवहीण भत्तपाणस्स ।
वेज्जावच्चकराणं य सुद्धो खलु पंचहा होइ ।।७१।।

अर्थ—आलोचनाशुद्धि, शय्यासंस्तरशुद्धि, उपकरणशुद्धि, भक्तपानशुद्धि, वैयावृत्यकरणशुद्धि ये पंचप्रकारकी शुद्धि है । तहां मायाचार जो मनकी कुटिलता अर असत्यवचन इनिकरि रहित गुरांसूं अपने दोषका जनावना, सो आलोचना-शुद्धि है । स्त्रीनपुंसकतिर्यंचादिरहित निर्दोषस्थानमें शय्या संस्तर करना, सो शय्यासंस्तरशुद्धि है । बहुरि पीछी कमंडलु शरीर पुस्तक इनिमें ममत्वका त्याग, सो उपकरणशुद्धि है । बहुरि उद्गमादि छियालीस दोषरहित, याचनारहित, प्रतिगृद्धि-तारहित निर्दोष भोजनपान करना, सो भक्तपानशुद्धि है । संयमीके योग्य वैयावृत्तिका अनुक्रमके जाननेवाले अर परहितमें उद्यमी अर वात्सल्यताके धारक साधुनिका संग मिलना, सो वैयावृत्यकरणशुद्धि है । अथवा औरहू पंच शुद्धि कहे हैं । गाथा—

अहवा दंसणणाणचरित्तसुद्धी य विणयसुद्धी य ।
आवासयसुद्धी वि य पंच वियप्पा हवदि सुद्धी ।।७२।।

अर्थ—अथवा निःशंकित निःकांक्षित आदिक सम्यक्त्वके गुणनिविषै जो आत्माका परिणाम होना, सो दर्शनशुद्धि होय बहुरि जो कालाध्ययनादि ज्ञानके विनयकरि ज्ञानकी आराधना, सो ज्ञानशुद्धि है। बहुरि पंचविंशति भावनासहित चारित्र पालना, सो चारित्रशुद्धि है। बहुरि या लोकसम्बन्धी राज्यसंपदा धनसंपदा भोगसंपदा अर परलोकसम्बन्धी देवादिकांकी भोगसंपदामें वांछा नहीं करना, सो विनयशुद्धि है। बहुरि मनतें सावद्ययोगतें निवृत्ति होना, तथा जिनेन्द्रके गुणनिमें अनुराग करना, तथा जिनवन्दनामें प्रवर्तना, तथा पूर्वे किया दोषकी निन्दा करना, तथा शरीरको असारता अर उपकाररहितता भावना, सो आवश्यकशुद्धि है। ऐसेहू पंचशुद्धि समाधिमरणका कारण है। आगे पंचप्रकार विवेक कहे हैं। गाथा—

इंदियकसायउवधीण भत्तपाणस्स चावि देहस्स।
एस विवेगो भणिदो पंचविधो दव्वभावगदो ॥७३॥

अर्थ—इन्द्रियविवेक, कषायविवेक, भक्तपानविवेक, उपधिविवेक, देहविवेक ऐसें पंचप्रकारका विवेक, ताके द्रव्यभावकरि दोय दोय भेद हैं। तहां जो नेत्रादिक इन्द्रियनिके विषयनिमें रागद्वेषरूप नहीं प्रवर्तना, सो इन्द्रियविवेक है। तहां जो अनेक प्रकारके द्रव्य रत्न नगर देश वन वापिका महल मन्दिर स्त्री सेना सामन्त इत्यादिकनिके अवलोकनमें नहीं प्रवर्तना सो चक्षुरिन्द्रियविवेक द्रव्यथकी जानना। बहुरि इनके देखनेमें परिणामही नहीं करना, सो भावचक्षुविवेक है। बहुरि चेतनके शब्द तथा अचेतन जे वीणा बांसरी मृदंग इत्यादिक अचेतनके शब्द वा राजकथा भोजनकथा स्त्रीकथा देशकथा वा नाना प्रकारके रागके करनेवाले गीत हास्य विनोद शृङ्गारकथा तथा युद्धका है कथन जामें तथा कामप्रवर्धिनी जामें कथा, ऐसे काव्यग्रन्थ नाटकग्रन्थ तथा रागी द्वेषी कामी क्रोधी लोभी ऐसे कुदेव कुगुरु तिनिकी कथा तथा हिंसाके पोषनेवाले जे कुधर्म तिनिकी कथा तथा लोकनिके विषय कषाय कलह अभिमान भोग उपभोगरूप कथाके श्रवणमें नहीं प्रवर्तना तथा वचनसूं नहीं कहना तथा भाव इनिमें नहीं लगावना सो कर्णेन्द्रियविवेक है। बहुरि स्वभावतेंही सुगंध तथा परस्परसंयोगतें उपज्या सुगन्ध जिनमें पाइये ऐसे स्त्रीपुरुष चन्दन कर्पूर कस्तूरी इत्यादि द्रव्यनिके गन्धग्रहण करनेमें काय वचनकरि नहिं प्रवर्तन करना, तथा परिणामकरि अभिलाषा छोडना, सो घ्राणेन्द्रियविवेक है। बहुरि नानाप्रकारके भोजनादिक रसनेन्द्रियके विषय, तिनिविषें मन वचन कायकरि नहीं प्रवर्तना सो रसनेन्द्रियविवेक है। बहुरि स्त्रीनिके

कोमल अंग तथा कोमल शय्या आसन तथा शीतउष्णजलादिक वस्तूनिमें मनवचनकायकरि स्पर्शनेका अभाव सो स्पर्शनेन्द्रियविवेक है। बहुरि ऐसेही अशुभके स्पर्शन स्वादन सूंघन अवलोकन श्रवण इनिमें मनवचनकायकरि ग्लानिभावका छोडना, सो इन्द्रियविवेक है।

बहुरि भृकुटी चढावना, लालनेत्र करना, ओष्ठ डसना, दंतनिके कटकटाट करना, शस्त्रग्रहण करना तथा मारूं छेदूं भेदूं काटूं बालूं विध्वंसूं ऐसे वचनका बोलना तथा ये दुष्ट वैरी मरिजाय बलिजाय लुटिजाय बिगडिजाय इत्यादि क्रोधकषायजनित जो प्रवृत्ति ताका अभावकरि परमक्षमारूप होना सो क्रोधकषायविवेक है। बहुरि जो कायकी कठिनता करना, मस्तकका ऊंचा करना, ऊंचे आसन बैठि जगतकी निन्दा करनी, अपनी प्रशंसा करनी, पूज्यपुरुषनिकी पूजाका अभाव करना, गुणवन्तनिका अनादर करना, ज्ञानवाननितें वा तपस्वीनितेंहू सत्कार चाहना, तथा मोतें अधिक लोकमें कौन कुलवान् है? कौन ज्ञानवान् है? कौन तपस्वी है? कौन बलवान् है? कौन रूपवान् कलावान् गुणवान् शूरवीर दातार उद्यमी उदार? कोऊही अधिक दीखे नाहीं, इत्यादिक मानकषायजनित जो प्रवृत्ति, ताका मार्दवगुणकरि अभाव करना, सो मानकषायविवेक है। बहुरि कहना, और करना और दिखावना और, बोलनेमें चालनेमें तपमें उपदेशमें मायाचारजनित जो प्रवृत्ति, ताका आर्जव नामा गुणकरि अभाव करना, सो मायाकषायविवेक है। बहुरि योग्यायोग्यका विचार नहीं करना अर पांचू इन्द्रियनिके विषयनिमें अतिलंपटतातें प्रवृत्ति करना, त्यागनेयोग्यकूंहू नहीं त्यजना, परवस्तुमें आत्मबुद्धि करना, इत्यादि लोभकषायजनित जो प्रवृत्ति, ताका शौचगुणकरि अभाव करना, सो लोभकषायविवेक है।

बहुरि अयोग्य आहारपान नहीं करना, छियालीस दोष, तथा छ कारण, चौदह मल, अर बत्तीस अंतराय इनिकूं टालि शुद्ध भोजन करना सो भक्तपानविवेक है। बहुरि रत्नत्रयका साधक कारण जो शरीर तथा दयाका उपकरण मयूरपीच्छिका तथा ज्ञानका उकरण पुस्तक तथा शौचका उपकरण कमंडलु इनिविना अन्य जे शास्त्र वस्त्र आभरण वाहनादिक उपकरणनिकूं मनवचनकायकरि नहीं ग्रहण करना सो उपधि नामा विवेक है। बहुरि देहमें ममत्वभावरहित रहना सो देहविवेक है। अथवा पंचप्रकार विवेक ऐसे जानना। गाथा—

अहवा सररिसेज्जा संथारुवहीण भत्तपाणस्स।
वेज्जावच्चकराण य होइ विवेगो तहा चेव ॥७४॥

अर्थ--अथवा शरीरतं विवेक, वसतिकासंस्तरविवेक, उपकरणविवेक, भक्तपानविवेक, वैयावृत्त्यकरणविवेक ऐसेहू पंचप्रकार विवेक है। तहां जो अपने शरीरकरि अपने शरीरका उपद्रव दूरि नहीं करना तथा अपने शरीरकूं उपद्रव करते जे मनुष्य तिर्यंच देव तिनकूं तथा डास मांछर विछू सर्प श्वान इत्यादिकनिकूं हस्तकरि नहीं निवारण करे तथा मोकूं उपद्रव मति करो, हमारी रक्षा करो, मैं दुःखित हूं इत्यादिकवचनकरि नहीं निवारण करे वा पीछिकादि उपकरणनिकरि नहीं निवारण करे तथा विचारे--यो शरीर विनाशीक है, पर है, अचेतन है, मेरा स्वरूप नहीं, इत्यादिक स्वरूपका चितवन सो शरीरविवेक है। वसतिकासंस्तरमें रागरहित शयन आसन करना सो वसतिकासंस्तरविवेक है। अथवा रागकारी स्थानविषै शयन आसन नहीं करना, सो वसतिकासंस्तरविवेक है। बहुरि उपकरणमें ममताका अभाव सो उपकरणविवेक है। बहुरि भोजनमें वा जलादिक पीवनेमें अतिगृद्धिताका अभाव, सो भक्तपानविवेक है। बहुरि परतें वैयावृत्य उपकार नहीं चाहना, सो वैयावृत्यकरणविवेक है। भावार्थ--इन्द्रियनिके विषय तथा क्रोधादिक च्यारि कषाय तथा शरीर उपकरण भोजन वसतिकादिकनिमैं ममताभाव का त्यागना ताकूं परिग्रहत्याग कहिये है। आगे परिग्रहत्यागके क्रमका उपदेश करे हैं। गाथा--

सव्वत्थ दव्वपज्जयममत्तिसंगविजडो पणिहिदप्पा।
णिप्पणयपेमरागो उवेज्ज सव्वत्थ समभावं ॥७५॥

अर्थ--सर्वत्र कहिये सर्व देशमें प्रणिहितात्मा कहिये प्रकर्षताकरि स्थाप्या है वस्तुका यथावत् स्वरूपका ज्ञानमें आत्मा जानें ऐसा जो सम्यग्ज्ञानी सो द्रव्य जो जीवपुद्गलादिक अर पर्याय जो शरीर स्त्री पुत्र मित्रादिक, इनिमैं ममतारूप परिणाम सोही जो संग कहिये परिग्रह, ताकरि रहित होय, सो आपके रोगरहितपणा तथा ऋद्धि बल ऐश्वर्यसहितपणा तथा देवपणा चक्रवर्तीपणा अहमिन्द्रपणा वा देवादिकनिके भोग स्पर्श रस गंध वर्ण इनिकूं नहीं वांछे है, बहुरि पर्यायनिविषै स्नेह तथा प्रीति तथा राग जो आसक्तता ताकरि रहित सर्व द्रव्यपर्यायनिमैं समभाव जो वीतरागता ताही प्राप्त होय है, ताकेही उपधित्याग होय है। भावार्थ--जो सर्ववस्तुका यथावत् स्वरूपका ज्ञाता जो सम्यग्ज्ञानी सो सर्व द्रव्यपर्यायनिमें ममतारहित होय स्नेह और प्रेम और राग याकै वशी नहीं होता सर्वमें समभावकूं प्राप्त होय है।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरण के चालीस अधिकारनिविषैं उपधित्याग नामा अधिकार नव गाथानिमैं समाप्त किया। आगे श्रिति नामा नवमा अधिकार छ गाथानिकरि कहे हैं। गाथा--

जा उवरि उवरि गुणपडिवत्ती सा भावदो सिदी होदि ।
दव्वसदी णिस्सेणी सोवाणं आरुहंतस्स ॥७६॥

अर्थ--जो ज्ञानाभ्यास करनेमें तथा तपश्चरण करनेमें जो दिनदिन चढता परिणाम सो द्रव्यश्रिति है । अर जो ऊपरिऊपरि ज्ञान श्रद्धान समभावरूप गुणांकी प्राप्ति, सो भावश्रिति कहिये, जैसे ऊंचीभूमिमें चढते पुरुषके ऊर्ध्वभूमि चढनेमें अवलम्बनरूप पैडीनिकी पंक्ति वा निश्रेणी होत है । भावार्थ--जो सल्लेखना चाहे, सो ज्ञान श्रद्धान समभावादि-रूप गुणांकी निरन्तर बधवारी होय तैसं करै, जैसे कोऊकूं ऊंचे महलपरि चढना होय सो पैडीनिकी पंक्तिपरि चढनेका आरम्भ करै । सो भावश्रिति कैसे प्राप्त होय ? सो कहै हैं--गाथा--

सल्लेहणं करेंतो सव्वं सुहसीलयं पयहिदूण ।
भावसिदिमारुहित्ता विहरेज्ज सरीरणिव्विण्णो ॥७७॥

अर्थ--सल्लेखनाकूं करनेवाला पुरुष शरीरतैं विरक्त हुवा सर्व सुखस्वभाव छोडिकरि शुद्धभावनिकी परम्परा ताही प्राप्त होय करिके प्रवर्तै । भावार्थ--ऐसे भावनिकी बधवारी करै, जो-मैं शरीर अनेकबार धारण किया, तातैं शरीरधारण सुलभ है । अर यह शरीर अशुचि है अर निरन्तर पोषतां पोषतां बिगडया जाय है तथा हजारां उपकार करता भी दुःखही उपजावे है, तातैं कृतघ्न है । अर या शरीरका बडा भार वहना है, या बराबरी कोऊ दुःखदाई भार नाहीं । तथा यह शरीर रोगनिकी खानि है, निरन्तर क्षुधा तृषादिक हजारां वेदनका उपजावनहारा है । आत्माकूं अत्यंत पराधीन करनेकूं बंदिगृहसमान है । जरामरणकरि व्याप्त है । वियोगादिकरि हजारां संक्लेश उपजावनहारा है । ऐसा शरीरमें निःस्पृह होय अर आसनमें, शयनमें, भोजनादिकनिमें सुखरूप स्वभाव छोडिकरि परमवीतरागतारूप आत्मानुभव के सुखके आस्वादनरूप भावनिकी श्रेणी चढना योग्य है । गाथा--

दव्वसिदिं भावसिदिं अणिओगवियाणया विजाणंता ।
ण खु उड्ढगमणकज्जे हेट्ठिल्लपदं पसंसंति ॥७८॥

अर्थ--द्रव्यश्रिति अर भावश्रितिके जाननेवाले ऐसे च्यारि अनुयोगके ज्ञाता वा चरणानुयोगरूप जो आचारांग ताके ज्ञाता जे साधु ते ऊर्ध्वगमनरूप कार्यनिमें नीचे पद धारण करनेकूं नहीं प्रशंसा करे है । भावार्थ--जैसे ऊंचे चढनेका

इच्छुक उपरले पैंडेपरि पांव धरता प्रशंसायोग्य है अर ऊंचे चढनेका इच्छुककूं नीचली पैंडीपरि पग धरना उचित नांहीं, तैसें संसारपरिभ्रमणका अभावरूप अर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्यका सद्भावरूप जो निर्वाण, ताहि प्राप्त होनेका इच्छुक पुरुषहूकूं वीतरागभावना तथा दर्शनज्ञानचारित्रकी वृद्धिरूप परिणाममें प्रवर्तन करना उचित है, अर सरागभावरूप हीनाचारमें प्रवर्तना अयोग्य है। आगे जो भावनिके पडनेकी संगतिका त्याग करनेकूं कहे हैं। गाथा—

गणिणा सह संलाओ कज्जं पइ सेसएहि साहूहि।

मोणं से मिच्छजणे भज्जं सण्णीसु सजणे य ॥७९॥

अर्थ—साधूकूं आचार्यनितैंही वचनालाप करना उचित है। अन्य साधुनितैं वचनालाप कोऊ कार्यके वशतैं करना, बहोत संभाषण नहीं ही करना। जातैं आचार्यनिकरि सहित वचनालाप शुभपरिणामनिका कारण है, तथा संशयादि दोष निराकरण करे है, परमसंवरका कारण है। औरनितैं वचनालाप करनेमें प्रमादी हो जाय वा अशुभपरिणाम हो जाय तथा अभिमानादि पुष्ट हो जाय तथा पाछिली कथामें वा विकथामें प्रवृत्ति होजाय, तातैं अन्यसाधुनितैं कदाचित् प्रयोजन होय तो प्रमाणीक वचनरूप प्रवर्तना, और प्रकार नहीं वचनालाप करना। जो अन्यसाधुनितैं वचनालाप करै सो आपसमान जानिकरि सुख दुःख लाभ अलाभ मान अपमानरूप कथा करने लगि जाय, तदि संयमभाव बिगडि संसारमें डूबि जाय। बहुरि मिथ्यादृष्टीनिमें मौनही राखै, जिनकूं अपना हित अहितहीका ज्ञान नहीं, तिनसूं वचनालाप करि बिगाडही है। बहुरि मंदकषायी सुजन जन अर ज्ञानीजन तिनिविषै जो आपके तथा परके धर्मकी वृद्धि जाणैं तौ कदाचित् वचनालाप करै वा नहीं करै।

भावार्थ—जैसें अन्यमतके भेषधारी अनेक आपके परिकर करिके सामिल रहे अर परस्पर पूर्वअवस्थाकी वा भोजन करनेकी वा देश ग्राम नगरादिकनिकी वा आपके सेवक गृहस्थनिकी नाना कथा कह्या करे, तैसें जैनके दिगम्बर शामिल होय परस्पर कथनी नहीं करै, तथा एकस्थानमे शय्या आसनहू नहीं करे। अर जहां बहोत मुनिनका संघ उतरे है, तहां कोऊ मुनि वृक्षतलै, कोऊ पर्वतनिके शिखरमें, कोऊ गुफानिमें, कोऊ नदीनिके तटविषै, कोऊ वनविषै, कोऊ निराधार चोपट स्थानमें, कोऊ बालूनिके टीबेनिमें कोऊ वसतिकानिमें, कोऊ सूने घर मठ मकाननिमें एकाकी ध्यान-स्वाध्यायादिकनिमें लीन हुवा तिष्ठे है। तहां तिर्यंच तथा असंयमी पुरुष वा स्त्रीनपुंसकनिका आनेजानेका प्रचार नहीं होय वा

इन्द्रियानिके विषयनिमें लीन होनेके कारण नहीं होय तहां तिष्ठे है। अर अवसरमें गुरुनिकूं वन्दना वा प्रश्न उत्तर वा महान् प्रतिक्रमणादि करनेकूं सामिल होय है। वा उपाध्यायनिके निकट श्रुतका अध्ययन करे है, परस्पर वन्दना करे है वा कोऊ साधुनिका वैयावृत्यका प्रयोजन होय तो तहां अत्यन्त वात्सल्यकरि परमधर्म जाणि जिनेन्द्रकी आज्ञा अंगीकार करता मनवचनकायतें साधुनिकी टहलमे सावधान होय बहोत बुद्धितें प्रवर्तन करे है। जातें वैयावृत्यही परम तप है। परम धर्म है, रत्नत्रयका स्थितीकरण है, मार्गका प्रवर्तना है, सो यामें उदासीन नहीं होय है। आगे शुभपरिणामका क्रम कहे हैं। गाथा—

सिविमारुहित्तु कारणपरिभुत्त उवधिमणुवधिं सेज्जं।
परिकम्मादिउवहवं वज्जित्ता विहरदि विदण्हू ॥८०॥

अर्थ—अनुक्रमके जाननेवाला जे ज्ञानी सो भावनिकी शुद्धतारूप श्रेणी जो निसोरणी ताहि चढिकरि अर जाका कारण नहीं रह्या ऐसा जो पुस्तकादि उपकरण तथा अनुपधि जो वैयावृत्यादिक करावनेकी इच्छा अर लेपन बुहारनादि आरंभ सहित जो शय्या वसतिकादिक तिनिकूं त्यागकरि प्रवर्तन करे है। आगे भावनिकी श्रिति जो चढनेरूप पेंडी ताहि प्राप्त होय कहा करे ? सो कहे हैं। गाथा—

तो पच्छिमंमि काले वीरपुरिससेवियं परमघोरं।
भत्तं परिजाणन्तो उवेदि अब्भुज्जदविहारं ॥८१॥

अर्थ—भावनिकी श्रितिकूं प्राप्त हुवा पाछें आहारकूं त्यागनेके इच्छुक जो साधु सो वीरपुरुषनिकरि आचरण किया परम घोर कहिये अति दुष्कर, हरेकसूं नहीं आचरण किया जाय ऐसा सम्यग्दर्शनादिकनिमें विहार करनेकूं प्राप्त होय है।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषें श्रिति नामा नवमा अधिकार छह गाथानिकरि समाप्त किया। आगे भावना नामा दशमा अधिकार अठाईस गाथासूत्रनिकरि कहे हैं। गाथा—

इत्तिरियं सव्वगणं विधिणा वित्तिरिय अणुविसाए दु ।
जहिदूण संकिलेसं भावेइ असंकिलेसेण ॥८२॥

अर्थ—कितने काल सर्व गणकूं विधिकरि समितिरूप प्रवृत्ति देयकरिकै अर संक्लेशभाव छोडिकरि असंक्लेश भावना भावै ऐसा उपदेश करे है । गाथा—

जावन्तु केइ संगा उदीरया होंति रागदोसाणं ।
ते वज्जितो जिणदि हु रागं दोसं च णिस्संगो ॥८३॥

अर्थ—जितने केई संग जे परिग्रह हैं ते रागद्वेषके उदीरणा करनेवाले होत है, तिनिकूं त्याग करता परिग्रह रहित हुवा राग अर द्वेषनिकूं प्रकट जीते हैं । भावार्थ—रागद्वेषकूं उत्कट करनेवाले ए परिग्रह हैं, जो परिग्रहका त्याग कीया सो रागद्वेषनिकूं जीतेही है । आगं त्यजनेयोग्य जो संक्लेशभावना ताके भेद कहे हैं । गाथा—

कंदप्पदेवखिब्भिस अभिओगा आसुरी य सम्मोहा ।
एदा दु संकिलिट्ठा पंचविहा भावणा भणिदा ॥८४॥

अर्थ—कंदर्प नामा देवनिमें उत्पन्न करनेवाली कंदर्पभावना, तथा किल्विषदेवनिमें उत्पन्न करनेवाली किल्विष भावना, ऐसी ही अभियोगदेवनिमें उत्पन्न करनेवाली आभियोग्य भावना, असुरांमै उत्पन्न करनेवाली आसुरी भावना, सम्मोहदेवनिमें उपजावनेवाली सम्मोही भावना, ए पंचप्रकार संक्लेशरूप भावना भगवानकरि कही है । अब आगं कंदर्प-भावनाकूं निरूपण करे हैं । गाथा—

कंदप्पकुक्कुआइय चलसीला णिच्चहासणकहो य ।
विब्भाविंतो य परं कंदप्प भावणं कुणइ ॥८५॥

अर्थ—रागभावकी आधिक्यतातं हास्यसहित भांडपणका वचन बोलना—याका नाम कंदर्प है । बहुरि रागभावकी आधिक्यतासहित हास्य करतो अन्यकूं देखि भांडपणेकी कायकी चेष्टा करना सो कौत्कुच्य है । सो कंदर्प अर कौत्कुच्य

बोऊनिकरि जाका शील चलायमान होय ऐसा, अर सदाकाल हास्यकथाका कहने में उद्यमी होय, अर ऐसी चेष्टा करै-जाकरि अन्यजनाकै आश्चर्य उपजि आवै। ऐसा पुरुष कंदर्पभावना जो है ताहि करे है। भावार्थ--जाका वचनकी प्रवृत्ति भांडपणेंने लीयां नीचमनुष्यकीसी होय अर कायकी चेष्टाहू भांडपणेकी करै, अर जाका स्वभाव कामकी उत्कटतासूं बिगड्या हुवा होय अर नित्यही जो वचनादिक प्रवृत्ति करै सो हास्यरूपही करै, अन्यकै विस्मय करनेवाली करै, ताकै कांदर्पी भावना होय है। आगै किल्विष भावनाकूं कहे हैं। गाथा--

णाणस्स केवलीणं धम्मस्साइरिय सव्वसाहूणं।

माइय अवण्णवादी खिब्भिसियं भावणं कुणइ ॥८६॥

अर्थ--ज्ञानकी आराधना मायाचारसहित करै तथा सम्यग्ज्ञानकी निंदा करै सो ज्ञानका अवर्णवाद है। केवलीकै कवलाहार कहना तथा क्षुधारोगादिक वेदना बतावना सो केवलीका अवर्णवाद है। सांचा धर्ममें दूषण लगावना सो धर्मका अवर्णवाद है। बहुरि आचार्य साधुजन इनिकै झूठा दूषण लगावना सो आचार्य वा साधुनिका अवर्णवाद है। सो सत्यार्थज्ञानके अर दशलक्षणरूप धर्मके अर केवली भगवानके अर आचारांगकी आज्ञाप्रमाण प्रवर्तनेवाले जे यथोक्त आचारके धारक आचार्य उपाध्याय साधू इनिकूं दूषण मायाचारकरि लगावै ताकै किल्विषभावना होय है। आगै आभियोग्य भावना कहे हैं। गाथा--

मंताभिओगकोदुगभूदीयम्मं पउंजदे जो हु।

इढ्ढिरससादहेदुं अभिओगं भावणं कुणइ ॥८७॥

अर्थ--जो आपकै ऋद्धि धन सम्पदाके वास्ते वा मिष्टभोजनके अर्थि वा इन्द्रियजनित सुखके अर्थि तथा औरहू जगतमें मान्यता पूजा सत्कारके अर्थि जो मंत्रयत्रादिक करे सो अभियोग कर्म है। अर वशीकरण करना सो कौतुक है। अर बालकादिकनिकी रक्षा करनेका मंत्र सो भूतिकर्म है। इस प्रकार निद्यकर्म करता साधु, सो आभियोग्यभावनाकूं प्राप्त होय है। आगै आसुरी भावना कहे हैं। गाथा--

अणुबंधरोसविग्गहसंसत्ततवो णिमित्तपडिसेवी।
णिक्किवणिराणुतावी आसुरिअं भावणं कुणदि ॥८८॥

अर्थ—बांध्या है अन्यभवपर्यंत गमन करनेवाला रोष जानैं ऐसा, बहुरि कलहकरि सहित है तप जाकै ऐसा, बहुरि निमित्तज्ञानकरि भोजन वसतिकादि जीविका करनेवाला ऐसा, बहुरि दयारहित निर्दयी ऐसा, बहुरि अति आतापका करने वाला ऐसा जो पुरुष सो आसुरी भावना करे है। भावार्थ—जाकै वैर दृढ होय, अर कलहसहित तप होय, अर ज्योतिषादिक निमित्तविद्याकरि जीविका करनेवाला होय, निर्दयी होय, परजीवांकै पीड़ा करनेवाला होय ताकै आसुरीभावना होय है। आगैं संमोहीभावनाकूं कहे हैं। गाथा—

उम्मग्गदेसणो मग्गदूसणो मग्गविप्पडिवण्णो य।
मोहेण य मोहिंतो संमोह भावणं कुणइ ॥८९॥

अर्थ—जो उन्मार्गका उपदेशक होय तथा सम्यग्ज्ञानकं दूषण लगावनेवाला होय, तथा सम्यक्मार्ग जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र तातें विरुद्ध प्रवर्तनेवाला होय, तथा मिथ्याज्ञानकरि मोही होय, जाकूं स्वरूपपररूपका ज्ञान नहीं होय, सो सम्मोहीभावनाकूं करे है। भावार्थ—जो ऐसा उपदेशकरि जीवनकूं बहावता होय— जो तत्त्वज्ञानी होय सो हिंसा करै तोहू पापतैं लिप्त नहीं होय है, तथा देवगुरुके निमित्तकरि हुई हिंसाहू पापके अर्थि नहीं होय है, यज्ञमें प्राणीकी हिंसाहू स्वर्गकू प्राप्त करनेवाली है, तथा मंत्रादिकनितैं मारे हुये जीव स्वर्गकूं प्राप्त होय हैं, तथा गुरुकी आज्ञातें हिंसादि करनाहू धर्महो है। ऐसे खोटे मार्गके उपदेश करनेवाला होय, तथा सत्यार्थज्ञानकूं दूषण लगावनेवाला होय, तथा रत्नत्रय-धर्मसूं वैर करनेवाला होय, तथा अज्ञानभावसहित होय ताकै नीचदेवनिमै उपजनेका कारण संमोहीभावना होय है। आगैं जा साधुकै ए पांच भावना होय हैं ताका फलकूं कहे हैं। गाथा—

एदाहि भावणाहि य विराधओ देवदुग्गदिं लहइ।
तत्तो चुदो समाणो भमिहिदि भवसागरमणंतं ॥९०॥

अर्थ—इति पंचभावनानिकरि जिननें मुनिधर्मकी विराधना करी ऐसा जो साधु सो कदाचित् परीषह सहनेतैं तथा परिग्रहके त्यागनेतैं, तपश्चरण करनेतैं, अनशनादि अंगीकार करनेतैं जो देव होय, तो भवनवासी व्यंतरज्योतिषीनिमैं देव दुर्गतिकूं प्राप्त होय है। पाछें देवगतितैं अभिमानसहित चयकरि अनन्तसंसारसमुद्रमें त्रसस्थावरादिरूप पर्यायनिमें जन्म

मरण करता अनंतानंतकाल परिभ्रमण करे है। तातें इनि पंचभावनानिका त्याग कराय अर छठी भावना अंगीकार करनेकी शिक्षा करे हैं। गाथा—

एदाओ पंच वज्जिय इणमो छठ्ठीए विहरदे धीरो।
पंचसमिदो तिगुत्तो णिस्संगो सव्वसंगेसु ॥६१॥

अर्थ—ए पंचभावना वर्जिकरिकैं अर साधु है सो छठ्ठी भावनामैं प्रवर्तन करै। छठ्ठी भावनामैं प्रवर्तन करनेवाला साधु कैसा होय? धीर वीर होय, अर पंचसमितिका धारक होय, तीन गुप्तिका धारक होय, अर सर्वपरिग्रहविषै संग रहित होय ताकैही छठ्ठी भावना होय है। आगैं सो छठ्ठी भावना कैसी, ताही कहे हैं। गाथा—

तवभावणा य सुदसत्तभावणेगत्तभावणे चेव।
धिदिबलविभावणाविय असंकिलिठ्ठावि पंचविहा ॥६२॥

अर्थ—संक्लेशरहित जो छठ्ठी भावना सो पांच प्रकार है। तपोभावना, श्रुतभावना, सत्त्वभावना, एकत्वभावना, धृतिबलभावना या प्रकार असंक्लिष्टभावना पंचप्रकार जाननी। आगैं तपोभावना है सो समाधिका उपाय कैसें है सो कहे हैं। गाथा—

तवभावणाए पंचेन्दियाणि दंताणि तस्स वसमेंति।
इन्दियजोगायरिओ समाधिकरणाणि सो कुणइ ॥६३॥

अर्थ—तपोभावना जो अनशनादि तपश्चरण, तिनिकरि पांचूं इन्द्रियां दमी हुई साधुकै वशीभूत होय हैं। अर इन्द्रियनिकूं आपके वशिकरि इन्द्रियनिकूं शिक्षा देनेवाला ही साधु रत्नत्रयकी समाधान क्रिया करे है। भावार्थ—तपकरि पांचूं इन्द्रियां वशीभूत हुई कामादिविषयनिमैं नहीं दौड़े है, तब रत्नत्रयमें सावधानी दृढ होय है। आगैं तपोभावनारहितकै दोष दिखावे हैं। गाथा—

इंदियसुहसाउलओ घोरपरीसहपराजियपरस्सो।
अकदपरियम्म कीवो मुज्झदि आराहणाकाले ॥६४॥

अर्थ—जिसने तपका परिकर नहीं किया ऐसा साधु इन्द्रियनिके विषयनिके सुखका स्वादका लंपटी, सो क्षुधादिक जे घोर परीषह तिनिकरि तिरस्कारकूं प्राप्त हुवा। अर याहो तैं रत्नत्रयतैं पराङ्मुख हुवा अर क्लीब कहिये विषयांके अर्थि दीन हुवा, आराधनाका अवसरमें मोहनें प्राप्त होय है। विपरीत भावकूं प्राप्त होय ज्याकूं आराधनानिकूं बिगाडे है। आगे इहां दृष्टान्त कहे हैं।

जोग्गमकारिज्जन्तो अस्सो सुहलालिओ चिरं कालं।
रणभूमीए वाहिज्जमाणओ जह ण कज्जयरो ॥९५॥

अर्थ—जैसें चलन परिभ्रमण उल्लंघनादिक जोग जाकूं नहीं कराया अर चिरकालपर्यन्त खानपानादिकके सुखकरि जाका लाड किया ऐसा जो अश्व कहिये घोडा सो रणभूमिविषें बाह्या चलाया हुवा कार्य करनेकूं समर्थ नहीं होय है। तैसेंही दृष्टांतपूर्वक स्वरूपका उपदेश तीन गाथानिमैं कहे हैं। गाथा—

पुव्वमकारिदजोग्गो समाधिकामो तहा मरणकाले।
ण भवदि परीसहसहो विसयसुहपरम्मुहो जीवो ॥९६॥
जोग्गमकारिज्जन्तो अस्सो दुहभाविदो चिरं कालं।
रणभूमीए वाहिज्जमाणओ कुणदि जह कज्जं ॥९७॥
पुव्वं कारिदजोगो समाधिकामो तहा मरणकाले।
होदि हु परीसहसहो विसयसुहपरम्मुहो जीवो ॥९८॥

अर्थ—तैसेंही पूर्वें तपश्चरणकरि इन्द्रियनिकूं वशि करी नहीं, ऐसा समाधिमरणका इच्छुक जो मुनि सोहू विषयनिके सुखमें मूर्छित हुवा परीषह सहनेकूं असमर्थ होय है। बहुरि जैसें चालन भ्रमण उल्लंघनरूप योगकूं साधन कराया अर चिरकालपर्यन्त शीत उष्ण क्षुधा तृषादि दुःखरूप अभ्यास कराया ऐसा अश्व रणभूमिमैं प्रेरचा हुवा वैरीनिका विजयरूप कार्यकूं करे है। तैसेंही पूर्वें तपका अभ्यासकरि आपके वशीभूत करी हैं इन्द्रिय जानें ऐसा समाधिमरणका इच्छुक जो मुनि सोहू मरणकालविषें क्षुधादिपरीषह तथा रोगादिवेदना सहनेकूं समर्थ होय है, अर विषयसुखतें पराङ्मुख होय है। ऐसें असंक्लिष्टभावनाके पंचभेदनिविषें तपोभावना वर्णन करी। अब दोय गाथानिकरि श्रुतभावनाकूं कहे हैं। गाथा—

सुदभावणाए णाणं दंसणतवसंजमं च परिणवइ ।
तो उवओगपइण्णा सुहमच्चविदो समाणेइ ॥१९९॥
जदणाए जोगपरिभाविदस्स जिणवयणमणुगदमणस्स ।
सदिलोवं कादुं जे ण चयन्ति परीसहा ताहे ॥२००॥

अर्थ—सर्वज्ञका प्ररूप्या जो श्रुत ताका अर्थविषै निरंतर प्रवृत्तिरूप जो भावना तिसकरि श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशम होय है। श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशमकरिकै श्रुतज्ञानकी उत्पन्नता होय है। अर ज्ञानकी उत्पत्तिकरि अवगाढ-सम्यग्दर्शन होय है। तथा सर्वघातिकर्मकी निर्जराका कारण शुक्लध्याननामा तप होय है। तथा यथाख्यातनामा चारित्र तथा परिपूर्ण इन्द्रियसंयम होय है। तथा पूर्व प्रतिज्ञा धारण करी छो, जो–हमारा आत्माकूं दर्शनज्ञानचारित्रमें परिणामनिकी रचनामैं प्रवर्तन करतहूँ—सो उपयोगकी प्रतिज्ञा सुखरूप क्लेशरहित आराधनामैं अचलित परिपूर्ण करे है। तातैं श्रुतमें भावनाही श्रेष्ठ है। बहुरि जिनेन्द्र भगवानके वचनमें लीन है मन जाका, अर यत्नकरिकै योग जो तप ताकी भावना करता जो पुरुष ताकी रत्नत्रयमें उद्यमरूप जो स्मृति कहिये स्मरण ताही बिगाड़नेकूं परीषह समर्थ नहीं होय है।

भावार्थ—जाकै जिनेन्द्रका आगममें निरन्तर भावना वर्त्तै है, ताकै तीव्र जे क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोगादिक सबंही परीषह च्यार आराधनानिमें परिणाम बिगाडनेकूं समर्थ नहीं होय है, तातैं श्रुतभावनाही निरंतर करहु। ऐसैं असंक्लिष्ट भावनाके पांच भेदनिविषै दूसरी श्रुतभावना कही। आगैं सत्त्वभावना च्यारि गाथानिकरि कहे हैं।

देवेहिं भेसिदो वि हु कयावराधो व भीमरूवेहिं ।
तो सत्तभावणाए वहइ भरं णिब्भओ सयलं ॥२०१॥

अर्थ—सत्त्वभावना कहा है? जो आपका अनंतज्ञानदर्शनसुखवीर्यरूप अखण्ड अविनाशी स्वरूपका अवलंबन करिकै जीवन मरण संयोग वियोगादिक कर्मका कीया परभाव तिननै विनाशीक जाने है, अर कर्मका अभावतैं आपकूं अचल अविनाशी अनन्तगुणनिकरि सहित अनन्तज्ञानसुखरूप जाने है, ताकै सत्त्वभावना होय है। जो पूर्वजन्ममें वा गृहस्थावस्थामैं आप अपराध करया होय तातैं वैरधारण करते भयानकरूपकरि सहित ऐसे देवनिकरि त्रासित किया हुवाहू

संयमका भारका भयरहित हुवा निर्वाह करे है। भावार्थ—जो कोऊ पूर्व अवस्थाका वैरी देवदानव भयानकरूप धारण करि मरणपर्यंत घोर उपसर्ग करिकें त्रास देवै तौऊ सत्त्वभावनाका धारक योगी संयमथकी किंचिन्मात्रहू नहीं चलायमान होय है। जातें मरण उपसर्गका भयतें, धर्मतें चलायमान हो जाय तौ फेरि रत्नत्रयका पावना नहीं होय है। तातें सत्त्व-भावना ही परमकल्याण है। सोही दिखावे हैं। गाथा—

खणणुत्तावणवालणवीयणविच्छेत्तणावरोदत्तं।
चिंतिय दुहं अदीहं मुज्झदि णो सत्तभाविदो दुक्खे ॥२०२॥
बालमरणाणि साहू सुचिंतिदूणप्पणो अणंताणि।
मरणे समुट्ठिएविहि मुज्झइ णो सत्तभावणाणिरदो।२०३।

अर्थ—संसारपरिभ्रमण करता जो मै, सो, पूर्वे पृथ्वीकायकूं धारण करतो संतो खोदनेकरि तथा बालनेकरि तथा कुचरनेकरि, कूटनेकरि, फोडनेकरि, रगड़नेकरि, पीसनेकरि खण्डखण्ड करनेकरि, दूरितै पटकनेकरि अत्यन्त बाधा वेदनाकूं प्राप्त भया हूं। बहुरि जलरूप शरीर धारचा तब तीक्ष्ण जे सूर्यके किरणनिका पतन, ताकरि तथा अग्निज्वालाकरि तप्तायमान होनेतें, तथा पर्वतनिके तट गुफा वराडादिक ऊंचे स्थानकनितें अतिवेगकरि कठोरशिलापाषाणभूमिमें पड़नेकरि, तथा आमली लवण क्षारादि विषादिक द्रव्यके मिलावनेकरि, तथा धगधगायमान अग्निके मध्य क्षेपणेकरि, तथा तप्त लोहमय कडाहेनमैं बाल देनेंकरि तथा अग्निमय सुवर्णलोहादिक धातुके बुझावनेकरि, तथा वृक्षतें शिलाविषै पडनेतें, तथा हस्तपावादिककरि मसलनेतें, तथा तिरणेमें उद्यमी जे हस्ती घोटक मनुष्य बलध इत्यादिकनिके उदरस्थल हस्तपादादिक निके घातकरि तथा पीवनेकरि महान् वेदनाकूं प्राप्त भया हूं।

बहुरि पवनका शरीर अवलंबन किया तब वृक्ष पर्वत पाषाणादिकनिके कठोर स्पर्शनकरि, तथा कठोर शरीरांका घातकरि तथा अन्य पवननिके घातकरि, तथा अग्निके स्पर्शकरि तथा बीजनेनिके घातकरि, तथा परस्पर पवनका घाततै भ्रमण करनेकरि अत्यन्त दुःखकूं प्राप्त भया हूं।

बहुरि अग्निकायका शरीर धारण किया तब बुझावनेकरि, तथा मांटी भस्म बालू रेत इत्यादिकनितैं दावनेकरि, तथा स्थूलजलकी धाराका पड़नेकरि, तथा दण्डकाष्ठादिकनिकरि ताडनेकरि, तथा लोष्ठपाषाणादिकनितें चूर्ण करनेकरि

बहोत दुःखकू प्राप्त भया हूं ।

बहुरि फल पुष्प पल्लवादिक जे वनस्पतीका काय अंगीकार कीया, तब, मनुष्य तिर्यंचादिकनिकरि तोडन भक्षण मर्दन पीसन ज्वालनादिकरि अनेक दुःख भोग्या तथा गुल्म लता वृक्षादिकनिकू करोतीनितें चीरनेकरि तथा बींधनेकरि, बिदारनेकरि, चाबनेकरि, रांधनेकरि, घसीटनेकरि प्रत्यक्ष दुःख देखि सहै, सो मै अनन्तवार वनस्पतिकाय धारणकरि महान् क्लेशकू प्राप्त भया हूं ।

बहुरि कुन्थु पिपीलिका लट मकोडा उटकण मांछर डास इत्यादि त्रस हुवा तब मार्गमें तौ रथादिकका चक्रनितें कटनेतें दबनेतें तथा हाथी घोडा गर्दभ बलध इनिके खुरनिकरि कटनेतें चीथनेतें दलमलनेतें महान् दुःख भोग्या, तथा मार्गमें पेट छिद गया, मस्तक पादादि कटि गया तदि घोर वेदना भुगतनेतें तथा खुजालनेमें नखनितें कटनेकरि, तथा जलके प्रवाहतें वहने करि, तथा दावाग्निमें दग्ध होनेकरि, तथा वृक्ष काष्ठ पाषाणादिकनिके पतनकरि, तथा मनुष्यनिके चरणनितें अवमर्दनकरि, तथा बलवान् जीवनिकरि भक्षण करनेकरि, तथा पक्षीनिकरि चुगनेकरि चिरकालपर्यन्त क्लेशकू प्राप्त भया हूं । तथा गर्दभ ऊंट भैंसा बलध इत्यादि पर्यायकू प्राप्त हुवा, तब बहोत भारका आरोपणकरि तथा चढनेकरि तथा दृढ बांधनेकरि तथा अत्यन्त कर्कश कोरडा वामठी लाठी मूसल इत्यादिकनिके घातनकरि, तथा आहारपानके रोकनेकरि, तथा शीत उष्ण वर्षा पवनादिकनिकी घोरबाधाको प्राप्त होनेकरि, तथा कर्णच्छेदन, नासिकाभेदन अग्निकरि वा घण परसी मुद्गर तथा तीक्ष्ण खड्ग छुरी इत्यादिक आयुधनिकरि चिरकाल उपद्रवकू प्राप्त भया हूं । तथा पग टूटनेकरि अंधा होनेकरि अथवा व्याधि बधनेकरि, कर्दम वा खाडेनमें फंसनेकरि जोठें तीठें पड्या हुवाके अन्तरंगमें तौ क्षुधा तृषा रोगजनित तीव्र वेदना अर बारानैं दुष्ट व्याघ्र, स्याल, श्वानादिकनिकरि भक्षण किया हुवा, तथा काक गीध इत्यादिक दुष्ट पक्षीनिकरि छेद्या हुवा, तथा काष्ठपाषाणादि बहोत भारके लादनेकरि सिडे हुये जे व्रण तिनिमें हजारां लाखां कीडे पडनेकरि, पक्षीनिकी तीव्रतर तीक्ष्ण चूंचनिका घातकरि मर्मस्थाननिके मांस उपाडनेकरि, घोरतर वेदनाकू प्राप्त भया हूं । तहां कोऊ शरणा नहीं, तथा आपका कोऊ नहीं, एकाकी तीव्रतर वेदनाकू भोगता कौनसू कहूं ? कोऊ अपना मित्र हितू नहीं वा कहनेकी सुननेकी शक्ति है ही नहीं ।

बहुरि जब मै वनका जीव मृगादिक हुवा वा पक्षी हुवा वा जलचर हुवा तब बलवान् हुवा सोही निर्बलकू भक्षण करै, तहां कोऊ रक्षक नहीं, परस्पर भक्षण कीया तथा हिंसक मनुष्य भील चांडाल कसाई हेरि हेरि मारे हैं, नाना आयुध

चलावे हैं, रुधिर काढि ले हैं, चीरे हैं, विदारे हैं, कतरे हैं, रांधे हैं, बांधे हैं तहां कोऊ रक्षा करनेवाला नहीं, ऐसी घोर-तिर्यंचकी वेदना मिथ्यादर्शन अर असंयमका प्रभावकरि अनन्तानन्तभवनिमें अनन्तवार तीव्र दुःख रूप भोगी ।

बहुरि मनुष्यभवविषैहू इन्द्रियनिकी विकलतातैं, तथा दरिद्रतातैं, तथा असाध्य व्याधिके आवनेतें, तथा इष्टके अलाभतै, अनिष्टका संयोगतैं, तथा इष्टका वियोगतैं, तथा पराधीन दासकर्म करनेतें, तथा परकरि तिरस्कार होनेतें, तथा बन्दिगृहमे पडनेतें, मारपीट होनेतें, तथा धनकी वांछाकरि नहीं करनेयोग्य दुष्टकर्म करनेकरि अन्याय न्यायका विचार-रहित षट्कर्ममें प्रवर्तन करि घोर आपदाकूं प्राप्त भया हूं ।

बहुरि देवनिका भव धारिकरिकैहू नाना मानसिकदुःखकूं प्राप्त भया हूं । जिस अवसरमें महान् ऋद्धिके धारक देव वा इन्द्रसामानिकादिक देव आवे हैं, तदि हीन देवानिं प्रेरणा करे हैं—अरे दूरि जावो, शीघ्र इस स्थानतें निकसो, अब इहां तुमारे खडे रहनेका अवसर नाहीं, प्रभुका आंवनेका, सिंहासनऊपरि विराजनेका अवसर वर्ते है । कोऊ कहे है–अरे देव हो ! इन्द्रके आगमनका ढोल बजावो । कोऊ कहे है—अरे कहा देखो हो ! ध्वजा धारण करो । कोऊ कहे–अरे ! देवीका आगमनका अवसर है, अपनी अपनी सेवामें सावधान होहू । कोऊ कहे है–अरे ! इन्द्रके मनोवांछितरूप वाहनरूप धारण करिके तिष्ठो । अरे अल्पपुण्यके धारक हो, प्रभुका दासपणानं विस्मरण हो गये कहा ? जो निश्चल तिष्ठो हो । प्रभुका आगमनका अवसर है, आगेकूं दौडनेमें सावधान होहू । इत्यादिक देवमहत्तरनिके कठोरतर वचननिके श्रवणकरि घोरदुःखकूं प्राप्त हूं । तथा इन्द्रनिके देहकी प्रचुरप्रभा, ऋद्धि, विक्रिया आज्ञा ऐश्वर्य विभव शक्ति परिवार अत्यन्त अद्भुतरूपका धारण करनेवाली पट्टराणी तथा परिवारकी हजारां देवांगना तिनिके अद्भुतरूप सुगंध शरीरकांति, अद्भुत विक्रिया, कोट्या अप्सरांनिकरि नृत्यका अखाडा तिनके देखनेकरि जो अभिलाषरूप अग्निकरि अन्तःकरणमें दग्ध होता घोर दुःखकूं प्राप्त भया हूं । तथा इन्द्रका सभास्थानमें तथा नृत्यके अखाडेनमें नीच देव होय नहीं प्रवेश करि सक्या, तदि इन्द्रियनिके विषयनिका महा आताप तथा अपमान तिसकरि घोर मानसिक दुःखकूं प्राप्त भया हूं । तथा आयुका छमास अवशेष रहै तदि मालाका कुमलावना, आभरणनिकी कांतिका घटना, देहकी प्रभाका विनशना, दसूं दिशा अन्धकाररूप दीखना, ताकरि उपज्या जो पर्याय विनशनेका अर नीचे पडनेका बडा दुःख–जो ऐसा मानसिक दुःख सप्तमनरकका नारकीहूके नाहीं ! ऐसा वचनके अगोचर दुःख देवगतिहूमे प्राप्त भया हूं ।

बहुरि नरकगतिका दुःख जाकूं उपमा देनेकूं कोऊ पदार्थ नाहीं, तो कैसे कहनेमें आवै ? जहां ताडन मारण

भग.
आरा.

छेदन भेदन कुंभीपाचन बैतरणीनिमज्जनादि क्षेत्रजनितदुःख, रोगजनितदुःख, असुरनिकरि उपजाये दुःख, परस्पर नारकीनकरि कीये दुःख, मानसिकदुःख असंख्यात कालपर्यंत निरंतर भोगे है। जहां नेत्रके टिमकारनेमात्र कालहू दुःखका अभाव नाहीं, अर आयु पूर्ण हुवा विना मरण नाहीं, तिलतिलमात्र खण्डखण्ड हुवाहू शरीर पाराकीनांई मिलि-जाय। बहोत कहनेकरि कहा ? नरकका दुःख कोटि जीभनितैं असंख्यात कालपर्यंतहू कहनेकूं कोऊ समर्थ है नाहीं, भगवान् ज्ञानीही जाणै है। सो ऐसें च्यारि गतिनिमै अनन्तानन्तकाल दुःख भोगता जो मै ताकै अब कर्मका उदय-जनितवेदनामै विषाद कहा करना ? विषाद कीये करम छोड़नेके है नाहीं। तातैं अब कर्मजनित दुःखके नाशनेमें समर्थ ऐसा एक उज्ज्वल रत्नत्रयधर्मही मेरे निर्विघ्न अतीचाररहित तिष्ठो। पर्याय अनन्त धारणा करी, पर्यायका विनाश अवश्य होयहीगा, सो समयसमय विनसैही है, यामै मेरा कछूहू नाहीं। पुद्गलद्रव्यकी कर्मका निमित्तकरि परिणति है, तातैं अनन्तानन्तकालमें जो हमारा रूप नहीं पाया, सो श्रीगुरांका प्रसादतैं अवलंबन कीया, सो अब हमारो निजस्वरूप जो शुद्धज्ञान सो मिथ्यात्वरागद्वेषकरि मलिन मति होहू। या प्रकार भयरहित निजस्वरूपका अवलंबन करना, सो सत्त्व-भावना है। आगैं सत्त्वभावनाका महिमा कहे हैं। गाथा—

बहुसो वि जुद्ध भावणाए ण भडो हु मुज्झदि रणम्मि।
तह सत्त भावणाए ण मुज्झदि मुणी वि ओसग्गे ॥२०४॥

अर्थ—जैसें बहुतवार जुद्धकी भावना जो अभ्यास तिसकरिकैं भट जो जोद्धा सो रणमें मोह जो अचेतता ताहि नहीं प्राप्त होय है, तैसें सत्त्वभावनाकरिकैं मुनिहू मनुष्य तिर्यंच देवादिककरिकैं चलायमान कीया हुवा मोह जो अज्ञान मिथ्यात्व ताहि नहीं प्राप्त होय है। ऐसें असंक्लिष्टभावनाके पंचभेदनिविषैं सत्त्वभावना समाप्त करी। आगैं एकत्व-भावना दोय गाथानिकरि कहे है। गाथा—

एयत्तभावणाए ण कामभोगे गणे सरीरे वा।
सज्जइ वेरग्गमणो फासेदि अणुत्तरं धम्मं ॥२०५॥

अर्थ—एकत्वभावनाका स्वरूप या प्रकार जानना-जो जन्म जरा मरण रोग दारिद्र्य वियोग क्षुधा तृषा इत्यादिक कर्मके उदयतैं उपज्या जो दुःख, ताहि मै एकला भोगऊ हूं, कोऊ दुःखनैं बटावनेकूं समर्थ नाहीं। तातैं मेरा कोऊ स्वजन

नाहीं, कौनमें राग करूं ? अर हमारा उपार्जन कीया कर्म, ताविना कोऊ दुःख देने में समर्थ नहीं, तातें कौनमें द्वेष करूं ? सुखदुःख भोगनेमें एकला हूं । जन्म्या जब कोऊ हमारी लेर आया नहीं अर मरणकरि परलोककूं जाऊंगा तब कोऊ शरीर धन पुत्र कलत्रादि गैल आयगा नहीं । तातें नरकमें तिर्यंचमें मनुष्यमें देवमें सर्व पर्यायनिमें मैं अकेला हूं, कोऊ मेरा सहायी साथी है नहीं । हमारा परिणामकरि उपजाया जो कर्म, ताहि भोगतें अर नवीन उपजावतें अनन्तकाल व्यतीत भया, कौनसूं संबंध करूं ? अनादिका एकाकीही हूं । परद्रव्यांमें रागद्वेषरूप संबंध करि अनन्तानन्त काल परिभ्रमण कीया, एकत्वभावना नहीं भाई, तातें अब यह निश्चय किया; मैं कोऊका नहीं, कोऊ हमारा नहीं, तातें मैं एकाकी शुद्धज्ञानरूपही हूं । ऐसें स्वरूपका एकत्वचिंतन करनाही परमकल्याण है । सोही गाथासूत्रमें एकत्वभावनाका गुण कहे हैं । जिस जीवकै एकत्वभावना रचि गई, सो जीव एकत्वभावनाकरि काम तथा भोग तथा गण जो संघ तथा शरीरादिक परद्रव्यनिमें आसक्तताकूं नहीं प्राप्त होय है । तदि वैराग्यनें प्राप्त हुवा सर्वोत्कृष्ट धर्म जो उत्कृष्ट सम्यक्चारित्र ताहिही प्राप्त होय है । भावार्थ—जाकूं इन्द्रिय देह विषय कुटुम्बादि सर्व परिकरतें न्यारा एकाकी ज्ञानस्वरूप अर अनन्तसुखस्वरूप आत्माका अनुभव भया, ताकूं काम जे स्पर्शन इन्द्रिय, अर रसना इन्द्रिय अर भोग जे चक्षु श्रोत्र घ्राण इन्द्रिय अर देह अर इन्द्रियनिके विषय इनविषें आसक्तता कबहू नहीं उपजैगी, केवल वीतरागधर्महीकूं प्राप्त होयगा, सोही दृष्टांत कहे हैं । गाथा—

भयणीए विधम्मिज्जंतीए एयत्तभावणाए जहा ।
जिणकप्पिदो ण मूढो खवओ वि ण मुज्झइ तधेव ॥२०६॥

अर्थ—जैसें जिनकल्पी जिनलिंगधारी जो नागदत्तनामा मुनि सो अयोग्यधर्मनें करावतीभी जो बहन तायें एकत्वभावनाका बलकरि मूढतानें नहीं प्राप्त भया, तैसें अन्यमुनिहू एकत्वभावनाका बलकरि मूढतानें नहीं ही प्राप्त होय है । इति भावना अधिकारमें असंक्लिष्टभावनाके पंचभेदनिविषें एकत्वभावना समाप्त करी । अब धृतिबलभावनाकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं । दुःखकूं आवताभी कायरताका अभाव सो धृति कहिये, अर धृति जो धैर्य, सोही बल, ताका अभ्यास करना सो धृतिबलभावना है । गाथा—

कसिणा परीसहचमू अब्भुट्ठइ जइ वि सोवसग्गावि ।
दुद्धरपहकरवेगा भयजणणी अप्पसत्ताणं ॥२०७॥

धिदिधणिदबद्धकच्छो जोधेइ अणाइलो तमच्चाई ।
धिदिभावणाए सूरो संपुण्णमणोरहो होई ॥२०८॥

अर्थ—जो च्यारि प्रकारका उपसर्गकरि सहित अर दुर्धर सकटरूप है वेग जिनका, अर अल्पपराक्रमीनिकूं भयका देनेवाली ऐसी समस्त क्षुधादिक बाईस परीषहकी सेना ताहीहू धृतिभावनाकरिकैं शूरवीर मुनि जीति परिपूर्ण मनोरथका धारी होय है । कैसा है सूरमुनि ? धैर्यरूप निश्चल बांधी है कमरि जानैं, बहुरि कर्मनितैं युद्ध करनेविषैं अनाकुल-आकुलतारहित है, बहुरि बाधारहित है । भावार्थ—जो साधु उपसर्ग परीषह आये कायरतारहित जो धैर्य ताका धारी अर आकुलतारहित होय अर परीषह तथा उपसर्गकरि जाका ध्यान संयम बांध्या नहीं जाय सोही मुनि घोर उपसर्गनिकूं तथा समस्तपरीषहनिकूं जीतिकरि कर्मका विजयकरि अनाकुल अव्याबाध सुखका पावनारूप मनोरथ ताकी परिपूर्णताने प्राप्त होय है । गाथा—

एयाए भावणाए चिरकालं हि विहरेज्ज सुद्धाए ।
काऊण अत्तसुद्धिं दंसणाणाणे चरित्ते य ॥२०९॥

अर्थ—ये पंचप्रकारकी विशुद्ध जो असंक्लिष्ट भावना, ताके विषैं चिरकाल प्रवर्तै है सो दर्शज्ञानचारित्रमें निरतिचार आत्माकी शुद्धि तानै प्राप्त होय सल्लेखनाकूं प्राप्त होय है ।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यान नामा मरणके चालीस अधिकारनिविषैं भावना नामा दशमां अधिकार अठाईस गाथानिमें समाप्त कीया । अब छयाछठि गाथासूत्रनिकरि सल्लेखना नामा ग्यारमां अधिकार कहे हैं । गाथा—

एवं भावेमाणो भिक्खू सल्लेहणं उवक्कइ ।
णाणाविहेण तवसा बज्झेणब्भंतरेण तहा ॥२१०॥

अर्थ—ऐसैं भावना करता जो साधु, सो नानाप्रकारके बाह्य अर आभ्यतर तप, ताकरिकैं सल्लेखना जो शरीरका अर कषायका कृश करना, ताहि प्रारम्भ करे है । अब सल्लेखनाका भेद कहे हैं । गाथा—

सल्लेहणा य दुविहा अब्भंतरिया य बाहिरा चेव ।

अब्भंतरा कसायेसु बाहिरा होदि हु सरीरे ॥२११॥

अर्थ--सल्लेखना दोय प्रकार है। एक आभ्यंतरसल्लेखना दूजी बाह्यसल्लेखना। तहां जो क्रोध मान माया लोभादि कषायनिका कृश करना सो आभ्यंतरसल्लेखना है अर शरीरका कृश करना सो बाह्यसल्लेखना है। अब बाह्य-सल्लेखनाका उपाय कहे है—

सव्वे रसे पणीदे णिज्जूहित्ता दु पत्तलुक्खेण ।

अण्णदरेणुवधाणेण सल्लिहइ य अप्पयं कमसो ॥२१२॥

अर्थ--सर्व जे बलवान् रस, तिनने त्याग करिकै अर प्राप्त हुवा जो रूक्षभोजन वा औरहू रसादिरहित भोजन, ताकरिकै शरीरकूं अनुक्रमतै कृश करै। अब शरीरनै कृश करनेका कारण जो बाह्यतप, ताहि कहे हैं। गाथा--

अणसण अवमोयरिय चाओ य रसाण वुत्तिपरिसंखा ।

कायकिलेसो सेज्जा य विवित्ता बाहिरतवो सो ॥२१३॥

अर्थ--१. अनशन, २. अवमोदर्य, ३. रसत्याग, ४. वृत्तिपरिसंख्या, ५. कायक्लेश, ६. विविक्तशय्यासन, ऐसें छप्रकार बाह्य तप कह्या, है। अब अनशनके भेद कहे है। गाथा--

अद्धाणसणं सव्वाणसणं दुविहं तु अणसणं भणियं ।

विहरन्तस्स य अद्धाणसणं इदरं च चरिमन्ते ॥२१४॥

अर्थ--अद्धा नाम कालका है, सो कालकी मर्यादा करि भोजनका त्याग करना सो अद्धानशन है। अर जो यावज्जीव मरणपर्यंतपर्यायमें भोजनका त्याग करना सो सर्वानशन है। तहां जितनै चारित्रमें आछी रीति प्रवर्तन रहै, तितनै अद्धानशन है अर जब आयुका अन्त आजाय, तदि सर्वानशन है। अब अद्धानशनका भेद कहे है। गाथा—

होइ चउत्थं छठ्ठट्ठमाइ छम्मासखवणपरियंतो ।

अद्धाणसणविभागो एसो इच्छाणुपुव्वीए ॥२१५॥

अर्थ--जो आपकी इच्छापूर्वक चतुर्थ कहिये एक उपवास, षष्ठ कहिये बेलो, अष्टम कहिये तेलो इत्यादिक छह महिनाका उपवासपर्यंत मर्यादापूर्वक भोजनका त्यागरूप अद्धानशनका भेद है। अब अवमोदर्यतपकूं दिखावे हैं। गाथा--

बत्तीसं किर कवला आहारो कुक्खिपूरणो होइ।
पुरिसस्स महिलियाए अट्ठावीसं हवे कवला ॥२१६॥

अर्थ--पुरुषका आहार बत्तीस ग्रासप्रमाण कुक्षिपूरण करनेवाला होय है अर स्त्रीका अठाईस ग्रासप्रमाण कुक्षिपूर्ण आहार होय है। सो एक हजार चावलमात्र एक ग्रासका प्रमाण आगममें कह्या है। सोही मूलाचार नामा ग्रंथमें वा मूलाचारप्रदीप नामा ग्रंथहूमें स्वाभाविक विकाररहित पुरुषका आहार बत्तीस ग्रासप्रमाण अर स्त्रीका आहार अठाईस ग्रासप्रमाण कह्या है। गाथा—

एगुत्तरसेढीए जावय कवलो वि होदि परिहीणो।
ऊमोदरियतवो सो अद्धकवलमेव सिच्छं च ॥२१७॥

अर्थ—कुक्षिपूरण करनेवाला आहारतें एक ग्रासकरि ऊन तथा दोय ग्रास घाटि तथा तीन चार ग्रास ऊननें आदि लेय एक ग्रासपर्यंत एक एक ग्रास हीन तथा अर्द्ध ग्रास तथा एक सिक्थ कहिये चावलमात्रही लेना सो अवमोदर्यतप है। इहां एकसिक्थ अथवा अर्द्ध ग्रास उपलक्षणपद है। तातें आहारकी न्यूनता जाननी, और तरह एकसिक्थ आदि लेना कैसे बनै? अथवा कोऊकै एक ग्रासमात्र लेनेका नियम था अर हस्तमें पहली एक चावलही आगया, तो चावलमात्रही लेवै अधिक नहीं लेवै, ऐसेंही एकसिक्थमात्र वर्ण है। आतें अवमोदर्यतें भोजनकी लोलुपता घटे है अर निद्राका विजय होय है, अनशनादि तपसूं उपज्या खेदका अभाव होय है, वात-पित्त-कफादिककृत उपद्रव नहीं होय है, समताभाव प्रकट होय है, कामका विजय होय है, इन्द्रियांकी लंपटता छूटे है, तातें अवमोदर्य तपही परम उपकारक है। अब रसपरित्यागतपकूं कहे हैं। गाथा—

चत्तारि महावियडीओ होंति णवणीदमज्जमंसमहू।
कंखापसंगदप्पाऽसंजमकारीओ एदाओ ॥२१८॥

अर्थ—नवनीत कहिये लूण्या माखन, मद्य कहिये मदिरा, मांस, मधु कहिये सहत ये च्यारि महाविकृति है। भगवानका परमागमविषे ये च्यारि महाविकार है–अल्पविकार नाहीं। तहां नवनीत तो कांक्षा जो अतिगृद्धिता, ताहि करै है। स अतिगृद्धिता कहा ? अतिलंपटता, बारम्बार प्रवृत्ति करे है। अर मद्य जो मदिरा, सो प्रसंग कहिये अगम्यगमन करावे है, जातें मदिरापान करे ताकै खाद्य, अखाद्य, सेव्य–असेव्य, माता–स्त्री इत्यादिक विचार ही नहीं रहे है। अर मांसभक्षण दर्प करे है। मधु जो सहतभक्षण सो असयम करे है। तातें—

आणाभिकंखिणावज्जभीरुणा तवसमाधिकामेण।
तावो जावज्जीवं णिज्जूढाओ पुरा चेव ॥२१९॥

अर्थ—भगवान् जो सर्वज्ञ ताकी आज्ञा पालनेका इच्छुक, ऐसा भव्य सम्यग्दृष्टि, तथा नरकपतनका कारण जो पाप, तातें भयभीत ऐसा, तथा तप अर समाधिमरणका इच्छुक पुरुष ताकूं सल्लेखनाका कालके पहलीही यावज्जीव नवनीत अर मदिरा अर मांस अर मधु इनका त्याग करना है। भावार्थ—जो पुरुष नवनीत मद्य मांस मधुका त्याग नहीं कीया, सो सर्वज्ञकी आज्ञातें बहिर्मुख है–अपूठा है, अर महापापी है, ताकै नरक पहुँचानेवाला पापका भय नाहीं है, अर ताकै तपकी समाधिमरणकी इच्छाही नहीं जाननी, वे पुरुष जैनी ही नहीं। जो जिनधर्मका एकदेश भी अंगीकार करेगा सो जीवनपर्यंत च्यार महाविकृतिका त्याग पहली ही करैगा। अब रसत्यागतपका क्रम कहे है। गाथा—

खीरदधिसप्पितेल्लं गुडाण पत्तेगदो व सव्वेसिं।
णिज्जूहणमोगाहिम पणकुसणलोणमादीणं ॥२२०॥

अर्थ—दुग्ध, दधि, घृत, तेल, गुड इनिका प्रत्येक त्याग तथा सर्वरसनिका त्याग, सो रसपरित्याग है। तथा पूप कहिये पुवा, पत्र, शाक, व्यंजन, लवणादिकनिका त्याग, सो रसपरित्याग है। गाथा—

अरसं च अण्णवेलाकदं च सुद्धोदणं च लुक्खं च।
आयंबिलमायामोदण च विगडोदणं चेव ॥२२१॥

अर्थ—अरसं कहिये स्वादुरहित, तथा अन्यवेलांको कीयो शीतल तथा शुद्धोदन कहिये काहूकरि मिल्या नाहीं,

तथा रूक्ष कहिये लूखा, तथा आचाम्ल, तथा आयामोदन कहिये थोडा जलमें चावल, तथा विकृतोदन कहिये अत्यंत पक्क उष्णजलकरि मिल्या, तथा--

इच्चेवमादि विविहो णायव्वो हवदि रसपरिच्चाओ ।
एस तवो भजिदव्वो विसेसदो सल्लिहंतेण ॥२२२॥

अर्थ--इत्यादिक नानाप्रकारके रसपरित्याग नामा तप जाननेयोग्य होय है, सो सल्लेखना करनेवाला जो साधु तिसकूं पूर्वे कह्या इत्यादिक रसपरित्याग नामा तप सो विशेषकरि करिबे योग्य है । ऐसें रसपरित्याग तप कह्या । आगें वृत्तिपरिसंख्यान नामा तपकी निरूपणाके अर्थि च्यार गाथा कहे हैं । गाथा--

गत्तापच्चागदं उज्जुवीहि गोमुत्तियं च पेलवियं ।
संबूकावट्टंपि य पदंगवीधी य गोयरिया ॥२२३॥

अर्थ--वृत्तिपरिसंख्यान नामा तपका करनेवाला केईप्रकारकी प्रतिज्ञा करिकै अर भोजनकूं जाय है जो ऐसें मिलेगा तो भोजन करूंगा, और प्रकार नहीं । तहां मार्गकी प्रतिज्ञाकूं कहे हैं--जिस मार्गकरिकै नगर ग्राममें भोजनकूं जाऊंगा, तिसही मार्गकरिकै आऊंगा, जो आवता भिक्षा प्राप्त होयगी तो ग्रहण करूंगा, और प्रकार नहीं । ऐसी प्रतिज्ञा करै । बहुरि जो सरल सूधा मार्गकरिकै भोजनकूं जाऊंगा, जो सरलमार्गमें भोजन प्राप्त होयगा तो ग्रहण करूंगा, अन्य प्रकार नहीं । तथा गोमूत्रिकाके आकार मोड़ा खाता भ्रमण करता जो भोजन मिलेगा तो ग्रहण करूंगा, अन्यथा नहीं । तथा पेलविय कहिये कोई देशनिमें वस्त्रसुवर्णादिकनिका निक्षेपणके अर्थि बांसके सींक पत्रादिककरि चौकोर पिटारे करे हैं, ताके आकार भिक्षाके अर्थि भ्रमण करूंगा, जो ऐसें चतुरस्र परिभ्रमण करता भोजन मिलेगा तो ग्रहण करूंगा, और प्रकार नहीं । तथा संबुकावर्त जो जलशुक्तिकाके आकार परिभ्रमण करूंगा, जो ऐसें मिलेगा तो भोजन ग्रहण करूंगा, और प्रकार नाहीं । तथा पतगवीथी जो सूर्यका गमनकीनाई भिक्षाकूं भ्रमण करूंगा, जो ऐसा मार्गमें भोजन मिलेगा तो ग्रहण करूंगा, अन्यप्रकार नाहीं । ऐसें गोचरी जो भिक्षाके अर्थि भ्रमणमें प्रतिज्ञा करिकै भोजन करनेका नियम, सो वृत्तिपरिसंख्यान है । तथा--

पाडयणियंसणभिक्खा परिमाणं वत्तिघासपरिमाणं ।
पिंडेसणा य पाणेसणा य जागूय पुग्गलया ॥२२४॥

अर्थ--एक पाडेमैही भोजन मिलेगा तो ग्रहण करूं वा दोय पाडेमै, इत्यादिक पाडेनिका प्रमाणकरि भोजनग्रहण की प्रतिज्ञा करै । तथा या गृहका बारिला परिकरकी भूमिमैंही प्रवेश करूंगा, गृहके अभ्यंतर नहीं प्रवेश करूं ऐसी प्रतिज्ञा करिकै भोजन करै, सो णियंसण नामा परिमाण है । तथा भिक्षाका प्रमाण करै, जो इतना गृहनिमें जाऊं, एकमें तथा दोय च्यारि पांच सात इनिमें भोजन मिले तो ग्रहण करूं, औरमैं नहीं । तथा दातारका प्रमाण करै, जो, एककरि दीनीही भिक्षा ग्रहण करूं वा दोयकरि दीनी ग्रहण करूं । तथा ग्रासनिका प्रमाणकरि ग्रहण करना । तथा पिंडरूपही ग्रहण करूं वा अपिंडरूपही ग्रहण करूं । इहां पिंड नाम जिस आहारका एकट्ठा पिंड बन्धि जाय सो पिंड रूप है अर जिसका पिंड नहीं बंधे ऐसा विखरया आहार सो अपिंडभूत है, तिनिकी प्रतिज्ञा करै । तथा पाणेसणा जो आर्द्र जो गीला द्रवीभूत बहुतपणाकरिकै जाकूं पीयये सो तामै प्रतिज्ञा करै । तथा जागू कहिये मेदड़ी तथा यवागू कहिये राबड़ी इत्यादिक, तथा चोंला मोठ मूंग चणा मसूर इत्यादिक मिलेगा तौ भोजन लेवेंगे और प्रकार नहीं भक्षण करेंगे । तथा--

संसिट्ठ फलिह परिखा पुप्फोवहिदं व सुद्धगोवहिदं ।
लेवडमलेवडं पाणयं च णिस्सित्थगमसित्थं ॥२२५॥

अर्थ--बहुरि ऐसे प्रमाण करै, शाक और कुल्माष कुलत्थादिक जे धान्यविशेष ये मिल्या हुवा होय ताकूं संसृष्ट कहिये । सो कबहू ऐसी प्रतिज्ञा करै, जो शाक कुलत्थादिक मिल्याही भक्षण करूं और नहीं करूं । बहुरि भोजनमें दातार भोजन ल्यावे तामै सर्व तरफ तो शाक होय अर बीचिमैं भात होय, ताकूं फलिह कहिये । सो फलिहकी प्रतिज्ञा करै । बहुरि चारूं तरफ तरकारी अर बीचिमै तिष्ठतो अन्न सो परिखा कहिए, ताकी प्रतिज्ञा करै । बहुरि व्यंजन जो तरकारी ताकै बीचि पुष्पांकीनाई भात होय, ताकूं पुष्पोपहित कहिये, ताकी प्रतिज्ञा करै । बहुरि मोठ इत्यादिक अन्नकरि मिल्या हुवा शाक व्यंजनादिक सो शुद्धगोवहिद कहिये, ताकी प्रतिज्ञा करै । बहुरि हस्तकै लिप जाय सो लेपकारी भोजनकूं लेवड कहिये, ताकी प्रतिज्ञा करै । बहुरि हस्तकै नहीं लिपै ताकूं अलेवड कहिये, ताकी प्रतिज्ञा करै । बहुरि पीने की वस्तु ताकूं पानक कहिये, सो तंदुलसहित होय ताकूं ससित्थ कहिये । अर चांवलरहित मांड इत्यादिकूं सित्थरहित कहिये । सो ऐसी प्रतिज्ञा करि भोजनके अर्थि गमन करै, सो वृत्तिपरिसंख्यान है । तथा--

पत्तस्स दायगस्स व अवग्गहो बहुविहो ससत्तीए।
इच्चेवमादिविधिणा णादव्वा वुत्तिपरिसंखा ॥२२६॥

अर्थ--बहुरि सुवर्णका पात्रमें भोजन देनेकूं ल्यावै तो ग्रहण करूंगा, कांसीपात्र, पीतलका वा ताम्रका वा रूपाका वा मांटीका पात्रमें भोजन ल्यावै तो ग्रहण करूंगा और प्रकार नहीं ग्रहण करूं इत्यादि पात्रका नियम करै। बहुरि बाल वृद्ध युवान वा स्त्री वा आभरणसहित वा निराभरण इत्यादिक दातारका नियम करै। औरहू, बहुप्रकार आपकी शक्तिप्रमाण इत्यादिक नानाप्रकार अभिप्रायकरि भोजन ग्रहण करै सो वृत्तिपरिसंख्यान नामा तप जाणबो जोग्यं है। अब कायक्लेशनामा तपकूं कहे है।

अणुसूरी पडिसूरी य उड्ढसूरी य तिरियसूरी य।
उब्भागेण य गमणं पडिआगमणं च गंतूणं ॥२२७॥

अर्थ—सूर्यकूं सन्मुख करि गमन करना, तथा सूर्यकूं पाछै करि गमन करना, तथा सूर्य मस्तक ऊपरि आजाय तदि गमन करना, तथा सूर्यकूं तिर्यक् करि गमन करना, तथा एकग्रामतै अन्यग्रामप्रति गमन करना, तथा गमन करि आगमन करना, सो यह गमनका खेदजनित कायक्लेश तप है। गाथा—

साधारणं सवीचारं सणिरुद्धं तहेव वोसट्टं।
समपादमेगपादं गिद्धोलीणं च ठाणाणि ॥२२८॥

अर्थ—स्तम्भादिकनिकूं आश्रय करि खडा रहना सो साधारण है, अर गमन पूर्व करि अर पाछै खडा रहना सवीचार है, अर निश्चल खडा रहना सन्निरुद्ध है, बहुरि कायसूं ममत्व छोडि तिष्ठना कायोत्सर्ग है, बहुरि समपादकरि खडा रहना समपाद है, बहुरि एकपादकरि तिष्ठना एकपाद है, बहुरि गृध्रका ऊर्ध्वगमनकी नांई बाहु पसारि खडा रहना गृद्धोलीन है। इत्यादिक निश्चल अवस्थान कायक्लेश है। तथा—

समपलियंक णिसेज्जा समपदगोदोहिया च उक्कुडिया।
मगरमुह हत्थिसुंडी गोणणिसेज्जद्धपलियंका ॥२२९॥

अर्थ—सम्यक् पर्यंकनिषद्यासन तथा समपाद स्थानकरि आसन, बहुरि गौका दोहनिके आसनकीनांई आसन, तथा उत्कटिकासन, ऊर्ध्व अंगसंकोच करि आसन, बहुरि मकर जो मत्स्य ताका मुखकीनांई पग करि आसन करना सो मकरमुखासन है, हस्तीकी सूंडिकीनांई पादप्रसारण करि आसन करना सो हस्तिशुंडासन है, तथा गौका आसनकीनांई आसन सो गोनिषद्यासन है, तथा गोनिषद्यासनवत् अर्द्ध पर्यंकासन है। इत्यादि आसनयोगकरि कायक्लेशतप है। तथा—

वीरासणं च दंडा य उढ्ढसाई य लगडसाई य।

उत्ताणो मच्छिय एगपाससाई य मडयसाई य ॥२३०॥

अर्थ—वीरासन तथा दंडासनमें दंडकीनांई शरीरकूं लम्बा करि शयन करना है। तथा ऊर्ध्वशयनं तथा संकुचित गात्र होय शयन करना सो लकुटशाई है। तथा उत्तानशयन तथा एक पसवाडेतें शयन करना सो इत्यादिक शयनकरि कायक्लेश है।

अब्भावगासमयणं अणिट्ठुवणा अकंडुगं चेव।

तणफलयसिलाभूमी सेज्जा तह केसलोचे य ॥२३१॥

अर्थ—बाह्य निरावरण प्रदेशमें शयन करना जाऊपरि कोऊ छाया नांही सो अभ्रावकाशशयन है। बहुरि निष्ठीवन जो खंखार थूकका नहीं क्षेपणा सो अनिष्ठीवन है। तथा खाजि शरीरमें चालै ताका नहीं खुजालना सो अकडुकशयन है। बहुरि तृण तथा काष्ठकी फडि सो फलक तथा पाषाणमय शिला तथा कोरी भूमि इनि च्यारि प्रकारके संस्तरमें शयन करना। बहुरि केशनिका लोंच करना इत्यादि कायक्लेश तप है। तथा—

अब्भुट्ठणं च रादो अण्हाणमदंतधोवणं चेव।

कार्यकलेसो एसो सीदुण्हादावणादी य ॥२३२॥

अर्थ— रात्रिविषै जागरणा, बहुरि स्नानका त्याग, अदंतधोवन कहिये दांतनिका धोवनेका त्याग, तथा शीत उष्ण आतापनादिकका सहना सो कायक्लेश तप है। ऐसें कायक्लेश तप कह्या, यातें शरीरमें सुखियास्वभाव मिटे है, तथा परीषह सहनेकूं समर्थ होय है तथा रोगादिक आये कायर नहीं होय है, आराधनातें नहीं चिगे है। आगे विविक्तशयनासन तपका निरूपण करे हैं। गाथा—

जत्थ ण सोत्तिग अत्थि दु सद्दरसरूवगंधफासेहिं ।
सज्झायज्झाणवाघादो वा वसधी विवित्ता सा ॥२३३॥

अर्थ—जा वसतिकामैं शब्द, रस, रूप, गंध, स्पर्शकरि अशुभपरिणाम नहीं होय तथा स्वाध्यायका अर शुभध्यान का घात नहीं होय सो विविक्तवसतिका है । भावार्थ—मुनीश्वरके वसनेयोग्य वसतिका ऐसी होय तामैं वसै । तहां ग्रामके निकट वसतिकामें एकरात्रि वसै अर नगरबाह्य वसतिका होय तामै पंचरात्रि वसै । अधिककाल वर्षाऋतुविना एक क्षेत्रमें नहीं वसै । अर जहां रागद्वेषकारी वस्तु देखि परिणाम बिगडि जाय तथा स्वाध्याय ध्यान बिगडि जाय तहां साधुकूं क्षणमात्रहू नहीं रहना । बहुरि कहे हैं—

वियडाए अवियडाए समविसमाए बहिं च अन्तो वा ।
इत्थिणउंसयपसुवज्जिदाए सीदाए उसिणाए ॥२३४॥

अर्थ—वसतिका उघड्या द्वारनिकी होहू, तथा ढक्या द्वारनिकी होहू, समभूमिसमन्वित होहू वा जाकी ओधक नीचै विषमभूमि होहू, तथा शीत उष्णतासहित होऊ वा शीतउष्ण बाधारहित होहू, बाह्य प्रकट दीखता मकान होहू वा अभ्यन्तर होहू परन्तु जामैं स्त्रीनिका तथा नपुंसकनिका तथा पशूनिका आवना जावनाकरि रहित होय सो अंगीकार करै । जिस स्थानमें स्त्री नपुंसक पंचेन्द्रियतिर्यंचनिका आर जार होय तिस वसतिकामैं साधुजन नहीं वसै । और विविक्तवसतिका कैसी होय सो कहे हैं । गाथा—

उग्गमउप्पादणएसणाविसुद्धाए अकिरियाए दु ।
वसदि असंसत्ताए णिप्पाहुडियाए सेज्जाए ॥२३५॥

अर्थ—जैसैं आहार छियालीस दोषरहित शुद्ध होय सो ग्रहण करे हैं, तैसं जैनके दिगम्बर मुनि छियालीस दोष रहित वसतिका ग्रहण करे हैं । सो वसतिका सोलहप्रकार उद्गमदोष तथा सोलह प्रकार ही उत्पादनदोष अर दशप्रकार एषणा दोष अर संयोजना तथा अप्रमाण और धूम अर अंगार ऐसे छियालीष दोषरहित वसतिका मैं प्रमाणीक काल रहे हैं । तहां छियालीस दोषनितै जुदा एक अधःकर्म दोष है, याकूं होतैं साधुपणाही भ्रष्ट होजाय, सो कहे हैं ।

जो वसतिकाके निमित्त वृक्षका छेदना, तथा पाषाणका भेदना, छेदना अर ल्यावना, तथा ईंटां पकावना, भूमि खोदना, तथा पाषाण बालू रेतकरि खाड़ा भरना, तथा पृथ्वीका कूटना, कादा करना, अग्निकरि लोहकूं तपावना, तथा लोहके कीलेनिकूं करना, तथा करोतनकरि काष्ठपाषाणका चीरना, तथा फरसीकरि छेदना, बसोलेनकरि छोलना इत्यादिक व्यापारकरि छकायका जीवनिकूं बाधा करिकैं आप वसतिका उत्पन्न करै तथा अन्यकरि करावै तथा अन्य करै ताकूं भला जाणै सो महानिंद्य अधःकर्म नामा दोष मुनिधर्मकूं मूलतं नाश करनेवाला है, सो त्यागनेयोग्य है । भावार्थ—वसतिका कोऊ देशमें काष्ठकी होय है, कोऊ देशमें पाषाणकी होय है, सो मुनि होय वसतिकाका आरम्भ करै, करावै, करताकूं भला जाणै, ताका साधुधर्म बिगडि जाय है ।

अब उद्गम सोलह दोष हैं, तिनिकूं कहे हैं । जितने दीन, अनाथ वा लिंगधारी आवैं तिनिके वास्ते या वसतिका करी है, अथवा श्रमण जे निर्ग्रंथमुनि तिनिके वास्ते या वसतिका कराऊं हूं, ऐसें वसतिका मुनीश्वरनिके अर्थि करै, करावै, करतेकूं भला जाणै, सो उद्देशदोषसहित वसतिका है ॥१॥ जो गृहस्थ आपके निमित्त मकान हवेली महल बनावता होय, तदि विचारै–जो, साधु संयमी भी आयवो करे हैं, सो कितनेक काष्ठ पाषाण ईंट सिवाय मंगाय एक वसतिका साधुवास्तै भी बनाय ल्यूं । ऐसें वसतिका बनाय साधुके अर्थि देवै, सो अध्यधिदोष है ॥२॥ बहुरि अपने गृहका बनावनेकूं काष्ठ ईंट पाषाण भेले कीये थे, तिनिमें अल्प काष्ठादिक मुनिकी वसतिकाके निमित्त मंगाय मिला देना, सो पूति दोष है ॥३॥ बहुरि कोऊ गृह वा वसतिका अन्य पाखंडी वा गृहस्थीनिके निमित्त बनाया था, फेरि विचार भया जो ऐसें बनिजाय तो साधूहू रह्या करै । ऐसें संकल्पकरि करी वसतिका मिश्रदोषसहित है ॥४॥ बहुरि कोऊ मकान आपके निमित्त किया था अर फेरि विचार भया, यह मकान साधुके अर्थिही है, औरके अर्थि नहीं, सो स्थापितदोष है ॥५॥ बहुरि जिस दिन साधु मुनि आवैंगे तिस दिन वसतिकाकूं सर्वसंस्कार करि सुधारैंगे, धवल करैंगे । या विचारि साधु आवे जिस दिन वसतिकानैं भुवारि उज्ज्वल करि देवै, सो प्राभृतकदोष है । अथवा साधु आवैं ताकूं कालका विलम्ब करि अर वसतिका सवारि देना सोहू प्राभृतकदोष है ॥६॥ बहुरि जिस वसतिकामें अन्धकार बहोत होय तिसमें प्रकाश करनेके अर्थि भींतिनिमें छिद्र कर दे, जाली काटि दे वा ऊपरि आडे फलक काष्ठ उतारि ले वा दीपक जोय दे, सो प्रादुष्कारदोष है ॥७॥ बहुरि गाय, बलध, भैंस इत्यादिक सचित्त द्रव्य देय संयमीके अर्थि वसतिका मोलि लेवै, सो सचित्तक्रीत है ॥८॥ बहुरि खांड गुड घृतादिक अचित्तद्रव्य देय वसतिका खरीदे, सो अचित्तक्रीत है ॥९॥ बहुरि व्याज भाडा देय मुनीनिके अर्थि वसतिका

ग्रहण करै, सो प्रामिच्छ दोष है ।।१०।। बहुरि कोऊ वसतिकाका स्वामीकूं कहे—जो, हाल हमारा मकानजायगामें तुम तिष्ठो, तुमारा मकान वसतिका मुनिनिकूं रहनेकूं देवो, पीछै साधु विहार करि जायगा तदि तुमारा तुम ग्रहण करियो, ऐसैं बदलि ल्यावै तो वह वसतिका परिवर्तनदोषसहित है ।।११।। बहुरि अपनी भींति इत्यादिकके अर्थि कोऊ सामग्री थी, सो अपने गृहतें संयतांकी वसतिकाके अर्थि ल्यावै, सो अभिघटदोषसहित है ।।१२।। सो दूरितें अन्यग्रामतें ल्यावै, सो अनाचरित अर अन्य आचरित ।।१३।। बहुरि जा वसतिकाका द्वार ईंटनिकरि वा मृत्तिकाकरि वा कांटानिकी बाडिकरि वा कपाटनिकरि वा पाषाणकरि मूंदि राख्या होय अर पाछै मुनीनिके निमित्त उघाडिकरि देवै, सो स्थगितदोष है वा उद्भिन्न दोष है ।।१४।। बहुरि राजाके मंत्री वा प्रधानपुरुषनिका भय दिखाय अर परकी वसतिका देवे, सो आछेद्यदोषसहित है ।।१५।। बहुरि वसतिकाका स्वामी असमर्थ है, बालक है वा सेवकादिकनिके आधीन है, ताकरि दीनी, सो अनिसृष्टि है वा आप जाका स्वामी नहीं ताकरि दीनी, सो अनिसृष्टिदोषसहित है ।।१६।। ऐसे सोलह उद्गमदोष कहे, सो ये सर्व दातारके आश्रय हैं, अर साधु जाणै सो त्याग करैही । अब उत्पादनदोष सोलहप्रकार साधुके आश्रय हैं, सो कहे हैं ।

जगतमें पंचप्रकारकी धात्री होय हैं । जो बालककूं स्नान करावनेमें वा पूछनेमें, धोवनेमें जाका अधिकार होय सो मज्जनधात्री है ।।१।। अर जो बालककूं आभरण वस्त्रादिक पहरावनेमें, कज्जलादिकरि भूषित करनेमें जाका अधिकार होय सो मंडनधात्री है ।।२।। बहुरि बालककूं ख्याल खिलोनेनिकरि क्रीडा करावनेमें जाका अधिकार होय सो क्रीडनधात्री है ।।३।। बहुरि बालककूं स्तनपान करावनेमें वा दुग्धपानादिक करावनेमें जाका अधिकार होय सो पानधात्री है ।।४।। बहुरि बालककूं शयन करावनेमें जाका अधिकार होय सो स्वपनधात्री है ।।५।। जो श्रावकजन आपके बालकनिसहित साधुनिके निकट आवे, तब साधु श्रावकनिकूं कहे, जो—इनि बालकनिकूं ऐसैं भूषित करो, वा ऐसैं क्रीडा कराया करो, वा ऐसैं स्नान कराया करो वा ऐसैं दुग्धपान कराया करो, ऐसैं गृहस्थजननिकूं उपदेश करि गृहस्थनिकूं आपमें रागी करि उनकी दीई वसतिकाकूं ग्रहण करै, सो धात्रीदोषदुष्ट वसतिका है ।।१।।

बहुरि अन्यदेशतें वा अन्यग्रामतें वा अन्यनगरतें गृहस्थनिके सम्बन्धी पुत्री जवाई व्याही सगे भाई कुटुम्बीनिके समाचार ल्यायकरि जो उत्पन्न करी वसतिका, सो दूतकर्मोत्पादिता नामा दोषसहित है ।।२।।

बहुरि अंग उपांग देखनेकरि तथा शरीरमें तिल मसकादिक व्यंजन तिनके देखनेकरि तथा शरीरमें स्वस्तिक भृङ्गार कलश दर्पणादि लक्षणनिके देखनेकरि तथा वस्त्र छत्र आसन इत्यादिक मूंसेनिकरि वा कंटकनिकरि वा शस्त्र

अग्नि इत्यादिककरि छिन्न भये होय ताकूं सुनने देखनेकरि तथा भूमिका सूखापना, सचिक्कणपना इत्यादिक देखनेकरि तथा शुभ अशुभ स्वप्नके देखने सुननेकरि तथा आकाशमें सूत्र पडते तथा दिशानिके रूप ग्रहनिके आकृतिके देखनेकरि तथा चेतन अचेतनके शब्द श्रवणकरि जो त्रिकालवर्ती सुख दुःख जय पराजय दुर्भिक्ष सुभिक्ष इत्यादिक अष्टनिमित्ततैं जानिकरि गृहस्थनिकूं कहे है–जो–अबतलक इहां ऐसा भया अब आगैं ऐसा होयगा, वा वर्तमानकालमें ऐसा होय है, इत्यादिक कहिकरि उनतैं वसतिकाग्रहण करै, सो निमित्तदोषसहित है ।।३।।

बहुरि आपका कुल जाति ऐश्वर्य, आपकी महिमा प्रकट करिकै जो वसतिका ग्रहण करै, सो आजीवनदोषसहित है ।। ४ ।।

बहुरि कोऊ गृहस्थ प्रश्न करे—हे भगवन् ! सर्वही कंगाल वा भेषधारी तिनिकूं भोजनदान देनेमें वा वसतिकादान देनेमें महान् पुण्य उपजे है वा नहीं उपजे है ? तदि कहै—जो, देनेका पुण्यही है, इत्यादिक गृहस्थके अनुकूल वचन कहि वसतिकाग्रहण करै सो वनीपकदोषसहित है ।।५।।

बहुरि अष्टप्रकारकी चिकित्सा जो वैद्यकविद्या, ताहि करिकै जो वसतिका उत्पन्न करे है, सो चिकित्सादोषसहित है ।।६।।

बहुरि ७–क्रोधकरि उपजाई तथा ८–मानकरि तथा ९–मायाकरि तथा १०–लोभकरि उपजाई जो वसतिका सो च्यारि कषायदोषसहित हैं ।।१०।।

गमन करते वा आवते जे मुनीश्वर तिनिकूं आपका गृहही आश्रय है या वार्ता म्हे दूरितेंही सुनी थी, सोही देखी, इत्यादिक स्तवनकरिकै वसतिका ग्रहण करै सो पूर्वसंस्तुतिदोषसहित है ।।११।।

बहुरि जो वसतिकाग्रहण करे, पीछे स्तवन करे सो पश्चात्संस्तुति नामा दोष है ।।१२।।

तथा मंत्रका लालच देय वसतिकाग्रहण करे, सो मंत्रदोषसहित है ।।१३।।

बहुरि विद्याका लालच देय वसतिकाग्रहण करै, सो विद्यादोषसहित है ।।१४।।

बहुरि नेत्रका अंजन वा शरीरसंस्कारका चूर्ण इत्यादिकनिकी आशा लालच देय वसतिकाग्रहण करे, सो चूर्णदोष सहित है ।।१५।।

बहुरि जो अवशका वशीकरणप्रयोग तथा जो जुदा हो रह्या तिनिका संयोगकरण रूप कर्मकरि उपजाई वसतिका सो मूलकर्मदोषसहित है ।।१६।।

ये सोलह दोष पात्र जो साधुके आश्रय हैं, सो जैनके दिगम्बर कदाचित् ही दोषसहित वसतिका नहीं ग्रहण करै । अब दश एषणादोष कहे है । या वसतिका योग्य है वा अयोग्य है, या प्रकार जामैं शंका उपजे सो शंकितदोषसहित है ।।१।। बहुरि तत्कालकी लिप्त होय सो म्रक्षितदोषसहित है ।।२।। बहुरि जो सचित्त पृथ्वी वा जल वा हरितकाय वा बीज वा त्रसनिउपरि स्थापन कीया है पीठ फलकादिक जामें ऐसी वसतिका निक्षिप्तदोषसहित है ।।३।। बहुरि हरितकाय वा कांटा सचित्तमृत्तिका ताकूं दूरि करि वसतिका दे, सो पिहितदोषसहित है ।।४।। काष्ट तथा वस्त्र कटकनिमें घीसतो जो आगे जावतो पुरुष, ताकरि दिखाई जो वसतिका, सो व्यवहरणदोषसहित है ।।५।। बहुरि मृत्युका सूतकयुक्त तथा मतवाला तथा व्याधिसहित तथा नपुंसक तथा पिशाचगृहीत तथा नग्न इत्यादिकनिकरि दोई वसतिका सो दायकदोषसहित है ।।६। बहुरि स्थावर पिपीलिका उटकण इत्यादिकनिकरि मिली हुई वसतिका सो उन्मिश्रदोषसहित है ।।७।। जो आवने जावनेकरि मर्दली नहीं होय सो अपरिणतिदोषसहित है ।।८।। बहुरि जो घृत तेल खाण्ड इत्यादिककरि लिप्त होय जाके सूक्ष्म जीव चिपि जाय, सो लिप्तदोषसहित है ।।९।। बहुरि जो वसतिका आसबसंस्तरके भोगनेमें तो अल्प आवै अर बहोतका रोकना अंगीकार करना होय, सो परित्यजनदोषसहित है ।।१०।।

अब च्यारि दोष और कहे हैं । बहुरि अल्पभूमिमैं शय्या आसन होता होय अर अधिकभूमिकूं ग्रहण करना सो प्रमाणातिरेकदोष है ।।१।। बहुरि जो संयमीके रहनेयोग्य वसतिका भोगीपुरुष वा असंयमी पुरुषनिके बाग बगीचा महल मकानसूं मिलि रही होय, सो संयोजनादोषसहित है ।।२।। बहुरि या वसतिका शीत आताप पवनादिककरि उपद्रित है, भली नहीं, इत्यादिक निंदा करता जो वसतिकामैं बसै सो धूमदोषसहित है ।।३।। अर या वसतिका पवन शीत आताप उपद्रवरहित है, विस्तीर्ण है, सुन्दर है, इत्यादिक राग भावना करता अति आसक्त होय बसै सो अंगारदोषसहित है ।।४।। इत्यादिक छीयालीस दोषरहित जो वसतिका होय, तथा 'अकिरियाए' कहिये दुष्प्रमार्जनादिक संस्काररहित होय, जामैं दुष्टतातै पींछी इत्यादिकतै संस्कार नहीं भया होय, तथा 'असंसत्ताए' कहिये जीवनिकी उत्पत्तिरहित होय, तथा 'णिप्पाहुडिगाए–निष्प्राघूर्णिकायाम्' कहिये जामै रागी असंयमीनिकी शय्या आसन नहीं होय, सो साधूनिकै योग्य विविक्तवसतिका है । सो कैसी होय सो कहे हैं—

सुण्णघरगिरिगुहारुक्खमूलआगन्तुगारदेवकुले ।
अकदप्पब्भारारामघरादीणि य विचित्ताइं ॥२३६॥

अर्थ—सूना गृह होय वा गिरीकी गुफा होय तथा वृक्षका मूल होय तथा आगंतुक जो आवनेवाले जावनेवालेनिके विश्रामका मकान होय तथा देवकुल होय तथा शिक्षागृह होय तथा अकृतप्राग्भार कहिये कोईकरि आपके निमित्त कीया नहीं होय वा बागबगीचेनिके महल मकान होय सो विविक्तवसतिका साधुनिकं रहनेयोग्य होय है । अर जिस वसतिका मे ये दोष नहीं होय सो दिखावे हैं ।

कलहो बोलो झंझा वामोहो संकरो ममत्तिं च ।
ज्झाणाज्झयणविघादो णत्थि विवित्ताए वसधीए ॥२३७॥

अर्थ—या वसतिका हमारी या तुमारी ऐसा कलह जामें नहीं होय, अन्यजनरहित होय, बहुरि जामें बोल जो शब्द ताका श्रवणकी बहुलता नहीं होय, बहुरि झंझा जो संक्लेश सो शीत उष्ण पवन वर्षा दुष्ट तिर्यंच मनुष्यनिकरि जामें नहीं होय, बहुरि जामें व्यामोह जो परिणाम बिगडि जाय ऐसी नहीं होय, बहुरि जामें असंयमी जनाका संग मिलाप नहीं होय, बहुरि जामें ममताभाव जो या वसतिका मेरी ऐसा ममत्व नहीं उपजे ऐसी होय, बहुरि जामें ध्यान स्वाध्याय बिगडनेका कारण नहीं होय, ऐसी एकांतरूप साधुनिकं वसनेयोग्य विविक्तवसतिका कही । गाथा—

इय सल्लीणमुवगदो सुहप्पवत्तेहिं तिन्थजोएहिं ।
पंचसमिदो तिगुत्तो आदट्ठपरायणो होदि ॥२३८॥

अर्थ—या प्रकार सुखतें प्रवर्तते जे जोग कहिये तप वा ध्यान, तिनकरिके सल्लीणं कहिये एकात्मता जो तन्मयता तानें जो प्राप्त हुवा, जो पंचसमितिका धारक तथा तीन गुप्तिका धारक जो साधु सो आत्मार्थ जो आत्माका प्रयोजन हित, तामें तत्पर होय है । भावार्थ—ऐसें पूर्वोक्त विविक्त शय्यासन नामा तपका धारक जो साधु, सो सुखसूं प्रवर्त्या जो ध्यान, ताकरिकें आपका कल्याण करनेमें लीन होय संवरनिर्जरा करे है । आगें संवरपूर्वक निर्जरा करै ताकी महिमा कहे हैं । गाथा—

जो णिज्जरेदि कम्मं असंवुडो सुमहदावि कालेण ।
तं संवुडो तवस्सी खवेदि अंतोमुहुत्तेण ॥२३९॥

अर्थ—संवररहित तपस्वी बाह्य तपकरिकै जिनि कर्मनिकूं बहोत कालकरिकै निर्जरा करत है, तिन कर्मनिकूं तीन गुप्ति, पंचसमिति, दशलक्षण धर्म, बारह भावना, परीषहका जीतनारूप संवरका धारक तपस्वी अंतर्मुहूर्त कालमें निर्जरा करे है। भावार्थ—नवीन आवते कर्मनिको रोकनेवाला तपस्वी जिस कर्मकूं अंतर्मुहूर्तमें क्षिपावै, तिस कर्मकूं संवररहित तपस्वी संख्यात असख्यात वर्ष घोर तप करताहू निर्जरा नहीं करि सके है।

एवमवलायमाणो भावेमाणो तवेण एदेण ।
दोसे णिग्घाडंतो पग्गहिददरं परक्कमदि ॥२४०॥

अर्थ—या प्रकार तपसूं नहीं पाछे होते जे साधु ते बाह्य अो तप, ताकरिकै दोष जो अशुभपरिणाम, ताका घात करते अतिशयरूप पराक्रमनै प्राप्त होय है। भावार्थ—ऐसे तपका प्रभावकरि, अशुभ मोहजनित परिणाम, तिनिका नाश करि आत्माका महान् पराक्रम प्रकट करे है। जाकरि सर्वकर्मका अभाव होय, निर्वाण होवे। आगै निर्जराका अर्थी जो साधु, ताकूं ऐसा तप आचरण करना योग्य है, ऐसें कहे हैं। गाथा—

सो णाम बाहिरतवो जेण मणो दुक्कडं ण उट्ठेदि ।
जेण य सढ्ढा जायदि जेण य जोगा ण हायन्ति ॥२४१॥

अर्थ—बाह्यतप तो वैही प्रशंसायोग्य है, जाकरि मन पापविषै उद्यमी नहीं होय। अर जिस तपकरि धर्ममें अर अभ्यन्तरतपमें श्रद्धा दृढ होती जाय, सो तप प्रशंसायोग्य है। अर जिस तपकूं करनेकरि शुभध्यान वा तपमें उत्साह नहीं घटै, सो तप प्रशंसायोग्य है-आचरण करनेयोग्य है। अब बाह्यतपका गुण कहे हैं ॥ गाथा—

बाहिरतवेण होदि हु सव्वा सुहसीलदा परिच्चत्ता ।
सल्लिहिदं च सरीरं ठविदो अप्पा य संवेगे ॥२४२॥

अर्थ—बाह्यतपकरिकै सुखिया रहनेका स्वभावका त्याग होय है, अर शरीरको कृशता होय है, अर आत्मा संसार-देहभोगतै विरक्ततारूप संवेगमें स्थाप्या जाय है । जातै जाकै देहका सुखमें राग होय है सो आत्मिकसुखका ज्ञानतै बहिर्मुख हुवा रागभावतै बंध करे है, देहमें अनुरागी तिनकै अनशनादितप नहीं होय है । अर तपका प्रभावतै शरीर कृश होजाय तब ममता घटिजाय है, वातपित्तकफादिक रोग उपद्रव नहीं करे है, परीषह सहनेमें समर्थ होय है, कायरता नहीं उपजे है, अर जाकै पंचपरिवर्तनरूप संसार, अर कृतघ्नी देह अर तृष्णाके बधावनेवाले भोग इनिमैं विरक्तता उपजे है, ताहीके बाह्य तप होय है ।। गाथा—

दंताणि इंदियाणि य समाधिजोगा य फासिदा होंति ।
अणिगूहिदवीरियओ जीविदतण्हा य वोच्छिण्णा ।।२४३।।

अर्थ—बहुरि बाह्यतपकरिके पांचूं इन्द्रियां विषयनिमें दौडती रुकिजाय है । अर रत्नत्रयसूं तन्मयतारूप जो समाधि ताका सम्बन्ध–अंगीकार होय है । अर अपना वीर्य जो पराक्रम सो नहीं छिपाया जाय है । जातै जो आपकी शक्ति प्रकट करेगा, सोही बाह्यतपमें उद्यमी होयगा । बहुरि जीवनेमें जो तृष्णा ताका अभाव होय है । जातै जाकै पर्याय में अतिलंपटता, ताके तप नहीं होय है । गाथा—

दुक्खं च भाविदं होदि अप्पडिबद्धो य देहरससुक्खे ।
मुसमूरिया कसाया विसएसु अणायरो होदि ।।२४४।।

अर्थ—तप करनेकरि क्षुधा तृषादिक दुःख भावित कहिये भोग्या हुवा होय है । जातैं मरणकालमें रोगजनित-वेदनादिकनितै उपज्या दुःखतै धरमथकी चलायमान नहीं होय है । पूर्वै अनेकवार स्ववशी होय तपश्चरणमें क्षुधातृषादिकतै उपज्या दुःखकूं समभावनितै जो पुरुष भोगि राख्या होय, सो अंतकालमें कर्मका उदयकरि आया दुःखमें कायरताकूं नहीं प्राप्त होय, निश्चलज्ञानध्यानमें सावधान होय, तदि समभावके प्रभावतै बडी निर्जरा होय है । बहुरि देहका सुख अर रस जे इन्द्रियविषयनिके सुख, यामैं प्रतितबद्ध जो आसक्तता, ताहि नहीं प्राप्त होय है । अर कषायां उन्मर्दित हो हैं, नष्ट होय हैं । अर विषयनिमें अनादर होय है । जातैं भोजनका अलाभ होय वा असुहावणा भोजन मिलै तदि क्रोध उपजे है, अर बहोत लाभ होय वा रसवान भोजनका लाभ होय तदि आपके अभिमान होय है–जो हम ऋद्धिवान् हैं, जहां जावै तहां

बहोत आदरसहित लाभ होय है। तथा जैसे मैं भिक्षाने जाऊं हूं तैसे ये अन्य नहीं जानै, इत्यादिक मायाचार होय है। अर भोजनका लाभ होय वा अतिरसवान् भोजन मिलै तब आसक्तता सो लोभकषाय होय है। अथवा भोजनका अलाभ में क्रोध उपजै, लाभ होय तब मान उपजै, औरहू आसक्ततारूप माया लोभ होय है, सो ये च्यार प्रकार कषाय अनशनादि तप करनेवालेके नहीं होय हैं, विषयनिमें अनादर होय है। तथा गाथा—

कवजोगदाददमणं आहारणिरासदा अगिद्धी य।

लाभालाभे समदा तितिक्खणं बंभचेरस्स ॥२४५॥

अर्थ—बहुरि बाह्यतपकरिके सर्वत्यागके पाछे होनेयोग्य जो आहारत्यागका जोग जो सल्लेखना सो होय है। बहुरि आहार करनेका जो सुख, ताके त्यागतें आत्माका दमन जो वशीभूतपना, सो होय है। बहुरि दिनदिनप्रति अनशन रसपरित्यागादिक तप करनेतें आहारमें निराशता जो वांछारहितपना प्रकट होय है। बहुरि आहारमें गृद्धिता जो लंपटता, ताका अभाव होय है; जातें भोजनका लंपटीतें आहारत्यागादि तप नहीं होय है। बहुरि आहारका लाभमें हर्ष अर अलाभ में विषादका अभावरूप समता होय है, जातें जो स्वयमेव मिल्या हुवाहीकूं त्यागे ताकै पैलाके घर नहीं देवै तामें मन नहीं बिगडे है। बहुरि ब्रह्मचर्यव्रतकी रक्षा होय है, जातें आहारहीका त्यागी ताकै अन्यविषयनिमें अनुराग स्वयमेव छूटे है, वीर्यादिक नष्ट होजाय है, तातें ब्रह्मचर्यकी रक्षाहू तपहीतें है। तथा गाथा—

णिद्दाजओ य दढझाणदा विमुत्ती य दप्पणिग्घादो।

सज्झायजोगणिव्विग्घदा य सुहदुक्खसमदा य ॥२४६॥

अर्थ—नित्यही भोजन करनेवाले के वा बहोत भोजन करनेवाले के वा रसनिसहित भोजन करनेवालेके वा पवन-रहित, उपद्रवरहित, सुखरूप स्पर्शसहित स्थानमें शयन करनेवाले के महान् निद्रा उत्पन्न होय है। अर निद्राकरिके परवश होत है, तथा चेतनारहित होय है, प्रमादी होय है, तदि अशुभपरिणामका प्रवाहमें पतन होय है, अर रत्नत्रयमें नहीं प्राप्त होय है। तातें निद्राका जीतनाही परमकल्याण है, अर निद्रा जीतनेतें ही मुनिधर्म होय है। सो निद्राका जीतना तपश्चरणहीतें होय है। बहुरि ध्यानमें दृढताहू तपश्चरणविना नहीं होय है, जातें जो कदेहू दुःख नहीं भाया सो ध्यानतें चलि जाय है, तातें तपश्चरणहीतें ध्यानमें दृढता होय है। बहुरि तपश्चरण करनेवालेकेही विशेष त्याग होय है, तातें तपतें

विमुक्ति होय है। बहुरि असंयमतैं जो दर्प होय है, ताको तपश्चरणकरि निर्घात होय है। बहुरि तपके प्रभावतैं स्वाध्याय योगमें निर्विघ्नता होय है, जातैं तपश्चरण करनेतैं वाचना पृच्छना अनुप्रेक्षा आम्नाय धर्मोपदेश तथा ध्यानमें विघ्न नहीं आवे है, जातैं आहारके अर्थि परिभ्रमण करता रहै सो कैसैं स्वाध्याय करै? बहुरि बहोत भोजन करनेवाला पडिजाय है, उठनेकूं भी असमर्थ होय है, अर बहोत रसका भोजन करै सो आहारको गरमीकरि तप्तायमान ऐंठी ऊंठी पडता गिरता परिभ्रमण करे है। बहुरि अयोग्यवसतिकामैं बसते, परके वचन श्रवण करते, अर असंयमीनिकरि संभाषण करते कैसैं स्वाध्याय ध्यान करै? तातैं तपहीतैं स्वाध्याय निर्विघ्न होय है। बहुरि तपश्चरणतैं जो परिणाम समाधि राख्या होय ताकैं सुखदुःख आये समता प्रकट होय है। तथा गाथा—

आदा कुल गणो पवयणं च सोभाविदं हवदि सव्वं।
अलसत्तणं च विजढं कम्मं च विणिद्धुयं होदि ॥२४७॥

अर्थ—बाह्यतपका प्रभावकरि आपका आत्मा तथा कुल तथा संघ तथा प्रवचन जो धर्म सो शोभा प्रशंसानैं प्राप्त होय है, अर आलस्यका त्याग होय है अर संसारका कारण कर्म निर्मूल हो जाय है। गाथा—

बहुगाणं संवेगो जायदि सोमत्तणं च मिच्छाणं।
मग्गो य दीविदो भगवदो य आणाणुपालिया होदि ।२४८।

अर्थ—बाह्यतपका प्रभावकरि बहोत जीवनिकै संसारतैं भय उपजे है। जैसैं एककूं युद्धके अर्थि सज्यो देखि अन्यहू अनेक युद्धमें उद्यमी होय हैं, तैसैं एककूं कर्मका नाश करनेमें उद्यमी देखि अनेक कर्मका नाश करनेमें उद्यमी होय है, तथा संसारपतनका भयकूं प्राप्त होय हैं। बहुरि मिथ्यादृष्टि जननिकेहू सौम्यता उपजे है, सन्मुख हो जाय हैं। बहुरि मार्ग जो मुक्तिका मार्ग सो प्रकाशकूं प्राप्त होय है वा मुनिका मार्ग दिपै है, प्रकट दीखे है। अर भगवानकी आज्ञा का पालना होय है। जातैं भगवान् की या आज्ञा है—जो तपविना काम, निद्रा, इन्द्रिय, विषय कषाय जीत्या नहीं जाय है, तपहीतैं कामादिक जीतिये हैं, परमनिर्जरा करिये है, तातैं जानैं तप किया तानैं भगवानकी आज्ञा अंगीकार करी। तथा गाथा—

देहस्स लाघवं णेहलूहणं उवसमो तहा परमो।
जवणाहारो संतोसदा य जहसंभवेण गुणा ॥२४९॥

अर्थ—बाह्यतपका प्रभावकरि देहको हलकापणों होजाय है, जातें देहकी लघुतातें आवश्यकक्रिया सुखतें होय है, स्वाध्यायध्यानमें क्लेशरहित प्रवर्ते है, अर शरीरादिकनिविषें स्नेहका लूखापणा होजाय है, जातें जाका शरीरमें स्नेह होय ताकी तपसंयममें प्रवृत्ति नहीं होय है । तथा रागादिक उत्कृष्ट उपशमतानें प्राप्त होय हैं, जातें रागादिक मंद भयेही तप की वृद्धि होय है, तातें परम उपशमका कारण तपही है । तथा तपमें प्रवर्तताके विचार होय है—जो रागमें, द्वेषमें, ममतामें प्रवर्तूंगा तो नवीनकर्मबन्ध होयगा अर तप करना निष्फल होयगा, तातें मोकूं वीतरागी होयकरिकेही तप करना उचित है । बहुरि तप करनेविषें 'जवणाहारो' कहिये प्रमाणिक शरीरकी स्थितिमात्र आहार होय है, तातें नीरोगतादिक तथा लालसारहितता इत्यादिकगुण प्रकट होय हैं, तातें बाह्यतप अवश्य अंगीकार ही करै । गाथा—

एवं उग्गमउप्पादणेसणासुद्धभत्तपाणेण ।
मिदलहुयविरसलुक्खेण य तवमेदं कुणदि णिच्चं ॥२५०॥

अर्थ—या प्रकार साधु जो है सो उद्गम, उत्पादन, एषणादोषरहित शुद्ध तथा प्रामाणिक हलका रसरहित रूक्ष भोजन तथा पान कहिये जलग्रहण करिकें नित्यही तपकूं करे है । अब इहां प्रकरण पायकरिकें मूलाचारग्रन्थ तथा आचारसारग्रन्थ तथा मूलाचारप्रदीपकग्रन्थ तीनूं ग्रन्थनिमें जो भोजनकी शुद्धिता वर्णन करी, सो इहां जणाइये है । जातें इस ग्रन्थमें उद्गमादिदोषनिके सामान्य नाम तो कहे, परन्तु विशेष जानेंबिना मन्दबुद्धीनिके जानना नहीं होय, तातें कहिये हैं । भोजनकी शुद्धता अष्टदोषनिकरि रहित है, ते अष्ट दोष कौन कौन ? सो जानना—

१. उद्गम, २. उत्पादन, ३. एषण, ४. संयोजन, ५. प्रमाण, ६. अंगार, ७. धूम, ८. कारण । तिनिविषें सोलह प्रकार उद्गमदोष हैं, सो गृहस्थके आश्रय हैं ।। १ अधःकर्म । १. उद्दिष्ट, २. अध्यधधि, ३. पूति, ४. मिश्र, ५. स्थापित, ६. बलि, ७. प्रामृत, ८. प्राविष्कृत, ९. क्रीत, १०. प्रामृष्य, ११. परावर्त, १२. अभिहत, १३. उद्भिन्न, १४. मालिकारोहण, १५. आछेद्य, १६. अनिसृष्ट । तिनिमैं जो छकायके जीवनिका प्राणांको घात, ताकूं आरम्भ कहिये ।।१।। अर छकायके जीवनिकूं उपद्रव, ताकूं उपद्रवण कहिये ।।२।। अर छकायके जीवनिका अंगनिका छेदनिकूं विद्रावण कहिये ।।३।। छकायके जीवनिकूं संताप, सो परितापन कहिये ।।४।। सो छकायके जीवनिको आरम्भ, उपद्रवण, विद्रावण, परितापनकरि जो आहार आप किया होय वा अन्यतें कराया होय वा अन्य करै ताकूं भला जान्या होय, मनकरिकें वचनकरिकें

कायकरिके ऐसें नव भेदनिकरि जो आहार उपज्या, सो अधःकर्मदोषकरिके दूषित जानना, सो संयमीकूं दूरितेंही परिहार करना। जो अधःकर्मकरिके आहार किया, सो मुनिही नहीं, वो गृहस्थ है। सो यो अधःकर्मदोष छीयालीस दोषनितें भिन्न महादोष है। अब इहां कोऊ प्रश्न करै, जो मनवचनकायकरि छकायका जीवनिका घात करि भोजन आप करै, अन्यतें करावै, अन्य करतेकूं भला जानै, ताकूं अधःकर्म कह्या, सो मुनि आपका हस्ततें भोजन करै नहीं, फेरि ये दोष इहां कैसे कह्या? ताका उत्तर जो—कह्याविना मंदज्ञानी कैसे जाणें, जगतमें अन्यमतका भेषी करे भी हैं, करावे भी हैं तथा जिनमतमेंभी अनेक भेषी करे हैं कहिकरि करावे हैं, तातें याकू महादोष जानै, तदि त्याग करै। अर अन्य अधःकर्मसूं आहार लेनेवालेकूं भ्रष्ट जानि धर्ममार्गमें अंगीकार न करै, तातें भगवान् परमागमसूत्रमें उपदेश किया है, हम हमारी रुचिविरचित नहीं कह्या है।

अब उद्दिष्टदोष कहै हैं। आजि हमारे गृह कोऊ भेषी गृहस्थी भोजनकूं आवो, सर्वहीके अर्थि द्यूंगा—ऐसा उद्देश करिके किया जो अन्न, सो उद्देश कहिये ॥१॥ बहुरि आजि हमारे जे कोई पाखंडी भोजनके अर्थि आवेंगे तिनि सर्वनिके अर्थि देऊगा, ऐसें बिचारिकरि उपजाया भोजन, सो समुद्देश कहिये ॥२॥ तथा आजि हमारे श्रमण तथा कांजिक आहारी तपस्वी, रक्तपट परिव्राजक भोजनके अर्थि आवेंगे, तिनि सर्वके अर्थि आहार द्यूंगा, या विचारि किया जो अन्न, सो आदेश कहिये ॥३॥ बहुरि आजि हमारै जे कोऊ साधु निर्ग्रंथ भोजनके अर्थि आवेंगे, तिनि सर्वकूं देवेंगे, ऐसें उद्देशकरि किया जो अन्न सो समावेश कहिये ॥४॥ ऐसैं च्यारि प्रकारका उद्देश्या आहार मुनिकै योग्य नहीं। जातें जो भोजन गृहस्थ आपके निमित्त कीया होय अर साधु आजाय तो भोजन देदेवे। अरसाधु के निमित्त भोजन करबो योग्य नहीं ॥१॥

बहुरि संयम्यांनें भोजनके अर्थि आवता देखि आपके निमित्त जे चांवल रांधे थे, तिनमें दान देनेके अर्थि चांवल और मिलाय दे तथा जल और मिलाय दे, सो अध्यधिदोष है। अथवा जितनें भोजन तैयार होय तितनें काल विलंब लगाय दे, सो अध्यधिदोष है ॥२॥

आगै पूतिदोष कहे हैं। जो प्रासुकहू अप्रासुकरि मिल्या होय सो पंचप्रकार पूतिदोष है। रसोई वा चूला नवीन बनाय अर संकल्प करै, जो, जितनें या मकान में रसोई में वा चूले में भोजन रांधिकरि साधूकूं नहीं देऊं, तितनें हमहू भोजन नहीं करै, अर अन्यहूकूं नहीं देवै। ऐसैंही उदूखल करिकै तथा कलाई तथा और भोजन तथा सुगंधद्रव्य ये नवीन होय तिनिमें संकल्प करै—जो, पहिली इनिमैं संस्कार कीया भोजन साधु के अर्थि देवेंगे, पश्चात् हम औरकूं भोजन

करावेंगे वा हम करेंगे । ऐसें प्रासुक भोजनहू पूतिकर्मतें निष्पन्न हुवा । सो पंचप्रकार पूतिदोष है । जातें गृहस्थ आपके निमित्त नित्यहू चूला उदूखल कलाई सुगंधद्रव्यनिकरि भोजन करे है, अर जो साधु के निमित्त नवीन आरंभ करे, तौ पूतिदोष आवै ।।३।।

अब मिश्रदोष कहे हैं । प्रासुकहू भोजन कीया हुवा जो अन्य भेषी पाखंडी वा अन्य गृहस्थ तिनिकरि सहित जो साधु के अर्थि देवै, सो मिश्रदोष है । जातें यामै असंयमीनितैं स्पर्शन अर दीनता अर अनादरादिक बडा दोष आवे है ।।४।।

अब स्थापितदोष कहे हैं । रांधने के पात्रतैं भोजन निकालि अर अन्यपात्री जो कटोरी कटोरा इत्यादिकमें घालि अर भोजन गृह में वा अन्य परगृह में लेजाय स्थापन कीया जो भोजन, सो स्थापितदोष सहित है । जातें भोजन का आरंभ उठि गया था और फेरि नवीन आरंभादिकदोष आवै ।।५।।

यक्षनागादिकनि के निमित्त कीया भोजन सो बलि, ताका उबरया भोजन वा संयमीका आवनेके अर्थि अर्घ्य-जलादिक क्षेपण, सो बलिदोष है । जातें सावद्य दोष होय है ।।६।।

आगैं प्राभृतदोष कहे हैं । जो काल की हानि वृद्धितैं भोजन देवै, सो बादर तथा सूक्ष्म दोय प्रकार प्राभृत है । कोई गृहस्थ ऐसा संकल्प किया—जो, हमारे दानका शुक्ल अष्टमीका नियम है, जो, अष्टमी का दिनविषैं पात्रकूं अवलोकन करै है, जो, संयोग मिल जाय तो भोजन देवैं, और दिन अवसर नहीं । ऐसा संकल्प करि, अर शुक्ल पंचमीकूं जो देवे अथवा शुक्लपंचमी के दिन देने का नियम करि अर शुक्ल अष्टमी कूं देवे अथवा शुक्ल पक्ष का नियम करि कृष्णपक्ष में देवे वा कृष्णपक्ष का नियम करि शुक्ल पक्ष में देवे अथवा चैत्र का महीनां का नियम करि फाल्गुन में देवे वा वैशाख में देवे वा फाल्गुन का नियम करि चैत्र में देवे तथा आवते वर्ष का नियम करि आगले वर्ष में देवैं ते सर्व बादरप्राभृतदोष हैं । बहुरि कोऊ संकल्प करै, हमारे पूर्वाह्नकाल में पात्र आगम्य तो दान का अवकाश है, अपराह्न कालमें नहीं, अथवा अपराह्नकाल में देवे पूर्वाह्नकाल में अवसर नहीं, इत्यादिक काल का संकल्प करि अर पलटि अन्य काल का अन्य काल में देवै, सो सूक्ष्मप्राभृतदोष है । जातें, यातें परिणाम में क्लेश की बहुलता होय है ।।७।।

अब प्रादुष्कार दोष कहे हैं । जो भोजनकूं अन्य स्थान थकी अन्यस्थान में ले जाना तथा भाजन जे पात्र, तिनिका भस्मादिकतैं मांजना तथा जलसूं धोवना तथा भाजननिकूं विस्तारना तथा मंडप का उघाड़ना, उद्योत करना

तथा भीतिका घोलना तथा दीपकका उद्योत करना सो सर्व प्रादुष्कारदोष (प्रावृष्कृतदोष) है। यातें यामें ईर्यापथादिक दोष देखिये हैं ।। ८ ।।

आगें क्रीततरदोष कहे हैं। जो संयमी भिक्षा के अर्थि आवै तदि आपका सचित्तद्रव्य वा अचित्तद्रव्य देयकरिकैं आहार मोलि ल्याय साधुकूं आहार देवैं सो क्रीततरदोष है। तहां सचित्तद्रव्य तौ गाय भैंसि दासी दासादिक और अचित्त सोनो, रूपो, तामो इत्यादिक, वा मंत्र चेटकविद्या परकूं देयकरि भोजन ल्याय मुनिनिकूं आहारदान देना, सो क्रीततरदोष है ।।९।।

आगैं ऋणदोष कहे हैं, ताकूं प्रामृष्य कहिये हैं। जो मुनि आहार के अर्थि आवै तदि अन्य गृहतें भोजन उधारा ले आवै, म्हारै घरि साधुकूं भोजन देना है, सो एक पात्र प्रमाण भोजन देवो, हम तुमकूं एक पात्र भोजन उलटा दे देयेंगे, वा व्याजसहित सिवाय अधिक दे देवेंगे। इत्यादि वृद्धिसहित वा वृद्धिरहित ऋण करि भोजन ल्याय साधुकूं देवैं, सो प्रामृष्यदोष है। यातें दातारकै क्लेश वा खेदादिक होय है ।।१०।।

आगैं परावर्तदोष कहे हैं। सयमीनिकूं आहार दान देने के अर्थि व्रीहि वा कूरि का भात देय और शाली का भात पाडोसीसूं बदलाय ल्यावै या मंकादिक देय शालिका भात पलटि ल्याय, जो संयमीके अर्थि देवैं, सो दातार के क्लेश का कारणतैं परावर्त दोष है ।।११।।

आगे अभिघटदोष (अभिहतदोष) कहे हैं। अभिघट दोयप्रकार है, एक देशाभिघट दूजा सर्वाभिघट। जो एकदेशतें आया जो भोजन, सो देशाभिघट है और सर्वस्थानतें आया भोजनादिक, सो सर्वाभिघट है। अब देशाभिघट दोय प्रकार है—एक आछिन्न दूजा अनाछिन्न। तिनिमे आछिन्न तो योग्यकूं कहे है, और अनाछिन्न अयोग्यकूं कहे हैं। तहां जो सरलपंक्ति रूप तिष्ठते जे तीन गृह अथवा सप्तगृह, तिन गृहनितें आया जो आहार, सो साधुकै लेने योग्य है, ताकूं आछिन्न कहै हैं। अर जो सरलपंक्तिविना तिष्ठते जे गृह तिनिका ल्याया भोजन, अनाछिन्न है अयोग्य है। अथवा सप्तगृहतें अधिक सरलपंक्तिरूप भी होय तो ताका ल्याया भोजन अनाछिन्न है अयोग्य है। बहुरि सर्वाभिघट च्यारि प्रकार है, स्वग्राम, परग्राम, स्वदेश, परदेशतें आया। तहां जो आप तिष्ठै सो स्वग्राम है, तातें अन्य सो परग्राम है। तहां जो एक पाडातें दूसरा पाडामें ल्याया भोजन तथा अन्य ग्रामतें अन्यग्राममें ल्याया तथा आपका देशतें आपका ग्राममें ल्याया वा पर-

देशतैं आपका नगरमें ग्रामदेशादिकमें आया भोजन, सो सर्वाभिघट दोष है। सो सर्वही मुनिनिकैं त्यागनेयोग्य है। जातैं साधु भोजन करता होय जिस कालमें कोई लाहनां भाजी वीदडी अपने ग्रामतैं वा अन्यग्रामतैं वा अपने देशतैं वा परदेशतैं ल्याया होय वा आपके सेवक व पुत्रादिक वा मित्र मोल देय अथवा स्नेहतैं मोदकादिक भोजन ल्याया होय, सो साधुकैं योग्य नहीं, बहोत ईर्यापथदोष देखिये है ॥१२॥

आगैं उद्भिन्नदोष कहे हैं। जो औषध तथा घृत वा शर्करा गुड खांड लाडू इत्यादिक वस्तुकैं छांदा मांटीका लगि रह्या होय वा चिपडी लगि रही होय वा कोई चिह्न करि राख्या होय वा नामके अक्षर वा प्रतिबंधकी महोर करि राखी होय ताकूं उघाडिकरि भोजन साधुकूं देवें, सो उद्भिन्नदोषसहित है। जातैं पिपीलिकादिकका प्रवेश होना इत्यादिक दोष आवे हैं ॥१३॥

आगैं मालारोहणदोष कहे हैं। जो पूवा, लाडू, मिश्री, घृतादिक वस्तु ऊपरला मकानमें गृहका ऊर्ध्वभागमें धरचा होय ताकूं पेंडो चढिकरि वा काष्ठमयो नसोरणी इत्यादिकपरि चढिकरि ल्याय साधूकूं देवें, सो मालारोहणदोष है ॥ १४ ॥

आगैं आछेद्यदोषकूं कहे हैं। संयमीनिकूं देखिकरि अर राजा वा चौरादिक या कही है, जो, या नगरमें आपका गृहमें आया संयमीकूं भोजन नहीं करावेगा, ताका द्रव्यकूं हरण करूंगा अथवा ग्रामके बारे निकासि द्यूंगा, याप्रकार आपके कुटुम्बकेनिकूं राजा का भय वा राजाके मंत्री वा चौरादिकनिका भय दिखाय अर जो साधुकूं भोजन दान देवै, सो कुटुम्बके भयका कारणपणातैं आछेद्यदोषसहित है ॥१५॥

आगैं अनिसृष्टदोष कहे हैं। इहां अनिसृष्टके दोय भेद, एक ईश्वर एक अनीश्वर। तहां जो घरका मालिक स्वामी होय परन्तु रखवालाकरि सहित होय, सो सारक्ष ईश्वर कहिये। जैसें कोऊ दानकूं देवाकी इच्छा करै, तथापि देवेकूं समर्थ नहीं होय, सेवक मंत्री अमात्य पुरोहितादिक देने नहीं देवें, मनैं करैं, ताका दीया भोजन ईश्वर नामा अनिसृष्ट दोष है। बहुरि एक गृहका स्वामी ही नहीं होय, अन्य सेवकादिक व्यवहारी परका भोजन देवें, तिसका दीया भोजन सोहू अनीश्वर नामा अनिसृष्ट दोष है ॥ १६ ॥ ऐसे उद्गमदोष सोलहप्रकार गृहस्थके आश्रय हैं, सो मुनिके मार्गको जानने-वाला गृहस्थ ऐसे दोष लगाय भोजन नहीं देवें, अर मुनि जानि लेवें तौ भोजनका अंतराय करि पाछे जाय।

आगे पात्र जो साधु, ताके आश्रय सोलह उत्पादनदोष है, तिनिकूं कहे है। १. धात्रीदोष, २. दूत, ३. विपर्वृास्त, ४. निमित्त, ५. इच्छाविभाषरण, ६. पूर्वस्तुति, ७. पश्चात्स्तुति, ८. क्रोध, ९. मान, १०. माया, ११. लोभ, १२. वश्य-कर्म, १३. स्वगुणस्तवन, १४. विद्योत्पादन, १५. मंत्रोपजीवन, १६. चूर्णोपजीवन।

अब धात्रीदोष कहे हैं। जगतमें बालककूं धारण पोषण करनेवाली धाय पंचप्रकार है सो ही धात्रीदोष हू पच प्रकार है। बालककै स्नान करायवे में वा धोवने पूछनेमें जाका अधिकार होय, सो मार्जनधात्री है। बहुरि बालककू तिलक अंजन आभरण वस्त्रकरि मंडित करनेका जाका अधिकार होय, सो मंडनधात्री है। बहुरि बालककू ख्यालखिजुनेनिकरि रमावनेमें क्रीडा करावनेमें जाका अधिकार होय, सो क्रीडनधात्री है। बहुरि बालककूं दुग्ध पावनेका वा स्तनपान करावनेमें जाका अधिकार होय, सो क्षीरधात्री है। बहुरि बालककूं निद्रा लिवायवेका जाका अधिकार होय, सो स्वपन-धात्री है। जो साधुके निकट बालकनि सहित गृहस्थ आवं, तदि साधु ऐसे कहे–जो, बालककूं ऐसं स्नान करावो, ताकरि सुखी होय निरोगी होय इत्यादिक बालकके स्नानके अर्थि गृहस्थनिकू उपदेश करै, तदि गृहस्थ रागी होय दानके अर्थि प्रवर्तं, जो, वं भोजन साधु ग्रहण करं, ताकं स्नानधात्री नामा उत्पादनदोष है। तथा बालककूं लेय गृहस्थ आवै तदि बालकके आभरण केश वस्त्र आप संवारने लगि जाय, बालकक मंडनका उपदेश करै 'ऐसं बालककूं भूषित करो' तदि गृहस्थ आपके बालकनिमें साधुनि का अनुराग दयालता जानि महिमा करं अर भक्त हुवो दानमें प्रवर्ते, तिसका दीया भोजन ग्रहण करता जो साधु, ताकं मंडनधात्री नामा उत्पादन दोष है। बहुरि बालक आवं तिनतं आप क्रीडाकी वार्ता करनेलगि जाय वा क्रीडा करावं वा क्रीडानिमित्त उपदेश करे, तदि गृहस्थ अपने बालकनिमें साधुका बडा अनुग्रह जानि भोजन देनेमें सावधान होय, सो भोजन ग्रहण करता साधुकं क्रीडनधात्री नामा उत्पादन दोष है। बहुरि बालककूं ऐसं दुग्ध पाये नीरोग होय, बलवान् होय, या विधानतं याकी माताकं बहोत दुग्ध होय, इत्यादिक उपदेश देय भोजन करं, ताकं क्षीरधात्री नामा उत्पादन दोष आवे है। बहुरि बालककूं आप शयन करावं वा शयन करावनेका उपदेश करि कीया जो भोजन, सो स्वपनधात्री नामा उत्पादन दोष है। इहां कोऊ कहै–मुनि ऐसी क्रिया कैसे करै? सो या आशंका नहीं करनी। जगतमें भेषधारेही कहा होय है, बहोत रागी द्वेषी देखिये है, अंतरंगका राग घटना कठिन है। अर जो यो दोष नहीं प्रकट करं, तौ जाननेमें नहीं आवे, जगतके लोक धात्रीपणाका उपदेशनं दयालपणा धर्मात्मापणाही समझा करं। तातं परमागममें प्रकटकरि दिखाया है। ऐसं धात्रीदोषतं स्वाध्यायका विनाश मार्गदूषणादिक दोष देखिये हैं ॥१॥

आगै दूत नामा उत्पादनदोष कहे हैं। कोऊ साधु आपके ग्रामतै अन्यग्राममें प्राप्त होय तथा स्वदेशतै परदेशमें गमन करता होय तदि गमन करते साधूकूं कोऊ गृहस्थ कहै–हे भट्टारक ! हमारा संदेशा ग्रहण करिकै जावो। सो साधु गृहस्थनिके समाचार लेय उनका संबंधी बेटी, ब्याई, बहन, सगा, हितू, मित्र तिनकूं समाचार कहे, तदि गृहस्थ आपके संबंधीके समाचार श्रवण करि, जो दानमें प्रवर्ते, ताका दीया भोजन ग्रहण करे, सो दूतदोष है ।।२।।

आगै निमित्तदोष कहे हैं। तिल, मुस इत्यादिक व्यंजन देखि शुभ अशुभ जानिये सो व्यंजन नामा निमित्त है। तथा मस्तक ग्रीवा हस्त पादादिक अंगनिकूं देखि पुरुषका शुभ अशुभकूं जाने, सो अंग नामा निमित्त है। तथा मनुष्य तिर्यंच वा अचेतनके शब्द अक्षर अनक्षरात्मक जानि त्रिकालसंबंधी शुभ अशुभकूं जाने, सो स्वर नामा निमित्तज्ञान है। तथा भूमिका रूक्षपना वा सचिक्कणपना देखि क्षेत्रमें त्रिकालसम्बन्धी शुभ-अशुभ, जीति-हारि इत्यादिककूं जाने, सो भौम नामा निमित्तज्ञान है। बहुरि वस्त्र शस्त्र आसन छत्रादिक कोऊ कण्टक शस्त्रमूसेषेनिकरि छिद्या होय ताकरि त्रिकालसम्बन्धी शुभ अशुभकूं जाने, सो छिन्न नामा निमित्त है। बहुरि आकाशमे ग्रहांका उदय अस्तादिक तथा सूत्रादिक तिनकूं देखि त्रिकालसम्बन्धी शुभाशुभकूं जाने, सो अंतरिक्ष नामा निमित्तज्ञान है। तथा शरीरमें स्वस्तिक चमर कलश दर्पणादिक देखि त्रिकालसम्बन्धी शुभाशुभकूं जाने, सो लक्षण नामा निमित्तज्ञान है। तथा स्वप्न शुभ अशुभ देखि शुभ अशुभ को जाने सो स्वप्न नामा निमित्त ज्ञान है। तथा औरहू भूमिगर्जन दिग्दाहादिक तिनकरि जानना, सोहू निमित्तज्ञान है। सो अष्ट प्रकारके निमित्तज्ञानकरि लोकनिकूं चमत्कारादिक दिखाय जो भोजन उपजावे, सो निमित्त नामा उत्पादनदोष है ।।३।।

अब आजीवनदोष कहे हैं। माताकी संतति सो जाति है, पिताकी संतति सो कुल है, सो लोकनिमैं आपकी जाति की शुद्धता वा कुलकी शुद्धता तथा आपकी शिल्पकरि हस्तकी कला चातुर्यता तथा तपश्चरणकी आधिक्यता तथा ऐश्वर्यादिक प्रकट करि अर लोकनितै उपजाया आहार सो आजीवनदोष है ।।४।।

अब वनीपकदोष कहे हैं। कोऊ गृहस्थ साधुनिकूं प्रश्न करै जो हे भगवन् ! श्वाननिकूं तथा कृपणनिकूं तथा कुष्टव्याधि–रोगादिककरि पीडित तिनकूं तथा मध्याह्नकालमें कोऊ आपके घरि भोजनकूं आवे ऐसे अतिथीनिकूं तथा भिक्षुकनिकूं तथा ब्राह्मणनिकूं तथा मांसादिक भक्षण करनेवालेनिकूं तथा पाखंडीनिकूं तथा दीक्षाकरि आजीविका करनेवालेनिकूं तथा श्रवमणनिकूं, कांजिकाहारीनिकूं तथा काकादिकपक्षीनिकूं जो दानादिक दीजिये, ताकरि पुण्य होय है वा नहीं होय सो कहो। ऐसैं दातार पूछै तदि कहै–पुण्य होय है। ऐसैं दातारके अनकुल वचन कहे सो वनीपक नामा उत्पादनदोष है ।।५।।

ग्रब चिकित्सादोष कहे हैं। सो चिकित्सा ग्रष्टप्रकार है। तिनमे जो महिमा दो महिना एकवर्षादिकके बालकके इलाज करनेका शास्त्रका जानना, सो बालवैद्य है ॥१॥ ज्वरादिक रोगका निराकरण तथा कण्ठका उदरका शोधन करना, सो तनुचिकित्सा है ॥२॥ बहुरि शरीरपरि वृद्धग्रवस्थातै होती जो ज्वर लीवली तथा श्वेतकेश ताका निराकरण जातै होय, सो रसायन है ॥ ३ ॥ बहुरि जो स्थावरजंगमतै उपज्या विष, ताकी चिकित्सा जो इलाज, सो विषचिकित्सा है ॥ ४ ॥ बहुरि भूतपिशाचादिकनिकी चिकित्सा, सो भूतापनयन है ॥५॥ बहुरि दुष्टव्रणादिकनिका शोधनेका निमित्त जो क्षारद्रव्य, ताका क्षारतंत्र है ॥ ६ ॥ बहुरि नेत्रका पटल उघाडनेकू सलाईकरि इलाज करनेकी विद्या, सो शालाकिक है ॥ ७ ॥ तथा तोमरादिक ग्रायुधनितै उपजी शरीरशल्य तथा हाडनिका खंडनिकी शल्य सो भूमिशल्य, इनि शल्यनिकी दूरि करनेका इलाज, सो शल्य कहे हैं ॥ ८ ॥ ऐसै ग्रष्टप्रकारका चिकित्साशास्त्रकरि लोकनिका उपकार करि, ग्राहार ग्रहण करै, सो चिकित्सोत्पादनदोष है ॥ ९ ॥

ग्रब क्रोध–मान–माया–लोभजनित च्यारि दोष कहे हैं। जो क्रोधकरि भिक्षाकू उपजावै, सो क्रोधोत्पादनदोष है ॥ ७ ॥ बहुरि जो गर्व ग्रभिमान करिकै भिक्षा उत्पन्न करै, सो मानोत्पादनदोष है ॥ ८ ॥ बहुरि मायाचार जो कुटिलभाव ताहिकरि जो भिक्षा उत्पन्न करै, सो मायोत्पादनदोष है ॥ ९ ॥ बहुरि लोभ दिखाय करिकै भिक्षा उत्पन्न करै, सो लोभोत्पादनदोष है ॥ १० ॥

ग्रब पूर्वस्तुतिदोष कहे हैं। जो दानका देनेवाला पुरुषकी पहिली कीर्ति करै, कैसे ? सो कहे हैं–तुम दानीनिमें प्रधान हो, राजा यशोधरतुल्य हो, तुमारी कीर्ति लोकमें विख्यात है, इत्यादिक दानके ग्रहणपहिली दातारका स्तवन करे, तथा ऐसें कहै—जो, तुम तो पूर्वे महादानी थे, ग्रब कौन कारणतै भूलि गये ? इत्यादि पूर्वस्तुति दोष है ॥११॥

बहुरि जो दानग्रहण कीये पश्चात् दातारका स्तवन करै, सो पश्चात्स्तुतिदोष है ॥१२॥

बहुरि दातारकू कोऊ विद्या देनेकी ग्राशा लगाय, जो भोजन करै, सो विद्योत्पादनदोष है ॥१३॥

बहुरि जो पढनेमात्रहीतै मंत्र सिद्ध होय ऐसा मंत्र देनेकी दातारकै ग्राशा लगाय जो दानग्रहण करै, सो मंत्रोत्पादनदोष है ॥१४॥

बहुरि नेत्रनिकी निर्मलताका कारण जो ग्रंजन तथा भूषण जो तिलक पत्र वल्लयादिकके निमित्त चूर्ण वा शरीरके शोभाका निमित्त जो चूर्ण ताका उपदेश देय भोजन उत्पन्न करै, सो चूर्णोत्पादनदोष है ॥१५॥

बहुरि जो वशि नहीं ताका वशीकरण तथा जिनके परिणाममें अपूठापनो हो रह्यो होय, तिनिका मिलाप कराय देना, सो मूलकर्मदोष है ।।१६।।

ये सोलह उत्पादनदोष साधुके आश्रय हैं । इनि दोषनितैं भोजन उपजाय भोजन करै, ताका सापधुणा बिगडिजाय है । आगैं दश एषणा नामा भोजनके दोष तिनिकूं कहे हैं । १. शंकित, २. म्रक्षित, ३. निक्षिप्त, ४. पिहित, ५. व्यवहरण, ६. दायक, ७. उन्मिश्र, ८. अपरिणत, ९. लिप्त, १०. परित्यजन । तिनिमैं शंकितदोष कहे हैं । भात, रोटी, दालि, खिचडी इत्यादिकनिकूं अशन कहिये । बहुरि दुग्ध दहि सरबत इत्यादिकनिकूं पान कहिये । बहुरि लड्डू, घेवर इत्यादिकनिकूं खाद्य कहिये । बहुरि इलायची, लवंग, सुपारी इत्यादिकनिकूं स्वाद्य कहिये । सो ये अशन पान खाद्य स्वाद्य च्यार प्रकारके आहार तिनिमे कोई अवसरमे कोऊ आहारमें ऐसी शंका उपजै जो, यो आहार भगवानके आगममें साधुकै लेने योग्य है अथवा नहीं लेनेयोग्य है ? तथा यो आहार अधःकर्मकरि उपज्यो है वा अधःकर्मतैं नहीं उपज्यो है ? ऐसी रीति जा आहारमें शंका उपजि आवै अर जो शंकासहित आहारकूं भोजन करै, ताकै शंकितदोष आवै है ।।१।।

बहुरि तैल घृतादिककरि लिप्त जो हस्त वा कलाई वा अन्य पात्र ताकरि दीया जो भोजन, सो म्रक्षितदोष है । जातैं संमूर्छन सूक्ष्म जीव मांखी मांछर चीकणा पात्रकै वा हाथकै लगिजाय, तो जीवता रहे नहीं, तातैं त्याज्य है ।।२।। बहुरि सचित्त पृथ्वी, जल, अग्नि, वनस्पति तथा बीज तथा त्रसजीवके उपरि धरया हुवा आहार निक्षिप्तदोषसहित है ।।३।। बहुरि जो भोजन सचित्तकरि ढक्या होय अथवा भारया जो पाषाण, शिला, काष्ठ धातुमय मृत्तिकाका पात्र अचित्तहूतैं ढक्या होय, ताकूं उठाय जो भोजन देवै, सो पिहित नामा दोषसहित है ।। ४ ।। बहुरि भोजनका दातार अपना वस्त्र जमीपरि लटकि गया होय, ताकूं यत्नाचाररहित खैंच ले अथवा भोजनका पात्र वा चोकी पाटा इत्यादिककूं जमीपरि रगडि खैंच ले, घींस ले, यत्नाचाररहित ईर्यापथादिकविना जो ग्रहण करै अर भोजन पान इत्यादिक देवै, सो भोजन व्यवहरणदोषसहित है ।। ५ ।।

अब दायकदोष कहे हैं । इनिका दिया भोजन साधुकै योग्य नहीं—जो—बालककूं सुवाणती होय, तथा मद्यपान-लंपट होय, रोगव्याधिकरि व्याप्त होय, मृतकमनुष्यकूं स्मशानमें क्षेपिकरि आया होय अथवा मृतकका सूतकसहित होय, तथा जो नपुंसक होय, तथा पिशाचका उपद्रवसहित होय, अर वस्त्ररहित नग्न होय, तथा मलमूत्र मोचन करि आया

होय, तथा मूर्छाकूं प्राप्त भया होय, तथा वमन करिकं आया होय, वा रुधिरसहित होय, तथा वेश्या होय वा दासी होय, तथा आर्यिका होय, तथा रक्तपटिकादिक पंच श्रमणिका होय, तथा अंगके मर्दनादिक करती होय, तथा अतिबालक होय वा अतिवृद्ध होय, तथा ग्रास लेती वा कुछ भक्षण करती होय, तथा गर्भवती होय, जाकै पांच महीनाका गर्भका भार होय, तथा चक्षुरहित आंधी होय, तथा भींति वा पडदाके मांहि बैठी होय, तथा उच्चस्थान बैठी होय, तथा नीचा स्थानमें बैठी होय, ऐसा पुरुष होहु वा स्त्री होहु। तथा चूल्हा इत्यादिकनिमें सिंधूषण देती होय, तथा मुखका पवनकरि तथा बीजणेकरि अग्निकाष्ठादिकनिका प्रज्वालन वा उद्योतन करता होय, तथा काष्ठादिकनिकूं उत्कर्षण करता होय, तथा भस्मकरि अग्निकूं ढांकता होय, तथा अग्निकूं जलादिककरि बुझावता होय तथा औरभी अग्निके अनेक कार्य करता होय, तथा गोबर मांटी इत्यादिकनिकरि भूमि वा भींतिकूं लीपता होय वा कोऊ स्त्री बालककूं स्तनपान करावती वा बालककूं जमीनमैं क्षेपि मेलि आई होय, इत्यादिक औरहू क्रिया करता स्त्री वा पुरुष जो भोजन देवै, तदि वह भोजन दायकदोषसहित है, साधुकं योग्य नहीं है ॥६॥

अब उन्मिश्रदोष कहे हैं। जो भोजन पृथ्वी, जल,हरितकाय, पत्र, पुष्प, फल, बीज इत्यादिककरि मिल्या होय, सो उन्मिश्रदोषसहित है ॥ ७ ॥ अब अपरिणत दोष कहे हैं। तिलनिके प्रक्षालनिका जल तथा चावल धोवनेका जल तथा जो जल तप्त होयकरि शीतल हुवा होय, तथा चणांके धोवनेका जल तथा तुष धोवनेका जल तथा हरडेका चूर्ण जामें मिल्या ऐसा जो आपका वर्ण रस गंधकूं नहीं पलट्या, सो अपरिणतदोषसहित है। अर जो वर्ण रस गंध इत्यादिक जामें पलटि गया होय, सो परिणत है, साधुकं लेनेयोग्य है ॥ ८ ॥ अब लिप्तदोष कहे हैं—गेरू तथा हरताल, खडी, पांडू, मेणशिल, मांटी तथा कच्चा चून वा चावल वा पत्र शाक, अप्रासुक कच्चा जल इनिकरिकं लिप्त जो हस्त वा भाजन ताकरि दीया जो भोजन, सो लिप्तदोषसहित है ॥ ९ ॥ बहुरि परित्यजनदोष कहे हैं। जो हस्तका अथिरपणाकरि तथा छाछि, दुग्ध, घृतादिकनिकरि झरता अथवा छिद्रसहित हस्तनिकरि जो भोजन बहोत तो गिरजाय अर अल्प ग्रहणमें आवै, ऐसा भोजन त्यक्तदोषसहित है ॥ १० ॥ ऐसे दश भोजनके दोष कहे, ते सावद्य जो हिंसा ताका कारणपणातै त्यजनेयोग्य हैं।

अब संयोजनादोष कहे हैं। शीतलभोजनमें उष्णजल मिलावै तथा उष्णभोजनमें शीतलजल मिलावै वा शीतउष्ण जलका परस्पर मिलावना तथा अन्यहू परस्परविरुद्ध वस्तु मिलावै, सो संयोजना नामा दोष है ॥ १ ॥ अब अप्रमाण

दोष कहे हैं । साधुकूं आधा उदर तो भोजन तथा व्यंजनकरि पूर्ण करना, अर चतुर्थभाग जलकरि पूर्ण करना, अर चतुर्थभाग उदरका रीता राखना, सो प्रमाणीक आहार है । अर यातें जो अधिक भोजन करै, ताकौ अप्रमाण नामा दोष है । प्रमाणतें अधिक आहार करै, ताकौ स्वाध्याय नहीं प्रवर्तत है तथा षट् आवश्यकक्रिया करनेकूं नहीं समर्थ होय है, बहुत भोजन करनेतें ज्वरादिक संताप करे है, निद्रा तथा आलस्यादिक दोष होय है ।। २ ।। अब अंगारदोष कहे हैं । अति आसक्ततातें आहारमें अतिलंपटी होय भोजन करै, ताको अंगारदोष होय हैं ।। ३ ।। अब धूम दोष कहे हैं । जो भोजनकूं निंदतो, मन बिगाडतो, ग्लानि करतो जो भोजन करै, जो, यो भोजन सुन्दर नहीं, अनिष्ट है, इत्यादिक परिणाममें क्लेश करतो भोजन करै, ताकौ धूम नामा दोष होय है ।। ४ ।। ऐसें छीयालीस दोष कहे, तिनिकूं टालि दिगम्बर साधु भोजन करे है ।

आगें भगवानके परमागममें षट् कारणकरि भोजन करना योग्य कह्या है, अर षट्कारणकरि भोजनका त्याग करना कह्या है । सो अब भोजन करनेके षट् कारण कहे हैं—१ क्षुधावेदनाका उपशमके अर्थि, २ योगीश्वरनिकी वैयावृत्यके अर्थि, ३ षट् आवश्यकको पूर्णताके अर्थि, ४ संयमकी स्थितिके अर्थि, ५ प्राणनिकी रक्षाके अर्थि, ६ दश-धर्मकी चिंताके अर्थि ।। मैं तीव्र क्षुधावेदनाकरि पीडित हूं, वेदनाकरि चारित्र पालनेकूं असमर्थ हूं, या वेदनातें चारित्र बिगडि जायगा, तातें भोजन करना उचित है, ऐसें विचारि जो भोजन करनेमें प्रवृत्ति करै, सो प्रथमकारण है ।। १ ।। बहुरि हम आहारविना योगीनिका वैयावृत्य करनेकूं असमर्थ हैं, यातें वैयावृत्यकी सिद्धिवास्तै भोजन करे । जातें संघमें कोऊ मुनि रोगकरि पीडित होय वा संन्यासमरण करता होय, तो ताकी रात्रिदिन सेवा, उपदेश, उठावना, बैठावना, सुवा-वना इत्यादि क्रिया आहार करेविना बने नहीं, तातें वैयावृत्यके निमित्त भोजन करना, सो दूसरा कारण है ।। २ ।। तथा आहारविना हम षडावश्यकक्रिया करनेकूं समर्थ नहीं, तातें षडावश्यक करनेके अर्थि भोजन करना, सो तीसरा कारण है ।। ३ ।। बहुरि हम क्षुधावेदनाकरि षट्कायके जीवनिकी रक्षा करनेकूं असमर्थ हैं, तातें संयमकी सिद्धिके अर्थि भोजन करना, सो चौथा कारण है ।। ४ ।। बहुरि आहारविना दशलक्षणधर्म आचरने में असमर्थ हूं तातें धर्म-चिंतवनके अर्थि भोजन करना पांचमां कारण है ।। ५ ।। बहुरि आहारविना दशप्राण रहै नहीं, मरणही होय, तातें प्राणरक्षाके अर्थि भोजन करना, सो छट्ठा कारण है ।। ६ ।। ऐसे छ प्रकारके कारणनिकरि भोजन करता साधुके कर्मबंध नहीं होय है ।। पुरातन बांधे कर्मकी निर्जराही होय है ।

अब भोजन त्यागनेके षट्कारण कहे हैं—शरीरमें ऐसी व्याधि उपजि आवै, जाथकी संयमका नाश होजाय, तदि रोगका नाशके अर्थि क्षुधाकी वेदना होतांभी भोजनका त्याग करना ।। १ ।। तथा दुष्ट मनुष्य तिर्यंच देव अचेतन करि कीया जो प्राणनाश करनेवाला उपसर्ग होता भोजनका त्याग करना ।। २ ।। बहुरि इंद्रियांकी तथा कामकी उत्कटता के रोकनेकूं तथा ब्रह्मचर्यकी रक्षाके निमित्त भोजनका त्याग करना ।। ३ ।। बहुरि जो आजि आहार ग्रहण करनेकूं जाऊंगा तौ जीवनिकी हिंसा होयगी, मार्गमें जीवनिका संचार बहुत है । तातै जीव दया के निमित्त भोजन का त्याग करना ।।४।। बहुरि बारह प्रकारका तपके निमित्त भोजनका त्याग करना ।५। बहुरि जब साधुकै रोग जरादिककरिकै जर्जरपणो होजाय तदि संन्यासके सिद्धिके अर्थि भोजनका त्याग करना ।।६।। ऐसै छह प्रयोजनकरि भोजनका त्याग करै । इनि छह प्रयोजनविना जैनका यति भोजनकूं नहीं त्यागत है ।

बहुरि इतने प्रयोजनवास्ते भोजन नहीं करै—शरीरमें बल होने के वास्ते भोजन नहीं करै । जो मेरा शरीरमें युद्धादिकमें समर्थ ऐसा बल होहू या विचारि आहार नहीं करै । तथा मेरी आयु वृद्धिकूं प्राप्त होहू या विचारि आयुकी वृद्धिवास्ते भोजन नहीं करै । तथा इस भोजनका स्वाद बहोत सुन्दर है, ऐसें स्वादके अर्थि भोजन नहीं करै । तथा शरीरकी पुष्टताके अर्थि तथा शरीरके दीप्तिके अर्थि भोजन नहीं करै ।। बहुरि ज्ञानाभ्यासके अर्थि तथा संयमके अर्थि तथा ध्यानके अर्थि भोजन करना साधुनिकूं श्रेष्ठ है ।। बहुरि मनवचनकायके कृत कारित अनुमोदनाकरि जो भोजन शुद्ध होय तथा उद्गम उत्पाद एषणाके बीयांलीस भेदनिरूप दोष तिनकरि रहित तथा संयोजनारहित तथा प्रमाण-सहित अंगार तथा धूमदोषरहित भोजन करै । तथा नवधा भक्तिकरिकै दातारका सप्तगुणसहित होय देवै, सो भोजन करै ।

अब नवधा भक्ति कहे हैं । १. प्रतिग्रह कहिये "तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ" ऐसें तीनवार कहि खडा राखै । २. उच्च-स्थान देवै । ३. चरणनिका प्रमाणीक प्रासुक जलकरि धोवना । तथा ४. पूजा करना । ५. नमस्कार करना । ६. मनःशुद्धि । ७. वचनशुद्धि । ८. कायशुद्धि । ९. भोजनशुद्धि । ऐसें नवधा भक्ति कही । अब सप्त गुण दातारके कहे हैं । १. दानमें जाकै धर्मका श्रद्धान होय । २. साधुके रत्नत्रयादिक गुण, तिनिमें अनुरागरूप भक्ति होय । ३. दान देनेमें आनन्द होय । ४. दानकी शुद्धता अशुद्धताका ज्ञान होय । ५. दान देनेतं या लोक परलोकसम्बन्धी भोगांकी अभिलाषा जाकै नहीं होय । ६. क्षमावान् होय । ७. शक्तियुक्त होय । ऐसे ये सप्तगुण दातारके कहे, सो सप्तगुणसहित

होय दान देना कल्याणकारी है । बहुरि चतुर्दश मलरहित भोजन अंगीकार करै । सो चौदह मलके नाम कहे हैं । १. नख, २. केश कहिये रोम, ३. जन्तु कहिये बेइन्द्रियादिक मृतकजीवका शरीर, ४. अस्थि कहिये हाड, ५. कण कहिये जव गेहू इत्यादिकनिका बारला अवयव, ६. कुण्ड कहिये शल्यादिकनिका अभ्यंतर सूक्ष्म अवयव, ७. पूति कहिये राधि, ८. चर्म कहिये त्वचा, ९. रुधिर, १०. मांस, ११. बीज कहिये उगनेके योग्य जव गेहू, १२. फल कहिये आम्र, नारेल इत्यादिक, १३. कन्द कहिये वेलीके नीचै उगनेका कारण, १४. मूल कहिये नीचै जड, ये चौदह मल हैं । तिनिमें कितने महादोष हैं, कितने अल्पदोष हैं । तिनिमें रुधिर, मांस, हाड, चाम, राधि ये पांच महादोष है । तिनितैं सर्व आहारका त्यागहू करना अर प्रायश्चित्तहू ग्रहण करना । बहुरि बेइन्द्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रियके मृतकशरीर, बाल इन दोय मलका आहारमें संयोग होय तौ आहारका त्याग करना । बहुरि नख आहारमें आवे तौ भोजनका त्यागहू करना अर किंचित्प्रायश्चित्तहू करना । बहुरि कण, कुण्ड, बीज, कन्द, फल, मूल ये छ प्रकारके अल्प मल भोजनमेंतैं टालनेयोग्य है अर भोजनथकी निकासनेकूं समर्थ नहीं होय-भोजनतैं न्यारे नहीं निकलै तौ भोजनका त्याग करै । बहुरि सिद्धभक्ति कीया पाछैं जो साधुका शरीरतैं तथा आहार देनेवालेनिके शरीरतैं रुधिर वा राधि झरै-गिरै तो भोजनका त्याग करै । बहुरि जो भोजन एकेन्द्रिय जीवनिकरि रहित होय तो प्रासुक है द्रव्यथकी शुद्ध है । बहुरि जो भोजन द्वींद्रियादिक वा त्रींद्रियादिक जीवनिका निर्जीव कलेवरसहित होय, सो दूरथकीही त्यागनेयोग्य है, जातैं वह द्रव्यही अशुद्ध है । बहुरि प्रासुक शुद्धहू भोजन साधुके निमित्त कीया होय, सो द्रव्यतैंही अशुद्ध है ग्रहण करनेयोग्य नहीं ।

अब कोऊ कहे—जो, पर जो गृहस्थ, तिनिके अर्थि कीया आहार साधुकैं शुद्ध कैसे ? सौ आगममें दृष्टान्त है, सो कहे हैं-जैसें मत्स्या के निमित्त किया जो मदका जल, ताकरिके मत्स्य जे मछ, तेही मदकूं प्राप्त होय हैं, मींडके मदकूं प्राप्त नहीं होय । जातैं जा जलविषै मछ, ता जलमेंही मींडके बसे हैं, तथापि मींडके मदकूं प्राप्त नहीं होय । तैसें गृहस्थ आपके निमित्त किया भोजन, तिसकरिकैं साधु दोषकूं प्राप्त नहीं होय है, अर गृहस्थ आपके निमित्त करेहो है । गृहस्थ आहारदान देय साधुनिके गुणनिमें अत्यन्त भक्तियुक्त होय स्वर्गगामी होय है तथा संयमभावमें अनुरागका प्रभावकरि आप संयमकूं प्राप्त होय है अर पाछे कर्म काटि निर्वाणकूं प्राप्त होय है । अर मिथ्यादृष्टि साधुकूं दान देनेके प्रभावकरि भोगभूमिकूं प्राप्त होय है । बहुरि द्रव्य जो आहार ताकूं जाणिकरि त्यागग्रहणमे प्रवर्तन तथा क्षेत्र जलसहित है वा जलादिरहित है तथा काल शीत उष्ण वर्षादिकरूप जाणिकरि तथा भाव जो आपका परिणाममे श्रद्धा तथा उत्साह तथा आपका शरीरका बल तथा आपका वीर्य जो संहनन जानिकरिके अर जैसें आचारांगमे उपदेश किया तैसें अशन-

समिति पालन करै । और प्रकार करे तौ वात, पित्त, कफादिकनिकी उत्पत्ति हो जाय तब संयम पालनेकूं असमर्थ हो जाय, तातै "जैसे वात पित्त कफादिक रोग नहीं बधै तैसै" प्रमाणिक आहारमें प्रवृत्ति करना योग्य है ।

बहुरि तीन घडी दिन चढि जाय तोठापाछे तीन घडी दिन बाकी रहै तौंहण्डली साधुनिका भोजनका काल है । तिनमें तीन मुहूर्तमें भिक्षाका काल सो जघन्य आचरण है । मध्यम दोय मुहूर्तका है । एक मुहूर्तका काल उत्कृष्ट आचरण है । मध्याह्न कालमें दोय घडी बाकी रहै तदि यत्नते स्वाध्यायकूं समेटिकरिके अर देववन्दना करिके अर भिक्षाकी वेला जानिकरिके अर कमंडल पींछीका ग्रहण करिके अर कायकी स्थितिके अर्थि आपके आश्रयतै धीरे धीरे निकले अर कोमल पींछिकातैं सोध्या है अंगका आगला पाछला भाग जिनिनै ऐसे साधु मार्गमें, नहीं अति उतावले गमन करते, अर अति-विलम्बतै गमन नहीं करते, अर मार्गमें वचनालापरहित वन नगर ग्राम स्त्री पुरुष आभरण वस्त्र बागबगीचे महल मकान नहीं अवलोकन करते, पंचसमिति तीन गुप्ति मूलगुण संयम शीलादिकनिकी रक्षा करते मार्गमे गमन करे । बहुरि संसार देह भोगनितै वीतरागता भावते धर्मध्यान चिन्तवन करते अथवा द्वादशभावना भावते, जिनेन्द्रकी आज्ञा पालते विहार करै । बहुरि स्वेच्छाप्रवृत्ति तथा मिथ्यात्वकी आराधना तथा आपका नाश तथा संयमकी विराधना होती होय सो कारण दूरितैंही त्याग करे हैं । बहुरि दिगम्बर साधु आहारके अर्थि गमन करे तदि परिणाममें दातारका विचार न करै, जो, मोकूं कौन देवेगा ? अथवा कैसा मिलेगा ? तथा दातारकी कहा परीक्षा है ? तथा आहारका विचार नहीं करे, जो, शीघ्रतासूं मिलिजाय तो भला है, अथवा शीतलभोजनका लाभ होय हमारे उपवासादिकनिकी दाह है, शीतल जल मिले तो भला है, वा उष्ण मिले तौ भला है, हम शीतकरि पीडित हैं । वा मिष्टरसका अभिलाष वा चिरपरा खाटा सचि-क्कण, दुग्ध, दही, घृत, पक्वान्न इत्यादिक आहारका संकल्परूप अभिलाष दिगम्बर मुनीश्वर नहीं करे हैं, मार्गमें धर्म-भावना आत्मभावना करते गमन करे हैं । आचारांग की आज्ञाकरिके देशकी प्रवृत्तिका ज्ञाता, तथा कालकी प्रवृत्तिका ज्ञाता, लाभ में, अलाभमें, मानमें, अपमानमें, समभावरूप है मनकी वृत्ति जाकी, अर लोकनिंद्यकुलतैं छोडिकरिकै उत्तमकुलनिकी गृहमें, चन्द्रमाकी, नांई, धनाढ्य घरमेंहू प्रवेश करै, अर निर्धननिके घरमेंहू प्रवेश करते परिणाममें ऐसा संकल्प नहीं करे–जो, ये तो धनवाननिके गृह हैं, ये निर्धननिके गृह हैं । गृहनिकी पंक्तिरूप क्रम-करिके गृहनिमें प्रवेश करै, दीननिके गृह होय अनाथनिके गृह होय तहाँ प्रवेश नहीं करे । बहुरि जहां दान बटता होय ऐसी दानशाला तथा विवाह जहां होय, तथा यज्ञादिक जहां होय, तथा मृतकका सूतकादिक होय, तथा रुदन गीत गान

वादित्र कलह विसंवाद, बहोत जननिका संघट्ट जहां होय, तहां गमन नहीं करे। कपाट जुड राख्या होय, तहां कपाट खोलि प्रवेश नहीं करे। तथा कोऊ मनै करै, तहां प्रवेश नहीं करे।

बहुरि गृहनिमें तहांताई प्रवेश करे, जहांताई गृहस्थनिका कोऊ भयो अन्य गृहस्थीनिके आनेकी अटक नहीं होय। बहुरि आंगणेमें जाय खडे नहीं रहे। आशीर्वादादिक मुखतै नहीं कहे। हाथकी समस्या नहीं करे। उदरकी कृशता नहीं दिखावे। मुखकी विवर्णता नहीं करे, हुंकारादिक सैन (इशारे) समस्या नहीं करे, पडिगाहे तो खडे रहे, नहीं पडिगाहे तो निकसि अन्य गृहनिमें प्रवेश करे। अर विधिपूर्वक प्रतिग्रह किया योग्य पृथ्वीतलमे तिष्ठे, तहां आप खडा रहे सो भूमि, तथा दातार खडा रहै सो भूमि तथा भोजनका पात्रकी भूमि जन्तुरहित देखि अर त्रसजीवादिकरहित होय तहां पगनिकूं च्यार अंगुल अंतराल करि खडा छिद्ररहित दोऊ हस्तकी अजुलि करि तिष्ठे। बहुरि सिद्धभक्ति करे पाछे निर्दोष प्रासुक अन्न विधिकरि दिया आहार क्षुधाकी हानिके अर्थि भोजन करे। तहां रससहित वा नीरसताकूं स्वाद छोडि गोचरादि पंचविधिकरि भोजन करे। तहां जैसे गौ घासकूं देनेवाला जो पुरुष वा स्त्री ताका रूप आभरण वस्त्रकूं अवलोकन नहीं करे, तैसे साधुहू आहार देनेवाला पुरुष वा स्त्रीका यौवन रूप आभरण वस्त्रकूं रागकरि नहीं देखे, भोजनसूं प्रयोजन है। तथा जैसे गौ वनमें जाय तहां घास तृणादिक चरनेका उद्यम करे है, वनकी शोभाकूं नहीं देखे है, तैसे साधुहू जिस गृहमें भोजन करे, तिस घरकी शोभा पात्रादिककूं रागभावतै नहीं अवलोकन करे, सो गोचरी वृत्ति है ॥३॥ बहुरि जैसे कोऊ वणिक् गाडी रत्नादिककरि भरी नहीं चाले, तदि घृतादिकसूं वांगिकरि आपका वांछितस्थान ले जाय, तैसे मुनीश्वरहू गुणरत्ननिकरि भरी जो देहरूप गाडी सो नहीं चाले, तदि योग्य आहार देय निर्वाणपत्तन पहुंचावे, सो अक्षम्रक्षणवृत्ति है ॥२॥ बहुरि जैसे भंडारमें अग्नि लगिजाय, तदि जैसे तैसे अग्नि बुझायकरि भंडारके मालकी रक्षा करै, तैसे गुणरत्ननिका भरया जो साधुका शरीररूप भंडार, तामै क्षुधादिक अग्नि लागि ताकूं रसनीरस भोजनतै बुझाय गुणरत्ननिकी रक्षा करना, सो उदराग्निप्रशमन है ॥३॥ बहुरि जैसे कोऊके घरमें खाडा होय ताहि पाषाण धूलिसूं भरि बरोबरी करे, तैसे साधुहू उदररूप खाडाकूं जैसा तैसा आहारसै पूर्ण करना, सो गर्तपूरण है ॥४॥ बहुरि जैसे भौरा (भ्रमर) पुष्पकूं बाधा नहीं करता पुष्पका गंध ग्रहण करे है, तैसे साधुहू दातारकूं किंचिन्मात्र बाधा नहीं उपजावता भोजन ग्रहण करे, ताका भ्रामरीवृत्तिकरि भोजन जानना ॥५॥

तथा भोजन करवेकूं परिभ्रमण करते जे साधु, ते बत्तीस अंतरायका अत्यंत त्याग करैं। ते बत्तीस अन्तरायनिके नाम कहे हैं। आहारके निमित्त गमन करते वा तिष्ठते जे मुनीश्वर, तिनके ऊपरि काकपक्षी वा औरहू पक्षी बींट करे तो काक नामा भोजनका अन्तराय है ॥ १ ॥ गमन करते साधुका पगकै अमेध्य जो विष्ठामल लगिजाय तो अमेध्य नामा अन्तराय है ॥ २ ॥ साधुकै वमन होजाय तो छर्दि नामा अन्तराय है ॥ ३ ॥ कोऊ जो मुनिकूं गमन करतेकूं मार्गमें रोक देवै, सो रोधन नामा अंतराय है ॥ ४ ॥ आपका वा अन्यका रुधिर वा राधि बहता देखै, सो रुधिर नामा है ॥ ५ ॥ दुःखशोकादिक करिकै जो साधुकै अश्रुपात आजाय अथवा निकटवर्ती लोकनिका मरणादिक करिकै अति-रुदन विलाप श्रवण करे तो अश्रुपात नामा अंतराय है ॥ ६ ॥ तथा जानू जो गोडे तिनितैं नीचैं स्पर्श होजाय तो जान्वधःपरामर्श अंतराय है ॥ ७ ॥ जानू जो गोडे इनितैं अधिक उल्लंघन होजाय तो जानूपरिव्यतिक्रम नामा दोष है ॥ ८ ॥ नाभितैं नीचो मस्तक करि कोऊ छोटे द्वारमें प्रवेश करे तो नाभ्यधोनिर्गमन नामा अंतराय है ॥ ९ ॥ जिस वस्तुका त्याग होय, सो भक्षणमे आजाय तो स्वप्रत्याख्यातसेवन नामा अंतराय है ॥ १० ॥ आपके अग्रभागविषै कोऊ प्राणीकूं मारि नाखै तो जीववध नामा अंतराय है ॥ ११ ॥ काकादिक पक्षी ग्रास लेजाय भोजन करता सो काकादि-पिंडहरण नामा अंतराय है ॥ १२ ॥ भोजन करता साधुका हस्ततैं ग्रासका पतन होजाय ग्रास गिरि जाय, सो पिंड-पतन अंतराय है। हस्तके विषै द्वींद्रियादिक जीव आय करिकै मर जाय, सो पाणिजंतुवध अंतराय है। जातैं तप्त भोजनमें वा सचिक्कणमें मक्षिका मछर इत्यादिक पडिकरि मरणही करे है ॥ १४ ॥ मृतक पंचेंद्रियका शरीरका देखना, मांसदर्शन नामा अंतराय है ॥ १५ ॥ साधुकूं मनुष्य देव तिर्यंचनिकरि कीया उपसर्ग आजाय सो उपसर्ग नामा अंतराय है ॥ १६ ॥

साधुके दोऊ चरणनिके बीचि होय पंचेंद्रिय जीव मूंसा, मींडका इत्यादिक गमन करि जाय सो पंचेंद्रियगमन अंतराय है ॥ १७ ॥ भोजन देनेवालेनिके हस्ततैं भाजन गिरि पडे सो भाजनसंपात अंतराय है ॥ १८ ॥ जो साधुके शरीरतै रोगादिकके वशतैं मल निकलि आवै, सो उच्चार अंतराय है ॥ १९ ॥ जो साधुके मूत्रका स्राव होजाय सो प्रस्रवण अंतराय है ॥ २० ॥ भिक्षापरिभ्रमण करता जो साधुका भूलि चांडालादिकका गृहमें प्रवेश होजाय, सो अभोज्यगेहप्रवेश नामा अंतराय है ॥ २१ ॥ साधुका मूर्छादिककरि पतन होजाय, सो पतन अंतराय है ॥ २२ ॥ साधु बैठि जाय सो उपवेशन अंतराय है ॥ २३ ॥ श्वानादिक जीव काटि खाय सो दष्ट नामा अन्तराय है ॥ २४ ॥

सिद्धभक्ति करघा पाछे जो साधुका हस्तकरिकै भूमिका स्पर्श होय, सो भूमिस्पर्श अन्तराय है ।। २५ ।। कफ, थूक इत्यादिक नाखि देवे, सो निष्ठीवन अंतराय है ।। २६ ।। साधुका उदरतें कृमीका निर्गमन कहिये निकसना होय, सो कृमिनिर्गमन अंतराय है ।। २७ ।। साधु हस्तकरिकै किंचित् परकी वस्तु लोभकरि ग्रहण करे, सो अदत्त अन्तराय है ।।२८।। खड्गादिक शस्त्रकरि साधुका कोऊ घात करै वा अन्यका घात करै, सो शस्त्रप्रहार नामा अंतराय है ।।२९।। ग्राममें अग्नि लगिजाय, सो ग्रामदाह अंतराय है ।। ३० ।। पगकरिकै कोऊ वस्तु ग्रहण होजाय, सो पादग्रहण अंतराय है ।। ३१ ।। हस्तकरिकै किंचित् वस्तु ग्रहण होय सो हस्तग्रहण अंतराय है ।। ३२ ।।

ये भोजनके त्यागके कारण बत्तीस अंतराय कहे, तैसेही औरहू चांडालादिकनिका स्पर्श, कलह, इष्टमरण, साधर्मिकसंन्यासपतन, प्रधानपुरुषनिका मरण भोजनका त्यागके कारण हैं । औरहू राजाका भय तथा लोकनिंदादिक अंतराय कहे, सो जैनधर्मके धारक साधुनिकै भोजनका त्याग तथा आधा भोजन कीया, अल्प किया, एक ग्रास लिया वा ग्रास नहीं लिया होय अर जो अंतराय होय तो भोजनका त्यागही करै, उसविन फेरि ग्रासादिक नहीं ग्रहण करै । ऐसा आचारांगकी आज्ञाप्रमाण शुद्ध भोजन पान तथा प्रमाणिक हलको रसाविरहित रूक्ष भोजन करि बाह्यतप नित्यही अंगीकार करै । तथा औरहू शरीरसल्लेखनाके अर्थि तपका उपदेश करे हैं । गाथा—

उल्लीणोल्लीणेहिं य अहवा एक्कंतवढ्ढमाणेहिं ।
सल्लिहइ मुणी देहं आहारविधि पयणुगिंतो ।।२५१।।

अर्थ—वर्धमान हीयमान ऐसे तप अथवा एकांतकरि दिनप्रति वर्धमान ऐसे अनशनादि तप, तिनिकरि आहारकी विधिकूं अल्प करता जो मुनि, सो देहकं सल्लिखति कहिये कृश करे है । गाथा—

अणुपुव्वेणाहारं संवट्टंतो य सल्लिहइ देहं ।
दिवसुग्गहिएण तवेण चावि सल्लेहणं कुणइ ।।२५२।।

अर्थ—अनुक्रमकरि आहारकूं संवररूप करता साधु देहकूं कृश करे है । बहुरि दिनदिनप्रति ग्रहण कीया जो तप, ताकरिकै हू सल्लेखना करै । भावार्थ—कोई दिनमें अनशनतप, कोई दिनमें अवमोदर्य, कोई दिनमें रसपरित्याग इत्यादिक तपनिकरि शरीरकूं कृश करे हैं । गाथा—

विविहाहिं एसणाहिं य अवग्गहेहिं विविहेहिं उग्गेहिं ।
संजममविराहिंतो जहाबलं सल्लिहइ देहं ॥२५३॥

अर्थ—नानाप्रकारके जे भोजनरसवर्जन, अल्प आहार, आचाम्ल इत्यादिकनिकरि तथा नानाप्रकारके उत्कट जे वृत्तिपरिसंख्यानादिक, तिनिकरिकं संयमकी विराधना नहीं करता जो साधु, सो यथाशक्ति देहकूं कृश करे है । भावार्थ—जैसे इन्द्रियसंयम अर प्राणसंयम नहीं बिगडे तैसें यथाशक्ति शरीरकूं कृश करे है । गाथा—

सदि आउगे सदि बले जाओ विविधाओ भिक्खुपडिमाओ ।
ताओ वि ण बाधन्ते जहाबल सल्लिहंतस्स ॥२५४॥

अर्थ—आयुकूं विद्यमान होता तथा देहमें बल विद्यमान होता आपकी शक्तिप्रमाण सल्लेखना करता जो साधु, ताका नानाप्रकारका साधुका धर्म सोहू बाधाकूं नहीं प्राप्त होय है । भावार्थ—आपका बलप्रमाण शरीरकूं तपकरि कृश करता साधु बाधाकूं नहीं प्राप्त होय है। बलहीन होय अर तप अधिक करे तो शुभध्यानका भंग होय अर संक्लेशकी आधिक्यता होय, तातें यथाशक्ति तप करि शरीरकूं कृश करना श्रेष्ठ है । गाथा—

सल्लेहणा सरीरे तवोगुणविधी अणेगहा भणिदा ।
आयंबिलं महेसी तत्थ दु उक्कस्सयं विंति ॥२५५॥

शरीरकी सल्लेखनाके निमित्त अनेकप्रकार तपोगुणकी विधि कही, तिन अनेकप्रकार तपरूप गुणकी विधिविषे भगवान् गणधर देव आचाम्लकूं उत्कृष्ट तप कहे हैं । सो आचाम्ल कहा ? सो कहे हैं । गाथा—

छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं भत्तेहिं अदिविकट्ठेहिं ।
मिदलहुगं आहारं करेदि आयंबिलं बहुसो ॥२५६॥

अर्थ—जाण्या है अर्थ कहिये पदार्थ जिनिनें ऐसे भगवान् हैं, ते ऐसे कह्या है जो वेला, तेला, चोला, पंचोपवासरूप भोजनके त्याग करि पारणा के दिन प्रमाणीक अल्प ऐसा आहारकरं सो आचाम्ल है । सो बहुत प्रकार करि करं । अब भक्तप्रत्याख्यानका कितना काल है, सो कहे हैं । गाथा—

उक्कस्स एग भत्तपइण्णाकालो जिर्णेहिं रिणद्दिट्ठो ।
कालम्मि संपहुत्ते बारसवरिसाणि पुण्णाणि ॥२५७॥

अर्थ—भक्तप्रत्याख्यानका उत्कृष्टकालका प्रमाण बहुतकाल होय तो पूर्ण द्वादश वर्षका है, ऐसें जिनेन्द्रभगवान् कह्या है । भावार्थ—भक्तप्रत्याख्यानमरणका आरम्भ करे तो उत्कृष्ट आयुका बारा बरस प्रमाण बाकी रहेतें करे हैं । गाथा—

जोगेहिं विचित्तेहिं दु खवेइ सवच्छराणि चत्तारि ।
वियडी णिज्जूहित्ता चत्तारि पुणो वि सोसेवि ॥२५८॥

अर्थ—विचित्र कहिये नानाप्रकारके कायक्लेशादिक योग तिनिकरि च्यारि संवत्सर कहिये च्यारि वर्षपूर्ण करे । बहुरि च्यारि वर्ष विकृति जे रस, तिननें त्यागकरिकें शरीरकूं कृश करे । गाथा—

आयंबिलणिव्वियडीहिं दोण्णि आयंबिलेण एक्कं च ।
अद्धं णादिविगट्ठेहिं अदो अद्धं विगट्ठेहिं ॥२५९॥

अर्थ—आचाम्ल जो अल्प आहार तथा नीरसभोजनकरि दोय वर्ष पूर्ण करे । बहुरि एक वर्ष आचाम्ल जो अल्पभोजन, ताकरि पूर्ण करे । बहुरि अर्ध वर्ष अति उत्कृष्ट नहीं ऐसा तप करि पूर्ण करे । बहुरि अर्द्ध वर्ष अति उत्कृष्ट तपकरि पूर्ण करे । भावार्थ—भक्तप्रत्याख्यानमरणका उत्कृष्ट काल द्वादश वर्षका भगवान् कह्या । तिनमें च्यार वर्ष तो विचित्र जो नाना प्रकारका अनशन, अवमोदर्यादिक वा सर्वतोभद्र, एकावली, द्विकावली, रत्नावली, सिंहावलोकनादिक तप करि पूर्ण करे । बहुरि च्यारि वर्षरसपरित्याग नामा तप, ताकरि पूर्ण करे । बहुरि दोय वर्षमें कदे अल्पभोजन, कदे नीरसभोजन ऐसे दोय वर्ष पूर्ण करे । बहुरि एक वर्ष अल्प आहार करि पूर्ण करे । बहुरि छ महिना अहोत उत्कृष्ट नहीं ऐसा अनुत्कृष्ट तप करि पूर्ण करे । बहुरि छ महिना सर्वोत्कृष्ट तप करि पूर्ण करे । ऐसें भक्तप्रत्याख्यानका उत्कृष्ट द्वादश वर्षप्रमाण जाका काल होय, सो ऐसे परिपूर्ण करे । आगें और विशेष कहे हैं । गाथा—

भत्तं खेत्तं कालं धादुं च पडुच्च तह तवं कुज्जा ।
वादो पित्तो सिंभो व जहा खोभं ण उवयंति ॥२६०॥

अर्थ––भत्तू कहिये शाकसहित आहार वा मोठ तथा चणा इत्यादिक वा शाकव्यंजनरहित आहार, बहुरि क्षेत्र जलरहित तथा कोऊ जलसहित, बहुरि काल कहिये शीतकाल, उष्णकाल वा वर्षाकाल, बहुरि धातु कहिये शरीरकी प्रकृति, ऐसे भोजन क्षेत्र काल शरीरकी प्रकृति इनिकूं आश्रयकरि विचारिकरि ऐसं तप करे, जैसं वात्त, पित, कफ शरीरमें क्षोभकूं प्राप्त नहीं होय, ऐसं शरीरकी सल्लेखना करे । भावार्थ––इहां कहनेका प्रयोजन यह है, जो तपकी विधि तो अनेकप्रकार कहीही है, परन्तु ज्ञानी मुनि देश काल, आपका शरीरका स्वभाव, भोजन सर्वकूं विचारि, ऐसं तपके मार्गमें प्रवर्ते, "जैसं रोग न बधं, त्रिदोष प्रकोपकूं प्राप्त नहीं होय, तपमें दिनदिन उत्साह बधता रहे, स्वाध्याय ध्यान आवश्यकक्रियामें परिणाम नहीं बिगडे, संक्लेश नहीं बधं, तंसं तप करना उचित है" । ऐसं शरीरसल्लेखना कहिकरि अब अभ्यंतरसल्लेखनाका क्रम कहे हैं ।

एव सरीरसल्लेहणाविहि बहुविहा वि फासेंतो ।
अज्झवसाणविशुद्धि खणमवि खवओ ण मुंचेज्ज ॥२६१॥

अर्थ––ऐसें शरीरसल्लेखनाकी विधि बहुतप्रकार करताहू साधु सो परिणामनिकी उज्वलता क्षणमात्रहू नहीं छांडत है । भावार्थ––परिणाममें संक्लेश बधिजाय तो बाह्यतप करना निरर्थक है । जैसं परिणाम उज्वल होते जाय तंसं बाह्यतप करं । बाह्यतप तो अभ्यंतरकषाय तथा विषयानुराग घटि वीतरागता बधनेवास्ते है । अभ्यंतर शुद्धताका अभाव होता जे दोष होय, ते दिखावे हैं । गाथा––

अज्झवसाणविसुद्धीए वज्जिदा जे तवं बिगट्ठंपि ।
कुव्वन्ति बहिल्लेस्सा ण होइ सा केवला सुद्धी ॥२६२॥

अर्थ––जे साधु अध्यवसान जे परिणाम तिनकी विशुद्धताकरि रहित उत्कृष्टहू तप करे है, तेहू बाह्य पूजासत्कारादिकमें स्थापी है चित्तकी वृत्ति जिननं ऐसे केवलशुद्धि ताकूं नहीं प्राप्त होत हैं, उनके दोषनितं मिली हुई शुद्धता होय है । आगं केवलशुद्धता कौनकं होय है सो कहे हैं । गाथा–

अविगट्ठं पि तवं जो करेइ सुविसुद्धसुक्कलेस्साओ ।
अज्झवसाणविशुद्धो सो पावदि केवला सुद्धि ॥२६३॥

अर्थ—परिणामनिकी उज्वलतासहित ऐसा जो बहोत शुद्ध शुक्ललेश्याका धारक साधु सो अनुत्कृष्ट तप करताहू केवल शुद्धताकूं प्राप्त होय है। भावार्थ—जिनका परिणाम कषायरागादिकमलकरि रहित है, ते अल्प तप करतेहू आत्माकी दोषरहित शुद्धि ताकूं प्राप्त होय हैं। इहां शरीरसल्लेखनाकूं वर्णन करी, अब कषायसल्लेखनाका वर्णन करे हैं। गाथा—

अज्झवसाणविसुद्धी कसायकलुसीकदस्स णत्थित्ति ।
अज्झवसाणविसुद्धी कसायसल्लेहणा भणिदा ॥२६४॥

अर्थ—कषायनिकरि मलिन है परिणाम जिनका तिनके परिणामनिकी उज्वलता नहीं होय है, तातें कषायका कृश करना मन्द करना, सो परिणामनिकी उज्वलता है। अब कषायनिका कृश करनेविषें उपाय जो क्षमादिक, तिनकूं कहे हैं। गाथा—

कोधं खमाए माणं च मद्दवेणाज्जवं च मायं च ।
संतोषेण य लोहं जिणदु खु चत्तारि वि कसाए ॥२६५॥

अर्थ—क्रोधकूं उत्तमक्षमाकरिके, अर मानकूं मार्दवकरिके, अर मायाकषायकूं आर्जवकरिके, अर लोभकूं संतोष करिके ऐसे च्यारि कषायनिकूं जीतहु। अब आगे कहे हैं, जे कषायनिके उपजनेका मूलकारण, तिनहीका त्याग करना योग्य है।

कोहस्स य माणस्स य मायालोभाण सो ण एदि वसं ।
जो ताण कसायाणं उप्पत्ति चेव वज्जेइ ॥२६६॥

अर्थ—जो इनि कषायनिकी उत्पत्तीहीकूं नाश करे, सो इन क्रोध मान माया लोभरूप कषायके वशी नहीं होय है। गाथा—

तं वत्थुं मोत्तव्वं जं पडि उप्पज्जदे कसायग्गि ।

तं वत्थुमल्लिएज्जो जत्थोवसमो कसायाणं ॥२६७॥

अर्थ—जातें कषायरूप अग्नि उपजै, सो वस्तुही त्याग करनेयोग्य है । अर जिस वस्तुतें कषायनिका उपशम हो जाय, सो संचय करने योग्य है । गाथा—

जइ कहवि कसायग्गी समुट्ठिदो होज्ज विज्झवेदव्वो ।

रागद्दोसुप्पत्ती विज्झादि हु परिहरंतस्स ॥२६८॥

अर्थ—जो कदाचित् कषायरूप अग्नि प्रज्वलित होय तो कषायसूं उपजे दोष, तिनिकी भावनाकरि कषाय अग्निकूं बुझावना योग्य है । सो कहे हैं, हमारे हृदयमें उपजा कषायरूप अग्नि नीचपुरुषकी संगतीकीनांई हृदयकूं दग्ध करे है । बहुरि जैसें अशुभ अंगोपांगनामकर्म मुखकूं विरूप करे तैसें कषाय मुखकूं विरूप भयंकररूप करे है । बहुरि जैसें धूलि नेत्रनिमें रक्तता करै, तैसें कषाय नेत्रनिमें रक्तता करे है अर पवनकीनांई शरीरकूं कंपायमान करे है, अर मदिरापानकी नांईं विचाररहित वचन कहावे है, अर पिशाचकीनांईं विचाररहित चेष्टा करावे है, अर ज्ञानरूप दिव्यनेत्रकूं मलिन करे है, अर दर्शनरूप कल्पवृक्षका वनकूं मूलतैंउपाडे है, अर चारित्ररूप सरोवरकूं शोषण करे है, अर तपरूप पल्लवकूं भस्म करे है, अर अशुभप्रकृतिरूप वेलीकूं स्थिर करे है, अर शुभकर्मका फलकूं विरस करे है, अर मनकेविषै मलिनता करे है, अर हृदयकं कठोर करे है, अर प्राणीनिका घात करावे है, अर वचनकी असत्यमें प्रवृत्ति करावे है, अर बडे पूज्य गुरुनिहूकूं उल्लंघन करावे है, अर यशरूप धनका नाश करे है, परका अपवाद करावे है, अर महानहू गुणनिकूं आच्छादन करे है, अर मैत्रीपणाकूं मूलतैं उखाले है, अर किया हूवाहू उपकारकूं भुलावे है, विस्मरण करावे है, अर अपकारका अध्ययन करावे है—पढावे है, अर महान् नरकरूप खाडेमें पटकत है, अर दुःखरूप भवनमें डबोवे है । ऐसे कषाय उपज्या हुया अनेक अनर्थनिकूं बहे है । अर कषायनिका परिहार जाकै होय ताकै रागद्वेषकी उत्पत्ति साम्ताने प्राप्त होय है । आगे रागद्वेषकी प्रशान्ति करनेका उपाय कहे हैं । गाथा—

जावन्ति केइ संगा उदीरया होंति रागदोसाणं ।

ते वज्जन्तो जिणदि हु रागं दोसं च णिस्संगो ॥२६९॥

अर्थ—जेते केई परिग्रह रागद्वेषके उत्पन्न करनेवाले हैं, तिन परिग्रहनिकूं वर्जन करता पुरुष निःसंग हुवा रागद्वेषनिकूं जीततही है। भावार्थ—जे जे परिग्रह आपकै रागद्वेष उपजावैं, तिनकूं त्यागै सो रागद्वेषकूं जीतैही। अब आगैं कहे हैं, जो, उपज्या हुवा कषाय–अग्नि महान् अनर्थ करे है, तातैं कषाय–अग्निकूं बुझावनाही श्रेष्ठ है, ऐसें तीन गाथा कहे हैं। गाथा–

पडिचोदणासहणवायखुभिवपडिवयणइंधणाइद्धो।
चण्डो हु कसायग्गी सहसा संपज्जिलेज्जाहि ॥२७०॥
जलिदो हु कसायग्गी चरित्तसारं डहेज्ज कसिणं पि।
सम्मत्तं पि विराधिय अणंतसंसारियं कुज्जा ॥२७१॥
तम्हा हु कसायग्गी पावं उपज्जमाणयं चेव।
इच्छामिच्छादुक्कडवंदणसलिलेण विज्झाहि ॥२७२॥

अर्थ—खोटे वचनकी जो प्रेरणा ताका जो नहीं सहना, सोही जो पवन, ताकरिके क्षोभकूं प्राप्त हुवा अर प्रतिवचनरूप ईन्धनकरिके वधित हुवा जो प्रचंड कषायरूप अग्नि सो शीघ्रही प्रज्वलित होत है। जातैं कषायकूं अग्नि कही सो अग्नि पवनकरि सिलगे है, सो इहां दुष्टता के वचनकूं नहीं सहना सोही कषायरूप अग्निके जगायवेकूं पवन है, अर अग्नि ईन्धनकरि बधे है, अर कषाय अग्नि परस्पर वचननिके उत्तरप्रत्युत्तर तिनकरि बधे है। ऐसे प्रज्वलित हुवा कषाय अग्नि समस्तचारित्ररूप सारधनका विनाश करिके अर सम्यक्त्वका विनाश करिके अर या जीवकूं अनन्तसंसारका परिभ्रमणमें लीन करे है। तातैं पापरूप जो कषाय अग्नि, सो उपजतेकूं ही इच्छाकार तथा मिथ्याकार तथा वन्दनारूप जलकरि शीघ्रही बुझावना श्रेष्ठ है। जातैं जाकूं कषाय बन्द करनेका होय, सो यथायोग्य इच्छाकारादिककरि कषायकूं उपशम करे है। हे भगवान्! आपकी शिक्षा इच्छा करूं हूं ऐसी प्रार्थना गुर्वादिकनिकूं करना सो इच्छाकार है। हमारा दुष्कृत–दुष्टताका करना मिथ्या होहु-झूठा होहू, चूकिकरि किया, अब आगैं ऐसा दुष्टकार्य नहीं करूंगा, ऐसें मनकी शुद्धता सहित कहना, सो मिथ्यादुष्कृत, ताकूं मिथ्याकार जानना। तुह्मारे अर्थि हमारा नमस्कार होहू, ऐसें पूज्यपुरुषनिके गुण

हृदयमें धारि, भावविशुद्धताकरि नमस्कार करना, सो वन्दना है। आगे नोकषायादिकनिकूं भी कृश करना श्रेष्ठ है, सो कहे हैं। गाथा—

तह चेव णोकसाया सल्लिहियव्वा परेणुवसमेण।
सण्णाओ गारवाणि य तह लेस्साओ य असुहाओ ॥२७३॥

अर्थ—तैसेही हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीपुरुषनपुंसक वेद ये नोकषाय इनिकूं परम उपशमभावकरि क्षीण करना योग्य है। बहुरि आहारकी वांछा सो आहारसंज्ञा अर भयकी वांछा सो भयसंज्ञा अर मैथुनकी वांछा सो मैथुनसंज्ञा अर परिग्रहकी वांछा सो परिग्रहसंज्ञा ये च्यारि संज्ञा क्षीण करना योग्य है। बहुरि ऋद्धि का गर्व तथा रसवान भोजन मिलने का गर्व तथा साता जो सुख रहै ताका गर्व ऐसे तीन गारव इनको कृश करना योग्य है। बहुरि अशुभ तीन लेश्याका त्याग करना योग्य है। गाथा—

परिवड्ढिददोवधाणो विगडसिराण्हारुपासुलिकडाहो।
सल्लिहिदतणुसरीरो अज्झप्परदो हवदि णिच्चं ॥२७४॥

अर्थ—बहुरि सल्लेखनाका करनेवाला कैसाक है? बधता है नियम त्याग जाका, बहुरि तपकरि प्रकट हुवा है नसां–पसवाडाका हाड, नेत्रांका कटाक्षस्थान जाका, अर भले प्रकार कृश किया है शरीर जानें, ऐसाहू सासता आत्मध्यान में लीन रहै। गाथा—

एवं कदपरियम्मो सब्भंतरबाहिरम्मि सल्लिहणो।
संसारमोक्खबुद्धी सव्वुवरिल्लं तवं कुणदि ॥२७५॥

अर्थ—ऐसे अभ्यन्तरसल्लेखना अर बाह्यसल्लेखना ताके विषं बांध्या है, परिकर जानें अर संसारतें छूटने की है बुद्धि जाके ऐसा साधु सो सर्वोत्कृष्ट तपकूं करे है।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषं सल्लेखना नामा ग्यारमा अधिकार छ्यासठि गाथानि करि समाप्त किया। आगे दिशा नामा अधिकार पंच गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

वोढुं गिलादि देहं पव्वोढव्वमिणर्सुचभारोत्ति ।
तो दुक्खभारभीदो कदपरियम्मो गणमुवेदि ॥२७६॥

अर्थ—देहकूं धारण करनेमें नहीं है हर्ष जाकै, यो शरीर अशुचिका भारमय है अर त्यागनेयोग्य है, तातैं दुःखका भारतें भयभीत हुवा ऐसा, अर किया है समाधिमरणका परिकर जानें ऐसा जो साधु, सो संघ जो मुनीश्वरनिको समुदाय, ताहि समाधिमरण करनेकूं प्राप्त होय है । गाथा—

सल्लेहणं करेन्तो जदि आयरिओ हवेज्ज तो तेण ।
ताए वि अवत्थाए चिंतेदव्वं गणस्स हियं ॥२७७॥

अर्थ—अर जो सल्लेखनाकूं करनेकूं उद्यमी आचार्य होय, तो सल्लेखनाका अवसरविषै आचार्यकूं संघका हित चिंतवन करना योग्य है । भावार्थ—जो सल्लेखना करनेमें उद्यमी सामान्य साधु होय, सो तो संघमें जो आचार्य तिनकूं प्राप्त होय समाधिमरणके निमित्त विनती करे, अर जो संघका स्वामी आचार्य होय सल्लेखनाका अवसरमें सल्लेखना करचो चाहै, सो तिस अवसरमें संघका हित जो आगेकूं अव्युच्छिन्न चारित्रधर्मकी परिपाटी बहोतकाल चली जाय तैसे चिंतवन करे । गाथा—

कालं संभावित्ता सव्वगणमणुदिसं च वाहरिय ।
सोमतिहितरणणक्खत्तविलग्गे मंगलोगासे ॥२७८॥
गच्छाणुपालणत्थं आहोइय अत्तगुणसमं भिक्खू ।
तो तम्मि गणविसग्गं अप्पकहाए कुणदि धीरो ॥२७९॥
अव्वोच्छित्तिणिमित्तं सव्वगुणसमोयरं तयं णच्चा ।
अणुजाणेदि दिसं सो एस दिसा वोत्ति बोधित्ता ॥२८०॥

अर्थ—संघका अधिपति जो आचार्य सो आपका आयुकी स्थितिका काल विचारिकरिके अर पाछै सर्वसंघकूं अर अणुदिस कहिये आपके पाछे आचार्य होने योग्य ताहूकूं बुलायकरिके अर सौम्य तिथि नक्षत्र करण जोग लग्नरूप

कालमें तथा मंगलरूप स्थानमें वं धीर वीर आचार्य सो गण जो संघ, ताकी पालना जो रत्नत्रयकी रक्षा, ताके अर्थि आपकेसे गुणनिका धारक जो साधु, ताकेविषै अल्प वचनालाप करिके संघको अर्पण करे। कौन प्रयोजनवास्ते कैसे करें ? सो कहे हैं—धर्मतीर्थकी व्युच्छित्तिके अभावके निमित्त सर्वगुणसंयुक्त आचार्यपदवीके योग्य जाणिकरि अर सर्वसंघकूं आज्ञा करै—अब तुम सबनिके ये आचार्य हैं ऐसे कहे।

भावार्थ—सर्वसंघका स्वामी आचार्य जब सल्लेखना करै तब धर्मकी परिपाटीकी प्रवृत्तिके अर्थि आपसारिसा गुणनिके धारक जो आचार्यपदके योग्य तिसविषै संघनै स्थापन करै। भला अवसरमें सर्वसंघकूं बुलाय कहै, जो अब तक तो तुम जे रत्नत्रयके आराधक साधु तिनिमें दीक्षा शिक्षारूप प्रवृत्ति हमने करी, अब सर्व संघ इनि आचार्यनिकी आज्ञा-प्रमाण प्रवर्तन करो, ये तुमारे आचार्य हैं, हम सर्व संघतै क्षमा ग्रहण करावे हैं।

अब आचार्यपद कौनकूं होय है, सो सूत्रके अनुसारि कहिये हैं। जो साधु बडो कुल जो राजाको वा महान् श्रेष्ठी को वा उत्तम जगतके राज्यके मान्य ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यकुलमें उत्पन्न भया होय, अर रूपका धारक होय, जाका उच्च आचरण जगतमें प्रसिद्ध होय, गृहचारामेंभी कदे हीन आचार ब्योहार नहीं किया होय, अर संसारका भोगानै छोडि संसार देहभोगनितं अतिविरक्त होय, अर लौकिक अर परमार्थ दोऊनिका ज्ञाता होय, अर महान् बुद्धिका धारक होय, अर महान् तपका धारक होय, जाकासा तप संघमें अन्यमुनीश्वरांसूं न बणिसकै, अर चिरकालका दीक्षित होय, बहोत काल गुरुकुल सेवन किया होय, अर वचनका महान् अतिशयकरि सहित होय—जिनके वचनश्रवणमात्रहीकरिके अनेक जीवनिके धर्ममें दृढ प्रतिति होजाय अर सर्वजीवांको आत्महितमें प्रवृत्ति होजाय, बहुरि सिद्धांतरूप समुद्रका पारगामी होय, अर इन्द्रियनिके दमनेवाला होय, ईलोक परलोक सम्बन्धी भोगाभिलाषरहित होय, धीर होय—उपसर्ग परीषह आयें चलायमान नहीं होय, जातै जो आचार्यही चलायमान होजाय तब संघ भ्रष्ट होजाय। बहुरि स्वमत अर परमतका जाननेवाला होय, जाकूं स्वमतका अर परमतका ज्ञान नहीं होय सो परके प्रश्नादिककरि धर्मकूं स्थापन करनेकूं असमर्थ हो जाय तदि धर्मका लोप होजाय। बहुरि गम्भीर होय, तत्त्वका ज्ञानी होय, तथा धर्मकी प्रभावना करनेका जाका स्वभाव होय। बहुरि गुरुनिके निकट प्रायश्चित्तसूत्र पढ्या होय, तथा आगे आचार्यनिके छत्तीस गुण वर्णन करेंगे तिनकरि सहित होय, तथा सर्वसंघ पहलीही जानता हो जो ये भगवान् आगे आचार्य होने योग्य हैं—सर्वसंघका अधिपतिपना ये करेंगे, इत्यादिक

गुणसहितके आचार्यपणा होय है । येते गुणनिविना जो आचार्यपणा करै, तो धर्मतीर्थका लोप हो जाय, उन्मार्गकी प्रवृत्ति होजाय, सर्वसंघ स्वेच्छाचारी होजाय, सूत्रकी आचारकी परिपाटी टूटि जाय, तातैं गुणसहितके ही आचार्यपणा योग्य है ।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरण के चालीस अधिकारनिविषै आचार्यपणा छोडि अन्य योग्य साधुकूं आचार्यपणा देना ऐसा दिशा नामा बारमां अधिकार पांच गाथानिकरि समाप्त किया । आगे क्षमण नामा तेरमां अधिकार तीन गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

आमन्तेऊण गणिं गच्छम्मि य तं गणिं ठवेदूण ।
तिविहेण खमावेदि हु स बालउड्ढाउलं गच्छं ॥२८१॥

अर्थ—संघके विषै सर्वसंघकूं तथा नवीन आचार्यकूं बुलायकरिकै अर नवीन आचार्यकूं संघके विषै स्थापनकरिकै अर बाल वृद्ध मुनिसहित जो संघ ताकूं मनवचनकायकरिकै क्षमा ग्रहण करावै । गाथा—

जं दीहकालसंवासदाए ममकारणेहरागेण ।
कडुगपरुसं च भणिया तमहं सव्वं खमावेमि ॥२८२॥

अर्थ—भो मुनीश्वर हो ! जो संघमें बहुतकाल वसनेकरि अथवा ममत्व स्नेह राग करिकै जो मैं कटुक भाषण कीया होय तथा कठोर जो कह्या होय सो सर्व हम क्षमाग्रहण करावे हैं । गाथा—

वंदिय णिसुडिय पडिदो तादारं सव्ववच्छलं तादिं ।
धम्मायरियं णिययं खामेंदि गणो वि तिविहेण ॥२८३॥

अर्थ—आचार्य क्षमाग्रहण करावे तदि सर्वसंघहू संकुचित अंग होय चरणारविंदामें पडि अर वंदना करिकै अर संसारतैं रक्षा करनेवाले अर सर्वसंघमें है वात्सल्यता जाकी ऐसा धर्मका आचार्य ताहि मनवचनकायकरि क्षमा ग्रहण करावै ।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारनिमें क्षमण नामा तेरमां अधिकार तीन गाथानिकरि समाप्त कीया । आगैं अनुशिष्टि कहिये शिक्षा नामा चोदहवां अधिकार एकसो पांच गाथासूत्रनिकरि कहे हैं । गाथा—

संवेगजिणियहासो सुत्तत्थविसारदो सुदरहस्सो ।
आदट्ठचितओ वि हु चिंतेदि गणं जिणाणाए ॥२८४॥

अर्थ—धर्मानुरागकरि उपज्या है हर्ष जाकै अर जिनेन्द्रकरि प्ररूपण कीया सूत्रका अर्थमें प्रवीण अर श्रवण कीया है प्रायश्चित्त ग्रन्थ जानें, अर आत्मकल्याणका चितवन करनेवाला ऐसा आचार्य सो जिनेन्द्रकी आज्ञाकरिकें संघका हित चितवन करै–जो, ये सर्व संघके मुनि रत्नत्रयके धारक निर्विघ्न मोक्षमार्गमें प्रवर्तें तैसें चितवन करि अर शिक्षा करे हैं । गाथा—

णिद्धमहुरगंभीरं गाहुगपल्हादणिज्जपत्थं च ।
अणुसिट्ठिं देइ तहि गणाहिवइणो गणस्स वि य ॥२८५॥

अर्थ—अब आचार्य सर्व संघके अर्थि अर आपसमान संघमें स्थापन कीये जे नवीन आचार्य तिनिकूं शिक्षा करे हैं । कैसी है वह शिक्षा ? स्निग्धा कहिये धर्मानुरागकी भरी हुई है, बहुरि कर्णनिकूं मिष्ट ऐसी, बहुरि सार अर्थकरि भरी हुई, तातैं गंभीर ऐसी, बहुरि जो सुखका जणायबाहाली सुखकरि ग्रहणमें आवे ऐसी, बहुरि चित्तमें आनन्द बधावनेवाली, बहुरि परिपाककालमें हितरूप, तातै पथ्य, ऐसी नवीन आचार्यकूं तथा सर्व संघके मुनीश्वरनिकूं शिक्षा करै । गाथा—

वड्ढन्तओ विहारो दंसणणाणचरणेसु कायव्वो ।
कप्पाकप्पठिदाणं सव्वेसिमणागदे मग्गे ॥२८६॥
संखित्ता वि य पवहे जह वचइ वित्थरेण वड्ढन्ती ।
उदधि तेण वरणदी तह गुणसीलेहिं वड्ढाहि ॥२८७॥

अर्थ—भो मुनयः ! दर्शनज्ञानचारित्रविषै, बहुरि प्रवृत्तिमार्ग अर निवृत्ति जो त्यागका मार्ग तिनिविषै आगामी कालमें जैसें दर्शन ज्ञान चारित्र बधता जाय तथा संयमतपमें प्रवृत्ति दिनदिन बधती जाय, अर मिथ्यादर्शन असंयम तथा

इन्द्रियनिके विषय अर कषायनिमें परिणाम निवृत्तिरूप दिन दिन होता जाय तैसें प्रवर्तन करना योग्य है। जैसी श्रेष्ठ नदी आपके उत्पत्तिस्थानमें अल्प बहतीहू आगेकूं समुद्रपर्यन्त बधती विस्तारस्प होती चली जाय, तैसें तुम जे साधु तिनहूकूं अल्प ग्रहण किये हुयेहू व्रत शील गुण तिनकरि मरणपर्यन्त जैसें बधते बधते प्रवर्तें तैसें प्रवर्तना योग्य है। अब औरहू नवीन आचार्यनिकूं शिक्षा करे हैं। गाथा—

मज्जाररसिवसरिसोवमं तुमं मा हु काहिसि विहारं।
मा णासेहिसि दोण्णि वि अप्पाणं चेव गच्छं च ॥२८८॥

अर्थ—भो साधो! जैसें मार्जारका शब्द पूर्वें अतितीव्र, अर पाछैं क्रमकरि मन्द होता जाय तथा सुननेवालेनिकूं अति बुरा लागे, तैसें रत्नत्रयमें प्रवृत्ति पूर्वें अतिशयवती अर पाछैं क्रमकरि मन्द होवे तथा जगतमें निंद्य होवें तैसा तुमकूं प्रवर्तन नहीं करना। ऐसी प्रवृत्ति करि आपका वा संघका अथवा दोऊनिका नाश मति करिये। गाथा—

जो सघरं पि पलित्तं णेच्छदि विज्झविदुमलसदोसेण।
किह सो सद्दहिदव्वो परघरदाहं पसामेदुं ॥२८९॥

अर्थ—जो पुरुष दग्ध होता जो आपका गृह ताकूं आलस्यका दोषकरिके बुझावनेकूं नहीं वांछा करै, सो दग्ध होता परका गृहकूं बुझायवेकूं उद्यम करे है, ऐसा श्रद्धान कैसा किया जाय? तातें भो संघाधिपते! तुमारे तांई ऐसें प्रवर्तना योग्य है या प्रकार कहे हैं।

वज्जेहि चयणकप्पं सगपरपक्खे तहा विरोधं च।
वादं असमाहिकरं विसग्गिभूदे कसाए य ॥२९०॥

अर्थ—भो मुने! दर्शनज्ञानचारित्रमें अतीचार होय सो वर्जन करना योग्य है। बहुरि स्वपक्ष जे धर्मात्माजन अर परपक्ष जे मिथ्यादृष्टिजन, तिनिमैं विरोधकूं वर्जन करना योग्य है। तथा जैसें परिणामकी समाधानी वीतरागता छूटि जाय तैसें विवाद वर्जना योग्य है। बहुरि विषसमान तथा अग्निसमान कषाय वर्जना योग्य है। जातें क्रोधादिक कषाय

आपकूं अर परकूं मारनेकूं विषरूप है अर आपके अर परके हृदयमें दाह उपजावनेकूं अग्निसमान हैं, तातैं कषाय वर्जनाही श्रेष्ठ है। गाथा—

णाणम्मि दंसणम्मि य चरणम्मि य तीसु समयसारेसु।
ण चाएदि जो ठवेदुं गणमप्पाणं गणधरो सो ॥२६१॥

अर्थ—समय जो सिद्धांत ताका सारभूत अथवा समय जो आत्मा ताका सारभूत स्वरूप जो तीन दर्शन ज्ञान चारित्र तिनविषें जो आपके आत्माकूं स्थापन करनेकूं अशक्त है तथा गण जो संघ ताकूं रत्नत्रयमें स्थापन करनेकूं असमर्थ है, सो कैसे गणका धारी आचार्य होय ? नहीं होय। गाथा—

णाणम्मि दंसणम्मि य चरणम्मि य तीसु समयसारेसु।
चाएदि जो ठवेदुं गणमप्पाणं गणधरो सो ॥२६२॥

अर्थ—सिद्धांतका सारभूत जे ज्ञान दर्शन चारित्र तिन तीननिविषें जो आपकूं अर गणकूं स्थापन करनेकूं समर्थ है, सो गणका धारण पालन करनेवाला गणधर कहिये आचार्य है। गाथा—

पिंडं उवहिं सेज्जं उग्गमउप्पादणेसणादीहिं।
चारित्तरक्खणट्ठं सोधितो होदि सुचरित्तो ॥२६३॥
पिंडं उवहिं सेज्जं अविसोहिय जो हु भुंजमाणो हु।
मूलट्ठाणं पत्तो मूलोत्ति य समणपेल्लो सो ॥२६४॥

अर्थ—आहार और उपकरण और शय्या कहिये वसतिका इनिकूं उद्गम उत्पादन एषणादिक दोषरहित चारित्र की रक्षाके निमित्त शुद्ध ग्रहण करता जो साधु सो सुन्दर निर्दोष चारित्रका धारक सुचरित्र होय है। बहुरि जो साधु पिंड कहिये भोजन अर उपकरण अर शय्याकूं नहीं शुद्ध करिके जो भोजन करे है, सो मूलस्थान नामा दोषकूं प्राप्त होय है अर मूलतैंही श्रमणपदकरिके हीन है। गाथा—

एसा गणधरमेरा आयारत्थाण वण्णिया सुत्ते ।

लोगसुहाणुरवाणं अप्पच्छंदो जहिच्छाए ॥२९५॥

अर्थ—यथोक्त आचारमें तिष्ठते जे साधु तिनिकूं भगवानके सूत्रविषें या गणधर मर्यादा कही । अर जे लौकिक-सुखमें आसक्त हैं, तिनिके अपनी इच्छाकरि आत्मच्छन्द है-स्वेच्छाचारीपणा है, जिनके मिष्टभोजनमें आसक्तता तथा कोमलशय्या तथा कोमल आसन तिनिमैं शयन करना, बैठना मनोज्ञवसतिकामैं बसना ऐसे विषयनिका रागीके गणधर सूत्रकी मार्यादा नहीं रहे है-सूत्रबाह्य स्वेच्छाचारी भ्रष्ट है । गाथा—

सीदावेइ विहारं सुहसीलगुणेहिं जो अबुद्धीओ ।

सो णवरि लिंगधारी संजमसारेण णिस्सारो ॥२९६॥

अर्थ—जो बुद्धिरहित साधु सुखियास्वभावरूप गुणनिकरि चारित्रमें प्रवृत्तिकूं मन्द करे है, सो साधु केवल लिंग-धारी है, अर इन्द्रियसंयम अर प्राणसंयमरूप सार करिके रहित निस्सार है । भावार्थ—जो इन्द्रियांको लम्पटी चारित्रमें मन्द प्रवर्ते, सो केवल लिंगधारी भेषी है । गाथा—

पिण्डं उवधिं सेज्जामविसोधिय जो खु भुंजमाणो हु ।

मूलट्ठाणं पत्तो बालोत्तिय णो समणबालो ॥२९७॥

अर्थ—भोजन और उपकरण और शय्या इनिकी शुद्धताविना जो भोजन करता साधु सो मूलस्थान नामा दोषकूं प्राप्त हुवा जो वह अज्ञानी साधु सो श्रमणबाल है ।

कुलगामणयररज्जं पयहिय तेसु कुणइ दु ममत्ति जो ।

सो णवरि लिंगधारी संजमसारेण णिस्सारो ॥२९८॥

अर्थ—जो कुल, ग्राम, नगर, राज्यकूं छोडिकरिके साधु होय फेरि नगर राज्य कुल ग्राममें ममता करे है-जो मेरा राज्य है, मेरा कुल, मेरा नगर, ऐसी ममता करे है, सो केवल लिंगधारी भेषधारी है, सारभूत संयमकरि रहित निःसार है । गाथा—

अपरिस्सावी सम्मं समपासी होहि सव्वकज्जेसु ।
संरक्ख सचक्खुंपि व सबालउड्ढाउलं गच्छं ॥२९९॥

अर्थ—भो गणके पति हो ! तुम भले प्रकारकरि अपरिश्रावी होहू । जातैं सर्वही साधु तुमकूं गुरु जाणि विश्वास करि अपने अपराध प्रकट करि कहे हैं । सो कोई कालमेंहू तुमारा वचनकरि कोईका अपराध विख्यात मति करहू ! यो ही अपरिश्रावी गुण है । बहुरि सर्व संघका कार्यमें समदर्शी होहू । बहुरि बालवृद्धाविकसहित जो यो मुनिनिको संघ, ताकी आपका नेत्रकी जैसें रक्षा करिये तैसें रक्षा करहू ।

णिवदिविहूणं खेत्तं णिवदी वा जत्थ दुट्ठओ होज्ज ।
पव्वज्जा च ण लब्भदि संजमघादो व तं वज्जो ॥३००॥

अर्थ—भो गणधर हो ! ऐसे क्षेत्रमें संघका विहार मति करावो, जा क्षेत्रमें नृपति नहीं होय, सो क्षेत्र त्यागो । अर जहां राजा दुष्ट होय सो क्षेत्र संघका विहारयोग्य नहीं । बहुरि जहां दीक्षा नहीं प्राप्त होय, बहुरि जहां संजमका घात हो जाय—संजम नहीं पालि सकै—ऐसा क्षेत्रमें विहार मति करो ।

ऐसें अनुशिष्टि नामा चौदहवां अधिकारविषें गणी जो नवीन आचार्य ताकूं शिक्षा सोलह गाथानिकरि कही । अब गण जो संघ ताकूं आठ गाथानिकरि शिक्षा करे हैं ।

कुणह अपमादमावासएसु संजमतवोवधाणेसु ।
णिस्सारे माणुस्से दुल्लहबोहिं वियाणित्ता ॥३०१॥

अर्थ—भो मुनीश्वर हो ! विनाशीक अर अशुचिपणाकरिकैं साररहित यो मनुष्य-जन्म तामैं बोधि जो रत्नत्रयका प्राप्त होना सो दुर्लभ जानिकरिकैं अर षट् आवश्यक क्रियानिविषें तथा संयम और तपके विधान तिनमें प्रमाद मति करहू—अप्रमादी होहू । फेरि संयम मिलना कठिन है । गाथा—

समिदा पंचसु समिदीसु सव्वदा जिणवयणमणुगवमदीया ।
तिहिं गारवेहिं रहिदा होइ तिगुत्ता य दंडेसु ॥३०२॥

अर्थ—पंचसमितिविषें सर्वकाल सावधान होहू । तथा जिनेंद्रके वचननिके अनुकूल बुद्धि करहु । तीन गारव जे रसनिकरि सहित भोजन करने का गर्व तथा साता रहने का गर्व तथा ऋद्धिका गर्व ऐसे तीन प्रकार गारवका त्याग करहु । तथा अशुभ मनवचनकायकी प्रवृत्तिरूप जे तीन दंड, तिनमें गुप्तिकूं प्राप्त होहु । गाथा—

सण्णाउ कसाए वि य अट्टं रुद्दं च परिहरह णिच्चं ।
दुट्ठाणि इन्दियाणि य जुत्ता सव्वप्पणा जिणह ॥३०३॥

अर्थ—आहारकी बांछा, अर भयके कारणनितें छिपनेकी इच्छा सो भयकी बांछा, मैथुनकी बांछा, परिग्रहकी बांछा ये च्यारि संज्ञा, अर क्रोध, मान, माया, लोभ ये च्यारि कषाय, अर च्यारि प्रकार आर्तध्यान, अर च्यारि प्रकार रौद्रध्यान इनिकूं नित्यही परित्याग करहू । बहुरि दुष्ट जे पंच इन्द्रिय इनिकूं सर्वप्रकार आपकी शक्तिकरि, ज्ञानकरि वा तपकरि वा शुभभावनाकरि युक्त हुवा जीतहू ॥ गाथा—

धण्णा हु ते मणुस्सा जे ते विसयाउलम्मि लोयम्मि ।
विहरन्ति विगदसंगा णिराउला णाणचरणजुदा ३०४॥

अर्थ—पांच इन्द्रियनिके विषयनिकी चाहना करिकें आकुलताकूं प्राप्त हुवो जो यो लोक, तिसकेविषें जे सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रकरि संयुक्त भये, अर विषयनिकी चाहनारहित निराकुल, अर संग जो परिग्रह ताकरि रहित हुवा प्रवर्तें हैं, ते मनुष्य जगतमें धन्य हैं । भावार्थ—सर्व लोक विषयांकी चाहकरि आकुल हैं । अर जिनकें विषयांकी चाह नहीं रही, चाहरहित आत्मिकसुखका स्वादी, परमसमताभावतें काल व्यतीत करे हैं, ते धन्य पुरुष हैं । गाथा—

सुस्सूसया गुरूणं चेदियभत्ता य विणयजुत्ता य ।
सज्झाए आउत्ता गुरुपवयणवच्छला होह ॥३०५॥

अर्थ—भो मुनयः ! गुरु जे रत्नत्रयादिगुणनिकरि महान् ऐसे गुरुनिका सेवनमें अनुरागी होहू । तथा चैत्य जे अरहंतनिके प्रतिबिंब, तिनविषें भक्तिकूं प्राप्त होहू । बहुरि सदा विनययुक्त होहू । बहुरि स्वाध्यायमें निरंतर युक्त होहू । बहुरि गुरु कहिये त्रैलोक्यमें महान् जो प्रवचन कहिये स्याद्वादरूप सर्वज्ञका प्रकास्या परमागम, तामें प्रीतियुक्त होहू । गाथा—

दुस्सहपरीसहेहिं य गामवचीकंटएहिं तिक्खेहिं ।

अभिभूदा वि हु संता मा धम्मधुरं पमुच्चेह ।।२०६।।

अर्थ—भो साधुजन हो ! क्षुधादिक दुःसह जे बाईस परीषह, बहुरि तीक्ष्ण ऐसे ग्राम्य जे दुष्ट तिनके वचनरूप कंटक तिनकरिकै तिरस्कृत हुवा पीडित हुवाहू वीतरागतारूप धर्मकी धुरा ताहि मति छोडियो ।। गाथा—

तित्थयरो चदुणाणी सुरमहिदो सिज्झिदव्वयधुवम्मि ।

अणिगूहिदबलविरिओ तवोविधाणम्मि उज्जमदि ।।३०७।।

अर्थ—जाकै निश्चित सिद्धि होनहार, अर मति, श्रुत, अवधि मनःपर्ययज्ञानका धारी, अर गर्भ-जन्म-तप-कल्याणकनि विषै च्यार प्रकारके देव तिनिकरि पूजाकूं प्राप्त हुवा ऐसाहू तीर्थंकर देव आपकी शक्तिकूं नहीं छिपावता तपका विधानमें उद्यम करे है; तो अन्यजननिकूं तपमें उद्यम नहीं करना कहा ? अपि तु करना ही । सोही कहे हैं—

किं पुण अवसेसाणं दुक्खक्खयकारणाय साहूणं ।

होइ ण उज्जम्मिदव्वं सपच्चवायम्मि लोयम्मि ।।३०८।।

अर्थ—जो निश्चित सिद्धि जिनकै होनहार ऐसे तीर्थंकरही तपमें उद्यम करै तो अन्य जे साधु तिनिनै विनाश-सहित लोकमें दुःखका नाश करने के अर्थि तपविषै जतन नहीं करना कहा ? अपि तु तपमें उद्यमी होनाही श्रेष्ठ है । आगै वैयावृत्य छब्बीस गाथानिकरि कहिये हैं । गाथा—

सत्तीए भत्तीए विज्जावच्चुज्जदा सदा होइ ।

आणाए णिज्जरेत्ति य सबालउड्ढाउले गच्छे ।।३०९।।

अर्थ—भो मुनयः ! बालमुनि तथा वृद्धमुनि, रोगी मुनि, नीरोगमुनि इत्यादिकनिकरि व्याप्त जो गच्छ कहिये संघ तामैं संपूर्ण सामर्थ्यकरिकै अर भक्तिकरिकै सदाकाल वैयावृत्यमें उद्यमी होहू, या जिनेंद्रकी आज्ञा है, अर यातै कर्मकी निर्जरा है। तातै आपकी शक्तिप्रमाण धर्मानुरागकरिकै सर्व संघके साधूनिका वैयावृत्य जो टहल सेवा तामैं सावधान होहू ।। अब वैयावृत्य कौन कौन प्रकार करै सो कहै हैं ।। गाथा—

सेज्जागासणिसेज्जा उवधी पडिलेहणाउवग्गहिदे ।
आहारोसहवायणविकिंचणुव्वत्तणादीसु ॥३१०॥
अद्धाण तेण सावयरायणदीरोधगासिवे ऊमे ।
वेज्जावच्चं उत्तं सगहणारक्खणोवेदं ॥३११॥

अर्थ—शय्याका अवकाश प्रभातकाल तथा आथणाका काल दोऊ अवसर में नेत्रनिकरि देखि अर पाछै मयूर-पीछिकासूं प्रतिलेखन करिके अर अशक्तमुनीनका रोगीनिका तथा वृद्धनिका शयन करनेके अर्थि शोधन करना। बहुरि बैठनेका स्थानकक्ं तथा कमंडल पींछी पुस्तकक्ं दोऊ अवसरमें सोधि देना। बहुरि आहारकरि तथा शुद्ध औषध-करि शुद्ध ग्रंथनिकी वाचना स्वाध्यायकरि तथा मलमूत्र कफादिकनिके दूरि करनेकरि तथा एक पसवाडेतं दूजे पसवाडे-करि शयन करावनेकरि तथा उठावना शयन करावना, मार्ग चलावना इत्यादिकनिकरि वैयावृत्य करै। बहुरि कोऊ साधु मार्गका खेदसहित होय ताका पादमर्दनादिकरि वैयावृत्य करै तथा कोऊ साधुके चोरनकरि तथा भील म्लेछादिकनिकरि तथा दुष्ट राजाकरि तथा श्वापद जे दुष्ट तिर्यंच तिनकरि, तथा नदीके रोधकरि, तथा मरीकरि तथा दुर्भिक्षकालकरि रोगकरि इत्यादिकनिका उपद्रवकरि परिणाममें कायरता आय गई होय तो धैर्य देनेकरि आपके शामिल ग्रहण करि तथा रक्षा करि धर्मोपदेश देनेकरि इत्यादिकनिकरि जैसें साधुका परिणाम दृढ होजाय, दुःख मिटि जाय तैसें शरीरकी सेवादिक करि वैयावृत्य करै। भो मुने! इहां आहारपान सुलभ है, तथा राजादिकनिका उपद्रव नहीं है, चोरादिकनिकी बाधा नहीं है, हम तुमारी सेवामें सावधान हैं, अब कायरता मति करो, तुम हमारे शामिल रहो, हम तुमारे हैं, आज्ञा करोगे तींप्रमाण आपकी सेवामें सावधान हैं, इत्यादिक कहना। जो कोऊ साधु धर्मसूं चलायमान होय ताका स्थितीकरण करना सो सर्व वैयावृत्य है। अब आगे जो समर्थ होय वैयावृत्य नहीं करे, ताके दोष दोय गाथानिकरि दिखावे हैं। गाथा—

अणिगूहिदबलविरिओ वेज्जावच्चं जिणोवदेसेण ।
जदि ण करेदि समत्थो संतो सो होदि णिद्धम्मो ॥३१२॥
तित्थयराणाकोधो सुदधम्मविराधणा अणायारो ।
अप्पापरोपवयणं च तेण णिज्जूहिदं होदि ॥३१३॥

अर्थ—जो आपका बल वीर्य नहीं छिपायकरिके अर जिनेंद्रका उपदेशका क्रमकरि वैयावृत्य नहीं करे है—समर्थ होयकरिकेंहू साधुनिका वैयावैवृत्यसूं पराङ्मुख होय है, सो धर्मरहित निर्धर्मा है—धर्मबाह्य है। बहुरि जो पूज्यपुरुषांका वैयावृत्य नहीं कीया, सो तीर्थंकरदेवकी आज्ञा भंग करी, तथा श्रुतकरि उपदेश्या धर्मकी विराधना करी तथा वैयावृत्य नहीं करनेतें आचार बिगडि जाय तातें अनाचार प्रकट कीया। बहुरि वैयावृत्यतपसूं पराङ्मुख हुवा तदि आत्महित बिगड्या तातें आत्माकूं त्याग्या तथा साधुका आपदाहूमें उपकार नहीं करया, तदि मुनिसमूहकाहू त्यागही भया। बहुरि श्रुतकी आज्ञा वैयावृत्य करनेकी थी, ताके लोपनेतें प्रवचन परमागमकाहू त्यागही भया। ऐसें जिनिकें वैयावृत्य नहीं तिनकें एकहू धर्म रह्या नहीं। आगे वैयावृत्य करनेविषे जे गुण होय हैं, तिनकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं ।। गाथा—

गुणपरिणामो सढ्ढा वच्छाल्लं भत्तिपत्तलंभो य।

संधाणं तवपूया अव्विच्छत्ती समाधी य ।।३१४।।

आणा संजमसाखिल्लदा य दाणं च अविदिगिंछा य।

वेज्जावच्चस्स गुणा पभावणा कज्जपुण्णाणि ।।३१५।।

अर्थ—वैयावृत्य करनेतें एते गुण प्रकट होय हैं। १. साधुनिके गुणनिमें परिणाम, २. श्रद्धान, ३. वात्सल्य, ४. भक्ति, ५. पात्रलाभ, ६. संधान जो रत्नत्रयतें जोड, ७. तप, ८. पूजा, ९. धर्मतीर्थकी अव्युच्छित्ति, १०. समाधि, ११. तीर्थंकरनिकी आज्ञाका धारना, १२. संयमकी सहायता, १३. दान, १४. निर्विचिकित्सा, १५. प्रभावना, १६. कार्यपूर्णता एते वैयावृत्य करनेतें गुण प्रकट होय हैं। सो कैसें होय हैं? यातें इन गुणनिकी उत्पत्तिकूं भिन्न भिन्न कहे हैं। तिनिमें अब गुणपरिणाम नामा गुण कैसें होय, सो कहे हैं। गाथा—

मोहग्गिणादिमहदा घोरमहावेयणाए फुट्टन्तो।

डज्झदि हु धगधगन्तो ससुरासुरमाणुसो लोओ ।।३१६।।

एदम्मि णवरि मुणिणो णाणजलोवग्गहेण विज्झविदे।

डाहुम्मुक्का होंति हु दमेण णिव्वेदणा चेव ।।३१७।।

णिग्गहिदिंदियदारा समाहिदा समिदसव्वचेट्ठंगा ।
धण्णा णिरावयक्खा तवसा विधुणन्ति कम्मरयं ॥३१८॥
इय दढगुणपरिणामो वेज्जावच्चं करेदि साहुस्स ।
वेज्जावच्चेण तदो गुणपरिणामो कदो होदि ॥३१९॥

अर्थ—सर्व जीवनिके ज्ञानादिक गुणनिकूं भस्म करनेतें जतिमहान् जो मोहरूप अग्नि सो सर्व देव अर मनुष्य-लोक ताकूं दग्ध करत है। कैसाक है लोक ? जाहकी दाहरूप जो घोर महावेदना, ताकरिकै प्रकट धगधगायमान हुवा बलै है। ऐसे मोहरूप अग्निकरि दग्ध होता जो लोक ताके विषै एक ए दिगम्बरमुनि हैं ते ज्ञानरूप जलकरि मोह अग्निकूं बुझाय अर रागद्वेषरूप आतापकूं दमिकरिकै अर दाहरहित हुये सन्ते वेदनारहित सुखी होत हैं। बहुरि निग्रह किये हैं इन्द्रियद्वार जिनिनें ऐसे, अर रत्नत्रयमें सावधान है चित्त जिनिका ऐसे, अर जिनकी सर्व चेष्टा अर सर्व अंगकी प्रवृत्ति समितिरूप होगई ऐसे, बहुरि आपकी जगतमें विख्यातता अर पूज्यता अर भोजनादिकका लाभ इनिकूं नहीं चाहता, धन्य योगीश्वर तप करिके कर्मरजकूं उडावे है—नाश करे है। भावार्थ—जिनके मनोज्ञविषयनिमें राग नहीं, अर अमनोज्ञमें द्वेष नहीं, यहही इन्द्रियनिका रोकना, अर रत्नत्रयमें चित्तकी सावधानी अर शरीरकी प्रवृत्ति यत्नाचारपूर्वक होय अर इह-लोकपरलोकसम्बन्धी वांछारहित तेही साधु जगतमें धन्य हैं, तेही कर्मरजकूं तपकरि नष्ट करे हैं। या प्रकार साधुनिके गुणनिमें अनुरागरूप दृढ परिणाम करिके वैयावृत्य करे हैं, वैयावृत्य करनेकरिही आपकेहू तपरूप गुणनिमें परिणाम होय है। भावार्थ—पूज्यपुरुषनिके गुणनिमें जाकै अनुराग होय, ताहीतें वैयावृत्य बणे है। जाके गुणनिमें अनुराग नहीं, ताकै वैयावृत्यहू नहीं बणे है। तातें वैयावृत्य करनेतें गुणपरिणाम होय है। अब वैयावृत्यतें श्रद्धान नामा गुण होय, सो कहे हैं। गाथा—

जह जह गुणपरिणामो तह तह आरुहइ धम्मगुणसेढिं ।
वढ्ढदि जिणवरमग्गे णवणवसंवेगसद्धावि ॥३२०॥

अर्थ—जैसे जैसे गुणनिमेंपरिणाम होय, तैसें तैसें धर्मरूप गुणकी श्रेणीकूं चढत है अर जिनेन्द्रका मार्गमें नवीन नवीन धर्मानुराग अर संसारदेहभोगतें विरक्ततारूप श्रद्धान बधत है। जातें गुणनिमें अनुराग होय, सो कहे हैं—

सद्धाए वड्ढियाए वच्छल्लं भावदो उवक्कमदि ।
तो तिव्वधम्मराओ सव्वजगसुहावहो होइ ॥३२१॥

अर्थ—श्रद्धानके बधनेकरि भावनिमें वात्सल्य जो धर्मानुरागता सो आरम्भनै प्राप्त होय है, अर जो धर्ममें अनुराग है सोही जगतके सुखकी प्राप्ति करनेवाला है । जातें धर्मानुरागतें इन्द्रपणा अहमिंद्रपणा होय है अर अनन्तसुखरूप निर्वाण होय है । अब वैयावृत्यतें भक्तिगुण होय है, सो कहे हैं । गाथा—

अरहंतसिद्धभत्ती गुरुभत्ती सव्वसाहुभत्ती य ।
आसेविदा समग्गा विमला वरधम्मभत्ती य ॥३२२॥

अर्थ—अरहन्तभक्ति तथा सिद्धभक्ति अर आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुभक्ति अर निर्मलधर्ममें भक्ति ये संपूर्ण वैयावृत्यकरि होय हैं । जातें रत्नत्रयका धारकनिकी वैयावृत्य करी सो सर्वधर्मके नायकनिकी भक्ति करी । अब भक्तिको माहात्म्य कहे हैं ।

संवेगजणियकरणा णिस्सल्ला मन्दरुव्व णिक्कंपा ।
जस्स दढा जिणभत्ती तस्स भयं णत्थि संसारे ॥३२३॥

अर्थ—संसारके परिभ्रमणका जो भय, ताकरि उपजी है प्रवृत्ति जामैं ऐसी, अर मायाचारशल्य तथा मिथ्यात्वशल्य तथा भोगवांछारूप निदानशल्य इनिकरि रहित ऐसी, अर मेरुकीनांई निष्कम्प निश्चल ऐसी जिनेन्द्र भगवानकी जाके दृढभक्ति है, ताकै संसारमें भय नहीं ही है । भावार्थ—भक्ति तो वाही प्रशंसा करनेयोग्य है—जामें मायाचार नहीं होय, अर परमात्माकूं सत्यार्थरूप जाणिकरिके होय, अर भोगवांछाकरि रहित होय, अर संसारपरिभ्रमणका भयकरि उपजी होय, अर निश्चल होय, ऐसी भक्ति जाके होय ताके संसारपरिभ्रमणका अभावही होय है । अब वैयावृत्यतैं पात्र लाभ गुण कहे हैं । गाथा—

पंचमहव्वयगुत्तो णिग्गहिदकसायवेदणो दंतो ।
लब्भदि हु पत्तभूदो णाणासुदरयणणिधिभूदो ॥३२४॥

अर्थ—पंचमहाव्रतनिकरि युक्त अर निग्रह करी है कषाय वेदना जाने ऐसा, रागद्वेषनिका दमनेवाला, अर नाना श्रुतज्ञानरूप रत्ननिका निधान ऐसा पात्रका लाभ वैयावृत्य करिकैंही होय। गाथा—

दंसणणाणे तव संजमे य संधाणदा कदा होइ।
तो तेण सिद्धिमग्गे ठविदो अप्पा परो चेव ॥३२५॥

अर्थ—जो पुरुष रत्नत्रयका धारककी वैयावृत्य करे है, सो दर्शन ज्ञान ताप संयमथकी अपना जोड बांधे है, तिस जोडकरिकैं आपका आत्माकूं अर पर जो अन्य साधु वोऊनिकूं निर्वाणका मार्गमें स्थापन कीया। भावार्थ—रत्नत्रयका धारकमें प्रीतिसहित वैयावृत्य करै सो आपकूं रत्नत्रयमें स्थाप्या, अर जिस रोगीका वैयावृत्य कीया ताकूं रत्नत्रयमें स्थापन कीया। तातैं मोक्षमार्गमें आपकूं अर परकूं स्थापन कीया। अब वैयावृत्यतैं तप गुणकूं कहे हैं गाथा—

वेज्जावच्चकरो पुण अणुत्तरं तवसमाधिमारूढो।
पप्फोडिंतो विहरदि बहुभवबाधाकरं कम्मं ॥३२६॥

अर्थ—बहुरि वैयावृत्य करनेवाला साधु सर्वोत्कृष्ट तपमें एकाग्रताकूं प्राप्त हुवा कहा करै है? जो कर्म बहोत भवनिमें बाधा करनेवाला, ताही नाश करता संता प्रवर्ते है। अब वैयावृत्यकरि पूजा नामा गुणकूं कहै है ॥ गाथा—

जिणसिद्धसाहुधम्मा अणागदातीदवट्टमाणगदा।
तिविहेण सुद्धमदिणा सव्वे अभिपूइया होंति ॥३२७॥

अर्थ—जो शुद्धबुद्धिका धारक साधु मुनिनकी वैयावृत्य मनवचनकायकरि करी सो अनागत, अर अतीत, अर वर्तमानरूप तीन कालके अरहंत और सिद्ध और साधु और धर्म ये सर्व पूजे। जातैं भगवानकी आज्ञा वैयावृत्य करनेकी है। जिसने वैयावृत्य करी, तिसनै सर्व धर्म आदरया। अब वैयावृत्य करनेतैं धर्मकी अव्युच्छित्ति दिखावे हैं। गाथा—

आइरियधारणाए संघो सव्वो वि धारिओ होदि।
संघस्स धारणाए अव्वोच्छित्ती कया होई ॥३२८॥

अर्थ—जो वैयावृत्य करि आचार्यकूं धारण कीया, सो सर्व संघको धारण कीया अर संघका धारण कारकं रत्नत्रयधर्मकी अव्युच्छित्ति करी। गाथा—

साधुस्स धारणाए वि होइ तह चेव धारिओ संघो।
साधू चेव ही संघो ण हु संघो साहूवदिरित्तो ॥३२९॥

अर्थ—अर साधुके धारणतें सर्व संघका धारण होय है। जातें साधुही संघ है। साधुसूं जुदा संघ नहीं है। तातें जो साधुका वैयावृत्य करि साधुकूं रत्नत्रयमें धारण कीया, सो सर्वसंघकूं धारचा। गाथा—

गुणपरिणामादीहि अणुत्तरविहीहिं विहरमाणेण।
जा सिद्धिसुहसमाधी सा वि य उवगूहिया होदि ॥३३०॥

अर्थ—गुणपरिणाम, श्रद्धा, वात्सल्य, भक्ति, पात्रलाभ, पूजा, तीर्थकी अव्युच्छित्ति इत्यादिक सर्वोत्कृष्ट विधिकरि प्रवर्तता जो साधु सो निर्वाणका सुखकी एकता अंगीकार करी। ये पूर्वोक्त गुणपरिणामादिक निर्वाणका सुखमें लीन होनेहो के उपाय अंगीकार कीये। गाथा—

अणुपालिदा य आणा संजमजोगा य पालिदा होंति।
णिग्गहियाणि कसायेंदियाणि साखिल्लदा य कदा।३३१।

अर्थ—वैयावृत्य करनेवाला भगवानकी आज्ञा पाली, अर आपकं अर परकं संयम तथा शुभध्यानकी रक्षा करी। बहुरि आपकी अर परकी कषाय अर इंद्रियांनिका निग्रह कीया अर धर्मकी सहायता करी॥ गाथा—

अविसयदाणं वत्तं णिव्वीदिगिंछा य दरिसिदा होइ।
पवयणपभावणा वि य णिव्वूढं संघकज्जं च ॥३३२॥

अर्थ—जो वैयावृत्य करि रत्नत्रयकी रक्षा करी, सो अतिशयरूप दान दीया, अर निर्विचिकित्सा नामा सम्यक्त्व गुण प्रकट दिखाया, अर जिनेंद्रका धर्मकी तथा आगमकी प्रभावना प्रकट करी, अर संघका कार्यका निर्वाह किया।

भावार्थ—जो रोगादिककरि पीडित साधुका रत्नत्रयकी रक्षा करी, सो सर्व दान दीया, रत्नत्रय समान दान नहीं। अर जाकै अशुचिकी ग्लानि नहीं होय ताहीसूं वैयावृत्य होय है। त्याग करना, धन खरचना सुगम है अर धर्मात्माका जीर्ण रोगसहित देहकी ग्लानिरहित सेवा करना दुर्लभ है। अर धर्मकी प्रभावना भी याही है जो धर्मात्मा का टहल करना। ताहीका हृदयमें धर्मका प्रभाव प्रगट हुआ है, जो वैयावृत्य करे है। अर संघका कार्य भी यहही है। सो निर्विघ्न रत्नत्रय धारण करना सो वैयावृत्य के करनेवाले का सर्व उपकार है ।। गाथा—

गुणपरिणामादीहि य विज्जावच्चुज्जदो समज्जेदि।
तित्थयरणामकम्मं तिलोयसंखोभयं पुण्णं ।।३३३।।

अर्थ—वैयावृत्ययुक्त जो पुरुष सो गुणपरिणामादिक जे वर्णन कीये, तिनकरिकै त्रैलोक्यमें आनंदको कारण ऐसो तीर्थंकर नामा पुण्यकर्म संचय करे है ।। गाथा—

एदे गुणा महल्ला वेज्जावच्चुज्जवस्स बहुया य।
अप्पट्ठिदो हु जायदि सज्झायं चेव कुव्वन्तो ।।३३४।।

अर्थ—वैयावृत्य करनेमें उद्यमी ताके येते बहोत महान् गुण प्रकट होय हैं। स्वाध्याय करनेवाला तो आत्म-प्रयोजनही साधे है, अर वैयावृत्य करनेवाला आपका अर परका दोऊका उद्धार करे है। ऐसे अनुशिष्टि अधिकारमें छव्वीस गाथानिकरि वैयावृत्य कह्या। अब आगे आठ गाथानिमें आर्यिकाकी संगति का त्यागकी शिक्षा करे हैं।

वज्जेह अप्पमत्ता अज्जासंसग्गमग्गिविससरिसं।
अज्जाणुचरो साधू लहदि अकित्तिं खु अचिरेण ।।३३५।।

अर्थ—भो मुने! अग्निसमान अर विषसमान जो आर्जिकाका संगम–संगति, ताही सावधान हुवा वर्जन करो। आर्जिकाकी संगति करनेवाला साधु शीघ्रही अकीर्तिनै प्राप्त होय है। भावार्थ—आर्जिकाकी संगति चित्तकूं संताप करनेतैं अग्निसमान है अर संयमरूप जीवितनै हरनेकूं विषसमान है। जातैं अव्रती गृहस्थभी तथा मिथ्यादृष्टिहू स्त्रीनिकी संगतितै अकीर्ति पावै, तो संयमीको अकीर्ति तो होयही होय ।। गाथा—

थेरस्स वि तवसिस्स वि बहुस्सुदस्स वि पमाणभूदस्स ।

अज्जासंसग्गीए जणजंपणयं हवेज्जादि ॥३३६॥

अर्थ—वृद्ध होय तथा बडे अनशनादिक तपका धारक होय, अर बहोत शास्त्रका पारगामी होय, अर सर्व जगत में प्रमाणीक होय, ऐसाहू आर्यिकाकी संगतिकरिके लौकिक जनांकरि अपवादकूं प्राप्त होयही है ॥ गाथा—

किं पुण तरुणो अबहुस्सुदो य अणुकिट्ठतवचरित्तो वा ।

अज्जासंसग्गीए जणजंपणयं ण पावेज्ज ॥३३७॥

अर्थ—अर जो तरुण होय अर बहुश्रुतीहू नहीं होय अर तपहूमें उत्कृष्ट नहीं होय, ऐसा साधु आर्यिकाकी संगति करिके लोकनिमें अपवाद नहीं पावै कहा ? अवश्य अपवादकूं प्राप्त होयही । गाथा—

जदि वि सयं थिरबुद्धी तहा वि संसग्गिलद्धपसराए ।

अग्गिसमीवे व घदं विलेज्ज चित्तं खु अज्जाए ॥३३८॥

अर्थ—यद्यपि आपकी स्थिरबुद्धि होय तोहू आर्यिकाका संसर्गकरिके पाया है प्रसार जानें, ऐसा अग्निके समीप घृतकीनांई चित्त जो मन सो तत्काल पघलि जाय है—बिगडि जाय है, आर्यिकाका चित्तहू पघलि जाय है । केवल आर्यिका हीका संग नहीं छोडना कह्या है, संपूर्ण स्त्रीमात्रकी संगतिहीका त्याग करना श्रेष्ठ है । गाथा—

सव्वत्थ इत्थिवग्गम्मि अप्पमत्तो सया अवीसत्थो ।

णित्थरदि बम्भचेरं तव्विवरीदो ण णित्थरदि ॥३३९॥

अर्थ—बालक, कन्या, यौवनवती, वृद्धा, कुरूपा, रूपवती, दरिद्रा, धनवती, वेषधारिणी इत्यादि कोऊही स्त्रीकी जातिमें होहू, जे जिनकी आज्ञामें सावधान हैं, ते कोई भी स्त्रीका विश्वास नहीं करे हैं, सो ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेकूं समर्थ है । अर जो स्त्रीमात्रमें विश्वास करेगो, वचनालाप करेगो, अंगनिका अवलोकन करेगो, प्रमादी रहेगो, सावधानी छोडेगो, सो ब्रह्मचर्यकी रक्षा नहीं करेगो, बिगडेहीगो । गाथा—

सव्वत्तो वि विमुत्तो साहू सव्वत्थ होइ अप्पवसो ।
सो चेव होदि अज्जाओ अणुचरंतो अणप्पवसो ॥३४०॥

अर्थ—जो साधु सर्व गृह धन धान्य स्त्री पुत्र भोजन भाजन नगर ग्रामादिकहूतें न्यारा हुवा है, अर सर्वत्र देशकाल में स्वाधीन है, ऐसाहू साधु अर्जिकाकी संगति करता पराधीन होय है—विषयकषायनिके आधीन होय भ्रष्ट होय है । गाथा—

खेलपडिदमप्पाणं ण तरदि जह मच्छिया विमोचेदुं ।
अज्जाणुचरो ण तरदि तह अप्पाणं विमोचेदुं ॥३४१॥

अर्थ—जैसे कफविषै पडी जो मक्षिका सो आपकूं कफमेंतें छुडावनेकूं असमर्थ है, तैसें अर्जिकाकी संगति करता साधु आपकूं कामादिकनितें, रागादिकनितें निकासनेकूं नहीं समर्थ होय है । गाथा—

साधुस्स णत्थि लोए अज्जासरिसो खु बंधणे उवमा ।
चम्मेण सह अवेंतो ण य सरिसो जोणिकसिलेसो ॥३४२॥

अर्थ—लोककेविषै साधुकूं बांधनेकूं अर्जिकासमान कोऊ उपमा नाहीं, जैसे चर्मकरि किया जो बन्धन तासमान और बन्धन नहीं ।

ऐसे आठ गाथानिकरि आर्यिकाकी संगतिका वर्जन कह्या । अब जैसें आर्यिकाकी संगतिका निषेध किया, तैसें, औरहू भ्रष्ट मुनिनकी संगतिका त्याग करना योग्य है । गाथा—

अण्णं पि तहा वत्थुं जं जं साधुस्स बन्धणं कुणदि ।
तं तं परिहरह तदो होहदि दढसंजदा तुज्झ ॥३४३॥

अर्थ—जैसें अर्जिकाकी संगति बन्धकूं कारण जानि त्याग करना उचित है, तैसें औरहू जो जो वस्तु साधुकै कर्मका बन्धन करै, सो सो त्याग करो, तातैं तुमारे दृढसंजमीपणा होवै । गाथा—

पासत्थादीपणयं णिच्चं वज्जेह सव्वधा तुम्हे ।
हंदि हु मेलणदोसेण होइ पुरिसस्स तम्मयदा ॥३४४॥

अर्थ--भो मुनीश्वर हो ! ये, पार्श्वस्थादिक पंचप्रकार भ्रष्ट मुनि हैं तिनकी संगति नित्यही सर्वथा वर्जन करो । जो पार्श्वस्थादिकनिकी संगति नहिं त्यागे है, तो पाछै तन्मयता होइ जाय है । जातें संगतिका दोषकरिके पुरुषके तन्मयता होय है--

इस ग्रन्थमें पार्श्वस्थादिक पंचप्रकारके भ्रष्ट मुनिनका कथन अठाईस गाथामें आगे अनुशिष्टि अधिकारमें वर्णन करेंगे, तथापि इहां जाननेके अर्थि मूलाचारग्रन्थतें तथा--मूलाचारप्रदीपकतें लिखे हैं। १. पार्श्वस्थ, २ कुशील, ३. संसक्त, ४. अपगतसंज्ञ, ५. मृगचारी, ये भ्रष्टमुनिनकी पांच जाति हैं । इनिमें भेष तो दिगम्बरमुनिका अर दर्शन ज्ञान चारित्रकरि रहितपणा जानना । तिनमें जाका वसतिकामें राग होय, वा वसतिका, मठ, मकान, एक जायगां आपका बांधि राख्या होय, अर जाकै बहोत मोह शरीरादिकनिमें ममता होय, अर कुमार्गगामी होय, उपकरणनिका रात्रिदिन संग्रह करनेमें उद्यमी होय, भावनिकी विशुद्धतारहित होय, संयमीजननितें दूर तिष्ठता होय, दुष्ट होय, असंयमीनिकी संगति करने वाला होय, इन्द्रियनिकूं जीतनेकूं असमर्थ होय, कषाय जीतनेकूं असमर्थ होय, द्रव्यलिंगका धारण करनेवाला रत्नत्रयकरिके रहित, ते पार्श्वस्थमुनि है; स्तुति नमस्कार करनेयोग्य नहीं है, ऐसें जिनेन्द्रदेवनें कह्या है ॥१॥

अब कुशीलका लक्षण कहे हैं । जिनका कुत्सित, निंद्य शील कहिये स्वभाव होय सो कुशील जानना । जिनका आचरण निंद्य होय, स्वभाव जिनका निंद्य होय, क्रोधादिककरि व्याप्त जाका मन होय, व्रत शील गुणनिकरि रहित होय, धर्मका अपयश करनेवाला होय, संघका अपवाद करनेवाला होय, तिनकूं कुशील कहे हैं ॥२॥

अब संसक्तकूं कहिये हैं । जे दुर्बुद्धि असंयमीनिका गुणमें आसक्त होय, अर आहारमें जाके अतिगृद्धिता लम्पटता होय, अर भोजनकी लम्पटताकरिके वैद्यविद्या, ज्योतिष्कादिक विद्याका करने वाला होय, बहुरि राजादिकनिकी सेवामें तत्पर होय, मूर्ख होय, मंत्र तंत्र यंत्रादिक विद्या करनेमें तत्पर होय ते निर्ग्रंथलिंगका धारकहू भ्रष्टाचारी संसक्त है ॥३॥

अब अपगतसंज्ञकूं कहे हैं, ताकूं अवसन्नहू कहे हैं । जे सम्यग्ज्ञानादिक सज्ञाकरिके नष्ट होय, ते अपगतसंज्ञ है । जे चारित्रकरि रहित होय, जिनवचनका ज्ञानकरि रहित होय, सांसारिक सुखमें आसक्त होय, ते अपगतसंज्ञ हैं ॥४॥

अब मृगचारीकूं कहे है। मृग जे वनके पशु तिनिकीनांई स्वेच्छाचारी होय, पापका करनेवाला होय, जैनमार्गकूं दूषण देनेवाला होय, आचार्यादिकनिके उपदेशरहित एकाकी परिभ्रमण करता होय, धैर्यरहित होय, तपका मार्गतें पराङ्मुख होय, जिनसूत्रादिकमे अप्रवर्ते ते मृगचारी हैं ।।५।।

ऐसे ये पंचप्रकारके भ्रष्ट मुनि दर्शन ज्ञान चारित्र तप विनय इनितें अत्यन्तदूरिवर्ती, गुणनिके धारकनिके छिद्र हेरनेमें तत्पर, ऐसे पार्श्वस्थादिक वन्दना, प्रशंसा, संगति करनेयोग्य ही नहीं हैं। इनिकूं शास्त्रादिकविद्याका लोभकरि वा रागकरि भयकरि कदाचित् वन्दना विनयादिक नहीं करना। जे इनि भ्रष्ट मुनिनिका संगति करे हैं तेहू पार्श्वस्थादिकपणानें प्राप्त होय हैं। सो तन्मयता कैसी होय, ताका क्रम कहे हैं।

लज्जं तदो विहिंसं पारंभं णिव्विसंकदं चेव।

पियधम्मो वि कमेणारुहंतओ तम्मओ होइ ।।३४५।।

अर्थ--जाकूं धर्म अत्यन्त प्रिय होय ऐसाहू साधु जो पार्श्वस्थादिकनिका संग करै, तदि प्रथम तौ हीनाचारमें प्रवर्तनेकी आपके लज्जा थी, सो हीनाचारीकी संगतिकरि लज्जा नष्ट होय। पाछै जो आपके असंयमभावमें ग्लानि थी "जो मैं निंद्यकर्म कैसे करूं?" सोहू लज्जा गये पाछै ग्लानिहू नष्ट होय है। पाछै चारित्रमोहका उदयतें परवश हुवा आरम्भ पापादिकनिमें निःशंक प्रवर्तता पार्श्वस्थादिकनिमें तन्मयतानैं प्राप्त होय है। गाथा--

संविग्गस्सवि संसग्गीए पीदी तदो य वीसंभो।

सदि वीसम्भे य रदी होइ रदीए वि तम्मयदा ।।३४६।।

अर्थ--जो संसारपरिभ्रमणतें अत्यन्त भयभीत भीहोय ताकेहू पार्श्वस्थादिकनिका संसर्गकरिके प्रीति होय ही है। अर प्रीतितैं विश्वास होय है। अर विश्वाससैं आसक्तता--रति होय है। अर रतितैं पार्श्वस्थादिकनिसूं तन्मयतानैं प्राप्त होय है। अब दुर्जनसंगति त्यागनेयोग्य है, ताकूं दृष्टान्तकरि जणावे हैं। गाथा--

जइ भाविज्जइ गन्धेण मट्टिया सुरभिणा व इदरेण।

किह जोएण ण होज्जो परगुणपरिभाविओ पुरिसो ।।३४७।।

अर्थ—जो मृत्तिका जो मांटी ताकेहू सुगन्ध वा दुर्गन्धकी भावना करिये तौ मृत्तिकाहू संयोगकरि सुगन्ध दुर्गन्ध होय है। तौ चेतनमनुष्य संगतिकरिके परके गुणनिकरि भावनारूप कैसे नहीं होय ? । गाथा—

जो जारिसीय मेत्ती केरइ सो होइ तारिसो चेव ।
वासिज्जइ च्छुरिया सा रिया वि कणयादिसंगेण ॥३४८॥

अर्थ—जो जैसी मित्रता करै सो तैसाही होय है। जैसे लोहमयहू छुरी कनकादिकका संगकरिके वासनाकूं प्राप्त होय–कनककी कहावै है। गाथा—

दुज्जणसंसग्गीए पजहदि णियगं गुणं खु सुजणो वि ।
सीयलभावं उदयं जह पजहदि अग्गिजोएण ॥३४९॥

अर्थ—दुर्जनकी संगतिकरिके सुजनहू आपका गुणकूं त्यागत है। जैसे शीतल है स्वभाव जाका, ऐसाहू जल अग्नि का संयोगकरिके आपका शीतलस्वभावनै छोडि तप्ततानै प्राप्त होय है। गाथा—

सुजणो वि होइ लहुओ दुज्जणसंमेलणाए दोसेण ।
माला वि मोल्लगरुया होदि लहू मडयसंसिट्ठा ॥३५०॥

अर्थ—सुजनहु दुर्जनको मिलाप, सोही जो दोष, ताकरिके हलको होत है। जैसी बहुमौल्यकी पुष्पमालाहू मृतकका संश्लेषकरि लघु होय है। गाथा—

दुज्जणसंसग्गीए संकिज्जदि संजदो वि दोसेण ।
पाणागारे दुद्धं पियन्तओ बम्भणो चेव ॥३५१॥

अर्थ—दुर्जनकी संगतिकरिके लोकनिमें संयमीकूंहू दोषनिकरि सहित शंका करिये है। जैसे कलालका घरमें दुग्ध-पान करताहू ब्राह्मण ताको लोक मदिरा पीनेकी शंका करे हैं। गाथा—

परदोसगहणलिच्छो परिवादरदो जणो खु उस्सूणं ।
दोसत्थाणं परिहरह तेण जणजंपणोगासं ॥३५२॥

अर्थ—लोक है सो स्वभावहीतैं परके दोष ग्रहणमें वांछावान् है अर अत्यन्त परकी निन्दामें आसक्त है। ता कारण-करिके, दुर्जनकी संगति करोगे तो लोक तुमारी निन्दा करनेको अवकाश पावेंगे। तातैं लोकनिन्दाका अवकाश अर दोषनिका स्थानक ऐसा दुर्जन जे पापी मिथ्यादृष्टिजन तिनकी संगतिको त्याग करो। गाथा—

अदिसंजदो वि दुज्जणकएण दोसेण पाउणइ दोसं।
जह घूगकए दोसे हंसो य हओ अपावो वि ॥३५३॥

अर्थ—अतिसंयमीहू साधु दुर्जन जे मिथ्यादृष्टि, तिनकी संगति करिके उपज्या दोष, ताकरिके दोषकूं प्राप्त होय है। जैसैं निर्दोषहू हंस अपराधी घूघूकी संगतिकरि नाशकूं प्राप्त भया। गाथा—

दुज्जणसंसग्गीए विभाविदो सुयणमज्झयारम्मि।
ण रमदि रमदि य दुज्जणमज्झे वेरग्गमवहाय ॥३५४॥

अर्थ—दुर्जनकी संगतिकरि भावनाकूं प्राप्त हुआ साधु सुजन जे उत्तम पुरुष तिनके मध्य नहीं रमे है। वैराग्यकूं त्यागिकरि दुष्टनिके मध्य रमे है। अब सुजनकी संगतिकरिके गुण होय, तिनिकूं कहे हैं। गाथा—

जहदि य णिययं दोसं पि दुज्जणो सुयणवइयरगुणेण।
जह मेरुमल्लियन्तो काओ णियच्छविं जहदि ॥३५५॥

अर्थ—सज्जनका मिलापकरिके दुष्टहू आपका दोषकूं त्यागत है। जैसैं मेरुका शिखरकूं प्राप्त भया काकपक्षी सो अपनी कृष्णप्रभाकूं त्यागत है। गाथा—

कुसुममगंधमवि जहा देवयसेसत्ति कीरदे सीसे।
तह सुयणमज्झवासी वि दुज्जणो पूइओ होइ ॥३५६॥

अर्थ—जैसैं सुगन्धरहितहू पुष्प देवताकी आसिकाको जाणि मस्तकविषैं चढाइये है, तैसैं सुजनांके मध्य वास करतो दुर्जनहु पूज्य होय है—आदरवेजोग्य होय है। भावार्थ—यद्यपि कोऊ द्रव्यसंयमी है—भावसंयमरहित है, अर दुःखमें कायर

है, तथापि संसारतैं भयभीत ऐसे साधुनिकी संगतितैं वचनकायका निमित्तसूं आस्रवनिरोध करेही है। यद्यपि धर्ममें राग नहीं होय तथापि भयकरिके, अभिमानकरिके, लज्जाकरिके पापक्रियामे प्रवृत्ति नहीं ही करे है, अर संगतितैं सर्वकं आदर करनेयोग्य होयहां है। गाथा—

संविग्गाणं मज्झे अप्पियधम्मो वि कायरो वि णरो।
उज्जमदि करणचरणे भावणभयमाणलज्जाहिं ॥३५७॥

अर्थ—जाकूं धर्म प्रिय नहीं, अर दुःखपरीषहतैं अत्यन्त कायर, ऐसाहू पुरुष संसारतैं भयभीत ऐसे संयमीनिके मध्य वास करता वारम्बार धर्मकी प्रभावना श्रवणकरिके, भयकरिके, अभिमानकरिके, लज्जाकरिके चारित्रमें उद्यमी होयही है। गाथा—

संविग्गोवि य संविग्गदरो संवेगमज्झयारम्मि।
होइ जह गन्धजुत्ती पयडिसुरभिदव्वसंजोए ॥३५८॥

अर्थ—अर जो आप संविग्न होय, संसारदेहभोगनितैं विरक्त होय, अर वीतरागीनिके मध्य रहै, सो साधुपुरुष अत्यंत संविग्नतर होय है—अत्यन्त वीतरागी होय है। जैसैं जो प्रकृतिहीसूं सुगन्धद्रव्य होय अर फेरि बहोत सुगन्धद्रव्यनिका संयोग मिलै तदि अत्यन्त सुगन्ध होजाय, तैसैं जानना। गाथा—

पासत्थसदसहस्सादो वि सुसीलो वरं खु एक्को वि।
जं संसिदस्स सीलं दंसणणाणचरणाणि वड्ढन्ती ॥३५९॥

अर्थ—चारित्ररहित ज्ञानदर्शनरहित ऐसे भ्रष्ट मुनिनिका जो लक्ष कोटि तिनितैं सुशील जो उत्तम आचारका धारण करनेवाला एकही श्रेष्ठ हे। जातैं सुशील जो भावलिंगी, ताका आश्रयकरि शील दर्शन ज्ञान चारित्र वृद्धिकूं प्राप्त होय हैं। भावार्थ—जिनतैं सत्यार्थधर्म प्रवर्ते, सो एकही श्रेष्ठ है। जिनतैं सत्यार्थधर्म नष्ट होय, विपरीतमार्ग प्रवर्ते, ऐसे लक्ष कोटिहू श्रेष्ठ नहीं ॥ गाथा—

संजदजणावमाणं पि वरं दुज्जणकदादु पूजादो ।

सीलविणासं दुज्जणसंसग्गो कुणदि ण दु इदरं ॥३६०॥

अर्थ—कोऊ या कहे—जो, सत्यार्थ संयमी तो हमारा आदरही नहीं करै, अर पार्श्वस्थ मुनि बड़ा आदर करै, प्रीति करै । ताकूं कहे हैं—दुर्जनकरिकै करी जो पूजा, तातैं संयमीजननिकरि कीया अपमान श्रेष्ठ हैं । जातैं दुर्जनकी संगति ज्ञानदर्शनरूप आत्माका स्वभाव ताहि नाश करे है । अर संयमीनिकी संगति ज्ञानदर्शनादिक आत्माका स्वभावकूं प्रकट करे है, उज्वल करे है ॥ गाथा—

आसयवसेण एवं पुरिसा दोसं गुणं व पावन्ती ।

तह्मा पसत्थगुणमेव आसयं अल्लिएज्जाह ॥३६१॥

अर्थ—या प्रकार आश्रयका वशकरिकै पुरुष जे हैं ते गुण अर दोषकूं प्राप्त होय हैं । तातैं श्रेष्ठगुणका धारक साधुजन तिनका आश्रयही करो, अधम पार्श्वस्थादि भ्रष्टमुनिनिकी संगति मति करो ॥ गाथा—

पत्थं हिदयाणिट्ठं पि भण्णमाणस्स सगणवासिस्स ।

कडुगं व ओसहं तं महुरविवायं हवइ तस्स ॥३६२॥

अर्थ—जो मनकूं अनिष्टभी लागै अर परिपाककालमें जाका फल मीठा होय ऐसी पथ्यशिक्षा अपने गणमें बसनेवालेकूं कहै ही । तो वा शिक्षा ताकै, जैसै कड़वी औषध रोगीकूं परिपाककालमें मिष्टफल देवै, तैसै उदयकालमें भली जाननी । कोऊ या कहै—परकूं अनिष्ट कहनेकरि आपकै कहा प्रयोजन? ऐसै उदासीन नहीं होना । आपका सामर्थ्यमाफिक धर्मानुरागकरिकै परका उपकारमेंही प्रवर्तना श्रेष्ठ है ॥ गाथा—

पत्थं हिदयाणिट्ठं पि भण्णमाण णरेण घेत्तव्वं ।

पेल्लेदूण वि छूढं बालस्स घदं व तं खु हिदं ॥३६३॥

अर्थ—जो पथ्य होय, परिपाककालमें जाका फल मीठा होय, अर वर्तमानमें मनकूं कडवो भी होय, तो ऐसी कही हुई शिक्षा पुरुषनें ग्रहण करबो जोग्य है । कैसी है उत्तमपुरुषनिकी शिक्षा ? जैसै बालककूं जबरीतै दाबिकरिकै दुग्धघृतादिकका पावना, तैसै है ।

ऐसें अनुशिष्टि अधिकारमें अकईस गाथानिकरि पार्श्वस्थादिक दुष्टमुनिनिकी संगति त्याग करनेकी शिक्षा करी। अब आपकी प्रशंसा अर परकी निंदा करनेका त्यागकी शिक्षा सोलह गाथानिमें करे हैं ।। गाथा—

अप्पपसन्सं परिहरह सदा मा होह जसविणासयरा ।
अप्पाणं थोवंतो तणलहुहो होदि हु जणम्मि ।।३६४।।

अर्थ—भो मुने ! आपकी प्रशंसाका सदाकाल त्याग करो । आपकी प्रशंसाकरि अपने यशका विनाश करनेवाला मति होहू । आपकी बड़ाई स्तुति करते पुरुष लोककेविषें तृणबरोबरि लघु होय हैं, सुजनांके मध्य नीचे होय हैं ।।गाथा—

संतो वि गुणा कत्थंतयस्स णस्संन्ति कंजिए व सुरा ।
सो चेव हवदि दोसो जं सो थोएदि अप्पाणं ।।३६५।।

अर्थ—विद्यमानहू गुण आपके मुखतैं कहनेवाले पुरुषका गुण नष्ट होय है; जैसे कांजीकरि सुरा मदिरा वा दुग्ध फटि जाय । जामैं कोई दोष नहीं होय, तोहू योही बड़ो दोष है, जो आपकी प्रशंसा करना, आपकी बडाई आपके मुखतैं करनी, यासमान और दोष नहीं ।। गाथा—

संतो हि गुणा अकहिंतयस्स पुरिसस्स ण वि य णस्सन्ति ।
अकहिंतस्स वि जह गहवइणो जगविस्सुदो तेजो ।।३६६।।

अर्थ—आपकी प्रशंसा नहीं करते पुरुषका विद्यमान गुण नाशकूं नहीं प्राप्त होत हैं । जैसे आपकी प्रशसा नहीं करताहू सूर्यका तेज जगतमें विख्यात होय है, तैसे जगतमें गुण विख्यात होय हैं ।। गाथा—

ण य जायन्ति असता गुणा विकत्थंतयस्स पुरिसस्स ।
धन्ति हु महिलायंतो व पंडगो पंडवो चेव ।।३६७।।

अर्थ—अपनी प्रशंसा करनेवाला पुरुषके अविद्यमान गुण विद्यमान नहीं होय हैं । जातैं जामैं गुणही नहीं अर आपके झूठे गुण कहता फिरेगा, ताकै कहेतैं अनहोते गुण कहातैं आवेंगे ? जैसे अतिशयकरिकै स्त्रीकीनांई शृंगार हाव

भाव विलास विभ्रम करताहू नपुंसक है सो तौ नपुंसकही है, नपुंसक स्त्रीकीनांई आचरण करता स्त्री नहीं हो जायगा, नपुंसकही रहेगा ।। गाथा—

सन्तं सगुणं कित्तिज्जन्तं सुजणो जणम्मि सोदूणं ।
लज्जदि किह पुण सयमेव अप्पगुणकित्तणं कुज्जा ।।३६८।।

अर्थ—सज्जन पुरुषनिको यो स्वभाव है, जो विद्यमानहू आपका गुण कोऊ कीर्त्तन करे प्रशंसा करे, तदि लोकांके मध्य सुजन पुरुष लज्जाकूं प्राप्त होत है, तो आपही आपका गुणकीर्तन कैसे करै ? कदाचित् नहींही करै । आपका गुण-कीर्तन नहीं करै—तामें गुण होय है, सो दिखावे हैं । गाथा—

अविकत्थंतो अगुणो वि होइ सगुणो व सुजणमज्झम्मि ।
सो चेव होदि हु गुणो जं अप्पाणं ण थोएइ ।।३६९।।

अर्थ—जो गुणरहितहू होय अर आपके गुणकी प्रशंसा स्वजनाके मध्य नहीं करै, तो सत्पुरुषनिके मध्य गुणसहित होत है । सोही प्रकट गुण जानना, जो आपका स्तवन नहीं करे । भावार्थ—जो आपमें गुण एकभी नहीं होय अर जो अपनी बडाई नहीं करना, सोही बडा गुण जानना । गाथा—

वायाए जं कहणं गुणाण तं णासणं हवे तेंसि ।
होदि हु चरिदेण गुणाणकहणमुब्भासणं तेंसि ।।३७०।।

अर्थ—जो वचनकरि गुणनिका कहना, सो तिन गुणनिका नाश करना है । अर जो वचनकरि तो अपना गुण नहीं कहे अर आचरणकरि कहना सो गुणनिका प्रकट करना जानना । भावार्थ—उत्तम पुरुष आपके गुण मुखतें प्रकट नहीं कहै, अर गुणरूप आचरण करना ताकरि आपें आप विना कह्या ही जगतमें प्रकट होय है । अब जो आचरणकरि गुणका प्रकाशन, ताकी महिमा कहे हैं । गाथा—

वायाए अकहन्ता सुजणे चरिदेंहि कहियगा होंति ।
विकहितगा य सगुणे पुरिसा लोगम्मि उवरीव ।।३७१।।

अर्थ—जे पुरुष स्वजनांमें अपने गुण वचनकरि नहीं कहै, अर आचरणकरि कहै, ते पुरुष लोकमें पुरुषनिके उपरि होय हैं। गाथा—

सगुणम्मि जणे सगुणो वि होइ लहुगो णरो विकत्थितो ।
सगुणो वा अकहिंतो वायाए होंति अगुणेसु ॥३७२॥

अर्थ—गुणवान् जननिमें गुणवान् पुरुष आपका गुण वचनकरि कहे, तो लघु होय है—छोटो होय है। अर अपना गुण आप वचनकरि प्रशंसा नहीं करतो निर्गुणनिमैंहू आप गुणवान् होय है। गाथा—

चरिएहिं कत्थमाणो सगुणं सगुणेसु सोभदे सगुणो ।
वायाए वि कहिंतो अगुणो व जणम्मि अगुणम्मि ॥३७३॥

अर्थ—गुणसहित पुरुष गुणवन्तनिमें आचरणकरि गुण प्रकट कहता सोहै है! अर वचनकरि अपनी बडाई करता नहीं सोभै है। जैसे निर्गुणपुरुषनिमें निर्गुणपुरुष आपका गुणनिकूं कहता सोहै। गाथा—

सगणे व परगणे वा परपरिवादं च मा करेज्जाह ।
अच्चासादणविरदा होह सदा वज्जभीरू य ॥३७४॥

अर्थ—अपने संघमें वा परसंघमें परका परिवाद जो परका अपवाद निंदा मति करो। अत्यासादना जो परकी विराधना, तातैं विरक्त होहु। अर सदाकाल पापतै भयभीत होहु। अब परकी निंदा करनेतैं जे दोष उपजे हैं,तिनिकूं कहे हैं। गाथा—

आयासवेरभयदुक्खसोयलहुगत्तणाणि य करेइ ।
परणिंदा वि हु पावा दोहग्गकरी सुयणवेसा ॥३७५॥

अर्थ—खेद, वैर, भय, दुःख, शोक, लघुपणा इत्यादिक दोषनिनै या परनिन्दा उत्पन्न करैही। तथा परनिन्दा पापरूपिणी है, अर दौर्भाग्य करनेवाली परनिन्दा है। अर या परनिन्दा सुजनमें द्वेष करनेवाली है। गाथा—

किच्चा परस्स णिंदं जो अप्पाणं ठवेदुमिच्छेज्ज ।

सो इच्छदि आरोग्गं परम्मि कडुओसहे पीए ॥३७६॥

अर्थ—जो पुरुष परकी निंदा करिके आपकूं गुणवानपणामें स्थाप्या चाहे है, सो पुरुष पर जो अन्यपुरुष कडवी औषध पीवता संता आपके नीरोगता चाहे है । भावार्थ—जैसें कडवी औषध तो अन्यपुरुष पीवै अर रोगरहितपणा आपके चाहै, तैसें अन्यपुरुषनिके दोष प्रकट करि आप गुणवन्त भयो चाहै सो कदाचित् नहीं होयगा ।

दट्ठूण अण्णदोसं सप्पुरिसो लज्जिओ सयं होइ ।

रक्खइ य सयं दोसं व तयं जणजंपणभएण ॥३७७॥

अर्थ—सत्पुरुष अन्यका दोष देखि आप लज्जाकूं प्राप्त होय है । जैसें आपका दोषकूं रक्षा करै, गोपन करै, तैसे अन्यका दोष देखि अर संजमकी लोकमें निंदा होनेका भयकरि परका दोष प्रकट न करै । गाथा—

अप्पो वि परस्स गुणो सप्पुरिसं पप्प बहुदरो होदि ।

उदए व तेल्लबिंदू किह सो जंपिहिदि परदोसं ॥३७८॥

अर्थ—जैसें तैलका बिन्दू जलविषै बिस्तारनै प्राप्त होय है, तैसें परका अत्यन्त अल्पहू गुण सत्पुरुषकूं प्राप्त होय करिके बहोत विस्तारकूं प्राप्त होय है । सो सत्पुरुष परका दोष कैसें कहै ! कैसें प्रकट करै ? अपितु नहीं करै । गाथा—

एसो सव्वसमासो तह जतह जहा हवेज्ज सुजणम्मि ।

तुज्झं गुणेहिं जणिदा सव्वत्थ वि वित्थुदा कित्ती ॥३७९॥

अर्थ—सर्व उपदेशका संक्षेप यह है-जो, तैसें जतन करो, जैसें सज्जन पुरुषनिमें तुमारे गुणनिकरि उपजी कीर्ति सर्व जायगां विख्यात होय ॥ गाथा—

एस अखंडियसीलो बहुस्सुदो य अपरोवतावी य ।

चरणगुणसुट्ठिदोत्तिय धण्णस्स खु घोसणा भमदि ॥३८०॥

अर्थ—यो साधु अखंडितशील कहिये जाका ज्ञान दर्शन स्वभाव खंड नहीं हुवा ऐसा है, अर बहुश्रुत है, अर पर जीवनिकूं संताप नहीं करनेवाला है, अर चारित्रगुणमें सुखसूं तिष्ठे है। ऐसो घोषणा जो यश सो धन्यपुरुषका जगतमें भ्रमे है। हरेक पुरुषका यह जस नहीं होवै ।। गाथा—

वाढत्ति भाणिदूणं एदं णो मंगलोत्ति य गणो सो ।
गुरुगुणपरिणदभावो आणंदंसुं णिवाडेइ ।।३८१।।

अर्थ—यह शिक्षा सर्वसंघ श्रवण करि गुरुनितैं बीनती करता हुवा। हे भगवन्! आपको वचन हमारे अतिशयकरिकै मंगल होहू। ऐसें कहिकरिकै अर गुरुनिके गुणनिमें परिणया जो भाव, सोही जो गुण, सो सर्वसंघकै आनदके अश्रुपात टपकावत है। भावार्थ—सर्वसंघ मुखतैं कहै–हे भगवन्! या आपकी शिक्षा सोही हमारे रत्नत्रयधर्ममें विघ्न नाश करने के अर्थि होहू। ऐसें कहतैं गुरुनिके गुणका प्रभावतैं नेत्र आनंदके अश्रुपातकरि भरि आवैं ।। गाथा—

भगवं अणुग्गहो मे जं तु सदेहोव्व पालिदा अम्हे ।
सारणवारणपडिचोदणाओ धण्णा हु पावेंति ।।३८२।।

अर्थ—हे भगवन्! हमारे ऊपरि आपका बड़ा अनुग्रह है, जो हमकूं देहकीनांई पालना कीए। जगतमें धन्य पुरुष हैं ते गुरुनितैं सारण वारण प्रतिचोदनानिकूं प्राप्त होत हैं। सारण तो पूर्वे पाये रत्नत्रयादिकगुणनिकी रक्षा अर वारण-रत्नत्रयादिक गुणनिमैं अतीचारादिक विघ्न आवैं तिनकूं टालना, अर प्रतिचोदनां कहिये भो मुने! ऐसें करहु, ऐसें मति करहु, या प्रकार प्रेरणाकरि रत्नत्रादिक गुणनिका बधावना अर दोषनिकूं टारि आत्माका उज्वल करना, ऐसें सारण वारण प्रतिचोदनां गुरुनितें कोऊ धन्यपुरुषनिकूं प्राप्त होय हैं ।। गाथा—

अम्हे वि खमावेमो जं अण्णाणापमादरागेहिं ।
पडिलोमिदा य आणा हिदोवदेसं करिंताणं ।।३८३।।

अर्थ—हे भगवन्! हमहू क्षमा ग्रहण करावे हैं—जो हितरूप उपदेश करते जो आप, तिनकी आज्ञा—"अज्ञान वा प्रमाद वा रागभाव, तिनकरि अपूठा होय"—लोप करी होय। भावार्थ—हे भगवन्! आप तो करुणावान् होय हमकूं

हितरूप उपदेश कीया, अर हम अज्ञानी प्रमादी रागी आपका उपदेशकूं नहीं ग्रहण कीया, सो यह हमारा बडा दोष ताहि हमहू आपतैं क्षमा ग्रहण करावे हैं। हमारा उद्धार आपकी करुणादृष्टिहीतैं होय, और शरणां नहींही है। गाथा—

सहिदय सकण्णयाओ कदा सचक्खू य लद्धसिद्धिपहा।

तुज्झ वियोगेण पुणो णट्ठदिसाओ भविस्सामो ॥३८४॥

अर्थ—हे भगवन्! आपके चरणारविंदके प्रसादतैं हमकूं मनसहित कीये, कर्णसहित कीये, नेत्रसहित कीये, अर पाया है निर्वाणका मार्ग जिननें ऐसे कीये। अब आपके वियोगतैं नष्ट भई है दिशा जिनकै ऐसे होवेंगे। भावार्थ-हे भगवन्! हम असैनीकीनांई हित अहित, मार्ग अमार्ग, धर्म अधर्मकूं नहीं जानते थे, सो आपके चरणारविंदके आश्रयकरि हम हमारा हित अहित, मार्ग अमार्ग, धर्म अधर्म जान्या, तातैं आप हमकूं हृदयसहित कीये। बहुरि हम अनादिके बधिरकीनांई हित अहित नहीं सुन्या था, सो आपके प्रसादतैं हित अहित श्रवण करिकैं हित अहित जान्या, तातैं आप हमकूं कर्णसहित कीये। बहुरि हे भगवन्! हम अनादिके स्वपरका स्वरूप नहीं देखनेतैं अंधसमान थे, सो आपके चरणारविंदके प्रसादतैं सर्वपदार्थनिका स्वरूप देख्या, तातैं आप हमकूं ज्ञाननेत्रसहित कीये। अर हे भगवन्! जैसैं कोऊ मार्ग भूलि विषमवनीमें नष्ट होय परिभ्रमण करै तैसैं हमहू हमारा हित जो निर्वाण, ताका मार्ग भूलि अनंतानंतकालतैं भ्रष्ट होय परिभ्रमण करते थे। तिनकूं आप निर्वाणका मार्गमें ऐसैं लगाय दिया— जातैं खेदरहित निर्वाणपुरकूं जाय पहुचेंगे। ऐसा सर्वोत्कृष्ट उपकार आप हमारा किया, अब आपका वियोगका दिन आय पहुंचा! सो आपके वियोगकरि हमारे दसूं दिशा शून्य भई—अंधकार भया। ॥ गाथा—

सव्वजयजीवहिदए थेरे सव्वजगजीवणाथम्मि।

पवसन्ते य मरन्ते देसा किर सुण्णया होंति ॥३८५॥

अर्थ—संपूर्ण जगतके जीवनिके हितरूप, अर संपूर्ण तप ज्ञान संयम चारित्रकी आधिक्यतातैं वृद्धरूप, अर सर्व जगतके जीवनिके नाथ ऐसे आचार्य मृत्युकूं प्रवेश करते संते देश निश्चयथकी शून्यही होत हैं ॥ गाथा—

सव्वजयजीवहिदए थेरे सव्वजगजीवणाथम्मि।

पवसंते व मरंते होदि हु देसोंधयारोव्व ॥३८६॥

अर्थ—हे भगवन् ! सर्व जगतके जीवनिके हितू ! अर ज्ञानादिकनिकरि वृद्ध, अर सर्वजगतके जीवनिके नाथ आचार्य मरणकूं प्रवेश करते संते सर्वदेश अंधकाररूप होय है। भावार्थ—हे भगवन् ! आपसदृश ज्ञानके सूर्य अस्तताकूं प्राप्त भये, तब देश अंधकाररूपही भासे है ।। गाथा—

सीलड्ढगुणड्ढेहिं दु बहुस्सुदेहिं अवरोवतावीहिं ।

पवसंते य मरन्ते देसा ओखंडिया होंति ।।३८७।।

अर्थ—शीलकरि सहित तथा ज्ञानादिकगुणनिकरि सहित तथा बहुश्रुतज्ञानकरि सहित अर परजीवनिके ताप नहीं करनेवाले ऐसे आचार्य मरणकूं प्रवेश किया तदि देश खंडित भये। गाथा—

सव्वस्स दायगाणं समसुहदुक्खाण णिप्पकंपाणं ।

दुक्खं खु विसहिदुं जे चिरप्पवासो वरगुरूणं ।।३८८।।

अर्थ—संपूर्ण दर्शनज्ञानचारित्रतपके दातार, अर समान है सुखदुःख जिनके, अर उपसर्गपरीषहनिकरि अकंप निश्चल ऐसे श्रेष्ठ गुरुनिका चिरकाल वियोग सहना बडाही दुःख है ! ।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानसंन्यासमरणके चालीस अधिकारनिमें अनुशिष्टि नामा चोदमां अधिकार एकसो पांच गाथासूत्रनिकरि पूर्ण किया। आगे परगणचर्या नामा पंद्रमां अधिकार सतरह गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

एवं आउच्छित्ता सगणं अब्भुज्जदं पविहरन्तो ।

आराधणाणिमित्तं परगणगमणे मइं कुणदि ।।३८९।।

अर्थ—ऐसे आपके संघकूं पूछिकरिके अर रत्नत्रयमें उद्यमी जो आचार्य सो आपके आराधनामरण करनेके निमित्त अन्यसंघमें गमन करनेमें बुद्धीकूं करे। अब कोऊ या शंका करे—जो, अपना संघकूं छोडि परसंघमें कौन प्रयोजनके अर्थि प्रवेश करे है ? ऐसी शंका होते, अब आपके संघमें रहें येते दोष आवे हैं तिनिकूं कहे हैं।

सगणे आणाकोवो फरुसं कलहपरिदावणादी य ।

णिब्भयसिणेहकालुणिणझाणविग्घो य असमाधी ।।३९०।।

उड्डाहकरा थेरा कालहिया खुड्डया खरा सेहा ।
आणाकोवं गणिणो करेज्ज तो होज्ज असमाही ॥३६१॥

अर्थ——आपके संघमें रहे तौ आज्ञाकोप कठोरवचन कलह परितापन निर्भयता स्नेह कारुण्य ध्यानविघ्न असमाधि एते दोष होय । तथा स्थविरमुनि अयश करनेवाला होवैं, क्षुद्रमुनि कलह करनेवाले होवे, मार्गके नहीं जाननेवाले कठोर हो जाय । आचार्यकी आज्ञा लोप करे, आज्ञालोपतै असमाधि होय परिणाम बिगडि जाय । भावार्थ——आपके संघमें रहे तदि जो आप अशक्त होय कोऊकूं आज्ञा करे अर आज्ञा नहीं मानै तो परिणाममें कोप हो जाय । तथा जे चूकिर चालै, तिनमें अपना जानि कठोर वचन प्रवर्तिजाय । तथा आप कोऊकूं हितमें प्रेरणा करे, अर नहीं गिणैं, तौ कलह परिणाममें उपजिआवै । तथा कोऊ संघमें दोषसहित प्रवर्तै, तो आपको जाणि आपके संताप उपजि आवे । तथा रोगसूं आपका परिणाम बिगडि जाय, तो अयोग्य आचरणमेंभी निर्भय होजाय । तथा मरणका अवसरमें आपके स्नेह उपजि आवे, तथा कोऊकूं दुःखी देखे तो करुणा उपजि आवे । ध्यानमें विघ्नभी होय हो । तथा आप शिथिल होय संघकूं शिक्षा नहीं करे तौ वृद्धमुनि अयश करे । अर जो असमर्थ होय शिक्षा करे तो क्षुद्र अज्ञानी कलह करनेवाले होजाय । बहुरि अज्ञानी आज्ञाका लोप करे, तदि कोप होजाय, कोपतैं सावधानी बिगडिजाय । यातैं स्वगणमें रहनेतैं येते दोष जानि मरण नजीक आवै तदि परसंघमें प्रवेश करना श्रेष्ठ है । गाथा——

परगणवासी य पुणो अव्वावारो गणी हवदि तेसु ।
णत्थि य असमाहाणं आणाकोवम्मि वि कदम्मि ॥३६२॥

अर्थ——बहुरि जो आचार्य परसंघमें वास करे, सो शिक्षादिक व्यापारकरि रहित होय है । अर कोऊ आज्ञा नहींभी मानै, तोहू आपके परिणाममें असमाधान नहीं होय है । भावार्थ——जो आचार्य आपका संघहू छोडि परसंघमें जाय, सो कोऊकूं आज्ञा नहीं करे । अर जो कोऊकूं किंचित् कार्य कहै अर करदेवे तो बडा उपकार मानै । अर आपका वचन कठोर निकलेही नहीं । जो हमारा धर्म जानि उपकार वैयावृत्य बनै जितना करे हैं वे धन्य हैं । अर हम परसंघमें कोऊकूं संताप उपजावने आये नहीं, हमारा कल्याण करने आये हैं । ऐसा विचारि परगणमें जायगा ताके कषाय मंदपणा, चारित्रका दृढपणा, ममत्वका अभाव, अर परका किंचित् उपकारहूकूं बहोत बडा

मानना इत्यादिक गुण प्रकट होय हैं। ऐसे आज्ञाकोपदोष कह्या। अब द्वितीय दोष जो कठोरवचन बोलना, ताहि कहे हैं। गाथा--

खुड्डे थेरे सेहे असंवुडे दट्ठु कुणइ वा परुसं।
ममकारेण भणेज्जो भणिज्ज वा तेहिं परुसेण ॥३६३॥

अर्थ--गुणनिकरि हीन ऐसे क्षुद्र जे हैं तिनही, तथा तपकरि वृद्ध ऐसे स्थविर जे हैं तिनही, तथा अमार्गज्ञ जे रत्नत्रयके नहीं जाननेवाले तिनही असंयमरूप प्रवर्तते देखि ममकार जो ममता "ये हमारे शिष्य हैं संघके हैं" ऐसे अयोग्य कैसे प्रवर्तत हैं? या विचारि कठोर वचन आपका निकलै, करडा वचन तिरस्कारके वचन कहिवेमें प्रवृत्ति होजाय। अथवा संघ अज्ञानी क्षुद्रादिक आपकूं निंद्यवचन कह ले अर आप कठोर बोले तो समाधि बिगडि जाय, अर पैला आपकूं निंदा करै अर आपका परिणाम बिगडै तौ समाधिमरण बिगडि जाय। तातैं आपके संघनैं छोडि परसंघ में गमन करना ही श्रेष्ठ है ॥ गाथा-

पडिचोदणासहणदाए होज्ज गणिणो दि तेहिं सह कलहो।
परिदावणादिदोसा य होज्ज गणिणो व तेसिं वा ॥३६४॥

अर्थ---प्रतिचोदना जो गुरूनिकी शिक्षा, ताका नहीं सहनेकरि आचार्यका क्षुद्रादिकनिकरि सहित कलह होय, तदि आचार्यके परिणाममें संतापादिदोष होय हैं। वा क्षुद्र जे अज्ञानी तिनकैहू संतापादिक परिणाम में होय हैं ॥ गाथा-

कलहपरिदावणादी दोसे व असमाउले करंतेसु।
गणिणो हवेज्ज सगणे ममत्तिदोसेण असमाधी ॥३६५॥

अर्थ---कदाचित् संघमें कोऊ मुनिका किंचित् कलह परितापनादिक परस्पर होजाय तो आचार्यकै आपका संघमें ममत्वका दोषकरिकै ध्यान बिगडि असमाधान होय है। भावार्थ---यद्यपि मुनीनिका मार्गहि ऐसा, जो, संघमें ईर्षा विसंवाद कलहादिक कदाचितहू नहीं होय हैं, तथापि जीवनकै कर्म बलवान् है ! कोई अज्ञानीनिकै विसंवाद उपजि आवै, तदि जो आचार्य समर्थ होय तो तत्काल मेटि प्रायश्चित्तादिक देय शुद्ध करै। अर रोगादिककरि वा संन्यासका अवसरमें

आचार्य असमर्थ होजाय अर कोऊकै विसंवाद होजाय तो ताकूं श्रवणकरि वा देखिकरि अपने जानि ममत्वका दोषकरि परिणाममें कलुषता होजाय तो समाधिमरण बिगडि जाय । तातैं परसंघमें जाय अर अन्यसंघके आचार्यके निकटि जाय साधुपणा अंगीकार करि अर आराधनासहित देहत्याग करना श्रेष्ठ है । अब परितापनादि दोषकूं कहे हैं ।। गाथा—

रोगादंकादीहिं य सगणे परिदावणादिपत्तेसु ।

गणिणो हवेज्ज दुक्खं असमाधी वा सिणेहो वा ।।३६६।।

अर्थ——आपका शिष्य रोग जो अल्पव्याधि, आतंक जो महाव्याधि इनिकरि परितापनं प्राप्त होजाय तो आचार्यकै दुःख होजाय वा असमाधि होजाय वा स्नेह होजाय । भावार्थ——आचार्य आपके संघमें रहे अर संघमें मुनीश्वरनिकै रोगादिक पीडा उपजि आवै अर कदाचित् ममत्वसूं आपकै संघकी तरफकी दुःख होय वा स्नेह होजाय, तदि समाधिमरण बिगडि जाय, तो फेरि संसारमें डूबि जाय । तातैं अंतकालमें अपना संघ छोड़ि अन्यसंघप्रति विहार करना उचित है, गाथा—

तण्हादिएसु सहणिज्जेसु वि सगणम्मि णिब्भओ संतो ।

जाएज्ज व सेएज्ज य अकप्पिदं किं पि वीसत्थो ।।३६७।।

अर्थ——अर कदाचित् सहनेयोग्यहू क्षुधातृषादिक परीषह होता संता आपका संघमें विश्वासरूप हूवो, भयलज्जा-रहित हूवो अयोग्यवस्तु याचना करै वा अयोग्य सेवन करै तो परलोक बिगडिही जाय ! भावार्थ—परसंघमें जाय रहे तदि महान् घोर परीषह आवतांभी लज्जाकरिकै भयकरिकै अयोग्यवस्तुका नामभी बोलै नहीं, याचनाका अर सेवनेका तो लेशही नहीं उपजै । अर परिणाम भी अति गाढ पकडै, अर भय भी लज्जाभी बहोत रहै, जो मैं मेरा गुरुकुल अर धर्म दोऊकूं निंद्य कैसैं कराऊं ? अर अयोग्यका सेवनेवाला जो समझैंगे, तो मोकूं अधर्मी पापी मायाचारी जाणि सब निरादर करदेंगे । अर अपना संघमें लज्जाभय रहे नही, तातैं परसंघमें विहार करना उचित है ।। गाथा—

उड्ढे सअंकवड्ढिय बाले अज्जाउ तह अणाहाओ ।

पासंतस्स सिणेहो हवेज्ज अच्चंतियविओगे ।।३६८।।

अर्थ——वृद्धमुनीश्वरनिनै तथा धर्मानुरागरूप जो आपकी गोदी तामैं धर्मरूप करि बधाये ऐसे बालमुनि तथा और हू संघके सेवनेवाले धर्मानुराग में लीन ऐसी आर्यिका वा श्रावक जे आपके आधीनही धर्मसेवन करते व्रत पालते तिनकूं

देखता जो आचार्य ताके मरणके अवसरमें अत्यंत वियोग होनेतें स्नेह उपजि आवै तो समाधि बिगडि जाय। तातेंहू परगणचर्या श्रेष्ठ है। अब कारुण्यदोष कहे हैं। गाथा—

खुड्डा य खुड्डियाओ अज्जाओ वि य करेज्ज कोलुणियं।
तो होज्ज ज्झाणविग्घो असमाधी वा गणधरस्स ॥३९९॥

अर्थ—और संघमें सर्वही धर्मानुरागी आवे हैं, सेवन करे हैं, उपासना करे हैं। तिनमें कोऊ क्षुद्र बालक वा क्षुल्लक श्रावक वा श्राविका वा आर्यिका गुरुनिका अत्यंत वियोग देखि रुदन करै तो आचार्यके शुभध्यानमें विघ्न होय असमाधि कहिये सावधानी बिगडि जाय तो बडा अनर्थ होय। तातैं परसंघमें गमन करना उचित ही है।

भत्ते वा पाणे वा सुस्सूसाए व सिस्सवग्गम्मि।
कुव्वंतम्मि पमादं असमाधी होज्ज गणवदिणो ॥४००॥

अर्थ—अथवा भोजनमें वा पानमें शिष्य जे साधु वा श्रावक शुश्रूषा करिवेमें जो प्रमाद करै तो आचार्यका परिणाम बिगडि जाय—जो, मैं एताकालतांई इनका बडा उपकार कीया अर अब हमारा अंतकाल, तामैं जो किंचित् टहल वैयावृत्य, तिनमैं प्रमादी होगये, हमारा उपकार विस्मरण होगये! ऐसा परिणाम कदाचित् होजाय तो समाधिमरण बिगडि जाय। अर परके संघमें थोडाहू उपकार करै, ताका बहोत अंगीकार करै। तातैं अपना संघ छोडि परसंघमें विहार करना योग्य है॥ गाथा—

एदे दोसा गणिणो विसेसदो होंति सगणवासिस्स।
भिक्खुस्स वि तारिसयस्स होंति पाएण ते दोसा ॥४०१॥

अर्थ—एते जे आज्ञाकोपादिक दोष कहे ते अपने संघमें रहनेवाले आचार्यनिकै आवे हैं। तथा आचार्यसारिसे अन्यहू प्रधानमुनि जे उपाध्याय प्रवर्तक तिनकै बाहुल्यपणाकरिकै आवे हैं। तातैं प्रधान जे मुनि आचार्य उपाध्याय प्रवर्तकादिक तिनकूं अपना संघ छोडि परसंघमें विहार करना श्रेष्ठ है॥ गाथा—

एदे सव्वे दोसा ण होंति परगणणिवासिणो गणिणो ।
तम्हा सगणं पयहिय वच्चदि सो परगणं समाधीए ॥४०२॥

अर्थ—परसंघ में बसनेवाले जे आचार्य ताकै ये पूर्वोक्त दोष नहीं प्राप्त होय हैं। तातै समाधिमरणके अर्थि आपका संघकूं त्यागकरिके अर परसंघमें गमन करै ॥ गाथा–

संते सगणे अह्मं रोचेदूणागदो गणमिमोत्ति ।
सव्वादरसत्तीए भत्तीए वड्ढइ गणो से ॥४०३॥

अर्थ—अन्यसंघमें संन्यास करनेकूं जाय तब सर्वसंघका मुनि विचार करै, जो—ये आपका संघको विद्यमान होता भी आपके संघकूं त्यागि अन्य संघमें रुचि करि आये हैं, ऐसैं विचारि सर्व आदरकरिकै, शक्तिकरिकै, भक्तिकरकै, सर्वसंघ ताके वैयावृत्यमें प्रवर्ते है ॥ गाथा–

गीदत्थो चरणत्थो पच्छेदूणागदस्स खवयस्स ।
सव्वादरेण जुत्तो णिज्जवगो होदि आयरिओ ॥४०४॥

अर्थ—गृहीतार्थ कहिये सम्यग्ज्ञानी अर चारित्रमें तिष्ठता ऐसा आचार्यहू आया जो परसंघका मुनि ताकूं प्रार्थना करिके बड़ा आदरकरि युक्त संन्यास करायवेकूं निर्यापक होय हैं। भावार्थ–संन्यासवास्तै अन्यसंघमें जाय सो अन्यसंघका आचार्य इनिकूं बड़ी प्रार्थनातै ग्रहण करि बहोत आदरसहित आगन्तुक मुनिका सम्यक् आराधना करायवेकूं निर्यापक होय है–संसारतैं पार करनेवाला होय है। कैसा है अन्य संघका आचार्य ? गृहीतार्थ कहिये स्याद्वादरूप जिनेंद्रका आगमकरि स्वतत्त्व अर परतत्त्व तिनकूं आछीरीति जानि लीया है। अज्ञानीकै गुरुपणा बणै नहीं। बहुरि चारित्रमें आछीतरह तिष्ठतो होय। जो आपही भ्रष्टाचारी होय ताकै निर्यापक आचार्यपणो बणै नहीं। गाथा–

संविग्गवज्जभीरुस्स पादमूलम्मि तस्स विहरंतो ।
जिणवयणसव्वसारस्स होदि आराधओ तादो ॥४०५॥

अर्थ--संसारपरिभ्रमणतैं भयकरि युक्त होय, अर पापतैं अत्यंत भयवान् होय, ऐसे गुरुके चरणके निकटि जाय अर जिनेंद्रके वचनरूप सर्वसारको आराधक होय है। भावार्थ--जाकै संसारका तथा पापका भय होय तिसही गुरुके निकट आराधनामरण होय है। अर जाकै पापका भय नहीं, संसारमें पतनका भय नहीं, ऐसा पापी गुरुके निकट काहेका आराधनामरण ? वाके संगतैं तो आराधना बिगडै ही।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारविषैं सतरह गाथानिकरि परगणचर्या नामा पंद्रमां अधिकार समाप्त कीया। अब आगैं निर्दोष निर्यापकाचार्यका हेरनेका वर्णनरूप मार्गणा नामा अधिकार सतरह गाथानि करि कहे हैं।। गाथा--

पंचच्छसत्तजोयणसदाणि तत्तोऽहियाणि वा गन्तुं।
णिज्जावगमण्णेसदि समाधिकामो अणुण्णादं ।।४०६।।

अर्थ—समाधिमरणकी इच्छा करनेवाला जो साधु सो शास्त्रकरि कह्या हुवा जो निर्यापकगुरु तिनिकूं प्राप्त होनेकूं पांचसै, छसै, सातसै, वा इनितैंहू अधिक योजनपर्यंत हेरै--तलास करै। भावार्थ----कोऊ या आशंका करै—जो, कोऊ अवसरमें ऐसे गुरु वा संघ दूसरा नहीं मिलै तो कहा करै ? तातैं कह्या है, जो, समाधिमरण करनेका वांछक होइ सो दूरिक्षेत्रहूमैं तलास करि संसारतैं पार करनेवाले गुरुनिका शरणही ग्रहण करै। सोही कालका नियम कहे हैं गाथा--

एक्कं व दो व तिण्णि य बारसवरिसाणि वा अपरिदंतो।
जिणवयणमणुण्णादं गवेसदि समाधिकामो दु ।।४०७।।

अर्थ—समाधिमरण करनेका इच्छुक जो साधु सो भगवानका आगममें कहे जे निर्यापकके गुण आचारवानादिक आगै इस ग्रन्थमें वर्णन करेंगे तिन गुणनिके धारक गुरुकूं एक वर्ष वा दोय वर्ष वा तीन वर्ष वा द्वादश वर्षपर्यंत खेद-रहित हुवा सातसैं योजनतांई ढूंढै, हेरै, अवलोकन करै। भावार्थ--बड़ी आयु अर बड़ी बुद्धिके धारक जे मुनि आयुमैं बारहवर्ष बाकी रहे जानिले तदिहीतैं निर्यापक गुरुका तलासमें रहै, विहार करै, अर घाटि आयु होय तो जैसैं अवसर देखै तैसै आपके संघकूं त्यागि परसंघमें जाय गुरुनिका शरण ग्रहण करै। आगे निर्यापक गुरुनिके अवलोकनके अर्थि आपका संघका स्वामीपणा त्यागि विहार करै, ताका अनुक्रम कहे हैं।। गाथा--

गच्छेज्ज एगरादियपडिमा अज्झेणपुच्छणाकुसलो ।
थंडिल्लो संभोगिय अप्पडिबद्धो य सव्वत्थ ॥४०८॥

अर्थ—एकरात्रि प्रतिमायोग धारण करि गमन करे—मूलसूत्रमें तो ऐसा अर्थ दीखे है, अर टीकाकार और अर्थ लिख्या है । अब इस गाथाका अर्थ टीकाकारकृत लिखिये है-एकरात्रि भिक्षु प्रतिमा कहा, तीन उपवास करिके अर चौथी रात्रिविषै ग्रामनगरादिकके वहिर्देशविषै वा स्मशानभूमिविषै पूर्वसन्मुख वा उत्तरदिशाके सन्मुख अथवा जिनप्रतिमा जिनमन्दिरके सन्मुख होयकरिके, अर दोऊ चरणनिके च्यार अंगुलप्रमाण अन्तर समपाद खडा होयकरिके, अर नासिका का अग्रभागविषै दृष्टि स्थापन करिके, कायतैं ममता छोडिकरिके तिष्ठै । कैसा हुवा तिष्ठे ? सावधान है चित्त जामें, च्यार प्रकारके उपसर्ग सहनेवाले, कदाचित् चलायमान नहीं होवे, अर पतन नहीं करै, ऐसे कायोत्सर्गकरि युक्त जितने सूर्योदय नहीं होय तितने तिष्ठे । पश्चात् स्वाध्याय करि बहुरि दोय कोश गमन करि बहुरि गोचरी जो भोजन ताके अर्थि वसती में जाय वा दूरि मार्ग होय तो प्रहर वा च्यार घडी तिष्ठिकरि मंगलाचरण करि भोजनकूं जाय । ऐसे स्वाध्यायकुशलता कही । संयमी तथा आर्जिका तथा श्रावक इत्यादिकाने देखि भोजनकूं जाय, अर भोजन करि कायशोधन जो मलादिकनि का दूरीकरण ताके अर्थि स्थण्डिल जो चौडा शुद्ध मकान देखि वसै । आगे प्रातःकाल गमन करि मार्गके ग्राम नगर तथा यति तथा गृहस्थनिका सत्कार तिनमें कोठेहू नहीं बन्धनने प्राप्त हुवा निर्यापकगुरुके अवलोकनके अर्थि विहार करे । गाथा—

आलोयणापरिणदो सम्मं संपच्छिदो गुरुसयासं ।
जदि अंतरा हु अमुहो हवेज्ज आराहओ होज्ज ॥४०९॥

अर्थ—हमारे मनवचनकायकरिके जो रत्नत्रयमें दोष अतीचार लागे हैं ते सर्व गुरुनिकूं जणाऊंगा, वीनती करूंगा, ऐसा किया है संकल्प जानै सो आलोचनापरिणत कहिये । सो आलोचनापरिणत साधु गुरुनिकूं आलोचना करनेकूं प्रयाण करै । अर जो मार्गहीमें आपकी जिह्वाबन्ध हो जाय, थकि जाय तोहू आराधक हो गया । भावार्थ—जो आराधनामरणवास्ते परसंघके गुरुनिके अर्थि विहार करता जो साधु ताके रोगादिककरि मार्गमें जिह्वाबन्ध होजाय तो इनिका परिणामनितैं तो आलोचना करि लीनी । सो जिह्वाबन्ध होता भी सो साधु आराधनाका धारकही जानना । गाथा—

आलोचणापरिणदो सम्मं संपच्छिदो गुरुसयासं ।
जदि अंतरम्मि कालं करेज्ज आराहओ होइ ॥४१०॥

अर्थ—आपका अपराध कहनेमें स्थापित किया है चित्त जानें । ऐसा साधु सो गुरुनिके निकट जावनेकूं प्रयाण किया, अर जो गुरुके निकट पहुंचे नहीं, अर मार्गहीमें मरण करै, तोहू साधु आराधकही होय है । गाथा—

आलोचणापरिणदो सम्मं संपच्छिदो गुरुसयासं ।
जदि आयरिओ अमुहो हवेज्ज आराहओ होइ ॥४११॥

अर्थ—सम्यक् आलोचनारूप परिणया, अर गुरुनिके निकट जावनेकूं प्रयाण किया, अर गुरु जो आचार्य ताकी जिह्वाबन्ध हो जाय तोहू क्षपक जो आराधनाके अर्थि आलोचना करनेकूं उद्यमी ऐसा साधु ताकै आराधना होय है । गाथा

आलोचणापरिणदो सम्मं संपच्छिदो गुरुसयासं ।
जदि आयरिओ कालं करेज्ज आराहओ होइ ॥४१२॥

अर्थ—सम्यक् आलोचनारूप परिणया, अर गुरुनिके निकट प्रयाण किया, अर जो आचार्य काल करि जाय-मरणकूं प्राप्त होय, तोहू साधु आराधक होय है । कोऊ कहै—जो आलोचनाहू नहीं करी, अर गुरुनिका दिया प्रायश्चित्तहू ग्रहण नहीं किया, अब याके आराधनाका ग्रहण कैसें होय ? सो कहे हैं । गाथा—

सल्लं उद्धरिदुमणो संवेगुव्वेगतिव्वसाढ्ढाओ ।
जं जादि सुद्धिहेदुं सो तेणाराहओ भवदि ॥४१३॥

अर्थ—जातें संवेग तथा निर्वेद तथा तीव्रश्रद्धानका धारक, अर शल्यकूं उद्धार करनेका है मन जाका, ऐसा यति, सो आपके व्रतनिके मध्य शल्य तथा परिणामनिकी शल्य ताहि दूरिकरि, अर अपने आत्माकी शुद्धताके अर्थि निर्यापक आचार्यनिके निकट जावनेकूं गमन करे है । अर जो मार्गमें अपनी जिह्वा बंध हो जाय, तथा मरण होजाय, अथवा जिन गुरुनिके निकट जाय तिन गुरुनिका मरण हो जाय, वा जिह्वा बन्ध हो जाय तोहू आपका परिणाम तो अपने भावनिकी शुद्धता करनेहीमें उद्यमी रह्या, तातें आराधक ही होय है । भावार्थ—जिस साधुके संसारपरिभ्रमणका भय, सो तो संवेग तथा शरीरकी

अशुचिताकूं, असारताकूं, दुःखदातृता ताकूं अवलोकन करिके तथा इन्द्रयविषयनिके सुखके अर्थि तृप्तिका कर्ता तथा तृष्णाका बधावनेकी निमित्त ताकूं देखिकरि उद्वेगपरिणामकरि रहित तथा रत्नत्रयकी आराधनामें तीव्र श्रद्धानसंयुक्त होयकरिके अर जो आपका भावनिकीशल्य दूरि करनेकूं गुरुनिके निकट जानेकूं प्रयाण किया, ताके तो तिसही कालतैं आराधनाही जाननी। अब निर्यापक गुरुनिका हेरनेके अर्थि जो गमन करे है, ताके कौन कौन गुण प्रकट होय हैं, सो दिखावे हैं। *गाथा—*

आयारजीदकप्पगुणदीवणा अत्तसोधिणिज्झंझा।

अज्जवमद्दवलाघवतुट्ठीपल्हादणं च गुणा ॥४१४॥

अर्थ—परसंघमें जावनेतें आचारांगको अंग ताका प्रकाशन होय है; जातैं आचारांगकी परसंघमें जानेकी आज्ञा है। तथा परसंघमें जावनेतें आत्माकी शुद्धता होय है। बहुरि जो संक्लेशसहित होय, सो दूरि संघमें जावनेकूं नहीं इच्छा करत है। तातें संक्लेशका अभाव होना गुण प्रकट होय है। बहुरि अपने दोष प्रकट करनेकूं परसंघमें जाय है, तातें मायाचारके अभावतें आर्जवगुण प्रकट होय है। बहुरि अभिमान जाका नष्ट होजायगा ताहीके परसंघमें जाय विनय पूर्वक आलोचना करि प्रायश्चित्त ग्रहण करना होय है, तातें मानकषायके अभावतें मार्दवगुण प्रकट होय है। बहुरि शरीरमें त्यागबुद्धिकरिकेही लाघवगुण प्रकट होय है, जातें जाकै शरीरमें तीव्र ममता होय ताकै हलकापणा कैसे होय? शरीरादिकनिमें ममता सोही बडा भार है, पराधीनता है। तातें त्यागबुद्धिकरिकेही लाघवगुण होय है। बहुरि जगतका उद्धारक निर्यापक गुरुका संयोग होजाय, तदि आपकूं कृतार्थ माने है। तातें तुष्टि जो आनन्द नामा गुण सो प्रकट होय है। बहुरि आपका अर परका दोऊनिका उपकारकरिके अर काल व्यतीत होय तातें प्रह्लादन जो हृदयका सुख सोहू प्रकट होय है। एते गुण परसंघमें गमनकरि प्रकट होय हैं। ऐसें गुरुनिका अवलोकनके अर्थि आवता जो साधु, ताकूं देखि अर संघका बसनेवाला मुनि कहा करै, सो कहे हैं।

आएसं एज्जंतं अब्भुट्ठिंति सहसा हु दठ्ठूणं।

आणासंगहवच्छल्लदाए चरणे य णादुं जे ॥४१५॥

अर्थ—आवता जो पाहुणा मुनि ताहि देखिकरिके अर संघमें बसनेवाले मुनि शीघ्रही उठि खडा होय है। काहेकूं खडा होय है? जिनेन्द्रकी आज्ञा पालनेकूं, अर रत्नत्रयके धारकका संग्रह करनेकूं, अर रत्नत्रयके धारकनिमें वात्सल्यता

करनेकूं आये जे पाहुणो मुनि, ताके चारित्र जाननेकूं अंगीकार करै। भावार्थ—पाहुणा मुनिकूं आवता देखकरिके अर संघके वसने वाले मुनि शीघ्र ही उठि खडा होय हैं, जातें रत्नत्रयके धारकनिका विनय करना या भगवानकी आज्ञा है, तथा रत्नत्रयमें संग्रहकी वांछा है तथा प्रीति है, तातें खडा होय, महाविनयवात्सल्यतासहित प्रवर्तन करै हो। अर ताके चारित्रकी परीक्षा करनेकूं संघमें ग्रहण करैहो। अब संघमें अंगीकार करि कहा करै ? सो कहे हैं। गाथा—

आगन्तुगवच्छव्वा पडिलेहाहि तु अण्णमण्णेहिं ।
अण्णोण्णचरणकरणं जाणणहेदुं परिक्खन्ति ॥४१६॥

अर्थ—नवीन आये मुनि अर संघमें वसनेवाले मुनि परस्पर भूम्यादिकनिके सोधनेकरि परस्पर जाननेकूं चरण जो समिति अर गुप्ति तिनिकी परीक्षा करै। अर करण जो षट् आवश्यक तिनिकी परीक्षा करै। कहाँ कहाँ परीक्षा करै ? सो कहे हैं।

आवासयठाणादिसु पडिलेहणवयणगहणणिक्खेवे ।
सज्झाए य विहारे भिक्खग्गहणे परिच्छन्ति ॥४१७॥

अर्थ—सामायिक, स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग इनि षट आवश्यकनिके मध्य स्थिति रहनेमें, तथा शरीर भूम्यादिकनिके नेत्रनिकरि तथा मयूरपिच्छिकाकरि सोधनेमें परीक्षा करै। तथा वचनके बोलनेमें, उपकरण जे शरीर पुस्तक पीछी कमंडलु इनके ग्रहण करनेमें वा स्थापनमें परस्पर चारित्रकी परीक्षा करै। तथा स्वाध्याय करनेमे, मार्गमें विहार करनेमें, तथा भोजन ग्रहण करनेमें, आगन्तुक मुनिकी अर संघमें बसनेवाले मुनिनिकी परस्पर परीक्षा करै।

भावार्थ—सामायिकादिक आवश्यक भावसहित करे हैं अथवा भावविशुद्धिताविना द्रव्यांही करे हैं। अथवा सामायिकमें सिरोनति तथा आवर्त सूत्रकी आज्ञाप्रमाण करे है अक प्रमादी हुवा करे है ? सो परस्पर परीक्षा करै। बहुरि सर्व पापरूप प्रवृत्तिका त्यागमें, तथा पंचपरमेष्ठी का स्तवन वन्दनामें, आपके व्रतनिमें लागे अतीचार तिनकी निन्दामै तथा गुरुनिकी साक्षी गर्हामै, तथा देहसूं ममता छोडनेमें, इनिके भावनिमें उत्साह है वा नहीं है ? अथवा आवश्यकनिमै उद्यमी हैं अक प्रमादी है ? सो परीक्षा करे। बहुरि ये शीघ्रतासूं भूमि वा शरीर उपकरण इनिकूं सोधे हैं अक दयारूप होय करि सोधे हैं तथा पीछिकासूं सोधनेमें ये परस्परविरोधी जीवानं एकठा मिलापरूप करे हैं, तथा आहार ग्रहण करतेनिकूं

निराकरण करे हैं अथवा आपके निवासमें तिष्ठतेनिकूं चलायमान करे हैं अथवा आपके अंडे ग्रहण करिके गमन करतेनिकूं झाडे हैं, फटकारे हैं, भुवारे हैं, दूरि करे हैं अरु दयावान् होय, इनिकूं पीडा नहीं उपजावता यत्नाचाररूप होय आपकूं टालिकरि प्रवर्ते हैं ? ऐसें प्रतिलेखनमें परीक्षा करे है ।

बहुरि ये साधु परजीवनिकी निंदा, आपकी प्रशंसामै लीन ऐसा वचन बोले हैं, अरु परनिंदाका, अपने प्रशंसाका नहीं बोले हैं ? अथवा आरम्भपरिग्रहमें प्रवर्तावनेवाले वचन बोले हैं, तथा असंयमीके बोलनेके बोले हैं, तथा मिथ्यात्वका करनेवाला वचन बोले हैं, तथा कठोर वचन अभिमानके वचन बोले हैं, अरु ऐसे वचन नहीं बोले हैं ? सूत्रकी आज्ञाप्रमाण बोले हैं, विनयसहित प्रामाणिक बोले हैं ? सो ऐसे वचनके बोलनेमें परस्पर परीक्षा करे । बहुरि शरीरादिक मेलनेमे तथा उठावनेमे यत्नाचारसहित ग्रहणनिक्षेप करे हैं, अरु प्रमादी हुवा करे हैं ? सो परीक्षा करे । बहुरि स्वाध्याय कालशुद्धता सहित तथा विनयसहित तथा अक्षरमात्रा हीनाधिकरहित करे हैं, अरु सदोष करे हैं ? सो परीक्षा करै । बहुरि मलमूत्रादिकनिका क्षेपण दूरि भूमिमें तथा जन्तुरहित, छिद्ररहित, सम तथा विरोधरहित भूमिमें, तथा मार्गमें गमन करते लोकनिकी दृष्टिके अगोचर ऐसी शुद्धभूमिमें शरीरका मल क्षेपे हैं, अरु अयोग्यस्थानहूमें क्षेपे हैं ? ऐसे परस्पर परीक्षा करे ।

बहुरि विहार करनेमें च्यार हाथ प्रमाण भूमिका सोधना, तथा जलकर्दमहरित अंकुरसहित भूमिमें गमनका टालना तथा मलमूत्र जीव जन्तु कंटकादिकनिकूं दूरिहीतें त्यागना, तथा स्त्री और तिर्यंच, असयमी इत्यादिकनिके स्पर्शनकूं टालि करि गमन करना, तथा नगर, ग्राम, वन, महल, मकान, वृक्ष इत्यादिकनिकी शोभाकूं रागकरि नहीं देखना । इत्यादिक निर्दोष गमन करे हैं अरु दोषसहित गमन करे हैं ? ऐसे परस्पर परीक्षा करे । बहुरि आहारके अर्थि परिभ्रमण तथा दोषरहित भक्षण ऐसे भोजनमेंहू परस्पर परीक्षा करे हैं । जातें आगन्तुक जो साधु सो गुरुनिकूं प्राप्त होय विनयसहित वीनती करे है, हे भगवन् ! संघमें रहनेकी आज्ञा के देनेकरि मैं अनुग्रह करनेयोग्य हूं ऐसें वीनती करै । तद्वि समाचार का ज्ञाता आचार्यहू संघमें रहनेकी आज्ञा देवै । सोही कहे हैं । गाथा—

आएसस्स तिरत्तं णियमा संघाडओ दु दादव्वो ।
सेज्जा संथारो वि य जइ वि असंभोइओ होइ ॥४१८॥

अर्थ—जो साधि आचरण करनेयोग्य नहींहू होय, तोहू आया जो पाहुणा मुनि ताकूं तीन रात्रिपर्यन्त संघमें रहने की आज्ञा देना योग्य है, तथा वसतिका संस्तर देना योग्य है। परीक्षा विना भी बाह्य शुद्धमुद्रा देखि योग्य आचरणके धारक होय तिनकूं संघवान देनाही उचित है। आगे तीन दिन पाछें गुरु कहा करें ? सो कहे हैं।

तेण परं अवियाणिय ण होदि संघाडओ दु दादव्वो।
सेज्जा संथारो वि य गणिणा अविजुत्तजोगिस्स ॥४१९॥

अर्थ—अर जो शुद्ध आचरणका धारकहू होय अर परीक्षा तीन दिनमें नहीं भई होय, तो तीन दिन उपरांति शुद्ध आचरण जानेविना आचार्य जो है तानें आगन्तुक नवीन मुनिकूं संघमें रहनेकूं नहीं आज्ञा देवे। अर वसतिका वा नजीक संस्तरहू नहीं देवे। भावार्थ—शुद्ध आचारका धारकहू होय अर तीन दिनमें परीक्षा नहीं होय, तो तीन दिनपाछें संघबाह्य होनेकी आज्ञा देवे। अर आगन्तुक साधुहू गुरुनिकी आज्ञा मस्तक चढाय संघबाहिर हो जाय। फेरि परीक्षा करि शुद्ध जाणि संघमें ग्रहण करें। अर जो परीक्षा किये विना नवीन आगन्तुकमुनिकी संगति रहे तो कहा दोष आवे ? सो कहे हैं। गाथा—

उग्गमउप्पादणएसणासु सोधी ण विज्जदे तस्स।
अणगारमणालोइय दोस संभुज्जमाणस्स ॥४२०॥

अर्थ—जा साधुका गुणदोष नहीं अवलोकन किया ताके सामिल आचरण करता जो आचार्य सो आपहू दोषसहित होय है। अथवा जो मुनि अपने दोषनिकी आलोचना नहीं करी अथवा शुद्ध नहीं हुवा ऐसा साधुकूं संग्रह करै, ताके उद्गम, उत्पादन, एषणादिकनिमें शुद्धता नहीं होत है। भावार्थ—जो साधु अपने अपराध दूरिकार शुद्ध नहीं हुवा ताकरि सहित भोजन करत है, तिनकेहू उद्गमादिदोषनिमें शुद्धता नहीं होय है।

विणएणुवक्कमित्ता उवसंपज्जदि दिवा व रादो वा।
दोवेदि कारणं पि य विणएण उवट्ठिए मन्ते ॥४२१॥

अर्थ—विनयथकी संघकूं प्राप्त होयकरिके अर जो दोष लाग्या होय तिनकूं रात्रिमें वा दिनमें या दोषनिका कारण परिणाममें उद्दीपन करि प्रकट करि विनयसहित संघमें तिष्ठे।

उव्वादो तं दिवसं विस्सामित्ता गरिगमुवठ्ठादि ।
उद्धरिदुमणोसल्लं विदिए तदिए व दिवसम्मि ॥४२२॥

अर्थ—आगन्तुक जो साधु सो मार्गादिककरि खेदित हुवा संता तिस दिनमें तो संघमेंही विश्राम करे, अर दूसरे दिन अथवा तीसरे दिन आपकी शल्य उद्धार करनेका है मन जाका ऐसा, शल्य उखालनेकूं आचार्यकूं प्राप्त होय है। भावार्थ—पहले दिन संघमें तिष्ठिकरि दूसरे दिन अथवा तीसरे दिन शल्य उद्धार करनेकूं गुरुनिके चरणनिके निकट आय।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषें गुरुनिका सम्यक् अवलोकन करना है जामैं ऐसा मार्गरण नामा सोलमा अधिकार सतरह गाथानिकरि पूर्ण किया। अब आगे सुस्थित नामा सतरहवा अधिकार निवैं गाथानिमें वर्णन करे हैं। तामैं आचार्य कैसाक उपासना करनेयोग्य है, सो कहे हैं। गाथा—

आयारवं च आधारवं च ववहारवं पकुव्वीय ।
आयावायविदंसी तहेव उप्पीलगो चेव ॥४२३॥
अपरिस्साई गिव्वावओ य णिज्जावओ पहिदकित्ती ।
णिज्जवरागुणोवेदो एरिसओ होदि आयरिओ ॥४२४॥

अर्थ—आचारवान्, आधारवान्, व्यवहारवान्, प्रकर्त्ता, आयापायविदर्शी, अवपोडक, अपरिस्रावी, निर्वापक ये जे अष्ट गुण तिनकरिके निर्यापकपरणाकी विख्यात है कीर्ति जाकी, अर निर्यापकके गुणनिका ज्ञाता ऐसो आचार्य होय, ताको शरण संन्यासका अवसरमें ग्रहरण करें। भावार्थ—निर्यापकगुरु जो सन्यासके अर्थि ग्रहण करिये, सो अष्टगुणनिका धारक करिये। इसका संक्षेप ऐसा—दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपआचार, वीर्याचार ये जे पंच आचार तिनका धारक आचार्य, सो आचारवान् कहिये। बहुरि अंगादिक श्रुतका धारक, सो आधारवान् कहिये, जातें श्रुतज्ञानका अवलंबनविना आपकूं अर शिष्यनिकूं रत्नत्रयमें धारण करनेकूं असमर्थ होय है। बहुरि प्रायश्चित्तसूत्रका पारगामी होय, सो व्यवहारवान् है। बहुरि सर्वसंघका वैयावृत्य करनेकूं समर्थ होय, सो प्रकर्त्ता है। बहुरि हानिवृद्धि दिखाय देनेमैं समर्थ, सो आयापायविदर्शी है। बहुरि जो आपका प्रभावकरि अर भय देय, अन्तरंगकी शल्य निकासनेमें समर्थ होय, सो अवपीडक है।

बहुरि शिष्यनिकी आलोचना मुनि कोऊकूं प्रकट नहीं करना, सो अपरिस्रावी है। बहुरि जैसे तैसे उपाय करिके शिष्यनिके मरणका अन्तपर्यन्त आराधनाकी पूर्णता करि संसारतें पार करना, सो निर्वापकगुणका धारक है। अब आचारवान् गुणका व्याख्यान ग्यारह गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

आयारं पंचविहं चरदि चरावेदि जो णिरदिचारं।

उवदिसदि य आयारं एसो आयारवं णाम ॥४२५॥

अर्थ—जीवादिक तत्त्वनिमें श्रद्धानपरिणति, सो दर्शनाचार है। आत्मतत्त्वादिकनिमें जाननेरूप प्रवृत्ति, सो ज्ञानाचार है। हिंसादिक पंचपापनितें निवृत्त होना सो चारित्राचार है। द्वादशप्रकार तपमें प्रवृत्ति करना, सो तप आचार है। परीषहादिक सहनेमें अपनी शक्तिका नहीं छिपावना, सो वीर्याचार है। ऐसे पंचप्रकारका आचार अतिचाररहित आप आचरण करै अर अन्यशिष्यनिकूं आचरण करावै। अर उपदेश करे, सो आचार्य आचारवान् है। अब औरहू प्रकार आचारवान्पणा कहे हैं।

दशविहठिदिकप्पे वा हवेज्ज जो सुट्ठिदो सयायरिओ।

आयारवं खु एसो पवयणमादासु आउत्तो ॥४२६॥

अर्थ—जो दश प्रकारका स्थितिकल्प आचारांगमें कह्या ताविषै सदा काल तिष्ठता जो आचार्य सो आचारवान् होय है। तथा पंचसमिति, तीन गुप्ति ये जे अष्ट प्रवचनमातृका तिनविषै युक्त होय, सो आचारवान् है। अब कह्या जो दशप्रकारका स्थितिकल्प, ताका नाम कहे हैं। गाथा—

आचेलक्कुद्देसियसेज्जाहररायपिंडकिरियम्मे।

जेट्ठपडिक्कमणे वि य मासं पज्जो सवणकप्पो ॥४२७॥

अर्थ—१. आचेलक्य, २. अनौद्देशिक, ३. शय्यागृहत्याग, ४. राजपिंडत्याग, ५. कृतिकर्म कहिये वन्दनादिक करनेमें उद्यम, ६. व्रत, ७. ज्येष्ठ, ८. प्रतिक्रमण, ९. मास, १०. पर्याय, ऐसे श्रमणकल्प दशप्रकार है।

चेल जो वस्त्र ताका जो त्याग ताकूं आचेलक्य कहिये हैं। जहां वस्त्रका त्याग हुवा, तहां सकलपरिग्रहका त्याग जानना। वस्त्रग्रहण करनेमें साधुका संयमका नाश होय है। वस्त्रके पसेव लागै तथा रज लागै, तदि पसेवनितें उपजने

वाले तथा रजोमलमें उपजनेवाले त्रसजीवनिकी उत्पत्ति वस्त्रमें होय है। बहुरि उस वस्त्रका ग्रहण करै, तदि वस्त्रमें उपजे जीव दबनेतें, मसलनेतें, उडनेतें नाशने प्राप्त होय है। बहुरि वस्त्रकूं न्यारा करि धरिये तोहू वस्त्रके जीवनिका नाश होय, तथा बैठनेमें, शयन करनेमें, फाटनेमें, बांधनेमें, वेठनेमें, धोवनेमें, सुकावनेमें, तावडेमें जीवनका घाततें महान् असंयम होय है। तथा वस्त्रमें उपरले मांछर, पतंग, काडी कीडा, उटकरा, जूंवा इत्यादिक अनेक जीव आश्रय आय करे हैं। बहुरि वस्त्रका आछीरीति सोधनहू नहीं होय है, तथा मलिनवस्तु रुधिर मलादिक आपका शरीर सम्बन्धी वा अन्य जीवां सम्बन्धी वस्त्रके लिप्त हो जाय, अर धोवे तो असंयम होय अर नहीं धोवे तो देखनेवालेनिके ग्लानिका कारण होवे, विपरीत स्वांग रुधिरकरि लिप्त शिकारीसदृस दीखै। बहुरि रुधिरमलादिक वस्त्रके लग्या रहजाय तो मक्षिका कीडी मांछर इत्यादिक जीव आय लगे अर मक्षिकादिकांनै दूरि करे तो असंयम तथा उनके अंतराय प्रकट होवै। तथा वस्त्र कोऊ आपका हरण कर ले तो क्रोध उपजे तथा लज्जा उपजै, अर वस्त्र नहीं होय तब नगरग्रामादिकनिमें जावनेकूं असमर्थ होय तथा वस्त्र फटिजाय तथा कोऊ लेजाय तो याचना करै, दीनता करै। महीन सुन्दर उज्ज्वल वस्त्र मिलै तो अभिमान उपजे अर मोटा मलिन छोटा मिलै तो हीनता दीनता परिणाममें उपजै। बहुरि वन पर्वत इत्यादिक निर्जनस्थानमें भय उपजै "मति कोऊ हमारा वस्त्र खोसि लेवै"। बहुरि वस्त्रका लाभविषै हर्ष अर अलाभविषै विषाद उपजैही।

बहुरि दूजे पुरुषकूं देखि भय उपजै, अथवा वृक्ष गुफा बसतिकामैं छिपि रह्यो चाहै। तथा चौरादिकनिके भयतें मोमकरिकें तेलकरिकें तथा गोबर इत्यादिकतें वस्त्रनें मलिन करि राखे, तहां मायाचार नामा दोष प्रकट होय। तथा मोमका सयोगतें अप्रमाण त्रसजीवनिकी उत्पत्ति होय। तथा तेल पसेव गोबर इत्यादिकके संयोगतें जीवनिकी विराधना प्रकट होय है। अर वस्त्र पुराणा दीखै तदि दातारका विचार तथा दुर्ध्यान अशुभपरिणाम प्रकट होयही। तथा वस्त्र पवनादिककरि हालै तहां स्वाध्याय ध्यानका भंग होय, तथा आगन्तुकजीव बीछू, कीडा, लट, कानखजूरचा, सर्प इत्यादिक आय प्रवेश करै, तो उठि खडा होना, अधोवस्त्र दूरि करना, झडकावना, फटकारना इत्यादिककरि दुर्ध्यान वा असंयम प्रकट होय है। तथा वस्त्र कांटेतें फटि जाय तथा शयन करतेका वनके बिलके जीव फाडि जाय। काटि जाय तो परिणाम विषादी होयही जाय। बहुरि सींवना, समेटना, उतारना, खोलना, मेलना इत्यादिक अर्थ आरम्भ तथा संग्रह प्रकट होय हैं। बहुरि वस्त्रधारण करै ताके परीषह सहनेमें असमर्थता होय है। तथा वर्षाका अवसरमें भीजि जाय अर निचोवे तो असंयम होय, पहरचा रहै तो अधोवस्त्रमें जीवनिकी उत्पत्ति होय तथा वेदना इत्यादिक दोष आवै, तथा शीतऋतुमें मोटा

जाडा नवीन वस्त्रकी चाहना होवै अर ग्रीष्मऋतुमें कोमल महीनवस्त्रकी वांछा करैंहो । बहुरि जो अन्यपुरुषकू मागमें आवता जावताहू देखें, तो, ताका विश्वास नहीं करै ।

बहुरि वस्त्रका त्याग किया, तातें सर्व शरीरसूं ममत्व त्याग्या, सर्वभयरहित हुवा, अर शीत, उष्ण, डांस, माछर मक्षिकादिकनिका किया उपसर्ग सहना अंगीकार किया, अर केवल ध्यानस्वाध्यायहीका अवलंबन ग्रहण किया । बहुरि जो वस्त्र त्याग किया सो सर्वही त्याग किया, देहका सुखियापणाका त्याग किया, जिनेन्द्रकी आज्ञा अंगीकार करी, अप्रमाण आपकी शक्तिकूं प्रकट करी, सर्व दशलक्षणधर्म अंगीकार किया, हीनता, दीनता, याचकताका अभाव किया । तातें आचेलक्यही श्रेष्ठ है । औरहू दशप्रकारका स्थितिकल्प आचारांगसूत्रकी आज्ञाप्रमाण जानना ।।१।।

आपके निमित्त किया भोजनका त्याग, सो अनौद्देशिक ।।२।। जहां भोगी स्त्रीपुरुषनिका क्रीडा करनेका मकान, सो शय्यागृह, तामैं जानेका त्याग, सो शय्यागृहत्याग ।।३।। बहुरि राजादिक भोगी पुरुषनिके जीमनेयोग्य जो गरिष्ठ सुगन्ध आहार, ताका त्याग, सो राजपिंडत्याग ।।४।। वन्दना करनेमें उद्यम, सो कृतिकर्म ।।५।। बहुरि अठाईस मूलगुण चौराशी लाख उत्तरगुणनिका धारना, सो व्रत ।।५।। बहुरि पूर्वें दोष किये, तिनका निराकरणके अर्थि प्रतिक्रमण ।।७।। बहुरि तप संयम पंचाचार दीक्षादिककरि अधिक होय, तिनकूं ज्येष्ठ मानिये, बडा मानिये, सो ज्येष्ठ है ।।८।। बहुरि मासमासमें वन्दन करना, सो मास है ।।६।। अर दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, ऐर्यापथिक, सांवत्सरिक, उत्तमार्थ ऐसा सप्तप्रकार प्रतिक्रमण करना, सो प्रतिक्रमण है । बहुरि वर्षाकालमें च्यारि मासविषें एकस्थान मे रहना पर्या है ।।१०।। इनिका विशेष बहुज्ञानी होय सो आगमके अनुसार जाणि विशेष निश्चय करो । बहुरि इस ग्रन्थकी टीका का कर्त्ता श्वेताम्बर है, इसही गाथाके अर्थमें वस्त्र पात्र कम्बलादिक पोषे हैं, कहे हैं, तातें प्रमाणरूप नाहीं है । सो बहुज्ञानी विचारि शुद्ध सर्वज्ञकी आज्ञाके अनुकूल श्रद्धान करो । गाथा—

एदेसु दससु णिच्च समाहिवो णिच्चवज्जभीरू य ।
खवयस्स विसुद्धं सो जधुत्तचरियं उवविधेदि ।।४२८।।

अर्थ—ये जे दशप्रकार स्थितिकल्प तिनिविषें नित्यही सावधान अर पापतें भयभीत ऐसा आचार्य सो सल्लेखना करनेकूं आया जो क्षपक ताकूं शास्त्रोक्त शुद्धचर्या है ताही देत है । भावार्थ—ऐसे दशप्रकारका स्थितिकल्पमें सावधान अर पापतें भयभीत जो आचार्य होय सो क्षपककूं यथावत् आचारांगकी आज्ञाप्रमाण आचरण करावै ।

पंचविधे आचारे समुज्जदो सव्वसमिदचेट्ठाओ ।
सो उज्जमेदि खवयं पंचविधे सुट्ठु आयारे ॥४२९॥

अर्थ—जो आचार्य दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपआचार, वीर्याचार, ये पंचप्रकारके आचार, तिनमैं आप उद्यमी होय, अर जाकी चेष्टा कहिये सकलप्रवृत्ति सो समितिरूप होय, यत्नाचाररूप होय, सोही आचार्य क्षपककूं पांच प्रकारका आचारमें उद्यम करावै–प्रवृत्ति करावै । अर जो आपही हीनाचारी होय, सो अन्य शिष्यनहूकूं शुद्ध आचारमें प्रवर्तावनेकूं असमर्थ होय है, तातें आचारवान् गुरुहीका शरण ग्रहण करना श्रेष्ठ है । जो गुरु आचारवान् नहीं होय, तो एते दोष प्रकट होय हैं ।

सेज्जोवधिसंथारं भत्तं पाणं च चयणकप्पगदो ।
उवकप्पिज्ज असुद्धं पडिचरए वा असंविग्गे ॥४३०॥
सल्लेहणं पयासेज्ज गंधं मल्लं च समणुजाणिज्जा ।
अप्पाउग्गं व कधं करिज्ज सइरं व जंपिज्ज ॥४३१॥
ण करेज्ज सारणं वारणं च खवयस्स चयणकप्पगदो ।
उद्दे ज्ज वा महल्लं खवयस्स वि किंचेसारंभं ॥४३२॥

अर्थ—पंचाचारतें रहित जो आचार्य, सो संन्यास करनेमें उद्यमी जो क्षपक ताकै अयोग्य जो उद्गमादि दोषसहित अशुद्ध ऐसी वसतिका तथा उपकरण तथा संस्तर तथा भोजन तथा पान ग्रहण कराय दे, अशुद्ध मेल मिलाप दे । जातें जाकै सदोषवस्तुमें आपहीकै ग्लानि नहीं, सो अन्यके असंयम करनेवाली सामग्री युक्त कर दे । बहुरि जिनके कर्मबन्ध होनेका भय नहीं, असंयममें प्रवर्तनका भय नहीं, संसारमें डूबनेका भय नहीं, ऐसे भ्रष्ट वैयावृत्यके करनेवालेका संयोग कर देवै । बहुरि लोकांमें सल्लेखना विख्यात कर दे, तथा गन्ध माल्य अयोग्य ग्रहण कराय दे, तथा क्षपकके निकट अयोग्य कथा करनेमें प्रवर्ते, तथा यथेच्छ सूत्रविरुद्ध वचन कहि दे, तथा रत्नत्रयमें प्रवृत्ति नहीं कराय सके, तथा नष्ट होते रत्नत्रयकी रक्षा नहीं करि सकै, तथा औरहू क्षपककै अयोग्य जिनसूत्रतें अपूठो अत्यन्त निंद्य कल्पना करै । तातें पंचाचारका धारक

जो आचारवान् गुरु, तिनके निकटही प्रवर्तना श्रेष्ठ है। पंचाचारकरि हीनकी संगतिहूतें धर्म बिगडि संसारपरिभ्रमण करे हैं। गाथा—

आयारत्थो पुण से दोसे सव्वे वि ते विवज्जेदि।
तम्हा आयारत्थो णिज्जवओ होदि आयरिओ ॥४३३॥

अर्थ—बहुरि जो पंचप्रकारका आचारमें कुशल होय सो पूर्वे कहे जे सर्व दोष तिनका अभाव करे है, क्षपककूं एकहू दोषकरि लिप्त नहीं होने दे है, तातें आचारवान्‌ही निर्यापक गुरु होय है, अन्यकै निर्यापकगुरुपणा नहीं बणिसके है।

ऐसें सुस्थित नामा सतरमां अधिकारमें ग्यारह गाथानिकरि निर्यापकाचार्यका आचारवान् गुण वर्णन किया। इहां पंचाचारका वर्णन किया चाहिये, परन्तु ग्रन्थकी विस्तीर्णता होनेके भयतें इहां नहीं लिख्या है, जे विशेष जाननेके इच्छुक हैं, ते मूलाचार ग्रन्थतें जानहू। अब निर्यापक आचार्यका दूसरा आधारवान् नामा गुण, ताहि उगणीस गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

चोद्दसदसणवपुव्वी महामदी सायरोव्व गंभीरो।
कप्पववहारधारी होदि हु आधारवं णाम ॥४३४॥

अर्थ—जो चौदह पूर्वका धारी तथा दशपूर्वका धारी तथा नवपूर्वधारी होय, बहुरि महाबुद्धिमान् होय, अर समुद्रकीनांई गम्भीर होय, कल्पव्यवहारका जाननेवाला होय, सो आचार्य आधारवान् गुणका धारक होय। भावार्थ— श्रुतज्ञानका जाकै परिपूर्ण सामर्थ्य होय अथवा कालमाफिक तौ च्यारू अनुयोगका जाकै ज्ञान होय, ऐसाही ज्ञानी आचार्य क्षपककूं अवलम्बन करने योग्य है। गाथा—

णासेज्ज अगीदत्थो चउरंगं तस्स लोगसारंगं।
णट्ठम्मि य चउरंगे ण उ सुलहं होइ चउरंगं ॥४३५॥

अर्थ—बहुरि जो अगृहीतार्थ कहिये जिनसूत्रका ज्ञानरहित जो गुरु ताके निकट बसै तो साधुका दर्शन ज्ञान चारित्र तप, यहही जे चतुरंग, ताका नाश कर देवै। कैसाक है चतुरंग? लोक में सारभूत अंग है। अर

चतुरंग विनशिजाय तो बहुरि चतुरंग पावना सुलभ नहीं है। कोऊ या कहै—जो, अगृहीतार्थ जो ज्ञानरहित गुरु, सो क्षपकका चतुरंग जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र सम्यक्तप कैसे नाश करै ? सो कहे हैं। गाथा—

संसारसावरम्मि य अणन्तबहुतिव्वदुक्खसलिलम्मि ।
संसरमाणो दुक्खेण लहृदि जीवो मणुस्सत्त ॥४३६॥

तह चेव देसकुलजाइरूवमारोग्गमाउगं बुद्धी ।
सवणं गहणं सद्धा य संजमो दुल्लहो लोए ॥४३७॥

एवमवि दुल्लहपरंपरेण लद्धूण संजमं खवओ ।
ण लहिज्ज सुदी संवेगकरी अबहुस्सुयसयासे ॥४३८॥

अर्थ—अनन्त अर बहुत तीव्र ऐसा दुःखरूप जलका भरचा जो संसाररूप समुद्र, तामैं अनन्तानन्तकालतैं परिभ्रमण करता जो जीव, सो बडा दुःखकरिके मनुष्यजन्मकूं प्राप्त होय है। अर मनुष्यजन्महू पावे तो, तहां जैसे मनुष्यजन्म दुर्लभ, तैसे उत्तमदेश पावना दुर्लभ है ! अर कदाचित् उत्तम देशहू पावै तोहू उत्तम कुल, उत्तम जाति पावना बहोत दुर्लभ है ! अर उत्तम कुलजातिहू पावै तो तहां सुन्दर रूप, रोगरहित शरीर, दीर्घ आयु, निर्मलबुद्धि पावना दुर्लभ है। बहुरि कदाचित् तीक्ष्णबुद्धिहू पावै तोहू सर्वज्ञवीतरागका कह्या धर्मका श्रवण दुर्लभ, अर कदाचित् धर्मश्रवणहू होय तो ग्रहण करना तथा श्रद्धान होना अतिदुर्लभ है, अर श्रद्धानभी होय तो संयम धारना अत्यंत ही दुर्लभ है। बहुरि ऐसे दुर्लभताकी परम्पराकरिकै पाया जो संयम, ताही अल्पज्ञानीके निकट बसनेवाला जो क्षपक कहिये मुनि, सो धर्मानुराग करनेवाला उपदेशकूं नहीं प्राप्त होय है। ऐसी श्रुति जो उपदेश, ताही नहीं पावै, ताकै कहा होय ? सो कहे हैं। गाथा—

सम्मं सुदिमलहंतो दीहद्धं मुत्तिमुवगमित्ता वि ।
परिवडइ मरणकाले अकदाधारस्स पासम्मि ॥४३९॥

अर्थ—जिनसूत्रका आधार रहित अज्ञानी जो आचार्य ताके निकट रहनेवाला जो साधु सो सत्यार्थ श्रुतका उपदेशकूं नहीं प्राप्त होता मुक्तिका मार्गकूं अति दूरि जानि, कठिन जानि, मरणकालमें रत्नत्रयसूं पतन करे है। गाथा—

सक्का वंसी छेत्तुं तत्तो उक्कढ्ढिश्रो पुणो दुक्खं ।
इय संजमस्स वि मणो विसएहुक्कढ्ढदुं दुक्खं ॥४४०॥

अर्थ—जैसे बांसकी शल्य छेदवेकूं समर्थ होना सुलभ है अर अंगमें चुभी हुईका निकासना बडा कष्टतैं होय है, तैसें संयमीके विषयनिका त्याग करना तो सुलभ है अर विषयनिमें उरझ्या मनकूं विषयनितें निकासना बडे दुःखतें होय है। गाथा—

आहारमओ जीवो आहारेण य विराधिदो सन्तो ।
अट्टदुहट्टो जीवो ण रमदि णाणे चरित्ते य ॥४४१॥
सुदिपाणयेण अणुसट्ठिभोयणेण य पुणो उवग्गहिदो ।
तण्हाछुहाकिलंतो वि होदि झाणे अवक्खित्तो ॥४४२॥

अर्थ—सर्वही संसारी जीव आहारमय हैं, आहारतें जीवे हैं, आहारहीकी निरन्तर वांछा करे हैं। अर जब रोगके वशतें वा त्याग करनेतें आहार छूटि जाय वा घटि जाय, तब आर्त्तध्यानकरिके दुःखकरि पीडित हुवा संता ज्ञानमें तथा चारित्रमें नहीं रमे है। अर जो जिनसूत्रका आधारका धारक जो गुरु सो श्रुतिरूप पानकरिके अर शिक्षारूप भोजनकरिके साधुका उपकार करै तो क्षुधाकी तथा तृषाकी पीडाकरिके सहितहू साधु ध्यानके विषे विक्षेपकरि रहित होत है। भावार्थ—क्षुधातृषादिककी वेदनासहित साधुकूं शास्त्रार्थका श्रवणरूप पानकरि अर आत्मज्ञानकी शिक्षारूप भोजनकरि ज्ञानवान् गुरुही वेदनारहित करै, अज्ञानीके सामर्थ्य नाहीं। गाथा—

पढमेण व दोवेण व वाहिज्जंतस्स तस्स खवयस्स ।
ण कुणदि उवदेसादि समाधिकरणं अगीदत्थो ॥४४३॥

सो तेण विडज्झन्तो पप्पं भावस्स भेदमप्पसुदो ।
कलुणं कोलुणियं वा जायणकिविणत्तणं कुणइ ।।४४४।।
उकवेज्ज व सहसा वा पिएज्ज असमाहिपाणयं चावि ।
गच्छेज्ज व मिच्छत्तं मरेज्ज असमाधिमरणेण ।।४४५।।
संथारपदोसं वा णिब्भच्छिज्जन्तओ णिगच्छेज्जा ।
कुव्वन्ते उड्डाहो णिच्चुब्भन्ते विकिते वा ।।४४६।।

अर्थ—अगृहीतार्थ जो श्रुतका अवलंबनरहित आचार्य सो क्षुधाकरि व्याधित क्षपककूं वा तृषाकरि व्याधित–पीडित क्षपककूं समाधानी करनेवाला उपदेश करनेकूं नहीं समर्थ होय है । तदि क्षुधा वा तृषाकरि पीडित जो क्षपक सो संयमरूप भावका नाशकूं प्राप्त होयकरिकै अर रुदन करै, जैसे श्रवण करनेवालेकै करुणा उपजि आवै, तथा क्षुधा तृषाकी पीडाकरिकै जाचना करने लगि जाय, तथा दीनता करै, तथा वेदनाकरिकै पुकारने लगिजाय । अथवा शीघ्रही असमाधिपान जो भावांकी असावधानी वा च्यार आराधनाका नाश करना सोही पान करै अथवा मिथ्यात्वकूं प्राप्त होय हैं अर असमाधि मरण जो मिथ्यादृष्टीका बालबालमरण ताकरि मरै हैं । तथा कोऊ वेदनाकरिकै संस्तरकूं वैरकरि दूषण लगावै, वा संस्तरतै निकली भागै तथा रुदन करै, अर जो संघबाहिर निकलि जाय तो धर्मका अपयश करै निंदा करै । येते दोष अगृहीतार्थ गुरूकी संगतितै प्रकट होय हैं, तातै श्रुतज्ञानका धारक जो आचार्य होय, ताहीका आश्रय करना योग्य है । अर जो गृहीतार्थ गुरु होय तो कहा करै ? सो कहे हैं ।

गीदत्थो पुण खवयस्स कुणदि विधिणा समाधिकरणाणि ।
कण्णाहुदीहिं उवढोइदो य पज्जलइ ज्झाणग्गी ।।४४७।।

अर्थ—बहुरि जो गुरु गृहीतार्थ होय सो संस्तर करनेमें उद्यमी अर क्षुधातृषाकरि पीडित ऐसे क्षपककी विधिकरिकै समाधान क्रिया करै, "जैसे क्षपककै वेदनाका उपशम होय, परम शांतता होजाय तैसे यत्न करै" । बहुरि जैसे घृतादिकनिकी आहूतिकरि अग्नि प्रज्वलित होय, तैसे कर्णनिमें जो धर्मका उपदेशरूप आहूति ऐसी देवे, जाकरि ध्यानरूप

अग्नि प्रज्वलित होजाय । भावार्थ—श्रुतका धारक गुरुका ऐसा धर्मोपदेशरूप कर्णनिमें जाप देनेकी महिमा है सो तत्काल क्षुधा तृषा रोगादिकनितैं उपजो वेदना मेटि धर्मध्यान शुक्लध्यानकूं प्रकट करे है। गृहीतार्थ गुरु और कहा करै ? सो कहे । गाथा—

खवयस्सिच्छासंपादरोण देहपडिकम्मकररोरा ।
अण्णेहिं वा उवाएहिं सो समाहिं कुणइ तस्स ।।४४८।।

अर्थ—गृहीतार्थ आचार्य कहा करै ? सो कहे हैं । वेदनाकरिकैं दुखित जो क्षपक, ताके वांछित करनेकरिकैं, तथा देहकी बाधा जैसैं मिटि जाय तैसैं हस्त पाद मस्तक इत्यादिकनिका दाबना स्पर्शना इत्यादिक करिकै, अन्यहू मिष्टवचन, उपकरणदान, प्रासुक संयोगादि करिकैं, तथा पूर्वें जे अनेक साधु घोर परीषह सहिकरिकैं आत्मकल्याणकूं प्राप्त भये तिनकी कथा कहनेकरिकैं, तथा देहसूं भिन्न आत्माका अनुभव करावनेकरिकैं, क्षपकका परिणामकूं वेदनातैं न्यारो करि रत्नत्रयमें सावधान करे है । गाथा—

णिज्जूढं पि य पासिय मा भीहो देइ होइ आसासो ।
संधेइ समाधिं पि य वारेइ असंवुडगिरं च ।।४४६।।

अर्थ—बहुरि अन्य वैयावृत्यके करनेवाले तिनकरि रहित देखिकरिकैं निर्यापक गुरु कहे हैं, भो साधो ! तुम ऐसा भय मति करो, जो मोकूं परीषहनितैं चलायमान देखिकरिकैं ये सर्व संघके मुनि हमारा त्याग करघा है ! हम सर्वप्रकारकरिकैं तुमारा सेवन करने में उद्यमी हैं, हम तुमकूं नहीं त्यजन करेंगे, ऐसा अभयदान देवैं । अर वारंवार धैर्य देय आश्वासन करै, भो मुने ! संसारमें परिभ्रमण करता प्राणी कौन दुःख नहीं भोगै ? अर नहीं भोगेंगे ? तातैं जो अब धैर्य धारनेका अवसर है, कर्म रस देय शीघ्र निर्जरैगा, आकुलता करि कर्मका बंधकूं दृढ मति करहू । बहुरि वारंवार मिष्ट उपदेश देय रत्नत्रयतैं जोड दे हैं । बहुरि क्षपककूं वेदनाकरिकैं आकुल देखि कोऊ अज्ञानी असंवररूप वचन कह्या होय, तो ताहि निवारण करै, जो, तुमकूं ऐसैं अवज्ञा नहीं करना ! जो, ये धन्य हैं, महान् हैं, जिनके सर्व आहारादिक त्यागि आराधनामैं परम उत्साह वर्ते है । गाथा—

जाणदि फासुयदव्वं उवकप्पेदुं तहा उदिण्णाणं ।
जाणइ पडिकारं वादपित्तसिंभाण गीदत्थो ॥४५०॥

अर्थ—बहुरि गृहीतार्थ गुरु कैसाक है ? उत्कटताने प्राप्त भई जो क्षुधा तृषादिक वेदना, ताका नाश करनेमें समर्थ ऐसा प्रासुकद्रव्यनिका संयोगनिकूं जाने है, तातैं वेदना मिटिजाय अर संयम त्याग बिगडे नहीं । तथा जिन इलाजनितैं वातपित्तकफजनित वेदना नाशकूं प्राप्त होय ऐसे मुनिकै योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भाव ज्ञानवान् गुरुही जाने है । गाथा—

अहव सुदिपाणयं से तहेव अणुससिट्ठिभोयणं वेइ ।
तण्हाछुहाकिलितो वि होदि ज्झाणे अवक्खित्तो ॥४५१॥

अर्थ—अथवा श्रुतिरूप तो पान अर शिक्षारूप भोजन ऐसा देवै—जातैं क्षुधातृषाकरि पीडितहू साधु ध्यानमें विक्षेपरहित क्लेशरहित होजाय । गाथा—

गीदत्थपादमूले होंति गुणा एवमादिया बहुगा ।
ण य होइ संकिलेसो ण चावि उप्पज्जदि विवत्ती ॥४५२॥

अर्थ—बहुश्रुतिका चरणांके निकट पूर्वे पंच गाथानिकरि कह्या जे बहुत प्रकारके गुण, अर औरहू अनेक गुण प्रकट होय हैं । बहुरि संक्लेशपरिणाम नहीं होय है, अर रत्नत्रयमें विपत्तिहू नहीं होय है । तातैं श्रुतज्ञानका आधारवान् गुरुकाही शरण ग्रहण करना श्रेष्ठ है ।

ऐसें सुस्थित अधिकारमें आचार्यनिका आधारवान् नामा दूसरा गुण उगणीस गाथानिकरि कह्या ।

अब निर्यापकाचार्यका व्यवहार नामा तीसरा गुण सात गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

पंचविहं ववहारं जो जाणइ तच्चदो सवित्थारं ।

बहुसो य दिट्ठकयपट्ठवणो ववहारवं होइ ।।४५३।।

अर्थ—जो पंचप्रकार जो व्यवहार कहिये प्रायश्चित्त ताहि तत्त्वथकी जाणै, विस्तार सहित जाणै अर बहुतवार आचार्यनिके निकट प्रायश्चित्त देना देख्या होय तथा आप प्रायश्चित्त दीया होय, सो व्यवहारवान् होय । अब पंचप्रकारके व्यवहार हैं, तिनके नाम कहे है । गाथा–

आगमसुद आणाधारणा य जोदेहिं हुन्ति ववहारा ।

एदेसिं सवित्थारा परूवणा सुत्तणिद्दिट्ठा ।।४५४।।

अर्थ—१ आगम, २ श्रुत, ३ आज्ञा, ४ धारणा, ५ जित, ये पंचप्रकारके व्यवहारसूत्र कहिये प्रायश्चित्तसूत्र है, इनकी विस्तारसहित प्ररूपणा पुरातनसूत्रनिमैं कही है । सर्वजनांका अग्रभाग में प्रायश्चित्त कहनेयोग्य नहीं है । प्रायश्चित्त ग्रन्थ जो आचार्यहोनेयोग्य होय तिनहीकूं पढावे हैं, औरनके पढनेकी योग्यता नहीं है । तातं प्रायश्चित्तके ग्रन्थ जुदेही हैं । कोऊ कहे, जो व्यवहारवान् आचार्य, सो अन्यमुनीश्वरनिकरि आलोचना कीया जो अपराध, ताका प्रायश्चित्त कैसे देत है ? तातै प्रायश्चित्त देने का अनुक्रम कहे हैं । गाथा–

दव्वं खेत्तं कालं भावं करणपरिणाममुच्छाहं ।

संघदण परियायं आगमपुरिसं च विण्णाय ।।४५५।।

मोत्तूण रागदोसे ववहारं पठ्ठवेइ सो तस्स ।

ववहारकरणकुसलो जिणवयणविसारदो धीरो ।।४५६।।

अर्थ—जो प्रायश्चित्त देने में प्रवीण होय, अर जिनागमका ज्ञाता होय, अर महाधीर होय, बुद्धिवान् होय, ऐसा प्रायश्चित्त देनेवाला आचार्य, सो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, क्रिया, परिणाम, उत्साह, संहनन, पर्याय जो दीक्षाका काल, आगम जो शास्त्रज्ञान, अर पुरुष इनिका स्वरूप आछीतरह जाणिकरिकै अर रागद्वेषकूं छांडिकरिकै अर क्षपक जो मुनि ताकूं प्रायश्चित्तमें स्थापन करै ।

भावार्थ—जामैं ऐसी प्रवीणता होय, जो ऐसें प्रायश्चित्त देनेतैं याकै परिणाम उज्ज्वल होयगा, अर दोषका अभाव होयगा, व्रतनिमैं दृढता होयगी, सो प्रायश्चित्त दे। बहुरि जाकूं आगमका ज्ञान नहीं होय, ताकै प्रायश्चित्त देना नहीं संभवै, तातैं सूत्रका रहस्यका जाननेवाला होय। बहुरि जाकूं आहारादिकमें योग्य अयोग्यका ज्ञान होय, सो द्रव्यका स्वभावनै जानि प्रायश्चित्त देवै। तथा इस क्षेत्रमें ऐसा प्रायश्चित्तका निर्वाह होयगा, इस क्षेत्रमें नहीं होयगा, ऐसें क्षेत्रकूं जाणै। अथवा इस क्षेत्रमे जल बहुत है, इसमे अल्प है, वा इस क्षेत्रमें वात पित्त कफकी आधिक्यता है, इस क्षेत्रमें हीनता है, इसमें समता है, वा शीतउष्णताको आधिक्यता हीनता पहिचानता होय, अथवा इस क्षेत्रमें धर्मके धारकनिकी तथा मिथ्यादृष्टीनिकी मंदता अधिकता जाणि ऐसा प्रायश्चित्त देवै, ताकरि वीतरागभाव बधै, धर्ममें दृढ़ता होय। बहुरि शीतकाल वर्षाकाल उष्णकाल तथा उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके तृतीय चतुर्थ पंचम कालकूं जाणि ऐसें प्रायश्चित्त देवै, जैसें निर्वाह होय व्रत शुद्ध होजाय।

बहुरि प्रायश्चित्तक्रियामैं परिणाम या मुनिका कैसा है—ऐसें समझि प्रायश्चित्त देवै। जातैं परिणाम कलुषित नहीं होहै। बहुरि तपश्चरणमें याकै तीव्र उत्साह है वा मंद है तींका ज्ञाता होय। बहुरि संहनन जो शरीरका बल, ताकूं जाणि प्रायश्चित्त देवै। जो, यह निर्बल है, वा बलवान् है? ऐसा निर्णय करि, जैसें तपश्चरण दिनदिन बधै तैसे करै। तथा दीक्षाका कालकू जानै, जो यह नवीन दीक्षित है वा बहोत कालका दीक्षित है? सहनशील है वा कायर है? अथवा बालक अवस्था, अथवा युवा, अथवा वृद्ध अवस्था इनिकूं समझि प्रायश्चित्त देवै। बहुरि यह आगमका ज्ञाता बहुश्रुती है, यह अल्पज्ञानी हैं ऐसें क्षपकका आगमबल जानता होय। बहुरि यह पुरुषार्थी है, वा मंदोद्यमी है—ऐसें जाननेवाला होय। अर रागद्वेषरहित होय, धैर्यवान् होय, सोही प्रायश्चित्त देय उज्ज्वल करै। जो द्रव्य-क्षेत्रादिकका तो ज्ञाता नहीं होय अर प्रायश्चित्त देवै, ताकै दोष प्रकट होय है, सो कहे हैं। गाथा—

ववहारमयाणन्तो ववहरणिज्जं च ववहरंतो खु।
उस्सीयदि भवपंके अयसं कम्मं च आदियदि ॥४५७॥

अर्थ—जो गुरुनिके निकट प्रायश्चित्तसूत्र तो शब्दथकी अर अर्थथकी पढ्या नहीं होय अर औरनिकूं अतीचार दूरि करनेके अर्थि प्रायश्चित्त देत है, सो संसाररूप कर्दममें डूबे है, अर अपयशकूं प्राप्त होय है। अर प्रायश्चित्तसूत्र

जानेविना वृथा आचार्यपणाका गर्वकरि जो प्रायश्चित्त देवे है, सो उन्मार्गका उपदेश करिकैं अर सम्यग्मार्गका नाश करिकैं मिथ्यादृष्टि होय तीव्रकर्मका बंधकूं प्राप्त होय है।

भावार्थ—ये प्रायश्चित्त ग्रन्थ हैं ते रहस्य कहावे हैं, अथवा इनिकूं सूरिमंत्र कहिये हैं। सो ये प्रायश्चित्तग्रन्थ कोऊ महान् मुनि पूर्वं कहे जे आचार्यपणाका गुण तिनका धारक होय तिनहीकूं पढावै अर अन्यसंघमें रहनेवाले अनेक मुनि तिनकूं नहीं पढावै। तो कैसे गुणनिके धारक प्रायश्चित्तग्रन्थ पढनेयोग्य है? सो कहै हैं—जो बड़ा कुलमें उपजा होय, अर व्यवहारपरमार्थका ज्ञाता होय, अर कोऊ कालहूमैं आपके मूलगुणनिमें अतिचारदोष नहीं लगाया होय, अर च्यार अनुयोगरूप समुद्रका पारगामी होय, अर महान् धैर्यवान् होय, बलवान् होय, परीषहनिकैं जीतनेमें समर्थ होय, अर जाकूं देवहू उपसर्गादिककरि चलायमान करनेकूं समर्थ नहीं होय, अर जाकी वक्तृत्वशक्ति बड़ी होय, वादीप्रतिवादीके जीतनेमें समर्थ होय, विषयनितैं अत्यंत विरक्त होय, बहोत काल गुरुकुल सेवन कीया होय, बहोत कालका दीक्षित होय, अर जाकी आचार्यपदकी योग्यता सर्व संघमें विख्यात होय इत्यादिक अनेकगुणनिका धारक आचार्यपदके योग्य होय, ताकूं प्रायश्चित्तग्रन्थ पढावे हैं। अर प्रायश्चित्तग्रन्थ गुरुनितैं भली भांति जाण्या होय, सोही प्रायश्चित्त देय अन्यकूं शुद्ध करे है। अर जो एते गुणनिविना तथा प्रायश्चित्तके ग्रन्थ जाण्याविना प्रायश्चित्त देवे है, सो आप तो उन्मार्गका उपदेशतैं संसारमें डूबि अनन्तकाल परिभ्रमण करे है अर अन्यकूं शुद्ध नहीं करे है, मिथ्या उपदेश करि डबोवे है। तातैं गुणरहित होय प्रायश्चित देनेमें उद्यमी नहीं होना, सोही दृष्टांत कहै हैं। गाथा—

जह ण करेदि तिगिच्छं वाधिस्स तिगिच्छओ अणिम्मादो।
ववहारमयाणन्तो ण सोधिकामो विसुज्झेइ ॥४५८॥

अर्थ—जैसे मूढ वैद्य है सो कोऊ रोगकरि पीडितपुरुषका इलाज करनेमे समर्थ नहीं होय है, तैसे प्रायश्चितसूत्रका नहीं जाननेवाला अर वृथा आचार्यपणाका गर्वकरि अतीचारादिकनिकी शुद्धता करनेका इच्छुक कदाचित् क्षपक जो मुनि ताकै शुद्धता नहीं करे है। भावार्थ—जैसे अज्ञानी वैद्य रोगीका विपरीत इलाजकरि रोगीके रोगकी वृद्धि करे है अथवा प्राणरहित करे है अर आपका यश अर परलोक बिगाडे है, तैसेही अज्ञानीके प्रायश्चित देनेमे अधिकारीपणाका फल जानना। गाथा—

तह्मा णिव्विसिदव्वं ववहारवदो हु पादमूलम्मि ।

तत्थ हु विज्जा चरणं समाधिसोधी य णियमेण ॥४५९॥

अर्थ—तातें प्रायश्चित्तके ज्ञाता जे आचार्य, तिनके चरणांके निकट तिष्ठना योग्य है । जातें तिनके निकट ज्ञान तथा समाधिमरण तथा आत्माकी विशुद्धि नियमकरि होय है ।

ऐसे सुस्थित अधिकारमें निर्यापक जो आचार्यका व्यवहारवान् नामा तीसरा गुण सात गाथानिकरि कह्या । अब कर्ता नामा चौथा गुण च्यारि गाथानिकरि कहे हैं ।

जो णिक्खवणपवेसे सेज्जासंथारउवधिसंभोगे ।

ठाणणिसेज्जागासे अगदूण विकिंचणाहारे ॥४६०॥

अब्भुज्जदचरियाए उवकारमणुत्तरं वि कुव्वन्तो ।

सव्वादरसत्तीए वट्टइ परमाए भत्तीए ॥४६१॥

इय अप्पपरिस्सममगणित्ता खवयस्स सव्वपडिचरणे ।

वट्टन्तो आयरिओ पकुव्वओ णाम सो होइ ॥४६२॥

अर्थ—जो आचार्य इतने स्थानविषै क्षपकका उपकार करे है; वसतिकातें बाहिर निकलनेमें, तथा बाहिरतें मांहि प्रवेश करनेमें, तथा शय्या वसतिकाके सोधनेमें, तथा संस्तर सोधनेमें तथा उपकरण सोधनेमें तथा खडे रहनेमें, तथा बैठने में, तथा शरीरका मल दूरि करनेमें, तथा आहार करनेमें बडी उद्यमरूप सेवा करिके, हस्तावलम्बनादिकरिके, तथा सर्व प्रकार आदरकरिके, शक्तिकरिके, तथा परम भक्तिकरिके, आपका परिश्रम नहीं गिणिकरिके क्षपकका संपूर्ण वैयावृत्यमें वर्तमान जो आचार्य, सो प्रकर्ता नाम गुणका धारक होय है ।

भावार्थ—सो निर्यापकाचार्य कर्ता नाम गुणका धारक होय है । जो संघमें कोऊ साधु बाल होय, कोऊ वृद्ध होय, कोऊ वेदनारोगसहित होय, कोऊ संन्यासमें लीन होय, तो तहां जिनकूं वैयावृत्यमें युक्त कीये, ते तो सेवा करेही, परन्तु

आप आचार्य अपने शरीरतेंहू सेवा करे है । अशक्त होय—ताका उठावना, बैठावना, मलमूत्र करावना, धोवना, पूछना, कफ नासिकामल मूत्रपुरीष रुधिरादि इनिकूं क्षपकका शरीरतें वा स्थानकतें उठाय प्रासुकभूमिमें क्षेपना, तथा हस्तपादमर्दन करना, दाबना, सवारना, समेटना, पसारना शिक्षा करना इत्यादिक सर्वप्रकारकरिके क्षपककी सेवामें आदरकरिके, भक्तिकरिके, शक्तिकरिके वैयावृत्य करे है । तिनकूं देखि सर्वसंघके मुनि क्षपककी सेवामें सावधान होय हैं—अहो धन्य हैं—ये गुरु भगवान् परमेष्ठी करुणानिधान—जिनके धर्मात्मामें ऐसा वात्सल्य है ! हम निंद्य हैं, जो हम आलसी होय रहे हैं, हमकूं होतेभी गुरु सेवा करे हैं, यह हमारा प्रमादीपणा हमारे बन्धका कारण है । ऐसे चिंतवन करि सर्व संघ के वैयावृत्यमें सावधान होय हैं । गाथा—

खवओ किलामिदंगो पडिचरयगुणेण णिव्वुदिं लहइ ।

तह्मा णिव्विसिदव्वं खवएण पकुव्वयसयासे ।।४६३।।

अर्थ—जातें ग्लानरूप पीडारूप है शरीर जाका, ऐसाहू क्षपक परिचारक जे वैयावृत्य करनेवाला तिनकी परिचर्या जो सेवारूप गुणकरिके वेदनारहित सुखी होय है । अर वेदना नहीं व्यापे तदि शुभध्यान शुभभावनामें लीन होय आत्मकल्याण करे है । तातें प्रकर्तागुणसहित गुरुनिके निकटही साधुकूं देहका त्याग करना श्रेष्ठ है ।

ऐसे सुस्थित नामा अधिकारमें निर्यापकगुरुनिके अष्टप्रकारके गुणनिमें प्रकर्त्ता नामा गुण च्यारि गाथानिकरि समाप्त किया । अब अपायोपायविदर्शी नामा पांचमो गुण पंद्रह गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

खवयस्स तीरपत्तस्स वि गुरुगा होंति रागदोसा हु ।

तम्हा छुहादिएहिं य खवयस्स विसोत्तिया होइ ।।४६४।।

अर्थ—तीर कहिये संसारका अन्त अथवा वर्तमान मनुष्यपर्यायका अन्त ताहिहू प्राप्त हुवा जो क्षपक ताकै क्षुधा तृषा रोग वेदनादिककरिके रागद्वेष तीव्र होय है, अर रागद्वेषकी तीव्रतातें क्षपकके परिणाम चलायमान होय हैं—अशुभपरिणाम होय है ।

थोणाइदूण पूव्व तप्पडिवक्ख पुणो वि आवण्णो ।

खवओ तं तह आलोचेदुं लज्जेज्ज गारविदो ।।४६५।।

अर्थ— दीक्षा लीनी तादिनतें आदि करिके अर आजतांई रत्नत्रयके अतीचार लाग्या होसी, सो सर्व निवेदन करस्यूं, गुरुनिकूं जणावस्यूं, ऐसे पूर्वे प्रतिज्ञा करिकेहू पश्चात् प्रतिपक्षी जो अभिमान भयादिक ताकूं प्राप्त होयकरिके अर यथावत् आलोचना करनेकूं लज्जावान् होय वा गौरवसहित होय यथावत् आलोचना करनेमें लज्जाकूं प्राप्त होय आलोचना न करे। गाथा—

तो सो हीलणभीरू पूयाकामो ठवेणइत्तो य।
णिज्जूहणभीरू वि य खवओ विनदो वि णालोचे ॥४६६॥

अर्थ—पश्चात् लज्जावान् होय चिंतवन करै–जो, गुरु मेरा अपराध जाणसी तो मेरी अवज्ञा करदेसी, ऐसे हीलनभीरु होय तथा जो यो मोकूं ऐसा अपराधी जाणसी तो वन्दना सत्कार उठि खडा होना इत्यादिक नहीं करसी ऐसें पूजाका इच्छुक होय, तथा मोकूं अपराधी जाणसी तो मेरा त्याग करसी संघबाहिर करसी। ऐसे आपकूं सुन्दर चारित्रके धारण करनेवालेनिमें स्थापनेका इच्छुक होयकरिके अर जो मुनि अपना दोष गुरुनिकूं नहीं कहे तो गुरु कहा करै? सो कहे हैं। गाथा—

तस्स अवायोपायविदंसी खवयस्स ओघपण्णवओ।
आलोचेंतस्स अणुज्जगस्स दंसेइ गुणदोसे ॥४६७॥

अर्थ—जो क्षपक यथावत् आलोचना नहीं करै तो अपायोपायविदर्शी जो गुरु सो सामान्यप्ररूपण करता संता मायाचारसहित आलोचना करनेवालेकूं गुणदोष दिखावै। भावार्थ—अपाय नाम रत्नत्रयका विनाश अर उपाय नाम रत्नत्रयका लाभ दोऊनिकूं प्रकट दिखावे है, सो अपायोपायविदर्शी गुरु है। सो गुरु संक्षेपतेंही ऐसा उपदेश करै, जातें क्षपककूं हृदयमें ऐसें प्रकट दीखि आवै जो मायाचारी होय आलोचना करै ताकै एते दोष प्रकट होय हैं। अर मायाचाररहित सरल होय आलोचना करै ताकै एते गुण प्रकट होय हैं। सोही कहे हैं। गाथा—

दुक्खेण लहइ जीवो संसारमहण्णवम्मि सामण्णं।
तं संजमं खु अबुहो णासेइ ससल्लमरणेण ॥४६८॥

अर्थ—भो मुने ! यो जीव अनादिको संसारसमुद्रमें परिभ्रमण करतो बड़ा दुःखकरिकें मुनिपणा पावे है । सो अज्ञानी शल्यसहित मरणकरिकें संयमका नाश करे है मुनिपणा बिगाडे है, सो ऐसा दुर्लभसंयमकूं बिगाडना बडा अनर्थ है । गाथा—

जह णाम दव्वसल्ले अणुद्धदे वेदणुद्दिदो होदि ।
तह भिक्खू वि ससल्लो तिव्वदुहट्टो भयोव्विग्गो ।।४६९।।

अर्थ—जैसें द्रव्यशल्य जो कंटक सली पगमें लगी हुई जो नहीं निकासैं, तो वेदनाकरि पीडित होय है, तैसें जो साधु भावनिकी शल्य आलोचना करि नहीं निकासैं, तो संसारमें तीव्रदुःखित होय है । तथा मेरी कौन गति होयगी ? मैं व्रत बिगाड्या है ! ऐसा भयकरि उद्वेगरूप रहे है । तथा गाथा—

कंटकसल्लेण जहा वेधाणी चम्मखोलणाली य ।
रप्पइयजालगत्तागदो य पादो सडदि पच्छा ।।४७०।।
एवं तु भावसल्लं लज्जागारवभएहिं पडिबद्धं ।
अप्पं पि अणुद्धरियं वदसीलगुणे वि णासेइ ।।४७१।।

अर्थ—जैसें कंटक अथवा बांस इत्यादिककी शल्यकरिकें वेध्या है जो पग, तामेंसूं जो शल्य नहीं निकसैं, तो चाम तथा नसके जालनिकूं बेधिकरि अर पगमें नाना छिद्र होय अर दुर्गंध राधि रुधिर पैदा होय पग गलिजाय है—सिडिजाय है, तैसें जो भावनिकी शल्य लज्जाकरिकें तथा अभिमानकरिकें तथा प्रायश्चित्तके भयकरिकें नहीं निकाले हैं, सो, आपका अपराधनें छिपावतो जो साधु, सो आपके व्रत शील गुण सर्वका नाश करै है । पश्चात् कहा करै सो कहै हैं । गाथा—

तो भट्ठबोधिलाभो अणन्तकालं भवण्णए भीमे ।
जम्मणमरणावत्ते जोणिसहस्साउलो भमदि ।।४७२।।

तत्थ य कालमणन्तं घोरमहावेदणासु जोणीसु ।
पच्चन्तो पच्चन्तो दुक्खसहस्साइ पप्पेदि ॥४७३॥

अर्थ—पश्चात् भ्रष्ट हुवा है रत्नत्रयका लाभ जाकै ऐसा मुनि अनंतकालपर्यंत संसारसमुद्रमें परिभ्रमण करे है। कैसाक है संसारसमुद्र ? अतिभयानक है अर जन्ममरणरूपही है भवण जामें, बहुरि चौरासी लक्ष योनिस्थानकरि व्याप्त है। तहां अनंतकालपर्यंत घोर महावेदनारूप योनिनिमें पचतो हजारां दुःखांकूं प्राप्त होय है। गाथा—

तं न खु खमं पमादा मुहुत्तमवि अत्थिदुं ससल्लेण ।
आयरियपादमूले उद्धरिदव्वं हवदि सल्लं ॥४७४॥

अर्थ—तातैं एकमुहूर्तमात्रहू प्रमादथकी शल्यकरि सहित तिष्ठवेकूं असमर्थ ऐसो क्षपक है सो आचार्यनिके चरणारविंदनिके निकट शल्य दूरि करने योग्य होय है।

तम्हा जिणवयणरुई जाइजरामरणदुक्खवित्तत्था ।
अज्जवमद्दणसंपण्णा भयलज्जाउ मोत्तूण ॥४७५॥
उप्पाडित्ता धीरा मूलमसेसं पुणब्भवलयाए ।
संवेगजणियकरणा तरन्ति भवसायरमणन्तं ॥४७६॥

अर्थ—तातैं जिनेंद्रका वचनमें है रुचि जिनके ऐसे, अर जन्मजरामरणतै भयभीत ऐसे, अर आर्जव जो सरलता, अर मार्दव जो कोमलपरिणाम तिनकरि सहित ऐसे, अर धीर वीर ऐसे, अर संसारपरिभ्रमणके भयतें उपजी है आत्मा के हित करने में प्रवृत्ति जिनके ऐसे क्षपक हैं ते गुरुनिका दीया प्रायश्चित्तका भयकूं तथा लज्जाकूं त्यागिकरिके, अर संसार में वारंवार उत्पत्ति होना, सोही जो बेलि, ताका मूल जो भावनिमें शल्य, ताहि उपाडिकरिके अर अनंतानंतसंसार-रूप समुद्रकूं तिरे हैं। भावार्थ—जो भगवानका वचनामें श्रद्धान करिके अर अनंतसंसारपरिभ्रमणके भयतें अपने भावनि में शल्य होय सो गुरुनिके निकटि आलोचनाकरि अर निर्भय हुवा प्रायश्चित्त ग्रहण करि रत्नत्रयकूं उज्ज्वल करे है,

सो संसारकी बेलि जो मायाचारादि शल्यकूं उखालो अर अनंतसंसारसमुद्रकूं तिरिकरिके निर्वाणका पात्र होय है। गाथा—

इय जइ दोसे य गुणे ण गुरू आलोयणाए दंसेइ।
ण णियत्तइ सो तत्तो खवओ ण गुणे ण परिणमइ ।४७७।
तह्मा खवएणाओपायविदंसिस्स पायमूलम्मि।
अप्पा णिव्विसिदव्वो धुवा हु आराहणा तत्थ ॥४७८॥

अर्थ—जो या प्रकार आपके दोष गुरुनिकूं प्रकट कहना, सो आलोचना, ताके करनेमें गुणका प्रकट होना अर आलोचना नहीं करने मे दोषका प्रकट होना जो गुरु नहीं दिखावे तो क्षपक दोषनितैं पराङ्मुख नहीं होय अर गुणनिमें नहीं परिणमैं। तातैं क्षपकनै अपायोपायविदर्शी गुणके धारक जे आचार्य तिनके चरणनिके निकट आपकूं स्थापन करना योग्य है। जातैं अपायोपायविदर्शी गुणके धारक गुरुनिके निकट निश्चयथकी आराधना होय है।

ऐसे सुस्थित नामा अधिकारविषै निर्यापकाचार्यके अष्टगुणनिमें अपायोपायविदर्शी नामा पांचमा गुण पन्द्रह गाथानिमें समाप्त किया। अब आगे निर्यापकाचार्यका अवपीडक नामा छट्ठा गुण बारह गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

आलोचणगुणदोसे कोई सम्मं पि पण्णविज्जन्तो।
तिव्वेहिं गारवादिहिं सम्मं णालोचए खवए ॥४७९॥
णिद्धं मधुरं हिदयंगमं च पल्हादणिज्जमेगन्ते।
तो पल्हावेदव्वो खवओ सो पण्णवंतेण ॥४८०॥

अर्थ—ऐसे आलोचनाके गुण अर दोष आचार्यकरि सत्यार्थ दिखाये हुयेहू कोऊ क्षपक तीव्र गौरवकरिके तथा लज्जाभयादिककरिके सत्यार्थ आलोचना नहीं करे, तो बुद्धिवान् जो आचार्य, सो एकांतस्थानकविषै क्षपककूं शिक्षा करै। कैसीक शिक्षा करै? स्नेहकी भरी, तथा कर्णनिकूं मिष्ट, तथा जो हृदयमें प्रवेश करिजाय, तथा आनन्द करनेवाली ऐसी शिक्षा करे—भो मुने! बहोत कठिनतातैं पाया जो रत्नत्रय, ताके अतीचारनिको आलोचना करनेमें सावधान होहू। लज्जा तथा भयकूं

प्राप्त मति होहू । मातापितासमान जो गुरु, तिनके निकट अपने दोष कहनेमें कहा लज्जा है ? वात्सल्यगुणका धारक जो गुरु सो आपके शिष्यके दोष जगतमें प्रकट करिके अर धर्मकी निंदा नहीं करावै है । तथा परका अपवाद कराय नीचगोत्र का कारण कर्मबन्ध नहीं करे है । तातें आलोचना करनेमें लज्जा मति करो । तथा जैसें तुमारे रत्नत्रयकी शुद्धि होयगी अर तपश्चरणका निर्वाह होयगा, तैसें द्रव्य क्षेत्र काल भावके अनुकूल प्रायश्चित्त तुमकूं दिया जायगा । तातें भयकूं त्यागि सत्यार्थ आलोचना करहू । गाथा—

णिद्धं महुरं हिदयंगमं च पल्हादणिज्जमेगन्ते ।
कोइ त्तु पण्णविज्जंतओ वि णालोचेए सम्मं ॥४८१॥

अर्थ—कोऊ क्षपक ऐसा होय है जो आचार्यनिकरिके एकांतमें स्नेहरूप तथा मधुर तथा हृदयमें प्रवेशकरि आनन्द करने वाला ऐसा वचनकरिके समझाया हुवाहू सत्यार्थ आलोचना नहीं करे तो अवपीडक गुणका धारक कहा करे ? सो कहे हैं ।

तो उप्पीलेदव्वा खवयस्सोप्पीलएण दोसा से ।
वामेइ मंसमुदरमवि गदं सीहो जह सियालं ॥४८२॥

अर्थ—मिष्टवचननितें समझाया हुवाहू क्षपक मायाचार छोडि सत्यार्थ आलोचना नहीं करे, तो अवपीडकगुणका धारक जो आचार्य सो क्षपकका दोषानें जबरीतें भयतें बाहिर निकालेही । जैसें सिंह आपका तेजकी जो त्रास ताकरिके स्यालका उदरमें प्राप्त हुवोभी मांस तत्काल वमन करावे है, जातें सिंहकूं देखतप्रमाण स्याल खाया हुवा मांसकूं तत्काल उगले है । तैसे तेजस्वी अवपीडकगुणका धारक आचार्य जा अवसरमें क्षपककूं पूछे है, जो, हे मुने ! ये दोष ऐसे ही है, सत्यार्थ कहो । तदि तत्काल भयवान् होय मायाशल्य निकालिकरिके सत्यार्थ आलोचना करे है । अर नहीं करै तो ताका अवपीडक गुरु तिरस्कारहु करे है—हे मुने ! हमारा संघतें निकसि जाहू । हमकरिके तुमारे कहा प्रयोजन है ? जो अपने शरीरके लग्या हुवा मल धोया चाहेगा, सो निर्मल जलके भरे सरोवरकूं प्राप्त होयगा । तथा जो महान् रोग करि दब्या हुवा जो रोगी अपना रोग दूर करया चाहेगा, सो प्रवीण वैद्यकूं प्राप्त होयगा । तैसेंही जो रत्नत्रयरूप परम धर्मका अतीचार दूरिकरि उज्वलता चाहैगा, सो गुरुजनका आश्रय करेगा । तुमारे रत्नत्रयकी शुद्धता करनेमें आदर नहीं है, तातें या मुनिपणाके व्रत धारण करनेकी विडंबना करि कहा साध्य है ? अर केवल च्यार प्रकारका आहारका

त्यागमात्र तो सल्लेखना, ताकरि कहा साध्य है ? कर्मका संवर अर निर्जरा तो कषायसल्लेखनाके अभावविना बाह्यक्रिया निष्फल है, तातें कषायनिग्रह करनाही श्रेष्ठ है ।

बहुरि कषायनिमेंहू मायाकषाय अतिनिंद्य है, तिर्यंचगतिकूं प्राप्त करनेमें समर्थ है। जो मायाचार नहीं त्यागया सो संसारसमुद्रमें प्रवेश किया। कैसा है संसारसमुद्र ? जामैंतै अनन्तानन्तकालहूमें निकलना कठिन है। अर तुमारा वस्त्रमात्रके त्याग करनेकरिके निर्ग्रंथपणाका अभिमान वृथा है ! जातें वस्त्ररहित नग्न अर शीत उष्णादिक परीषहके सहने वाले तो तिर्यंचहू जगतमें बहोत हैं। चतुर्दशप्रकार अभ्यंतरपरिग्रहका त्यागतेंही निर्ग्रंथपणा तिष्ठे है अर अभ्यन्तरपरिग्रह के त्यागके अर्थिही दशप्रकारका बाह्यपरिग्रहका त्याग करिये है। बहुरि जीवद्रव्य अर पुद्गलद्रव्य दोऊनिकी निकटतातेंही कर्मका बन्ध नहीं है। जातें कषायसहित रागी द्वेषी आत्माको परिणाम होय तदि बन्ध होय है, तातें बन्धका कारण कषायही है। बहुरि अतीचारसहित दर्शनज्ञानचारित्र मुक्तिका उपाय नहीं है, निरतिचारही मोक्षका मार्ग है, सो तुमारे श्रवणमें नहीं आया कहा ? अर दर्शनज्ञानचारित्रकी निरतिचारता गुरुनिकरि उपदेशा प्रायश्चित्तका आचरणविना होय नहीं है। अर गुरुहू आलोचना कियेविना प्रायश्चित्त नहीं देवे है। तातें भो मुने ! तुम दूरभव्य हो, अथवा अभव्य हो। जो निकटभव्य होते, तो ऐसे मायाशल्य कैसे राखते ? तातैं मायाचारी जो तुम, सो मुनिजनांके वन्दनायोग्य नहीं हो। अर जाकै लाभमें अर अलाभमें अर निंदामे स्तवनमें समानचित्त होय सो श्रमण वन्दनेयोग्य है। अर तुमारै ऐसा भाव है—जो हमारे दोष आलोचना करेंगे तो हमकूं निंदेंगे, प्रशंसा नहीं करेंगे। ऐसा अभिप्रायतें आलोचना यथावत् नहीं करो हो, सो तुमारे श्रमणपणाहूनहीं है। तदि कैसे वंदवे जोग्य होहूंगे? वन्दना करने योग्य नहीं हो। इत्यादिक वचननितें पीडा करि दोषनिकूं बाहिर निकासै। ऐसें अवपीडकगुरुका शरण ग्रहण करना योग्य है। अब अवपीडक गुरु कैसा होय, सो कहे हैं। गाथा—

उज्जस्सी तेजस्सी वच्चस्सी पहिदकित्तियायरिओ।

सीहाणुओ य भणिओ जिणेहिं उप्पीलगो णाम ।।४८३।।

अर्थ— जो बलवान् होय, जाकै परीषह उपसर्गमें कायरता नहीं होय; बहुरि प्रतापवान् होय, जाका वचनादिक कोऊ उल्लंघन करनेमें समर्थ नहीं होय; बहुरि प्रभाववान् होय, जाकूं देखतप्रमाण दोषसहित साधु कांपने लगि जाय तथा बडे बडे विद्याके धारक नम्रीभूत होजाय; बहुरि जाकी जगतमें कीर्ति विख्यात होय, जाकी कीर्ति सुणतांप्रमाण

जाके गुणनिका श्रद्धान दृढ होजाय, सर्व जगतमें विनादेख्याही जाका वचन दूरिदेशहीतें सर्व प्रमाण करें; बहुरि सिंहकीनांई निर्भय होय; ताकूं जिनेन्द्र भगवान् अवपीडक नाम कहे हैं। अब आगे कहे हैं, जो हितू होय सो जैसें हित होता जाने तैसी प्रवृत्ति करि हितमें युक्त करि दे। गाथा—

पिल्लेदूण रडंतं पि जहा बालस्स मुहं विदारित्ता।
पज्जेइ घदं माया तस्सेव हिदं विचिन्तन्ती ॥४८४॥
तह आयरिओ वि अणुज्जयस्स खवयस्स दोसणीहरणं।
कुणदि हिदं से पच्छा होहिदी कडु ओसहं वत्ति ॥४८५॥

अर्थ—जैसें बालकका हितनें चिंतवन करती जो माता सो रुदन करताहू बालककूं दाबिकरिके अर बालकका मुख फाडिकरके अर घृतदुग्धादिक पान करावे है, तैसे शिष्यका हितनें चिंतवन करता आचार्यहू मायाचारसहितहू क्षपकका मायाशल्य नामा दोष ताकूं बलात्कार करि दूरि करे है। सो दोष दूरि करना, ताके कडवी औषधिकीनांई पश्चात् हित करे है। अर जो गुरु शिष्यका दोष देखिकरिकेहू तिरस्कार नहीं करे है अर केवल मिष्टवचनही कहे है, सो गुरु भला नहीं जानना ठिग है। गाथा—

जिब्भाए वि लिहन्तो ण भद्दओ जत्थ सारणा णत्थि।
पाएण वि ताडिन्तो स भद्दओ जत्थ सारणा अत्थि ॥४८६॥

अर्थ—जो गुरु जिह्वाकरिके मिष्टहू बोले है अर जाके दोषनितें शिष्यनिकूं निवारण करना नहीं है, सो गुरु सुन्दर नहीं है। अर जो चरणनिकरि ताडनाहू करे है अर जाकै शिष्यनिकूं दोषनितें रोकना निवारण करना विद्यमान है, सो गुरु भला है, सुन्दर है। गाथा—

सुलहा लोए आदट्ठचितगा परहिदम्मि मुक्कधुरा।
अदट्ठं व परट्ठं चिंतन्ता दुल्लहा लोए ॥४८७॥

अर्थ—जे आपका हितरूप प्रयोजनकूं तो चिंतवन करै अर परके हित करने में आलसी ऐसे मनुष्य या जगतमें सुलभ हैं बहोत है। अर जे आपका प्रयोजनकीनांई अन्यजीवका प्रयोजनकी चितामें उद्यमी हैं, ते पुरुष या लोकमें दुर्लभ हैं, विरले हैं। गाथा—

आदट्ठमेव चितेदुमुट्ठिदा जे परट्ठमवि लोगे।
कडुय फरुसेहिं साहेंति ते हु अदिदुल्लहा लोए ॥४८८॥

अर्थ—इस लोकमें जे आपका प्रयोजन करने में उद्यमवंत हैं अर अन्यका प्रयोजनहू कटुक वचनकरिकैंहू तथा कठोर वचनकरिकेहू सिद्ध करे हैं, ते पुरुष लोकमें अतिदुर्लभ हैं। गाथा—

खवयस्स जइ ण दोसे उग्गालेइ सुहमेव इदरे वा।
ण णियत्तइ सो तत्तो खवओ ण गुणे य परिणमइ ।४८९।

अर्थ—जो आचार्य क्षपककू कठोर वचनादिककरि मायाचारादिक सक्ष्म दोष वा स्थूल दोष नहीं उगलावै—नहीं वमन करावै, तो क्षपक सूक्ष्मस्थूल दोषनितै निराला नहीं होवै, अर गुणनिमे नहीं प्रवृत्ति करै। तातै अवपीडक गुणका धारक आचार्यही दोषनितै छुडाय गुणनिमें प्रवर्त्तन करावे है। गाथा—

तह्मा गणिणा उप्पीलएण खवयस्स सव्वदो साहु।
ते उग्गालेदव्वा तस्सेव हिदं तहा चेव ॥४९०॥

अर्थ—तातै अवपीडक गुणका धारक जो आचार्य तानै क्षपकका संपूर्ण दोष उगलावनेयोग्य है। जातै दोष वमन कराय देना, सोही क्षपकका हित है।

ऐसै सुस्थित नामा अधिकारविषै निर्यापक आचार्यके अष्टगुणनिविषै अवपीडक नामा छट्ठा गुण बारह गाथानिकरि समाप्त कीया। अब अपरिश्रावी नामा सातमां गुण दश गाथानिकरि वर्णन करे हैं। गाथा—

लोहेण पीदमुदयं व जस्स आलोचिदा अदीचारा।
ण परिस्सवंति अण्णत्तो सो अप्परिस्सवो होदि ॥४९१॥

अर्थ--जैसें तप्तायमान जो लोह, ताकरि पीया जल बाहिर नहीं दीखे है, तैसें जाकें क्षपककरि आलोचना कीये दोष अतीचार अन्यमुनीश्वरनिमें नहीं प्रकट होय सो आचार्य अपरिस्राव गुणका धारक होय है। भावार्थ-शिष्यनिकरि कह्या दोष जो आचार्य बाहिर प्रकट करि कोऊकूं नहीं जणावै, सो अपरिस्राव गुणका धारक आचार्य होय है। जो दोष होय ताकूं गुरु ही जाणै अर दूजा करनेवाला जाणै, तीसरा नहीं जाणै, यही बडा गुण है। गाथा-

दंसणणाणादिचारे वदादिचारे तवादिचारे य।
देसच्चाए विविधे सव्वच्चाए य आवण्णो ॥४६२॥
आयरियाणं वीसत्थदाए कहोदि सगदोसे।
कोई पुण णिद्धम्मो अण्णेसिं कहेदि ते दोसे ॥४६३॥
तेण रहस्सं भिदन्तएण साधु तदो य परिचत्तो।
अप्पा गणो य संघो मिच्छत्ताराधणा चेव ॥४६४॥

अर्थ--कोऊ साधुकै दर्शनमें अतीचार प्राप्त भया होय अथवा ज्ञानमें अतीचार तथा व्रतनिमें अतीचार तथा तपमें अतीचार तथा एकदेशत्यागमें अतीचार तथा सर्वत्यागमें अतीचार जाके लाग्या होय ऐसा जो मुनि, सो आचार्यनिका विश्वास करिके अपने दोष प्रकट करिके कहै-जो, ये भगवान् गुरु परमदयालु संसारमें शरण, इनकूं दोष कहना उचित है। या विचारि एकांतमें गुरुनिकूं सर्व दोष निवेदन करे। तहां कोऊ जिनप्रणीत धर्मतैं पराङ्मुख ऐसा अधर्मी अचार्यनिमें अधम अन्यलोकनिकूं अन्यमुनीनकूं कहै-प्रकट करै, जो, याने ऐसा अपराध किया है। ते शिष्यके कहे दोष तौ वह रहस्यका आलोचना किया दोषकूं प्रकाश करनेवाला जो अधम आचार्य, ताने क्षपकका त्याग भेदनेवाला कहिये किया। जातैं क्षपक आपका दोषका प्रकाश होनेतैं लज्जावान् होय दुःखित होय है, वा आत्मघात करे है, वा क्रोधी होय रत्नत्रयकूं त्यागत है। तथा आचार्य अपने आत्माका त्याग किया, अर गणका त्याग किया तथा संघका त्याग हुवा तथा मिथ्यात्वकी आराधना होय है। भावार्थ--जो आचार्य होय अर शिष्यका दोष प्रकट किया, सो शिष्यका त्याग किया वा अपने आत्मा का त्याग किया वा गणका त्याग किया, वा संघका त्याग किया, वा मिथ्यात्वकी आरधना करी। साधु त्याग कैसा हुवा सो कहे हैं। गाथा-

लज्जाए गारवेण व कोई दोसे परस्स कहिदोवि ।
विप्परिणामिज्ज उधावेज्ज व गच्छाहि वा णिज्जा ।४६५।

अर्थ—अपने दोष प्रकट होता संता परके अर्थि कहता संता कोऊ साधु लज्जाकरिके वा गारवकरिके विपरिणामी होजाय—जुदा होजाय । यह गुरु मोकूं प्रिय नहीं, जो मेरा गुरु होय तो हमारा कैसे दोष कहै ? यह गुरु हमारा बारला प्राण है ऐसे जो, सोचा, सो या भावना आजि नष्ट भई । अथवा दोष प्रकट करनेकरिके सघतैं अन्य संघमें प्रवेश करे अथवा रत्नत्रयका त्याग करै । अब आत्मपरित्यागकूं कहे हैं ।

कोई रहस्सभेदं कदे पदोसं गवो तमायरियं ।
उद्दावेज्ज व गच्छं भिंदेज्ज वहेज्ज पडिणीओ ।।४६६।।

अर्थ—कोऊ साधु आपका रहस्यका भेद होतां प्रद्वेष जो बैर ताने प्राप्त होय आचार्यकूं मारण करे, कोऊ संघमें भेद करे । अहो मुनिजनहो ! सुनहू, धर्मस्नेहरहित ऐसे गुरुकरि कहा साध्य है ? जैसे हमारा अपराध प्रकट करि जगतमें हमकूं दूषित किया, तैसे तुमकूंहू दूषित करेगा । या प्रकार प्रत्यनीक कहिये वैरी होजाय । अब गणत्याग कैसे करे सो कहे हैं । गाथा—

जह धरिसिबो इमो तह अम्हं पि करिज्ज धरिसणमिमोत्ति
सव्वो वि गणो विप्परिणसेज्ज छंडेज्ज वायरियं ।।४६७।।

अर्थ—जैसे ई क्षपककूं दूषित करि तिरस्काररूप किया, तैसे हमकोहू तिरस्कार करेगा ! ऐसे सर्व गण आचार्यतैं भिन्न होजाय वा आचार्यका त्याग करे । अब संघहू त्यक्त होय है सो कहे हैं । गाथा—

तह चेव पवयणं सव्वमेव विप्परिणयं भवे तस्स ।
तो से दिसावहारं करेज्ज णिज्जूहणं चावि ।।४६८।।

अर्थ—तैसेही प्रवचन जो सर्व च्यार प्रकारका संघ वा रत्नत्रय तिनतैं विरुद्धपरिणतिकूं प्राप्त होय तो आचार्यका त्याग करे तथा आचार्यपणा बिगाड दे । अब मिथ्यात्वकी आराधनाका प्रतिपादनके अर्थि कहे हैं । गाथा—

जदि धरिसणमेरिसयं करेदि सिस्सस्स चेव आयरिओ ।

धिद्धि अपुट्ठधम्मो समणोत्ति भणेज्ज मिच्छजणो ॥४९९॥

अर्थ—जो आचार्य शिष्यकी ऐसी अवज्ञा करै, ऐसा अपवाद करै, तातैं धर्मको पुष्टतारहित ये मुनि, तिनकूं धिक्कार होहू ! धिक्कार होहू !! ऐसे मिथ्यादृष्टिजन कहे है ।

इच्चेवमादिदोसा ण होंति गुरुणो रहस्सधारिस्स ।

पुट्ठेव अपुट्ठे वा अपरिस्साइस्स धीरस्स ॥५००॥

अर्थ—जो पूछेतंहू शिष्यके कहे दोष न कहै, अर नहीं पूछेतंहू आलोचनामें कह्या दोष नहीं कहै, ऐसा रहस्य जो गुप्तिका धारक आचार्य, ताकै इत्यादिक पूर्वं कहे दोष नहीं होय हैं ।

ऐसें सुस्थित नामा अधिकारविषै निर्यापकाचार्यके अष्टगुणनिविषै अपरिस्रावी नामा सातमां गुण दश गाथानिमें समाप्त किया । आगे निर्यापक नामा अष्टमां गुण द्वादश गाथानिकरि कहे हैं ।

संथारभत्तपाणे अमणुण्णे वा चिरं व कीरन्ते ।

पडिचरगपमादेण य सेहाणमसंवुडगिराहिं ॥५०१॥

सीदुण्हछुहातण्हाकिलामिदो तिव्ववेदणाए वा ।

कुविदो हवेज्ज खवओ मेरं वा भेत्तुमिच्छेज्ज ॥५०२॥

णिव्ववएण तदो से चित्तं खवयस्स णिव्ववेदव्वं ।

अक्खोभेण खमाए जुत्तेण पणट्ठमाणेण ॥५०३॥

अर्थ—जो वैयावृत्यके टहलके करनेवाले जे परिचारक तिनका प्रमादकरिके सस्तर अमनोज्ञ हुवा होय तथा, भोजन पान अमनोज्ञ हुवा होय, तथा संस्तरादिक करनेमें विलम्ब किया होय तिनकरिके, तथा शिष्यनिका संवररहित वचनकरिके, तथा शीत, उष्ण, क्षुधा, तृषादिकको बाधाकरिके, तथा तीव्र रोगादिकको वेदनाकरिके, जो क्षपक कोपकूं

प्राप्त होय जाय, तथा व्रतनिकी मर्यादा तथा संन्यासमें त्याग होय तिनकी मर्यादा भंग करनेकी इच्छा करै तदि क्षोभ जो आकुलता ताकरिके रहित अर क्षमायुक्त अर मानरहित ऐसा निर्यापक आचार्य है सो क्षपकका मनकूं प्रशांत करै-वेदना-रहित करै, व्रतनिमें दृढ करै, मर्यादाका भंगतै उपज्या पापतै भयरूप करै, सो निर्यापकगुणका धारक आचार्य होय है। ऐसा आचार्य होय सो रक्षा करै सो कहे हैं। गाथा—

अंगसुदे य बहुविधे णो अंगसुदे य वहुविधविभत्ते।
रदणकरंडयभूदो खुण्णो अणिओगकरणम्मि ॥५०४॥

अर्थ—जो बहुत प्रकार अंगश्रुत तथा बहुत प्रकार नो अंगश्रुत इनमें रत्न मेलनेके पिटारे तुल्य होय-जैसे पिटारेमें रत्न जिसतरह धारण करै तिसतरै धरया रहै घटै बधै नहीं, तैसे जिनका आत्मा अंगादिक श्रुतज्ञाननै धारण किया, तैसा का तैसा हीनता अधिकता रहित धारण करै, ऐसा निर्यापकगुणका धारी होय है। बहुरि अनुयोग जे सत् संख्या क्षेत्र स्पर्शन काल अन्तर भाव अल्प बहुत्व इन अनुयोगनिकरि जीवादिकतत्त्वनिके जाननेमें कुशल होय, प्रवीण होय, सोही क्षपककूं निर्विघ्न संसारसमुद्रके पार करै।

अब इहां अंग नामा श्रुतज्ञान तथा अंगबाह्यश्रुतज्ञानका स्वरूप जानने योग्य है। तातै श्रीगोम्मटसार नाम ग्रन्थ तामें जो ज्ञानमार्गणाका वर्णन श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती परमागमके अनुकूल किया तहांतै किंचिन्मात्र कथन इहां प्रकरण जानि हमारा उपयोगकी शुद्धताके अर्थि करिये है। सर्व ज्ञानमार्गणाका वर्णन किये, ग्रन्थ बहुत हो जाय। तातैं एकदेश श्रुतभावनाके अर्थि वर्णन करिये हैं।

ज्ञानके भेद पांच हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, ये पंचप्रकारके सम्यग्ज्ञान हैं। ये पांचूंही ज्ञान पदार्थका स्वरूपकूं जैसा है तैसा जानै है न्यून नहीं जाने हैं, अर अधिकहू नहीं जाने हैं, तैसा जानै है, जैसा स्वरूप है तैसा जानै है, यद्यपि सामान्य संग्रहरूप द्रव्यार्थिकनयका आश्रयकरि ज्ञान एकरूपही है, तथापि विशेष अपेक्षाकरि पर्यायार्थिकनयकूं आश्रय करिके ज्ञानके पंच भेद कहिये हैं। तिनमें मति, श्रुत, अवधि, मनः-पर्यय ये च्यारि ज्ञान तो क्षायोपशमिक हैं। जातैं मतिज्ञानादिकनिका आवरण तथा वीर्यान्तराकर्मका जे सर्वघातिस्पर्धक तिनका तो उदयाभाव क्षय है, जो, आत्माका सर्वगुणनै घातै, सो सर्वघातिस्पर्द्धक, तिनका तो उदयरूप होय रस नहीं

देना यहही क्षय है। अर जे उदयावलीमें नहीं आये ऐसे जे सर्वघातिस्पर्धक तिनका सत्तामें अवस्थितरूप रहना, सोही उपशम। ऐसा क्षय अर उपशम, अर देशघातिस्पर्धकनिका उदय, तातं क्षायोपशमिक कहिये। सो सर्वघातिस्पर्धकनिका क्षयोपशम होजाय तदि मतिज्ञानावरणादिकनिका देशघातिस्पर्धकनिका उदय विद्यमान होतेहू ज्ञानकी उत्पत्तिका अभाव नहीं होय। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान इनि च्यारि ज्ञाननिमें जिस ज्ञानका आवरण नामा कर्मका सर्वघातिस्पर्धकनिका क्षयोपशम होजाय सोही ज्ञान प्रकट होय है। तातें ये च्यारूं ज्ञान क्षायोपशमिक हैं। अर सर्व ज्ञानावरण का अत्यन्त क्षय होनेतें उपजे है, तातें केवलज्ञान क्षायिक है।

अब मिथ्याज्ञानकी उत्पत्ति तथा कारण, अर स्वरूप, अर स्वामी, अर भेद तिनकूं कहे हैं। जो मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान अर अवधिज्ञान ये तीनूंही ज्ञान मिथ्यात्वका उदयसहित तथा अनन्तानुबन्धी क्रोधका वा मानका वा मायाका वा लोभका उदयसहित जो जीव, ताकै कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, विभंगज्ञान ये विपरीत होय हैं। जैसे कडवी तूम्बीमें प्राप्त हुवा मिष्टहू दुग्ध जहररूप परिणमे है, तैसे मति-श्रुत-अवधि-ज्ञानावरणके क्षयोपशतें उपजे जे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ते मिथ्यात्व अर अनन्तानुबन्धीका उदयकूं अनुभव करता मिथ्यादृष्टि जीवके कुमति-कुश्रुत-विभंगरूप विपरीत होत हैं। सो इन तीनप्रकार ज्ञानका विशेष स्वरूप ऐसे जानना-जा जीवके परका उपदेशविनाही तैलकपूंरादिक परस्पर संयोगतें उपजी मारणशक्तिसहित विष बणायवेमें बुद्धि प्रवर्ते, सो कुमतिज्ञान है। तथा सिंहव्याघ्रादिकके पकडनेकूं ऐसा काष्ठमय यंत्र बनावे-जाके अभ्यंतर तो बकरादिक जीवकूं दिखावे अर तामें पाद स्थापन करतांई कपाट जुडि जाय, ऐसी जातिका यंत्र बणायवेमें जाकै निपुणता होय, उपदेशविनाही बुद्धि उपजे, सोही कुमतिज्ञान है। तथा जाकै मत्स्य, काछवा, मूंसा इत्यादिक पकडने के अर्थि काष्ठादिककरि रच्या कूट बनावनेमें बुद्धि होय, तथा तीतर हरिणादिकके पकडनेकूं जाल तथा पींजरा, तथा ऊंट, हस्ती इत्यादिक पकडनेकूं खाडेनिमें बन्धन रचना, तथा पक्षीनिके पकडनेकूं दीर्घ वासनिके ल्हासा इत्यादिक, तथा गृहमें रहनेवाले हिरणादिकनिके सींगनिमें अन्य हिरणादिकनिकूं पकडनेकूं सूतकी पासी फंदा रचनेमें उपदेशविनाही जाकी बुद्धि प्रवर्ते, सो कुमतिज्ञान है। तथा अन्यजीवनिको ठिगनेकूं, परका धन राख मेलनेकूं, तथा परकी स्त्री हरनेकूं, परजीवनिके मारनेकूं, धनके चोरनेकूं, तथा अन्य भोले जीवनिकी आजीविका तथा जमीं जायगा मकान खोसि लेनेमें, तथा अन्यका अपमान करनेमें, तथा न्यायमें सांचा होय ताकूं झूंठा कर देनेमें, तथा झूंठेकूं सांचा करनेमें, तथा परके दूषण लगाय देनेमें, तथा धर्मात्माकूं चोरी अन्यायीरूप दोष लगाय देनेमें, तथा कुदेवमें मूढजीवांकी देवत्वबुद्धि कराय

देनेमें, तथा पाखंडीनिकूं पुजाय देनेमें, तथा आप व्यसनी पापी होय जगतमें पूजा प्रशंसा आपकी करा लेनेमे इत्यादिक हिंसा झूंठ कुशील, परधनहरण, परिग्रह बधावनरूप पापनिमें जाके परका उपदेशविनाही बुद्धि उपजै, सो सर्व कुमतिज्ञान है। तथा औरहू पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, वनस्पति, त्रस इनि छकायके जीवनिका घात करि सांसारिक अनेक यंत्र, अनेक क्रिया, अनेक रागकारी वस्तुके उपजावनेमें जाके उपदेशविनाही बुद्धि उपजै, सो कुमतिज्ञान है। तथा ग्रामनगरादिककूं दग्ध करनेको तथा सर्व देशग्रामनिवासी जीवनिका तथा परकी सेनाका विध्वंस करनेका उपायभूत शस्त्र अग्नि विषादिक उत्पन्न करनेकी जाके बुद्धि प्रकट होय, सो सर्व कुमतिज्ञान है।

अर जो परके उपदेशतै बुद्धि उपजै, सो कुश्रुतज्ञान है। बहुरि चौरनिका शास्त्र, तथा कोटपालपणाका शास्त्र, तथा जामें कौरवपांडवसम्बन्धी तथा पञ्चपांडवनिके एक द्रोपदी भार्या कहना अर पंचभर्त्तारीकूं सती कहना, तथा संग्राम युद्धका कथन जामें ऐसा ग्रन्थ तथा रामरावणादिकनिकू वानर राक्षसजाति अर वानरराक्षसनिके युद्धादिरूप कथन तथा मिथ्यादर्शनदूषित सर्वथैकांतवादीनिकी स्वेच्छाकरि कल्पित कथानिकी रचना, तथा हिंसायज्ञादिक गृहस्थकर्मका वर्णन, तथा त्रिदंडधारण जटाधारणादि तपकी प्रशंसा, तथा षोडशपदार्थ षट्पदार्थ भावना विधिनियोगका कथन, तथा भूतचतुष्टयतै जीवका उपजना, तथा पचीस तत्त्वका कहना, तथा ब्रह्माद्वैत विज्ञानाद्वैत तथा सर्वशून्यत्ववादिक तथा नास्तिकताके प्रवर्तक खोटे शास्त्रनिमें अभ्यास सो सर्व कुश्रुतज्ञान जानना।

बहुरि मिथ्यादर्शनकरिके कलंकित जीवके अवधिज्ञानावरण अर वीर्यांतरायका क्षयोपशमतै उत्पन्न हुवा अर द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादाकूं आश्रय कीया अर रूपी द्रव्य है विषय जाका ऐसा विभंगज्ञान है। तथा आप्त आगम पदार्थविषै विपरीत ग्रहण करनेवाला विभंगज्ञान जानना। सो यो विभंगज्ञान मनुष्यगति अर तिर्यंचगतिमें तो तीव्र कायक्लेश, तप अर द्रव्यसंयमकरिके उपजे है, तातै गुणप्रत्यय है। अर देवनारकीनिके भवप्रत्यय है, जातै देवनिका वा नारकीनिका जो भव धारेगा; ताके अवधिज्ञान होयहीगा। सो मिथ्यादृष्टीनिका कु-अवधि कहावे है, ताहीको विभंगज्ञान कहिये है। सो विभंगज्ञान मिथ्यात्वादि कर्मबंधका बीज है—कारण है। तथा कोऊके नरकादिकगतिमै पूर्वजन्मका उपजाया जो पापकर्म, ताका फल तीव्र दुःखकी वेदना, ताकरिके जीवके ऐसा चिंतवन होय "जो मै पूर्वजन्ममें हिंसादिक घोर पाप सेवन कीया तथा सप्तव्यसन सेवन कीया, ताका फल नरकमें प्रत्यक्ष पाया!" ऐसें पापकूं निंदता जीवके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानादिककाहू कारण जानना। ऐसें तीन कुज्ञानका सामान्यस्वरूप कह्या।

भगवती आरा.

श्रब मतिज्ञानका स्वरूप श्रर भेद कहे है। यो मतिज्ञान है सो इन्द्रियद्वारैं जाने है, इन्द्रियनिविना नाहीं जाने है। श्रर इन्द्रिय है सो स्थूलपदार्थकूं जानै, सूक्ष्मकूं नहीं जानै, श्रर वर्त्तमान कालवर्त्तीकूं जानै। श्रर जो वर्त्तमान नहीं ताकूं नहीं जानै। श्रर श्रपने योग्य देशमें तिष्ठतेकूं जानै, दूरि क्षेत्रमें तिष्ठतेकूं नहीं जानै, श्रर श्रपने विषयकूं जाने, श्रन्य इन्द्रियनिके विषयकूं श्रन्य इन्द्रिय नहीं जाने, जैसे शब्दकूं नेत्र इन्द्रिय नहीं जानै। इनि इन्द्रियनिके स्थूल जे स्पर्शादिक विषय तिनिका जानपनां जानना। श्रर सूक्ष्म श्रर श्रतरित श्रर दूरवर्ती जे परमाण्वादिक, नरक स्वर्ग मेरुपर्वतादिकनिके जाननेमें शक्तिका श्रभाव है। श्रर यो मतिज्ञान स्पर्शन रसन घ्राण नेत्र कर्ण इनि पच इन्द्रियनिकरि उपजे है, तथा मनकरिहूं मतिज्ञान उपजै है। ऐसें पांच इन्द्रिय छठा मनके द्वारै होय उपजे है, तथा मनकरिहूं मतिज्ञान उपजे है। इनिका विशेष ऐसा–

जो इन्द्रिय श्रर इन्द्रियके ग्रहणयोग्य विषय इनिका संयोग होताही जो वस्तुकी सत्तामात्रका ग्रहण, सो दर्शन है। जैसें दृष्टि पडतांही वस्तुका प्रकाशमात्र निर्विकल्प ग्रहणमे श्राया, सो चक्षुर्दर्शन है। ऐसेंही कर्णादिक च्यारि इंद्रियद्वारैं सामान्य विकल्परहित ग्रहण होय, सो श्रचक्षुर्दर्शन है। श्रर ताकै लगता ही जो देख्या हुवा पदार्थका वर्ण संस्थानादिक विशेष ग्रहण में श्रावै, सो श्रवग्रह नामा मतिज्ञान होय है।

भावार्थ—इन्द्रिय श्रर पदार्थ इनिका संबध होतांही जो सो सामान्य ग्रहण होइ। जो क्यूं देखने में श्राया, तथा कुछ श्रवण मै श्राया, तथा स्पर्शन मैं श्राया परंतु कुछ विशेष जानने में नहीं श्राया–जो कैसा रूप है वा कैसा शब्द है वा कैसा स्पर्श गंधादिक है। ऐसे विशेष तो जानने में नहीं श्रावै श्रर सामान्य सत्तामात्रका ग्रहण, सो दर्शन है। श्रर पाछैं पदार्थका रंग श्राकारादिकका ग्रहण, सो श्रवग्रह नामा मतिज्ञान है। जैसें ग्रहण में श्राया–यह श्वेत है, ऐसै श्वेतरूप जाण्या पदार्थमें विशेष जाणवाकी इच्छा जो यह श्वेत है सो बुगलांकी पंक्ति होसी! ऐसें जो श्रवग्रह में श्राया जो श्वेतपदार्थ ताहीमै विशेष जो बुगलांकी पंक्ति जाननेकी इच्छा श्रथवा ध्वजा देखी थी तिनमें ध्वजा जाननेकी इच्छा, सो ईहा नामा मतिज्ञानका दूसरा भेद है। श्रथवा जो या श्वेत दीखे है सो ध्वजानिकी पंक्ति होसी ऐसें जो वस्तु होय तामैं ताहीका जो ज्ञान होना सो ईहा नामा मतिज्ञान दूसरा भेद है। ऐसेंही शब्दादिकनिमें श्रन्य इन्द्रियद्वारैंहू ईहा होय है।

बहुरि जामैं ईहा उपजी थी, ताहीका निर्णय दृढ होना याका नाम श्रवाय है। जैसें बुगलांकी पंक्तिमैं ईहा नामा ज्ञान हुवो छो श्रर बहुरि पांखनिका ऊंचानीचादिक करनेकरि निश्चय होय जो या बुगलांकी पंक्तिही है ऐसें निर्णयरूप श्रवाय नामा तीसरा मतिज्ञानका भेद है।

बहुरि जाका निर्णय होगया, तामें बारंबार प्रवृत्ति करिके ऐसा निर्णय हुवा, जो 'कालांतरमें विस्मरण नहीं होय,' सो धारणा नामा मतिज्ञानका चौथा भेद है।

अथवा पदार्थके अर इन्द्रियके संबंध होतां ही सत्तामात्रका ग्रहण, सो तो दर्शन है, अर ताके लगता ही यो पुरुष है ऐसा ग्रहण होय, सो अवग्रह है। अर पुरुषका निश्चयरूप अवग्रह हुवा, तामें परिणाम हुवा जो 'यह पुरुष दक्षिणका है अक उत्तरका है ?' ऐसें संशय उपजता संता, संशयको दूरि करने के निमित्त यो दक्षिणी होसी ऐसा ज्ञानका उपजना सो ईहा है। बहुरि वेषभाषादिककरि यथावत् निर्णय हुवा जो दक्षिणी ही है, सो अवाय जनना। बहुरि कालांतरमें नहीं भूलना, सो धारणा है।

सो ये अवग्रहादिक बारह बारह प्रकार होय हैं। जहां बहोतका अवग्रह होय; जैसें बहोत गायनिमें कोऊ धोली है, कोऊ खांडी, कोऊ मूंडी इनिका ग्रहण, सो बहु अवग्रहादिक है। अर सेनामें हस्ती, घोडा, ऊंट, बलध, मनुष्य इत्यादिक अनेकजातिका अवग्रहादिक होय, सो बहुविध है। शीघ्रतातें पडता जो जलका प्रवाहादिक, ताका ग्रहण, सो क्षिप्रग्रहण है। बहुरि जलमें मग्न जो हस्ती इत्यादि ताका ग्रहण, सो अनिःसृतहग्रहण है। बहुरि वचनतें कह्याविना अभिप्रायतें जानि लेना, सो अनुक्तग्रहण है। बहुरि बहोत काल जैसाका तैसा निश्चल ग्रहण होय, सो ध्रुवग्रहण है। बहुरि अल्पका ग्रहण तथा एकका ग्रहण सो अल्पग्रहण है। बहुरि एकप्रकारका घोडा ऊंट बलध मनुष्यादिकनिमें एकजातिहीका ग्रहण, सो एकविधग्रहण है। बहुरि मंद गमन करता अश्वादिकनिका ग्रहण, सो अक्षिप्रग्रहण है। बहुरि प्रकट बाह्य निकल्या वा प्रकट हुवा ताका ग्रहण, सो निःसृतग्रहण है। बहुरि यो घट है ऐसें कह्या हुवाका ग्रहण, उक्तग्रहणहै। बहुरि क्षणमात्र स्थिति रहता जो बीजली इत्यादिकका ग्रहण, सो अध्रुवग्रहण है। ऐसें अवग्रह बारह प्रकार कह्या, तैसेंही बारह बारह प्रकार ईहा, अवाय, धारणा होय है ते सब मिलि एक इन्द्रियद्वारें अडतालीस भेद भये। तब पांचूं इन्द्रिय छठा मन इन छहूनिसूं गुणे २८८ भेद अर्थावग्रहके जानने। जातें नेत्रादिक इन्द्रियनिका विषय है सो तो अर्थ है, ताके बहु आदिक विशेषण हैं। इनि बहु इत्यादिक विशेषणकरि सहित सो अर्थ कहिये वस्तु, ताके अवग्रह ईहा अवाय धारणा ऐसा संबंध जोडि दोयसे अठ्यासी भेद जानिये।

बहुरि व्यंजन कहिये अव्यक्त जो शब्दादिक ताका अवग्रहही होय है, ईहादिक नहीं होय हैं, ऐसा नियम है। जैसे नवा मांटीका सरावाविषें जलका कण क्षेपिये तहां दाय तीन आदि कणांकरि सींच्या जेतें आला नहीं होय तेतें तो अव्यक्त है, सो व्यंजन है। बहुरि सोही सरावा फेरि फेरि सींच्या हुवा मंद मंद आला होय तब व्यक्त है। तैसे ही

श्रोत्रादिक इन्द्रियनिका अवग्रहविषै ग्रहणयोग्य जे शब्दादिस्वरूप परिणया पुद्‌गलस्कंध, ते दोय तीन आदि समयनि में ग्रह्या हुवा जेते व्यक्तग्रहण नहीं होय, तेतें तो व्यंजनावग्रह है। बहुरि फेरि फेरि तिनका ग्रहण होय तब व्यक्त होय, तब अर्थावग्रह होय है। ऐसे व्यक्तग्रहणतें पहले तो व्यंजनावग्रह कहिये। बहुरि व्यक्तग्रहणकूं अर्थावग्रह कहिये। यातें अव्यक्तग्रहणरूप जो व्यंजनावग्रह, तातें ईहादिक नहीं होय है ऐसें जानना। बहुरि नेत्र इन्द्रिय अर मन इन्द्रिय दोऊनिकरि व्यंजनावग्रहण नहीं होय है। जातें नेत्र इन्द्रिय अर मन इन्द्रिय ये दोऊ अप्राप्यकारी हैं–ये पदार्थतें भिडिकरि स्पर्शन करि नहिं जाने हैं–दूरिहीतें जाने हैं। जातें नेत्र इन्द्रिय है सो विनास्पर्श्या सन्मुख आया अर निकट प्राप्त हूवा अर बाह्य सूर्य चंद्रमा दीपकादिकरि प्रकट किया ऐसा पदार्थकूं जाने है। अर मन है सोहू विनास्पर्श्या दूरि तिष्ठता पदार्थकूं विचार में ले है। यातें इनि दोऊ इन्द्रियनिके व्यंजनावग्रह नाहीं होय है। ऐसें व्यंजनका अवग्रहही होय अर च्यारि इन्द्रियनिकरिही होय। तातें च्यारि इन्द्रियनिकरि बहु बहुविधादिक बारह भेदकूं गुणिये तब अठतालीस भेद होय हैं। बहुरि पूर्वे कहे अर्थावग्रहके दोय से अठ्यासी भेद अर व्यंजनावग्रहके अठतालीस भेद दोऊ मिलिकर तीनसो छत्तीस भेद मतिज्ञान के होय हैं।

बहुरि जो जलके बारै हस्तीकी सूंडिकूं देखिकरि जलमें मग्न जो हस्ती ताका जानना, सो अनिःसृत नामा मतिज्ञान है। अथवा साध्यतें अविनाभावका नियमका निश्चयरूप जो साधन, तातें साध्यका विज्ञान होना, सो अनुमान है। सो अनुमाननहू अनिःसृत नामा मतिज्ञान ही में गर्भित है। जातें साध्य जो हस्ती, ता विना सूंडि नहीं होने का नियम रूप है निश्चय जाका, ऐसो साधन जो सूंडि, तातें साध्य जो हस्ती, ताका जानना, सो अनुमानप्रमाण मतिज्ञानही है। बहुरि कोई स्त्रीका मुखका ग्रहण के कालहीमें अन्यवस्तुरूप जो चंद्रमा ताका ग्रहण होना, जातें मुखका सदृशपणातें चंद्रमाका स्मरण होना 'जो चंद्रमासमान मुख है' ऐसा प्रत्यभिज्ञान होय है। अथवा वन में गोसदृश गवयकूं ग्रहण करि गौका स्मरण होना 'जो, गोसदृश गवय है' ऐसा प्रत्यभिज्ञान होय है। तथा जैसं रसोई में अग्नि होतें ही धूम उपज्या देख्या अर जलका दहमें अग्निको अभाव है तामें धूमहू नहीं देख्या, तैसें सर्वदेश सर्वकालसंबंधिपणाकरि अग्नि के अर धूमके अन्यथानुपपत्तिरूप कहिये 'अग्निविना धूम नहीं ही होय' ऐसा अविनाभावसंबंधको ज्ञान, सो तर्क नामा मतिज्ञान है। ऐसे अनुमान स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क ये च्यारि मतिज्ञानका भेद जो अनिःसृत ताके विषय हैं–केवल परोक्ष है। जातें अनिःसृतमतिज्ञानके भेद जे अनुमान, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क ये च्यारि एक

देशहू विशदता जो निर्मलता ताके अभावतैं परोक्षही हैं। बहुरि शेष जे स्पर्शनादि इंद्रिय अर मन इनिका व्यापारतैं उपजे जे बहु इत्यादिक हैं विषय जिनका ऐसे मतिज्ञान, ते एकदेशनिर्मलतातैं सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष कहिये हैं। ते सर्व मतिज्ञान सम्यक् हैं। अर प्रमाण हैं।

अब श्रुतज्ञानका स्वरूप कहे हैं। प्रथम तौ मतिज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशमतैं मतिज्ञान उपजे है अर पाछै मतिज्ञानकरि ग्रहण कीया पदार्थका अवलंबन करिके अर अन्य अर्थकूं जाणै श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमतै, सो श्रुतज्ञान है। मतिज्ञानकी प्रवृत्तिका अभावकूं होतां श्रुतज्ञानहूकी प्रवृत्तिका अभाव है, ऐसा नियम है। अब इहां श्रुतज्ञानके प्रकरणविषैं श्रुतज्ञान दोयप्रकार है, एक अक्षरस्वरूप अर दूजा अक्षररहित। तिनमें ककारादिक तो अक्षर, अर विभक्त्यंत पद, अर परस्पर अपेक्षासहित पदनिका निरपेक्षसमुदाय सो वाक्य है। सो अक्षर, पद अर वाक्य इनितैं उपज्या जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान, सो तो प्रधान है, मुख्य है। जातैं देना, ग्रहण करना, शास्त्रनिका अध्ययन इत्यादिक संपूर्णव्यवहार का कारण तो अक्षरात्मक श्रुतज्ञानही है। अर अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान लिंगचिह्नतैं उपज्या एकेंद्रियादिक पंचेंद्रियपर्यंत जीवनिविषैं होय है, तोहू व्यवहारका प्रवर्ताविने में प्रधान नाहीं, तातैं अप्रधान है। बहुरि जैसे जीव विद्यमान है ऐसा शब्दका ज्ञान तो कर्णेन्द्रियकरि उपज्या मतिज्ञान है अर या मतिज्ञानतैं 'जीव विद्यमान है' ऐसैं शब्दकरि कहने में आया जो जीवका अस्तित्व ताकूं होतां जो वाच्यवाचकका संबंधका संकेतका जोडपूर्वक जो ज्ञान उपजे है, सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। अथवा कोऊ घट ऐसा दोय अक्षर कह्या, सो घट ये दोय अक्षरका जानना सो कर्णेन्द्रियद्वारें उपज्या मतिज्ञान है अर घटशब्दरूप मतिज्ञानतैं जलका धारन करनेवाला घटका आकार ज्ञान में प्रकट होजाना सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

बहुरि जैसे पवन देहके लाग्या तदि पवनका शीतस्पर्शका जानना सो तो स्पर्शन इन्द्रियद्वारें मतिज्ञान है अर पवनका शीतस्पर्शरूप ज्ञानतैं जो वातप्रकृतिवालाके 'यह अमनोज्ञ है विकारकारी है' ऐसा ज्ञान होना, सो अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। इहां श्रुतज्ञान अक्षरात्मक अर अनक्षरात्मक कह्या। तिनमें अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके भेदमें पर्याय पर्यायसमास है लक्षण जाका, सो सर्वजघन्य ज्ञाननैं आदि लेय आपका उत्कृष्ट पर्यन्त असंख्यातलोक मात्रज्ञान के भेद हैं। अर ते असंख्यातलोकमात्र भेद कैसे हैं ? असंख्यातलोक मात्र बार षट्स्थान वृद्धिकरि वर्द्धित है। अर अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो एक घाटि एकट्ठी प्रमाण जे अपुनरुक्त अक्षर तानैं आश्रय करि संख्यात भेदरूप है। सो एक घाटि एकट्ठी के अक्षरनिका प्रमाण ऐसा जानना— १८,४४,६७,४४०,७३७०,९५५१६,१५।

अब श्रुतज्ञानके बीस भेद कहे हैं—१.पर्याय, २.पर्यायसमास, ३.अक्षर, ४.अक्षरसमास,५.पद, ६.पदसमास, ७.संघात, ८. संघातसमास, ९.प्रतिपत्तिक, १०.प्रतिपत्तिकसमास, ११.अनुयोग, १२. अनुयोगसमास, १३. प्राभृतप्राभृतक, १४.प्राभृतक प्राभृतकसमास, १५. प्राभृत, १६. प्राभृतसमास, १७. वस्तु, १८. वस्तुसमास, १९. पूर्व, २०. पूर्वसमास ऐसे श्रुतज्ञानके भेद जानने । तिनमें सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके उत्पन्न हूवाके प्रथमसमयमें आवरणरहित सर्वजघन्य शक्तिरूप पर्याय नामा श्रुतज्ञान होय है । सो पर्यायज्ञानके आवरण नहीं, जो पर्यायज्ञानकेहू आवरण होय तो संपूर्णज्ञानका अभाव होजाय, तदि आत्माका अभाव होय । तातें पर्यायज्ञानसूं सिवाय घटिवाने ठिकाना नहीं, तातैं पर्यायज्ञान निरावरण जानना । सो सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके जन्मका प्रथमसमयमें सर्वजघन्य स्पर्शनेन्द्रियजनित मतिज्ञानपूर्वक लब्ध्यक्षर है दूसरा नाम जाका ऐसा जघन्यपर्याय नामा श्रुतज्ञान होय है । लब्धि नाम श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशमका है अथवा अर्थग्रहणकी शक्तिकूं लब्धि कहिये । लब्धिकरि जो विनाशरहित सो लब्ध्यक्षर, इतना ज्ञानका क्षयोपशम सदाकाल रहे है । सो सूक्ष्म-लब्ध्यपर्याप्तक निगोदियाका जो पर्याय नामा ज्ञान, ताके जाननेकी शक्तिका अविभागपरिच्छेद कितना है सो कहे हैं ।

द्विरूपवर्गधाराविषें दोयका वर्ग ४ । अर दूसरा स्थान १६ । तीजा वर्गस्थान २५६ । चौथा वर्गस्थान पणट्ठी ६५५३६ । पांचमां वर्गस्थान बादाल ४२९४९६७२९६ । छट्ठा वर्गस्थान एकट्ठी १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ ऐसे परस्पर गुणनरूप अनन्तानन्त वर्गस्थान गये जीवराशिका प्रमाण उपजे है । बहुरि ताके ऊपरि अनन्तानन्त वर्गस्थान गये पुद्गलराशिका प्रमाण उपजे है । बहुरि ताके ऊपरि अनन्तानन्त वर्गस्थान गये कालका समयकी राशि उपजे है । बहुरि ताके ऊपरि अनन्तानन्त वर्गस्थान गये आकाशका प्रदेशांकी श्रेणीका प्रमाण उपजे है । बहुरि ताके ऊपरि अनन्तानन्त वर्ग-स्थान गये धर्म अधर्म द्रव्यके अगुरुलघु नामा गुणका अविभागप्रतिच्छेद उपजे है । बहुरि ताके ऊपरि अनन्तानन्त वर्गस्थान गये एक जीवका अगुरुलघुगुणका अविभागप्रतिच्छेद उपजे है । बहुरि ताके ऊपरि अनन्तानन्त वर्गस्थान गये सूक्ष्मनिगो-दिया लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यज्ञान जो पर्यायज्ञान ताका अविभागप्रतिच्छेद उपजे है । यातैं सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक का सबतैं जघन्यज्ञानके जाननेकी शक्तिरूप अनन्तानन्त अविभागप्रतिच्छेद है । तिनके ऊपरि द्वितीयादिक भेद षड्गुणी वृद्धिकरि वर्धित हैं । १. अनन्तभागवृद्धि, २. असंख्यातभागवृद्धि, ३. संख्यातभागवृद्धि, ४. संख्यातगुणवृद्धि, ५. असंख्यात-गुणवृद्धि, ६. अनन्तगुणवृद्धि, ऐसे असंख्यातलोकप्रमाण षट्स्थानवृद्धिरूप असंख्यातलोकप्रमाण पर्यायसमासज्ञानके भेद

होय हैं। सो इनि षट्स्थानवृद्धिका स्वरूप गोमटसार नाम ग्रंथमें सदृष्टिसहित विशेषकरिके कह्या है। तथापि संक्षेपकरिके इहांहू कहिये हैं।

जो अनन्तानन्त वर्गस्थान गये जो सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकका पर्याय नामा ज्ञानका शक्तिका अंशरूप जो अविभागप्रतिच्छेद अनन्तानन्त कह्या, ताके जीवराशिप्रमाण अनन्तका भाग देय जो लब्ध आवै तिनकूं पर्यायज्ञानका परिमाणमें मिलाइये। सो जितना अविभागप्रतिच्छेद हुवा सो पर्यायसमासज्ञानका प्रथमभेदका अविभागप्रतिच्छेदका प्रमाण होय है। ऐसे याके फेरि जीवराशिप्रमाण अनन्तका भाग देयदेय मिलाता जाइए, सो पर्यायसमासज्ञानका दूजा, तीजा इत्यादिक भेद होय है। सो याका क्रम ऐसा—जो अनन्तका भाग देयकरि बधावै सो अनन्तभागवृद्धि है, सो सूच्यंगुलका असंख्यातवा भागप्रमाण अनन्तभागवृद्धि होजाय, तदि एकबार असंख्यातभागवृद्धि होय। बहुरि सूच्यंगुलके असंख्यातभागप्रमाण अनन्तभागवृद्धि होजाय, तदि फेरि एकबार असंख्यातभागवृद्धि होय, ऐसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागबार अनन्तभागवृद्धि होय, तब एकबार असंख्यातभागवृद्धि होतें होतें असंख्यातभागवृद्धिहू सूच्यंगुलके असंख्यातभागबार होजाय, तदि बहुरि सूच्यंगुलके असंख्यातभागबार अनन्तभागवृद्धि होय, फेरि एकबार संख्यातभागवृद्धि होय। ऐसे करते करते सूच्यंगुलका असंख्यातभागबार संख्यातभागवृद्धि होजाय, तदि फेरि सूच्यंगुलके असंख्यातवां भागबार अनन्तभावृद्धि होय तब तो एकबार असंख्यातभागवृद्धि होय। ऐसे सूच्यंगुलके असंख्यातभागबार असंख्यातभागवृद्धि होय तदि एकबार संख्यातभागवृद्धि होय। ऐसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण संख्यातभागवृद्धि होय तब एकबार संख्यातगुणवृद्धि होय।

बहुरि जैसे इतने पलेटे लागि एकबार संख्यातगुणवृद्धि भई, तैसे सूच्यंगुलके असंख्यातभाग बार संख्यातगुणवृद्धि तदि पाछला सर्व पलेटा लागि एकबार असंख्यातगुण वृद्धि होय। ऐसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातगुणवृद्धि होजाय; तदि पाछिला कह्या सर्व पलेटा लागि एकबार अनन्तगुणवृद्धि होय है। सो यो अनन्तगुणवृद्धिरूप स्थान है सो दूसरा षट्स्थानमें जानना। बहुरि याके ऊपरि सूच्यंगुलका असंख्यातभागबार अनन्तभागवृद्धि होय, तदि एकबार असंख्यातभागवृद्धि होय। इत्यादि असंख्यातलोकमात्र षट्स्थानवृद्धि होय है। सो ये सर्व भेद अनक्षरात्मक जो पर्याय समासज्ञानके भेद जानने।

अब आगे अक्षररूप जो श्रुतज्ञान, ताही प्ररूपण करे हैं। असंख्यातलोकप्रमाण जे षट्स्थान, तिनके मध्य जो अन्तका षट्स्थान, ताका जितना अविभागप्रतिछेद है सो पर्यायसमासज्ञानका सर्वोत्कृष्ट भेद है। अर पर्यासमासज्ञानतें

अनन्तगुणा अर्थाक्षरज्ञान है। अक्षर तीनप्रकार होय हैं—१. लब्ध्यक्षर, २. निर्वृत्यक्षर, ३. स्थापनाक्षर। तिनमें पर्याय-ज्ञानावरणने आदि लेय श्रुतकेवलज्ञानावरणपर्यन्त क्षयोपशमतें उपजी जो आत्माके अर्थग्रहण करनेकी शक्ति सो लब्धि कहिये, भावेन्द्रिय है। तीरूप जो अक्षर सो लब्ध्यक्षर है। जातें लब्ध्यक्षरके अक्षरज्ञानकी उत्पत्तिको हेतुपणो है। बहुरि कंठ, ओष्ठ, तात्वादिक जे स्थान तिनका स्पर्शनादिक जे करणरूप प्रयत्न, तिनकरि निर्वृत्यमान कहिये उत्पन्न भया है स्वरूप जाका, ऐसा अकारादिक तो स्वर अर अकारादिक व्यजनरूप तो मूलवर्ण अर मूलवर्णनिका सयोगादिकका संस्थान, सो निर्वृत्यक्षर है। बहुरि पुस्तकनिमे अनेकदेशका अनुकूलपणांकरि लिख्या जो संस्थान सो स्थापनाक्षर है। ऐसे एक अक्षरका श्रवणतें उपज्या जो अर्थज्ञान सो एकाक्षर श्रुतज्ञान है, ऐसें जिनेन्द्रभगवानने कह्या है। अब शास्त्रके विषयका प्रमाण कहे हैं। सो इहां गोम्मटसारोक्त गाथा भी लिखिये हैं। गाथा—

पण्णवणिज्जा भावा अणन्तभागो दु अणभिलप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण अणन्तभागो दु सुदणिवद्धो ॥३३४॥गो. सा. जी.॥

अर्थ—अनभिलाप्यानां कहिये वचनगोचर नांहीं–केवल ज्ञानहीके गोचर जे भाव कहिये जीवादिक अर्थ, तिनके अनन्तवें भागमात्र जीवादिक अर्थ, ते प्रज्ञापनीया; कहिये तीर्थंकरकी सातिशय दिव्यध्वनिकरि कहनेमें आवे ऐसे हैं। बहुरि तीर्थंकरकी दिव्यध्वनिकरि पदार्थ कहनेमे आवे है तिनके अनन्तवें भागमात्र द्वादशांगश्रुतविषें व्याख्यान कीजिये हैं। जो श्रुतकेवलीकूं भी गोचर नाहीं ऐसा पदार्थ कहनेकी शक्ति दिव्यध्वनिविषें पाइये है। बहुरि जो दिव्यध्वनिकरि भी न कह्या जाय, तिस अर्थ जाननेकी शक्ति केवलज्ञानविषें पाइये है, ऐसा जानना। आगे दोय गाथानिकरि अक्षरसमासकूं प्ररूपें है। गाथा—

एयक्खरादु उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढन्तो।
संखेज्जे खलु उड्ढे पदणामं होदि सुदणाणं ॥३३५॥गो. सा. जी.॥

अर्थ—एक अक्षरतें उपज्या जो ज्ञान ताके ऊपरि पूर्वोक्त षट्स्थानपतित वृद्धिका अनुक्रमविना एक एक अक्षर बधता दोय अक्षर, तीन अक्षर, च्यारि अक्षर इत्यादि एक घाटि पदका अक्षरपर्यन्त अक्षरसमुदायका सुननेकरि उपजे ऐसे अक्षर-समासके भेद संख्याते जानने। तेस्थान भेद दोय घाटि पदके अक्षर जेते होहिं तितने हैं। बहुरि इसके अनन्तरि उत्कृष्ट अक्षरसमासविषें एक अक्षर बधतें पद नामा श्रुतज्ञान होय है।

सोलससयचउतीसा कोडी तियसीदिलक्खयं चेव ।

सत्तसहस्साट्ठसया अट्ठासीदो य पदवण्णा ।।३३६।।गो. सा. जी.।।

अर्थ—पद तीन प्रकार है, १. अर्थपद, २. प्रमाणपद, ३. मध्यमपद । तहां जितना अक्षरसमूहकरि विवक्षित अर्थ जानिये, सो तो अर्थपद कहिये । जैसे कह्या कि, "गामभ्याज शुक्लां दण्डेन" इहां इस शब्दके ए च्यारि पद हैं, गां अभ्याज शुक्लां दण्डेन, ए चारि पद भये, अर्थ याका यहु—जो गायकूं घेरि सुफेदको दण्ड करी । ऐसेही कह्या कि, "अग्निमानय" इहां दोय पद भये—अग्नि, आनय । अर्थ यहु—जो अग्निको ल्याव । ऐसें विवक्षित अर्थके अर्थि एक दोय आदिक अक्षरनिका समूह, ताकूं अर्थपद कहिये । बहुरि प्रमाण जो संख्या, तींहने लिये जो अक्षरसमूह ताको प्रमाणपद कहिये । जैसें अनुष्टुपछन्दके च्यारि पद । तहां एक पदके आठ अक्षर होय । ,,नमः श्रीवर्द्धमानाय" यहु एक पद भया । याका अर्थ—यहु—जो श्रीवर्द्धमान स्वामी के अर्थि नमस्कार होहु । ऐसे प्रमाण पद जानना । बहुरि सोलासे चौतोस कोडि, तियासी लाख, सात हजार, आठसे अठ्यासी १६३४,८३,०७,८८८ । गाथाविषें कहे अपुनरुक्त अक्षर तिनका समूह सो मध्यमपद कहिये । जो अक्षर एकवार आगया सो फेरि दूसरा नहीं आवे, ताको अपुनरुक्त कहिये हैं । इनिविषें अर्थपद अर प्रमाणपद तो हीन अधिक अक्षरनिका प्रमाण लीये लोकव्यवहारकरि ग्रहण किये हैं । तातें लोकोत्तरपरमागमविषें गाथाविषें कही जो संख्या, तिहविषें वर्तमान जो मध्यमपद, ताहीका ग्रहण जानना । आगे संघात नामा श्रुतज्ञानकूं प्ररूपे हैं ।

एयपदादो उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढन्तो ।

सखेज्जसहस्सपदे उड्ढे संघादणाम सुद ।।३३७।।गो. सा. जी.।।

अर्थ—एकपदके ऊपरि एक एक अक्षर बधतें बधतें एकपदका अक्षर प्रमाणपदसमास भेद भये पदज्ञान दूणा भया । बहुरि इसतें एकएक अक्षर बधतें पदका अक्षर प्रमाणपदसमासके भेद भये पदज्ञान तिगुणा भया । ऐसैंही एक एक अक्षरकी बधवारी लीये पदका अक्षर प्रमाणपदसमासज्ञानके भेद होत संते चोगुणा पंचगुणा आदि संख्यात हजार करि गुण्या हुवा पदका प्रमाणमें एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत पदसमासके भेद जानने । पदसमासज्ञानका उत्कृष्ट भेदविषें सोही एक अक्षर मिलाये संघात नामा श्रुतज्ञान होहै । सो च्यारि गतिविषें एक गति के स्वरूपका निरूपण करनहारे जे

मध्यपद, तिनका समूहरूप संघात नामा श्रुत, ताके सुननेतें जो अर्थज्ञान भया ताको संघातश्रुतज्ञान कहिये। आगे प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञानका स्वरूपकूं कहे हैं।

एक्कदरगदिणिरूवयसंघादसुदादु उवरि पुव्वं वा।
वण्णं संखेज्जे संघादे उड्ढम्हि पडिवत्ती ॥३३८॥गो. सा. जी.॥

अर्थ—एकगतिका निरूपण करनहारा जो संघात नामा श्रुत, ताके ऊपरि पूर्वोक्तप्रकारकरि एक एक अक्षरकी बधवारी लिये एक एक पदकी वृद्धिकरि संख्यात हजार पदका समूहरूप संघातश्रुत होय है। बहुरि इसही अनुक्रमतें संख्यात हजार संघातश्रुत होय। तिनमैंसूं एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत सघातसमास के भेद जानने। बहुरि अतका संघातसमास श्रुतज्ञानका उत्कृष्टभेदविषै वह अक्षर मिलाइये, तब प्रतिपत्तिक नामा श्रुतज्ञान होहै। नारकादिक च्यारिगतिका स्वरूप विस्तारपणैं निरूपण करनहारा जो प्रतिपत्तिक नामा ग्रंथ ताके सुननेतैं जो अर्थज्ञान भया, ताको प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान कहिये। आगै अनुयोग श्रुतज्ञान कहिये। आगे अनुयोग श्रुतज्ञान प्ररूपे है। गाथा—

चउगइसरूवरूवयपडिवत्तीदो दु उवरि पुव्वं वा।
वण्णे संखेज्जे पडिवत्तीउड्ढम्मि अणियोगं ॥३३९॥गो. सा. जी.॥

अर्थ—च्यारि गतिके स्वरूपका निरूपण करनहारा प्रतिपत्तिक श्रुत, ताके ऊपरि प्रत्येक एक एक अक्षरकी वृद्धि लीये संख्यात हजार पदनिका समुदायरूप संख्यात हजार संघात अर संख्यात हजार संघातनिका समूह प्रतिपत्तिक, सो ऐसे प्रतिपत्तिक संख्यातसहस्र होय, तिनविषै एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत प्रतिपत्तिकसमास श्रुतज्ञानके भेद भये। बहुरि तिसका अतभेदविषै वह एक अक्षर मिलाये अनुयोग नामा श्रुतज्ञान भया, सो चोदह मार्गणाके स्वरूपका प्रतिपादक अनुयोग नामा श्रुत ताके सुननं तैं जो अर्थ ज्ञान भया ताकों अनुयोग श्रुतज्ञान कहिये। आगे प्राभृतक प्राभृतक को दोय गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

चोद्दसमग्गणसंजुदअणियोगादुवरि वड्ढिदे वण्णे।
चउरादीअणियोगे दुगवार पाहुड होदि ॥३४०॥गो. सा. जी.॥

अर्थ—चोदह मार्गणाकरि सयुक्त जो अनुयोग, ताके ऊपरि प्रत्येक एक एक अक्षरकी वृद्धिकरि संयुक्त पदसंघात प्रतिपत्तिक इनकी पूर्वोक्त अनुक्रमतें वृद्धि होतें च्यारि आदि अनुयोगनिकी वृद्धिविषै एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत अनुयोगसमास के भेद भये। बहुरि तिसका अंतभेदविषै वह एक अक्षर मिलाये प्राभृतकप्राभृतक नामा श्रुतज्ञान होहै। गाथा—

अहियारो पाहुडयं एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो ।

पाहुडपाहुडणामं होदि त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ।।३४१।।गो. सा, जी.।।

अर्थ—आगें कहियेगा जो वस्तु नामा श्रुतज्ञान ताका जो एक अधिकार, ताहीका नाम प्राभृतक कहिये। बहुरि जो उस प्राभृतकका एक अधिकार ताका नाम प्राभृतकप्राभृतक कहिये, ऐसा जिनदेवने कह्या है। आगे प्राभृतकका स्वरूप कहे हैं। गाथा—

दुगवारपाहुडादो उवरिं वण्णे कमेण चउवीसे ।

दुगवारपाहुडे संउड्ढे खलु होदि पाहुडयं ।।३४२।।गो. सा. जी.।।

अर्थ—द्विकवार प्राभृत जो प्राभृतकप्राभृतक ताके ऊपरि पूर्वोक्त अनुक्रमतैं एकएक अक्षरकी वृद्धि लीयें चोबीस प्राभृतकप्राभृतकनिकी वृद्धिविषै एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत प्राभृतकप्राभृतकसमासके भेद जानने। बहुरि ताका अंतभेदविषै वह एक अक्षर मिलाये प्राभृतक नामा श्रुतज्ञान होहै। भावार्थ—एकएक प्राभृतक नामा अधिकारविषै चोबीस २ प्राभृतकप्राभृतक नामा अधिकार होहैं। आगे वस्तुनामा श्रुतज्ञानकूं प्ररूपे हैं। गाथा—

वीसं वीसं पाहुडअहियारे एक्कवत्थुअहियारो ।

एक्केक्कवण्णउड्ढी कमेण सव्वत्थ णायव्वा ।।३४३।।गो. सा. जी.।।

अर्थ—तिह प्राभृतकके ऊपरि पूर्वोक्त अनुक्रमतैं एक एक अक्षरकी वृद्धितैं पदादिकी वृद्धिकरि संयुक्त बीस प्राभृतककी वृद्धि होत संतैं वामैं एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत प्राभृतकसमासके भेद जानने। बहुरि ताका अंतभेदविषै वह एक अक्षर मिलाइये वस्तु नामा अधिकार होहै। भावार्थ—पूर्व संबंधी एकेक वस्तुनामा अधिकारविषै बीस बीस प्राभृतक पाइये हैं। बहुरि सर्वत्र अक्षरसमासका प्रथमभेदतैं लगाय पूर्वसमासका उत्कृष्ट भेदपर्यंत अनुक्रमतैं एकएक अक्षरका बढना, बहुरि पदका बढना, बहुरि संघातका बढना इत्यादि परिपाटीकरि यथासभव वृद्धि सबनिविषै जाननी। आगें तीन गाथानिकरि पूर्व नामा श्रुतज्ञानको कहे हैं। गाथा—

दसचोदसट्ठ अट्ठारसयं बारं च बार सोलं च ।

वीसं तीसं पण्णारसं च दस चदुसु वत्थूणं ।।३४४।।गो. सा. जी.।।

अर्थ—तींह वस्तुश्रुत के ऊपरि एक एक अक्षरको वृद्धि लिये अनुक्रमतें पदादिक वृद्धिकरि संयुक्त क्रमतें दश आदि वस्तुनिकी वृद्धि होत सन्ते उनमेंसूं एक एक अक्षर घटावने पर्यन्त वस्तुसमासके भेद जानने। बहुरि तिनके अन्तभेदनिविषै एकेक अक्षर मिलाये चोदह पूर्व नामा श्रुतज्ञान होय। तहां आगे कहिये हैं। उत्पाद नामा पूर्व आदि चोदह पूर्व तिनविषै अनुक्रमतें दस, चोदह, आठ, अठारह, बारह, सोलह, बीस, तीस, पन्द्रह, दस, दस, दस, दस वस्तु नामा अधिकार पाइये हैं। गाथा—

उप्पायपुव्वगाणियविरियपवादत्थिणत्थियपवादे।
णाणासच्चपवादे आदाकम्मप्पवादे य ॥३४५॥
पच्चक्खाणे विज्जाणुवादकल्लाणपाणवादे य।
किरियाविसालपुव्वे कमसोथ तिलोयविंदुसारो य ॥३४६॥गो. सा. जी.॥

अर्थ—चोदह पूर्वनिके नाम अनुक्रमतें ऐसे जानने। १. उत्पाद, २. अग्रायणीय, ३. वीर्यप्रवाद, ४. अस्तिनास्ति-प्रवाद, ५. ज्ञानप्रवाद, ६. सत्यप्रवाद, ७. आत्मप्रवाद, ८. कर्मप्रवाद, ९. प्रत्याख्यान, १०. विद्यानुवाद, ११. कल्याणवाद, १२. प्राणवाद, १३. क्रियाविशाल, १४. त्रिलोकबिन्दुसार। ये चोदह पूर्वके नाम जानने। इनके लक्षण आगे कहेंगे। इहां ऐसें जानना—पूर्वोक्त वस्तु श्रुतज्ञान के ऊपरि क्रमतें एकएक अक्षरकी वृद्धि लिये पदादिककी वृद्धि होते दश वस्तुप्रमाण मेंसूं एक अक्षर घटाइये तहांपर्यन्त वस्तुसमासज्ञानके भेद हैं, ताके अन्त भेदविषै वह एक अक्षर मिलाइये उत्पादपूर्व नामा श्रुतज्ञान हो है।

बहुरि उत्पादपूर्वश्रुतज्ञानके ऊपरि एकएक अक्षर की वृद्धि लीये पदादिककी वृद्धिसंयुक्त चोदह वस्तु होय, तामें एक अक्षर घटाइये, तहांपर्यंत उत्पादपूर्वसमास के भेद जानने। ताके अंतभेदविषै वह एक अक्षर बधे अग्रायणीयपूर्व नामा श्रुतज्ञान होहै। ऐसें ही क्रमतें आगे आगे आठ आदि वस्तुनिकी वृद्धि होतें तहां एक अक्षर घटावनेपर्यंत तिसतिस पूर्वसमासके भेद जानने। तिसतिसका अंतभेदविषैं सो सो एक अक्षर मिलाये वीर्यप्रवाद आदि पूर्व नामा श्रुतज्ञान होहै। अंत का त्रिलोकबिंदुसार नामा पूर्व आगे ताका समास के भेद नाहीं हैं, जातैं याके आगे श्रुतज्ञान के भेद का अभाव है। आगे चोदह पूर्वनिविषैं वस्तु नामा अधिकारनिकी वा प्राभृत नामा अधिकारनिकी सख्या कहे हैं। गाथा—

पण्णउदिसया वत्थू पाहुडया तियसहस्सणवयसया ।

एदेसु चोद्दसेसु वि पुव्वेसु हवंति मिलिदाणि ॥३४७॥गो० सा० जी०॥

अर्थ—ये जो उत्पाद आदि त्रिलोकबिंदुसारपर्यंत चोदह, पूर्व तिनिविषैं मिलाये हुये दश आदि वस्तु नामा अधिकार सर्व एकसो पिच्याणवै हो हैं १९५। बहुरि एकएक वस्तुविषै बीस बीस प्राभृतक है। तातैं सर्व प्राभृतक नामा अधिकार तीन हजार ३९०० जानने। आगे पूर्वं कहे जे श्रुतज्ञानके बीस भेद तिनका उपसंहार दोय गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

अत्थक्खरं च पदसंघादं पडिवत्तियाणिजोगं च ।

दुगवारपाहुडं च य पाहुडय वत्थु पुव्वं च ॥३४८॥

कम्मवण्णुत्तरवड्ढिय ताण समासा य अक्खरगदाणि ।

णाणवियप्पे वीसं गंथे बारस य चोद्दसयं ॥३४९॥गो० सा० जी०॥

अर्थ—अर्थाक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग, प्राभृतकप्राभृतक, प्राभृतक, वस्तु, पूर्व ये नव भेद, बहुरि एकएक अक्षरकी वृद्धि आदि यथासंभव वृद्धि लीये इनही अक्षरादिकनिके समास, तिनकरि नव भेद अक्षरसमास, पदसमास, संघातसमास, प्रतिपत्तिकसमास ऐसैं समासशब्द लगाये नव भेद भये। ऐसैं सर्व मिलि अठारह भेद अक्षरात्मक द्रव्यश्रुतके हैं। अर ज्ञानकी अपेक्षा इनही द्रव्यश्रुतनिके सुननेतैं जो ज्ञान भया सो उस ज्ञान के भी अठारह १८ भेद कहिये।

बहुरि अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके पर्याय अर पर्यायसमास ये दोय भेद मिलाये सर्व श्रुतज्ञानके बीस भेद भये। बहुरि ग्रन्थ जो शास्त्र ताको विवक्षा करिये तो आचारांगादिक द्वादश अंग अर उत्पाद आदि चोदह पूर्व अर चकारतै सामायिकादिक चोदह प्रकीर्णक, तिनिस्वरूप द्रव्यश्रुत जानना। ताके सुननेतैं जो ज्ञान भया सो भावश्रुत जानना। पुद्गलद्रव्यस्वरूप अक्षरपदादिकमय तो द्रव्यश्रुत है, ताके सुननेतै जो श्रुतज्ञानका पर्यायरूप ज्ञान भया, सो भावश्रुत है। अब जे पर्याय आदिभेद कहे तिनि शब्दनिकी निरुक्ति व्याकरण अनुसार कहिये हैं।

'परीयन्ते' कहिये सर्व जाकरि व्याप्त है सो पर्याय कहिये। पर्यायज्ञानविना कोऊ जीव नाहीं। केवलज्ञानीनिकेहू पर्यायज्ञान संभवै है। जैसैं किसी के कोटि धन पाइये है, तो वाके एक धन तौ सहज ही वामें आया, तैसैं महा-

ज्ञानविषैं स्तोकज्ञान गर्भित जानना। बहुरि 'अक्ष' कहिये कर्ण इन्द्रिय, ताको अपना स्वरूपको 'राति' कहिये ज्ञानद्वारकरि दे है, तातैं अक्षर कहिये। बहुरि 'पद्यते' कहिये जाकरि आत्मा अर्थकूं प्राप्त होय, ताकूं पद कहिये। बहुरि 'सं' कहिये संक्षेपतैं 'हन्यते-गम्यते' कहिये जानिये एक गतिका स्वरूप जिहकरि सो संघात कहिये। बहुरि 'प्रतिपद्यंते' कहिये विस्तारतैं जानिये हैं च्यारि गति जाकरि सो प्रतिपत्तिक कहिये, नामसंज्ञाविषैं कप्रत्ययतैं प्रतिपत्तिक कहिये है। बहुरि 'अनु' कहिये गुणस्थाननिके अनुसारि युज्यन्ते कहिये सम्बन्धरूप जीव जाविषैं कहिये है सो अनुयोग कहिये। बहुरि प्रकर्षेण कहिये नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव अथवा निर्देश स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान, अथवा सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अंतर, भाव, अल्पबहुत्व इत्यादि विशेषकरि प्राभृत कहिये परिपूर्ण होइ, ऐसा जो वस्तुका अधिकार सो प्राभृत कहिये, अर जाकी प्राभृत संज्ञा होय सो प्राभृतक कहिये। बहुरि प्राभृतक का जो अधिकार सो प्राभृतकप्राभृतक कहिये। बहुरि 'वसंति' कहिये। पूर्वरूप समुद्रका अर्थ जिसविषैं एकदेशपनै पाइये सो पूर्वका अधिकार वस्तु कहिये। बहुरि 'पूरयति' कहिये शास्त्र के अर्थकूं पोषै सो पूर्व कहिये। ऐसैं दश भेदनिकी निरुक्ति कही। बहुरि 'सं' कहिये संग्रहकरि पर्याय आदि पूर्वपर्यंत भेदनिकूं अंगीकार करि 'अस्यन्ते' कहिये प्राप्त करिये भेद करिये ते समास कहिये। पर्यायज्ञानतैं जे पीछे भेद तिनको पर्यायसमास कहिये। अक्षरज्ञानतै जे पीछे भेद ते अक्षर-समास कहिये। ऐसैं ही दस भेद जानने। ऐसैं पूर्व चोदह, अर वस्तु ऐकसौ पिच्याणवै, अर प्राभृतक तीन हजार नवसै, अर प्राभृतकप्राभृतक तरेणवै हजार छसै, अर अनुयोग तीन लाख चहोत्तरि हजार च्यारिसै, अर प्रतिपत्तिक अर संघात अर पद ऐ क्रमतैं हजार गुणे, अर एक पद के अक्षर सोलहसै चोतीस कोडि, तियासी लाख, सात हजार, आठसै अठ्यासी अर समस्त श्रुतके अक्षर एक घाटि एकट्ठीप्रमाण, इनको पद के अक्षरनिका भाग दीये जो लब्ध राशि होइ सो द्वादशांग के पदनिका प्रमाण जानना। अब शेष अक्षर रहे ते अंगबाह्य श्रुतके जानने। तहां प्रथम द्वादशांगके पदनिकी संख्या कहे हैं।

बारुत्तरसयकोडी तेसीदी तह य होंति लक्खाणं।
अट्ठावण्णसहस्सा पचेव पदाणि अंगाणं ॥३५०॥गो० सा० जी०॥

अर्थ—एकसो बारह कोडी, तियासी लाख, अठावन हजार, पांच ११२,८३,५८,००५ पद सर्व द्वादशांग के जानने। अंग्यते' कहिये मध्यम पदनि करि जो लखिए सो अंगकहिए अथवा सर्व श्रुतका जो एकएक आचारांगादिकरूप अवयव

सो अंग कहिये। ऐसो अंग शब्दकी निरुक्ति है। आगे जो अंगबाह्य प्रकीर्णक तिनके अक्षरनिकी संख्या कहे हैं। गाथा–

अडकोडिएयलक्खा अट्ठसहस्सा य एयसदिगं च।
पण्णत्तरि वण्णाओ पइण्णयाण पमाणं तु ॥३५१॥गो० सा० जी०॥

अर्थ—बहुरि सामायिकादिक प्रकीर्णक तिनके अक्षर आठ कोडि, एक लाख, आठ हजार, एकसो पिचहत्तर ८०१०८१७५ जानने। आगे इस अर्थके निर्णय करनेके निमित्त च्यारि गाथानिकी प्रक्रिया कहे हैं। गाथा—

तेत्तीस विंजणाइं सत्तावीसा सरा तहा भणिया।
चत्तारि य जोगवहा चउसट्ठी मूलवण्णाओ ॥३५२॥गो० सा० जी०॥

अर्थ—ओ कहिये हो भव्य! तेतीस तो व्यंजनाक्षर हैं। आधी मात्रा जाकी बोलने के कालविषै होय, ताको व्यंजन कहिये। क् ख् ग् घ् ङ्। च् छ् ज् झ् ञ्। ट् ठ् ड् ढ् ण्। त् थ् द् ध् न्। प् फ् ब् भ् म्। य् र् ल् व्। श् ष् स् ह्। ये तेतीस व्यंजनाक्षर हैं। अ। इ। उ। ऋ ऋ लृ। ए। ऐ। ओ। औ। ये नव अक्षर, इनि एक एक के ह्रस्व दीर्घ प्लुत तीन भेदनिकरि गुणे सत्ताईस हो हैं। अ आ आ ३। इ ई ई ३। उ ऊ ऊ ३। ऋ ॠ ॠ ३। लृ लॄ लॄ ३। ए ए ए ३ ऐ ऐ ऐ ३। ओ ओ ओ ३। औ औ औ ३। ये सत्ताईस स्वर हैं। जाकी एक मात्रा होइ ताको ह्रस्व कहिये, जाकी दोय मात्रा होइ ताको दीर्घ कहिये, जाकी तीन मात्रा होइ ताको प्लुत कहिये। बहुरि च्यारि योगवह अक्षर हैं। अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय हैं। ये चौसठि मूल अक्षर अनादिनिधन परमागमविषै प्रसिद्ध हैं। "सिद्धो वर्णसमाम्नायः" इतिवचनात्। व्यज्यते कहिये अर्थ जिनकरि प्रकट करिये ते व्यंजन कहिये। स्वरान्त कहिये अर्थकूं कहै ते स्वर कहिये। योग कहिये अक्षरके संयोगकूं वहन्ति कहिये प्राप्त होय, ते योगवह कहिये। मूल कहिये और–अक्षरके संयोग रहित अर संयोगी अक्षर उपजनेको कारण ये चौसठि मूलवर्ण हैं। इस अर्थकरि ये द्वितीयादि अक्षरके संयोगरहित चौसठि अक्षर हैं। इनिविषैं दोय आदि अक्षर मिले संयोगी होहैं। जैसे क्कार व्यंजन अकार स्वरमिलिकरि क ऐसा अक्षर होहै। आकारके मिलनेतें का ऐसा अक्षर होहै। इत्यादिक संयोगी अक्षर उपजनेको कारण ये चौसठि श्रुतज्ञानके मूल अक्षर जानने। इहां प्रश्न—जो, व्याकरणविषै ए ऐ ओ औ इनिको ह्रस्व नहीं कहे हैं, इहां येभी ह्रस्व कैसे कहे? ताका समाधान—संस्कृतभाषाविषै ए ऐ ओ औ ह्रस्वरूप नाहीं हैं, तातें न कहे। प्राकृतभाषाविषैं वा देशांतरकी भाषाविषै

ए ऐ ओ औ ए अक्षर भी ह्रस्व होहैं, तातैं इहां कहे हैं। बहुरि एक दीर्घ लृकार संस्कृतभाषाविषैं नाहीं है, तथापि अनुकरणविषैं देशांतरकी भाषाविषैं होहै, तातैं इहां कह्या है। गाथा—

चउसट्ठिपदं विरलिय दुगं च दाउण संगुणं किच्चा।
रूऊणं च कए पुण सुदणाणस्सक्खरा होंति ॥३५३॥ गो० सा० जी०॥

अर्थ—मूलाक्षर प्रमाण चौसठि स्थान तिनका विरलन करिये बरोबरि पंक्तिरूप एकएक जुदाजुदा चोसठि जायगां मांडिये, तहां एक एकके स्थानकि दोयका अंक दोयका अंक मांडिये, पीछे उनके परस्पर गुणन करिये। दोय दूनो च्यारि च्यारि दूनो आठ ऐसे चोसठिपर्यन्त गुणन कीये जो एकट्ठी प्रमाण आवै तामैं एक घटाइये, इतने अक्षर सर्वद्रव्य श्रुत के जानने, ते ये अक्षर अपुनरुक्त जानने। अर जो वाक्यका अर्थकी प्रतीतिके निमित्त उनही कहे अक्षरनिको बारंबार कहे तो उनका किछू संख्याका नियम है नांहीं। तिन अपुनरुक्त अक्षरनिका प्रमाण कितना सो कहे हैं। गाथा—

एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता।
सुण्णं णव पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो य पणगं च ॥३५४॥ गो० सा० जी०॥

अर्थ—एक आठ च्यारि च्यारि छह सात च्यारि च्यारि शून्य सात तीन सात बिंदु नव पंच पंच एक छह एक पंच इतने क्रमतैं अंक लिखे जो प्रमाण होय, तितने अक्षर सर्व श्रुतके जानने। १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ इतने अक्षर हैं। द्विरूपवर्गधाराका छठ्ठा वर्गस्थान एकट्ठीप्रमाण है। तामैं एक घटाये ऐसे एक आदि पंचपर्यन्त बीस अंकरूप प्रमाण होहैं। बहुरि इहां विशेष कहिये हैं—एक अक्षर, एकसंयोगी, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि चौसठिसंयोगीपर्यन्त जानने। तिनकी उत्पत्तिका अनुक्रम दिखाइये हैं।

कहे मूलवर्ण चौसठि, तिनकौ बरोबरि पंक्तिकरि लिखिये। बहुरि तहां केवल क्वर्णविषैं तो एक प्रत्येक भंगही है, द्विसंयोगी आदिनांही है। बहुरि खवर्णसहितविषैं प्रत्येकभंग एक द्विसंयोगी एक ऐसैं दोय भंग है। बहुरि गवर्णसहितविषैं प्रत्येकभंग एक द्विसंयोगी दोय त्रिसंयोगी एक ऐसे च्यारि भंग हैं। बहुरि घ्वर्णसहितविषैं प्रत्येकभंग एक, द्विसंयोगी तीन, त्रिसंयोगी तीन, चतुःसंयोगी एक ऐसे आठ भंग हैं। बहुरि ङ्वर्णविषैं प्रत्येकभंग एक, द्विसंयोगी च्यारि, त्रिसंयोगी छह, चतुःसंयोगी च्यारि, पंचसंयोगी एक ऐसे सोलह भंग हैं। बहुरि चवर्णसहितविषैं प्रत्येकभंग एक, द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-षट्

संयोगी क्रमतैं पांच दस दस पांच एक ऐसे बत्तीस भंग हैं। बहुरि छवर्णसहितविषै प्रत्येक-द्वि-त्रि-चतुः-पंच-षट्-सप्त-संयोगी भंग क्रमतै एक छह पद्रह वीस पंद्रह छह एक ऐसे चौसठि भंग हैं। बहुरि जवर्णसहितविषै प्रत्येक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-षट्-अष्टसंयोगी भंग क्रमतै एक सात इकईस पेंतीस पेंतीस इकईस सात एक ऐसे एकसो अठाईस भंग हैं। बहुरि झवर्णसहितविषै प्रत्येक द्वि-त्रि-चतुः-पंच-षट्-सप्त-अष्ट-नवसंयोगी भंग क्रमतै एक आठ अठाईस छप्पन सत्तरि छप्पन अठाईस आठ एक ऐसे दोयसे छप्पन भंग है। बहुरि ञवर्णसहितविषै प्रत्येक-द्वि-त्रि-चतुः-पंच-षट्-सप्त-अष्ट-नव-दश-संयोगी भंग क्रमतै एक नव छत्तीस चौरासी एकसो छव्वीस चोरासी छत्तीस नव एक ऐसे पांचसै बारह भंग हैं। इसही अनुक्रमकरि चोसठि स्थाननिविषै प्रत्येक आदि भंग पूर्वपूर्वस्थानतै उत्तरोत्तर स्थानविषै दूणे दूणे हो हैं। इहां प्रत्येक आदि भंगनिका स्वरूप कहा सो कहिये हैं—जुदे ग्रहणरूप प्रत्येक भंग हैं, सो एकही प्रकार है। जैसें दशवा ञवर्ण की विवक्षाविषै ञवर्णको जुदा ग्रहण करिये, यहु ऐकही प्रत्येक भगका विधान जानना। बहुरि दोय तीन आदि अक्षरनिके संयोगतैं जे भंग होहि, तिनको द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि कहिये, ते अनेकप्रकार होहैं। जैसैं दशवा ञ्वर्ण की विवक्षाविषै दोय अक्षरनिका संयोग क्ञ्। ख्ञ्। ग्ञ्। घ्ञ्। ङ्ञ्। च्ञ्। छ्ञ् ज्ञ्। झ्ञ्। नवप्रकार होहै। बहुरि तीन अक्षर-निका संयोग क्ख्ञ्। क्ग्ञ्। क्घ्ञ्। क्ङ्ञ्। क्च्ञ्। क्छ्ञ्। क्ज्ञ्। क्झ्ञ्। ख्ग्ञ्। ख्घ्ञ्। ख्ङ्ञ्। ख्च्ञ्। ख्छ्ञ्। ख्ज्ञ्। ख्झ्ञ्। ग्घ्ञ्। ग्ङ्ञ्। ग्च्ञ्। ग्छ्ञ्। ग्ज्ञ्। ग्झ्ञ्। घ्ङ्ञ्। घ्च्ञ्। घ्छ्ञ्। घ्ज्ञ्। घ्झ्ञ्। ङ्च्ञ्। ङ्छ्ञ्। ङ्ज्ञ्। ङ्झ्ञ्। च्छ्ञ्। च्ज्ञ् च्झ्ञ्। छ्ज्ञ्। छ्झ्ञ्। ज्झ्ञ्। ऐसे छत्तीस प्रकार होहै। ऐसै ही अन्य जानने। बहुरि जितने की विवक्षा होय तितना संयोगी भंग एकही

जोड	क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	च्	छ्	ज्	झ्	ञ्	०००६४ पर्यंत
	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	प्रत्यक भगी
जोड १		१	२	३	४	५	६	७	८	९	द्विसयोगी.
जोड २			१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६	त्रिसयोगी.
जोड ४				१	४	१०	२०	३५	५६	८४	चतुःसयोगी.
जोड ८					१	५	१५	३५	७०	१२६	पचसयोगी.
जोड १६						१	६	२१	५६	१२६	षट्सयोगी
जोड ३२							१	७	२८	८४	सप्तसयोगी.
जोड ६४								१	८	३६	अष्टसयोगी.
जोड १२८									१	९	नवसयोगी
जोड २५६										१	दशसयोगी
जोड ५१२											०००००

प्रकार होवै। जैसें दश अक्षरनिको विवक्षाविषै दशअक्षरनिका संयोगरूप दश- संयोगी भंग एकही होवै। ऐसें भंग-निका स्वरूप जानना। गाथा—

पत्तेयभंगमेगं बेसंजोगं विरूवपदमेत्तं।

तियसंयोगादिपमा रूवाहियवारहीणपदसंकलिदं

अर्थ—विवक्षितस्थानविषैं सर्वत्र प्रत्येकभंग एकएक ही है। बहुरि द्विसंयोगी भंग एक घाटि गच्छप्रमाण है। इहां जेथवां स्थान विवक्षित होय तिहांप्रमाण गच्छ जानना। बहुरि त्रिसंयोगी आदिनिका क्रमतैं एक अधिकवार हीन गच्छाका संकलन घनमात्रप्रमाण है। भावार्थ–यह जो त्रिसंयोगी चतुःसंयोगी आदिविषैं एकवार दोयवार आदि संकलन करना बहुरि जेतीवार संकलन होय तातैं एक अधिक प्रमाणको विवक्षित गच्छमें घटाये अवशेष जेता प्रमाण रहै तितनेका तहां संकलन करना। जैसैं दसवां स्थानकी विवक्षाविषै त्रिसंयोगी भंग ल्यावने को एकवार संकलन अर एक-वार का प्रमाण एक तातै एक अधिक दोयसो गच्छ दशमें घटाये आठ होय। ऐसें आठका एकवार संकलन घनमात्र तहां त्रिसंयोगी भग जानने। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। सो इनका ल्यावनेका विधान करणसूत्रनितै श्रीगोमटसारजीमें है। सो इहां लिखे कथन बधिजाय, तातैं नहीं लिखे है। गाथा–

मज्झिमपदक्खरवहिदवण्णा ते अंगपुव्वगपदाणि।

सेसक्खरसंखा ओ पइण्णयाण पमाणं तु ॥३५५॥गो. सा. जी.॥

अर्थ—एक घाटि एकट्ठी प्रमाण समस्त श्रुतके अक्षर कहे तिनको परमागमविषै प्रसिद्ध जो मध्यमपद, ताके अक्षरनिका प्रमाण सोलासै चौतीस कोडि, तियासी लाख, सात हजार, आठसै अठ्यासी, ताका भाग दीये जो पदनिका प्रमाण आवै तितने तौ अगपूर्वसम्बन्धी मध्यमपद जानने। बहुरि अवशेष जे अक्षर रहे, ते प्रकीर्णकोके जानने। सो एकसो बारह कोडि, तियासी लाख, अठावन हजार, पांच, इतने तो अंगप्रविष्ट श्रुतका पदनिका परिमाण आया। अवशेष आठ कोडि, एक लाख, आठ हजार, एकसो पिचहत्तरि अक्षर रहे, ते अंगबाह्य प्रकीर्णकोंके जानने। ऐसे अंगप्रविष्ट अंगबाह्य दोयप्रकार श्रुतके पदनिका वा अक्षरनिका प्रमाण जानहू। आगे श्रीमाधवचन्द्र त्रैविद्यदेव तेरह गाथानिकरि अगपूर्वनिके पदनिकी संख्या प्ररूपे हैं।

आयारे सुद्दयडे ठाणे समवायणामगे अंगे ।
तत्तो विक्खायपण्णत्तीए णाहस्स धम्मकहा ॥३५६॥ गो. सा. जी.॥

अर्थ—द्रव्यश्रुत अपेक्षा सार्थक निरुक्ति लीये अंगपूर्वनिके पदनिकी संख्या कहिये हैं, जातैं भावश्रुतविषैं निरुक्त्यादि संभवै नाहीं। तहां द्वादश अंगनिविषैं प्रथमही आचारांग है, जातैं परमागम जो है सो मोक्षका निमित्त है, याहीतैं मोक्षाभिलाषी याको आदरे है। तहां मोक्षके कारण संवर निर्जरा तिनका कारण पंचाचारादिक सकलचारित्र है, तातैं तिस चारित्रका प्रतिपादक शास्त्र पहले कहना सिद्ध भया। तिहिं कारणतैं च्यार ज्ञान सप्तऋद्धिके धारक गणधरदेवनिकरि तीर्थंकरके मुखकमलतैं उत्पन्न जो सर्वभाषामय दिव्यध्वनि, ताके सुननेतैं जो अर्थावधारण किया, तिनिकरि शिष्यप्रतिशिष्यनिके अनुग्रहनिमित्त द्वादशांग श्रुतरूप रचना करी, तिहिंविषैं पहले आचारांग कह्या। सो आचरन्ति कहिये समस्तपणें मोक्षमार्गको आराधे हैं याकरि सो आचार, तिह आचारांगविषैं ऐसा कथन है—जो; कैसैं चलिए, कैसैं खडे रहिये, कैसे बैठिये, कैसे सोइये, कैसे बोलिये, कैसैं खाइये, कैसैं पाप न बंधै इत्यादि गणधर प्रश्नकै अनुसारि यत्नतैं चलिये, यत्नतैं खडे रहिये, यत्नतैं बैठिये, यत्नतैं सोइये, यत्नतैं बोलिये, यत्नतैं खाइये, ऐसे पापकर्म न बन्धै इत्यादि उत्तरवचन लीये मुनीश्वरनिका समस्त आचरण इस आचारांगविषैं वर्णन कीजिये है।

बहुरि 'सूत्रयति' कहिये संक्षेपपणें अर्थकूं सूचै—कहै ऐसा जो परमागम, सो सूत्र, ताके अर्थि कृत कहिये कारणभूतज्ञानका विनय आदि निर्विघ्न अध्ययन आदि क्रियाविशेष सो जिसविषैं वर्णन कीजिये, अथवा सूत्रकरि किया धर्मक्रियारूप वा स्वमतपरमतका स्वरूप क्रियाविशेष सो जिसविषैं वर्णन कीजिये, सो सूत्रकृत नामा दूसरा अंग है।

बहुरि 'तिष्ठन्ति' कहिये एक आदि एक एक बधता स्थान जिसविषैं पाइये सो स्थान नामा तीसरा अंग है। तहां ऐसा वर्णन है—संग्रहनयकरि आत्मा एक है, व्यवहारनयकरि संसारी अर मुक्त दोयभेदसंयुक्त है। बहुरि उत्पाद व्यय ध्रौव्य इनि तीन लक्षणनिकरि संयुक्त है। बहुरि कर्मके वशतैं च्यारि गतिविषैं भ्रमे है, तातैं चतुःसंक्रमणयुक्त है, औपशमिक क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, पारिणामिक भेदकरि पंचस्वभावकरि प्रधान है। बहुरि पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर ऊर्ध्व अधः भेदकरि छह गमनकरि संयुक्त है, संसारी जीव विग्रहगतिविषैं विदिशाविषैं गमन न करै, श्रेणीबद्ध छहूं दिशाविषैं गमन करे हैं। बहुरि स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति नास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्त्यवक्तव्य, स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्य इत्यादि सप्तभंगीविषैं उपयुक्त है, बहुरि आठ प्रकार कर्मका आस्रवकरि संयुक्त है, बहुरि जीव अजीव आस्रव

बन्ध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप ये नव पदार्थ हैं विषय जाके, ऐसा नवार्थ है, बहुरि पृथ्वी अप् तेज वायु प्रत्येकवनस्पति साधारणवनस्पति, बेइन्द्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेन्द्रिय भेदतं दशस्थानक हैं इत्यादि जीवकूं प्ररूपे है, बहुरि पुद्गल सामान्य अपेक्षा एक है, विशेषकरि अणुस्कन्धके भेदतं दोयप्रकार हैं, इत्यादि पुद्गलको प्ररूपे है, ऐसे एकनैं आदि देकरि एक एक बधता स्थान इस अंगविषै वर्णिये हैं।

बहुरि 'सम्' कहिये समानताकरि 'अवेयन्ते' कहिये जीवादिक पदार्थ जिसविषैं जानिये, सो समवायांग चौथा जानना। इसविषै द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा समानता प्ररूपे है। तहां द्रव्यकरि धर्मास्तिकायकरि अधर्मास्तिकाय समान है, संसारी जीवनिकरि संसारी जीव समान हैं, मुक्तजीवनिकरि मुक्तजीव समान हैं, इत्यादि द्रव्यकरि समवाय है। बहुरि क्षेत्रकरि प्रथमनरकका प्रथमपाथडेका सीमन्त नामा इन्द्रक बिल, अर अढाई द्वीपरूप मनुष्यक्षेत्र, अर प्रथमस्वर्ग का प्रथम पटलका ऋजु नामा इन्द्रक विमान, अर सिद्धशिला अर सिद्धक्षेत्र ये समान हैं। बहुरि सातवां नरकका अवधिस्थान नामा इन्द्रक बिल, अर जंबूद्वीप, अर सर्वार्थसिद्धिविमान ये समान हैं, इत्यादि क्षेत्रसमवाय है। बहुरि कालकरि एकसमय एक समयकरि समान है, आवली आवलीसमान है, प्रथम पृथ्वीके नारकी भवनवासी व्यंतर इनकी जघन्य आयु समान है। बहुरि सातवीं पृथ्वीके नारकी सर्वार्थसिद्धिके देव इनिकी उत्कृष्ट आयु समान है, इत्यादि कालसमवाय है। बहुरि भावकरि केवलज्ञान केवलदर्शन समान है इत्यादि भावसमवाय है। ऐसे इत्यादिक समानता इस अंगविषै वर्णिये हैं।

बहुरि 'वि' कहिये विशेषकरि बहुतप्रकार 'आख्या' कहिये गणधरदेवके कीये प्रश्न 'प्रज्ञाप्यन्ते' कहिये जानिये जिस विषै, ऐसा व्याख्याप्रज्ञप्ति नामा पांचवां अंग जानना। इसविषैं ऐसा कथन है—जीव अस्ति है कि जीव नास्ति है, कि जीव एक है कि जीव अनेक है, कि जीव नित्य है कि जीव अनित्य है, कि जीव वक्तव्य है कि जीव अवक्तव्य है? इत्यादि साठि हजार प्रश्न गणधरदेव तीर्थंकरके निकट किये, तिनका वर्णन इस अंगविषै है।

बहुरि 'नाथ' कहिये तीन लोकका स्वामी तीर्थंकर परमभट्टारक तिनके धर्मकी कथा जिसविषै होय ऐसा नाथधर्मकथा नामा छट्टा अंग जानना। इसविषै जीवादिक पदार्थनिका स्वभाव वर्णिये हैं। बहुरि घातिया कर्मके नाशतं उत्पन्न भया केवलज्ञान, उसहीके साथि तीर्थंकर नामा पुण्यप्रकृतिके उदयतं जाकै महिमा प्रकट भया, ऐसा तीर्थंकरके पूर्वाह्ण मध्याह्न, अपराह्ण, अर्धरात्रि इनि च्यारि कालनिविषै छह छह घडीपर्यंत बारह सभाके मध्य सहजही दिव्यध्वनि होहै। बहुरि गणधर इन्द्र चक्रवर्ती इनके प्रश्न करनेतै और कालविषै भी दिव्यध्वनि होहै, ऐसा दिव्यध्वनि निकटवर्ती श्रोतृ-

जननिके उत्तम क्षमा आदि दशप्रकार वा रत्नत्रयस्वरूप धर्म कहे हैं। इत्यादिक इस अंगविषे कथन है। अथवा इसही छट्टा अंगका दूसरा नाम ज्ञातृधर्मकथा है। सो याका यहु अर्थ है—ज्ञाता जो गणधरदेव, जाननेकी इच्छा है जाकी ताका प्रश्न के अनुसारि उत्तररूप जो धर्मकथा ताको ज्ञातृधर्मकथा कहिये। जे अस्ति नास्ति इत्यादिकरूप प्रश्न गणधर कीये, तिनका उत्तर इस अंगविषे वर्णिये है। अथवा ज्ञाता जे तीर्थकर गणधर इन्द्र चक्रवर्त्यादिक तिनकी धर्मसम्बन्धी कथा इसविषे पाइये है, तातें भी ज्ञातृधर्मकथा ऐसा नामका धारी छठ्ठा अंग जानना। गाथा—

तो वासयअज्झयणे अन्तयडे णुत्तरोववाददसे।
पण्हाणं वायरणेविवायसुत्ते य पदसंखा ॥३५८॥गो. सा. जी.॥

अर्थ—बहुरि तहां पीछें 'उपासन्ते' कहिये आहारादि दानकरि वा पूजनादिकरि संघको सेवे, ऐसे जु श्रावक, तिनकूं उपासक कहिये। ते 'अधीयन्ते' कहिये पढे, सो उपासकाध्ययन नामा सातवां अंग है। इसविषे दर्शनिक, व्रतिक, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तविरति, रात्रिभक्तव्रत, ब्रह्मचर्य, आरम्भनिवृत्ति, परिग्रहनिवृत्ति, अनुमतिविरति, उद्दिष्टविरति ये गृहस्थकी ग्यारह प्रतिमा वा व्रत शील आचार क्रिया मंत्रादिक इनका विस्तारकरि प्ररूपण है। बहुरि एकेक तीर्थंकरका तीर्थकालविषे दश दश मुनीश्वर तीव्र च्यारि प्रकारका उपसर्ग सहि इन्द्रादिककरि हुई पूजा आदि प्रातिहार्यरूप प्रभावना पाइ, पापकर्म नाश करि संसारका जो अन्त तिसही करत भये तिनको 'अन्तकृत्' कहिये, तिनका कथन जिस अंगमें होय ताको 'अन्तकृद्दशाङ्ग' आठवां अंग कहिये। तहां वर्धमानस्वामी के वारे नमि, मतंग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलिक, वलिक, विष्कंबिल, पालंवष्ट, पुत्र ये दश भये। ऐसेही वृषभादिक एकएक तीर्थंकरके वारे दशदश अन्तकृत् केवली होहैं, तिनकी कथा इस अंगविषे है।

बहुरि उपपाद है प्रयोजन जिनका ऐसे औपपादिक कहिये। बहुरि अनुत्तर कहिये विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सर्वार्थसिद्धि इनि विमाननिविषे जे औपपादिक होहि उपजै तिनको अनुत्तरौपपादिक कहिये। सो एकएक तीर्थंकर के वारे दश दश महामुनि दारुण उपसर्ग सहिकरि, बडी पूजा पाय, समाधिकरि प्राण छोडि, विजयादिक अनुत्तरविमाननिविषे उपजे। तिनकी कथा जिस अंगमें होय, सो अनुत्तरौपपादिकदशांग नामा नवमा अंग जानना। तहां श्रीवर्धमानस्वामी के वारे ऋजुदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिकेय, नन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण, चिलातीपुत्र ये दश भये। ऐसेही दश दश अन्य तीर्थंकर के समयभी भये हैं, तिन सबनिका कथन इस अंगविषे है।

बहुरि प्रश्न कहिये पूछनहारा पुरुष जो पूछे सो 'व्याक्रियन्ते' कहिये प्रकट करिये जिसविषै, जो प्रश्नव्याकरण नामा अंग दशवा जानना। इसविषै जो कोई पूछनेवाला गई वस्तु वा मूंठीकी वस्तु वा चिंता वा धन धान्य लाभ अलाभ सुख दुःख जीवना मरना जीति हारि इत्यादिक प्रश्न पूछै अतीत-अनागत-वर्तमान काल सम्बन्धी ताको यथार्थ कहनेका उपायरूप व्याख्यान इस अंगविषैं हैं। अथवा शिष्यका प्रश्नकै अनुसारि आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेगिनी, निर्वेजनी ये च्यारि कथा प्रश्नव्याकरणांगविषैं प्रकट कीजिये हैं। तहां तीर्थंकरादिकका चरित्ररूप प्रथमानुयोग, लोकका वर्णनरूप करणानुयोग, श्रावक-मुनिधर्मका कथनरूप चरणानुयोग, पंचास्तिकायादिकका कथनरूप द्रव्यानुयोग इनका कथन परमत की शंका दूरिकरि करिये सो आक्षेपिणी कथा। बहुरि प्रमाणनयरूप युक्ति तीहिकरि न्यायके बलतें सर्वथैकान्तवादी आदि परमतनिकरि कह्या जो अर्थ ताका खंडन करना सो विक्षेपिणी कथा। बहुरि रत्नत्रयधर्म अर तीर्थंकरादिक पदकी ईश्वरता वा ज्ञान-सुख-वीर्यादिकरूप धर्मका फल, ताके अनुरागको कारण सो सवेजनी कथा। बहुरि संसारदेहभोगके रागतें जीव नारकादिकविषैं दारिद्रय अपमान पीडा दुःख भोगवे हैं इत्यादिक विराग होनेको कारणभूत जो कथन, सो निर्वेजनी कथा कहिये। सो ऐसोभी कथा प्रश्नव्याकरणांगविषैं पाइये है।

बहुरि विपाक जो कर्मका उदय ताको 'सूत्रयति' कहिये कहै सो विपाकसूत्र नामा ग्यारवां अंग जानना। इसविषैं कर्मनिका फल देनेरूप जो परिणमन सोही उदय कहिये, ताका तीव्र-मन्द-मध्यम अनुभागकरि द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा वर्णन पाइये है। ऐसें आचारनं आदि देयकरि विपाकसूत्र पर्यन्त ग्यारह अंक तिनके पदनिकी संख्या कहिये हैं। गाथा—

> अट्ठारस छत्तीसं वादाग्नं अडकडी अड वि छप्पण्णं।
> सत्तरि अट्ठावीसं चउदालं सोलससहस्सा ॥३५८॥
>
> इगि दुग पंचेयारं तिवीसदुतिणउदिलक्ख तुरियादि।
> चुलसीदिलक्खमेया कोडी य विवागसुत्तह्मि ॥३६०॥ गो. सा. जी.॥

अर्थ—प्रथमगाथाविषै अठारह आदि हजार कहे। बहुरि दूसरी गाथाविषैं चौथा अंग आदि अंगनिविषैं एकादिक लाखसहित हजार कहे। अर विपाकसूत्रका जुदा वर्णन किया। अब इन गाथानिके अनुसारि एकाश अगनिके पदनिकी संख्या कहिये हैं। आचारांगविषैं पद अठारह हजार १८०००। सूत्रकृतांगविषैं छत्तीस हजार ३६०००।

स्थानांगविर्षे बियालीस हजार ४२००० । समवायांगविर्षे एक लाख अर आठकी कृति चौसठि हजार १६४००० । व्याख्याप्रज्ञप्ति अंगविषं दोय लाख अठाईस हजार २२८००० । ज्ञातृधर्मकथा अंगविर्षे पांच लाख छप्पन हजार ५५६००० । उपासकाध्ययन अंगविर्षे ग्यारह लाख सत्तरि हजार ११७०००० । अंतकृद्दशांगविर्षे तेईस लाख अठाईस हजार २३२८००० । अनुत्तरौपपादिकदशांगविर्षे ब्याणवं लाख चवालीस हजार ९२४४००० । प्रश्नव्याकरणांगविर्षे तिराणवं लाख सोलह हजार ९३१६००० । विपाकसूत्र अंगविर्षे एक कोडि चउरासी लाख १८४००००० । ऐसें एकादश अंगनिविर्षे पदनिकी संख्या जाननी । गाथा—

वापणनरनोनानं, एयारंगे जुदी हु वादम्हि ।
कनजतजमताननमं, जनकनजयसीम बाहिरे वण्णा ।।३६१।।गो. सा. जी.।।

अर्थ—इहां वा आगें अक्षरसंज्ञाकरि अंगनिको कहे हैं । 'कटपयपुरस्थवर्णैः' इत्यादि सूत्र कह्या है, तिसहीतें अक्षरसंख्याकरि अंक जानना । ककारादिक नव अक्षरनिकरि एक दोय आदि क्रमतें नव अंक जानने, टकारादिक नव अक्षरनिकरि नव अंक जानने, पकारादिक पंच अक्षरनिकरि पांच अंक जानने, यकारादिक आठ अक्षरनिकरि आठ अंक जानने, ञकार, ङकार, नकार इनकरि बिंदो जानिये । सो इहां 'वापणनरनोनानं' इन अक्षरनिकरि च्यारि एक पांच बिंदी दोय बिंदी बिंदी बिंदी ये अंक जानने । ताके च्यारि कोडि, पंद्रह लाख, दोय हजार ४, १५, ०२, ००० पद सर्व एकादश अंगनिका जोड़ दीये भये । बहुरि दृष्टिवाद नामा बारहवां अंगविर्षे 'कनजतजमताननमं' कहिये एक बिंदी आठ छह पांच छह बिंदी बिंदी पांच इन अंकनिकरि एकसो आठ कोडि, अडसठि लाख, छप्पन हजार, पांच पद हैं १०८, ६८, ५६, ००५ । सो दृष्टि कहिये मिथ्यादर्शन तिनका है अनुवाद कहिये निराकरण जिसविर्षे ऐसा दृष्टिवाद नामा अंग बारहवां जानना । तहां मिथ्यादर्शनसंबंधी कुवाद तीनसं तरेसठि हैं । तिनविर्षे कौत्कल कण्ठी विधि कौशिक हरि श्मश्रु मांघ पिक रोमश हारीत मुंड आश्वलायन इत्यादि ये क्रियावादी हैं, सो इनके एकसौ अस्सी १८० कुवाद हैं । बहुरि मरीचि कपिल उलूक गार्ग्य व्याघ्रभूति वाड्वलि माठर मौद्गलायन इत्यादि अक्रियावादी हैं, तिनके चौरासी ८४ कुवाद हैं । बहुरि साकल्य वाल्कलि कुथुमि सात्यमुग्रि नारायण कठ माध्यन्दिन मोद पैप्पलाद बादरायण स्विष्टक्य दैतिकायिन वसुजैमिन्य इत्यादि ये अज्ञानवादी हैं, इनके सडसठि ६७ कुवाद हैं । बहुरि वासिष्ठ पाराशर जतुकर्ण वाल्मीकि रोमहर्षणि सत्य दत्त व्यास एलापुत्र उपमन्य ऐंद्रदत्तअगस्ति इत्यादि ये विनयवादी हैं, इनके बत्तीस ३२ कुवाद हैं । सब मिलाये

तीनसै तरेसठि कुवाद भये इनिका वर्णन भावाधिकारविषै कहे हैं। इहां प्रवृत्तिविषै इन कुवादनिके जे अधिकारी तिनका नाम कहे हैं। बहुरि अंगबाह्य जो सामायिकादिक तिनविषै 'ज न क न ज य सो म' कहिये आठ, बिंदी, एक बिंदी, आठ, एक, सात, पांच, अंक, तिनके आठ कोडि, एक लाख, आठ हजार, एकसो पिचहत्तरि ८, ०१, ०८, १७५ अक्षर जानने। गाथा

चन्दरविजंबुदीवयदीवसमुद्दयवियाहपण्णत्ती।

परियम्मं पचविह सुत्त पढमाणियोगमदो ॥३६१॥

पुव्वं जलथलमाया आगासयरूवगयमिमा पंच।

भेदा हु चूलियाए तेसु पमाणं इणं कमसो ॥३६२॥ गो. सा. जी. ॥

अर्थ—दृष्टिवाद नामा बारहवां अंग ताके पंच अधिकार हैं। परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत, चूलिका—ये पंच अधिकार हैं। तिनिविषै 'परितः' कहिये सर्वांगतै 'कर्माणि' कहिये जिनतै गुणकार भागहारादिरूप गणित होय ऐसे करण सूत्र ते जिसविषै पाइये, सो परिकर्म कहिये। सो परिकर्म पांचप्रकार है। चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, व्याख्याप्रज्ञप्ति,। तहां चन्द्रप्रज्ञप्ति—चन्द्रमाका विमान, आयु, परिवार, ऋद्धि, गमन, विशेष वृद्धि, हानि, सारा, आधा, चौथाई ग्रहण इत्यादि प्ररूपे है। बहुरि सूर्यप्रज्ञप्ति—सूर्यका आयु. मंडल, परिवार, वृद्धि, गमनका परिमाण, ग्रहण इत्यादि प्ररूपे हैं। बहुरि जम्बूद्वीपसम्बन्धी मेरुगिरि, कुलाचल, ह्रद, क्षेत्र, वेदी, वन, खंड, व्यंतरनिके मन्दिर, नदी इत्यादि प्ररूपे है। बहुरि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, असंख्यातद्वीपसमुद्रसम्बन्धी स्वरूप वा तहां तिष्ठते ज्योतिषी व्यंतर भवनवासीनिके आवास वा तहां अकृत्रिमजिनमन्दिर तिनको प्ररूपे है। बहुरि व्याख्याप्रज्ञप्ति रूपी अरूपी जीव अजीवदार्थ तिनिका वा भव्य अभव्यादि प्रमाणकरि निरूपण करे है। ऐसे परिकर्मके पंच भेद हैं।

बहुरि 'सूत्रयति' कहिये मिथ्यादर्शनके भेदनिकूं सूचै—बतावै, ताको सूत्र कहिये। तिसविषै जीव अबन्धकही है, अकर्ता है, निर्गुण है, अभोक्ता है, स्वप्रकाशकही है, परप्रकाशकही है, अस्तिरूपही है, नास्तिरूपही है इत्यादिक क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद, विनयवाद तिनके तीनसै तरेसठि भेद तिनका पूर्वपक्षपनेकरि वर्णन करिये है। बहुरि प्रथम कहिये मिथ्यादृष्टि अव्रती विशेषज्ञानरहित ताको उपदेश देने निमित्त जो प्रवृत्त भया अनुयोग कहिये अधिकार, सो प्रथमानुयोग कहिये। तींहिविषै चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव बलिभद्र, नव नारायण, नव प्रतिनारायण इनि तरेसठि शलाका पुरुषनिका पुराणवर्णन कीजिये है। बहुरि पूर्वगत चौदहप्रकार सो आगे विस्तारनैं लीये कहेंगे। बहुरि चूलिकाके पंच भेद—

जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता, आकाशगता ये पंच भेद। तिनिविषै जलगता चूलिका तो जलका स्थम्भन करना, जलविषै गमन करना, अग्निका स्थम्भन करना, अग्निका भक्षण करना, अग्निविषै प्रवेश करना इत्यादि क्रियाके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपे है। बहुरि स्थलगता चूलिका मेरुपर्वत भूमि इत्यादिविर्षे प्रवेश करना, शीघ्र गमन करना इत्यादि क्रियाके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपे है। बहुरि मायागता चूलिका मायामयी इन्द्रजालविक्रियाके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपे है। बहुरि रूपगता चूलिका सिंह, हाथी, घोडा, वृषभ, हरिण इत्यादि नानाप्रकार रूप पलटि करि धरना, ताके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपे है वा चित्राम काठलेपादिकका लक्षण प्ररूपे है, वा धातु रस रसायन इनिकूं प्ररूपे है। बहुरि आकाशगता चूलिका आकाशविर्षे गमनादिको कारणभूत मंत्र तंत्र तंत्रादि प्ररूपे है। ऐसे चूलिकाके पंच भेद जानने। ये चन्द्रप्रज्ञप्ति आदिदेकरि भेद कहे, तिनके पदनिका प्रमाण आगे कहिये हैं, ते, हे भव्य ! तू जानि। गाथा—

> गतनम मनगं गोरम मरगत जवगातनोननं जजलक्खा।
> मननन धममननोननननामं रनघजधरानननजलादी ॥३६३॥
> याजकनामेनाननमेदाणि पदाणि होंति परिकम्मे।
> कानवधिवाचनानननमेसो पुण चूलियाजोगो ॥३६४॥ गो. सा. जी. ॥

अर्थ—इहां 'कटपयपुरस्थवर्णैः' इत्यादि सूत्रोक्तविधानतै अक्षरसंज्ञाकरि अंक कहे हैं। सो अंकनिकरि जो प्रमाण भया सो इहां कहिये हैं। एक एक अक्षरतैं एक एक अंक जाणि लेना, सो 'गतनमनोननं' ३६०५००० कहिये छत्तीस लाख पांच हजार पद चन्द्रप्रज्ञप्तिविषै हैं। बहुरि 'मनगनोनन' ५०३००० कहिये पांच लाख तीन हजार पद सूर्यप्रज्ञप्तिविषै हैं। बहुरि 'गोरमनोननं' ३२५००० कहिये तीन लाख पचीस हजार पद जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिविर्षे हैं। बहुरि 'मरगतनोननं' ५२३६००० कहिये बावन लाख छत्तीस हजार पद द्वीपसागरप्रज्ञप्तिविषै हैं। बहुरि 'जवगातनोननं' ८४३६००० कहिये चौरासी लाख छत्तीस हजार पद व्याख्याप्रज्ञप्तिविर्षे है। बहुरि 'जजलक्खा' ८८०००० कहिये अठ्यासी लाख पद सूत्र नामा भेद-विर्षे है। बहुरि 'मननन' कहिये पांच हजार ५००० पद प्रथमानुयोगविर्षे हैं। बहुरि 'धममननोननननामं' ९५५००००० कहिये पिचाणवै कोडि पचास लाख पांच पद पूर्वगतविर्षे हैं। चौदह पूर्वनिके इतने पद हैं। बहुरि 'रनघजधरानन'

२०६८६२०० कहिये दोय कोडि नव लाख निवासी हजार दोयसे पद जलगता आदि नाम चूलिका। तिनविषैं एक एकके इतने इतने पद जानने। जलगता २०६८६२००। स्थलगता २०६८६२००। मायागता २०६८६२००। आकाशगता २०६८६२००। रूपगता २०६८६२००। ऐसें जानना। बहुरि 'याजकनामेनाननं' १८१०५००० कहिये एक कोडि इक्यासी लाख पांच हजार पद चंद्रप्रज्ञप्ति आदि पांच प्रकार परिकर्मका जोड़ दीये होहैं। बहुरि 'कानवधिवाचनाननं' १०४६४६००० कहिये दस कोडि गुणचास लाख छियालीस हजार पद पांच प्रकार चूलिकाके जोड दीये होहैं। इहां गकारतें तीनका अंक, तकारतें छहका अंक, मकारतें पांचका अंक, रकारतें दोयका अंक, नकारतें बिंदी इत्यादी अक्षरसंज्ञाकरि अंक कहे हैं। ककारतें लेय गकार तीसरा अक्षर है। तातें तीनका अंक कह्या। बहुरि टकारतें तकार छट्टा अक्षर है, तातैं छहका अंक कह्या। पकारतें मकार पांचवां अक्षर है, तातें पंचका अंक कह्या। यकारतें रकार दूसरा अक्षर है, तातैं दोयका अंक कह्या। नकारतें बिंदी कहीही है। इत्यादि इहां अक्षरसंज्ञातें अंक जानने। गाथा—

> पण्णट्ठदाल पणतीस तीस पण्णास पण्ण तेरसदं।
> णउदी दुदाल पुव्वे पणवण्णा तेरससयाइं ॥३६५॥
> छस्सयपण्णासाइं चउस्सयपण्णास छसयपणुवीसा।
> विहि लक्खेहि दु गुणिया पंचम रूऊण छज्जुदा छट्ठे ॥३६६॥गो. सा. जी.॥

अर्थ—उत्पाद आदि चौदह पूर्वनिविषै पदनिकी संख्या कहिये हैं। तहां वस्तुका उत्पाद व्यय ध्रौव्य आदि अनेक धर्म, तिनका पूरक, सो उत्पाद नामा प्रथम पूर्व है। इसविषै जीवादिवस्तुनिका नानाप्रकार नयविवक्षाकरि क्रमवर्ती युगपत् अनेकधर्मकरि भये जे उत्पाद व्यय ध्रौव्य ते तीनूं तीन काल अपेक्षा नव धर्म भये। सो उन धर्मरूप परणया वस्तु सोभी नवप्रकार हो है–१. उपज्या, २. उपजे है, ३. उपजेगा। १. नष्ट भया, २. नष्ट हो है, ३. नष्ट होयगा। १. स्थिर भया, २. स्थिर है, ३. स्थिर होयगा। ऐसे नवप्रकार द्रव्य भया। इन एक एकका नव नव उत्पन्नपना आदि धर्म जानने। ऐसे इक्यासी भेद लीये द्रव्य ताका वर्णन है। याके दोय लाखतैं पचासको गुणिये ऐसा एक कोडि १०००००० पद जानने।

बहुरि अग्र कहिये द्वादशांगविषै प्रधानभूत जो वस्तु ताका अयन कहिये ज्ञान सोही है प्रयोजन जाका, ऐसा अग्रायणीय नामा दूसरा पूर्व है। इसविषै सातसै सुनय अर दुर्नय तिनका, अर सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, षड्द्रव्य, इत्यादिकका वर्णन

है। याके दोय लाखतें अठतालीसको गुणिये ऐसे ९६ छिनवें लाख पद हैं ॥२॥

बहुरि वीर्य कहिये जीवादिवस्तुकी शक्ति–सामर्थ्य ताका है अनुप्रवाद कहिये वर्णन जिसविषैं, ऐसा वीर्यानुवाद नामा तीसरा पूर्व है। इसविषै आत्माका वीर्य, परका वीर्य, दोऊका वीर्य, क्षेत्रवीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य तपोवीर्य इत्यादि द्रव्यगुणपर्यायनिका शक्तिरूप वीर्य, तिसका व्याख्यान है। याके दोय लाखतें पैंतीसको गुणिये ऐसे ७० सत्तरि लाख पद हैं।

बहुरि अस्ति नास्ति आदि जे धर्म, तिनका है प्रवाद कहिये प्ररूपण इसविषैं ऐसा अस्तिनास्तिप्रवाद नामा चौथा पूर्व है। इसविषैं जीवादि वस्तु अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि संयुक्त हैं, तातैं 'स्यात् अस्ति' है। बहुरि परके द्रव्य क्षेत्र काल भावविषैं यहु नाहीं है, तातै 'स्यान्नास्ति' है। बहुरि अनुक्रमतें स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा 'स्यादस्ति नास्ति' है। बहुरि युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा द्रव्य कहनेमें न आवै, तातै 'स्यादवक्तव्य है'। बहुरि स्वद्रव्यक्षेत्रकाल भावकरि द्रव्य 'अस्तिरूप' है। बहुरि युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावकरि कहनेमें न आवै, तातैं 'स्यादस्त्यवक्तव्य' है। बहुरि परद्रव्यक्षेत्रकालभावकरि द्रव्य 'नास्तिरूप' है। बहुरि युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावकरि द्रव्य कहनेमें न आवै तातै 'स्यान्नास्त्यवक्तव्य' है। बहुरि अनुक्रमतै स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभाव-अपेक्षा द्रव्य 'अस्तिनास्तिरूप' है। अर युगपत् स्वपर द्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा अवक्तव्य है, तातै 'स्नादस्तिनास्त्यवक्तव्य' है। ऐसे जिसप्रकार अस्तिनास्ति अपेक्षा सप्त भेद कहे, तैसे एकअनेकधर्मकी अपेक्षा सप्तभंग होहै। अभेदअपेक्षा स्यात् एक है, भेद अपेक्षा स्यादनेक है, क्रमतें भेदअभेदअपेक्षया स्यादेकानेक है, युगपत् अभेदभेदअपेक्षया अवक्तव्य है, अभेदअपेक्षा वा युगपत् अभेदभेदअपेक्षा स्यादेकअवक्तव्य है, भेद अपेक्षा वा युगपत् अभेदभेदअपेक्षा स्यादनेकअवक्तव्य है, क्रमतें अभेदभेदअपेक्षा वा युगपत् अभेदभेदअपेक्षा स्यादेकानेक अवक्तव्य है। ऐसेही नित्य अनित्य आदि दै अनन्तधर्मनिके सप्त भंग हैं। तहां प्रत्येक भंग तीन अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य। अर द्विसंयोगी भंग तीन अस्तिनास्ति, अस्त्यवक्तव्य नास्तिअवक्तव्य। अर त्रिसंयोगी भंग एक अस्तिनास्त्यवक्तव्य। इन सप्तभंगनिका समुदाय सो सप्तभंगी। सो प्रश्नके वशतें एकही वस्तुविषैं अविरोधपनैं संभवती नानाप्रकार नयनिकी मुख्यता गौणताकरि प्ररूपण कीजिये है। इहां सर्वथा नियमरूप एकांतका अभाव लीये कथंचित् ऐसा है अर्थ जाका सो स्यात् शब्द जानना। इस अंगके दोय लाखतें तीसकूं गुणिये सो ६० साठि लाख पद हैं ॥४॥

बहुरि ज्ञाननिका है प्रवाद कहिये प्ररूपण इसविषै ऐसा ज्ञानप्रवाद नामा पांचवां पूर्व है। इसविषै मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ये पांच सम्यग्ज्ञान अर कुमति कुश्रुत विभंग ये तीन कुज्ञान, इनका स्वरूप वा संख्या वा विषय वा फल

इत्याद्यपेक्षा प्रमाण अप्रमाणतारूप भेदवर्णन कीजिये है। याके दोय लाखतैं पचासकूं गुणे कोटि होइ, तिनमेंसूं एक घटाइये ऐसे एक घाटि कोडि ९९९९९९९ पद हैं। गाथाविषै पंचमरूऊरण ऐसा कह्या है, तातैं पांचवां अंगमें एक घटाया-ग्रन्थ संख्या गाथा अनुसारि कहियेहो है ।।५।।

बहुरि सत्यका है प्रवाद कहिये प्ररूपण इसविषै ऐसा सत्यप्रवाद नामा छट्टा पूर्व है। इसविषै वचनगुप्ति बहुरि वचनसंस्कारके कारण, बहुरि वचनके प्रयोग, बहुरि बारहप्रकार भाषा, बहुरि बोलनेवाले जीवोंके भेद, बहुरि बहुतप्रकार मृषावचन बहुरि दशप्रकार सत्यवचन इत्यादि वर्णन है। तहां असत्य न बोलना वा मौन धरना सो वचनगुप्ति कहिये। बहुरि वचनसंस्कारके कारण दोयः—एक तौ स्थान, एक प्रयत्न। तहां जिन स्थानकनितैं अक्षर बोले जांय ते स्थान आठ हैं—हृदय, कंठ, मस्तक, जिह्वाका मूल, दंत, नासिका, तालवा, होठ। जैसें—अकार, कवर्ग, हकार, विसर्ग इनका कंठस्थान है, ऐसे अक्षरनिके स्थान जानने। बहुरि जिसप्रकार अक्षर कहे जाय ते प्रयत्न पांच हैं—स्पृष्टता, ईषत्स्पृष्टता, विवृतता। ईषद्विवृतता, संवृतता। तहां अंगका अगतैं स्पर्श भये अक्षर बोलिये सो स्पृष्टता। किछू थोरासा स्पर्श भये बोलिये सो ईषत्स्पृष्टता। अंगको उघाडि बोलिये सो विवृतता। किछू थोरासा उघाडि बोलिये सो ईषद्विवृतता। अंगको अंगतैं ढांकि बोलिये सो संवृतता। जैसे पकारादिक ओष्ठसूं ओष्ठका स्पर्श भयेही उच्चार होइ, ऐसे प्रयत्न जानने। बहुरिवचन प्रयोग दोयप्रकार—शिष्टरूप-भला वचन, दुष्टरूप-बुरा वचन। बहुरि भाषा बारहप्रकार। तहां इसनै ऐसे किया-ऐसा अनिष्ट-वचन कहना सो अभ्याख्यान कहिये। बहुरि जातैं परस्पर विरोध होइ सो कलहवचन। बहुरि परका दोष प्रकट करना सो पैशून्यवचन। बहुरि धर्म अर्थ काम मोक्षका सम्बन्धरहित वचन सो असम्बन्धरूप प्रलापवचन। बहुरि इन्द्रियविषयनि-विषै रति उपजावनहारा वचन सो रतिवचन, बहुरि विषयनिविषै अरतिका उपजावनहारा वचन सो अरतिवचन। बहुरि परिग्रहका उपजावनेकी, राखनेकी आसक्तताका कारण वचनसो उपधिवचन। बहुरि व्यवहारविषै ठिगनेरूप वचन सो निकृतिवचन। बहुरि तपज्ञानादिकविषै अविनयका कारण वचन सो अप्रणतिवचन। बहुरि चोरीका कारणभूत वचन सो मोषवचन। बहुरिभले मार्गका उपदेशरूप वचन सो सम्यग्दर्शनवचन। बहुरि मिथ्यामार्गके उपदेशरूप वचन सो मिथ्यादर्शन वचन। ऐसे बारह भाषा हैं। बहुरि बेइन्द्रियादि संज्ञीपर्यंत वचन बोलनेवाले वक्तानिके भेद हैं। बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकरि मृषा जो असत्यवचन सो बहुतप्रकार हैं। बहुरि जनपद आदि दशप्रकार सत्यवचन ऐसा कथन इस पूर्वविषै है। याके दोय लाखतैं पचासको गुणिये अर 'छजुदा छठे' इस वचनकरि छह मिलाइये ऐसे एक कोडि छह पद हैं ।।६।।

बहुरि आत्माका प्रवाद कहिये प्ररूपण इसविषै ऐसा आत्मप्रवाद नामा सातवां पूर्व है । इसविषै श्लोक है—जीवो कत्ता य वत्ता य, पाणी भोत्ता य पुग्गलो, वेदो विण्णु सयंभू य, सरीरी तह माणवो ॥१॥ सत्ता जन्तु य माणी य । मायी जोगी य संकुडो । असंकुडो य खेत्तण्हू, अन्तरप्पा तहेव य ॥२॥ इत्यादि आत्मस्वरूपका कथन है । इनका अर्थ लिखिये है—जीवति कहिये जीवै है, व्यवहारकरि दशप्राणनिको अर निश्चयकरि ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वरूप चैतन्यप्राणनिको धारै है । अर पूर्वै जीया आगे जीवेगा, तातै आत्माको जीव कहिये । बहुरि व्यवहारकरि शुभाशुभकर्मकूं अर निश्चयकरि चैतन्यपर्यायकूं करै है, तातै कर्ता कहिये । बहुरि व्यवहारकरि सत्य असत्य वचन बोलै है, तातै वक्ता है, निश्चयकरि वक्ता नांहीं है । बहुरि दोऊ नयनिकरि जे प्राण कहे ते याके पाइये हैं, तातै प्राणी कहिये । बहुरि व्यवहारकरि शुभाशुभकर्मके फलकूं अर निश्चयकरि निजस्वरूपकूं भोगवै है, तातै भोक्ता कहिये । बहुरि व्यवहारकरि कर्मनोकर्मरूप पुद्गलनिको पूरै है अर गालै है, तातै पुद्गल कहिये, निश्चयकरि आत्मा पुद्गल है नांहीं । बहुरि दोऊ नयनिकरि लोकालोसम्बन्धी त्रिकालवर्त्ती सर्वज्ञेयकूं वेत्ति कहिये जानै है, तातै वेदक कहिये । बहुरि व्यवहारकरि अपने देहकूं वा केवलसमुद्घातकरि सर्व लोककूं । अर निश्चयकरि ज्ञानतै सर्व लोकालोककूं वेष्टि कहिये व्यापै है, तातै विष्णु कहिये । बहुरि यद्यपि व्यवहारकरि कर्मके वशतै संसारविषै परिणवै है, तथापि निश्चयकरि स्वय आपही आपविषै ज्ञानदर्शनस्वरूपहोकरि भवति कहिये परिणवै है, तातै स्वयम्भू कहिए, बहुरि व्यवहारकरि औदारिकादिक शरीर याकै हैं, तातै शरीरी कहिये । निश्चयकरि शरीरी नाहीं है । बहुरि व्यवहारकरि मनुष्यादिपर्यायरूप परिणवै है, तातै मानव कहिये । उपलक्षणतै नारकी वा तिर्यंच वा देव कहिये । निश्चयकरि मनु कहिये ज्ञान तींहविषै भवः कहिये सत्तारूप है तातै मानव कहिये । बहुरि व्यवहारकरि कुटुम्बमित्रादि परिग्रहविषै सजति कहिये आसक्त होइ प्रवर्तै है तातै शक्त कहिये, निश्चयकरि शक्त नाहीं है । बहुरि व्यवहारकरि संसारविषै नानायोनिविषै जायते कहिये उपजै है, तातैं जन्तु कहिये, निश्चयकरि जन्तु नाहीं हैं । बहुरि व्यवहारकरि मान कहिये अहंकार सो याकै है, तातै मानी कहिये, निश्चयकरि मानी नाहीं । बहुरि व्यवहारकरि माया जो कपटाई याकै है, तातैं मायी कहिये, निश्चयकरि मायी नाहीं है । बहुरि व्यवहारकरि मनवचनकायको क्रियारूप योग याकै है, तातैं योगी कहिये, निश्चयकरि योगी नाहीं है । बहुरि व्यवहारकरि सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनाकरि प्रदेशनिको संकोचै है, तातैं संकुट है । बहुरि केवलसमुद्घातकरि सर्व लोककूं व्यापै है तातैं असंकुट है । निश्चयकरि प्रदेशनिका संकोच विस्ताररहित किंचित् ऊन चरमशरीरप्रमाण है । तातैं संकुट असंकुट नाहीं है । बहुरि दोऊ नयनिकरि

क्षेत्र जो लोकालोक ताहि ज्ञः कहिये जाने है, तातैं क्षेत्रज्ञ कहिये। बहुरि व्यवहारकरि अष्टकर्मनिके अभ्यन्तर प्रवर्ते है अर निश्चयकरि चैतन्ययस्वभावके अभ्यंतर प्रवर्ते है, तातैं अन्तरात्मा कहिये। चकारतैं व्यवहारकरि कर्मनोकर्मरूप मूर्तिक-द्रव्यके सम्बन्धतैं मूर्तिक है, निश्चयकरि अमूर्तिक है। इत्यादि आत्माके स्वभाव जानने, इनका व्याख्यान इस पूर्वविर्षं है। याके दोय लाखतैं तेरहसेकों गुणिये ऐसे छव्बीस कोडि पद हैं ।।७।।

बहुरि कर्मका है प्रवाद कहिये प्ररूपण इसविषै ऐसा कर्मप्रवाद नामा आठवां पूर्व है। इसविषै मूलप्रकृति उत्तर-प्रकृति उत्तरोत्तरप्रकृतिरूप भेद लीये बंध, उदय, उदीरणा, सत्तारूप, अवस्थाको धरे ज्ञानावरणादिक कर्म तिनके स्वरूपको वा समवधान ईर्यापथ तपस्या आधाकर्म इत्यादि क्रियारूप कर्मनिको प्ररूपिये है। याके दोय लाखतैं निवैंको गुणिये। ऐसे एक कोडि असी लाख पद हैं ।।८।।

बहुरि प्रत्याख्यायते कहिये निषेधिये है पाप याकरि, ऐसा प्रत्याख्यान नामा नवमां पूर्व है।इसविषै नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा जीवनिका संहनन वा बल इत्यादिक के अनुसारिकरि कालमर्यादा लिये वा यावज्जीव प्रत्याख्यान कहिये सकल पापसहितवस्तुका त्याग उपवास की विधि ताकी भावना पंच समिति तीन गुप्ति इत्यादि वर्णन कीजिये है। याके दोय लाखतैं बियालीसको गुणिये ऐसे चौरासी लाख पद हैं ।।९।।

बहुरि विद्यानिका है अनुवाद कहिये अनुक्रमतैं वर्णन इसविषै ऐसा विद्यानुवाद नामा दशवां पूर्व है। इसविषै सातसै अंगुष्ठप्रसेन आदि अल्पविद्या अर पांचसै रोहिणी आदि महाविद्या तिनका स्वरूप सामर्थ्य साधनभूत मंत्र यंत्र पूजा विधान, सिद्ध भये पीछै उन विद्यानिका फल, बहुरि अंतरिक्ष, भौम, भंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन, छिन्न ये आठ महानिमित्त इत्यादि प्ररूपिए हैं, याके दोय लाखतैं पचावनको गुणिये ऐसे एक कोडि दश लाख पद हैं।

बहुरि कल्याणनिका है वाद कहिये प्ररूपण इसविषै ऐसा कल्याणवाद नाना ग्यारवां पूर्व है। इसविषै तीर्थंकर चक्रवर्ती, बलिभद्र, नारायण, प्रतिनारायण इनके गर्भ आदि कल्याण कहिये महा उत्सव, बहुरि तिनके कारणभूत षोडश भावना तपश्चरणादिक क्रिया, बहुरि चंद्रमा सूर्य ग्रह नक्षत्र इनका गमन विशेष ग्रहण शकुन फल इत्यादि वर्णन कीजिये है। याके दोय लाखतैं तेरहसैको गुणिये ऐसे छव्वीस कोडि पद हैं ।।११।।

बहुरि प्राणनिका है आवाद कहिये प्ररूपण इसविषै ऐसा प्राणावाद नामा बारवां पूर्व है। इसविषै चिकित्सा आदि आठ प्रकार वैद्यक, अर भूतादिक व्याधि दूरि करने को कारण मंत्रादिक वा विष दूरि करनहारा जो जांगुलिक ताका

कर्म वा 'इड़ा पिंगला सुषुम्ना' इत्यादि स्वरोदयरूप बहुतप्रकार श्वासोच्छ्वासका भेद बहुरि दशप्राणनिको उपकारी वा अनुपकारी वस्तु गत्यादिक के अनुसारि वर्णन कीजिये है । याके दोय लाखतै छसै पचासको गुणिये ऐसे तेरह कोडि पद हैं ।।१२।।

बहुरि क्रियाकरि विशाल कहिये विस्तीर्ण शोभायमान ऐसा क्रियाविशाल नामा तेरहवां पूर्व है । इसविषै संगीतशास्त्र, छन्द अलङ्कारादि शास्त्र, बहत्तरि कला, चौसठि स्त्रीका गुण, शिल्प आदि चातुर्यता, गर्भाधान आदि चौरासी क्रिया, सम्यग्दर्शन आदि एकसो आठ क्रिया, देववंदना आदि पचीस क्रिया और नित्यनैमित्तिक क्रिया इत्यादिक प्ररूपिए हैं । याके दोय लाखतै च्यारिसै पचासको गुणिये ऐसे नव कोडि पद हैं ।।१३।।

बहुरि त्रिलोकनिका बिंदु कहिये अवयव अर सार सो प्ररूपिये है याविषै ऐसा त्रिलोकबिंदुसार नामा चौदहवां पूर्व है । इसविषै तीन लोकका स्वरूप, अर छबीस परिकर्म, आठ व्यवहार, च्यारि बीज इत्यादि गणित, अर मोक्षका स्वरूप, मोक्षका कारणभूत क्रिया, मोक्षका सुख इत्यादि वर्णन कीजिये हैं । याके दोय लाखतैं छसै पचीसको गुणिये ऐसे बारह कोडि पचीस लाख पद हैं ।।१४।। ऐसैं चौदह पूर्वनिके पदनिकी संख्या कही । इहां दोय लाखका गुणकारक विधान करि गाथाविषै संख्या कही थी, तातै टीकाविषै भी तैसै ही कही है । गाथा–

सामाइयचउवीसत्थयं तदो वंदणा पडिक्कमणं ।
वेणइयं किदिकम्मं, दसवेयाभं च उत्तरज्झयणं ।। ३६७ ।।

कप्पववहारकप्पाकप्पियमहकप्पियं च पुंडरियं ।
महपुंडरीयणिसिहियमिदि चोद्दसमंगबाहिरयं ।। ३६८ गो.सा.जी. ।।

अर्थ—बहुरि प्रकीर्णक नामा अंगबाह्य द्रव्यश्रुत, सो चौदह प्रकार है । सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, निषिद्धिका । तहां 'सम्' कहिये एकत्वपनेकरि 'आय:' कहिये आगमन, परद्रव्यनितैं निवृत्ति होय, उपयोग की आत्माविषै प्रवृत्ति–यहु मैं ज्ञाता दृष्टा हौं–ऐसैं आत्माविषै उपयोग सो सामायिक कहिये । जातैं एक ही आत्मा सो जाननेयोग्य है, तातै ज्ञेय है । अर जाननहारा है, तातै ज्ञायक है, तातै आपको ज्ञाता दृष्टा अनुभवे है । अथवा 'सम'

कहिये रागद्वेषरहित मध्यस्थ आत्मा, तिसविषं 'आयः' कहिये उपयोग की प्रवृत्ति सो समाय कहिये, समाय है प्रयोजन जाका सो सामायिक कहिये। नित्यनैमित्तिकरूप क्रियाविशेष तिस सामायिकका प्रतिपादकशास्त्र सो भी सामायिक कहिये। सो नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भेदकरि सामायिक छह प्रकार है।

तहां इष्ट अनिष्ट नामविषै रागद्वेष न करना, अथवा किसी वस्तुका सामायिक ऐसा नाम धरना, सो नामसामायिक है। बहुरि मनोहर वा अमनोहर जो स्त्रीपुरुषादिकका आकार लीये काठ लेप चित्रामादि रूप स्थापना तिनविषै रागद्वेष न करना, अथवा किसी वस्तुविषै यहु सामायिक है ऐसी स्थापना करि स्थाप्या हुवा वस्तु सो स्थापनासामायिक है। बहुरि इष्ट अनिष्ट चेतन अचेतन द्रव्यविषैं रागद्वेष न करना, अथवा जो सामायिकशास्त्रको जाने है अर वाका उपयोग सामायिकविषैं नाहीं है, तो जीव वा उस सामायिकशास्त्र जाननेवाले शरीरादिक सो द्रव्यसामायिक है। बहुरि ग्राम नगर वन आदि इष्ट अनिष्ट क्षेत्र, तिनविषैं रागद्वेष न करना सो क्षेत्रसामायिक है। बहुरि वसंत आदि ऋतु अर शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, दिन, वार, नक्षत्र इत्यादि इष्ट अनिष्ट काल के विशेषनिविषैं रागद्वेष न करना, सो कालसामायिक है। बहुरि भाव जो जीवादिकतत्त्वविषैं उपयोगरूप पर्याय ताकै मिथ्यात्व कषायरूप संक्लेशपनाकी निवृत्ति अथवा सामायिकशास्त्रको जाने है अर उसहीविषैं उपयोग जाका है, सो जीव अथवा सामायिकपर्यायरूप परिणमन सो भावसामायिक हैं। ऐसे सामायिक नामा प्रकीर्णक कह्या है।

बहुरि जिसकालविषै जिनका प्रवर्तन होइ, तिसकालविषै तिनही चौवीस तीर्थंकरनिका नाम स्थापना द्रव्य भावका आश्रयकरि पञ्चकल्याण, चौतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य, परम औदारिकदिव्यशरीर, समवसरण सभा, धर्मोपदेश देना इत्यादि तीर्थंकरपने की महिमाका स्तवन, सो चतुर्विशतिस्तव कहिये, ताका प्रतिपादक शास्त्र सो चतुर्विशतिस्तव नामा प्रकीर्णक है।

बहुरि एकतीर्थंकरका अवलंबन करि प्रतिमा चैत्यालय इत्यादिक की स्तुति सो वंदना कहिये। याका प्रतिपादकशास्त्र सो वंदनाप्रकीर्णक कहिये।

बहुरि प्रतिक्रम्यते कहिये प्रमादकरि कया दैवसिक आदि दोष निराकरण याकरि कीजिये, सो प्रतिक्रमण कहिये। सो प्रतिक्रमण सात प्रकार है—दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक, उत्तमार्थ। तहां

संध्यासमय दिनविषै कीया दोष जाकरि निवारिये, सो दैवसिक है। प्रभातसमय रात्रिविषैं कीया दोष जाकरि निवारिये, सो रात्रिक है। बहुरि पंद्रहवें दिन पक्षविषैं कीया दोष जाकरि निवारिये, सो पाक्षिक कहिये। बहुरि चौथे महिने च्यारि मासविषै कीये दोष जाकरि निवारिये, सो सांवत्सरिक कहिये। बहुरि वरसवें दिन एकवर्षविषै कीये दोष जाकरि निरिवाये, सो सांवत्सरिक कहिये। बहुरि गमन करतं निपज्या दोष जाकरि निवारिये सो ऐर्यापथिक कहिए। बहुरि सर्वपर्यायसंबंधी दोष जाकरि निवारिये सो उत्तमार्थ है। ऐसें सातप्रकार प्रतिक्रमण जानना। सो भरतादि क्षेत्र, अर दुःषमा आदि काल, छह संहननकरि संयुक्त, स्थिर वा अस्थिर पुरुषनिके भेद, तिनकी अपेक्षा प्रतिक्रमण का प्रतिपादक शास्त्र सो प्रतिक्रमण नामा प्रकीर्णक कहिये।

बहुरि विनय है प्रयोजन याका सो वैनयिक नामा प्रकीर्णक कहिये। इसविषैं ज्ञानदर्शनचारित्रतप उपचारसंबंधी पंचप्रकार विनयके विधानका प्ररूपण है।

बहुरि कृति कहिये क्रिया, ताका कर्म कहिये विधान, इसविषैं प्ररूपिये है, सो कृतिकर्म नामा प्रकीर्णक कहिये। इसविषैं अरहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु आदि नवदेवतानिकी वन्दनाके निमित्त आप आधीन होना, सो आत्माधीनता। अर गृध्रभ्रमणरूप तीन प्रदक्षिणा अर पृथ्वीतैं अंग लगाय दोय नमस्कार, अर शिर नमाय च्यारि नमस्कार, अर हाथ जोडि फेरनेरूप बारह आवर्त इत्यादि नित्यनैमित्तिक क्रियाका विधान निरूपिये हैं।

बहुरि विशेषरूप जे काल, ते विकाल कहिये, तिनको होते जो होय, सो वैकालिक। सो दश वैकालिक इसविषैं प्ररूपिये हैं, ऐसा दशवैकालिक नामा प्रकीर्णक है। इसविषैं मुनिका आचार अर आहारकी शुद्धता अर लक्षण प्ररूपिये है।

बहुरि उत्तर जिसविषैं अधीयन्ते कहिये पढिये, सो उत्तराध्ययन नामा प्रकीर्णक है। इसविषैं च्यारिप्रकार उपसर्ग, बाईस परीषह इनिके सहनेका विधान वा तिनका फल अर इस प्रश्नका यहु उत्तर, ऐसे उत्तरविधान प्ररूपिये है।

बहुरि कल्प्य कहिये योग्य आचरण सो व्यवह्रियते अस्मिन् कहिये प्रवृत्तिरूप कीजिए है याविषै ऐसा कल्प्यव्यवहार नामा प्रकीर्णक है। इसविषैं मुनीश्वरनिके योग्य आचरणका विधान अर अयोग्यका सेवन होते प्रायश्चित्त प्ररूपिये है।

बहुरि कल्प्य कहियो योग्य अर अकल्प्य कहियो अयोग्य प्ररूपिये है याविषैं ऐसा कल्प्याकल्प्य नामा प्रकीर्णक है। इसविषैं द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकी अपेक्षा साधुनिको 'यहु योग्य है यहु अयोग्य है' ऐसा भेद प्ररूपियो है।

बहुरि महता कहिये महान् पुरुषनिके कल्प्य कहिये योग्य ऐसा आचरण इसविषै वर्णिये है सो महाकल्प्य नामा प्रकीर्णक है। इसविषै जिनकल्पी महामुनीनिके उत्कृष्ट संहननयोग्य द्रव्य क्षेत्र काल भावविषै प्रवर्तते तिनके प्रतिमायोग वा आतापन अभ्रावकाश वृक्षतलरूप त्रिकालयोग इत्यादि आचरण प्ररूपिये है। अर स्थविरकल्पीनिका दीक्षा शिक्षा संघ का पोषण यथायोग्य शरीरका समाधान सो आत्मसंस्कार सल्लेखना उत्तमार्थ स्थानकूं प्राप्ति उत्तम अराधना इनका विशेष प्ररूपिये हैं।

बहुरि पुण्डरीक नामा प्रकीर्णक भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, कल्पवासी इनविषै उपजनेको कारण ऐसे दानपूजा-तपश्चरण अकामनिर्जरा सम्यक्त्व संयम इत्यादि विधान प्ररूपे हे। वा तहां उपजनेतैं जो विभवादि पाइये तिसही प्ररूपे है।

बहुरि महान् जो पुण्डरीक नामा प्रकीर्णक है, सो महर्द्धिक जे इन्द्र प्रतीन्द्र अहमिन्द्रादिक तिनविषैं उपजनेको कारण ऐसे विशेष तपश्चरणादि तिनको प्ररूपे है।

बहुरि निषेधनं कहिये प्रमादकरि कीया दोषका निराकरण, सो निषिद्धि कहिये संज्ञाविषैं क-प्रत्ययकरि निषिद्धिका नाम भया। ऐसा निषिद्धिका नाम प्रकीर्णक प्राश्चित्तशास्त्र है। इसविषैं प्रमादतैं किया दोषकी विशुद्धताके निमित्त अनेकप्रकार प्रायश्चित्त प्ररूपीये हे। याका निसीतिका ऐसा भी नाम हे। ऐसे अंगबाह्य श्रुतज्ञान चोदहप्रकार कह्या, याके अक्षरनिका प्रमाण पूर्वं कह्याही हैं। आगे श्रुतज्ञानकी महिमा कहे हैं। गाथा—

सुदकेवलं च णाणं दोण्णि वि सरिसाणि होंति बोहादो।
सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं ॥३६९॥ गो. सा. जी. ॥

अर्थ—श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान दोऊ समस्तवस्तुनिके द्रव्यगुण पर्याय जाननेकी अपेक्षा समान हैं। इतना विशेष-श्रुतज्ञान परोक्ष है अर केवलज्ञान प्रत्यक्ष है। भावार्थ—जैसे केवलज्ञानका अपरिमित विषय है, तैंसे श्रुतज्ञानका भी अपरिमित विषय है-शास्त्रतैं सबनिको जाननेकी शक्ति है, परन्तु शास्त्रज्ञान सर्वोत्कृष्टहू होइ तोभी सर्वपदार्थनिविषैं परोक्ष कहिये अविशद-अस्पष्टही जाने है। जातैं अमूर्तिकपदार्थनिविषैं वा सूक्ष्म अर्थपर्यायनिविषैं वा अन्य सूक्ष्म अंशनिविषैं विशदताकरि प्रवृत्ति श्रुतज्ञानकी नहीं होहै। बहुरि जे मूर्तिक व्यंजनपर्याय वा अन्य स्थूल अंश इस ज्ञानको विषय है, तिनविषैं भी अवधि-

ज्ञानादिककी नांई प्रत्यक्षरूप न प्रवर्ते है, तातें श्रुतज्ञान परोक्ष है। बहुरि केवलज्ञान प्रत्यक्ष कहिये विशद स्पष्टरूप मूर्तिक अमूर्तिक पदार्थ सूक्ष्म स्थूल पर्याय तिनिविषें प्रवर्ते है। जातें समस्त आवरण अर वीर्यांतराय के क्षयतें प्रकट होय है, तातें प्रत्यक्ष है। अक्ष कहिये आत्मा, तींप्रति निश्चित होय कोई परद्रव्यकी अपेक्षा नहीं चाहै, सो प्रत्यक्ष कहिये, प्रत्यक्षका लक्षण विशद है स्पष्ट है, जहां अपने विषयके जाननेमें कसर न होय ताको विशद वा स्पष्ट कहिये। बहुरि उपात्त अनुपात्तरूप परद्रव्यकी सापेक्षाको लीये जो होइ सो परोक्ष कहिये, याका लक्षण अविशद अस्पष्ट जानना। मन नेत्र अनुपात्त हैं, जातें नेत्र अर मन पदार्थको स्पर्शे नहीं हैं दूरि-तिष्ठतेहीकूं जाने हैं, अर अन्य स्पर्शना, रसन, घ्राण, कर्ण ये च्यारि इन्द्रिय अपने विषयकूं स्पर्श जाने हैं, यातें च्यारि इन्द्रिय उपात्त हैं। ऐसा श्रुतज्ञान केवलज्ञानविषें प्रत्यक्षपरोक्षलक्षणभेदतें भेद है। बहुरि विषय अपेक्षा समानता है। ऐसे श्रुतज्ञानका स्वरूप संक्षेपतें वर्णन किया।

अवधिज्ञानका संक्षेपकथन ऐसा-जो द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादा करिके अर रूपी जो पुद्गल ताकूं प्रत्यक्ष जानै सो अवधिज्ञान है मतिश्रुतकेवलज्ञानकीनांई अप्रमाण द्रव्य गुण पर्याय याका विषय नाहीं है। सो अवधिज्ञान एक तो भवही जाको कारण सो तो भवप्रत्यय अवधिज्ञान है। अर सम्यग्दर्शनादि गुणनिकरि जो उपजै, सो गुणप्रत्यय है। तहां देवनिके तथा नारकीनिके तथा तीर्थंकरनिके सर्व आत्माके प्रदेशनिके ऊपरि तिष्ठता जो अवधिज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय नामा कर्म, तिनका क्षयोपशमतें उत्पन्न होय है। जातें जो देवका भव तथा नारकीका भव तथा तीर्थंकरका भव पावेगा, ताके आप आपके क्षयोपशमप्रमाण बहुत अर अल्प अवधिज्ञान होयहीगा। तातें इनिके अवधिज्ञानकूं भवही कारण है, तातें भवप्रत्यय अवधिज्ञान कह्या है। अर गुणप्रत्यय अवधिज्ञान पर्याप्त मनुष्यनिके तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचनिके सम्यग्दर्शनादिक गुण तथा तपश्चरणादिकनिकरि जो नाभिके ऊपरि शंख, पद्म, स्वस्तिक, झष कलशादिक शुभचिह्ननिकरि सहित जे आत्माके प्रदेश, तिन ऊपरि तिष्ठता जो अवधिज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय नामा कर्म ताके क्षयोपशमतें उत्पन्न होय है। जातें देवनारकीनिके सम्यग्दर्शनादि गुण कोऊके होतेहू गुणनिकी अपेक्षा नाहीं, तातें भवप्रत्ययही जानना। अर मनुष्य तिर्यंचनिके भवकी अपेक्षा नहीं गुणनिहीकी अपेक्षा है। बहुरि गुणप्रत्यय अवधिज्ञान छप्रकार है—अनुगामि, अननुगामि, अवस्थित, वर्द्धमान, हीयमान।

जो अवधिज्ञान आपका उत्पन्न करनेवाला जीवकी साथि गमन करे, सो अनुगामि कहिये। सो अनुगामि तीन प्रकार है-क्षेत्रानुगामि, भवानुगामि, उभयानुगामि। तिनविषें जा भरतादिक क्षेत्रमें उपज्या अर तातें अन्य विदेहादि

क्षेत्रमें विहार करता जीवकी साथि गमन करे अर मरणकरि अन्यभवकूं जाय तहां गमन नहीं करे, सो क्षेत्रानुगामि अवधिज्ञान है। अर जा भवमें उत्पन्न भया तातें अन्य देवादिकनिके भवमें गमन करता जीवकी साथि गमन करे, सो भवानुगामि है। अर जा भवमै अर जा क्षेत्रमें अवधिज्ञान उपज्या तातें अन्य जे भरत ऐरावत विदेहादिक क्षेत्र अर देव-मनुष्यादिक भवमे गमन करता जीवकी साथि गमन करै, सो उभयानुगामि है। ऐसे अनुगामि अवधि तीन प्रकारकरि कही। अब जो अवधिज्ञान आपका उत्पन्न करनेवाला स्वामी जीव, ताकी साथि गमन नहीं करे, सो अननुगामीहू तीन प्रकार है। जो अन्यक्षेत्रमें जीवकी साथि नहीं जाय जा क्षेत्रमें उत्पन्न भया, ता क्षेत्रमेंही विनशि जाय, अन्य भवकूं जावो वा मति जावो, सो क्षेत्राननुगामि अवधिज्ञान है। अर जो अवधिज्ञान अन्यभवमें साथि नहीं जाय, आ भवमें उपज्या ताही में विनशि जाय, अन्यक्षेत्रमें लेर जाहु वा मति जाहु, सो भवाननुगामि कहिये। अर जो अवधिज्ञान अन्यक्षेत्रमेंहू साथि गमन नहीं करै अर अन्यभवहूमें नहीं गमन करै सो उभयाननुगामी कहिये।

अर जो अवधिज्ञान सूर्यमंडलकीनांई हानिवृद्धिकरि रहित एकप्रकार तिष्ठे सो अवस्थित नामा अवधिज्ञान है। अर जो अवधिज्ञान कोऊ कालमें बधै, कोऊ कालमें घटै, कोऊ कालमें जैसेका तैसे रहै सो अनवस्थित नामा अवधिज्ञान है। अर जो अवधिज्ञान शुक्लपक्षका चंद्रमाका मंडलकीनांई आप उत्कृष्टपर्यंत बधै सो वर्धमान अवधिज्ञान हैं। अर जो कृष्णपक्षका चंद्रमंडलकीनांई आपका क्षयपर्यंत घटै सो हीयमान है।

भावार्थ—जो अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशमतें उपज्या था, सो सम्यग्दर्शनादिक विशुद्धपरिणामतें आवरणका क्षयोपशमके बधनेतें बधता बधता आपका उत्कृष्टस्थानपर्यंत बधै सो वर्धमान है अर जा दिन उपज्या, ता दिनतें संक्लेशपरिणामनिके बधनेतें घटता घटता आपका नाशपर्यंत घटै, सो हीयमान है। ऐसे छह भेद कहे। बहुरि सामान्यकरि अवधिज्ञान तीनप्रकार है। एक देशावधि, दूजा परमावधि, तीजा सर्वावधि। तिनमे पूर्वे कह्या जो भवप्रत्यय अवधिज्ञान, सो नियमकरि देशावधिही है, जातें देवनिकै वा नारकीनिकै गृहस्तीर्थंकरनिकै परमावधि सर्वावधि नहीं सभवे है। नियमथकी परमावधि सर्वावधि गुणप्रत्ययही है। अर महाव्रती चरमशरीरी तद्भवमोक्षगामी वज्रवृषभनाराचसंहननका धारी मनुष्य, ताकै ही परमावधि सर्वावधि होय है। अर देशावधि देव नारकी मनुष्य तिर्यंच तथा संयमी असंयमाकैभी होय है। परन्तु देशावधिका उत्कृष्ट भेद मनुष्यमहाव्रतीहीकै होय, अन्य तीन गतीनिमैं तथा असंयमीकै नहीं होय है। बहुरि

प्रतिपाती तथा अप्रतिपाती देशावधिही है । परमावधि सर्वावधिका छूटना नहीं है, इनका धारक निर्वाणही गमन करे, तातैं अप्रतिपातीही है । देशावधि में अर परमावधिमें अपने अपने जघन्यद्रव्यक्षेत्रकालभावनै आदि लेय आपके उत्कृष्ट-पर्यंत असंख्यात लोकपर्यंत विकल्प हैं । अर द्रव्यक्षेत्रकालभावको नियमरूप सीमानैं लीया रूपी जो पुद्गलद्रव्य ताकूं तथा कर्मपुद्गलसहित संसारी जीवद्रव्य ताकूं प्रत्यक्ष जाने है । अर सर्वावधिज्ञान में जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद नहीं है, अवस्थित एकरूप हानिवृद्धिरहित सर्वोत्कृष्ट विशुद्धतासहित जाने है । अर इन अवधिज्ञानका विषयभूत द्रव्य क्षेत्र काल भावनिके द्वारैं विशेषस्वरूप गोमटसारादि ग्रंथनितैं जानना ।

बहुरि मनःपर्ययज्ञान दोयप्रकार है—एक ऋजुमतिमनःपर्यय, दूसरा विपुलमतिमनःपर्यय । वीर्यांतराय तथा मनःपर्ययज्ञानावरणका तो क्षयोपशम अर अंगोपांग नाम कर्मका अवलंबनतैं जो परका मनका संबंधकरिकैं अर जो रूपीपदार्थको प्रत्यक्ष जानने में प्रवर्तै सो मनःपर्ययज्ञान है । सरलमनकरि चिंतवन कीया अर्थको जाने, सरलवचनकरि कह्या अर्थकूं जाने, सरलकायकरि कीया अर्थकूं जाने, तथा मनकरि अर्थकूं प्रकट चिंतवन कीया वा धर्मादियुक्त वचन उच्चारण कीया तथा अंगोपांगकूं निपातन कीया, खैंच्या, पसारया इत्यादिककारकैं अर लगताही समय में चिंतवन कीया वा बहोत कालपीछें चिंतवन कीया, जो मैं कहा विकल्प कीया ? कहा कह्या ? कहा कायकरि कीया ? अथवा विस्मरण होनेकरि बहुरि चिंतवन करनेकूं असमर्थ हुवा ऐसा अर्थकूं ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानवाला पूछेतैं वा विनापूछेतैं जानै—जो, ई पुरुष ऐसा चिंतवन कीया, वा ऐसें कह्या वा कायकरि ऐसें कीया, ताकूं प्रत्यक्ष जानै, सो ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है । आपका वा परका चिंतवन, जीवित, मरण, सुख, दुःख, लाभ अलाभादिकनिनैं जाने है । जघन्य तो आपका वा अन्यजीवनिका दोय तीन भव जाने है अर उत्कृष्टतैं सप्त अष्ट भव गत्यागत्यादिकनिकरि जाने । क्षेत्रथकी जघन्य सात आठ कोशको जानै, उत्कृष्ट सात आठ योजनमांहि जानै, बाहिर नहीं जानै ।

अर विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान, सरल मनोवचनकाय तथा वक्रमनोवचनकायकरि चिंतवन कीया तथा कह्या तथा कायकरि कीया जो अर्थ आपकै वा अन्यकै चिंतवन वा जीवन मरण लाभ अलाभ सुखदुःखादिक चिंतवन कीया वा करे है वा करेगा, तिस सर्वकूं जानै । जघन्य तो सात आठ भव अर उत्कृष्ट असंख्यात भव, अर जघन्य तो सात आठ योजन उत्कृष्ट मानुषोत्तरपर्वतमांही आपका विषय रूपीपदार्थकूं जाने है । अर श्रीगोमटसारजी में ऐसें कह्या है, जो उत्कृष्ट पैंतालीस लाख योजन चौडा, लंबा, ऊंचा क्षेत्रमें तिष्ठता आपका विषय जो रूपीपदार्थ ताहि जानै । बहुरि केवल-

ज्ञान अनंतपर्याय भूतभविष्यद्वर्तमान त्रिकालसंबंधी संपूर्ण द्रव्यगुणपर्यायनिकी परिणतिसहित मूर्तिक अमूर्तिक सर्वद्रव्यनिकूं जानै है ।

ऐसें ज्ञानका स्वरूप श्रीगोमटसार नामा ग्रंथमें कह्या, ताका संक्षेप अपना अर अन्यजीवनिका उद्धारके अर्थि प्रकरण पाय वर्णन कीया । अब निर्यापक आचार्यका निर्वापक गुण कहे हैं । गाथा—

वत्ता कत्ता च मणी विचित्तसुदधारओ विचित्तकहो ।
तह य अपायविदण्हू मइसंपण्णो महाभागो ॥५०५॥

अर्थ—बहुरि निर्वापक गुरु कैसाक होय ? वक्ता कहिये परका हृदय में अर्थप्रवेश कराय देनेका सामर्थ्यरूप वक्तृत्व नामा गुणका धारक होय । बहुरि विनय अर वैयावृत्यका कर्ता होय । बहुरि विचित्रश्रुतका धारक होय । बहुरि प्रथमानुयोग अर करणानुयोग अर चरणानुयोग अर द्रव्यानुयोग इन च्यारि अनुयोगके अनुकूल जे विचित्र कथा, तिनका निरूपण करनेवाला है सामर्थ्य जाका ऐसा होय । बहुरि रत्नत्रयका अतीचारका जाननेवाला होय । बहुरि स्वाभाविक बुद्धिकरि संयुक्त होय । बहुरि महाभाग कहिये स्ववश होय । गाथा—

पगदे णिस्सेसं गाहुगं च आहरणहेदुजुत्तं च ।
अणुसासेदि सुविहिदो कुविदं सण्णिव्ववेमाणो ॥५०६॥
णिद्धं मधुरं गम्भीरं मणप्पसादणकरं सवणकन्तं ।
देह कह णिव्ववगो सदीसमण्णाहरणहेउं ॥५०७॥

अर्थ—निर्वापक गुरु और कहा करे है ? पूर्वें संन्यास प्रारम्भ किया ताविषे दृष्टान्त हेतुकरि युक्त समस्तत्यागसंयमकूं ग्रहण करावता शिक्षा करै । अर जो क्षपक कुपित भया होय तो ताकूं उपशमभावनं प्राप्त करता ऐसी शिक्षा देवे, जातें पूर्वें व्रत संयम नियम धारण करनेकी प्रतिज्ञा करी थी, ताका स्मरण प्रकट हो जाय । सो कैसीरीति कथाका उपदेश देवे, सो कहे हैं–प्रियवचनकी बाहुल्यताकरि तो स्नेहरूप होय । बहुरि कठोरतारहिततातें मधुर होय । अर अर्थकी दृढताकरि गम्भीर होय । बहुरि मनकूं आल्हाद करनेवाली होय । बहुरि कर्णनिकूं सुख देनेवाली होय । ऐसी संयमकी स्मृति करावनेवाली शिक्षा करै । गाथा—

जह पवखुभिदुम्मीए होदं रवणभरिदं समुद्दम्मि ।
णिज्जवओ धारेदि हु जिदकरणो बुद्धिसंपण्णो ॥५०८॥
तह संजमगुणभरिदं परिस्सहुम्मीहिं खुभिदमाइद्धं ।
णिज्जवओ धारेदि हु महुरेहिं हिदोवदेसेहिं ॥५०९॥

अर्थ—जैसे अत्यन्त क्षोभनें प्राप्त भई है तरंग जिनमें ऐसा जो समुद्र, ताकेविषें रत्ननिकरि भरी जो जिहाज, ताही निर्वापक जो खेवटिया, सोही धारण करै । कैसा है निर्वापक ? जीती है इन्द्रिय जानें । बहुरि कैसा है ? बुद्धिकरि संयुक्त है । अर जैसे इन्द्रियनिका जीतनेवाला अर बुद्धिसंयुक्त ऐसा खेवटिया चलायमान समुद्रमें डूबती रत्ननिकी भरी जिहाजको रक्षा करे; तैसे निर्वापकाचार्यहु संयमगुणकरि भरी हुई ऐसी जो तपस्वीरूपी जिहाज, सो परीषहरूप लहरयां करि क्षोभकूं प्राप्त भई, ताकूं मिष्ट अर हितरूप उपदेशनिकरि धारण करै—रक्षा करे है । भावार्थ—क्षुधातृषादिक परीषहादिकरि चलायमान होता जो साधु, ताही निर्वापक गुरुनिका उपदेशही रक्षा करे । गाथा—

धिदिबलकरमादहिदं महुरं कण्णाहुदिं जदि ण देइ ।
सिद्धिसुहमावहन्ती चत्ता साराहणा होइ ॥५१०॥

अर्थ—जो धैर्यरूप बलका करनेवाली अर आत्माका हितरूप अर मधुर अर निर्वाणके सुखकूं प्राप्त करनेवाली ऐसी कर्णनिमै आहूति निर्वापक गुरु नहीं देवे, तो आराधना छूटि जाय । तातै परमहितका उपदेशक अर जैसे तैसे अनेकविघ्ननितै रक्षा करि क्षपकरूप जिहाजकूं संसारसमुद्रके पार करि देवे ऐसा निर्वापकगुरुहीका आश्रय करना श्रेष्ठ है । अब कथनका उपसंहार करे हैं । गाथा—

इय णिव्ववओ खवयस्स होइ णिज्जावओ सदायरिओ ।
होइ य कित्ती पधिदा एदेहिं गुणेहिं जुत्तस्स ॥५११॥

अर्थ—ऐसे निर्वापकगुणकरि सहित जो आचार्य, सो क्षपकके सदाकाल निर्वापकाचार्यपणाकरिके उपकारी होय है, जातै येते आचारवानादिक गुण तिनकरि सहित होय ताकीही कीर्ति जगतमें विख्यात होय है । गाथा—

इय अट्ठगुणोवेदो कसिणं आराधणं उवविधेदि ।
खवगो वि तं भयवदी उवगूहदि जादसंवेगो ॥५१२॥

अर्थ—ऐसें आचारवान्, आधारवान्, व्यवहारवान्, प्रकर्ता, अपायोपायविदर्शी अवपीडक, अपरिस्रावी, निर्वापक ये अष्टगुण तिनकरि सहित आचार्य होइ सो समस्त आराधनाकूं प्राप्त करै । अर क्षपकहू ऐसे गुरुनिके प्रसादतें उपज्या है संसारतें भय जाकें सो भगवती कहिये सकलबाधा निवारण करनेतें महातपोवती जो आराधना ताकूं आलिंगन करे है ।

इति सविचारभक्त प्रत्याख्यानमरण के चालीस अधिकारनिविषें निर्वें गाथासूत्रनिकरि सुस्थित नामा सतरमां अधिकार समाप्त कीया । आगे उपसंपत् नामा अठारमा अधिकार छ गाथानिकरि वर्णन करे हैं । गाथा—

एवं परिमग्गित्ता णिज्जवयगुणेहिं जुत्तमायरियं ।
उवसंपज्जइ विज्जाचरणसमग्गो तगो साहू ॥५१३॥

अर्थ- -ऐसें ज्ञानचारित्रका धारक जो क्षपक मुनि, सो येते निर्यापकाचार्यनिके गुणकरि, सहित जो गुरु तिनकों अवलोकन करिकें अर तिनकी निकटताकूं प्राप्त होवें । गाथा—

तियरणसव्वावासयपडिपुण्णं तस्स किरिय किरियम्मं ।
विणएणमंजलिकदो वाइयवसभं इमं भणदि ॥५१४॥

अर्थ—आचार्यकी निकटताकूं प्राप्त होयकरिके अर पाछें मनवचनकायकरि षडावश्यकक्रिया परिपूर्ण करिके बहुरि कृतिकर्म जो गुरुनिका स्तवन करिके, बहुरि दोऊ हस्त जोरि अंजुली करिके आचार्य श्रेष्ठ ताही ऐसी विनति करै—

तुज्झेत्थ बारसंगसुदपारया सवणसंघणिज्जवया ।
तुज्झं खु पादमूले सामण्णं उज्जवेज्जामि ॥५१५॥

अर्थ—हे भगवन् ! आप द्वादशांग श्रुतके पारगामी हो, अर श्रमणसंघके उद्धार करने वाले हो; यातें आपके चरणारविंदां के निकट मुनिपणाकूं उज्ज्वल करस्यूं । गाथा—

पव्वज्जादी सव्वं कादूणालोयणं सुपरिसुद्धं ।
दंसणणाणचरित्ते णिस्सल्लो विहरिदुं इच्छे ॥५१६॥

अर्थ—हे भगवन् ! जा दिनतें हम दीक्षा ग्रहण करी, ता दिनकूं आदि ले आजितांई भले प्रकार शुद्ध जो आलोचना, ताहिकरिके अर दर्शनज्ञानचारित्रविषैं निःशल्य होय प्रवर्तन करनेकी इच्छा करूं हूं। गाथा—

एवं कदे णिसग्गे तेण सुविहिदेण वायओ भणइ ।
अणगार उत्तमठ्ठं साधेहि तुमं अविग्घेण ॥५१७॥

अर्थ—सुविहित जो क्षपक ताकूं ऐसें त्याग करनेमें उद्यमी होता संता वाचक जो आचार्य सो कहै–हे अनगार कहिये हे मुने ! तुम निर्विघ्नताकरि उत्तम अर्थ जो च्यारि आराधना, ताका साधन करो। गाथा—

धण्णोसि तुमं सुविहिद एरिसओ जस्स णिच्छओ जाओ ।
संसारदुक्खमहणीं घेत्तुं आराहणपडायं ॥५१८॥

अर्थ—हे मुने ! धन्य हो। जाके संसारके दुःखका नाश करनेवाली आराधनारूप पताका ग्रहण करनेकूं ऐसा निश्चय उपजा।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरण के चालीस अधिकारनिविषैं छ गाथानिकरि उपसंपता नामा अठारमा अधिकार समाप्त हुवा। अब आगे पीरक्षा नामा उगणीसमां अधिकार दोय गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

अच्छाहि ताम सुविहिद वीसत्थो मा य होहि उव्वादो ।
पडिचरएहिं समंता इणमठ्ठं संपहारेमो ॥५१९॥

अर्थ—हे मुने ! तितनेंक विश्वासरूप तिष्ठो, व्याकुलचित्त मति होहु जितने हम वैयावृत्यके करनेवालेनिकरि या प्रयोजनकूं निश्चयकरि लेवें, तितने धैर्य राखहु। गाथा—

तो तस्स उत्तमट्ठं करणुच्छाहं पडिच्छदि विदण्हू ।

खीरोदणदव्वुग्गहदुगुंछणाए समाधीए ॥५२०॥

अर्थ— तींठा पाश्चं मार्गका जानने वाला आचार्य जो है, सो क्षपकके रत्नत्रयकी आराधनाका करनेमें उत्साहकी परीक्षा करं, जो, याके आराधना करनेमें उत्साह है कि नहीं है ? तथा क्षीर ओदनादिक जे मनोज्ञ आहार तामें लोलुपता है कि ग्लानि है ? ऐसे परीक्षा करे ।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यान के चालीस अधिकारनिविषें परीक्षा नामा उगणीसमां अधिकार दोय गाथानिमें समाप्त किया । आगे प्रतिलेखन नामा बीसमां अधिकार दोय गाथानिकरि कहे हैं । गाथा--

खवयस्सुवसंपण्णस्स तस्स आराधणा अविक्खेवं ।

दिव्वेण णिमित्तेण य पडिलेहदि अप्पमत्तो सो ॥५२१॥

अर्थ---बहुरि आचार्य जो है सो आराधना करने के निमित्त आया जो क्षपक ताकी आराधना निर्विघ्न होनेके अर्थि दिव्य जो निमित्तज्ञान ताकरि सावधान हुवा अवलोकन करै-जो, या क्षपकके आराधना निर्विघ्न होनी है अक नहीं होनी है ? ऐसा निमित्तज्ञानसूं अवलोकन करं । और कहा देखे सो कहे हैं---

रज्जं खेत्तं अधिवदिगणमप्पाणं च पडिलिहित्ताणं ।

गुणसाधणो पडिच्छदि अप्पडिलेहाए बहुदोसा ॥५२२॥

अर्थहु--राज्यकूं अवलोकन करं, जो राजा धर्मका सहायी है अक द्वेषी है, अक मध्यस्थ है ? तथा राजाका मंत्री दुष्ट है अक शिष्ट है ? जो, राजा वा राजा का मंत्री दुष्ट होय; तो संघकूं उपसर्ग आय करं, प्रभावना भंग करं, साधुजनांके दूषण लगाय दे, तातं राजा वा राजाका मंत्री जहां न्यायमार्गी होय वा जाका राज्यमें दुष्टजन कोईका धर्म नहीं बिगाडि सके, सर्व वर्णाश्रमका प्रतिपालक होय, तहां सल्लेखना करं । तथा जाक्षेत्रमें अति शीत, अति उष्ण, अतिवर्षाकी बाधा नहीं होय, तथा विकलत्रयजीवनिकी जा क्षेत्रमें बहुत बाधा नहीं होय, तथा वातपित्तरोगादिककी प्रचुर बाधा नहीं होय, तथा भोजनपान सुलभ होय, जामें धर्मात्मा जन रक्षक होय, ऐसे क्षेत्रमें संन्यास करं । तथा अधिपति जो देशराज्य

का स्वामी ताकूं अवलोकन करै। तथा संघकूं अवलोकन करै, जो, संघमें वैयावृत्य करनेमें उत्साह है अक मन्द है? तथा आपका सामर्थ्य अवसर देखे। तथा सम्यग्दर्शनादिक गुणनिका साधक जो क्षपक ताकूं अवलोकन करे—जो यह साधु क्षुधा तृषा सहनेमें समर्थ है अक नहीं है? देहमें सुख चाहे है, अक निरन्तर भोजन चाहे है, कि नानातपश्चरणकरि देह का सुखका त्यागी है? ऐसे परीक्षा करि संन्यास करावै। अर इतनी योग्यता विना विचारथा करावे, तो बहुत दोष आवे। जातै क्षपक परीषह सहने में कायर होय, पुकारने लगि जाय तथा अयोग्य मनवचनकायकी प्रवृत्ति करै तो धर्म की निन्दा होय अर अन्य साधु धर्ममें शिथिल हो जाय। तातै क्षपकका परिणामादिक अवलोकन करेही। बहुरि राज्य-क्षेत्रादिक योग्य नहीं होय तो अन्यक्षेत्रमें सल्लेखना करावे। अर जो अयोग्यमें करावे अर राज्यको उपद्रव होय तो क्षपक के क्लेश उपजै तथा संघमें उपद्रव आजाय। तातै परीक्षावान् आचार्य सर्व योग्यता देखि आराधनाका आरंभ करावै।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यान के चालीस अधिकारनिविषै प्रतिलेखन नामा बीसमा अधिकार दोय गाथानिमें समाप्त किया। अब आपृच्छा नामा अधिकार एक गाथाकरि कहे हैं। गाथा—

पडिचरए आपुच्छिय तेहिं णिसिट्ठं पडिच्छदे खवयं।
तेसिमणापुच्छाए असमाधी होज्ज तिण्हंपि ॥५२३॥

अर्थ—आचार्य जो संघका अधिपति, सो यद्यपि सर्वसंघपरि जाकी आज्ञा है, तथापि बडा कार्य संघमें पूछेही है, प्रधान मुनीनकूं पूछेविना नहीं करे। आचार्य संघकूं कहा पूछै सो कहे हैं–जे संघमें वैयावृत्य करने जोग्य धर्मानुरागी वात्सल्यताके धारक तिनिकूं ऐसे पूछै, भो साधुजनहो! सुनहू– रत्नत्रयकी आराधना करने में अपनी सहायताने चाहता पाहुणा मुनि आपका संघकूं त्यागि अपने पासि आया है, सो अब इस पाहुणे मुनिका आपांकूं उपकार करना योग्य है अक नहीं है। सो कहो? अर वैयावृत्यसमान कोऊ तप नहीं, उपकार नहीं, दान नहीं, वैयावृत्य तीर्थंकरनामनं कारण है। अर यो विनाशीक देह रत्नत्रयका धारकनिकी वैयावृत्य करिकेही सफल है। अर पात्रका लाभ बडे भाग्यतैंही होय है। तातै आत्महितने इच्छा करते जे आपां तिनकूं अब कहा उचित है? ऐसे संघमें प्रधान मुनि वा वैयावृत्य करनेमे उद्यमी मुनि तिनकूं पूछे। अर सघके मुनि अगीकार करै अर कहै—हे भगवन्! हे कृपानिधान! हे परमवत्सलताके धारक! हे स्वामिन्! आपकी आज्ञा हमारे सर्व कल्याणकी करनेवाली है। हम मन वचन कायकरिके सर्वप्रकार आराधना करा-

यंवमें सावधान हैं। आपका प्रसादविना हमारे पात्रका लाभ होना दुर्लभ है। आपके चरणारविन्द के प्रसादतें हम क्षपक का वैयावृत्य करि हमारा जन्म सफल करेंगे, आत्माकूं उज्ज्वल करेंगे, परनिर्जरा करेंगे, अर जैसे धर्मकी प्रभावना अर संघकी प्रभावना, गुरुनिकी प्रभावना होयगी तैसे करेंगे। ऐसे संघके प्रधानमुनि अंगीकार करें, तदि क्षपककूं आराधना के निमित्त ग्रहण करे।

अर जो संघकूं विना पूछे ग्रहण करे तो क्षपकके अर आचार्यके अर संघके संक्लेश होय समाधानी बिगडि जाय। कैसे ? सो कहे हैं–जब वैयावृत्यका प्रयोजन पडै तदि साधु तो ऐसे कहै–हम इसकूं ग्रहण किया नहीं, हम हमारे ध्यान-स्वाध्याय में प्रवर्तें अक इनकूं धर्मश्रवण करावें ? अक इनका शरीरका टहल करें ? कहा हमारे ही भरोसे है ? अक संघमें हमही हैं ? बहोत साधु वैयावृत्य करनेवाले हैं ही। ऐसे वैयावृत्य में उद्यमी नहीं होय तदि क्षपकका परिणामनि में संक्लेश उपजै। अर गुरुकेही संक्लेश उपजै, जो मैं परसंघमेंतें आया, धर्मात्मा साधु ताकूं अंगीकार किया, अब याका उपकारमें मेरा कोऊ सहायी नहीं, कैसे यह कार्य पार पडेगा ? ऐसे आचार्यके परिणाम बिगडे। बहुरि संघके परिचारक मुनिहूके संक्लेश उपजै, जो बहुतजनकरि साध्य कार्य है, गुरु हमकूं पूछाहू नहीं, अबार हमारा बल अबल देख्या नहीं, देशकाल बिचारया नहीं, दुर्धर कार्य आरम्भ्या है ! ऐसे क्षपकका तथा संघका परिणाम बिगडि जाय, तातें आपृच्छा करना श्रेष्ठ है।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारनिविषै आपृच्छा नामा इकबीसमां अधिकार एक गाथामें समाप्त किया। आगे प्रतीच्छन नामा बाईसमां अधिकार तीन गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

एगो संथारगदो जजइ सरीरं जिणोवदोसेण।
एगो सल्लिहदि मुणी उग्गेहि तवोविहाणेहिं ॥५२४॥
तदिओ णाणुण्णादो जजमाणस्स हु हवेज्ज वाघादो।
पडिदेसु दोसु तीसु य समाधिकरणाणि हायन्ति ॥५२५॥
तम्हा पडिचरयाणं सम्मदमेयं पडिच्छदे खवयं।
भणदि य तं आयरिओ खवयं गच्छस्स मज्झम्मि ॥५२६॥

अर्थ—एक मुनि तो संस्तरकूं प्राप्त होय जिनेन्द्रका उपदेश करिके शरीरको यत्नाचारपूर्वक आराधनामें युक्त करे। एक मुनि उग्रतपके विधानकरि शरीरकूं कृश करे। तीजा मुनिकी आज्ञा नहीं, जातें तीन मुनि सल्लेखना करे तो वैयावृत्य करनेवालेको व्याघात होजाय। जातें दोयतें सिवायकी टहल बनना कठिन है। दोय तीन संस्तरमें पडिजाय तो समाधानताका कारण बिगडि जाय। तातें वैयावृत्य करनेवाले मुनिनके एक क्षपकही इष्ट है—एकहीकूं अंगीकार करे। जातें एकका ग्रहण टहलकरनेवालेनिके मान्य है। आचार्य है सो संघके मध्य क्षपककूं ऐसे कहे हैं सो आगे कहिसी।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारनिविषें प्रतीच्छन नामा बाईसमां अधिकार तीन गाथानिकरि समाप्त किया। आगे आलोचना नामा तेईसमा अधिकार गुणतालीस गाथानिकरि कहे है। गाथा—

फासेहि तं चरित्तं सव्वं सुहसीलयं पयहिदूण।
सव्वं परीसहचमुं अधियासंतो धिदिबलेण ॥५२७॥

अर्थ—हे मुने! तुम धैर्यका बलकरिके, संपूर्ण जो सुखियास्वभाव ताकूं त्यागिकरिके, अर संपूर्ण परीषहनिकी सेनाकूं स्पर्शता संता, चारित्रकूं अंगीकार करहु। भावार्थ—सुखियास्वभाव त्यागेविना मनोज्ञ आहारमें लंपटी होजाय तथा उद्गमादिदोषनिका त्याग न करि सके, तथा अयोग्य उपकरणादिक ग्रहण करे। तातें सुखियास्वभाव त्यागि अर परीषहके सहण करे। तातें सुखियास्वभाव त्यागि अर परीषहके सहनेमें समर्थ होय चारित्र धारण करना उचित है। गाथा—

सद्दे रूवे गंधे रसे य फासे य णिज्जिणाहि तुमं।
सव्वेसु कसाएसु य णिग्गहपरमा सदा होह ॥५२८॥

अर्थ—हे साधो! तुम शब्द रूप गन्ध, रस, स्पर्श, ये जे पांच इन्द्रियनिके विषय तिनविषें रागभावका विजय करो। बहुरि सर्व जे क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय तिनविषें उत्तमक्षमादिककरि निग्रहमें सदाकाल तत्पर होहू। विषय कषायनिकूं जीति कहा कर्तव्य है, सो कहे हैं। गाथा—

हंतूण कसाए इन्दियाणि सव्वं च गारवं हन्ता ।
तो मलिदरागदोसो करेहि आलोयणासुद्धि ॥५२९॥

अर्थ— हे मुने ! कषाय अर इन्द्रिय इनिकूं नष्ट करिके, अर सपूर्ण जो गौरव ताहि हणिकरिके, अर पाछें रागद्वेषरहित हुवा सन्ता आलोचना की शुद्धता करहू । भावार्थ--रागद्वेष असत्यवचनका कारण है । तातें आलोचनाकी शुद्धता बिगडि जाय । जातें रागभावतें तो आपमें तिष्ठतेहू दोष नहीं देखे है, अर द्वेषभावतें परके गुण नहीं ग्रहण करे है । तातें रागद्वेषनिका त्याग करनेतेंही आलोचनाकी शुद्धता होय है । हमारे रत्नत्रय निरतिचार है । तातें अब गुरुनिकूं कहा निवेदन करूं ऐसा मानना योग्य नहीं, ऐसे कहे हैं । गाथा--

छत्तीसगुणसमण्णागदेण वि अवस्समेव कायव्वा ।
परसक्खिया विसोधी सुठ्ठुवि ववहारकुसलेण ॥५३०॥

अर्थ--छत्तीस गुणनिके धारक अर व्यवहारमें प्रवीण ऐसाहू आचार्य आपके रत्नत्रयकी शुद्धता, पर जो अन्यमुनि ताको साखितेंही करे है । भावार्थ-जो बारह प्रकार तप, षट् आवश्यक, पंच आचार, दशलक्षण धर्म, तीन गुप्ति ए छत्तीस गुणनिके धारक तथा व्यवहार जो प्रायश्चित्तग्रन्थ तिनमें प्रवीण, ऐसाहू आचार्य आपके रत्नत्रयमें लगे अतीचारनिकूं अन्यसाधुनिकी साखिविना स्वयमेवही प्रायश्चित्तादिक ग्रहण करि शुद्ध नहीं करे है, परकी साखितेंही प्रायश्चित्तादिक ग्रहण करि शुद्ध करे है । गाथा--

आयारवमादीया अट्ठगुणा दसविधो य ठिदिकप्पो ।
बारस तव छावासय छत्तीसगुणा मुणेयव्वा ॥५३१॥

अर्थ--आचारवानादिक पूर्वोक्त अष्टगुण, अर दशप्रकार स्थितिकल्प, अर द्वादशप्रकार तप, अर षट् आवश्यक ऐसे छत्तीस गुण आचार्यनिके कहे हैं । अथवा अन्यग्रन्थनिमें पंच समिति, तीन गुप्तिरूप, अष्ट प्रवचनमातृका, अर दशलक्षणधर्म, अथवा दशप्रकार पूर्वें स्थितिकल्प वर्णन किया सो, बहुरि द्वादशप्रकार तप, अर षट् आवश्यक ऐसे आचार्यनिके छत्तीस गुण कहे हैं, सो जानने । गाथा--

सव्वे वि तिण्णसंगा तित्थयरा केवली अणन्तजिणा ।
छदुमत्थस्स विसोधिं विसन्ति ते वि य सदा गुरुसयासे ।।५३२

अर्थ—सर्वही तीर्थंकर तथा सामान्य केवली तथा अनन्तसंसारके जीतनहारे, अर संग जो परिग्रह तातें पार उतर गये ऐसे आचार्य उपाध्याय साधु गणधरादिक जे हैं, ते छद्मस्थको शुद्धता गुरुनिके निकटही दिखाई है । यातें परकी साक्षि विना अतिचारनिकी शुद्धता नहीं होय है । सोही दृष्टांतकरि दिखावे हैं । गाथा—

जह सुकुसलो वि वेज्जो अण्णस्स कहेदि आदुरो रोगं ।
वेज्जस्स तस्स सोच्चा सो वि य पडिकम्ममारभइ ।।५३३।।

अर्थ—जैसे कुशलहू वैद्य जदि आप आतुर कहिये रोगी होय तदि अन्यवैद्यके अर्थि आपका रोगकूं कहै–जणावं अर वैद्य ताका रोगकूं सुणिकरि रोगका इलाजको करे । भावार्थ—जब वैद्यके रोग उपजे तब अन्यवैद्यने बुलायकरि कहे "हमारे ऐसा रोग उपजा है" तुम याकूं जाणिकरि प्रतीकार करो । तब अन्यवैद्य रोगीवैद्यका रोगकूं समझि इलाज करे । है गाथा—

एवं जाणंतेण वि पायच्छित्तविधिमप्पणो सव्वं ।
कादव्वादपरविसोधणाए परसक्खिगा सोधी ।।५३४।।

अर्थ—ऐसे आपके संपूर्णप्रायश्चित्तकी विधि जाणताहू साधु आपकी अर परकी शुद्धताके अर्थि पर जो अन्य आचार्यादिक तिनकी साखितंही अपने व्रतनिकी शुद्धता करे है ।

तम्हा पव्वज्जादी दंसणणाणचरणादिचारो जो ।
तं सव्वं आलोचेहि णिरवसेसं पणिहिदप्पा ।।५३५।।

अर्थ—तातें सावधानचित्त होयकरिके अर जो दीक्षा ग्रहण करी ता दिनकूं आदि करिके, अर दर्शन ज्ञान चारित्र में जो अतीचार लाग्या होय सो संपूर्ण प्रत्येक आलोचना करे । गाथा—

काइयवाइयमाणसियसेवणा दुप्पओगसंभूया ।
जइ अत्थि अदीचारं त आलोचेहि णिस्सेसं ॥५३६॥

अर्थ—जो दुष्टप्रयोगतें उपज्या कायवचनमन इनतें जो व्रतनिमें विराधना उपजी होय सो अतीचार है। सो सर्व मनवचनकायकरि उपज्या दोष गुरुनिके समीप आलोचना करै, जणावे, प्रकट करे। गाथा—

अणुगंमि इदो काले देसे अमुगत्थ अमुगभावेण ।
जं जह णिसेविदं तं जेण य सह सव्वमालोचे ॥५३७॥

अर्थ—यातें जा कालमें, जा देशमें, जा भावकरिके, जाकरि सहित, जिस दोषका सेवन भया होय, सो सर्व आलोचना करे। गाथा—

आलोयण हु दुविहा ओघेण य होदि पदविभागी य ।
ओघेण मूलपत्तस्स पयविभागी य इदरस्स ॥५३८॥

अर्थ—आलोचनाहू दोयप्रकार है। एक तो ओघ कहिये सामान्यकरिके अर दूजी पदविभागी कहिये विशेषकरिके। तिनमें जाके मूलसूंही दीक्षा गई ऐसा मूलप्रायश्चित्तकूं प्राप्त होयगा, ताके तो सामान्यकरिकेही आलोचना होय है। अर मूलधर्म जाका नहीं बिगड्या ताके पदविभागी आलोचना है। अब दोऊ प्रकारकी आलोचनाका स्वरूप कहे हैं। गाथा—

ओघेणालोचेदि हु अपरिमिदवराधसव्वघादी वा ।
अज्जोपाए इत्थं सामण्णमहं खु तुच्छोत्ति ॥५३९॥

अर्थ—जा मुनिके अप्रमाण अपराध लग्या होय वा सर्वरत्नत्रयको घातक अपराध लाग्यो होय, सो ऐसे आलोचना करे—हे भगवन्! आजिथकी मैं मुनिपणों इच्छा करूं हूं। मैं आजितांई श्रमणपणाकरि तुच्छ हूं—स्वल्प हूं—रहित हूं। अब आजितें आपके प्रसादतें नवीन दीक्षाव्रत ग्रहण करयो चाहू हूं। भावार्थ—जाके मिथ्यात्व ग्रहण भया होय वा मूलगुण बिगडि गया होय, तो संक्षेपथकी सामान्य आलोचना करि गुरुकी आज्ञाप्रमाण प्रायश्चित्त ग्रहण करे। अब विशेष आलोचनाकूं कहे हैं।

पव्वज्जादी सव्वं कमेण जं जत्थ जेण भावेण ।

पडिसेविदं तहा तं आलोचिंतो पदविभागी ॥५४०॥

अर्थ--दीक्षाकूं आदि लेयकरिके जो सर्व क्षेत्रकालमें जा भावकरिके जिस अनुक्रमकरिके जो दोष सेवन किया होय, सो तैसे ही आलोचना करे, सो पदविभागी आलोचना है । अब शल्यका निराकरण करनेमें गुण, अर शल्यसहित रहनेमें दोष दिखावे हैं । गाथा--

जह कंटएण विद्धो सव्वंगो वेदणुद्दुदो होदि ।

तह्मि दु समुट्ठिदे सो णिस्सल्लो णिव्वुदो होदि ॥५४१॥

एवमणुद्धुददोसो माइल्लो तेण दुक्खिदो होइ ।

सो चेव वंददोसो सुविसुद्धो णिव्वुदो होइ ॥५४२॥

अर्थ--जैसे कंटककरि वेध्या हुवा पुरुष सर्व अंगमें वेदनाकरिके उपद्रुत होय है, दुःखी होय है, अर सो कंटक काढि नाखतां सन्तां शल्यरहित सुखी होय है । तैसे व्रतसंयमादिकनिका नहीं दूरि करया है दोष जानें ऐसा मायाचारी पुरुषहू ता दोषरूप शल्यकरि दुःखित होय है, सोही पुरुष जो गुरुनिके निकट आलोचना करि दोषनिकूं वमन करै--उगलै तो विशुद्ध हुवा सुखी होय है । गाथा--

मिच्छादंसणसल्लं मायासल्लं णिदाणसल्लं च ।

अहवा सल्लं दुविहं दव्वे भावे य बोधव्वं ॥५४३॥

अर्थ--शल्य तीनप्रकार है । एक मिथ्यादर्शनशल्य, दूजा मायाचारशल्य, तीजा आगामी वांछारूप निदानशल्य । अथवा द्रव्यशल्य अर भावशल्य, दोयप्रकार शल्य है ।

तिविहं तु भावसल्लं दंसणणाणे चरित्तजोगे य ।

सच्चित्ते य अचित्ते य मिस्सगे वा वि दव्वम्मि ॥५४४॥

अर्थ--तहां तीनप्रकार भावशल्य है। तिनमे शंकाकांक्षादि दोष लगावना, सो तो दर्शनशल्य है। अर अकालमें तथा विनयरहित श्रुतका अध्ययन करना, सो ज्ञानशल्य है। अर समितिगुप्तिमें अनादर करना, सो चारित्रशल्य है। अर द्रव्यशल्यहू तीनप्रकार है। दासीदासादिकनिकी सचित्तद्रव्यशल्य है। सुवर्णादिसम्बन्धी अचित्तद्रव्यशल्य है। ग्रामनगरादि सम्बन्धी मिश्रद्रव्यशल्य है। अब भावशल्यकूं नहीं दूरि करनेमें दोष दिखावे हैं। गाथा—

एगमवि भावसल्लं अणुद्धरित्ताण जो कुणइ कालं।

लज्जाए गारवेण य ण सो हु आराधओ होदि ॥५४५॥

अर्थ—जो साधु लज्जाकरिके वा गारवकरिके एकहू भावशल्यकूं दूरि किये विना जो मरण करे है, सो मुनि आराधक नहीं होय है। गाथा—

कल्ले परे व परदो काहं दंसणचरित्तसोधित्ति।

इय संकप्पमदीया गयं पि कालं ण याणंति ॥४४६॥

अर्थ—दर्शन तथा चारित्रमें अतीचार लग्या ताकूं कालि आलोचना करि गुरुनिका दिया प्रायश्चित्त ग्रहण करि शुद्ध करूंगा, तथा परसूं करूंगा, तथा आगले दिन करूंगा, ऐसे संकल्प करती है बुद्धि जिनकी ते साधु बहोत काल चल्या जाय है ताकूं नहीं जाने हैं। तातैं अतीचार लागे ता कालमें विलंब नहीं करना, शीघ्रही गुरुनिके निकट जाय आलोचना करि दोषके अनुकूल गुरुनिका दिया प्रायश्चित्त ग्रहण करि शुद्ध करना योग्य है। गाथा—

रागद्दोसाभिहदा ससल्लमरणं मरंति जे मूढा।

ते दुक्खसल्लबहुले भमन्ति संसारकांतारे ॥५४७॥

अर्थ--जे रागद्वेषकरिके पीडित ऐसे मूढ मुनि शल्यकरिके सहित मरण करे हैं, ते दुःखशल्यका भरया हुवा संसार वनविषं परिभ्रमण करे है। गाथा--

तिविहं पि भावसल्लं समुद्धरित्ताण जो कुणदि कालं।

पव्वज्जादी सव्वं स होइ आराधओ मरणे ॥५४८॥

ग्रर्थ--जो दीक्षा ग्रहण किया तादिनतें ग्रादि करिके जो तीनप्रकारकी भावशल्यकूं काढिकरिके ग्रर जो मरण करे है, ताके मरणमें ग्राराधना होय है। गाथा—

जे गारवेहिं रहिदा णिस्सल्ला दंसणे चरित्ते य।

विहरन्ति मुत्तसंगा खवन्ति ते सव्वदुक्खाणि ॥५४६॥

ग्रर्थ--जे तीन गौरवकरि रहित ग्रर तीन शल्यरहित ग्रर परिग्रहमें मूर्छारहित होयकरिके दर्शन-ज्ञान-चारित्रमें विहार करे हैं-प्रवृत्ति करे हैं, ते संसारके सर्व दुःखनिका क्षय करे हैं। गाथा—

तं एवं जाणन्तो महन्तयं लाभयं सुविहिदाणं।

दंसणचरित्तसुद्धो णिस्सल्लो विहर तो धीर ॥५५०॥

ग्रर्थ--हे मुने! हे धीर! संयमीनिके ऐसे महान् लाभ जानते जे तुम, सो दर्शन-ज्ञान-चारित्रकरि शुद्ध शल्यरहित हुवा मार्गमें प्रवर्तन करो। गाथा—

तम्हा सतूलमूलं ग्रविछूढमविप्पुवं ग्रणुव्विग्गो।

णिम्मोहियमणिगूढं सम्मं ग्रालोचए सव्वं ॥५५१॥

ग्रर्थ--जातें शल्यसहित मरणमें दोष, ग्रर निःशल्यमरणमें सर्वकर्मनिका ग्रभाव करिके जन्ममरणरहित ग्रनन्त सुखकूं प्राप्त होना है, तातें निरवशेष, ग्रर विस्मरणतारहित, ग्रर शीघ्रतासहित, उद्वेगरहित, मूढतारहित संपूर्ण सत्यार्थ ग्रालोचना करें। भावार्थ--ग्रालोचना ऐसे नहीं करे जो, कोऊ दोष कहे। कोऊ नहीं कहे, वा भूलें नहीं, बिलम्ब करे नहीं, परिणाममें उद्वेग करे नहीं, कोऊ दोष छिपावें नहीं, मिथ्याभावरहित सत्यार्थ ग्रालोचना करे। गाथा—

जह बालो जम्पन्तो कज्जमकज्जं व उज्जुग्रं भणइ।

तह ग्रालोचेदव्वं मायामोसं च मोत्तूणं ॥५५२॥

ग्रर्थ--जैसे बालक बोलता सन्ता कार्य होहू वा ग्रकार्य होहू सरलही कहत है, तैसे धर्मात्मा साधुहू मायाचार तथा झूठकूं त्यागिकरिके गुरुनिकूं सत्यही जणावै।

दंसणणाणचरित्ते कादूणालोचणं सुपरिसुद्धं ।
णिस्सल्लो कदसुद्धी कमेण सल्लेहणं कुणसु ॥५५३॥

अर्थ—भो मुने ! दर्शनज्ञानचारित्र सम्बन्धी शुद्ध आलोचना करिके अर माया शल्यरहित होयकरिके करी है भावनिकी शुद्धता जाने ऐसा गुरुनिका कह्या प्रायश्चित्त ग्रहण करिके अर सूत्रोक्त क्रमकरिके सल्लेखना करो । गाथा—

तो सो एवं भणिओ अब्भुज्जदमरणणिच्छिदमदीओ ।
सव्वंगजादहासो पीदीए पुलइदसरीरो ॥५५४॥
पाचीणोदीचिमुहो चेदियहुत्तो व कुणदि एगन्ते ।
आलोयणपत्तीयं काउस्सग्गं अणाबाधे ॥५५५॥

अर्थ—ऐसे गुरुनिकरि शिक्षित किया हुवा अर समाधिमरणमें निश्चयरूप है बुद्धि जाकी, अर सर्व अंगनिमें उत्पन्न हुवा है हर्ष जाके, अर रोमांचित है शरीर जाका, अर पूर्वदिशाके सन्मुख अथवा उत्तरके सन्मुख अथवा चैत्य जो जिनप्रतिबिम्ब ताके सन्मुख होय एकांतविषै लोकनिका आवनेजावनेरहित स्थानविषै आलोचनाके निमित्त कायोत्सर्ग करै । गाथा—

एवं खु वोसरित्ता देहे वि उवेदि णिम्मत्तं सो ।
णिम्ममदा णिस्संगो णिस्सल्लो जाइ एयत्तं ॥५५६॥

अर्थ—ऐसे आलोचनाके अर्थि एकांतमें पूर्वके सन्मुख वा उत्तरके सन्मुख वा जिनप्रतिमा जिनमन्दिरके सन्मुख होय अर निर्विघ्न आलोचना होनेकूं कायोत्सर्ग करिके देहसूं ममता त्यागिकरिके अर निर्ममत्वपणामें प्राप्त होय । पाछै निर्ममत्वपणाकरिके परिग्रहरहित हुवा सन्ता शल्यरहित एकांतस्थानमें गमन करे । गाथा—

तो एयत्तमुवगदो सरेदि सव्वे कदे सगे दोसे ।
आयरियपादमूले उप्पाडिस्सामि सल्लत्ति ॥५५७॥

अर्थ—ऐसे एकांतकूं प्राप्त होय, अर एकत्वभावनानं प्राप्त होय, अर सर्व किये हुये दोष तिनकूं स्मरण करै—चिंतवन करे। सो एकत्वभावनानें कैसें प्राप्त होय? सो कहे हैं। मैं आत्मा निरतिचार दर्शनज्ञानचारित्ररूप हौं; यो शरीर मोतें भिन्न है, कृतघ्न है, मेरा उपकारी नाहीं, क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, रोग, व्याधि उपजाय मेरे दुःख करने का निमित्त है, अर अवश्य विनाशीक है। ऐसे शरीरका विनाश होनेतें मेरा कहा विनशेगा? अब याकूं कृश करना योग्य है; अर जो यो शरीर स्वच्छन्द सुखिया होय जायगो तो प्रमाद अर काम अर निद्रा अर विषयतृष्णा उपजायकरिके मेरा नाश करेगा। तातें अब देहसूं ममता त्यागि अर गुरुनिका दिया प्रायश्चित्त ग्रहण करिके मेरा रूपकूं शुद्ध करनेकूं आचार्यनिके चरणनिके निकटभागविषैं शल्यकूं उपाडि मेरा रूपकूं उज्ज्वल करूंगा। गाथा—

इय उजुभावमुपगदो सव्वे दोसे सरित्तु तिक्खुत्तो।
लेस्साहिं विसुज्झन्तो उवेदि सल्लं समुद्धरिदुं ॥५५८॥

अर्थ—ऐसे सरलभावकूं प्राप्त हुवा जो क्षपक सो संपूर्णदोषनिकूं तीनवार स्मरण करिके अर लेश्याकरिके उज्ज्वल होता सन्ता शल्यनिकूं उखालनेकूं गुरुनिकूं प्राप्त होय है। गाथा—

आलोयणादिया पुण होइ पसत्थे य सुद्धभावस्स।
पुव्वण्हे अवरण्हे व सोमतिहिरक्खवेलाए ॥५६९॥

अर्थ—बहुरि शुद्धभावका धारक जो क्षपक, ताके पूर्वाह्लकालविषैं तथा अपराह्ल कालविषैं तथा सौम्य तिथि नक्षत्र वेलाविषैं आलोचनादिक होय है। गाथा—

णिप्पत्तकंटइल्लं विज्जुहदं सुक्खरुक्खकडुवड्ढाम्।
सुण्णघररुद्ददेउलपत्थररासिट्टियापुंजं ॥५६०॥
तणपत्तकट्ठछारिय असुइ सुसाणं च भग्गपडिदं वा।
रुद्दाणं खुद्दाणं अधिउत्ताणं च ठाणाणि ॥५६१॥

अण्णं व एवमादी य अप्पसत्थं हवेज्ज जं ठाणं ।
आलोचणं ण पडिच्छदि तत्थ गणी से अविग्घत्थं ॥५६२॥

अर्थ—आचार्य जो हैं सो ऐसे अप्रशस्तस्थानविषे आलोचनाकूं ग्रहण न करै जहां पत्ररहित वृक्ष होय, तथा कांटेनिका वृक्ष होय, तथा बिजुलीकरि हन्या होय, तथा सूका वृक्ष होय, तथा कटुकवृक्ष होय, तथा अग्निकरि दग्ध वृक्ष होय, तथा सूनां गृह होय, तथा रुद्रदेवका स्थान होय, तथा पत्थरनिका ढेर होय, तथा ईंटनिका पुंज होय, तथा तृण, सूका, पान, सूका काठका जहां पुंज होय, तथा भस्मका ढेर होय, तथा अशुचि श्मशान होय, तथा जहां फूटा बांसरणका ठीकरा ठीकरघांका पुंज होय, तथा जहां रौद्रजननिका स्थान होय वा नीचनिके स्थान होय, औरहू इत्यादिक अप्रशस्त स्थान होय, तहां आचार्य आलोचना श्रवण नहीं करै । क्षपकके निर्विघ्नताके अर्थि अशुभ स्थाननिकूं त्यागि शुभस्थानमें आलोचना ग्रहण करै । अब कौनसे स्थानमें आलोचना करै सो कहे हैं ।

अरहन्तसिद्धसागरपउमसरं खीरपुप्फफलभरियं ।
उज्जाणभवणतोरणपासादं णागजक्खघरं ॥५६३॥
अण्णं च एवमादिय सुपसत्थं हवइ जं ठाणं ।
आलोयणं पडिच्छदि तत्थ गणी से अविग्घत्थं ॥५६४॥

अर्थ—अरहन्तका मन्दिर होय वा सिद्धनिका मन्दिर होय, अथवा जिन पर्वतादिकनिमैं अरहन्तसिद्धनिकी प्रतिमा होय, तथा समुद्रका समीप होय, कमलनिका सरोवरकी समीपता होय, तथा क्षीरवृक्ष होय, पुष्पफलनिकरि संयुक्त ऐसा वृक्षकी निकटता होय, तथा उद्यान जो वन-बागनिके महल होय, तोरणद्वारनिका धारक महल होय, नागकुमारदेवनिका तथा यक्ष देवनिका स्थानक होय, औरहू इत्यादिक सुन्दर स्थान होय, तिन स्थाननिविषें आचार्य क्षपकके निर्विघ्न आराधना होनेके अर्थि आलोचना ग्रहण करे । सोआचार्य ऐसे तिष्ठता आलोचना ग्रहण करे, सो कहे हैं । गाथा—

पाचीणोदीचिमुहो आयदणमुहो व सुहणिसण्णो हु ।
आलोयणं पडिच्छदि एक्को एक्कस्स विरहम्मि ॥५६५॥

अर्थ—आचार्यहू आलोचनाके श्रवणके अवसरमें पूर्वसन्मुख वा उत्तरसन्मुख अथवा जिनमन्दिरके सन्मुख सुखतैं तिष्ठता एकाकी एकांतस्थानविषैं एक जो क्षपक ताकी आलोचना श्रवण करैं। जातैं सूर्यकीनांई पापतिमिरका अभाव करि क्षपकका शुद्धपरिणामनिका उदय चाहै, तातैं पूर्वसन्मुख अर विदेहक्षेत्रमें तिष्ठते तीर्थंकरनिका ध्यानके अर्थि उत्तरदिशाके सन्मुख अथवा भावनिकी उत्तर कहिये सर्वोत्कृष्टता, ताके अर्थि उत्तरसन्मुख, अर अशुभपरिणामनिका अभावके अर्थि जिनमन्दिरके सन्मुख अथवा कर्मवैरीके जीतनेकूं जिनमन्दिर वा जिनप्रतिमाके सन्मुख होय आलोचना ग्रहण करै है। तथा एकांतमें एक गुरु सुननेवाला अर एक क्षपक कहनेवालाहीके शुद्ध आलोचना होय। अर तीसरा और होय तो लज्जाकरि अभिमानकरि परिणाम दोऊनिका बिगडि जाय। तातै तीसरा नहीं योग्य है। गाथा—

काऊण य किरियम्मं पडिलेहणमंजलीकरणसुद्धो।
आलोएदि सुविहिदो सव्वे दोसे पमोत्तूणं ॥५६६॥

अर्थ—सुविहित जो साधु सो पिच्छिकासहित हस्तांजलिकरि शुद्ध होय अर गुरुनिकूं वन्दना करिके अर आलोचना के आगे कहेंगे जे दश दोष तिनकूं त्यागिकरि आलोचना करे।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरण के चालीस अधिकारनिविषैं आलोचना नामा तेईसमा अधिकार गुणतालीस गाथानिकरि समाप्त किया। आगे आलोचनाके गुणदोषनिका अवलोकन नामा चोईसमां अधिकार अडसठि गाथासूत्रनिकरि कहे हैं। गाथा—

आकम्पिय अणुमाणि य जं दिट्ठं बादरं च सुहुमं च।
छण्णं सद्दाउलयं बहुजण अव्वत्त तस्सेवी ॥५६७॥

अर्थ—आकम्पित, अनुमानित, दृष्ट, बादर, सूक्ष्म, छन्न, शब्दाकुलित, बहुजन, अव्यक्त, तत्सेवी येते दश आलोचनाके दोष हैं। अब आकम्पित दोषकूं छह गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

भत्तेण व पाणेण व उवकरणेण किरियकम्मकरणेण।
अणुकंपेऊण गणिं करेइ आलोयणं कोइ ॥५६८॥

अर्थ—भोजनकरिके वा पानकरिके वा उपकरणकरिके तथा कृतिकर्म जो वन्दना ताकरिके गणी जो आचार्य ताके आपमैं अनुकम्पा उपजाय कोऊ आलोचना करे, ताके आकम्पित दोष है। गाथा—

आलोइदं असेसं होहिदि काहिदि अणुग्गहमिमोत्ति।
इय आलोचंतस्स हु पढमो आलोयणादोसो ॥५६९॥

अर्थ—आलोचना करनेवाला कोऊ साधु मनविषं चिंतवन करं—जो, हमारे ऊपरि गुरु अनुग्रह करसी तो सर्व आलोचना होसी। ऐसे चिन्तवन करि आलोचना करं, ताके प्रथम जो आकम्पित नामा दोष होय है सो दृष्टान्तकरिके कहे हैं। गाथा—

केदूण विसं पुरिसो पिएज्ज जह कोइ जीविदत्थीओ।
मण्णन्तो हिदमहिदं तधिमा सल्लुद्धरणसोधी ॥५७०॥

अर्थ—जैसे आपके जीवनेका अर्थी कोई पुरुष विषकूं नवा बणायकरिके विष पीवै तैसे अज्ञानी जीव अहितकूं हित मानता आपके दोष दूरि करनेकूं मायाचारसहित आलोचना करि दोष दूरि किया चाहत है। भावार्थ—जीवनेके तांई विष बणाय भक्षण करेगा सो तो शीघ्र मरैहीगा, तैसे जो मायाचारादि दोष दूरि करनेके अर्थि कपटसहित जो आलोचना करेगा, सो तो अधिकाधिक दोषनिकरि लिप्तही होयगा, शुद्ध नहीं होयगा। अथवा—

वण्णरसगन्धजुत्तं किंपाकफलं जहा दुहविवागं।
पच्छा णिच्छयकडुयं तधिमा सल्लद्धरणसोधी ॥५७२॥

अर्थ—जैसे किंपाकफल वर्ण जो रूप ताकरिके सुन्दर, अर रस जो आस्वाद ताकरिकेहू सुन्दर, अर गन्धहू सुन्दर, परन्तु परिपाककालमें महादुःखरूप मरण करनेवाला है—भोगें पश्चात् निश्चयकरि कटुक है। तैसे आकम्पितदोषसहित आलोचनाका करना है, सोहू बाह्य तो आपकूं वा अन्यकूं प्रकट दीखे जो शल्यका उद्धार करि व्रत शुद्ध किया, परन्तु मायाचारकरि महान् कर्मबन्धन करि आत्माकूं संसारमें डबोवे है। अथवा—

किमिरागकंबलस्स व सोधी जदुरागवत्थसोधीव ।
अवि सा हवेज्ज किह इण तधिमा सल्लुद्धरणसोधी ।५७२।

अर्थ—कृमिका रंगकरि युक्त जो कंबल अथवा लाखका रंगसंयुक्त रोमका वस्त्र वा रेशमका वस्त्र ताकूं अलाविक करि बहुत धोएहू उज्ज्वल नहीं होय है । तैसे आकम्पित दोषसहित करी हुई आलोचना शल्यका उद्धार करि रत्नत्रयकी शुद्धता नहीं करे है । ऐसे आलोचना का आकम्पित नामा प्रथमदोष वर्णन किया । अब अनुमानित नामा द्वितीयदोष छ गाथानिकरि वर्णन करे हैं । गाथा—

धीरपुरिसचिण्णाइं पवददि अतिधम्मिओ व सव्वाइं ।
धण्णा ते भगवंता कुव्वन्ति तवं विकट्ठं जे ।।५७३।।

थामापहारपासत्थदाए सुहसीलदाए देहेसु ।
वददि णिहीणो हु अहं जं ण समत्थो अणसणस्स ।।५७४।।

जाणह य मज्झ थामं अंगाणं दुब्बलदा अणारोगं ।
णेव समत्थोमि अहं तवं विकट्ठं पि कादुं जे ।।५७५।।

आलोचेमि य सव्वं जइ मे पच्छा अणुग्गहं कुणह ।
तुज्झ सिरीए इच्छं सोधी जह णिच्छरेज्जामि ।।५७६।।

अणुमाणेदूण गुरुं एवं आलोचणं तदो पच्छा ।
कुणइ ससल्लो सो से विदिओ आलोचणा दोसो ।।५७७।।

अर्थ—गुरुनिसूं बीनती करे, जणावं, हे भगवन् ! या अवसरमें धीरपुरुषनिकरि आचरण किये ऐसे सकल उत्कृष्ट तप करे हैं, ते अतिधर्मात्मा हैं, ते जगतमें धन्य हैं, ते महिमावान् हैं । अर मैं तो हीन हूं, बलका हीनपणातें अनशन तप

करनेमें समर्थ नहीं, ऐसे देहमें सुखियापणाका स्वभावकरिके तथा पार्श्वस्थपणाकरिके गुरुनिकूं अपनी हीनता जणावै। बहुरि कहै, हमारा बल तथा अंगनिका दुर्बल अर रोगीपणा आप श्रीगुरु जाणो हैं! जाकरिके मैं उत्कृष्ट तप करनेकूं समर्थ नहीं हूं। आप जो अनुग्रह करसी तो पाछें मैं हू सर्व आलोचना करस्यूं। हे भगवन्! मैं आपको कृपारूप लक्ष्मीकरिके हमारा जैसे निस्तार होय तैसे शुद्धता करयो चाहूं हूं। ऐसे गुरुनिकूं अनुमान कराय अर पाछें जो शल्यसहित मुनि आलोचना करे, ताके दूसरा अनुमानित (अनुमापित) नामा आलोचना में दोष आवे है। गाथा—

गुणकारिओत्ति भुंजइ जहा सुहत्थी अपच्छमाहारं।
पच्छा विवायकडुगं तधिमा सल्लद्धरणसोधी ॥५७८॥

अर्थ—जैसे कोऊ रोगी सुखका अर्थी हुवा संता परिपाकमें अति कडवा ऐसा अपथ्य आहारकूं गुणका करनेवाला मानि भोजन करै, ताके समान या अनुमानित दोषसहित शल्योद्धरण–शुद्धता जाननी। यातें कर्मबन्ध ही होय, आत्मा की शुद्धता नहीं होय। ऐसे आलोचनाका अनुमानित नामा दूसरा दोष कह्या। अब दृष्ट नामा तीसरा दोष कहे हैं। गाथा—

जं होदि अण्णदिट्ठं तं आलोचेदि गुरुसयासम्मि।
अद्दिट्ठं गूहन्तो मायिल्लो होदि णायव्वो ॥५७९॥

अर्थ—जो अन्यकरि देख्या दोष होय सो तो गुरुनिके निकट आलोचना करै, अर जो अन्यकरि अदृष्ट होय सो गोप्य करतो साधु मायाचारी होय है। ताकूं दृष्ट नामा दोष होय है। गाथा—

दिट्ठं व अदिट्ठं वा जदि ण कहेइ परमेण विणएण।
आयरियपायमूले तदिओ आलोयणादोसो ॥५८०॥

अर्थ—जो कोऊकरि देख्या हुवा वा नहीं देख्या हुवा दोष आचार्यनिके चरणनिके निकट परमविनयकरिके नहीं कहै, सो तीसरा आलोचनाका दोष है। गाथा—

जह वालुयाए अवडो पूरदि उक्कीरमाणओ चेव ।

तह कम्मादाणकरी इमा हु सल्लुद्धरणसुद्धी ॥५८१॥

अर्थ—जैसे बालू रेतके टीबेनिमें खोद्या जो खाडा सो बालू रेत काढतां काढतां चोगिरदकी बालूकरि खाडा भरिजाय है, तैसे अन्यकरि अवलोकन किया दोषकी शुद्धता करता जो साधु ताके मायाचारकरिके कर्मग्रहण करनेवाली शल्योद्धरण शुद्धता होय है। भावार्थ—जो अन्यकरि देख्या गया तातै आलोचना करी, कोऊ नहीं देखता, नहीं जाणता तो छिपाय जाता, प्रकट नहीं करता। योही जो महान् मायाचार ताकरिके अधिक अधिक कर्मकरि आत्माकूं बांधे है। ऐसे दृष्ट नामा तीसरा आलोचनाका दोष कह्या। अब बादर नामा आलोचनाका चोथा दोषकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

बादरमालोचेन्तो जत्तो जत्तो वदाओ पडिभग्गो ।

सुहुमं पच्छादेन्तो जिणवयणपरंमुहो होइ ॥५८२॥

अर्थ—जिन जिन दोषनितै व्रतनितै नष्ट होजाय-भग्न होजाय, तिन तिन स्थूलदोषनिकूं गुरुनिके निकट आलोचना करै, अर सूक्ष्मदोषनिकूं छिपावै, सो साधु जिनेन्द्रका वचनतै पराङ्मुख होय है, ताकै बादर नामा दोष होय है। गाथा—

सुहुमं व बादरं वा जइ ण कहेज्ज विणएण सुगुरूणं ।

आलोचणाए दोसो एसो हु चउत्थओ होदि ॥५८३॥

अर्थ—सूक्ष्म दोष होहू, वा बादर दोष होहू, जो विनयकरि आपके गुरुनिकूं नहीं कहै, ताकै आलोचनाका चतुर्थ दोष होय है। अब याका दृष्टांत कहे हैं। गाथा—

जह कंसियभिंगारो अन्तो णीलमइलो बहिं चोक्खो ।

अन्तो ससल्लदोसा तधिमा सल्लुद्धरणसोधी ॥५८४॥

अर्थ—जैसे कांसीका भृंगार जो झारी सो अन्तः कहिये अभ्यन्तर तो नील है मलिन है, अर बाहिर उज्ज्वल है, तैसे जो सूक्ष्म दोष छिपायकरि बादर दोष कहै, तींको आत्मा मायाचारकरि मांही तो मलिन है अर बाह्य व्रतादिकनिकी

उज्ज्वलता करि जगतकूं वा आचार्यादिकनिके दिखावनेकू उज्ज्वल है। ऐसे शल्यसहित आलोचना करे है, ताके बादर दोषसहित शल्योद्धरण शुद्धता जाननी। ऐसे आलोचनाका बादर नामा चौथा दोष कह्या। अब सूक्ष्म नामा पांचमां दोष च्यारि गाथानिकरि जणावे हैं। गाथा—

चंकमणे य ठ्ठाणे णिसेज्जउवट्टणे य सयणे य।
उल्लामाससरक्खे य गब्भिणी बालवत्थाए ॥५८५॥
इय जो दोसं लहुगं समालोचेदि गूहदे थूल।
भयमयमायाहिदओ जिणवयणपरंमुहो होदि ॥५८६॥

अर्थ- -जो मार्गमे बहुत गमनकरि चित्तमें व्याकुलता भई होय ताकरि ईर्यापथके सोधनेमें कुछ असावधानी भई होय, तथा स्थानमें, आसनमें, शयनमें, पसवाडेनके उलट पलट करनेमें जो मयूरपीछीतें प्रमार्जन जो सोधन तामें सावधानी नहीं रही होय, तथा कोई जलतें आर्द्र होगया जो शरीर ताका स्पर्शन किया होय, तथा सचित्तधूलिपरि शयन आसन, स्थान किया होय, तथा गर्भिणीका दिया भोजन लिया होय, तथा बालस्त्रीका दिया भोजन किया होय, इत्यादिक प्रमादसूं उपजे जे स्वल्पदोष, तिनकूं तो गुरुनिके निकटि जाय आलोचना करै, 'जो, यातें हमारी महिमा होयगी' जो, ऐसे ऐसे सूक्ष्मदोषनिहूकूं आलोचना करे है। अर जो महान् बडे दोष व्रतनिमें, सम्यक्त्वादिकनिमें लाग्या होय तिनकूं बहुत बडे प्रायश्चित्तके भयतें छिपावै, तथा मदकरि छिपावै—जो ऐसे दोष कहेंगे तो हमारा उच्चपणा घटि जायगा, तथा स्वभावहीकरि मायाचारकरि छिपावै, सो जिनेन्द्र का वचनतें पराङ्मुख होय है। गाथा—

सुहुमं व बादरं वा जइ ण कहेज्ज विणएण स गुरूणं।
आलायणाए दोसो पंचमओ गुरुसयासे से ॥५८७॥

अर्थ—जो भय मद माया छोडिकरिके अर जो सूक्ष्मदोष अथवा स्थूलदोष गुरुनिकूं निकट होत सन्तेहू आपके गुरुनिकूं विनयसहित नहीं कहे है, ताके सूक्ष्म नामा पांचमों आलोचनाको दोष होय है। अब या दोषका दृष्टांत कहे हैं। गाथा—

रसपीदयं व कडयं अहवा कवडुक्कडं जहा कडयं ।
अहवा जदुपूरिदयं तधिमा सल्लुद्धरणसोधी ।।५८८।।

अर्थ—जैसे कोऊ लोहका तथा ताम्बाका कडा कहिये कंकण जाके ऊपरि कोऊ रस लगाय पीत करि दिया, तथा सोने का मुल्लमाकरि सुवर्णका बारं दिखाया तथा ऊपरि सोनेका पत्र लगाइ अभ्यन्तर ताम्बा दाबि दिया, अथवा जामैं लाख भरि दीई ऐसा कडा मोलकूं नहीं पावेगा, तैसे मायाचारसहित बडे दोषनिकूं छिपाय सूक्ष्म दोषनिकी आलोचना करने वालेके परमार्थ बिगडि जाय है । तातै मायासहित शल्योद्धरणशुद्धता जाननी । ऐसे आलोचनाका पांचमां सूक्ष्मदोष कह्या । अब छन्न नामा आलोचनाका छट्टा दोष छ गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

जदि मूलगुणे उत्तरगुणे य कस्सइ विराहणा होज्ज ।
पढमे विदिए तदिए चउत्थए पंचमे च वदे ।।५८६।।
को तस्स दिज्जइ तवो केण उवाएण वा हवदि सुद्धो ।
इय पच्छण्णं पुच्छदि पायच्छित्तं करिस्सत्ति ।।५६०।।
इय पच्छण्णं पुच्छिय साधू जो कुणइ अप्पणो सुद्धिं ।
तो सो जिणेहिं वुत्तो छट्ठो आलोयणा दोसो ।।५६१।।

अर्थ—कोऊ साधुके दोष लाग्या होय तदि आपके परिणाममें विचार करै, जो, गुरुनिकूं ऐसे पूछि प्रायश्चित्त करस्यूं ताके छन्न नामा दोष होय है । कहा पूछै? सो कहे हैं । हे स्वामिन् ! कोऊ साधुके मूलगुणमें दोष लाग्या होय तथा उत्तरगुणनिमैं जाकै दोष लाग्या होय, ताकी शुद्धता कैसे होय ? तथा जाके अहिंसा व्रतमें दोष लाग्या होय, तथा सत्यव्रतमें, तथा अचौर्यव्रतमें, तथा ब्रह्मचर्यव्रतमें, तथा परिग्रहत्यागव्रतमें जो अतीचार लाग्या होय, ताकी शुद्धता कैसे होय ? ताकूं कौनसा तप दीजिये ? कौन उपायकरि ताकी शुद्धता होय ? ऐसे पूछूंगा तिनके बीचि हमारा दोषहू बीचिमैं पूछूंगा अर जो प्रायश्चित्त कहेंगे सो प्रायश्चित्त करूंगा । ऐसे विचार करि अर प्रच्छन्न गुरुनिकूं पूछिकरिके जो आपकी शुद्धता करे है, ताके जिनेन्द्र भगवान् छन्न नामा छट्टा आलोचनाका दोष कह्या है । ताका दृष्टान्त कहे हैं ।

धादो हवेज्ज अण्णो जदि अण्णम्मि जिमिदम्मि संतम्मि ।
तो परववदेसकदा सोधी अण्णं विसोधिज्ज ॥५६२॥

अर्थ—जो अन्यकूं भोजन करता सन्ता अन्यपुरुष तृप्त होय तो परका नामकरि शुद्धता अन्यकूं शुद्ध करै । भावार्थ—जैसे भोजन तो अन्यपुरुष करै अर आप तृप्त होजाय तो परका नामकी शुद्धताते आप शुद्ध होय ! सो या बात होय नहीं । औरहू दृष्टान्त कहे हैं ।

तवसंजमम्मि अण्णेण कदे जदि सुग्गदिं लहदि अण्णो ।
तो परववदेसकदा सोधी सोधिज्ज अण्णंपि ॥५६३॥

अर्थ—जो तपसंयम तो अन्य करे अर शुभगति अन्य पावे, तो परका व्यपदेशकरि करी आलोचना अन्यकूं शुद्ध करे । सो कबहूही नहीं होय है । औरके नामतें अपनी शुद्धता करचो चाहै सो कहा करे है ? गाथा—

मयतण्हादो उदयं इच्छइ चंदपरिवेसणा कूरं ।
जो सो इच्छइ सोधी अकहन्तो अप्पणो दोसे ॥५६४॥

अर्थ—जोगुरुनिकूं आपके दोष तो नहीं कहे अर आपके शुद्धता चाहे है, सो कहा करे है ? मृगतृष्णातें जल चाहे है, अर चन्द्रमाका कुण्डालातें भोजन चाहे है । ऐसे आलोचनाका छन्न नाम्मा छट्ठा दोष वर्णन किया । अब शब्दाकुलित नामा सातमां दोष तीन गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

पक्खियचाउम्मासियसंवच्छरिएसु सोधिकालेसु ।
बहुजणसद्दाउलए कहेदि दोसे जहिच्छाए ॥५६५॥

इय अव्वत्तं जइ सावेन्तो दोसे कहेइ सगुरूणं ।
आलोचणाए दोसो सत्तमओ सो गुरुसयासे ॥५६६॥

अर्थ—जा अवसरमें पक्षका प्रतिक्रमण तथा चातुर्मासिक प्रतिक्रमण तथा एक वर्षसम्बन्धी सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करिके अर अपने अपने पक्षका तथा च्यार महीनाका तथा वर्षदिनका लाग्या हुवा दोषकी शुद्धता करनेका कालविषें संघका सकलमुनीश्वर प्रतिक्रमण करनेकूं गुरुनिके निकट मेले होय प्रतिक्रमणपाठ पढता होइ, ता अवसरमें कोऊ मुनि आपकाहू दोष यथेच्छ आपके गुरुनिकूं जैसे यथावत् प्रकट नहीं होय तैसे श्रवण करावै, ताकै अव्यक्त नामा आलोचनाका सातमा दोष आवे है। भावार्थ—अनेक मुनीश्वरनिका प्रतिक्रमणपाठका शब्द होय रह्या, तामैं कोऊ आपकाहू दोष कहे, ताके शब्दाकुलित नामा दोष आवे है। गाथा—

अरहट्टघडीसरिसो अहवा चुन्दछुदोवमा होइ।
भिण्णघडसरिच्छा वा इमा हु सल्लद्धरणसोधी ॥५९७॥

अर्थ—जैसे अरहटकी घडी एकतरफ रीती होय अर दूजीतरफ बहुरि भरि जाय है, तथा घईकी मांथणीमें रईकी डोरी एकतरफ खुले है अर दूजी तरफ बन्धती जाय है, तथा फूटा घडामैं जैसे एकतरफ जल भरे है अर दूजीतरफ निकलि जाय है, तैसे एकतरफ आलोचना करे है अर दूजीतरफ मायाचार करिके कर्मका बन्ध करे है, ऐसी या शब्दाकुलितदोष सहित शल्योद्धरणशुद्धता है। ऐसे शब्दाकुलित नामा आलोचनाका सप्तम दोष कह्या। अब बहुजन नामा दोष पांच गाथानिकरि कहे हैं।

आयरियपादमूले हु उवगदो वंदिऊण तिविहेण।
कोई आलोचेज्ज हु सव्वे दोसे जहावत्ते ॥५९८॥

तो दंसणचरणाधारएहिं सुत्तत्थमुव्वहन्तेहिं।
पवयणकुसलेहिं जहारिहं तवो तेहिं से दिण्णो ॥५९९॥

णवमम्मि य जं पुव्वे भणिदं कप्पे तहेव ववहारो।
अंगेसु सेसएसु य पइण्णए चावि तं दिण्णं ॥६००॥

तेसिं असद्दहन्तो आइरियाणं पुणो वि अण्णाणं ।

जइ पुच्छइ सो आलोयणाए दोसो हु अट्ठमओ ॥६०१॥

अर्थ—कोऊ मुनि आचार्यनिके चरणारविन्दनिकूं मन वचन कायकरि वन्दना करिके अर जैसे आपके दोष प्राप्त भये, तैसे सर्व दोषनिनें आलोचना करे, तवि दर्शनचारित्रके धारक अर सूत्रके अर्थकूं धारण करनेवाले । अर प्रायश्चित्तमें प्रवीण ऐसे आचार्य तिननें यथायोग्य तप दिया, "कैसाक तप दिया ? जो नवमां प्रत्याख्यान नामा पूर्वमें कह्या तथा कल्पव्यवहारसूत्रमें कह्या तथा अन्य अंगनिमे तथा प्रकीर्णकमें जो भगवान् कह्या, तैसा प्रायश्चित्त शिष्यकूं दिया" तिन तिन प्रायश्चित्त देने वाले गुरुनिका नहीं श्रद्धान करता अन्य अन्य आचार्यगुरुनिकूं पूछे "जो, इस अपराधका कहा प्रायश्चित्त है ?" सो बहुजन नामा आलोचनाका अष्टम दोष है । गाथा—

पगुणो वणो ससल्लं जध पच्छा आदुरं ण तावेदि ।

बहुवेदणाहि बहुसो तधिमा सल्लुद्धरणसोधी ॥६०२॥

अर्थ—जैसे शल्य जो भालि ताकरि सहित सरलहू बाण शरीरमें तिष्ठता आतुरकूं कहा संताप नहीं करे ? अपि तु करेही करे । बहुतवेदनाकरि बहुत संताप करे है । तैसे बहुतजननिकूं अपने दोषका पूछना परिणामकूं बहुत दूषित करे है । तैसे बहुजन नामा आलोचनाका दोषहू आत्माकूं संतापित करे है । ऐसे बहुजन नामा दोष कह्या । अब अव्यक्त नामा दोष कहे हैं । गाथा—

आगमदो जो बालो परियाएण व हवेज्ज जो बालो ।

तस्स सग दुच्चरियं आलोचेदूण बालमदी ॥६०३॥

आलोचिदं असेसं सव्व एदं मएत्ति जाणादि ।

बालस्सालोचेंतो णवमो आलोचणा दोसो ॥६०४॥

अर्थ—कोऊ संघमें आगम जो शास्त्र ताका ज्ञानकरि रहित होय तथा अवस्थाकरिके अथवा चारित्रकरिके बाल होय-अज्ञान होय, ताके अर्थि अपना व्रतनिमें लाग्या दोष कहिकरिके अर कोऊ अज्ञानी मुनि ऐसे माने "जो, मैं सर्वदोषनि

की आलोचना कोनी" ऐसे अज्ञानीकूं आलोचना करनेवालेके अव्यक्त नामा नवमा आलोचनाका दोष होय है। सो या आलोचना कैसीक है, ताका दृष्टांत कहे हैं। गाथा—

कूडहिरण्णं जह णिच्छएण दुज्जणकदा जहा मेत्ती।
पच्छा होदि अपत्थं तधिमा सल्लद्धरणसोधी ॥६०५॥

अर्थ—जैसे कपटका सोना वा धन अर दुर्जनकी मित्रता निश्चय थकी पश्चात् परिपाककालमें अपथ्य होय है, तैसे या शल्योद्धरण शुद्धता जाननी। ऐसे आलोचनाका अव्यक्त नामा नवमां दोष कह्या। अब तत्सेवी नामा दशमां दोषकूं कहे हैं। गाथा—

पासत्थो पासत्थस्स अणुगदो दुक्कडं परिकहेइ।
एसो वि मज्झसरिसो सव्वत्थवि दोससंचइओ ॥६०६॥
जाणादि मज्झ एसो सुहसीलत्तं च सव्वदोसे य।
तो एस मे ण वाहिदि पायच्छित्तं महल्लित्ति ॥६०७॥
आलोचिदं असेसं सव्वं एदं मएत्ति जाणादि।
सो पवयणपडिकुद्धो दसमो आलोचणा दोसो ॥६०८॥

अर्थ—कोऊ पार्श्वस्थ कहिये भ्रष्ट मुनि आप सदृश पार्श्वस्थमुनिकूं प्राप्त होय आपका दुष्कृत जो दोष अतीचार ताही कहै, जो यो मुनिहू हमारे सदृश सर्वव्रतादिकनिमे दोषनिका संचय करनेवाला है, अर हमारा देहमें सुखियापणा, अर हमारे सर्व दोष जाने है, तातैं ये मोकूं महान् प्रायश्चित्त नहीं देसी, अल्प देसी, अर हमारे आलोचना करनेयोग्य जो समस्त दोष हैं तिन सर्वकूं ये जाने हैं, ऐसे विचारि आपसारिसा कोऊ सदोष मुनि ताकूं आलोचना करे, सो भगवानका प्रवचनतैं प्रतिकुद्ध कहिये प्रतिकूल ऐसो तत्सेवी नामा आलोचनाका दशमां दोष है। गाथा—

जह कोइ लोहिदकयं वत्थं धोवेज्ज लोहिदेणेव।
ण य तं होदि विसुद्धं तधिमा सल्लुद्धरणसोधी ॥६०९॥

अर्थ--जैसे कोऊ पुरुष रुधिरतैं लिप्त जो वस्त्र ताकूं रुधिरहीतैं धोय उज्ज्वल किया चाहै, सो रुधिरतैं रुधिर उज्ज्वल नहीं होय, निर्मलजलतैं धोयेही उज्ज्वल होय, तैसे कोऊ साधु आप दोषनिकरि सहित अन्य सदोष मुनिकूं आलोचना करि आपके शल्योद्धरणशुद्धता चाहे है, सो कदाचित् शुद्ध नहीं होयगा, मायाचारादिक दोष तथा सूत्रकी आज्ञा उल्लंघनादिक महादोषनिकरि लिप्तही होयगा। तातैं वीतरागगुरुनिकी शिक्षा ग्रहण करि निर्दोष आचार्य तिनकूं अपना दोष सरलचित्त होय जनावना योग्य है। गाथा--

पवयणणिण्हवयाणं जह दुक्कडपावयं करेंताणं।

सिद्धिगमणमइदूरं तधिमा सल्लुद्धरणसोधी ॥६१०॥

अर्थ--जैसे प्रवचनकूं छिपावनेवाला-भगवानकी आज्ञाकूं लोप करनेवाला-दुष्करपाप करनेवाला, तिनके निर्वाण गमन अति दूरि है, तैसे सदोष मुनिकूं आलोचना करनेवालेके शल्योद्धरणशुद्धि अति दूरि है। ऐसे आलोचनाका तत्सेवी नामा दशमा दोष पांच गाथानिकरि कह्या। गाथा--

सो दस वि तदो दोसे भयमायामोसमाणलज्जाओ।
णिज्जूहिय संसुद्धो करेदि आलोयणं विधिणा ॥६११॥

अर्थ--तातैं क्षपक ये दश दोष तिनकूं त्यागिकरिके तथा भय मायाचार असत्य अभिमान लज्जा इनकूं त्यागिकरिके अर दोषरहित शुद्ध हुवा संता विधिकरि आलोचना करे। भावार्थ--दश आलोचनाके दोष कहे, ते तो आत्माकूं मलिन करनेवाले जानि त्यागेही। अर जाके प्रायश्चित्तका भय होय, तथा दोष कहनेमें लज्जा होय, तथा मायाचारकरि हृदय जाका मलिन होय, तथा असत्यवादी होय, अर अभिमानी होय, ताके भावशुद्धता होय नहीं अर द्रव्यशुद्धताहू होय नहीं, अर धर्मानुरागहू नहीं, ताके रत्नत्रयमें उज्ज्वलता कहांतैं होय? तातैं भय माया असत्य अभिमान लज्जा इत्यादिक औरहू दोष त्यागिकरिके विधिपूर्वक आलोचना करहु। अब आलोचनाकी विधि कहा सो कहे हैं। गाथा--

णट्टचलवलियगहिभासमूगदद्दुरसरं च मोत्तूण।

आलोचेदि विणीदो सम्मं गुरुणो अहिमुहत्थो ॥६१२॥

अर्थ--हस्तका नचावना, तथा भ्रकुटीका विक्षेप करना, तथा शरीरकूं बलसहित वक्र करना, तथा गूंगेकीनाई सैन समस्या हूंहूंकार करना, तथा गृहस्थनिकेसे असंयमरूप वचन बोलना, तथा घर्घरस्वर से बोलना, तथा दर्दुर जो मींडके

कोनाई उद्धत करके शब्दकूं दाबिकरि बोलना इत्यानिक वचनके दोषनिकूं त्यागिकरिके, अर अंजुली जोडि, मस्तक नमाय महाविनयसंयुक्त होय गुरुनिके सन्मुख होय आलोचना करे। अर अति उतावला नहीं करे, अर अतिविलबते नहीं करे, स्पष्ट आलोचना करे। सोही आगे कहे हैं--

पुढविदगागणिपवणे य बीयपत्तेयणंतकाए य।
विगतिगचदुपंचिदियसत्तारम्भे अणेयविहे ॥६१३॥
पिंडोवधिसेज्जाए गिहिमत्तणिसेज्जवाकुसे लिंगे।
तेणिक्कराइभत्ते मेहूणपरिग्गहे मोसे ॥६१४॥
णाणे दंसणतववीरिये य मणवयणकायजोगेहिं।
कदकारिदेणुमोदे आदपरपओगकरणे य ॥६१५॥
अद्धाण रोहगे जणवए य रादो दिवा सिवे ऊमे।
दप्पादिसमावण्णे उद्धरदि कमं अभिंदंतो ॥६१६॥
दप्पपमादअणाभोगआपगा आदुरे य तित्तिणिदा।
संकिदसहसाकारे य भयपदोसे य मीमंसं ॥६१७॥
अण्णाणणेहगारव अणप्पवसअलस उपधि सुमिणन्ते।
पलिकुंचणं ससोधी करेंति वीसंतवे भेदे ॥६१८॥
इय पयविभागियाए व ओघियाए व सल्लमुद्धरिय।
सव्वगुणसोधिकखी गुरूवएमं समायरइ ॥६१_॥

६१७ एवं ६१८ वी गाथाएँ प० सदासुखजी द्वारा स्वय की हस्तलिखित प्रतिमे नही है। अत: उसमे इनका अर्थ भी नही है। ये गाथायें छपी हुई पुस्तक मे हैं। इनमे अतिचारो के २० भेद बताये हैं- १ दर्प, २ प्रमाद ३ अनाभोग, ४ आपात, ५. आर्त्तता, ६ तित्तिणदा, ७ शकित, ८. सहसा, ९ भय, १०. प्रदोष, ११. मीमासा, १२ अज्ञान, १३ स्नेह १४ ऋद्धयादि गौरव, १५ परवश १६ स्वाध्याय में आलस्य, १७. उपधि (माया प्रयोग) १८ स्वप्नांत १९, पलिकुंचन २० स्वय शुद्धि। इनका विशद वर्णन छपी मूलारा-

अर्थ—मृत्तिका, पाषाण, पर्वतनिको छुरणी बालू रेत, लवण, अभ्रक इत्यादिक अनेक प्रकारकी पृथ्वीका खोदना, कुचरना, बालना, कूटना, फोडना इत्यादिक पृथ्वीकी विराधनामैं कोऊ दोष लाग्या होय। तथा जल, पाला ओसका जल, गडे, तथा नदी, तलाब, वर्षादिकनितें उपज्या जो जल, तिनके पीवनेकरि, तथा स्नानकरि, अवगाहनकरि, तिरणेकरि, मर्दनकरि, हस्तपादादिकनितें विलोडनकरि, जलकायकी विराधना होय है, इनकी विराधनानिमैं कोऊ दोष लाग्या होय। तथा अग्नि, ज्वाला, प्रदीपक, अंगारा इत्यादिक अग्निकायके जीव, तिनपरि जलका क्षेपना, तथा पाषाण, मांटी, बालू इत्यादिककरि दाबना, तथा काष्ठादिककरि कूटना, बखेरना इत्यादिकनिकरि अग्निकायिक जीवनिकी विराधना होय है, इनकी विराधनामैं कोऊ दोष लाग्या होय। तथा झंझापवन अर मंडलिक जो बभूल्या अर वीजणाका पवन इत्यादिक जो पवन, तिनमें प्रवृत्तिकरि जो दोष लाग्या होय। तथा वनस्पतिमें प्रत्येक, साधारण, बीज, फल, पत्र, पुष्पादिकनिका जो छेदन, मर्दन, भंजन, स्पर्शन, भक्षण इत्यादिकनिकरि विराधना होय है, इनकी विराधनामें कोऊ दोष लाग्या होय। तथा द्वीन्द्रियादिक त्रसजीवनिका मारण, ताडन, छेदन, बन्धन इत्यादिकनिकरि कोऊ दोष लाग्या होय। बहुरि पिंड जो भोजन करनेमें कोऊ दोष मल अंतरायकरि लाग्या होय। तथा अयोग्य उपकरण ग्रहण करनेकरि दोष लाग्या होय। तथा सेज्जा जो वसतिका, सो सदोष ग्रहण करी होय। तथा गृहस्थनिके भाजन मांटीके, कांसी, पीतल, ताम्र, सुवर्ण, रूप्यमय तिनमें रागद्वेष होनेकरि तथा पतनादिककरि दोष लाग्या होय। तथा गृहस्थनिके योग्य पीठ, फलक, चोकी, पाटा, खाट, पर्यंक, सिंहासनादिकनिके बैठने स्पर्शनेकरि दोष लाग्या होय। तथा कुश जो स्नान, उद्वर्तन गात्रप्रक्षालनादिककरि दोष लाग्या होय। तथा लिंगविकासन विकारादिककरि दोष लाग्या होय। तथा परके धनके ग्रहण करनेकी इच्छाकरि दोष लाग्या होय। तथा रात्रिभोजनमें रागसहित चिंतवनादिककरि दोष लाग्या होय। तथा स्त्रीनिका अवलोकनादिककरि ब्रह्मचर्यका घातादिकरि दोष लाग्या होय। तथा परिग्रहका चिंतवन करनेकरि तथा झूंठवचन बोलनेकरि दोष लाग्या होय। तथा ज्ञानदर्शनतपवीर्यनिविषं मनवचनकाय-कृतकारितअनुमोदनाकरि दोष लाग्या होय। तथा आपके परके प्रयोगकरि दोष लाग्या होय 'जो, इस सम्यग्ज्ञानकरि कहा साध्य है ? स्वर्गमोक्षका देनेवाला सम्यक्चारित्र ही है, सो चारित्र आचरण करनेयोग्य है, ऐसे मनकरि ज्ञानकी अवज्ञा करी होय।'' तथा सम्यग्ज्ञानकू मिथ्या कह देना, ऐसे वचनकरि अवज्ञा करी होय। तथा सम्यग्ज्ञानका कथनमें मुखकी विवर्णताकरि आपकी अरुचिका प्रकाशन तथा मस्तक हलायकरि 'ऐसे नहीं' इत्यादिक ज्ञानकी अवज्ञा करी होय तथा अविनयादिक किया होय। तथा दर्शनमें शंका.

दिक दोष लगाया होय । तथा तपमें अनादर किया होय "जो, तप करनेमें कहा है ? आत्मविशुद्धताही कल्याणकारी है" तथा वीर्यका छिपावना, परीषह सहनेमें कायरताकरि मनवचनकाय-कृतकारितअनुमोदनाकरि आपहीतै वा शिथिलाचारीनिकी संगतीतै जो दोष लाग्या होय । बहुरि कोऊ देशमें परचक्रके उपद्रवकरि मार्ग रुकि गया होय, नीसरनेकूं असमर्थ होय, सक्लेशरूप भिक्षाग्रहण करी होय तथा अयोग्यवस्तुका सेवन किया होय । तथा रात्रिमें कोऊ अतीचार लाग्या होय तथा दर्पादिककरि दोष लाग्या होय । तिनि सर्वका अनुक्रमकूं नहीं उल्लंघन करता जो क्षपक, सो गुरुनिके समीप विनयसहित प्रकट करे ।

ऐसे पदविभागिकया कहिये विस्ताररूप आलोचना करिके तथा ओघिकया कहिये संक्षेप आलोचना करिके अन्तर्गत मायाशल्यकूं उखालिकरिके अर सर्व दर्शनज्ञानचारित्र तथा मूलगुण उत्तरगुणनिकी शुद्धताका इच्छुक जो क्षपक, सो गुरुनिका दिया प्रायश्चित्त ग्रहण करे है । अब आलोचनाके गुण कहे हैं । गाथा—

कदपावो वि मणुस्सो आलोयणणिदओ गुरुसयासे ।
होदि अचिरेण लहुओ उरुहियभारोव्व भारवहो ॥६२०॥

अर्थ—जैसे कोऊ बहुतभारका बहनेवाला पुरुष आपके देहथकी भार उतारि शीघ्रही अत्यन्त हलका होय है—सुखित होय है—भाररहित होय है, तैसे पूर्वे किया है असंयमादिककरि पाप जानें ऐसा पापका करनेवाला मनुष्यहू गुरुनिके निकट अपने दोष प्रकट करता शीघ्रही पापका भारकरि रहित—हलका होय है । अर जो आलोचना करि भाव शुद्ध नहीं करे है, ताके दोष दिखावे हैं । गाथा—

सुबहुस्सुदा वि सन्ता जे मूढा सोलसंजमगुणेसु ।
ण उवेन्ति भावसुद्धि ते दुक्खणिहेलणा होंति ॥६२१॥

अर्थ—जे बहुतशास्त्रनिके पारगामीहू हैं अर शील संयम व्रत मूलगुणादिकनिमें भावनिकी शुद्धताकूं नहीं प्राप्त होय हैं, ते मोही मूढ संसारमें नानादुःखनिकरि तिरस्कारकूं प्राप्त होय हैं । अब क्षपककी आलोचना होय चुके, तदि गुरुकू कहा करना योग्य है सो कहे हैं । गाथा—

आलोयणं सुणित्ता तिक्खुत्तो भिक्खुणो उवायेण ।
जदि उज्जुगोत्ति णिज्जइ जहाकदं पट्ठवेदव्वं ॥६२२॥

अर्थ—क्षपककी आलोचना श्रवणकरिके अर उपायकरि तीनवार पूछिकरिके जो सरलभावरूप जाणै–जो, आलोचना मायाचाररहित सरलपरिणामनितैं भई जाणि लेवे, तदि 'जैसे कीये पापकी विशुद्धता हो जाय तैसे' प्रायश्चित्त देय शुद्धतामें स्थापन करना योग्य है । भावार्थ—तीनवार पूछनेतैं परिणामनिकी सरलताका तथा वक्रताका निर्णय होजाय है । गाथा—

आदुरसल्ले मोसे मालागराय कज्ज तिक्खुत्तो ।
आलोयणाए वक्काए उज्जुगाए य आहरणे ॥६२३॥

अर्थ—जैसे आतुर जो रोगी ताकूं वैद्य तीनवार पृच्छा करे, 'भो भद्रपरिणामी ! तुम कहा भोजन किया ? तथा कौन आचरण किया ? तथा तुमारे रोगकी प्रवृत्ति किसरीति है ? वेदना कैसे कैसे व्यापे है ? सो सरलपरिणामतै सत्य कहो' । ऐसे तीनवार पृच्छा करि चुके, तदि ताका रोगकी उत्पत्तिका तथा रोगका इलाज करावनेका परिणाम जानें जाय है । बहुरि शरीरमे कोऊ शल्य लाग्या होय, ताकूंहू तीनवार पृच्छा करे 'तुमारे शल्य कौन ठौर है ? कैसो वेदना दे है ? कोण कारणतैं है ? सो शल्यकूं तीनवार पूछै, संभाले, जदि शल्यका स्थानका निर्णय होजाय, तदि निकासनेका उपाय होय है । बहुरि कोऊ वचनमे सत्य असत्यका निर्णय करना होय, तहांहू अवसर पाय तीनवार पृच्छा होय है । बहुरि वस्तुका मोलहू तीनवार पूछा जाय है । बहुरि विषभक्षण किया हो, सोहू तीनवार पूछने योग्य है । बहुरि राजाकी आज्ञाहू तीनवार पूछिये है–'हे स्वामिन् ! जो आप या कार्यके करनेमे ऐसी आज्ञा करी, सो ऐसेही करना—आपके अवलोकनमें विचारमे आगया अक कैसे है ? ऐसे राजका बडा कार्यमें तथा अल्पकार्यमे तीनवार पृच्छा करनेका मार्ग है । तैसे ही आलोचनाकी सरलतावक्रतामेंहू ये दृष्टान्त तीनवार पूछनेमे है । गाथा—

पडिसेवणातिचारे जदि णो जंपदि जधाकमं सव्वे ।
ण करेंति तदो सुद्धि आगमववहारिणो तस्स ॥६२४॥

एत्थ दु उज्जुगभावा ववहरिदव्वा भवन्ति ते पुरिसा ।
संका परिहरिदव्वा सो से पट्ठाहि जहि विसुद्धा ॥६२५॥

अर्थ—प्रतिसेवा जो द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि व्रतनिमें विराधना करि दोष लाग्या होय, तिन समस्तकूं यथाक्रम करि नहीं कहे तो आगमव्यवहारी जो प्रायश्चित्तके जाननेवाला आचार्य सो क्षपकके शुद्ध नहीं करे। भावार्थ—जो क्षपक यथावत् आलोचना नहीं करे ताकूं आचार्यहू प्रायश्चित्त देय शुद्धता नहीं करे है। गाथा—

पडिसेवणादिचारे जदि आजंपदि जहाकमं सव्वे ।
कुव्वन्ति तहो सोधिं आगमववहारिणो तस्स ॥६२५॥

अर्थ—जो व्रतनिकी विराधनाके सर्व अतीचार यथाक्रम आलोचना करे, तो आगमव्यवहारका जाननेवाला आचार्य क्षपककूं प्रायश्चित्त देय शुद्ध करे। गाथा—

सम्मं खवएणालोचिदंम्मि छेदसुदजाणग गणी से ।
तो आगममीमंसं करेदि सुत्ते य अत्थे य ॥६२७॥

अर्थ—क्षपक जो मुनि, सो, जो सम्यक् आलोचना करे, तो प्रायश्चित्तसूत्रका ज्ञाता जो आचार्य, सो सूत्रमें, अर्थमें, आगममें विचार करै "जो, ऐसा अपराधका ऐसा प्रायश्चित्त देना ? सो जैसा परिणामनिकरि जैसा दोष लगाया होय तैसा प्रायश्चित्त देना तथा अब इस मुनिका परिणाम दोषसूं अतिभयभीत है वा मन्दभयवान् है ?" सोहू विचार करि प्रायश्चित्त ऐसा देवे, जो आगामी कालमें बहुरि दोष लगनेके मार्गमें नहीं ही प्रवर्त्तन करै। अर प्रायश्चित्त लेनाहू ताका सफल है, जो आपका हजार खंडहू होजाय, तोहू फेरि वै दोष नहीं लगावै। अर जाका पैलोही ऐसा अभिप्राय है, "जो, बहुरि दोष लगि जायगा, तो बहुरि प्रायश्चित्त ग्रहण करि ल्यूंगा" ऐसा खोटा अभिप्रायहालाके कदाचित् शुद्धता नहीं होय है। गाथा—

पडिसेवादो हाणी वढ्ढी वा होइ पावकम्मस्स ।
परिणामेण दु जीवस्स तत्थ तिव्वा व मंदा वा ॥६२८॥

अर्थ—प्रतिसेवा जो व्रतनिमें विराधना, तातें उपज्या जो पापकर्म, ताकी कोऊ मुनिके तो पश्चात्तापादिकरूप जो परिणाम, ताकरि तीव्रहानि वा मन्दहानि विशुद्धताके प्रभावकरि होय है। जो, हाय! बडा अनर्थ है! मैं पापी कहा अनर्थ किया? जो ऐसे व्रतनिकूं मलिन कीये! ऐसे बारम्बार आपकूं निन्दता, व्रतनिमें उज्ज्वलताकी इच्छा करता पुरुष पापकर्मकी तीव्र निर्जरा वा मन्द निर्जरा परिणामनिके अनुकूल करे है। अर कोऊ साधु व्रतनिमें दोष लगाय प्रमादी हुवा तिष्ठे है, जो कहा हमहीने दोष लगाया है? प्रायश्चित्त ले लेवेंगे, सबहीके दोष लागे हैं! वा दोष किया तामें किंचित् राग करे है, ताके मलिनपरिणामनिकरि पापकर्मकी तीव्र वृद्धि वा मन्द वृद्धि होय है। गाथा—

सावज्जसंकिलिट्ठो गालेइ गुणे णवं च आदियदि।
पुव्वकदं व दढं सो दुग्गदिभवबंधणं कुणदि ॥६२९॥

अर्थ—कोऊ मुनि दोष उपजायकरिकेहू बहुरि पापकर्मकरि संक्लेशरूप हुवा अपने गुणनिकूं नष्ट करे है अर नवीन कर्मबन्ध करे है, अर पूर्वे किया कर्मकूं ऐसा दृढ करे है 'जो दुर्गतिमे भय अर बन्धन करे हैं'। गाथा—

पडिसेवित्ता कोई पच्छत्तावेण डज्झमाणमणो।
संवेगजणिदकरणो देसं घाएज्ज सव्वं वा ॥६३०॥

अर्थ—कोऊ मुनि संयममें दोष लगायकरिके अर पश्चात्तापकरि दग्ध हुवा है मन जाका—'जो, हाय! मैं पापी बहुत निंद्यकर्म किया! अब संसारमें डूबि जाऊंगा! कोऊ दूजा मेरा सहाई है नहीं!' ऐसे संसारपरिभ्रमणका भयरूप है परिणाम जाका, सो पूर्वे किया दोष, तातें उपज्या जो पापकर्म, ताका एकदेश घात करे है। अर जो विशुद्धता बधि जाय तो सर्वपापका नाश करे है। अर मध्यमपरिणामनितें मन्द वा तीव्र निर्जरा करे है। गाथा—

तो णच्चा सुत्तविदू णालियधमगो व तस्स परिणामं।
जावदिएण विसुज्झदि तावदियं देदि जिदकरणो ॥६३१॥

अर्थ—जैसे नालिका धमन जो न्यारघा अथवा सुवर्णकार सो जितने तावमें मैल दूरि होय, शुद्ध सुवर्ण न्यारा होजाय, तितना ताप देय सुवर्णकूं शुद्ध करे है, तैसे सूत्रका जाननेवाला, अर जीते हैं इन्द्रिय अर मन जाने, ऐसा आचार्यहू

क्षपकका तीव्र मन्दपरिणामकूं जानिकरि, जितना प्रायश्चित्तकरि परिणाम उज्ज्वल होजाय अर पूर्वकृत कर्म निर्जरि जाय, अर आगानें फेरि दोष नहीं लागे--ऐसा प्रायश्चित्त वेय शुद्ध करे है ।

आउव्वेदसमत्तो तिगिंछिदे मदिविसारदो वेज्जा ।
रोगादंकाभिहदं जह-णिरुजं आदुरं कुणइ ।।६३२।।
एवं पवयणसारसुयपारगो सो चरित्तसोधीए ।
पायच्छित्तविदण्हू कुणइ विसुद्धं तयं खवयं ।।६३३।।

अर्थ—जैसे जाण्या है समस्त आयुर्वेद कहिये वैद्यविद्या जानें, अर चिकित्सामें बुद्धिकरिके निपुण, ऐसा वैद्य सो रोगकी पीडाकरिके घात्या जो रोगी ताकूं रोगरहित करे है, तैसे प्रवचनमें सार जो श्रुतका पारगामी अर प्रायश्चित्त सूत्रका ज्ञाता जो आचार्य, सो चारित्रकी शुद्धताकरिके तिस क्षपककूं शुद्ध करे है । गाथा—

एदारिसंमि थेरे असदि गणत्थे तहा उवज्झाए ।
होदि पवत्ती थेरो गणधरवसहो य जदणाए ।।६३४।।
सो कदसामाचारी सोज्झं कट्टुं विधिणा गुरुसयासे ।
विहरदि सुविसुद्धप्पा अब्भुज्जदचरणगुणंकखी ।।६३५।।

अर्थ—येते गुणनिका धारक आचार्य संघमें नहीं होय तथा उपाध्याय नहीं होय, तो स्थविर जो बहुतकालका दीक्षित मुनि तथा गणधरवृषभ कहिये नवीन आचार्य यत्नकरिके प्रवर्तन करनेवाला होय है । अर किया है समाचार कहिये मुनिनिका सम्यक् आचार जानें ऐसा, अर विशुद्ध है आत्मा जाका, अर उदयरूप चारित्रगुणका इच्छुक, ऐसा क्षपक है सो आपकी शुद्धता करनेकूं गुरुनिके निकट विधिपूर्वक प्रवर्तन करे । गाथा—

एवं वासारत्ते फासेदूण विविधं तवोकम्मं ।
संथारं पडिवज्जदि हेमन्ते सुहविहारम्मि ।।६३६।।

अर्थ—ऐसे वर्षाऋतुतिषै नानाप्रकार तपकरिके अर सुखरूप है प्रवृत्ति जामें ऐसा शीतकालमें संन्यासके अर्थि संस्तर जो वसतिका ताहि ग्रहण करे। भावार्थ—अचानक मरण जिनके आवे, तिनके तो आगे कहेंगे–जे अविचारभक्तप्रत्याख्यान तथा इंगिनीमरण तथा प्रायोपगमन मरण होय है, अर जो असाध्य जरा रोगादिक तथा इन्द्रियनिकी शिथिलता तथा जंघाका बलकी हीनता, तथा नेत्रनिकी मन्दता तथा आहारपानकी दुर्लभता इत्यादिक कारणनिकरि जो सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरण करे, सो शीत ऋतुमें संस्तर ग्रहण करे। जातें शीत ऋतुमें अनशनादिक तप सुखसाध्य होय है। गाथा—

सव्वपरियाइयगस्सय पडिक्कमित्तु गुरुणो णिओगेण।
सव्वं समारुहित्ता गुणसंभारं पविहरिज्ज ॥६३७॥

अर्थ—सकलपर्यायमें जो ज्ञानदर्शनचारित्रमें अतीचार लाग्या होय, तिनने गुरुनिका नियोगकरि दूरि करिके सकल गुणनिका समूहकूं अंगीकार करि प्रवृत्ति करे।

ऐसे सविचारभक्तप्रत्याख्यान नामा मरणके चालीस अधिकारनिविषैं आलोचनाका गुणदोष नामा चोईसमां अधिकार अडसठि गाथानिकरि समाप्त किया। अब आगे शय्या नामा पचीसमां अधिकार सात गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

गंधव्वणट्टजट्टस्सचक्कजंतग्गिकम्मफरुसे य।
णत्तियरजया पाडहिडोंवणडरायमग्गे य ॥६३८॥
चारणकोट्टगकल्लालकरकचे पुप्फदयसमीपे य।
एवंविधवसधीए होज्ज समाधीए वाघादो ॥६३९॥

अर्थ—ऐसी वसतिका अंगीकार करनेयोग्य नहीं है—जहां गंधर्व जे गान करनेवालेनिका स्थान होय, तथा नृत्य करनेवालेनिका समीप होय, तथा जहां हस्ती बन्धते होय, तथा अश्वशाला जहां घोडे बन्धते होय, तथा जहां तैलके घाणे चलते होय, तथा कुम्भकारका गृह होय, तथा जंत्र जे अन्य घाणां, तथा अग्निके कर्म तथा और कठोर कर्म जहां प्रवर्तता होय, तथा धोबीनके स्थान होय, तथा वादित्र बजावनेवालेनिका तथा डूंबनिका तथा नटनिका स्थान होय, वा

राजमार्गके समीप होय, तथा चारण कोट्टक कलाल जो मदिरा करनेवाला तथा करोतनितें काठ बिदारते खातीनके समीप तथा पुष्पवाडी तथा तलाब, बावडी जलके निवाणके समीप जे वसतिका होय, तिनमें वसनेतें क्षपकका शुभध्यान बिगडि जाय है, तातें ऐसी वसतिका योग्य नहीं । तो कैसी वस्तिका में कैसे तिष्ठै सो कहे हैं । गाथा—

पंचेन्दियप्पयारो मणसंखोभकरणो जहिं णत्थि ।

चिट्ठदि तहिं तिगुत्तो ज्झाणेण सुहप्पवत्तेण ।।६४०।।

अर्थ—जा वसतिकामें मनके क्षोभ करनेवाला पांचू इन्द्रियनिका विषयनिमें प्रचार नहीं होय, ता वसतिकामें मनवचनकायकी गुप्तिरूप हुवा सुखतें प्रवर्त्या जो धर्मध्यान शुक्लध्यान ताकरि सहित तिष्ठै । गाथा—

उग्गमउप्पादणएसणाविसुद्धाए अकिरियाए हु ।

वसइ असंसत्ताए णिप्पाहुडियाए सेज्जाए ।।६४१।।

अर्थ—आपके निमित्त नहीं बनाई होय, अर आप कहिकरि याचनादिककरि नहीं उत्पादन करी होय, वसतिकाके छियालीस दोष पूर्वें कहि आये तिनकरि रहित होय, लीपना, भुवारना, सुपेद करना, धोवना, द्वार खोलना, उघाडना इत्यादिक दोषनिकरि रहित होय, बहुरि आगन्तुक अर वास्तव्य जीवनिकरि रहित होय. जामै जीवनिके बिल तथा धुसाला छत्ता इत्यादिक नहीं होय, तथा आगन्तुक कीडा कीडे सर्पादिक जीवनिकी बाधारहित होय, बहुरि जामें प्रतिलेखनकरि सोधनेमे कठिनता नहीं होय । बहुरि कैसी होय सो कहे है—

सुहणिक्खवणपवेसणघणाओ अवियडअणंधयाराओ ।

दो तिण्णि वि सालाओ घेत्तव्वावो विसालाओ ।।६४२।।

घणकुड्डे सकवाडे गामबहिं बालवुड्ढगणजोग्गे ।

उज्जाणघरे गिरिकदरे गुहाए व सुण्णहरे ।।६४३।।

आगन्तुघरादीसु वि कडएहिं य चिलिमिलीहिं कायव्वो ।

खवयस्सोच्छागारो धम्मसवणमंडवादी य ।।६४४।।

अर्थ—सुखकरि है निकलना प्रवेश करना जामैं, अर जाका द्वार ढक्या होय, अर जामें अन्धकार नहीं होय, अर विस्तीर्ण होय, ऐसी दोय तीन वसतिका ग्रहण करने योग्य है। बहुरि जाकी दृढ भींति होय, बहुरि कपाटसहित होय, बहुरि ग्रामके बाह्य होय, बहुरि बाल वृद्ध मुनिनिके निकलने प्रवेश करनेयोग्य होय, तथा उद्यान जो बाग ताके महल मकान होय, वा पर्वतनकी गुफा होय, तथा सूनां गृह होय, ताकूं छांडि रहनेवाले निकसि गये होय, तथा आवने जानने वालों के रहनेके निमित्त होय, सो वसतिका ग्रहण करने योग्य है। तथा ऐसी वसतिकाको लाभ नहीं होय तो क्षपकके स्थिति रहनेके निमित्त तृणादिककरिके धर्मश्रवणमडपादिक करने योग्य है।

भावार्थ—जा वसतिकामें ऊंचे नीचे पत्थर पडे तिनकरि मार्ग विषम होय, तथा खाडे पाषाण ठूंठ कंटकनिकरि जाका मार्ग विषम होय, तामें क्षपकका तथा अन्य मुनिनिका निकसना प्रवेश करना बाधाकारी होय, तथा संयम बिगडि जाय, तातें जामें निकसने प्रवेश करनेमें क्षपकके वा वैयावृत्य करनेवालेनिके तथा औरहू सूक्ष्मबादरजीवनिके बाधा नहीं होय, ऐसी होय। बहुरि जिनके दृढपणा भूमिमें वा भींतिमें नहीं तिस वसतिकामे जीवनिके बाधा उपजै तथा वसनेवालेनि के बाधा निपजै, तातें दृढ चाहिये। बहुरि जाका द्वार उघड्या होय तो शीत पवनादिकका प्रवेशकरि हाडचाममात्र है शरीर जाका ऐसा क्षपकके दुःसह दुःख होय। अर शरीरका मलका त्यागहू गुप्तस्थानविना कैसा किया जाय? अर "मिथ्या-दृष्टि मार्ग में गमन करतेहू नजीक आय जाय वा अयोग्य असंयमरूप वार्ता करनेलगि जाय, तातें जाका द्वार ढक्या होय ऐसीही वसतिका श्रेष्ठ है। बहुरि उद्योतविना क्षपकका सस्तर तथा उपकरणका शोधन नहीं होय, अर उठावना बैठावना सुवाणनामें जीवदया नहीं बनै तथा वैयावृत्य करनेवालेनिके दया नहीं पलै, तातें अन्धकाररहितही वसतिका श्रेष्ठ है। बहुरि सर्व मुनिनिके तथा धर्मात्मा श्रावकनिके बैठनेयोग्य होय, तातें विस्तीर्ण होय। ऐसेही औरहू वसतिकाके पूर्वोक्त विशेषणनिकरि योग्य वसतिका ग्रहण करे।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिमे शय्या नामा पचीसमां अधिकार सात गाथानिकरि समाप्त किया। आगे संस्तर नामा छब्बीसमा अधिकार सात गाथानिकरि कहे है। गाथा—

पुढवीसिलामओ वा फलयमओ तणमओ य संथारो।
होदि समाधिणिमित्तं उत्तरसिर तहव पुव्वसिरो ॥६४५॥

अर्थ—शुद्ध पृथ्वी, तथा पाषाणकी शिलारूप, तथा काष्ठका फलकमय, तथा तृणमय ऐसे समाधिमरणके निमित्त पूर्वदिशामें मस्तक होय तथा उत्तरदिशामें मस्तक होय, तैसे च्यारिप्रकारके संस्तर कहे सो ग्रहण करे हैं। भावार्थ—शुद्ध भूमिऊपरि तथा शिला ऊपरि तथा काष्ठकी फडी तथा तृण इन ऊपरि पूर्वदिशामें वा उत्तरदिशामें मस्तक करि संस्तर करे, इनि च्यारिसिवाय और संस्तर साधुके उचित नहीं। अब भूमिसंस्तर कैसाक होय सो कहे हैं। गाथा—

अघसे समे असुसिरे अहिसुयअविले य अप्पपाणे य।
असिणिद्धे घणगुत्ते उज्जोवे भूमिसंथारो ॥६४६॥

अर्थ—जो भूमि अघर्ष होय-जामें सोवनेतें खाडा नहीं पडिजाय, बहुरि नीची ऊंची बाधाकारक नहीं होय-सम होय, अर असुषिर कहिये छिद्ररहित होय, तथा अतिशुचि होय, तथा बिलादिकरहित होय, तथा निर्जन्तु होय, तथा सचिक्कणतारहित होय, तथा दृढ होय, गुप्त होय, तथा उद्योतरूप होय-अन्धकाररूप होय तो संयम नहीं पलै, ऐसा भूमिमय संस्तर होय। भावार्थ-केवल भूमिरूपही शय्या होय, भूमिऊपरि अन्य बिछावना उगैरे नहीं होय। आगे शिलामय संस्तर कहे हैं। गाथा—

विद्धत्थो य अफुडिदो णिक्कंपो सव्वदो असंसत्तो।
समपट्ठो उज्जोवे सिलामओ होदि संथारो ॥६४७॥

अर्थ—जो शिला अग्निदाहकरि तथा टांचीनिकरि तथा घर्षणादिकरि विध्वस्त होय, मर्दित होय, तथा फूटी नहीं होय, तथा निष्कंप होय, डगडगावे नहीं, तथा सर्व तरफतै जीवरहित होय, तथा जाका पृष्ठ कहिये उपरला भाग सम होय, ऊंचा नीचा नहीं होय, तथा उद्योतमय होय, ऐसा शिलामय संस्तर होय है। अब फलकमय संस्तरकूं कहे हैं। गाथा—

भूमिसमरुन्दलहुओ अकुडिल एगंगि अप्पपाणो य।
अच्छिद्दो य अफुडिदो लण्हो वि य फलयसंथारो ॥६४८॥

अर्थ—भूमिमें लग्या होय-भूमिसूं ऊंचा नहीं होय, चोडा विस्तीर्ण होय, लघु होय, वक्रतारहित सरल होय, निष्कंप होय-डगडगावे नहीं, आपका शरीरप्रमाण होय, छिद्ररहित होय, फांटरहित होय, कोमल होय, ऐसा काष्ठका फलकमय संस्तर होय है। अब तृणमय संस्तरकूं कहे हैं। गाथा—

णिस्संधी य अपोल्लो णिरुवहदो समधिवास्सणिज्जन्तु ।
सुहपडिलेहो मउओ तणसंथारो हवे चरिमो ॥६४६॥

अर्थ—संधिरहित होय, छिद्ररहित होय, जाका चूर्ण नहीं होय ऐसा निरुपहत होय, कोमल जाका स्पर्श होय, तथा जन्तुरहित होय, सुखकरि सोधनेमें आवे ऐसा होय, तथा कोमल होय, ऐसा अन्त्यका तृणमय संस्तर होय है । गाथा—

जुत्तो पमाणरइओ उभयकालपडिलेहणासुद्धो ।
विधिविहितो संथारो आरोहव्वो तिगुत्तेण ॥६५०॥

अर्थ—योग्य होय, तथा प्रमाणसमन्वित होय–अति अल्प नहीं होय, अति महान् नहीं होय, अर प्रातःकालमें अर सूर्यका अस्तकालमें प्रतिलेखनकरि सोधनेमें आजाय ऐसा होय, अर शास्त्रोक्तविधिकरि रच्या होय ऐसा संस्तरविषै मन-वचनकायकी गुप्तिकरि सहित आरोहण करे । गाथा—

णिसिवित्ता अप्पाणं सव्वगुणसमण्णिदंमि णिज्जवए ।
संथारम्मि णिसण्णो विहरदि सल्लेहणाविधिणा ॥६५१॥

अर्थ—सकलगुणनिकरि सहित जो निर्यापकाचार्य तिनके शरणविषै आत्माकूं स्थापन करिके अर सल्लेखना करनेमें उद्यमी जो क्षपक सो संस्तरमें तिष्ठता विधिकरिके शरीरसल्लेखना अर कषायसल्लेखना तिनमें प्रवृत्ति करे ।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिमें संस्तर नामा छब्बीसमां अधिकार सात गाथानिकरि समाप्त किया । अब निर्यापक नामा सत्ताईसमां अधिकार बीयालीस गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

पियधम्मा दढधम्मा संवेगावज्जभीरुणो धीरा ।
छन्दण्हू पच्चइया पच्चक्खाणम्मि य विदण्हू ॥६५२॥
कप्पाकप्पे कुसला समाधिकरणुज्जदा सुदरहस्सा ।
गीदत्था भयवंता अडदालीसं तु णिज्जवया ॥६५३॥

अर्थ- -क्षपककी वैयावृत्य करनेमें उद्यमी जे निर्यापक तिनके गुण कहे हैं। जिनकू धर्म प्रिय होय, जातें सम्यक्चारित्र है सो धर्म है। जिनकू धर्मही प्रिय नहीं होयगा सो क्षपकको धर्ममें दृढ रुचि कैसे करावे ? । बहुरि दृढधर्मा कहिये धर्ममे स्थिर होय, जे चारित्रमें दृढ नहीं होय, ते क्षपकका संयम बिगाड दे। जिनका परिणाम पंचपरिवर्तनरूप संसारका चितवनकरि ससारपरिभ्रमणतें भयवान् होय। बहुरि परीषहके सहनेमें समर्थ तातें धीर होय, जातें परीषह सहनेमें असमर्थ होय, ते संयमका निर्वाह करनेमे समर्थ नहीं होय हैं। बहुरि क्षपकके कहे विनाही अंगकी चेष्टाकरि ताका अभिप्रायकू जाननेमें समर्थ होय। बहुरि जे प्रतीतिके होय, देवनिकृत उपसर्गादिकनितें भी जिनका परिणाम चलायमान नहीं होय। बहुरि प्रत्याख्यान जो त्यागका मार्ग, ताका क्रमनं जाननेवाला होय। बहुरि इस देशमें इस काल मे या योग्य हैं या अयोग्य है ऐसे भोजन पान गमन आगमन इत्यादिकनिमे योग्य अयोग्यके जाननेवाले होय। बहुरि क्षपकके चित्तकी समाधानी करनेमें उद्यमी होय। बहुरि श्रवण किये हैं प्रायश्चित्तग्रन्थ जिनने, ऐसे होय। बहुरि अनेकांत रूप जिनेन्द्रका आगम गुरुनिके प्रसादतें आच्छीतरह अनुभव करि आत्मतत्त्वपरतत्त्वके जाननेवाले होय। बहुरि आपका अर परका उद्धार करनेमें समर्थ होय। ऐसे अडतालीस मुनि निर्यापकगुणके धारक क्षपकके उपकारमें सावधान होय हैं। अब अडतालीसमुनि कैसे कैसे उपकार करै, सो कहे हैं। गाथा—

आमासणपरिमासणचंकमणासयण णिसीदणे ठाणे।
उव्वत्तणपरियत्तणपसारणा उंटणादीसु ॥६५४॥

संजदकमेण खवयस्स देहकिरियासु णिच्चमाउत्ता।
चदुरो समाधिकामा ओलग्गंता पडिचरन्ति ॥६५५॥

अर्थ—शरीरका एकदेशका स्पर्शन, ताहि आमर्शन कहिये। बहुरि समस्तशरीरका हस्तकरिके स्पर्शन, सो परिमर्शन कहिये। ऐठी ऊठी गमन, ताहि चंक्रमण कहिये। बहुरि शयन कहिये सोवना—अर निषद्या कहिये बैठना। अर स्थान कहिये खडा रहना। अर उद्वर्तन कहिये कलोटे लेनां। परिवर्तन कहिये पलटना। अर प्रसारण कहिये हस्तपादादिकका पसारना। अर आकुंचन कहिये समेटना। इत्यादिक क्षपकका देहकी क्रिया, तिनविषें 'जैसे संयम नहीं विनसे

तैसे' संयमका क्रमकरिके नित्यही उद्यमयुक्त अर क्षपकके समाधान करनेके इच्छुक ऐसे च्यार मुनि उपासना जो सेवा ताहि करता प्रतिचारक कहिये टहल करनेवाले होय है। भावार्थ—अडतालीस निर्यापक कहे, तिनिमें च्यारि मुनि तो भक्तिसहित, विनयसहित क्षपकका देहको सेवा, तामे निरन्तर सावधान रहे हैं। स्पर्शन करे हैं, दाबे हैं, उठावना, बैठावना, खडा करना, हस्तपादादिक समेटना, प्रसारना इत्यादिक अनेक देहको सेवा तामें 'संयम नहीं बिगडे तैसे' सावधान रहे हैं। गाथा—

भत्तित्थिराजजणवदकंदप्पत्थणडणट्टियकहाओ ।
वज्जिता विकहाओ अज्झप्पविराधणकरीओ ॥६५६॥
अखलिदममिडिदमव्वाइठुमणुच्चमविलंबिदममंदं ।
कंतममिच्छामेलिदमणत्थहीणं अपुणरुत्तं ॥६५७॥
णिद्धं मधुरं हिदयंगमं च पल्हादणिज्ज पत्थं च ।
चत्तारि जणा धम्मं कहन्ति णिच्चं विचित्तकहा ॥६५८॥

अर्थ—बहुरि च्यारि मुनि धर्मकथा कहनेके अधिकारमें प्रवर्ते हैं। कैसे प्रवर्ते—सो कहे हैं। भोजनकथा, तथा स्त्री कथा, तथा राजकथा, तथा देशकथा, तथा रागकी उत्कटतातै हास्यतै मिल्या जो अप्रशस्त वचनका प्रयोग सो कंदर्पकथा, तथा धनोपार्जन करने सम्बन्धो अर्थकथा, तथा नटनिकी कथा, तथा नर्तककीनिकी कथा इत्यादिक ऐसी ये अध्यात्म जो आत्मानुभव ताके विराधना करनेवाली विकथा हैं, तिनकूं त्यागिकरिके, अर धीर वीर च्यारि मुनि क्षपककूं नानाप्रकार कथा कहै, सो कैसे कहे हैं–जो कहै सो अस्खलित कहै, 'अशुद्धशब्दका उच्चारण सो शब्दस्खलन है, अर विपरीत अर्थका निरूपण सो अर्थस्खलन है'। सो जो कथा कहै, सो शब्द अर्थकी विपरीततारकरि रहित कहै। बहुरि जो कहै सो दोय तीनवार नहीं कहै। बहुरि प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि जामे बाधा नहीं आवे तैसे कहै। अर अतिउच्चस्वरकरि नहीं कहै। अतिविलम्ब करताहू नहीं कहै। अर अतिमन्दहू नहीं है। कर्णनिकूं मनोहर जैसे होय तैसे कहै। मिथ्यात्वका मिलापरहित कहै। अर अर्थरहित नहीं कहै, अर्थ लियां होय सो कहै। अर अपुनरुक्त कहै, कह्या हुवाकूंही बारंबार नहीं कहै। अर स्नेहरूप

कहै अर मिष्ट कहै। अर हृदयमें प्रवेश करिजाय ऐसा कहै। सुख देनेवाला होय सो कहै। अर परिपाककालमें पथ्य होय ऐसा कहै। ऐसे नित्यही धर्मरूप नानाप्रकार कथा कहै—कैसी कथा कहै सो कहे हैं। गाथा—

खवयस्स कहेदव्वा दु सा कहा जं सुणित्तु सो खवओ।
जहिदविसोत्तिगभावं गच्छदि संवेगणिव्वेगं ॥६५९॥

अर्थ—क्षपककूं सो कथा कहनेयोग्य है, जिस कथाकूं श्रवण करिके अशुभपरिणामनिकूं त्यागकरिके संसारतें भयकूं प्राप्त होय अर देहभोगनितें वैराग्यकूं प्राप्त होय। गाथा—

आक्खेवणी य संवेगणी य णिव्वेयणी य खवयस्स।
पावोग्गा होंति कहा ण कहा विक्खेवणी जोग्गा ॥६६०॥

अर्थ—आक्षेपिणी कथा, संवेजनी कथा, निर्वेदिनी कथा, ये तीन कथा क्षपकके श्रवणयोग्य हैं। अर विक्षेपिणी कथा समाधिमरणके अवसरमें श्रवण करनेयोग्य नहीं है। अब इन च्यारि कथानिका स्वरूप कहे हैं। गाथा—

आक्खेवणी कहा सा विज्जाचरणमुवदिस्सदे जत्थ।
ससमयपरसमयगदा कथा दु विक्खेवणी णाम ॥६६१॥

संवेयणी पुण कहा णाणचरित्तं तववीरिय इढ्ढिगदा।
णिव्वेयणी पुण कहा शरीरभोगे भवोघे य ॥६६२॥

अर्थ—जामें मतिज्ञानादिकनिका तथा सामायिकादिक चारित्रका स्वरूप वर्णन किया होय सो आक्षेपिणी कथा है ॥१॥ अर जामें स्वमतपरमतका आश्रय करि वस्तुका निर्णय किया सो विक्षेपिणी कथा है। सर्वथा नित्यही वस्तु है, सर्वथा क्षणिकही है, एकही है, तथा अनेकही है, अथवा सत् ही है वा असत् ही है, तथा विज्ञानमात्रही है, वा शून्यही है, इत्यादिक परसमयकूं पूर्वपक्षकरिके अर प्रत्यक्ष अनुमान अर आगम इनिकरि सर्वथैकांतपक्षमें दोष विरोध दिखायकरिकें 'कथंचि-न्नित्य, कथंचिदनित्य, कथंचिदेक, कथंचिदनेक, कथंचित्सत्, कथंचिदसत्' इत्यादिक अनेकांतरूप स्वसमयकी प्ररूपणा जामें

होय सो विक्षेपिणी कथा है ।। २ ।। ज्ञान चारित्र तप वीर्य भावना इनिकरि उपजी शक्तिकी संपदा, ताका निरूपण जामें होय, सो संवेजनी कथा है ।।३।। बहुरि संसार, शरीर अर भोग इनिमें विरक्तता करावनेवाली निर्वेदिनी कथा है । संसारपरिभ्रमणरूप तामें जन्मना अर मरना ऐसे त्रसस्थावरयोनिमें जन्ममरण करतें अनन्तानन्तकाल व्यतीत भये । अर शरीर महा अशुचि, रसादिकसप्तधातुमय मलमूत्रादिकका भरया हुवा, माताका रुधिर पिताका वीर्यतें उपज्या, महादुर्गन्ध, अशुचि आहारकरि वर्धित हुवा, अशुचिस्थानतें निकल्या, महामलिन, क्षुधातृषादिकमहाव्याधिसंयुक्त, रोगनका स्थान, पोषतां पोषतां नष्ट होजाय, महाकृतघ्न ऐसा शरीर ज्ञानीनिके राग करने योग्य नहीं । अर भोगतृष्णाके बधावनहारे, दुर्गतिकूं प्राप्त करनेवाले, अतृप्तिताके कारण, महादुःखरूप इनमें राग करना नरकतिर्यंचमें परिभ्रमणका कारण तातें आत्महितके इच्छुकनिकूं भोगनिका त्याग करि परमवीतरागताकूं प्राप्त होना श्रेष्ठ है । ऐसे संसारदेहभोगनिका सत्यार्थ स्वरूप दिखाय आत्माकूं परमवीतरागरूप करनेवाली निर्वेदिनी कथा है ।।४।। तातें समाधिमरणके अवसरमें विक्षेपिणी कथाविना तीन कथा करे । अर जो विक्षेपिणी कथा करे, तौ कहा दोष आवे, सो कहे हैं । गाथा—

विक्खेवणी अणुरदस्स आउगं जदि हवेज्ज पक्खीणं ।
होज्ज असमाधिमरणं अप्पागमियस्स खवगस्स ।।६६३।।

अर्थ—जो विक्षेपिणी कथामें अनुरागी क्षपकका आयु पूर्ण होजाय, तो अल्प आगमका धारक जो क्षपक, ताके असावधानताकरि समाधिमरण बिगडि असमाधिमरण होय है । अब कोऊ या जानेगा, जो, अल्पश्रुतज्ञानका धारककूं तो विक्षेपिणी कथा योग्य नहीं, परन्तु बहुश्रुतके धारककूं तो योग्य होयगी । तातें कहे हैं—बहुश्रुत आगमके जाननेवालेकूं भी मरणका अवसरमे विक्षेपिणी कथा अयोग्य है ।

आगममाहप्पगओ विकहा विक्खेवणी अपाउग्गा ।
अब्भुज्जदम्मि मरणे तस्स वि एद अणायदणं ।।६६४।।

अर्थ—आगमके माहात्म्यकूं प्राप्त हुवा ऐसा जो बहुश्रुती साधु ताहूकूं मरण निकट आवता विक्षेपिणी कथा अत्यन्त अयुक्त है । जातें विक्षेपिणी कथा रत्नत्रयधारकका अनायतन है—मरणकालमें आधारयोग्य नहीं है । गाथा—

अब्भुज्जदंमि मरणे संथारत्थस्स चरमवेलाए।
तिविहं पि कहन्ति कहं तिदंडपरिमोडया तम्हा ॥६६५॥

अर्थ—मरण निकट होता संता संस्तरमें तिष्ठता जो क्षपक ताकूं अन्तकालमें संवेजिनी, निर्वेदिनी, आक्षेपिणी ये तीनप्रकारकी कथा अशुभमनवचनकायतं छुडावनेवाली ही कहै। भावार्थ—क्षपककूं ऐसी कथा कहै, जाकूं सुनतेंही अशुभ मनवचनकायकी प्रवृत्ति छूटि शुद्धप्रवृत्तिमें लीन होजाय। गाथा—

जुत्तस्स तवधुराए अब्भुज्जदमरणवेणुसीसंमि।
तह ते कहेन्ति धीरा जह सो आराहओ होदि ॥६६६॥

अर्थ—समीप जो मरणरूप बांस ताका मस्तकविषें तपका भारकरि युक्त जो क्षपक, ताकूं निर्यापक च्यार मुनि महा धीर वीर ऐसे कथा कहै 'जंसे ताकू श्रवण करि आराधनामें लीन होजाय'। गाथा—

चत्तारि जणा भत्तं उवकप्पेन्ति अगिलाए पाओग्गं।
छन्दियमवगददोसं अमाइणो लद्धिसंपण्णा ॥६६७॥

अर्थ—लब्धिकरि संयुक्त, अर मायाचाररहित ऐसे च्यारि मुनि ग्लानिरहित क्षपकके इष्ट तथा क्षपकके योग्य तथा उद्गमादिकदोषरहित भोजनकूं कल्पना करे।

चत्तारि जणा पाणयमुवकप्पन्ति अगिलाए पाओग्गं।
छन्दियमवगददोसं अमाइणो लद्धिसंपण्णा ॥६६८॥

अर्थ—लब्धिकरि संयुक्त अर मायाचाररहित ऐसे च्यारि मुनि क्षपकके इष्ट उद्गमादिदोषरहित अर योग्य ऐसा पानक जो पीवने योग्य ताहि ग्लानिरहित उपकल्पना करे। गाथा—

चत्तारि जणा रक्खन्ति दवियमुवकप्पियं तयं तेहिं।
अगिलाए अप्पमत्ता खवयस्स समाधिमिच्छन्ति ॥६६९॥

अर्थ--बहुरि च्यारि मुनिनिकरि उपकल्पित किया जो द्रव्य, जो आहारपान ताहि च्यारि मुनि प्रमादरहित हुवा सता ग्लानिरहित रक्षा करे। अर क्षपकके समाधिमरणकी इच्छा करे। अब इहां कोऊ प्रश्न करे, जो च्यारि मुनि आहारकूं कैसे कल्पना करे ? अर पानकू कैसे कल्पना करे ? अर उपकल्पना किये जे भोजनपान तिनकी रक्षा कैसे करे? सो विस्तारसहित कह्या चाहिये। अर उपकल्पना शब्द तीन गाथानिमें कह्या, ताका स्पष्टार्थ कहा ? सोहू लिख्या चाहिये। ताका उत्तर-जो, ए कथन इस ग्रन्थमें संक्षेपकरि इतनाही लिख्या है, विशेष लिख्या नहीं, अर अन्यग्रन्थनितें हमारे जानिवे में आया नहीं--अबार हमारे जाननेमें श्रीवट्टकेरस्वामिकृत मूलाचार ग्रन्थ तथा श्रीवीरनन्दिसिद्धान्त चक्रीकरि प्ररूप्या जो आचारसारग्रन्थ तथा श्रीसकलकीर्तिकृत मूलाचारप्रदीपक ग्रन्थ तथा श्रीचामुण्डरायकृत चारित्रसारग्रन्थ, ये मुनीश्वरनिके आचारके प्रधानग्रन्थ हैं, तिनमें ऐसा विशेष लिख्या नहीं, सामान्य अडतालीस मुनि वैयावृत्त्य करनेके अधिकारी लिख्या है। सो विशेष भगवानका परमागमका हुकमविना लिख्या जाय नहीं। अर इस ग्रन्थकी टीका करनेवाला उपकल्पयन्ति का आनयन्ति ऐसा अर्थ लिख्या है, सो प्रमाणरूप नहीं। अर कछु विशेष लिख्या नहीं। अर कोऊ या कहै, जो आहार ले आवते होयगे तो या रचना आगमसूं मिले नहीं। मुनीश्वर अयाचिकवृत्तिका धारक, जिनके वस्त्र नहीं, पात्र नहीं, वे भोजन कैसे याचना करे ? अर कौन पात्रमें मार्गमें कैसे ल्यावे ? सो संभवै नांहि, परमागमसूं मिले नहीं, भोजन ल्यावना राखना बने नहीं। जो भोजन ल्यावना होय, तो छियालीस दोष टले नहीं। तातें जैसे भगवान् सर्वज्ञ देख्या है, सो प्रमाण है। जो गाथामें अक्षर छा तिनका अर्थ तो हमारा ज्ञानमे आया, तेता लिखि दिया। अब विशेष बहुज्ञानी होय, सो परमागमके अनुकूल समझि निश्चय करो। आगमका हुकमविना लिवाय हम लिखनेमे समर्थ नहीं। इस ग्रन्थमें संक्षेप कथन होय, अर अन्यग्रन्थनिमें विशेष जाननेमें आवता तो इहां लिखि देते। अब अन्य निर्यापक कहा करे ? सो है। गाथा--

काइयमादी सव्वं चत्तारि पदिट्ठवन्ति खवयस्स।
पडिलेहन्ति य उवधोकाले सेज्जुवधिसथार ॥६७०॥

अर्थ--च्यारि मुनि क्षपकका कायिकादिक जे सर्व मलमूत्र तिनकूं प्रासुकभूमिमे क्षेपण करे है। अर प्रभातकाल में तथा दिन अस्त होनेका कालमें वसतिका उपकरण तथा संस्तर शोधन करे हैं। गाथा--

खवयस्स घरदुवारं सारक्खन्ति जणा चत्तारि।
चत्तारि समोसरणदुवारं रक्खन्ति जदणाए ॥६७१॥

अर्थ--च्यारि मुनि क्षपककी वसतिकाका द्वारकी रक्षा करे हैं। जो असंयमनीजन तथा दुर्बुद्धिजन क्षपकके परिणामनिमें क्षोभ करनेकूं क्षपकके निकट नहीं जायसके, बाहिरही महान् मिष्टवचन धर्मोपदेशादिककरि स्तम्भन करि ले, अर शान्त परिणाम कर दे, अर आराधनामरणमें भक्ति उपजाय दे, ऐसे तिष्ठे हैं। बहुरि च्यारि मुनि सभाका द्वारकी यत्नकरिके रक्षा करे हैं, सभास्थानमें तिष्ठे हैं आराधनामरण सुनिकरि आये हुये, अनेक लोकनितैं धर्मकथा करि ले हैं। गाथा--

जिदणिद्दा तल्लिच्छा रादौ जग्गन्ति तह य चत्तारि।
चत्तारि गवेसन्ति खु खेत्ते देसप्पवत्तीओ ॥६७२॥

अर्थ--जीती है निद्रा जिनने अर निद्रा जीतनेके इच्छुक ऐसे च्यारि मुनि रात्रिविषैं जागृत रहे हैं। बहुरि च्यारि मुनि क्षेत्रमें तथा तिसदेशमें क्षेमकुशलरूप प्रवृत्तिकूं परीक्षा करे हैं, अवलोकन करे हैं, जो, आराधनामें विघ्न नहीं हो सके। गाथा--

वाहिं असद्दवडियं कहन्ति चउरो चदुव्विधकहाओ।
ससमयपरसमयविदू परिसाए सा समोसदाए खु ॥६७३॥

अर्थ--बहुरि क्षपकका आवासतैं बाहिर जा स्थानतैं क्षपकके कर्णनिमे शब्द नहीं आवे तितने दूरि स्थानमें तिष्ठते अर स्वमत अर परमतके जाननेवाले सभाविषैं आवते जे अनेक लोक तिनकूं आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेजनी, निर्वेजनी, च्यारप्रकार धर्मकथा कहे हैं, अर क्षपकके निकट पहुँचने नहीं दे हैं। जातैं अनेक कषायसहित जीव क्षपकके निकट अयोग्य वचन, अयोग्यकथा, वृथा बकवाद करि क्षपकका परिणाम मरणकालमें बिगाड दे, तातैं स्वमत-परमतके जाननेवाले वचनकलासहित च्यारि ज्ञानी मुनि अनेक आवते मनुष्यनिकूं धर्मकथाकरि संतुष्ट करे हैं। गाथा--

वादी चत्तारि जणा सीहाणुग तह अणेयसत्थविदू।
धम्मकहयाण रक्खाहेदुं विहरन्ति परिसाए ॥६७४॥

अर्थ—बहुरि सिंहसमान निर्भय अर अनेक स्वमतपरमतके शास्त्रनिके जाननेवाले, वादविद्या करनेवाले, च्यारि मुनि धर्मकथा करनेवाले मुनीश्वरनिकी रक्षाके अर्थि सभाविषै प्रवर्तन करे हैं। जिनका सहायकरि कोऊ एकांती धर्मकथा का छेद तथा संशयादिक नहीं उपजाय सके। गाथा—

एवं महाणुभावा पग्गाहिदाए समाधिजदणाए
तं णिज्जवन्ति खवयं अडयालीसं हि णिज्जवया ॥६७५॥

अर्थ—ऐसे च्यारि मुनि तो क्षपककूं उठावना, बैठावना, सुवावना, हस्तपादादिक समेटना, प्रसारना जैसे संयममें दोष नहीं लागे तैसे शरीरकी सेवाके अधिकारी रहे हैं। यद्यपि आपका सामर्थ्य होय, तदितक आपका आपही उठना, बैठना, फिरना, सर्व कार्य करे हैं, अन्यतें नहीं करावे हैं, तथापि जो अशक्त होजाय, तो अन्य च्यारि मुनिनके शरीरकी टहल करनेका अधिकार है।

बहुरि च्यारि मुनिनके धर्मश्रवण करावनेका अधिकार है। बहुरि च्यारि मुनि आचारांगमें जैसे भगवान् आज्ञा करी है तैसे क्षपकके भोजनके अधिकारी हैं। अर च्यारि मुनि पानके अधिकारी हैं। च्यारि मुनि रक्षाके अधिकारी हैं। च्यारि मुनि शरीरके मल दूरि करने के अधिकारी हैं। च्यारि मुनि क्षपककी वसतिकाके द्वारके अधिकारी हैं, जो अनेक लोक क्षपकके परिणामनिमें क्षोभ न करिसके। च्यारि मुनि अनेक लोक आराधनामरण सुनिकरि आवे, तिनके संबोधन में सावधान हुये सभामें तिष्ठे हैं। च्यारि मुनि रात्रिकूं जागते तिष्ठे हैं। च्यारि मुनि देशकी प्रवृत्ति देखनेके अधिकारी हैं। च्यारि मुनि बाहिरही आये गयेतें कथा करि लेनेके अधिकारी हैं। च्यारि मुनि वादके अधिकारी हैं। ऐसे महान् है प्रभाव जिनिका ऐसे अठतालीस निर्यापक मुनि ते यत्नकरिके ग्रहण करी जो समाधि ताकरिके क्षपककूं संसारके पार करे हैं। येते गुणनिसहित निर्यापक अडतालीस वर्णन किये, तिनका नियमही नहीं जानना। भरत ऐरावत क्षेत्रमें कालकी विचित्रतातें जैसा अवसरमें जैसी विधि मिलि जाय, जितने गुणनिके धारक होय, वा जितने होय, तितनेही ग्रहण करने। पंचमकाल मे साचा श्रद्धानी सुन्दर आचारके धारी धर्मानुरागीनिका संग मिलि जाय, सोही अतिश्रेष्ठ है। इस विषम-कलिकालमे धर्मानुरागी श्रद्धानी अतिदुर्लभ है तातें दोय, च्यारि जितने मिलिजाय, तितने धर्मानुराग्यांका संगकरि धर्म-ध्यानसहित ममतारहित परमात्मस्वरूपसूं मन लगाय समाधिमरण करना श्रेष्ठ है। सोही कहे हैं। गाथा—

जो जारिसओ कालो भरदेरवदेसु होइ वासेसु ।

ते तारिसया तदिया चोद्दालीसं पि णिज्जवया ॥६७६॥

एवं चदुरो चदुरो परिहावेदव्वगा य जदणाए ।

कालम्मि संकिलिट्ठंमि जाव चत्तारि साधेन्ति ॥६७७॥

अर्थ—भरत ऐरावत क्षेत्रनिविषं जो जैसा काल होय ता कालमें तैसे कालके अनुसार जघन्यगुणनिके धारक जिस अवसरमाफिक जिनमें गुणनिकी कमी नहीं ऐसे चोवालीसही निर्यापक होय । तथा चालीस, छत्तीस, बत्तीस ऐसे या संक्लेशरूप कालमें घटतं घटतं च्यारि मुनीश्वरतांई समाधिमरण करावनेवाले निर्यापक मुनि होय हैं । चतुर्थकालकेसे द्वादशांगके धारक तथा आचारवानादिक अनेक गुणनिके धारक कहां प्राप्त होय ? तातें जिनके श्रद्धानज्ञान दृढ होय, पापाचारसूं भयभीत होय, धर्मानुरागी होय, ते निर्यापक ग्रहण करने । उत्कृष्ट तो अठतालीस कहे, मध्यम चवांलीसकूं आदि लेय च्यारि मुनीश्वरनितांई कहे । अब जघन्यका नियम कहे है । गाथा—

णिज्जावया य दोण्णि वि होंति जहण्णेण काल-संसयणा ।

एक्को णिज्जावयओ ण होइ कइया वि जिणसुत्ते ।६७८।

अर्थ—कालका आश्रय कहिये प्रभाव तातें जघन्य दोयही निर्यापक होय है । जिनसूत्रमें एक निर्यापक कदाचित् नहीं होय है । याहीका पाठान्तर कहे हैं । गाथा—

कालाणुसारिणो दो भरहेरावदभवा जहण्णेण ।

णिज्जावया य जइणो घेतव्वा गुणमहल्ला दु ॥६७९॥

अर्थ—कालके अनुसार भरत ऐरावतमें उपजे दोयही निर्यापक मुनि महान् गुणनिके धारक जघन्यकरि ग्रहण करनेयोग्य हैं । एक निर्यापक होय, तो कहा दोष आवे सो कहे हैं । गाथा—

एगो जइ णिज्जवओ अप्पा चत्तो परोपवयणं च ।

वसणमसमाधिमरणं उड्डाहो दुग्गदी चावि ॥६८०॥

अर्थ—जो एक निर्यापक क्षपककी वैयावृत्य करनेवाला होय, तो आपका त्याग होय नाश होय, तथा पर जो क्षपक ताका नाश होय, तथा धर्मका नाश होय, तथा व्यसन जो दुःख ताकी प्राप्ति होय, तथा असमाधिमरण होय, तथा धर्मका अपयश होय, अर दुर्गति होय ! तातैं एक मुनि समाधिमरणमें वैयावृत्य करनेमें नहीं ग्रहण किया है । अब एक मुनि निर्यापक होवे तो दोष कहे, ते कैसे होय, सो कहे हैं । गाथा—

खवगपडिजग्गणाए भिक्खग्गहणादिमकुणमाणेण ।
अप्पा चत्तो तव्विवरीदो खवगो हवदि चत्तो ॥६८१॥

अर्थ—जो एक निर्यापक होय तब क्षपकका कार्य जो वैयावृत्य टहल, तामें उद्यमी होता संता, आपका भिक्षा नहीं ग्रहण करनेतैं, तथा निद्रा नहीं लेनेतैं, तथा कायमलका नहीं निराकरणतैं, निर्यापकके बडी पीडा होय है । जातैं सस्तरमें तिष्ठता साधुकी सेवा करे तदि आपके भोजनके अर्थि जाना तथा निद्रा लेना तथा मलमोचन करना इत्यादिक कार्य नहीं संभवे, तदि आपका त्याग नाशही हुवा । अर जो क्षपककूं एकला छोडि जो भिक्षाकूं जाय तथा निद्रा लेवे वा मलमोचन करे तो क्षपकका नाश होय है । क्षीणशरीर मरणके सन्मुख जो क्षपक ताका वैयावृत्यविना त्यागही होय है । गाथा—

खवयस्स अप्पणो वा चाए चत्तो हु होइ जइधम्मो ।
णाणस्स य वुच्छेदो पवयणचाओ कओ होदि ॥६८२॥

अर्थ—बहुरि कोऊ या कहे, क्षपकको रक्षाके अर्थि आपका त्याग करना तथा आतमरक्षाके अर्थि क्षपकका त्याग करनेमें कहा दोष ? तो क्षपकका त्याग होता वा आपका त्याग होता यतीका धर्मका त्याग होय है । जातैं देहका आधारतैं मुनिका धर्म पालिये है अर अकालमें संक्लेशतैं देह त्याग्या तब देहके आधार धर्म छा ताका त्याग भया । अर आगानै ज्ञानका विच्छेद भया अर क्षपकको लेरही निर्यापक मरघा ! तदि ज्ञानका उपदेश कौन करे ? अर ज्ञानका उपदेश गया तदि प्रवचन जो आगम ताका नाश होय है । अर क्षपककूं त्याग्या जब क्षपकके मरण बिगडि दुर्गति होय तथा धर्मका नाश होय । तातैं दोऊका त्यागमें बडा दोष है । अब एक मुनि वैयावृत्य करनेवाला होय तो क्षपकके व्यसन जो दुःख होय है, ताहि कहे हैं । गाथा—

चायम्मि कीरमाणे वसणं खवयस्स अप्पणो चावि ।

खवयस्स अप्पणो वा चायम्मि हवेज्ज असमाधि ॥६८३॥

अर्थ—जो निर्यापक क्षपककूं छोडि आहारकूं जाय, वा निद्रा लेवे तो क्षपकके दूसराविना दुःख होय, अर जो आहारादिक नहीं करे तो आपके दुःख वा नाश होय । अर जो क्षपकका त्याग करे, तो क्षपकके धर्मोपदेशविना असमाधिमरण होय, अर आप भोजनादिक नहीं करे तो भोजनविना संक्लेशतें आपके असमाधिमरण होय । अब उड्डाहदोषकूं कहे है । गाथा—

सेवेज्ज वा अकप्पं कुज्जा वा जायणाइ उड्डाहं ।

तण्हाछुधादिभग्गो खवओ सुण्णम्मि णिज्जवए ॥६८४॥

अर्थ- -जो निर्यापक एकला होय, अर भोजनादिककूं जाय, तदि निर्यापकरहित क्षपक क्षुधातृषादिक वेदनाकरिके भग्न हुवा अयोग्यवस्तुका सेवन करे वा याचनादिक करे, तो धर्मका बडा अपयश होय । अब निर्यापकरहितके दुर्गति होय ऐसा दोष कहे हैं । गाथा—

असमाधिणा व कालं करिज्ज सो सुण्णगम्मि णिज्जवगे ।

गच्छेज्ज तवो खवओ दुग्गदिमसमाधिकरणेण ॥५८५॥

अर्थ—निर्यापकरहित मुनि, ताका कदाचित् वेदनादिक करिके परिणाम बिगडि जाय, तदि कौन स्थम्भन करे ? तदि क्षपकका असमाधिमरणतें दुर्गति होय । यातें एकनिर्यापकका निषेध है । अर लौकिकजनामें भी देखिये है—मांदगीसहित पुरुषकी एकसूं टहल नहीं बणि सके है, तातें दोय निर्यापकसूं घाटि नहीं होय है ।

सल्लेहणं सुणित्ता जुत्ताचारेण णिज्जवेज्जंतं ।

सव्वेहिं वि गंतव्वं जदीहिं इदरत्थ भयणिज्जं ॥६८६॥

अर्थ—योग्य आचरणका धारक आचार्यकरि कराई जो सल्लेखना, ताहि सुनिकरि संपूर्ण मुनीश्वरानें क्षपकके निकट जावना योग्य है । अर मन्दचारित्रका धारक आचार्यकरि कराई सल्लेखना सुनिकरि मुनीश्वर क्षपकके निकट

जाय वा नहीं जाय, जानेका नियम नहीं। अर योग्य आचरणका धारकनिकरि कराई सल्लेखनाके धारक क्षपकके निकट जावना उचित ही है। बहुरि आराधनाके धारकनिका भक्तिपूर्वकदर्शन आत्माके आराधनाका कारण है। गाथा—

सल्लेहणाए मूलं जो वच्चइ तिव्वभत्तिरायेण।

भोत्तूण य देवसुहं सो पावइ उत्तमं ठाणं ॥६८७॥

अर्थ—जो साधु वा श्रावक तीव्रभक्तिका रागकरिके सल्लेखना करने वाले के चरणारविंदाके निकट गमन करे है, सो देवनिका सुख भोगिकरिके अर उत्तम स्थान जो निर्वाण, ताहि प्राप्त होय है। गाथा—

एगम्मि भवग्गहणे समाधिमरणेण जो मदा जीवो।

ण हु सो हिंडदि बहुसो सत्तट्ठभव पमोत्तूण ॥६८८॥

अर्थ—जो जीव एक भवमें समाधिमरणकरि मरे है, सो जीव सात आठ भवनं छोडि बहुत ससारपरिभ्रमण नहीं करे है। भावार्थ—एकवारहू समाधिमरण हो जाय तो सात आठ भवसिवाय संसारभ्रमण नहीं करे है। गाथा—

सोदूण उत्तमट्ठस्स साधणं तिव्वभत्तिसंजुत्तो।

जदि णोवयादि का उत्तमट्ठमरणम्मि स भत्ती ॥६८९॥

अर्थ—जो उत्तमार्थका साधन जो समाधिमरण ताहि श्रवण करिके अर तीव्र भक्तिसंयुक्त हुवो सन्तो समाधिमरण करने वालेके निकट नहीं जाय, ताके उत्तमार्थमरणमें काहेकी भक्ति ? कुछ भी नहीं। गाथा—

जस्स पुण उत्तमट्ठमरणम्मि भत्ती ण विज्जदे तस्स।

किह उत्तमट्ठमरणं संपज्जदि मरणकालम्मि ॥६९०॥

अर्थ—जाके उत्तमार्थमरणमें भक्ति नहीं होइ, ताके मरणकालमें उत्तमार्थमरण कैसे प्राप्त होय ? नहीं प्राप्त होय है। गाथा—

सद्दवदीणं पासं अल्लियदु असंवुडाण वादव्वं।

तेसि असंवुडगिराहिं होज्ज खवयस्स असमाधी ॥६९१॥

कलकलाट शब्दके करनेवाले भूंठवचनरूप द्रूमकरि असंवररूप ऐसे वृथा बकवाद करनेवालेनिकूं क्षपकके समीप नहीं जाने देना योग्य है। तिनके संवररहित वचनकरि क्षपकके समाधानी जो सावधानी सो बिगडि जाय है। गाथा—

भत्तादीणं तंती गीदत्थेहिं वि ण तत्थ कादव्वा।
आलोयणा वि हु पसत्थमेव कादव्विया तत्थ ॥६६२॥

अर्थ—गृहीतार्थ ऐसे ज्ञानी मुनि तिनकूं भी क्षपकका समीपभागविषै प्रसंग पाय भी भोजनादिककी कथा करने योग्य नहीं है। क्षपकके समीप आलोचनाहू प्रशस्तही करने योग्य है। गाथा—

पच्चक्खाणपडिक्कमणुवदेसणियोगतिविहवोसरणे।
पट्ठवणापुच्छाए उवसंपण्णो पमाणं मे ॥६६३॥

अर्थ—प्रत्याख्यान कहिये आगामी त्यागमें, तथा प्रतिक्रमण कहिये पूर्व दोष कीये तिनके दूरि करनेमें, तथा उपदेशके नियोगमें, तथा तीनप्रकारके आहारके त्याग करनेमें, प्रायश्चित्तके पूछनेमें, जो निर्यापकगुरु कहे, सो प्रमाणरूप अंगीकार करना योग्य है। गाथा—

तेल्लकसायादीहिं य बहुसो गंडूसया दु घेत्तव्वा।
जिब्भाकण्णाण बलं होहिदी तुण्डं च से विसद ॥६६४॥

अर्थ—बहुरि जब आहार त्यागनेका अवसर आजाय, तदि क्षपककूं तैल तथा कषायला द्रव्यनिके क्वाथकरि बहुतवार गंडूषा कहिये कुरला करावने योग्य हैं। तैलके कुरलेनितै तथा कषायले द्रव्यनिके कुरलेनितै क्षपकके जिह्वाबल नहीं घटे, वचनकी शक्ति घटे नहीं, तथा कर्णनितैं श्रवण करनेकी शक्ति घटे नहीं, मुखकी निर्मलता बणी रहे, तदि धर्म श्रवणमें, धर्म कथामें शक्ति घटे नहीं। यातैं तैलकषायनिके कुरले करावने।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषै निर्यापक नामा सत्ताईसमां अधिकार बियालीस गाथानिकरि समाप्त किया। अब प्रकाशन नामा अठाईसमां अधिकार छह गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

दव्वपयासमकिच्चा जइ कीरइ तस्स तिविहवोसरणं ।
कहिवि भत्तविसेसंमि उस्सुगो होज्ज सो खवग्रो ॥६९५॥
तह्मा तिविहं वोसरिहिदित्ति उक्कस्सयाणि दव्वाणि ।
सोसित्ता संवरलिय चरिमाहारं पयासेज्ज ॥६९६॥

ग्रर्थ—ग्रब ग्रागानें क्षपककी ग्रायु ग्रल्प रहिजाय तदि क्षपक कहे, मोकूं ग्रब तीन ग्राहारका तो त्याग कराय द्यो । तब ग्राचार्य कहे, बहोत ठीक है, तुमारे ग्राहारका त्यागका ग्रवसर ग्रागया, तदि ग्राहारका त्याग करावनेका ग्रवसर होय तहां पहलो ग्राहारका प्रकाशनकरि दिखायकरि त्याग करावे । द्रव्य जो ग्राहार ताका प्रकाशन किये विना जो क्षपकके तीन ग्राहार जो ग्रशन खाद्य स्वाद्यका त्याग करावे ग्रर क्षपक कोऊ भोजनके वस्तुमें वांछासहित हो जाय तो व्याकुलतानें प्राप्त होय, तातें पहिलीही विचारं, जो यो तीनप्रकार ग्राहार त्याग करसी, तातें उत्कृष्टद्रव्यनिका संस्कार करिके ग्रर विचार करिके पाछें जलका प्रकाश करै—दिखावे गाथा—

पासित्तु कोइ तादी तीरं पत्तस्सिमेहिं किं मेत्ति ।
वेरग्गमणुप्पत्तो संवेगपरायणो होदि ॥६९७॥
ग्रासादित्ता कोई तीरं पत्तस्सिमेहिं किं मेत्ति ।
वेरग्गमणुप्पत्तो संवेगपरायणो होदि ॥६९८॥
देसं भोच्चा हा हा तीरं पत्तस्सिमेहिं किं मेत्ति ।
वेरग्गमणुप्पत्तो संवेगपरायणोहोदि ॥६९९॥
सव्वं भोच्चा धिद्धी तीरं पत्तस्सिमेहिं किं मेत्ति ।
वेरग्गमणुप्पत्तो संवेगपरायणो होइ ॥७००॥

अर्थ—कोऊ मुनि भोजनकूं देखिकरिके ही चिंतवन करे, जो आयुका अन्तकूं प्राप्त भया जो मैं, ताके इन आहारनिकरि कहा प्रयोजन है ? ऐसे वैराग्यकूं प्राप्त भया संसारतें भयवान् होय है। बहुरि कोऊ मुनि आहारकूं आस्वादन करिके अर विचार करे, अहो ! आयुके अन्तकूं प्राप्त भया जो मैं, ताके इन आहारनिकरि कहा साध्य है ? ऐसे वैराग्यकूं प्राप्त भया संसारपरिभ्रमणतें भयवान् होय है। कोऊ मुनि भोजनका किंचित् ग्रास भोगिकरिके अर विचारै, हाय हाय ! बडा अनर्थ है ! आयुका अन्तकूं प्राप्त भया जो मैं, ताके इनि आहारनिकी लंपटताकरि कहा प्रयोजन है ? ऐसे वैराग्यकूं प्राप्त भया संसारपरिभ्रमणतें भयकूं प्राप्त होय है। कोऊ सकल आहारकूं भोगिकरि विचार करे, धिक्कार होऊ ! आयुका अन्तकूं प्राप्त भया जो मैं, ताके इनि आहारनिकरि कहा साध्य है ? इहां विशेष चिंतवन करे है—जो, हे आत्मन् ! संसारपरिभ्रमण करता जो तू सो इतना आहार ग्रहण किया, जो एकएकपर्याय सम्बन्धी ग्रहण करिये तो सब लोकमें नहीं मावे ! अर एता जल पिया, सो अनन्त समुद्र भरि जाय ! अब अन्तकालमें आहारपानका लोलुपी होय किंचिन्मात्र आहारपानतें कैसे तृप्तताकूं प्राप्त होयगा ? अब या लोलुपताकूं त्यागि ध्यानरूप अमृतकरि वेदना बुझावना योग्य है। अनन्तकालमें अनन्तवार इन्द्रियविषय पाया तोहू दाह नहीं मिटी ! देवनिके भोग अर भोगभूमि के भोग निरन्तर असंख्यातकालपर्यन्त भोगे, तिनकरिही चाहरूप दाह नहीं मिटी ! तो मनुष्यजन्मसम्बन्धी किंचिन्मात्र काल भोगनेमें आवने योग्य इनितें चाह कैसे मिटेगी ? कैसी है आहारकी तृष्णा ? ज्यूं ज्यूं आहार ग्रहण करे, त्यौं त्यौं दाहकूं बधावे है ! अर हे आत्मन् ! अनन्तानन्तकाल एकेन्द्रियमें रसना इन्द्रिय नहीं पाई ? खाटा मीठा रस जिह्वाविना कोनकरि आस्वादन करिये ? अर सदाकाल क्षुधातृषाकरि पीडितही रह्या। अर बेइन्द्रियादिक तिर्यंचयोनि मै कदे उदरभरि भोजनही नहीं मिल्या ! सदा रातिदिन भोजनवास्ते धरती सूंघता फिरया, अर नरकधरामैं भोजनही मिल्या नहीं ! तातैं अनन्तानन्तकाल क्षुधा तृषा भोगता व्यतीत भया ! अब अल्पभोजनसूं कैसी तृप्ति होयगी ? तातैं आहारकी गृद्धिता जो लम्पटता, ताकरि यह समाधिमरणका अवसर अनन्तानन्त संसारके दुःखका छेदनहारा ताकूं बिगाडि संसारमें अनन्तानन्तकालपर्यंत तीव्र क्षुधातृषावेदनाकरि संयुक्त दुर्गतिका दुःख ग्रहण करना योग्य नहीं। अनन्तकाल कर्मके वशी होय बहोत वेदना भोगी अब स्वाधीन समभावनिकरि जो एकवारहू सहूंगा, तो बहुरि वेदनाको पात्र नहीं होहूंगा। तातैं अब मेरे या आहारकरि पूरी पडो। ऐसे वैराग्यकूं प्राप्त हुवा संसारपरिभ्रमणतें भयभीत होय है।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषै प्रकाशन नामा अठाईसमां अधिकार छह गाथानिकरि

समाप्त किया। अब आगे क्रमकरिके आहारकी हानि नामा गुणतीसमां अधिकार पांच गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

कोई तमादयित्ता मणुण्णरसवेदणाए संविद्धो ।
तं चेवणुबन्धेज्ज हु सव्वं देसं च गिद्धीए ॥७०१॥
तत्थ अवाओवायं दंसेदि विसेसदो उवदिसंतो ।
उद्धरिदु मणोसल्लं सुहुमं सण्णिव्ववेमाणो ॥७०२॥

अर्थ—कोऊ मुनिके आयु अल्प रहि जाय अर तीन आहारका त्यागका अवसर आजाय तदि त्याग करावनेकूं आहार करावे है, तिनमें कोऊ मुनि आहारकूं आस्वादन करिके अर मनोज्ञ रसका अनुभव करिके गृद्धिरूप हुवा मूर्छित हुवा आस्वादन किया सर्व आहारमें तथा ताका एकदेशमें लम्पटताकरि अति आसक्तताने प्राप्त हो जाय तो आचार्य ताकूं आहारकी लम्पटतातें इन्द्रिय संयमका नाश होना अर असंयमभावका प्रकट होना दिखावे, जो–हे मुने! भोजनकी लम्पटताकरि इन्द्रियसंयम बिगाडो हो! अर असंयम ग्रहण करो हो! सो बडा अनर्थ करो हो! जिह्वाइन्द्रियका स्वाद क्षणमात्रका है, अर आयुका अन्त भी आय गया है, सो अब रसना इन्द्रियका विषयमें लोलुपी होय इन्द्रलोक अहमिंद्रलोक तथा अनन्तसुखरूप निर्वाणका लाभ जातें होय ऐसा संयमकूं बिगाडि नरकतिर्यंचगतिकूं सन्मुख होना योग्य नहीं! मरण तो अवश्य होसीही, या लोकमें धर्मकी गुरुकुलकी निन्दा होयगी, परलोकमें दुर्गतिके दुःख प्राप्त होयंगे! तातें इन्द्रियनिकी लम्पटता त्यागि संयममें सावधान होहू। ऐसे सूक्ष्म मनकी शल्य उखालनेकूं सम्यक् उपशमभावनें प्राप्त करे। गाथा—

सुच्चा सल्लमणत्थं उद्धरदि असेसमप्पमाणेण ।
वेरग्गमणुप्पत्तो संवेगपरायणो खवओ ॥७०३॥

अर्थ—ऐसे आचार्यनितें वैराग्यकथानें श्रवणकरिके अर अनर्थक समस्त शल्य है ताहि प्रमादरहित होयकरिके अर उद्धरति कहिये उखालत है। पश्चात् वैराग्यनें प्राप्त हुवा जो क्षपक सो संसार भोग शरीरनितें अत्यन्त विरक्त होय है। गाथा—

अणुसज्जमाणए पुण समाधिकामस्स सव्वमुवहरिय ।
एक्केक्कं हावेंतो ठवेदि पोराणमाहारे ॥७०४॥
अणुपुव्वेण य ठविदो संवट्ठ दूण सव्वमाहारं ।
पाणयपरिक्कमेण दु पच्छा भावेदि अप्पाणं ॥७०५॥

अर्थ—आहारमें अनुरागवान् जो क्षपक ताके समाधिमरण करावनेके इच्छुक जे परमदयालु गुरु सो ऐसे सत्यार्थ उपदेश करि एकएक आहारसूं ममत्व छुडायकरिकें अर पुरातन आहार जो लालसारहित नीरस आहार तामेंहू चाहना नहीं ऐसे आहारतैं विरक्ततामें स्थापन करे, पाछैं अनुक्रमकरिके सर्व आहारकी अभिलाषाकूं सकोच करिके अर पानक जो पीवनेयोग्य जलादिक तामैं क्षपककूं स्थापन करे अर पश्चात् सर्व आहारादिककी अभिलाषारहित हुवा सन्ता शुद्ध ज्ञानानन्द अविनाशी अखंड ज्ञाता दृष्टा अपना आत्मा ताही भावना करे ।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषं हानि नामा गुणतीसमां अधिकार पंच गाथानिकरि समाप्त किया । अब तीन आहारका त्यागरूप प्रत्याख्यान नामा तीसमां अधिकार दश गाथानिकरि कहे हैं । अब तिनमें पान आहारके भेद कहे हैं । गाथा—

सत्थ बहलं लेवडमलेवडं च ससित्थयमसित्थं ।
छव्विहपाणयमेयं पाणयपरिकम्मपाओग्गं ॥७०६॥

अर्थ—स्वच्छ कहिये उष्णजल तथा आमलीका जल, वहल कहिये घई इत्यादिक, लेवड कहिये हस्तके लगे ऐसा, अलेवड कहिये हस्तके लिपं नहीं ऐसा पतला, ससिक्थ कहिये भातसहित मांड, असिक्थ कहिये चांवलरहित मांड, पानक नामा परिकर्मके जोग्य यह छह प्रकार आगममें पान वर्णन किया है । गाथा—

आयंबिलेण सिभं खीयदि पित्तं च उवसमं जादि ।
वादस्स रक्खणट्ठं एत्थ पयत्तं खु कादव्वं ॥७०७॥

अर्थ—आचाम्लकरिके कफ नाशकूं प्राप्त होय है, अर पित्त उपशमताने प्राप्त होय है, अर वायुकी रक्षा होय है। तातैं आचाम्लमें प्रयत्न करना योग्य है।

तो पाणगए परिभाविदस्स उदरमलसोधणिच्छाए।

मधुरं पज्जेदव्वो मंदं व विरेयणं खवओ ॥७०८॥

अर्थ—तींठापाछैं पानक जो पीवने योग्य आहार, ताकरि साधनरूप किया जो क्षपक, ताके उदरमलके शोधनके अर्थि मधुरवस्तु पावने योग्य है। अर मन्दमन्द उदरथकी मलका विरेचन करना योग्य है। गाथा—

अणाहवत्तियादीहिं वा वि कादव्वमुदरसोधणयं।

वेदणमुप्पादेज्ज हु करिसं अत्थंतयं उदरे ॥७०९॥

अर्थ—उदरमें तिष्ठता जो मल, सो वेदना उत्पन्न करे है, तातैं अनुवासनादि करिके क्षपकके उदरमलकूं निराकरण करना योग्य है। अनुवासनादिक कोई मलविरेचन करनेकी विधि है, सो वैद्यादिकनितैं जानी जाय, हम जानी नाहीं हैं। अब किया है उदरशोधन जाका ऐसा जो क्षपक, ताके योग्य निर्यापकगुरुका व्यापार दिखावे हैं। गाथा—

जावज्जीवं सव्वाहारं तिविहं च वोसरिहिदित्ति।

णिज्जवओ आयरिओ संघस्स णिवेदणं कुज्जा ॥७१०॥

अर्थ—अब निर्यापक आचार्य सर्व संघकूं ऐसे निवेदन करे-जणावे, जो, भो सर्व संघके साधु हो! अब यह क्षपक यावज्जीव तीन प्रकारके आहारका त्याग करे है। गाथा—

खामेदि तुम्ह खवओत्ति कुंचओ तस्स चेव खवगस्स।

दावेदव्वो णेदूण सव्वसंघस्स वसधीसु ॥७११॥

अर्थ—भो मुनीश्वर हो! जलपानादिकविना तीन आहारका त्यागकूं करता जो क्षपक सो सर्व संघके साधुजन जे तुम, तिनिनैं क्षमाग्रहण करावे है। या प्रकार कहि सर्वसंघकी वसतिकामैं क्षपकको पिच्छिका लेयकरि दिखावना योग्य है। भावार्थ—निर्यापकाचार्य क्षपककी पींछी लेय सर्व संघके मुनिनकूं दिखावे, जो क्षपक तीन आहारका त्याग करि अर सर्व संघतैं क्षमा करावे है। गाथा—

आराधणपत्तीयं खवयस्स व णिरुवसग्गपत्तीयं ।
काओसग्गो संघेण होइ सव्वेण कादव्वो ॥७१२॥

अर्थ—सर्व संघके साधुनिनें क्षपकके आराधनाकी प्राप्ति के अर्थि अर उपसर्गरहितताके अर्थि कायोत्सर्ग करना योग्य है। जो, या क्षपकके उपसर्ग मति होहू अर निर्विघ्न आराधना प्राप्त होऊ ऐसा अभिप्रायकरि सर्वसंघ कायोत्सर्ग करे। गाथा—

खवयं पच्चक्खावेदि तदो सव्वं च चदुविधाहारं ।
संघसमवायमज्झे सागारं गुरुणिओगेण ॥७१३॥
अहवा समाधिहेदुं कायव्वो पाणयस्स आहारो ।
तो पाणयंपि पच्छा वोसरिदव्वं जहाकाले ॥७१४॥

अर्थ—तीठा पाछे क्षपक गुरुकी आज्ञाकरिके सर्व च्यारि प्रकार का आहार संघका समुदायका मध्य त्याग करे अथवा समाधि जो सावधानी ताके हेतु पानक आहार तो करना योग्य है अर अन्य तीन आहार त्यागने योग्य हैं। पाछै यथाकालमें पान आहार भी त्यागनः योग्य है। गाथा—

जं पाणयपरियम्मम्मि पाणयं छव्विहं समक्खादं ।
तं से ताहे कप्पदि तिविहाहारस्स वोसरणे ॥७१५॥

अर्थ—जो पानका परिकर्ममे पहली छह प्रकारका पान कह्यो, सो क्षपकके तीन प्रकार आहारके त्यागका अवसर में ग्रहण करने योग्य है। भावार्थ—जब क्षपक तीन प्रकार आहारका त्याग करिजाय तदि छप्रकार पीवने योग्य जो पहली कह्या तिनमैंतैं कोई पान पीवने योग्य है।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारनिविषै प्रत्याख्यान नामा तीसमां अधिकार दशगाथानिमैं समाप्त किया। अब क्षामण नामा इकतीसमां अधिकार च्यारि गाथानिकरि कह्या है। गाथा—

तो आयरियउवज्झायसिस्ससाधम्मिगे कुलगणे य ।
जो होज्जकसाओ स तमहं तिविहेण खामेदि ॥७१६॥

अर्थ—प्रत्याख्यान जो तीन प्रकार के आहारका त्याग ताकूं किया पाछे आचार्यनिविषें तथा उपाध्यायनिविषें शिष्यनिविषें सधर्मीनिविषें कुलविषें गण जो संघ ताविषें जो कषाय होय तो सर्वहीनें मनवचनकायकरिके क्षमा ग्रहण करावे-निराकरण करावे । गाथा—

अब्भहियजादहासो मत्थम्मि कदंजली कदपणामो ।
खामेइ सव्वसंघं संवेगं संजणेमाणो ॥७१७॥

अर्थ—उत्पन्न हुवा है चित्तमें हर्ष जाके, अर किया है मस्तकविषें अंजुली जानें, अर किया है नमस्कार जानें, ऐसा क्षपक सर्व संघके धर्मानुराग उपजावता क्षमा ग्रहण करावे । भावार्थ—अब क्षपक नमस्कार करि हस्तांजलि मस्तक चढाय सर्व संघसूं क्षमा करावे । गाथा—

मणवयणकायजोगेहिं पुरा कदकारिदे अणुमदे वा ।
सव्वे अवराधपदे एस खमावेमि णिस्सल्लो ॥७१८॥

अर्थ—मनवचनकायकरिके जो दोष मैं पूर्वे करया होय, कराया होय, करताकूं भला जान्या होय, तिन सर्व अपराधनिनें मैं शल्यरहित हुवो क्षमा करावूं हूं-माफ करावूं हूं । गाथा—

अम्मापिदुसरिसो मे खमहु खु जगसीयलो जगाधारो ।
अहमवि खमामि सुद्धो गुणसंघायस्स संघस्स ॥७१९॥

अर्थ—जगतके प्राणीनिके संसारपरिभ्रमणका आताप ताके हरनेतें अतिशीतल अर निकटभव्यनके आधार अथवा संसारसमुद्रमें डूबते प्राणीनिकूं हस्तावलंबन देनेवाला अर मातापितासमान रक्षा करनेवाला अर शिक्षा करनेवाला ऐसा संघ हमारेविषें क्षमा करहू । अर मैंहू मनवचनकायतें शुद्ध होय सम्यग्दर्शनादिक गुणनिका समूह जो संघ तामें क्षमा करूं

है। भावार्थ—मातापिता समान अर जगतकूं शीतल अर जगतके आधार ऐसा संघ हमारे संघ तामैं शुद्ध हुवो मैंहू क्षमा करूं हूं।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषै क्षामण नामा इकतीसमां अधिकार च्यारि गाथानि में समाप्त किया। अब क्षपण नामा बत्तीसमां अधिकार छह गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

संघो गुणसंघाओ संघो य विमोचओ य कम्माणं।
दंसणणाणचरित्ते संघायंतो हवे संघो ॥७२०॥

अर्थ—संघ है सो गुणनिका समूह है, संघ है सो कर्मनिका नाश करनेवाला है, दर्शनज्ञानचारित्रनै एकट्ठा करे, समूहरूप करे, सो संघ होत है। गाथा—

इय खामिय वेरग्गं अणुत्तरं तवसमाधिमारूढो।
पप्फोडिंतो विहरदि बहुभववाधाकरं कम्मं ॥७२१॥

अर्थ—ऐसे क्षमा ग्रहण करिके अर सर्वोत्कृष्ट वैराग्य अर सर्वोत्कृष्ट तपमें समाधानीकूं प्राप्त हुवा जो क्षपक, सो बहुत भवनिमें बाधा करनेवाला कर्मकूं निर्जरा करता संता प्रवर्ते है। गाथा—

वट्टन्ति अपरिदंता दिवा य रादो य सव्वपरियम्मे।
पडिचरया गुणहरया कम्मरयं णिज्जरेमाणा ॥७२२॥

अर्थ—बहुरि गुणनिके धारक अर कर्मरजकी निर्जरा करते जे निर्यापकाचार्य, ते क्षपकका रात्रिमें दिनमें सर्व परिकर्म जो सेवन, तामैं खेदरहित हुवा निरन्तर प्रवर्ते हैं। गाथा—

जं बद्धमसंखेज्जाहिं रयं भवसदसहस्सकोडीहिं।
सम्मत्तुप्पत्तीए खवेइ तं एयसमयेण ॥७२३॥
एयसमएण विधुणादि उवउजुत्तो बहुभवज्जियं कम्मं।
अण्णयरम्मि य जोग्गे पच्चक्खाणे विसेसेण ॥७२४॥

एवं पडिक्कमणाए काउसग्गे य विणयसज्झाए ।

अणुपेहासु य जुत्तो संथारगओ धुणदि कम्म ॥७२५॥

अर्थ—जो कर्म असंख्यातकोटि भवनिकरि बन्ध किया सो कर्मरज सम्यक्त्वकी उत्पत्तिविषैं ज्ञानी एक समयमें क्षिपावे है, निर्जरा करे है । बहुरि अन्यतपमें वा च्यारिप्रकारका आहारका त्यागमें उपयुक्त हुवा जो क्षपक सो बहुतभवनि करि उपार्जन किया जो कर्म, सो एकसमयमें क्षिपावे है । ऐसे प्रतिक्रमणमें, कायोत्सर्गमें, विनयमें, स्वाध्यायमें, बारह अनुप्रेक्षामें युक्त जो संस्तरनं प्राप्त हुवा जो क्षपक, सो कर्मकी निर्जरा करे है ।

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषं क्षपण नामा बत्तीसमां अधिकार छह गाथानिकरि समाप्त किया । अब अनुशिष्टि नामा तेतीसमां अधिकार सातसं सत्तरि गाथानिकरि कहे हैं । तामें च्यारि गाथानिमें सामान्य शिक्षा कहे हैं । गाथा—

णिज्जवया आयरिया संथारत्थस्स दिंति अणुसिट्ठिं ।

संवेगं णिव्वेगं जणन्तयं कण्णजाव से ॥७२६॥

अर्थ—निर्यापक आचार्य हैं ते क्षपककूं जिनसूत्रकी आज्ञाप्रमाण अनुशिष्टि जो शिक्षा ताहि देवे हैं, अर संसारतें भय अर वैराग्य उपजावता क्षपकके अर्थि कर्णनिमे जाप देहैं । सो वह कर्णजाप कहा है, सो कहे हैं । गाथा—

णिस्सल्लो कदसुद्धो विज्जावच्चकरवसधिसंथारं ।

उवधिं च सोधइत्ता सल्लेहण भो कुण इदाणिं ॥७२७॥

अर्थ—भो मुने ! अब तत्त्वनिका श्रद्धान करिके अर सरलता करिके अर भोगनिमें निःस्पृहता करिके मिथ्या-मायानिदान-शल्यरहित होहू । अर रत्नत्रयकी शुद्धता करि कृतशुद्धि होहू । अर निःशल्य अर कृतशुद्धि ऐसा हुवा वैयावृत्य करनेवालेनिकूं अर वसतिका तथा उपकरणनिकूं शोधिकरिके अर सल्लेखनाकूं करहू । भावार्थ—उपदेश करे हैं, जो, भो मुने ! शल्यरहित होय अर रत्नत्रयमें शुद्ध होय अर हृदयमें ऐसा चिंतवन करो,—'मेरे वैयावृत्य करनेवाले संयमके साधक हैं अक संयमके बिगाडनेवाले हैं ? ऐसेही वसतिका तथा उपकरणनिमें भी चिंतवन करो, जो, 'या वसतिका' तथा

उपकरण संयम उज्ज्वल करनेवाले हैं अक संयम मलिन करने वाले हैं ?' ऐसा निर्णय करि बाह्य अभ्यन्तरकी शुद्धता करि सल्लेखना करहू। गाथा—

मिच्छत्तस्स य वमणं सम्मत्ते भावणा परा भत्ती।
भावणमोक्कारर्रादि णाणुवजुत्ता सदा कुणसु ॥७२८॥

अर्थ—भो मुने ! मिथ्यात्वका वमन करो, अर सम्यक्त्वमें बारम्बार भावना करो, अर पंचपरमेष्ठीके गुणनिमें अनुरागरूप परम भक्ति करहू, बहुरि पंच परमगुरुनिकूं नमस्काररूप जो भाव णमोकार तामें रति करहु—जो 'नमस्तस्मै' इत्यादिक शब्दका उच्चारण करना, तथा मस्तक नमावनां, अंजुली जोडि खडा रहना ये द्रव्य नमस्कार हैं। अर पंचपरमगुरुनिका गुणनिमें अनुराग करि आत्माकी नम्रता सो भावनमस्कार है। तामें रति करहू, बहुरि ज्ञानोपयोगरूप निरन्तर प्रवृत्ति करहू।

पंचमहव्वयरक्खा कोहचउक्कस्स णिग्गहं परमं।
दुद्दंतिंदियविजयं दुविहतवे उज्जमं कुणइ ॥७२९॥

अर्थ—भो मुने ! पंचमहाव्रतकी रक्षा करहु। अर क्रोधचतुष्कको परम निग्रह करो। दुर्दम जे इन्द्रिय तिनको विजय करो। तथा दोय प्रकार का तपमें उद्यम करो। अब मिथ्यात्वका वमन ग्यारह गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

संसारमूलहेदुं मिच्छत्तं सव्वधा विवज्जेहि।
बुद्धिं गुणण्णिदं पि हु मिच्छत्तं मोहिदं कुणदि ॥७३०॥

अर्थ—संसारपरिभ्रमणका मूलकारण जो मिथ्यात्व, ताही सर्वप्रकारकरि मनवचनकायकरिके वर्जन करो। गुणनिकरि सहितहू बुद्धीकूं मिथ्यात्व जो है, सो मोहित करे है। गाथा—

परिहर तं मिच्छत्तं सम्मत्ताराहणाए दढचित्तो।
होदि णमोक्कारम्मि य णाणे वदभावणासु धिया ॥७३१॥

मयतण्हियाओ उदयत्ति मया मण्णन्ति जह सतण्हयगा ।
सब्भूदन्ति असब्भूदं तध मण्णन्ति मोहेण ॥७३२॥

अर्थ—हे मुने ! मिथ्यात्वको त्याग करहु अर सम्यक्त्वाराधनामें तथा पंचनमस्कार करनेमें तथा ज्ञानभावनामें, व्रतभावनामें बुद्धिकरिके दृढचित्त होहू । इस मिथ्यात्वतें समस्तपदार्थनिकूं विपरीत ग्रहण करे है । जैसे जलकी तृष्णा-सहित जे मृग कहिये वनका जीव, ते मृगतृष्णानिकूं जल मानत हैं, तैसे संसारी जीव मोहकरिके असत्यार्थहूकूं सत्यार्थ माने हैं । गाथा—

मिच्छत्तमोहणादो धत्तूरयमोहणं वरं होदि ।
वड्ढेदि जम्ममरणं दंसणमोहो दु ण दु इदरं ॥७३३॥

अर्थ—मिथ्यात्वतें उपज्या जो मोह, तातें, धत्तूरतें उपज्या मोह अति भला है । जैसे दर्शनमोहका उदय अनन्तानन्त जन्ममरण बधावै, तैसे धत्तूर नहीं बधावै । धत्तूरा खाया हुवा तो अल्पकाल उन्मत्त करे है अर मिथ्यादर्शन अनन्तानन्तभवपर्यंत अचेत करिकरि मारे है ! तातें जन्ममरणके दुःखनितें भयभीत होय सो मिथ्यादर्शनका त्याग करे है । अब इहां कोऊ कहै—मिथ्यात्वका त्याग तो पहलीही करि मुनिव्रत धारया है, बहुरि मिथ्यात्वका त्यागका उपदेशका कहा प्रयोजन है ? ताका उत्तर कहे है ।

जीवो अणादिकालं पयत्तमिच्छत्तभाविदो सन्तो ।
ण रमिज्ज हु सम्मत्ते एत्थ पयत्तं खु कादव्वं ॥७३४॥

अर्थ—अनादिकालका प्रवर्त्या जो मिथ्यात्व ताहि अनुभवनरूप किया सन्ता जीव सम्यक्त्व में नहीं रमे है, तातें इस सम्यक्त्वहीमें प्रयत्न करना योग्य है । भावार्थ—जैसे कोऊ बिलमें बहोत कालका बसनेवाला सर्प निवारण किया हुवाहू बिलमें प्रवेश करे ही है—रोक्या हुवाहू नहीं रुके है, तैसे संसारी जीवनिके हृदयरूप बिलमें अनादिका बसनेवाला जो मिथ्यात्वसर्प सो बारंबार रोक्या हुवाहू नहीं रुके है—प्रवेश करेही है । तातें अव्रती होहु वा व्रती श्रावक होहु वा मुनीश्वर होहु मिथ्यात्वका अभावकी अर सम्यक्त्वकी दृढताकी भावना निरन्तर करबोही करै । गाथा—

अग्गिविसकिण्हसप्पादियाणि दोसं ण तं करेज्जण्हू ।

जं कुणदि महादोसं तिव्वं जीवस्स मिच्छत्तं ॥७३५॥

अग्गिविसकिण्हसप्पादियाणि दोसं करन्ति एयभवे ।

मिच्छत्तं पुण दोसं करेदि भवकोडिकोडीसु ॥७३६॥

अर्थ—जीवके जो तीव्र दोष मिथ्यात्व करे है सो महादोष अग्नि विष कृष्णसर्पादिक नहीं करे हैं । अग्नि विष सर्पादिक तो एकभवविषं दोष करे हैं-दुःख देय मारे हैं, अर मिथ्यात्व है सो भवनिकी कोटाकोटि, वा असंख्यातभव अनन्तभवपर्यंत दोष करे है-मारे है ।

भावार्थ—यो जीव मिथ्यात्वका प्रभावकरि अनन्तभवनिमें अग्निमें बलिकरिके मरघा है, अनन्तवार विषकरिके मरघा है, अनन्तवार कृष्णसर्पादिकनिके डसनेतें मरघा है, अनन्तवार सिंहव्याघ्रादिकनिकरि विदारघा गया है, अनेकवार दुष्टमनुष्यनिकरि हण्या गया है, अनेकवार शस्त्रनितें विदारघा गया है, अनन्तवार जलमें डूबिडूबि मरघा है, अनन्तवार नदीनिके प्रवाहमें बहिकरि मरघा है, अनन्तवार पर्वततें पतनकरि मरघा है, अनेकवार कूपादिकनिमें पडिकरि मरघा है, अनन्तवार क्षुधावेदनाकरि मरघा है, अनन्तवार तृषावेदनाकरि मरघा है, अनन्तवार रोगनिकी तीव्र वेदना भोगता भोगता मरघा है, अनन्तवार दारिद्रयका दुःखकरि पीडित हुवा मरघा है, अनन्तवार बन्दीगृहमें पडघा हुवा मरघा है, अनन्तवार ताडन मारण विदारण छेदनकरि मरघा है, अनन्तवार शीतवेदना तथा उष्णवेदना भयवेदनातें मरघा है, अनन्तवार अंग गलिगलि मरघा है, अनन्तवार खाया गया है, रांध्या गया है, छेद्या गया है, भेद्या गया है, बहोत कहा कहिये ! सकलदुःखनिका मूल एक मिथ्यात्व है ! सर्वसंसारके दुःख एक मिथ्यादर्शनके प्रभावकरि होय हैं ! ! । गाथा—

मिच्छत्तसल्लविद्धा तिव्वाओ वेदणाओ वेदन्ति ।

विसलित्तकंडविद्धा जह पुरिसा णिप्पडीयारा ॥७३७॥

अर्थ—जैसे विषकरिके लिप्त जो बाण, ताकरि बेधे जे पुरुष, तिनका इलाज नहीं-मरघाही जाय है ! तैसे मिथ्यात्वशल्यकरि वेध्या पुरुषहू तीव्र वेदना निगोदमें तथा नरकतिर्यंचमें अनन्तानन्तकाल अनुभवे है ! इलाज निकलनेका नहीं पहुँचे है । गाथा—

अच्छीणि संघसिरिणो मिच्छत्तणिकाचणेण पडिदाइं ।
कालगदो वि य सन्तो जादो सो दीहसंसारे ॥७३८॥

अर्थ—जैसे संघश्री नामा कोई पुरुषका मिथ्यात्वकी तीव्रताकरि दोऊ नेत्र आय पडे, अर पाछें अन्ध होय तीव्र वेदना भोगतो मरणकरि अनन्तसंसारमें परिभ्रमण करनेवालो हुवो । कोऊ कहे-एक मिथ्यात्व हमारे है, तो होहु । मैं दुर्धरचारित्र धारण करता हूं । सो चारित्र मोकूं संसारके दुःखतें निकासनेकूं समर्थ है । ऐसी आशका करे है । सो मति करहू ऐसे दिखावे हैं । गाथा—

कडुगम्मि अणिव्वलिदम्मि दुद्धिए कडुगमेव जह खीरं ।
होदि णिहिद तु णिव्वलियम्मि य मधुरं सुगन्धं च ॥७३९॥

तह मिच्छत्तकडुगिदे जीवे तवणाणचरणविरियाणि ।
णसन्ति वन्तमिच्छत्तम्मि य सफलाणि जायन्ति ॥७४०॥

अर्थ—जैसे अशुद्ध कहिये गिरिसहित कडवी तूंबीमें धारण किया दुग्ध कटुक होय है अर गिरि काढि शुद्ध कोई जो तूंबी तामें धारण किया दुग्ध मधुर रहे है और सुगन्ध रहे है; तैसे मिथ्यात्वकरिके कटुक जो जीव, ताविषे ग्रहण किये जे तप ज्ञान चारित्र वीर्य ते नाशकूं प्राप्त होय हैं । अर जा जीवका मिथ्यात्व नष्ट हो गया, ता जीवविषे तप ज्ञान चारित्र वीर्य सफल होय हैं । अब नव गाथानिकरि सम्यक्त्व की शिक्षा करे हैं । गाथा—

मा कासि तं पमाद सम्मत्ते सव्वदुक्खणासयरे ।
सम्मत्तं खु पदिट्ठा णाणचरणवीरियतवाणं ॥७४१॥

अर्थ—हे मुने ! सर्व सांसारिकदुःखका नाश करनेवाला जो सम्यग्दर्शन, ताके धारण करनेमें प्रमादी मति होहु-आलसी मति होहु । सम्यग्दर्शन जैसे उज्ज्वल होय, दृढ होय, तैसे निरन्तर उद्यम करो । जातें ज्ञान चारित्र तप वीर्यका सम्यग्दर्शन आधार है । सम्यक्त्वविना ज्ञान चारित्र तप वीर्य एकहू नहीं है । गाथा—

णगरस्स जह दुवारं मुहस्स चक्खू तरुस्स जह मूलं ।
तह जाण सुसम्मत्तं णाणचरणवीरियतवाणं ।।७४२।।

अर्थ—जैसे नगरमें प्रवेश करनेका कारण द्वार है—द्वार विना नगरमें कैसे प्रवेश होय ? तैसे ज्ञान चारित्र तप वीर्य इनमें प्रवेश करनेका द्वार सम्यक्त्व है । ज्ञानचारित्रादि आत्माके अनन्तगुण सम्यक्त्वद्वारे जीवके प्रवेश करे हैं, सम्यग्दर्शन विना ज्ञान चारित्र तप वीर्य आत्माके नहीं होय हैं । जैसे मुखकी शोभा नेत्रनिकरि है, तैसे ज्ञान चारित्र तप वीर्य सम्यग्दर्शनकरि भूषित होय हैं । जैसे वृक्षके मूल हैं, तैसे ज्ञानादिकनिका सम्यग्दर्शन मूल है । गाथा—

भावाणुरागपेमाणुरागमज्जाणुरागरत्तो वा ।
धम्माणुरागरत्तो य होहि जिणसासणे णिच्चं ।।७४३।।
दंसणभट्ठो भट्ठो दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं ।
सिज्झन्ति चरियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झन्ति ।।७४४।।

अर्थ—इस जगतमें लोक परपदार्थनिमें अनुरागरूप है, तथा स्नेहीलोकनिमें प्रेमानुरागरूप है, तथा अष्टमदनिकरि अनुरागरूप है, अनादिका मोही हुवा परमें अनुराग करे है । सो अब जिनशासनविषं प्रवर्तो हो, तो परपदार्थनिमें राग त्यागि परमधर्म जो रत्नत्रयरूप अपना स्वभावरूप धर्म, तामें नित्यही अनुरागी होहू । बहुरि जो दर्शनकरि भ्रष्ट है, सो भ्रष्ट है । जातै सम्यग्दर्शनरहितके अनन्तानन्तकालहूमें निर्वाण नहीं होय है । अर जो चारित्रकरि भ्रष्ट है, अर जाका सम्यग्दर्शन नहीं छूट्या ताके थोरा कालमें निर्वाण होसी । अर जाका सम्यग्दर्शन छूटि गया सो अनन्तकालहूमें सिद्ध नहीं होयगा । गाथा—

दंसणभट्ठो भट्ठो ण हु भट्ठो होइ चरणभट्ठो हु ।
दंसणममुयत्तस्स हु परिवडणं णत्थि संसारे ।।७४५।।

अर्थ—सम्यग्दर्शनकरि भ्रष्ट है सो भ्रष्ट है, चारित्रकरिके भ्रष्ट सो भ्रष्ट नहीं है । सम्यग्दर्शन जाका नहीं छूट्या ताका संसारमें पतन नहीं होय है । भावार्थ—कर्मका तीव्र उदयकरि जाका चारित्रव्रत बिगडि भी जाय अर श्रद्धान नहीं बिगडे,

तो संसारपरिभ्रमण नहीं करै, तीसरे भव चारित्र ग्रहणकरि निर्वाणकूं प्राप्त हो जाय है। अर जाका सम्यक्त्व छूटि गया, सो तो अनन्तसंसारीही होय है। गाथा--

सुद्धे सम्मत्ते अविरदो वि अज्जेदि तित्थयरणामं।
जादो दु सेणिगो आगमेसि अरुहो अविरदो वि ॥७४६॥

अर्थ--सम्यक्त्व शुद्ध होता संता व्रतरहितहू पुरुष तीर्थंकरनामकर्मकूं उपार्जन करे है। व्रतरहितहू श्रेणिकराजा सम्यक्त्वके प्रभावतें आगामी कालमें अरहन्त होसी। गाथा--

कल्लाणपरंपरयं लहन्ति जीवा विसुद्धसम्मत्ता।
सम्मद्दंसणरयणं णग्घदि ससुरासुरो लोओ ॥७४७॥

अर्थ--निर्मल है सम्यग्दर्शन जाका, ऐसे जीव को कल्याणरूप इन्द्रपणो, चक्रीपणो, अहमिंद्रपणो, तीर्थंकरपणो प्राप्त होय हैं। सुर असुरसहित सर्व लोक मौल्यपणाकरि दीयेहू सम्यग्दर्शनरत्न नहीं प्राप्त होय है। भावार्थ--सम्यग्दर्शन-रत्न का मोल संपूर्ण सुर असुरसहित लोकहू नहीं है। गाथा--

सम्मत्तस्स य लंभे तेलोक्कस्स य हवेज्ज जो लंभो।
सम्मद्दंसणलंभो वरं खु तेलोक्कलंभादो ॥७४८॥
लद्धूण वि तेलोक्कं परिवडदि हु परिमिदेण कालेण।
लद्धूण य सम्मत्तं अक्खयसोक्खं हवदि मोक्खं ॥७४९॥

अर्थ--एक तो सम्यक्त्वका लाभ, दूजा त्रैलोक्यका लाभ, तिनमें त्रैलोक्यका लाभतेंहू सम्यग्दर्शनका लाभ श्रेष्ठ है। धरणेन्द्रपणाका लाभ, नरेन्द्रपणाका लाभ, देवेन्द्रपणाका लाभ ताहि प्राप्त करिकेहू जीवका प्रमाणीककालमें पतन होय ही है। त्रैलोक्यका राज्यहू पाय राज्यतें छूटि मरणकरि चतुर्गतिमें परिभ्रमण करैही है। अर सम्यक्त्वकूं प्राप्त होय, सो चतुर्गतिसंसारमें जन्ममरण नहीं करे है--अविनाशी सुखकूं प्राप्त होय है। तातें सम्यक्त्वका लाभसमान त्रैलोक्यका

लाभहू श्रेष्ठ नहीं। ऐसे नव गाथानिकरि सम्यक्त्वका महिमा वर्णन किया। अब नवगाथानिकरि जिनेन्द्रादिकनिकी भक्तिका महिमा कहे हैं। गाथा—

अरहन्तसिद्धचेदियपवयणआयरियसव्वसाहुसु ।
तिव्वं करेहि भत्ती णिव्विदिगिंछेण भावेण ।।७५०।।

अर्थ—हे आत्मकल्याणके अर्थी हो ! अरहन्तसिद्ध अर चैत्य कहिये अरहन्तसिद्धनिके प्रतिबिम्ब, अर प्रवचन कहिये जिनेन्द्रका प्ररूप्या परमागम, अर आचार्य अर सर्व साधु इनिविषै विचिकित्सा जो भावनिकी मलिनता ताकरि रहित–भावनिकी शुद्धताकरिके अर तीव्र भक्तिकूं करो। गाथा—

संवेगजणिदकरणा णिस्सल्ला मंदरोव्व णिक्कंपा ।
जस्स दढा जिणभत्ती तस्स भयं णत्थि संसारे ।।७५१।।

अर्थ—जिस पुरुषके जिनेन्द्रभगवान् में भक्ति दृढ है, तिस पुरुषके संसारविषै भय नहीं। कैसीक है भक्ति ? संसारके परिभ्रमणतैं भयभीत जीवनिके उपजे है। जे मूढ संसारमें राच रहे तिनके भक्ति नहीं उपजे है। तातैं सम्यग्ज्ञानीकै–पायो है आत्मलाभ जानैं, बहुरि मिथ्यात्व मायाचार निदान तीन शल्यकरि रहित, बहुरि मेरुगिरिकीनांई चलायमान नहीं, ऐसी जिनभक्ति जाके भई, ताके संसारका अभावही भया। भावार्थ—जिनेन्द्रका स्वभाव रागादिकरहित शुद्ध आत्माका स्वभाव है। जो अरहन्तकूं जाण्या, सो अपने शुद्धात्मस्वरूपकूं जाण्या अर शुद्ध आत्माकूं जाण्या सो अरहन्तकूं जाण्या। जो अरहन्तका स्वरूपका अनुभव सो आत्माका अनुभव। जो अरहन्तका स्वरूपमें स्थिर रहना सो शुद्ध आत्मस्वरूपमें स्थिर रहना है। तातैं आत्मस्वरूपका श्रद्धान अर आत्मस्वरूपका ज्ञान अर आत्मस्वरूपमें स्थिति ये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते साक्षान्मोक्षमार्ग है। तातैं जाके जिनभक्ति, ताके बहुरि संसारपरिभ्रमण नहींहो है, यह निश्चय है। गाथा—

एया वि सा समत्था जिणभत्ती दुग्गइं णिवारेण ।
पुण्णाणि य पूरेदुं आसिद्धिपरंपरसुहाणं ।।७५२।।

अर्थ—एकही सो जिनेन्द्रभगवानकी भक्ति दुर्गतिनिवारण करनेकूं समर्थ है, अर सिद्धिपर्यन्त सुखनिके कारण जे पुण्यप्रकृति अथवा शुद्धभाव तिनकूं परिपूर्ण करनेकूं समर्थ है, तातैं जिनभक्तिहीकूं प्राप्त होहू। सो यह भक्ति अभ्यन्तर

अर बाह्य दोयप्रकार है । तिनमें जो परमात्माका शुद्ध निर्विकार जो ज्ञानदर्शनस्वभाव तामें आपका आत्मानें ऐसा लीन करे, जो भेद नहीं दीखे—साक्षात् परमात्मस्वभावका अनुभवनमें लीन होजाय सो तो अभ्यन्तरभक्ति कहिये । अर परमात्मा का कह्या वशलक्षणधर्म तथा जीवदयाधर्ममें प्रीति करना तथा रागादिकनिका विजयरूप जिनेन्द्रकी आज्ञाप्रमाण प्रवृत्ति करना सो बाह्यभक्ति है । गाथा—

तह सिद्धचेदिए पवयणे य आइरियसव्वसाधूसु ।
भत्ती होदि समत्था संसारुच्छेदणे तिव्वा ॥७५३॥

अर्थ—जैसे अरहन्तभक्तिकूं कल्याणकारिणी कही; तैसे सिद्धभगवानमें तथा अरहन्तके प्रतिबिंबमें तथा सर्वजीवन का उपकारक स्याद्वादरूप जिनेन्द्रका परमागममें तथा आचार्य उपाध्यायनिमें तथा सर्वसाधुनिमें तीव्र भक्ति है सो संसार का छेदनेमें समर्थ है । जातें इनिका गुणनिमें अनुराग है सो आत्मगुणनिमें अनुराग है, आत्मगुणनिमें अनुराग है सो परमेष्ठीके गुणनिमें अनुराग है । सो वीतरागस्वभावसूं पूर्व अवस्थामें अनुराग साक्षाद्वीतरागरूप आत्माकूं करे है । कोऊ कहै अनुराग तो बन्धका कारण है, इहां पंचपरमेष्ठीमें अनुराग मोक्षका कारण कैसे ? सो यो अनुराग विषयकषायादिक वा शरीर धन बांधवादिक परवस्तुमें अनुराग होय तैसे नहीं है, जो बन्ध करे । इनिका अनुराग तो सकल परवस्तुनितें रागका अभाव कराय वीतरागरूप निजभावमें स्थिति करादेनेवाला है । सो जितने आप अर परमात्मा दोय दृष्टिमें आवे है, तितने परमात्मामें अनुराग कहिये है; अर जब ध्याता ध्यान ध्येयकी एकता हो जाय है, तब दूसरा दीखेही नहीं है, अनुराग कौनसूं करे ? गाथा—

विज्जा वि भत्तिवंतस्स सिद्धिमुवयादि होदि सफला य ।
किह पुण णिव्वुदिबीजं सिज्झहिदि अभत्तिमतस्स ॥७५४॥

अर्थ—भक्तिसहित पुरुषके विद्याहू सिद्धताकूं प्राप्त होय है अर भक्तिवानकीही विद्या सफल होय है । जातें विद्या का फल परमात्मास्वरूपमें भक्तिहो जाननी । अर परमात्मा जो शुद्धात्मा तामें भक्तिरहितके निर्वाणका बीज जो रत्नत्रय सो कैसे सिद्धितानें प्राप्त होय ? नहीं होय । गाथा—

तेसिं आराधणणायगाण ण करिज्ज जो णरो भत्ति ।

धत्तिं पि संजमंतो सालिं सो ऊसरे ववदि ॥७५५॥

अर्थ—जो पुरुष आराधनाके नायक जे अरहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु इनिविषै भक्तिकूं नहीं प्राप्त होय है, सो अतिशयकरिके संयमधारण करतोहू ऊसरक्षेत्र जो खारडी भूमि तिसमें शालि बोवै है। जैसे खारडी भूमिमें कोऊ बीज बोवै ताके बीजका नाश होय, फलप्राप्ति नहीं होय है, तैसे अतिशयकरि संयम पालन करताहू अरहन्तादिकनिमें भक्तिविना मिथ्यादृष्टिही है, मोक्षफल कहांतै प्राप्त होयगा ? गाथा—

बीएण विणा सस्सं इच्छदि सो वासमब्भएण विणा ।

आराधणमिच्छन्तो आराधणभत्तिमकरन्तो ॥७५६॥

अर्थ—जो पुरुष आराधनाका धारक जो पंच परमगुरु तामें भक्ति नहीं करे हैं, अर आपके आराधना चाहे है, सो बीजविना धान्यकी इच्छा करे है अर बादले विना वर्षा चाहे है। गाथा—

विधिणा कदस्स सस्सस्स जहा णिप्पादयं हवदि वासं ।

तह अरहादिगभत्ती णाणचरणदंसणतवाणं ॥७५७॥

अर्थ—जैसे विधिकरिके किया जो धान्य ताका उत्पन्न करनेवाली वर्षा होत है, वर्षाविना धान्य नहीं उपजै, तैसे अरहन्तादिकनिकी भक्ति जीवके ज्ञान चारित्र दर्शन तप गुणके उपजावनेवाली होय है—अरहन्तादिकनिकी भक्तिविना दर्शन ज्ञान चारित्र तपकी उत्पत्ति नहीं होय है। गाथा—

वंदणभत्तीमत्तेण मिहिलाहिओ य पउमरहो ।

देविंदपाडिहेरं पत्तो जादो गणधरो य ॥७५८॥

अर्थ—मिथिला नगरका अधिपति जो पद्मरथ नामा राजा, सो अरहन्तादिकनिकी वन्दनामें अनुरागमात्रकरिके देवेन्द्रांसूं प्रातिहार्यनिकूं प्राप्त होतो भयो अर गणधर होत भयो। ऐसे अरहन्तादिकनिकी भक्ति नवगाथानिमें कही। अब पंचनमस्कारका उपदेश छह गाथानिकरि करे हैं। गाथा—

आराधणापुरस्सरमणण्णहिदओो विसुद्धलेस्साओ।

संसारस्स खयकरं मा मोचीओ णमोक्कारं ॥७५६॥

अर्थ—भो मुने ! अन्य विषय-कषाय-शरीरादिकतैं मनकूं निकालि अर एकाग्रमन हुवा सन्ता अर लेश्याकी उज्ज्वलता जो कषायनिकी मन्दता ताकूं प्राप्त हुवा सन्ता आराधनामें अग्रेसर अर संसारका नाश करनेवाला ऐसा पंचनमस्कारमंत्र मति छांडो—निरन्तर चितवन करो। भावार्थ—पंचनमस्कारका स्वरूपमें लीनता है सो कषायकी मन्दता का अर आराधनाका प्रधानकारण है। तातैं संसारका नाश करनेवाला पंचनमस्कारमंत्रका स्मरण जाप्य एक क्षणहू मति विस्मरण होहु। गाथा—

मणसा गुणपरिणामो वाचा गुणभासणं च पंचण्हं।

काएण संपणामो एस पयत्थो णमोक्कारो ॥७६०॥

अरहन्तणमोक्कारो एक्को वि हविज्ज जो मरणकाले।

सो जिणवयणे विट्ठो संसारुच्छेदणसमत्थो ॥७६१॥

अर्थ--जो मरणका अवसरविषै एक अरहन्तनमस्कारही संसारको छेदनेमें समर्थ है, ऐसे जिनेन्द्रका वचनमें दिखाया है। गाथा--

जो भावणमोक्कारेण विणा सम्मत्तणाणचरणतवा।

ण हु ते होंति समत्था संसारुच्छेदणं कादुं ॥७६२॥

अर्थ--भावनमस्कारविना ये सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र तप संसारके छेदन करनेमें समर्थ नहीं होत हैं। अब कोऊ या आशंका करै जो पंचनमस्कारमंत्रही संसारका नाश करनेमें समर्थ है, तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इनिकूं मोक्षमार्ग कहे, सो कहना विरुद्ध होयगा। ताका उत्तर--

चदुरंगाए सेणाए णायगो जह पवत्तओो होदि।

तह भावणमोक्कारो मरणे तवणाणचरणाणं ॥७६३॥

अर्थ--जैसे चतुरंगसेनाको नायक प्रवर्तक होत है, नायकविना सेना कुछ करनेमें समर्थ नहीं; तैसे मरणका अवसरमें भावनमस्कार है, सो तप ज्ञान चारित्रका प्रवर्तक है। भावनमस्कारविना ज्ञान दर्शन चारित्र तपकी प्रवृत्ति नहीं होय है। गाथा--

आराधणापडायं गेण्हन्तस्स हु करो णमोक्कारो।
मल्लस्स जयपडायं जह हत्थो घेत्तुकामस्स ॥७६४॥

अर्थ--आराधनापताकाकूं ग्रहण करता पुरुषके यो पंचनमस्कारमंत्र हस्त है। जैसे जय जो जीति, ताकी ध्वजाकूं ग्रहण करनेका इच्छुक जो मल्ल जो जोद्धा ताके हस्त है, हस्तविना ध्वजाग्रहण नहीं होय, तैसे पंचनमस्कारका शरणविना आराधनाहू ग्रहण नहीं होय है। गाथा--

अण्णाणी वि य गोवो आराधित्ता मदो णमोक्कारं।
चम्पाए सेट्ठिकुले जादो पत्तो य सामण्णं ॥७६५॥

अर्थ--अज्ञानी ऐसाहु ग्वाल पंचनमस्कारनै आराधनाकरि अर मरण किया, सो पंचनमस्कारका प्रभावतै चंपानगरीमें श्रेष्ठीका कुलमें जन्म पाय बहुरि मुनिपणानै प्राप्त होत हुवो। यातै पंचनमस्कारसमान जगतमें जीवको उपकारक अन्य नहीं है। ऐसे पंचनमस्कारका प्रभाव गाथा छहकरि कह्या। अब सोलह गाथानिमें ज्ञानोपयोगका वर्णन करे है। गाथा

णाणोवओगरहिदेण ण सक्को चित्तणिग्गहो काउं।
णाणं अंकुसभूदं मत्तस्स हु चित्तहत्थिस्स ॥७६६॥

अर्थ--ज्ञानोपयोगरहित जो जीव सो चित्तका निग्रह करनेकूं नहीं समर्थ होत है। चित्तरूप मदोन्मत्त हस्तीके वश करनेमें ज्ञानका अभ्यास अंकुशसमान है।

विज्जा जहा पिसायं सुट्ठु पउत्ता करेदि पुरिसवसं।
णाणं हिदयपिसावं सुट्ठु पउत्ता करेदि पुरिसवसं ॥७६७॥

अर्थ--जैसे भले प्रकार प्रयुक्त जो विद्या सो पिशाचनै पुरुषके वशि करे है; तैसे भले प्रकार आराधना किया ज्ञान हृदयरूप पिशाचकूं वशीभूत करे है। गाथा—

उवसमइ किण्हसप्पो जह मंतेण विधिणा पउत्तेण।
तह हिदयकिण्हसप्पो सुठ्ठुवजुत्तेण णाणेण ॥७६८॥

अर्थ—जैसे विधिकरि आराधन किया मंत्रकरि कृष्णसर्प उपशमताने प्राप्त होय, तैसे आछीरीति आराधन किया ज्ञानहू मनरूप कृष्णसर्पकूं उपशम करे है। गाथा—

आरण्णवो वि मत्तो हत्थो णियमिज्जदे वरत्ताए।
जह तह णियमिज्जदि सो णाणवरत्ताए मणहत्थी ॥७६९॥

अर्थ—जैसे वरत्रा जो गजबन्धनी ताकरिके मदोन्मत्त वनका हस्ती बन्धननै प्राप्त करिये; तैसे ज्ञानरूप वरत्राकरिके मनरूप हस्ती वशीभूत करिये है। गाथा—

जह मक्कडओ खणमवि मज्झत्थो अत्थिदुं ण सक्केइ।
तह खणमवि मज्झत्थो विसएहिं विणा ण होइ मणो॥७७०॥

अर्थ—जैसे मर्कट जो वानर सो क्षणमात्रहू निर्विकार तिष्ठवेकूं नहीं समर्थ है; तैसे विषयनिविना मनहू निर्विकार क्षणमात्रहू तिष्ठवेकूं नहीं समर्थ है। गाथा—

तह्मा सो उड्डहणो मणमक्कडओ जिणोवएसेण।
रामदेव्वो णियदं तो सो दोसं ण काहिदि से ॥७७१॥

अर्थ—तातैं ऐंठी ऊंठी उल्लंघनमें तत्पर ऐसा जो मनरूप मर्कट है, तानै जिनेन्द्रका उपदेशविषै निश्चल रमावना योग्य है। जिनेन्द्रका आगममें रमनेतैं मनमर्कट क्षपकके दोष नहीं करे है। गाथा—

तह्मा णाणुवओगो खवयस्स विसेसदो सदा भणिदो ।

जह विंधणोवओगो चन्दयवेज्झं करंतस्स ॥७७२॥

अर्थ—तातैं क्षपककूं विशेषतैं ज्ञानोपयोग रूप सदाकाल प्रवर्तना योग्य है–जैसे चन्द्रकवेधर्न करता पुरुषके व्यधानोपयोग वर्णन किया । भावार्थ—जैसे चन्द्रकवेधकूं वेधता पुरुष अपना उपयोग बेधनेमें लगाया रहे है; तैसे कर्मकूं वेधता पुरुषहू जैसे कर्म अर आत्मा दोऊ भिन्न हो जाय तैसे भेदविज्ञानरूप उपयोगकूं दृढ राखे हैं । गाथा- -

णाणपदीओ पज्जलइ जस्स हियए विसुद्धलेस्सस्स ।

जिणदिट्ठमोक्खमग्गे पणासणभयं ण तस्सत्थि ॥७७३॥

अर्थ—जिस विशुद्धलेश्याका धारकपुरुषका हृदयमें ज्ञानरूप दीपक प्रज्ज्वलित होय है, तिस पुरुषकें जिनेन्द्रका देख्या जो मोक्षका मार्ग, तामें विनाशका भय नहीं है । जिस मार्गमें अन्धकार होय, तिस मार्गमें विनाशका भय होय है । जिस रत्नत्रय मार्गमें श्रुतज्ञानरूप दीपककरि यथावत् स्वपरपदार्थनिका प्रकाश हो रह्या, तहां विनशनेका भय नहीं । गाथा–

णाणुज्जोवो जोवो णाणुज्जोवस्स णत्थि पडिघादो ।

दीवेइ खेत्तमप्पं सूरो णाणं जगमसेसं ॥७७४॥

अर्थ—ज्ञानरूप उद्योत है सो अतिशयकारी उद्योत है, जातैं अन्य दीपकादिकनिका उद्योतका तो रुकना है तथा नाश है अर ज्ञानरूप उद्योतकूं कोऊ रोकनेकूं समर्थ नहीं तथा नाशहू नहीं, कोऊ हरिसके नहीं । बहुरि सूर्य तो अल्पक्षेत्र में उद्योत करे है अर ज्ञानरूप उद्योत मूर्त्त अमूर्त्त सर्व लोक अलोककूं उद्योत करे है । तातैं ज्ञानोद्योत सर्वोत्कृष्ट है । गाथा—

णाणं पयासओ सो वओ तवो संजमो य गुत्तियरो ।

तिण्हंपि समाओगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो ।।७७५॥

अर्थ—ज्ञान है सो सर्वपदार्थनिका प्रकाशक है, बहुरि तप है सो सुवर्णतैं कीटिकाकीनांई आत्मातैं कर्ममलकूं दूरि करि आत्माका शोधक है, संयम है सो नवीन आवते कर्मकूं रोकनेकूं तत्पर है, यातैं संवर है, तीननिका संयोग होतैं मोक्ष होय है, ऐसे जिनशासनमें दिखाया है । गाथा—

णाणं करणविहूणं लिंगग्गहणं च दंसणविहूणं ।

संजमहीणो य तवो जो कुणदि णिरत्थयं कुणदि ॥७७६॥

अर्थ--चारित्ररहित तो ज्ञान अर सम्यग्दर्शनरहित लिंग जो दीक्षाका ग्रहण करना अर इन्द्रियसंयम अर प्राण-संयमरहित तपश्चरण जो करे है, सो निरर्थक करे है ।

णाणुज्जोएण विणा जो इच्छदि मोक्खमग्गमुवगन्तुं ।

गन्तुं कडिल्लमिच्छदि अंधलओ अधयारम्मि ॥७७७॥

अर्थ--जो पुरुष ज्ञानका उद्योतविना चारित्रतपरूप मोक्षमार्गमें गमन किया चाहे है, सो अन्ध होय अर महा अन्धकारमे अतिदुर्गमस्थानमें गमन किया चाहे है । गाथा--

जइदा खंडसिलोगेण जमो मरणा दु फेडिदो राया ।

पत्तो य सुसामण्णं किं पुण जिणउत्तसुत्तेण ॥७७८॥

अर्थ--जो देखो ! यम नामा राजा खंड श्लोकको स्वाध्याय करनेतेंही मरणतं भयभीत होय श्रमणपणो जो मुनिपणो ताहि प्राप्त होतो हुवो । तो जिनेन्द्रकथित सूत्र अध्ययन करनेवालेका तो कहा कहना ? गाथा--

दढसुप्पो सूलहदो पचणमोक्कारमेत्त सुदणाणे ।

उवजुत्तो कालगदो देवो जावो महढ्ढीओ ॥७७९॥

अर्थ--शूलोऊपरि वेध्या जो दृढसूर्प नामा चोर, सो पचनमस्कारमात्र श्रुतज्ञानमें उपयुक्त हुवा संता देहकूं त्यागि करि स्वर्गविषै पंचनमस्कारमंत्रके प्रभावकरि महर्द्धिक देव होता हुवा । गाथा--

ण य तम्मि देसयाले सव्वो वारसविधो सुदक्खंधो ।

सत्तो अणुचिंतेदुं बलिणा वि समत्थचित्तेण ॥७८०॥

एक्कम्मि वि जम्मि पदे संवेगं वीदरायमग्गम्मि ।
गच्छदि णरो अभिक्खं तं मरणन्ते ण मोत्तव्वं ।७८१।।

अर्थ--अत्यन्त बलवान् अर समर्थ है चित्त जाका ऐसाहू पुरुष मरणका देशकालविषै सर्व द्वादशप्रकारको श्रुतज्ञान है सो चितवन करनेकूं समर्थ नहीं है । तातैं मरणका अवसरमें ऐसा कोऊ एक पदमें संवेग कहिये अनुरागकूं प्राप्त होहू जा पदतैं यो नर वीतरागमार्गमें प्राप्त होय । सो पद मरणका अवसरमें निरन्तर नहीं छोडना योग्य है । ऐसे ज्ञानोपयोग सोलह गाथानिकरि कह्या । अब अहिंसा महाव्रतका उपदेश संतालीस गाथानिकरि कहे हैं । गाथा--

परिहर छज्जीवणिकायवधं मणवयणकायजोएहिं ।
जावज्जीवं कदकारिदाणुमोदेहिं उवजुत्तो ।।७८२।।

अर्थ--भो मुने ! समितिमें मनवचनकाय-कृतकारितानुमोदनाकरिके उपयुक्त हुवा सन्ता मरणपर्यन्त छकायके जीवनिका वध जो हिंसा ताहि त्याग करो । गाथा--

जह ते ण पियं दुक्खं तहेव तेसिंपि जाण जीवाणं ।
एवं णच्चा अप्पोवमिवो जीवेसु होदि सदा ।।७८३।।

अर्थ--जैसे तोकूं दुःख प्रिय नहीं है, तैसेही तिन छकायके जीवनिके जानहु । ऐसे जानि सदाकाल सर्वजीवनिकूं आपसमान मानिकरि जीवनिमें आपसमान प्रवृत्ति करहु । गाथा--

तण्हाछुहादिपरिदाविदो वि जीवाण घादणं किच्चा ।
पडिय रं कादुं जे मा तं चिंतेसु लभसु सदिं ।।७८४।।

अर्थ--भो मुनीश्वर ! तृषा तथा क्षुधादिकरि संतापित हुये सन्तेहू जीवनिके घातकरि इलाज मति चिंतवन करो । अर ऐसे स्मरणकूं प्राप्त होहु-जो, मैं अनन्तानन्तकाल हिंसाके प्रभावकरि बहुतकालपर्यंत क्षुधा तृषा भोगी । अब या कहा वेदना है ? वेदनाका नाश करने वाला संयमभाव हमारा हृदयमें निर्विघ्न तिष्ठो । गाथा--

रदिअरदिहरिसभयउस्सुगत्तदीणत्तणादिजुत्तो वि ।
भोगपरिभोगहेदुं मा हि विचिंतेहि जीववहं ॥७८५॥

अर्थ--मनोज्ञविषयनिमें प्रीति सो रति, अर अमनोज्ञविषयनिमें विमुखता सो अरति, अर हर्ष, भय, उत्सुकपणा, दीनपणादिकरि युक्तहू तुम भोगपरिभोगनिके अर्थि जीवनिका वध मति चिंतवन करो । गाथा--

महुकरिसमज्जियमहुं व संजमो थोवथोवसंगलियं ।
तेलोक्कसव्वसारं णो वा पूरेहि मा जहसु ॥७८६॥

अर्थ -हे मुने ! मधुमक्षिकाकरि संचय किया मधुकीनांई थोरा थोरा करि संचय किया जो संयम ताहि त्रैलोक्य का सर्व सार जानि परिपूर्ण करो । यथाख्यातसंयमकूं प्राप्त होना सोही संयमकी पूर्णता है । अर जो पूर्ण नहीं करो तो धारण किया तितनाकूं मति छांडो । गाथा--

दुक्खेण लभदि माणुस्सजादिमदिमदिसवणदंसणचरित्तं ।
दुक्खज्जियसामण्णं मा जहसु तणं व अगणन्तो ॥७८७॥

अर्थ--यो जीव अनादिकालका निगोदहीमें वास किया है, अर कदाचित् अनन्तानन्तकालमें कोई जीव निगोदतें निकले तो पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, पवनकाय प्रत्येकवनस्पतिकायविषें प्राप्त होय तो संख्यात असंख्यातकाल परिभ्रमण करि बहुरि निगोदहीमे वास जाय करे है । कैसाक है निगोदवास ? अनन्तानन्तकालहूमें जातें निकसना नहीं होय है । बहुरि कदाचित् अनन्तानन्तकालमें निकले तो बहुरि पृथिव्यादिकनिमे एक वोय संख्यात असंख्यात जन्म पाय बहुरि निगोदवास करे है । ऐसे अनन्तानन्तकाल तो एकेन्द्रियहीमें वास करे है । त्रसपर्याय पावना दुर्लभ है । अर कदाचित् त्रसपर्याय पावे तो विकलत्रतुष्कमे परिभ्रमण करि बहुरि निगोदवास करे है । बहुरि निकले तो पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चमे घोर पाप करि नरकादिक दुर्गतिमे प्राप्त होय है । मनुष्यजन्म पावना अतिदुर्लभ है । अर मनुष्यजन्महू पावै तो उत्तमजाति, उत्तमकुल नीरोगशरीर, दीर्घायु, धनाढ्यता, सुन्दरबुद्धि, धर्मश्रवण, दर्शन-ज्ञान-चारित्र ये उत्तरोत्तर अत्यन्त

दुर्लभ अनन्तानन्तकालहूमे दुःखकरिके प्राप्त होय है ! तामैंहू दुःखकरिके पाया जो श्रमणपणा ताकूं तृणकीनांई अवज्ञा करता मति छांडहु । गाथा--

तेलोक्कजीविदादो वरेहि एक्कदरमत्ति देवेहि ।
भणिदो को तेलोक्कं वरिज्ज संजीविदं मुच्चा ॥७८८॥

अर्थ—कोऊ देव कहै, जो, एक तो त्रैलोक्यका राज्य अर दूसरा आपका जीवित, अब इनि दोऊनिमें एक ग्रहण करो, तो आपको जीवित छोडि त्रैलोक्यका राज्यकूं ग्रहण करे है । गाथा—

जं एवं तेलोक्कं णग्घदि सव्वस्स जीविदं तह्मा ।
जीविदघादो जीवस्स होदि तेलोक्कघादसमो ॥७८९॥

अर्थ—जातै सर्वप्राणीनिके जीवनेका मोल त्रैलोक्यहू नहीं है, तातै जीवका जीवनेका घात है सो त्रैलोक्यके घात-समान है । गाथा—

णत्थि अणूदो अप्पं आयासादो अणूणयं णत्थि ।
जह तह जाण महल्लं ण वयमहिंसासमं अत्थि ॥७९०॥

अर्थ—जैसे अणु जो परमाणु, तातै कोऊ अल्पप्रमाण नहीं है अर आकाशतै अन्य महत्प्रमाण नहीं है, तैसे अहिंसासमान महान् व्रत नहीं है । गाथा—

जह पव्वदेसु मेरू उव्वाओ होइ सव्वलोयम्मि ।
तह जाणसु उव्वायं सीलेसु वदेसु य अहिंसा ॥७९१॥

अर्थ—जैसे सर्व लोकविषै पर्वतनिमें मेरु उच्च है; तैसे सर्व शीलनिमें व्रतनिमें अहिंसा नामा व्रत ऊंचो है । गाथा—

सव्वो वि जहायासे लोगो भूमीए सव्वदीउदधी ।
तह जाण अहिंसाए वदगुणसीलाणि तिट्ठन्ति ॥७९२॥

अर्थ—जैसे आकाशविषै सर्व लोक तिष्ठे है अर मूमिविषै सर्व द्वीपसमुद्र तिष्ठे हैं, तैसे अहिंसाविषै सर्व व्रत गुण शील तिष्ठे हैं। ऐसे तुम जानहु। गाथा—

कुव्वन्तस्स वि जत्तं तुम्बेण विणा ण ठन्ति जह अरया।
अरएहिं विणा य जहा णठ्ठं णेमी दु चक्कस्स ॥७६३॥
तह जाण अहिंसाए विणा ण सीलाणि ठन्ति सव्वाणि।
तिस्सेव रक्खणठ्ठं सीलाणि वदीव सस्सस्स ॥७६४॥

अर्थ—जैसे रथका चक्र जो पहिया ताविषै यत्न करतेहू तुम्ब जो नाहि ताविना आरा नहीं तिष्ठे है, अर जैसे आराविना चक्रके नेमि जो पूठी सो नष्ट हो जाय है, तैसेही अहिंसाधर्मविना समस्त शील नहीं तिष्ठे है। अहिंसाव्रतकी रक्षाके अर्थि धान्यके वाडिकीनांई शील तिष्ठे है। गाथा—

सीलं वदं गुणो वा णाणं णिस्संगदा सुहच्चाओ।
जीवो हिंसंतस्स हु सव्वे वि णिरत्थया होंति ॥७६५॥

अर्थ—जीवनिकी हिंसा करनेवाला पुरुषके शील तथा व्रत तथा गुण वा ज्ञानाभ्यास तथा निःसंगता तथा सुख त्याग सर्वही गुण निरर्थक होत हैं। गाथा—

सव्वेसिमासमाणं हिदयं गब्भो वसव्वसत्थाणं।
सव्वेंसि वदगुणाणं पिंडो सारो अहिंसा हु ॥७६६॥

अर्थ—यो अहिंसाधर्म सर्व आश्रमनिका हृदय है; सर्वशास्त्रनिका रहस्य है, गर्भ है, सर्वव्रतगुणनिका सारभूत पिंड है। गाथा—

जम्हा असच्चवयणादिएहिं दुक्खं परस्स होदित्ति।
तप्परिहारो तह्मा सव्वे वि गुणा अहिंसाए ॥७६७॥

अर्थ— जातैं असत्यवचन, परधनहरण, कुशीलसेवन, परिग्रहमें आसक्तता, इनिकरि परजीवांके दुःख जो हिंसा सो होइ है। तातैं असत्यवचनादिक सर्वपापनिका त्याग है, सो सर्व अहिंसाहीका गुण है। गाथा—

गोबम्भणित्थिवधमेत्तणियत्ति जदि हवे परमधम्मो।
परमो धम्मो किह सो ण होइ जा सव्वभूददया।।७९८।।

अर्थ—जो अन्य एकांती जन गो-ब्राह्मण-स्त्रीकीही हिंसाका त्यागकूं परमधर्म कहे हैं, तो सर्वप्राणीमात्रकी दया तो परमधर्म कैसे नहीं होय ?। गाथा—

सव्वे वि य सम्बन्धा पत्ता सव्वेण सव्वजीवेहिं।
तो मारन्तो जीवो सम्बन्धी चेव मारेइ।।७९९।।

अर्थ—जगतके सकल जीव हैं, ते सर्वजीवनिकरि सर्वसम्बन्धनिकूं प्राप्त भये हैं, तातें अन्यजीवनिकूं मारता जो जीव, सो समस्त आपके सम्बन्धिनिकूं मारत है। भावार्थ—संसारमें परिभ्रमण करते जीवके सकलजीवनिसूं पिताका पुत्रका, भ्राताका, माताका, स्त्रीका, पुत्रीका, भगिनीका अनेक सम्बन्ध भये हैं। अब इहां कोई जीवकूं कोई जीव मारे है, सो आपके अनेक सम्बन्धीनिकूं मारे है। तातें जीवनिकी हिंसा समस्त अपने सम्बन्धीनिकी हिंसा है। गाथा—

जीववहो अप्पवहो जीवदया होइ अप्पणो हु दया।
विसकंटओव्व हिंसा परिहरियव्वा तदो होदि।।८००।।

अर्थ—जीवनिका घात है सो आपका घात है अर जीवनिकी दया है सो आपकी दया है; जातें जो कोऊ परजीवकूं एकवार मारेगा, सो आप अनन्तवार परजीवनिकरिके मारचा जायगा। अर जो अन्यजीवकी एकवारहू दया करेगा, सो आप अनन्तवार मरणतें रहित होयगा। तातें विषका कंटककीनांई हिंसाका परित्याग करना योग्य है। गाथा—

मारणसीलो कुणदि हु जीवाणं रक्खसुव्व उव्वेगं।
सम्बन्धिणो वि ण य विस्सम्भं मारिन्तए जन्ति।।८०१।।

अर्थ--परजीवनिकूं मारनेका है स्वभाव जाका ऐसा हिंसकजीव प्राणीनिके राक्षसकीनांई उद्वेग करनेवाला होय है। हिंसा करनेवाला जीव आपके सम्बन्धी जे माता पिता भ्राता तिनकेहू विश्वासयोग्य नहीं होय है। गाथा--

वधवन्धरोधधणहरणजादणाओ य वेरमिह चेव।
णिव्विसयमभोजित्तं जीवे मारन्तगो लभदि ॥८०२॥

अर्थ--वध कहिये मरण, बन्ध कहिये बन्धन, रोध कहिये बन्दिगृहमें रुकना, अर धनहरण अर शरीरजनितवेदना, समस्तजीवनितें वैरोपणा अर विषयरहितपणो अर भोजनरहितपणो ये सर्व दुःख जीवनिके मारनेवाले हिंसकके होय हैं। गाथा--

कुद्धो परं वधित्ता सयंपि कालेण मारइज्जन्ते।
हृदघादयाण णत्थि विसेसो मुत्तूण तं काल ॥८०३॥

अर्थ--क्रोधी जीव है सो अन्यकूं यत्नथकी मारिकरिके अर आपहू कालकरिके मरणकूं प्राप्त होय है। मारनेवालेके अर मरनेवाले के एक थोरा कालहीका अन्तर है और अन्तर नहीं। भावार्थ--जाकूं मारलिया वह पहलो मरया अर मारनेवाला दो दिन पाछें मरया, और अन्तर नहीं। मारनेवाला भी मरयाविना तो नहीं रहेगा। गाथा--

अप्पाउगरोगिदयाविरूवदाविगलदा अवलदा य।
दुम्मेहवण्णरसगन्धदाय स होइ परलोए ॥७०४॥

अर्थ--हिंसकजीवके परलोकविषै अल्प आयु अर रोगीपणां अर विरूपपणा अर विकलपणा अर निर्बलपणा अर दुर्बुद्धिपणा, अर खोटा वर्ण, खोटा रस, खोटा गन्धसहितपणा अनेकजन्मपर्यंत होय है। गाथा--

मारेदि एयमवि जो जीवं सो बहुसु जम्मकोडीसु।
अवसो मारिज्जन्तो मरदि विधाणेहिं बहुएहिं ॥८०५॥

अर्थ--जो एकजीवकूं मारे है, सो बहुतकोटि जन्मविषै परवश हुआ नानाप्रकारके विधाननिकरि मारया हुवा मरे है। गाथा--

जावइयाइं दुक्खाइं होंति लोयम्मि चदुगदिदाइं ।

सव्वाणि ताणि हिंसाफलाणि जीवस्स जाणाहि ॥८०६॥

अर्थ—या लोकमें च्यारि गतिनिमें जितने दुःख होत हैं, तितने सर्व दुःख जीवके एक हिंसाका फल जानहु । गाथा—

हिंसादो अविरमणं वहपरिणामो य होइ हिंसा हु ।

तम्हा पमत्तजोगे पाणव्ववरोवओ णिच्चं ॥८०७॥

अर्थ—जो हिंसातें विरक्त होय त्याग नहीं करना सोहू हिंसा, अर जीवनिके घातका परिणाम सोहू हिंसा होत है । जातें जीवका घात होहु वा मति होहु जाके मनवचनकायका योग यत्नाचाररहित प्रमादरूप है, ताके निरन्तर हिंसाही है । तातें प्रमत्त योग है सो नित्यही प्राणव्यपरोपक कहिये प्राणीनिका हिंसकही है । गाथा—

रत्तो वा दुट्ठो वा मूढो वा जं पयुंजदि पओगं ।
हिंसा वि तत्थ जायदि तह्मा सो हिंसगो होइ ॥८०८॥

अत्ता चेव अहिंसा अत्ता हिंसत्ति णिच्छओ समये ।
जो होदि अप्पमत्तो अहिंसगो हिंसगो इदरो ॥८०९॥

अज्झवसिदो य बद्धो सत्तो दु मरेज्ज णा मरिज्जेत्थ ।
एसो बन्धसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥८१०॥

णाणी कम्मस्स खयत्थमुट्ठिदो णोट्ठिदो य हिंसाए ।
अददि असढो हि यत्थ अप्पमत्तो अवधगो सो ॥८११॥

जदि सुद्धस्स य बन्धो होहिदि बाहिरगवत्थुजोगेण ।
णत्थि दु अहिंसगो णाम होदि वायादिवहहेदू ॥८१२॥

नोट—गाथा सख्या ८०८ से ८१२ तक टीकाकार प० सदासुखजी की प्रति मे नही है । श्री पं० जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले कृत एव प्रकाशित हिन्दी टीका वाली भगवती आराधना मे ये गाथाये हैं । उसमे भी अपराजित सूरि कृत विजयोदया टीका सस्कृत तो है पर प० आशाधरजी कृत मूलाराधना दर्पण नही है । यहा श्रीजिनदास पार्श्वनाथ फडकुले कृत हिन्दी अनुवाद आगे के पृष्ठ में दिया जा रहा है ।
—सपादक

अन्य आगमग्रन्थ मे हिंसा के विषयमे ऐसा लिखा है—

रागी, द्वेषी अथवा मूढ बनकर आत्मा जो कार्य करता है उससे हिंसा होती है। प्राणीके प्राणोंका वियोग तो हुआ परन्तु रागादिक विकारों से आत्मा यदि उस समय मलिन नहीं हुआ है तो उससे हिंसा नहीं हुई है, ऐसा समझना चाहिये, वह अहिंसक ही रहा ऐसा समझना चाहिये। अन्य जीवके प्राणोंका वियोग होने से ही हिंसा होती है, ऐसा नहीं, अथवा उनके प्राणोंका नाश न होनेसे अहिंसा होती है ऐसा भी नहीं समझना चाहिये; परन्तु आत्मा ही हिंसा है और वही अहिंसा है, ऐसा मानना चाहिए। अर्थात् प्रमाद परिणत आत्मा ही स्वयं हिंसा है और अप्रमत्त आत्माही अहिंसा है। आगममे भी ऐसा कहा है—

आत्मा ही हिंसा है और आत्माही अहिंसा है—ऐसा जिनागममें निश्चय किया है। अप्रमत्त अर्थात् प्रमाद रहित आत्मा को अहिंसक कहते है, और प्रमादसहित आत्माको हिंसक कहते हैं। जीवके परिणामों के अधीन बन्ध होता है, जीव मरण करे अथवा न करे परिणामके वश हुआ आत्मा कर्ममे बद्ध होता है। ऐसा निश्चय नयसे जीवके बन्धका संक्षेप से स्वरूप कहा है।

जीव, उसके शरीर, शरीरकी उत्पत्ति जिसमे होती है ऐसी योनि, इनके स्वरूप जानकर और उसके उत्पत्तिका काल जानकर पीडाका परिहार करनेवाला और लाभ, सत्कारादिकी अपेक्षा न करके तप करनेवाला जीव अहिंसक माना जाता है। आगममें इस विषयमें ऐसा विवेचन है—

ज्ञानी पुरुष कर्मक्षय करनेके लिये उद्यत होते हैं वे हिंसाके लिये उद्यत नहीं होते हैं। उनके मनमें शठ भाव, माया नहीं रहती है और वे अप्रमत्त रहते है। इसलिये वे अबंधक–अहिंसक माने गये हैं। जिसके शुभपरिणाम हैं, ऐसे आत्माके शरीरसे यदि अन्य प्राणी के प्राणका वियोग हुआ और वियोग होने मात्रसे यदि बन्ध होगा तो किसी को भी मोक्षकी प्राप्ति न होगी, क्योंकि योगियोको भी वायुकायिक जीवोंके बधके निमित्तसे कर्मबन्ध होता है, ऐसे मानना पड़ेगा। इस विषयमें शास्त्रमें ऐसा लिखा है—

यदि रागद्वेषरहित आत्माको भी बाह्यवस्तुके सम्बन्धसे बन्ध होगा तो जगतमें कोई भी अहिंसक नहीं है, ऐसा मानना पड़ेगा। अर्थात् शुद्ध मुनिको भी वायुकायिक जीवके बधके लिये हेतु समझना होगा, इसलिये निश्चयनयके आश्रयसे दूसरे प्राणीके प्राणका वियोग होने पर भी अहिंसामें बाधा आती नहीं है, ऐसा समझना चाहिये।

पादोसिय अधिकररिणय कायिय परिदावणादिवादाए ।

एदे पंचपओगा किरियाओ होंति हिंसाओ ॥८१३॥

तिहिं चदुहिं पंचहिं वा कमेण हिंसा समप्पदि हु ताहिं ।

बन्धो वि सया सरिसो जइ सरिसो काइयपदोसो ॥८१४॥

अअर्थ— परके इष्ट जो स्त्री, धन, वस्त्र, आभरण, सुन्दर भवन तिनके हरणेके अर्थि जो कोप करना, सो प्राद्वेषिकी क्रिया है । हिंसाका उपकरण जो शस्त्र, ताका समागम करना, सो अधिकरिणिकी क्रिया है । बहुरि दुष्टतारूप कायका प्रवर्तावना, सो कायिकी क्रिया है । दुःखकी उत्पत्तिके निमित्त जो क्रिया, सो पारितापिकी क्रिया है । बहुरि जो आयु इन्द्रिय बलका वियोग करनेवाली क्रिया, सो प्राणातिपातिकी क्रिया है । ये पंचप्रकारके प्रयोग हैं, ते हिंसाकी क्रिया, होत हैं । सो ये क्रिया मन–वचन–कायकरिके, अर क्रोध मान-माया-लोभकरिके, तथा स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र ये पंच इन्द्रिय इनिकरिके होत हैं । जातें ये पांच क्रिया मनकरिहू होय है, वचनकरिहू होय है, कायकरिहू होय है, तथा क्रोधके वशीभूतताकरि होय है तथा मान-माया-लोभके वशीभूतपणाकरि होय हैं, तथा स्पर्शनादिक इन्द्रियनिके वशीभूतपणाकरि होय हैं । तहां जो जैसा मन वचन काय, क्रोध मान माया लोभ, स्पर्शनादिक इन्द्रिय जैसा मन्दतीव्रादिपरिणतिकरि सहित होय तैसा सदृश-विसदृशबन्ध होय है ।

बीस पल तिण्णि मोदय पण्णरह पला तहेव चत्तारि ।

वारह पलिया पंच दु तेसिं पि समो हवे बन्धो ॥८१५॥

इस गाथा का अर्थ हमारीसमझिमें नहीं आया, तातैं नहीं लिख्या है । गाथा—

जीवगदमजीवगदं समासदो होदि दुविहमधिकरणं ।

अठ्ठुत्तरसयभेदं पढमं विदियं चदुब्भेदं ॥८१६॥

अर्थ—हिंसाका अधिकरण कहिये आधार संक्षेपतैं दोयप्रकार होय है । एक जीवगत एक अजीवगत । तहां जीवगत आधारके एकसो आठ भेद हैं । अर अजीवगत आधारके च्यारि भेद हैं । अब जीवगत आधारके एकसो आठ भेद कहे हैं । गाथा—

संरंभसमारंभारंभं जोगेहिं तह कस एहिं ।
कदकारिदाणुमोदेहिं तहा गुणिवे पढमभेदा ।।८१७।।
संरंभो संकप्पो परिदावकदो हवे समारंभो ।
आरम्भो उद्दवओ सव्ववयाणं विसुद्धाणं ।।८१८।।

अर्थ—प्रमादी पुरुषके प्राणीनिका प्राणका अभाव करनेमें यत्न करना, सो सरम्भ कहिये । बहुरि हिंसादिक क्रियाका कारणनिका संयोग मिलावना वा हिंसाके उकरण संचय करना सो समारम्भ कहिये । बहुरि हिंसाकी क्रियाका कारण जो सचय किया ताका आद्य जो प्रारम्भ, ताहि आरम्भ कहिये । इनिकूं मन-वचन-कायकरिके तथा कृत-कारित-अनुमोदनाकरिके बहुरि क्रोध-मान-माया-लोभकरिके गुणिये तदि जीवाधिकरणके एकसो आठ भेद होत हैं । १. क्रोधकृत कायसरभ, २. मानकृत कायसंरम्भ, ३. मायाकृत कायसरम्भ, ४. लोभकृत कायसंरम्भ, ५. क्रोधकारित कायसंरम्भ, ६. मानकारित कायसरम्भ, ७. मायाकारित कायसंरम्भ, ८. लोभकारित कायसंरम्भ, ९. क्रोधानुमत कायसंरम्भ, १०. मानानुमत कायसंरम्भ, ११. मायानुमत कायसंरम्भ. १२. लोभानुमत कायसंरम्भ, १३. क्रोधकृत वचनसंरम्भ, १४. मानकृत वचनसंरम्भ. १५. मायाकृत वचनसंरम्भ, १६. लोभकृत वचनसंरम्भ, १७. क्रोधकारित वचनसंरम्भ, १८. मानकारित वचनसंरम्भ, १९.मायाकारित वचनसंरम्भ, २०. लोभकारित वचनसंरम्भ, २१. क्रोधानुमत वचनसंरम्भ, २२. मानानुमत वचनसंरम्भ, २३. मायानुमत वचनसरम्भ, २४. लोभानुमत वचनसंरम्भ, २५. क्रोधकृत मनःसंरम्भ, २६. मानकृत मनःसरम्भ, २७. मायाकृत मनःसंरम्भ, २८. लोभकृत मनःसंरम्भ, २९. क्रोधकारित मनःसरम्भ, ३०. मानकारित मनःसंरंभ, ३१. मायाकारित मनःसंरम्भ, ३२. लोभकारित मनःसंरम्भ, ३३. क्रोधानुमत मनःसंरम्भ, ३४. मानानुमत मनःसंरम्भ, ३५. मायानुमत मनःसंरम्भ, ३६. लोभानुमत मनसरम्भ, ऐसे क्रोध-मान-माया-लोभ कषायके वशीभूत मन-वचन-कायकरि सरम्भ करनेतें, करावनेतें, अनुमोदना करनेतें संरम्भ छत्तीसप्रकार है । ऐसेही समारम्भ छत्तीस प्रकार है । अर आरम्भ छत्तीस प्रकार हैं । ऐसे जीवाधिकरणके एकसो आठ भेद है । संरम्भ तो हिंसाका संकल्प है, अर समारम्भ है, सो परि-ताप करनेवाला है, आरम्भ है सो अहिंसादिक सर्व उज्ज्वल व्रतनिका दमनेवाला है । अब अजीवाधिकरणके च्यारि भेदनिकूं कहे हैं । गाथा—

णिक्खेवो णिव्वत्ति तहा य संजोयणा णिसग्गो य ।
कमसो चदु दुग दुग तिय भेदा होंति हु विदीयस्स ॥८१९॥

अर्थ—१. निक्षेप, २. निर्वर्तना, ३. सयोजना, ४. निसर्ग । तहां जो निक्षेपण करिये धरिये सो निक्षेप है, निपजाइये सो निवर्तना है, मिलावना सो संयोजना है, बहुरि जो निसर्जन करिये–प्रवर्ताइये सो निसर्ग है । तिनमें निक्षेप च्यारि प्रकार है । निर्वर्तना दोयप्रकार है । सयोजना दोयप्रकार है । निसर्ग तीन प्रकार है । ऐसे दूसरा जो अजीवाधिकरण ताके ये भेद है । अब निक्षेपके च्यारि भेदनिकूं कहे है ।

सहसाणाभोगिय दुप्पमज्जिद अपच्चवेक्खणिक्खेवो ।
देहो व दुप्पउत्तो तहोवकरणं च णिव्वत्ति ॥८२०॥

अर्थ—१. सहसानिक्षेपाधिकरण, २. अनाभोगनिक्षेपाधिकरण, ३. दुःप्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण, ४. अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरण, ऐसे निक्षेपके च्यारि भेद, तिनिमें निक्षिप्यते कहिये क्षेपिये स्थापिये सो निक्षेप कहिये । तहां भयादिककरिके वा अन्यकार्य करनेकी उतावलिकरिके जो शीघ्रताते पुस्तक कमंडलु शरीर तथा शरीरका मलादिक क्षेपिये सो सहसानिक्षेपाधिकरण है । बहुरि शीघ्रता नहीं होताहू "इहां जीव है वा नहीं है" ऐसा विचारही नहीं करे, अर अवलोकन बिनाही पुस्तक कमडलु शरीर सम्बन्धी मलादिक निक्षेपण करिये तथा वस्तु जहां धरी चाहिये तहां नहीं धरना, जैसे तैसे अनेक जायगाँ धरना सो अनाभोगनिक्षेपाधिकरण है । बहुरि जो दुष्टताकरि वा यत्नाचाररहितपणाकरि जो उपकरण शरीरादिकका क्षेपना सो दुष्प्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण है । बहुरि विनादेख्या वस्तुका निक्षेपण करना स्थापन करना सो अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरण है । ऐसे च्यारि प्रकार निक्षेप कह्या । अब दोयप्रकार निर्वर्तना कहे हैं–निपजाइये सो निर्वर्तना है । शरीरतें कुचेष्टा उपजावना सो देहदुःप्रयुक्त है । अर हिंसाके उपकरण शस्त्रादिककी रचना करना सो उपकरणनिर्वर्तना है । बहुरि सर्वार्थसिद्धिजीमें पूज्यपादस्वामी ऐसे कह्या है–जो, निर्वर्तना अधिकरण दोयप्रकार है । एक मूलगुणनिर्वर्तना, एक उत्तरगुणनिर्वर्तना । तहां मूल पंचप्रकार—शरीर वचन मन उच्छ्वास निश्वासका निपजावना । अर उत्तर काष्ठपुस्त चित्रकर्मादिक निपजावना । ऐसे कह्या है । अब संयोजना अधिकरण तथा निसर्गाधिकरणकूं कहे हैं । गाथा—

संजोयणमुवकरणाणं च तहा पाणभोयणाणं ।
दुठ्ठणिसिट्ठा मणवचिकाया भेदा णिसग्गस्स ॥८२१॥

अर्थ— संयोजना कहिये संयोग दोयप्रकार है । एक तो शीतस्पर्शरूप जो पुस्तक तथा कमंडलु तिनकूं तावडाकरि तप्त जो पीछिका ताकरि पूछना सोधना इत्यादिक उपकरणसंयोजना है । बहुरि बूजा पान जो जलादिक तिनका अन्यपानमें मिलावना तथा भोजनमें मिलावना तथा भोजनकूं पानमें मिलावना वा अन्यभोजनमें मिलावना, सो भक्तपानसंयोजना है ।

बहुरि निसर्गाधिकरण तीनप्रकार है । दुष्टप्रकार कायका प्रवर्तन करना, सो कायनिसर्गाधिकरण है । दुष्टप्रकार वचनका प्रवतन करना सो वाग्निसर्गाधिकरण है । दुष्टप्रकार मनका प्रवर्तन करना सो मनोनिसर्गाधिकरण है । भावार्थ-जीव अजीव दोऊ द्रव्यके आश्रयकरि कर्मका आगमन होय है, तिनके भावनिके विशेष ये कहे हैं । अब अहिंसाधर्मको रक्षा का उपाय कहे है । गाथा—

ज जीवणिकायवहेण विणा इन्दियकयं सुहं णत्थि ।
तम्हि सुहे णिस्संगो तम्हा सो रक्खदि अहिंसा ॥८२२॥

अर्थ—जातें छकायके जीवनिकी हिंसादिना इन्द्रियजनित सुख नहीं होय है, तातें इन्द्रियजनित सुखमें आसक्तता रहित होय, सो अहिंसाधर्मकी रक्षा करे है । बहुरि जाकूं इन्द्रियनिके भोगनिमें सुख दीखे है, सो आत्मीकसुखका लेशहू नहीं जान्या, तातें बहिरात्मा है-मिथ्यादृष्टि है । जाके आत्महिंसाहीका त्याग नहीं, ताके परजीवनिकी दयाका लेशहू नहीं जानना । जाके आपकी दया ताके परकी दया । अर जानें विषयकषायनिकरि आपका ज्ञानदर्शनभावका घात किया अर नरकादिकनिमें आत्माकूं अनन्तानन्तवार मरणपणानं प्राप्त किया ऐसा आत्मघातीके कदाचित् छह कायके जीवनिकी दया नहीं ही जाननी । जातें भगवानका ऐसा हुकम है, जो आपके रागद्वेषादिकनिकी उत्पत्ति सो हिंसा है अर रागादिकनि की अनुत्पत्ति सो अहिंसा है । गाथा—

जीवो कसायबहुलो संतो जीवाण घायणं कुणइ ।
सो जीववहं परिहरदु सया जो णिज्जियकसाओ ॥८२३॥

अर्थ— जो जीव कषायनिकी आधिक्यतासहित तिष्ठै है, सो जीव प्राणीनिका घात करे है। अर जो कषायनिका जीतनेवाला है, सो सदाकाल जीवनिका हिंसाका परित्याग करे है। बहुरि जो कषायनिसहित प्रवर्तना है सो आपके आत्मा का घात करना है। अर जो उत्तमक्षमादिरूप कषायरहित प्रवर्तना है, सो आपका आत्माकी रक्षा है। इस लोकमेंहू रक्षा है अर आगामी कालमेंहू अनन्तानन्त जन्ममरणतैं आपकी रक्षा करना है। गाथा—

आदाणे णिक्खेवे वोसरणे ठाणगमणसयणेसु।
सव्वत्थ अप्पमत्तो दयावरो होदु हु अहिंसो ॥८२४॥

अर्थ—कमडलु पींछी, पुस्तकके ग्रहण करनेमें, तथा मेलनेमें, तथा शरीरके मेलने उठावनेमें तथा खडे रहनेमें, गमन करनेमें, शयनमे, पसारनेमें, समेटनेमें, उलटपलट होनेमें संपूर्णक्रियामें जो जीवदयासहित यत्नाचारकरि प्रवर्तै है; सो जीव अहिंसक होय है। गाथा—

काएसु णिरारंभे फासुगभोजिम्मि णाणहिदयम्मि।
मणवयणकायगुत्तिम्मि होइ सयला अहिंसा हु ॥८२५॥

अर्थ— जो षट्कायके जीवनिमें तो आरम्भरहित है, अर जो छीयालीस दोष तथा बत्तीस अन्तराय, चौदह मल पूर्वै कहि आये तिनकूं टालिकरि गृहस्थके घरि नवधा भक्तिकरि दिया हुवा, अयाचिकवृत्तिकरिके गृद्धिता जो लम्पटता ताकरि रहित, मौनावलम्बी, एकदिनमें एकवार अथवा बेला, तेला, पंचोपवास, पक्षके, मासके उपवासनिके पारणे इन्द्रियनिकूं निग्रह करता. खारा, अलूणा, ठंडा, ताता, रसवान्. वा नीरस जो दातार साधुके अर्थि नहीं किया ऐसा प्रासुक भोजन करे है, अर ज्ञानाभ्यासमें सदाकाल रत है, अर मन वचन कायका चलायमानपणाकरि रहित तीनगुप्तिरूप रहे हैं, तिस साधुके परिपूर्ण अहिंसाव्रत होय है। गाथा—

आरंभे जीववहो अप्पासुगसेवणे य अणुमोदो।
आरंभादीसु मणो णाणरदीए विणा चरइ ॥८२६॥

अर्थ—जो साधुके आरम्भमें तो जीवनिका घात होय है, अर अप्रासुकद्रव्यके सेवनेमें अनुमोदना रहे है, अर आरंभ करनेमे मन रहे है, सो ज्ञानमें लीनताविना आचरण करे है। जो भगवानका परमागमका शरण ग्रहण करता तो ऐसी

मलिन भ्रौली प्रवृत्ति नहीं करता। ऐसी प्रवृत्ति करनेवाला साधु अज्ञानतें संसारपरिभ्रमण करेगा। गाथा—

तम्हा इहपरलोए दुक्खाणि सदा अणिच्छमाणेण।

उवओगो कायव्वो जीवदयाए सदा मुणिणो ॥८२७॥

अर्थ—तातें इसलोकमे तथा परलोकमें दुःखनिकूं नहीं इच्छा करता जो मुनि, तानें जीवनिकी दयाविषें सदाकाल उपयोग करवो जोग्य है। जीवनिको दया है सोही धर्म है; यातें साधुजन कदाचित् प्रमादी नहीं होय हैं, सदा यत्नाचाररूपही प्रवर्तन करे हैं। गाथा—

पाणो वि पाडिहेरं पत्तो छूढो वि सुंसुमारहदे।

एगेण एक्कदिवसक्कदेण हिंसावदगुणेण ॥८२८॥

अर्थ—शिशुमार नामा दहविषें मारनेकूं क्षेप्या ऐसा चांडालहू एक दिनका किया जो अहिंसाव्रत नामा एक गुण ताकरिके देवनिका किया सिंहासनादिक प्रातिहार्यनिकूं प्राप्त हुवा! तो और उत्तम आचारका धारक यावज्जीव अहिंसा नामा व्रत पालै ताका प्रभाव कौन कहनेकूं समर्थ है?

ऐसे अनुशिष्टि नामा तेतीसमा महा अधिकारमें अहिंसाव्रतका उपदेश वर्णन किया। अब सत्यमहाव्रतकूं तीस गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

परिहर असंतवयणं सव्वं पि चदुव्विधं पयत्तेण।

धत्तं पि संजमिंतो भासादोसेण लिप्पदि हु ॥८२९॥

अर्थ—भो मुने! 'असत्' जो अशोभन बुरा खोटा ऐसा वचनका प्रयत्नकरि त्याग करहु। जातें अतिशयकरि संयमकूं प्राप्त होतहू साधु च्यारिप्रकारकी दुष्टभाषाकरिके दोषनितें अत्यन्त लिप्त होय है। आगे च्यारिप्रकारका असत्यवचनकूं कहे हैं। गाथा—

पढमं असंतवयणं संभूदत्थस्स होदि पडिसेहो।

णत्थि णरस्स अकाले मच्चुत्ति जधेवमादीयं ॥८३०॥

अर्थ—जो विद्यमान पदार्थका प्रतिषेध करना सो प्रथम असत्य है। जैसे कर्मभूमिका मनुष्यके अकालमें मृत्युका निषेध करना इत्यादिक प्रथम असत्य है। भावार्थ—देव, नारकी तथा भोगभूमिका मनुष्य, तिर्यंच इनिके तो आयुका बीच में भंग नहीं होय है। जितनी आयुकी स्थिति बांधिकरि उपज्या तितनी आयु भोगि चुक्याही मरण होय है। अर कर्म-भूमिका मनुष्य तथा तिर्यंचनिकी आयु बाह्यनिमित्तका वशथकी छिदिजाय है। सोही गोमट्टसार ग्रन्थमें कह्या है। गाथा—विसवेयणरत्तक्खय–भयसत्थग्गहणसंकिलेसेहिं। उस्सासाहाराणं णिरोहदो छिज्जदे आऊ ॥क.५७॥ अर्थ—विषभक्षणकरि तथा मारण, ताडन, छेदन, बंधनरूप वेदनाकरि तथा रोगजनितवेदनाकरि, तथा देहथकी रुधिरका नाश होनेकरि, तथा मनुष्य तिर्यंच दुष्टदेव वा अचेतन वज्रपातादिकनितें उपज्या भयकरिके, तथा शस्त्रके घातकरि, तथा अग्नि पवन जल कलह विसंवाद इत्यादिजनित संक्लेशकरि, तथा श्वासोछ्वासका रुकनेकरि, तथा आहारपानादिकका निरोधकरि आयुका छेदन होय है–नाश होय है, आयुकी दीर्घ स्थितिभी होय तो इतने बाह्यनिमित्तनितें छिदि जाय है।

कितनेक लोक ऐसे कहे हैं–आयुका स्थितिबंध किया, सो नहीं छिदे है। तिनकूं उत्तर कहे हैं–जो आयु नहींही छिदता तो विषभक्षणतें कौन पराङ्मुख होता ? अर उखाल विषपरि किस वास्ते देते ? अर शस्त्रका घाततें भय कौन वास्ते करते ? अर सर्प, हस्ती, सिंह दुष्टमनुष्यादिकनिकूं दूरिहीतें कैसे परिहार करते ? अर नदी, समुद्र, कूप, वापिका तथा अग्निकी ज्वालामें पतनतें कौन भयभीत होता ? जो आयु पूर्ण हुवा विना तो मरणही नहीं तो रोगादिकका इलाज काहेकूं करते ? तातें यह निश्चय जानहु–जो आयुका घातका बाह्यनिमित्त मिलि जाय, तो तत्काल आयुका घात होयही जाय, इंमें संशय नहीं है। बहुरि आयुकर्मकीनांई अन्यकर्मभी जो बाह्यनिमित्त परिपूर्ण मिलि जाय, तो उदय होयही जाय। निंब भक्षण करे ताके तत्काल असातावेदनीय उदय आवे है, मिश्री इत्यादिक इष्टवस्तु भक्षण करे ताके साता-वेदनीय उदय आवेही है। तथा वस्त्रादिक आडे आजाय चक्षुद्वारे मतिज्ञान रुकि जाय, कर्णमें डाटा देवे तो कर्णद्वारे मति-ज्ञान रुकि जाय, ऐसेही अन्यइन्द्रियनिके द्वारे ज्ञान रुकेही है। विषादिकद्रव्यतें श्रुतज्ञान रुकिजाय है। भेंसको दही, लशुन खलि इत्यादिक द्रव्यके भक्षणतें निद्राकी तीव्रता होयही है। कुदेव कुधर्म कुशास्त्रकी उपासनातें मिथ्यात्वकर्मका उदय आवेही है। कषायनिके कारण मिले कषायनिकी उदीरणा होवेही है। पुरुषका शरीरकूं तथा स्त्रीका शरीरकूं स्पर्शन-दर्शनादिककरि वेदकी उदीरणातें कामकी वेदना प्रज्ज्वलित होयही है। अरतिकर्मकूं इष्टवियोग, शोककर्मकूं सुपुत्रादिक का मरण इत्यादिक कर्मका उदय उदीरणादिकनिकूं करेही है।

तातैं ऐसा तात्पर्य जानना—इस जीवके अनादिका कर्मसंतान चल्या आवे है, अर समय समय नवीननवीन बंध होय है, अर समय समय पुरातनकर्म रस देय देय निर्जरै है। सो जैसा बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भाव मिलि जाय, तैसा उदयमें आजाय, तथा उदीरणा होय उत्कट रस देवे। अर जो कोऊ या कहै, 'कर्म करेगा सो होयगा' तो कर्म तो या जीवके सर्व ही पापपुण्यरूप सत्तामें मौजूद तिष्ठे है। जैसा जैसा बाह्यनिमित्त प्रबल मिलेगा, तैसा तैसा उदय आवेगा, अर जो बाह्यनिमित्त कर्मका उदयकूं कारण नहीं होय तो, दीक्षा लेना, शिक्षा देना, तपश्चरण करना, सत्संगति करना, वाणिज्य-व्यवहार करना, राजसेवादिक करना, खेती करना, औषधिसेवन करना इत्यादिक सर्वव्यवहारका लोप हो जाय। तातैं ऐसे भगवानका परमागमसूं निश्चय करना "जो आयुकर्मका परमाणु तो साठि बरसपर्यन्त समय समय उदय आवाजोग्य निषेकनिमें बाटानैं प्राप्त भया होय अर बीचिमें बीसवर्षकी अवस्थाहीमें जो विषशस्त्रादिकका निमित्त मिलि जाय तो चालीस वर्षपर्यन्त जो कर्मका निषेक समय समय निर्जरता सो अन्तर्मुहूर्तमें उदीरणानैं प्राप्त होय इकट्ठा नाशनैं प्राप्त होय, सो अकालमरण है", जातैं निर्जराका अवसर तो निषेकनिका समय समयमें था, अर सर्व चालीस वर्षमें निर्जरने योग्य आयु के निषेक का अन्तर्मुहूर्तमें निर्जरानैं प्राप्त हुवा, तातैं अकालमरण है। सो बाह्य निमित्त मिले कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिके अकालमृत्यु होय है, अर कोऊ ताका निषेध करे तो सत्यार्थका निषेध करना नामा पहला असत्य जानना। गाथा—

अहवा सयबुद्धीए पडिसेधो खेत्तकालभावेहिं।
अविचारिय णत्थि इह घडोत्ति जह एवमादीयं ॥८३१॥

अर्थ—अथवा द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकरि विनाविचारचा आपकी बुद्धिकरिके वस्तुका निषेध करिये सो प्रथम असत्य है। जैसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावनिकरि बिनाविचारे कहना, जो, 'इहां घट नहीं है' इत्यादिककीनांई। भावार्थ—वस्तु का निषेध तथा विधि जो है सो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षातैं होत है। वस्तुका सर्वथा निषेध नहीं, सर्वथा विधि नहीं। जो वस्तु है सो अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षा अस्तिरूप है अर परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षा नास्तिरूप है। जो परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षाहू अपना अस्तित्व होय, तौ पर अर आप एक होजाय। अर जो अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षाहू नास्तिरूप होय, तो वस्तुका अभाव हो जाय। जैसे घट अपने द्रव्य अपेक्षा अस्तिरूप है अर अन्य-घटनिकी अपेक्षा नास्तिरूप है। आप जो क्षेत्रमे तिष्ठे है, ता क्षेत्रमे अस्तिरूप है अर अन्यघटनिका क्षेत्रमें नास्तिरूप है;

आप जा कालमें है, ता कालमे अस्तिरूप है अर अन्यकालमें नास्तिरूप है । जो घट जिसस्वभावकरि तिष्ठे है, तिसस्वभाव करि अस्तिरूप है अर अन्यघटादिकनिके स्वभावकरि नास्तिरूप है । गाथा—

जं असभूदुब्भावणमेदं विदियं असंतवयणं तु ।
अत्थि सुराणमकाले मच्चुत्ति जहेवमादीयं।।८३२।।

अर्थ—जो असद्भूतका प्रकट करना सो द्वितीय असत्यवचन है । जैसे, देवनिके अकालमें मृत्यु होय है इत्यादिक कहना । भावार्थ—देवनिकी आयुकी स्थिति जितनी बांधी होइ, तितनी पूर्ण हुवा मृत्यु होय है । अर कोऊ देवनिकी आयु छिदि अर अकालमें मृत्यु कहे, तो यह असत्का प्रकट करनेरूप दूसरा असत्य कह्या । गाथा—

अहवा जं उब्भावेदि असन्तं खेत्तकालभावेहिं ।
अविधारिय अत्थि इह घडोत्ति जह एवमादीयं ।।८३३।।

अर्थ—अथवा जो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावनिकरि विनाविचारया अविद्यमानवस्तुकूं प्रकट करना, सो दूसरा असत्य-वचन है । जैसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावनिकरि विनासमझ्या इहां घट है—ऐसे कहना इत्यादिककीनांई औरहू बहुत प्रकार असत्य जानना । गाथा—

तदियं असंतवयणं सन्तं जं कुणदि अण्णजादीगं ।
अविचारित्ता गोणं अस्सोत्ति जहेवमादीय ।।८३४।।

अर्थ—जो विद्यमानवस्तुकूं अन्यजातिरूप कहना, सो तीसरा असत्यवचन है । जैसे विनाविचारया गौ जो बलध ताकूं अश्व कहना इत्यादिक जानना । अब चतुर्थ असत्यवचनकूं कहे हैं । गाथा—

जं वा गरहिदवयणं जं वा सावज्जमंजुदं वयणं ।
जं वा अप्पियवयणं असत्तवयणं चउत्थं च ।।८३५।।

अर्थ—जो गर्हितवचन होय अर जो सावद्यसंयुक्त वचन होय अर जो अप्रियवचन होय, सो चतुर्थ असत्यवचन है । अब गर्हितवचनका स्वरूप कहे हैं । गाथा—

व.
रा.

कक्कस्सवयणं णिठ्ठुरवयणं पेसुण्णहासवयणं च।
जं किंचि विप्पलावं गरहिदवयणं समासेण ॥८३६॥

अर्थ—इहां गर्हितवचनका संक्षेप कहे हैं। कर्कशवचन, तथा निष्ठुरवचन, पैशून्यवचन, हास्यवचन औरभी जो वाचालपणाकरिके प्रलाप सो गर्हितवचन है। तिनिमें तू मूर्ख है! तू बलध है! तू ढांढा है! रे मूढ, तू किंचितूहू नहीं जानै! इत्यादिक संतापका उपजावनहारा जो वचन, सो कर्कशवचन है। बहुरि जो ऐसे कहे, मैं तोकूं मारि नाखिस्यूं! तेरा मस्तक छेदन करस्यूं! तेरा नाक काटिस्यूं! तेरा नेत्र उपाडि लेस्यूं! तेरा बहोत बुरी ताडनाकरि बेहवाल करस्यूं तथा करावस्यूं। इत्यादिक निष्ठुरवचनकी जाति है। बहुरि परके दोष पूठि पाछैं भूंठे सांचे प्रकट करवो तथा जिस वचनतें परका जीवितधनादिकका नाश होजाय वा जगतमें निंद्य होजाय, कलंक चढिजाय, अपवाद होजाय सो सर्व पैशून्य नामा गर्हित वचन है। बहुरि जो हास्यनें लिया वचन तथा भंडवचन तथा आपके परके कुशीलमें राग उपजावनहारा वचन तथा सर्वसभानिवासीनिके परिणाम रागभावकी उत्कटतानें प्राप्त हो जाय जिसवचनतें, सो हास्यवचन है। बहुरि जो वृथा बकवादनें लिया प्रयोजनरहित जैसे तैसे विचाररहित अतिवाचालतानें लिया जो वचन सो विप्रलाप नामा गर्हितवचन है। अब सावद्यवचन कहे हैं। गाथा—

जत्तो पाणवधादी दोसा ज यन्ति सावज्जवयणं च।
अविचारित्ता थेणं थेणत्ति जहेवमादीयं ॥८३७॥

अर्थ—जिस वचनकरि प्राणीनिका घात होजाय, देशमें उपद्रव होजाय, देश लुटि जाय, देशका अधिपतिनिके महावैर प्रकट होजाय तथा जा वचनकरि वनमें अग्नि लगि जाय, गांव बलि जाय, घरमे अग्नि लगिजाय वा कलह विसंवाद प्रकट होजाय तथा युद्ध होय, मारना मरना प्रकट होजाय वा छह कायका जीवनिका घात होजाय, महा आरंभमें प्रवृत्ति होजाय, सो सपूर्ण सावद्यवचन है। जैसे विनाविचारचा कोई पुरुषकूं यो 'चोर है चोर है' इत्यादिक कहना सो सावद्यवचन है। अब अप्रियवचनका स्वरूपकूं कहे हैं। गाथा—

परुसं कडुयं वयणं वेरं कलहं च जं भयं कुणइ।
उत्तासणं च हीलणमप्पियवयणं समासेण ॥८३८॥

अर्थ—जो वचन परुष कहिये कठोर होइ, बहुरि कर्णनिकूं तथा मनकूं कटुक होय, तथा जिस वचनतें बडा वैर होजाय–जो बहुतजन्मतांईहू नहीं छूटै, बहुरि जा वचनतें तत्काल कलह प्रकट होजाय, जायकी दुर्वचन प्रकट होय, मारामारी प्रकट होय, सो कलहकारी वचन है। बहुरि जा वचनकरि परजीवनिके भय उपजि आवै, बहुरि जा वचनकरि मरणतेंहू अधिक क्लेश होजाय, सुणिकरि विषभक्षण करि मरिजाय, शस्त्रघात करि मरिजाय, जलमें डूबि मरिजाय ऐसा उत्त्रासनवचन है। बहुरि जिस वचनतें तिरस्कार होजाय, अपमान होजाय, ये सर्व संक्षेपथकी अप्रियवचनके भेद हैं।

जातें कर्कश, कटुक, परुष, निष्ठुर, परकोपिनी, मध्यकृशा, अभिमानिनी, अनयंकरी, छेदंकरी, भूतवधकरी ये दश प्रकारकी महानिंद्य पापके करनेवाली भाषा त्यागनेयोग्य है। तिनमें जो, 'तू मूर्ख है! बलद है! ढोर है! रे मूर्ख, तू कछूही समझै नहीं! पशुसमान है!" इत्यादिक संतापका उपजावनेवाली कर्कशभाषा है ॥१॥ बहुरि तू कुजाति है, नीच जाति है, अधर्मी है, महापापी है, स्पर्शन करनेयोग्यहू नहीं इत्यादिक उद्वेग करनेवाली जो भाषा, सो कटुकभाषा है ॥२॥ बहुरि तू अनेक देशदुष्ट है, तू आचारतें पराङ्मुख है, भ्रष्टाचारी है इत्यादिक मर्मकूं छेदनेवाली परुषभाषा है ॥३॥ मैं तोकूं मारि नाखिस्यूं! थारो मस्तक काटिस्यू! थारो नाक काटिस्यूं! थारे डाह देस्यूं! इत्यादिक निष्ठुर भाषा है ॥४॥ बहुरि कहै, जो, रे निर्लज्ज! तेरा कहा तप है! रे कुशील! तेरे काहेका शील? तू रागी है, तू हंसने जोग्य है, जगतनिंद्य है, तू अभक्ष्यभक्षण करनेवाला, तेरा नाम लीयां सर्व कुल लज्जित होय है! इत्यादिक कोप करानेवाली जो भाषा, सो परकोपिनी भाषा है ॥५॥ जिस निष्ठुरवाणीकरि हाडांका मध्यभाग छेद्या जाय, सुणतप्रमाण हाडनिकी शक्ति नष्ट हो जाय, सो मध्यकृशा भाषा है ॥६॥ बहुरि लोकमें अपने गुण प्रकट करना अर परके दोष भाषण करना अर कुल जाति रूप बल ऐश्वर्य विज्ञानादिकका मद लिये जो वचन बोलना, सो अभिमानिनी भाषा है ॥७॥ बहुरि शील खंडन करनेवाली अर विद्वेष करनेवाली भाषा, सो अनयंकरा भाषा है ॥८॥ बहुरि जो वीर्य शीलगुणादिकनिके निर्मूल करनेवाली अर असद्भूत कहिये असत्यदोष प्रकट करनेवाली छेदकरी भाषा है ॥९॥ बहुरि जिसवाणीकरि प्राणीनिके अशुभवेदना वा प्राणनिका नाश होजाय, सो सर्व अनिष्ट करनेवाली भूतवधंकरी भाषा है ॥१०॥ ऐसे दशप्रकारकी भाषा प्राणनिको अन्त होतेहू नहीं बोलनेयोग्य है, सर्वपापनिकी खानि है, अर परकूं दुःख देनेवाली है, तातें ज्ञानीनिके त्यागने योग्य है।

बहुरि स्त्रीनिके शृङ्गार हावभाव विलास विभ्रमरूप क्रीडा व्यभिचारादिकनिकी कथा, कामको जगावनेवाली,

ब्रह्मचर्यका नाश कनेवाली स्त्रीनिकी कथा, तथा भोजनपानमें राग करावनेवाली भोजनकथा, तथा रौद्रकमंतें उपजी रौद्रध्यानके करावनेवाली राजकथा, तथा चौरनिकी कथा, तथा मिथ्यादृष्टि कुलिंगीनिकी कथा, तथा धन उपार्जन करनेकी कथा, तथा वैरी दुष्टनिका तिरस्कार करनेकी कथा, तथा हिंसाके प्रेरक कुशास्त्रनिकी कथा सर्वथा करनेजोग्य नहीं, श्रवण करनेजोग्य नहीं, महान् पापास्रवका करनेवाली अप्रियभाषा है, सो त्यागने योग्य है। अब च्यारि प्रकारके असत्यवचनकू त्यागरूप कहे हैं। गाथा—

हासभयलोहकोहप्पदोसादीहिं तु मे पयत्तेण।
एवं असन्तवयणं परिहरिदव्वं विसेसेण ॥८३९॥

अर्थ—भो ज्ञानी हो! हास्यकरि, भयकरि, लोभकरि, क्रोधकरि, द्वेषकरिके ए च्यारिप्रकार असत्यवचन तुम मति कहो; विशेष यत्नकरि इनका त्याग करहू। अब सत्य बोलनेकू प्रेरणा करे हैं। गाथा—

तव्विवरीदं सव्वं कज्जे काले मिदं सविसए य।
भत्तादिकहारहियं भणाहि तं चेव सुयणाहि ॥८४०॥

अर्थ—भो मुने! तुमारे कोऊ ज्ञानचारित्रादिकको शिक्षारूप कार्य होय, तथा आवश्यकके कालविना कोऊ धर्मका अवसर होय तुमारे ज्ञानका कोऊ विषय होय, तो तिस अवसरमे सत्यवचनकू कहो। कैसाक है सत्यवचन? पूर्वे कहे जे च्यारिप्रकारके असत्य, तातें अपूठा है। अर भोजनकथा, राजकथा, स्त्रीकथा, देशकथा इत्यादिक विकथाकरि रहित वचन होय, ताहि तुम प्रयोजनके वशतें कहो। अर विकथादिकरहित सत्यही श्रवण करो। धर्मरहित असत्य निष्प्रयोजन वचन मति कहो। अर कदाचित् ही श्रवण मति करो। गाथा—

जलचन्दणससिमुत्ताचन्दमणी तह णरस्स णिव्वाणं।
ण करन्ति कुणइ जह अत्थज्जुयं हिदमधुरमिदवयणं ॥८४१॥

अर्थ—जैसे या जीवकू हितरूप अर अर्थसंयुक्त मिष्टवचन सुख करे है—निराकुल, सांसारिक आतापके दुःखरहित करे है, तैसे जल, चन्दन, चन्द्रमा, मोतीनका हार, चन्द्रकांतमणि अन्तरगत आताप हरि सुख नहीं करे है। भावार्थ—जलचन्दनादिकनिकू आतापहारी कहे हैं, परन्तु जैसे सत्यवचन आताप हरे; तैसे नहीं हरे है। गाथा—

अण्णस्स अप्पणो वा विधम्मिए विद्दवंतए कज्जे ।
जं अ पुच्छिज्जंतो अण्णेहिं य पुच्छिओ जंप ।।८४२।।

अर्थ—भो मुने ! जो बोलेबिना अन्य जीवनिका वा आपका धर्मरूप कार्य बिनशता होय तो बिना पूछेही बोलना उचित है । अर अन्यकार्यनिमें कोऊ पूछे तो बोलना सोहू अन्य आपका हित होता जानें तो बोले, बोलनेमे धर्म मलिन होजाय तो नहीं ही बोले । गाथा—

सच्चं वदन्ति रिसओ रिसीहिं विहिदाउ सव्व विज्जाओ ।
मिच्छस्स वि सिज्झन्ति य विज्जाओ सच्चवादिस्स ।८४३।

अर्थ- -ऋषि जे यति हैं ते सत्यही कहत हैं । ऋषिनिकरि कही सर्व विद्या सत्य बोलनेवाला म्लेछहूके सिद्ध होय है । भावार्थ—जिस विद्याका देनेवालाहू सत्यवादी होय अर ग्रहण करनेवालाहू सत्यवादी होय, तो वा विद्यासिद्धि होय ही, यामें संशय नहीं । गाथा—

ण डहदि अग्गी सच्चेण णरं जलं च तं ण बुड्डेइ ।
सच्चबलियं खु पुरिसं ण वहदि तिक्खा गिरिणदी वि ।८४४

अर्थ—सत्यका प्रभावकरि मनुष्यनें अग्नि दग्ध नहीं करे है, जल नहीं डबोय सके है, सत्यकरि जो पुरुष बलवान् है ताहि तीव्रवेगसहित पर्वततें पडती नदीहू बहाय नहीं सके है । गाथा—

सच्चेण देवदावो णवन्ति पुरिसस्स ठन्ति य वसम्मि ।
सच्चेण य गहगहिदं मोएइ करेन्ति रक्खं च ।।८४५।।

अर्थ—सत्यका प्रभावकरि पुरुषकूं देवता नमस्कार करत हैं, सत्यकरिके पुरुषके देवता वशीभूत होय हैं, सत्यही पिशाचकरि ग्रहण किया पुरुषकूं छुडावत है, सत्यही पुरुषकी रक्षा करत है गाथा—

माया व होइ विस्ससरिगज्ज पुज्जो गुरुव्व लोगस्स ।

पुरिसो हु सच्चवादी होदि हु सरिगयल्लओव्व पिओ ।८४६।

अर्थ—सत्यवादी पुरुष लोकनिके माताकीनांईं विश्वास करनेयोग्य होय है, गुरुकी नांईं पूज्य होय है, मित्र-बांधवनिकी नांईं प्रिय होय है । गाथा—

सच्चं अदगददोसं वुत्तूरग जरगस्स मज्झयारम्मि ।

पीदिं पावदि परमं जसं च जगविस्सुदं लहइ ।।८४७।।

अर्थ—दोषनिकरि रहित सत्य कहिकरिके लोकनिके मध्य उत्कृष्ट प्रीतिकूं प्राप्त होय है, अर जगतमें विख्यात ऐसा जसकूं प्राप्त होय है । गाथा–

सच्चम्मि तवो सच्चम्मि संजमो तह वसे सया वि गुरगा ।

सच्चं रिगबंधरगं हि य गुरगारगमुदधीव मच्छारगं ।।८४८।।

अर्थ—सत्यही परमतप है, सत्यहीमें संयम तथा अन्य समस्तगुरग वसै हैं । जैसे मत्स्यनिके वसनेका आधार समुद्र है, तैसे संपूर्ण गुरगनिके वसनेकूं आधार सत्य है ।

सच्चेरग जगे होदि पमाणं अण्गो गुरगो जदि वि से रगत्थि ।

अदिसंजदो य मोसे रग होदि पुरिसेसु तरगलहुओ ।।८४९।।

अर्थ—जो अन्यगुरगरहितहू होइ तोहू सत्यकरिके जगतमें पुरुष प्रमारग करनेयोग्य होय है । अर मृषा जो असत्य ताकरिके, अतिसंयमीहू लोकनिमें तृरगसमान लघु होय है । गाथा––

होदु सिहंडी व जडी मुंडो वा रगग्गओ व चीवरधरो ।

जदि भरगदि अलियवयणं विलंबरगा तस्स सा सव्वा ।८५०।

अर्थ—शिखावान् होहू वा जटा धारण करहु वा मूंड मुडावहु, नग्न रहो वा अनेक वस्त्र धारण करहू जो असत्य-वचन बोले है, तो ताकी सर्व बाह्यक्रिया विडंबनारूप है । गाथा—

जह परमण्णस्स विसं विणासयं जेह व जोव्वणस्स जरा ।
तह जाण अहिंसादी गुणाण य विणासयमसच्चं ॥८५१॥

अर्थ—जैसे उत्कृष्ट भोजनकूं विष विनाश करे है, विषका मिलावनेकरि मिष्टहू भोजन विषरूप होय है, तथा जैसे जरा यौवनका नाश करे है; तैसे असत्य अहिंसादिक सर्वगुणनिका नाश करनेवाला जानहु । गाथा—

मादाए वि य वेसो पुरिसो अलिएण होई इक्केण ।
किं पुण अवसेसाणं ण होइ अलिएण सत्तुव्व ॥८५२॥

अर्थ—यो पुरुष एक असत्यकरिके माताकेहू द्वेष जो अविश्वास करनेयोग्य होय है, तो असत्यकरिके अन्यलोकनिके शत्रुकीनाईं द्वेष करनेयोग्य नहीं होय है कहा ? होयही है । गाथा—

अलियं स किं पि भणिदं धादं कुणदि बहुगाण सव्वाणं ।
अदिसंकिदो य सयमवि होदि अलियभासणो पुरिसो ।८५३।

अर्थ—एकबारहू असत्य भण्या हुवा बहुत सत्यवचननिको नाश करे है । अर झूंठ वचन बोलनेवाला पुरुष आपहू अतिशंकित होय है । गाथा—

अप्पच्चओ अकित्ती भंभारदिकलहवेरभयसोगा ।
वधबंधभेदणाणा सव्वे मोसम्मि सण्णिहिदा ॥८५४॥

अर्थ--असत्यवचनके एते दोष निकट बसे हैं—अप्रतीति होय है, झूंठेकी कोऊहीके प्रतीति नहीं आवे है । तथा अकीर्ति होय है, जातें झूंठेका जगतमें अपवादही होय है । बहुरि असत्यवचन होतें आपके तथा अन्यजीवनिके संक्लेश होय है । तथा झूंठेमें सबके अरति होय है । बहुरि झूंठ बोलनेतें कलह तथा वैर तथा भय तथा शोक प्रकट होय है ।

तथा झूंठा बोलनेवाला वध जो मरण, बन्धन जो नानाप्रकारका दुःखरूप बन्दीगृहमें बन्धनकूं प्राप्त होय है। बहुरि असत्यकरि मित्रादिकनिके प्रतीतिमें भेद होय तब प्रीतिभंग होयही। बहुरि असत्यवचनतें धनका नाश होय है। इत्यादिक बहुत दोष आवे हैं। गाथा—

पापस्सागमदारं असच्चवयणं भणन्ति हु जिणिंदा।
हिदएण अपावो वि हु मोसेण गदो वसू णिरयं ॥८५५॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् असत्यवचनकूं पाप आवनेका द्वार कहे हैं। देखहु! हृदयमें पापकरि रहितहू वसु नामा राजा झूंठ वचनकरिके नरकगमन करतो हुवो। गाथा—

परलोगम्मि वि दोस्सा ते चेव हवंति अलियवादिस्स।
मोसादीए दोसे जत्तेण वि परिहरन्तस्स ॥८५६॥

अर्थ—मोस जो चोरी इत्यादिक दोषनिकूं यत्नकरिके परिहार जो त्याग, ताहि करताहू असत्यवादीके जे पूर्वे दोष कहे, ते परलोकहूमें प्राप्त होय हैं। गाथा—

इहलोइय परलोइय दोसा जे होंति अलियवयणस्स।
कक्कसवदणादीण वि दोसा ते चेव णादव्वा ॥८५७॥

अर्थ—इस जन्मविषें अर परजन्मविषें जे दोष असत्यवादीके होय हैं, ते सर्वही दोष कर्कशवचनादिक बोलनेवालेहू को होय है, ऐसे जानना। गाथा—

एदेसिं दोसाणं मुक्को होदि अलिआदिवविदोसे।
परिहरमाणो साधू तव्विवरीदे य लभदि गुणे ॥८५८॥

अर्थ—असत्यवचनादिक दोषनिनें त्याग करतो जो साधु, सो जो ये असत्यवचनके दोष कहे, तिनकरि रहित होय है। अर इन दोषनितें विपरीत जे गुण तिनकूं प्राप्त होय है।

ऐसे अनुशिष्टि नामा महा अधिकारविषै सत्यमहाव्रतकी शिक्षा तीस गाथानिमें वर्णन करी । अब अचौर्य नामा व्रतका उपदेश चोईस गाथानिमें वर्णन करे हैं । गाथा—

मा कुणसु तुमं बुद्धि बहुमप्पं वा परादियं घेत्तुं ।
दंतंतरसोधणयं कलिदमेत्तं पि अविदिण्णं ॥८५९॥

अर्थ—भो साधो ! विनदिया परका अल्पद्रव्य वा बहुतद्रव्य दन्तनिकी संधिके सोधनेका तृणमात्रहीका ग्रहण करने में बुद्धि मति करहु । भावार्थ—परका विनादिया अल्पवस्तु वा बहुतवस्तु लेनेमें परिणाम स्वपनामेंहू मति करो । गाथा—

जह मक्कडओ धादो वि फलं दठ्ठूण लोहिदं तस्स ।
दूरत्थस्स वि डेवदि घित्तूण वि जइ वि छंडेदि ॥८६०॥
एवं जं जं पस्सदि दव्वं अहिलसदि पाविदुं तं त ।
सव्वजगेण वि जीवो लोभाइट्ठो न तिप्पेदि ॥८६१॥

अर्थ—जैसे धाप्या हुवाहू मर्कट कहिये वानर सो दूरि तिष्ठता वृक्षकेहू रक्त कहिये लाल पक्या हुवा फलकूं देखि-करिके ग्रहण करनेकूं दौडे है । यद्यपि ग्रहणकरिके छांडत है–भक्षण नहीं करे है, तोहू पक्वफलकूं देखि ग्रहण कीयेविना नहीं रह्या जाय है, तैसेही लोभाविष्ट जो लोभी जीव सोहू जिस जिस वस्तुकूं देखे है, सुणे है, ताहि ग्रहण करनेकूं प्राप्त होनेकूं अभिलाष करे है । अर सर्व जगत् प्राप्त होजाय तो ताकरिकेहू तृप्ति नहीं होय है । भावार्थ—जैसे वानर का ऐसा स्वभाव है, जो धापिकरिके सुखसूं तिष्ठताहू कोई अन्यवृक्षका पक्या हुवा फल दूरितैंहू देखे, तो दौडिकरिके तोड्या विना नही रहै । खाया नहीं जाय तोहू वृक्षथकी तोडिही नाखे । तैसे ससारी लोभी जीव धनसंपदाकरि भर्‍या हुवाहू अन्यका अन्यायधनहू ग्रहण करनेमें बडा उद्यम करे है । यद्यपि आपके जो धनसंपदा मोजूद है, ताहि भोगनेकू समर्थ नहीं है; अर अवस्थाहू गलि गयी है अर भोगनेकूं सामग्रीहू बहोत है, तथा आपके भोगनेवाला स्त्रीपुत्रादिककाहू मरण हो गया है, अर इन्द्रियांहू अपने अपने विषय ग्रहण करनेमेंही असमर्थ हो गई हैं; तथापि न्याय अन्याय परिग्रह ग्रहण करने में ही तथा दिन दिन बधावनेमेंही जतन करे है ! अर अनेक वस्तुनिका सग्रहही किया चाहे है ! तृप्ति नहीं होय है । गाथा

जह मारुवो पवट्टइ खणेण वित्थरइ अब्भयं च जहा ।

जीवस्स तहा लोभो मन्दो वि खणेण वित्थरइ ॥८६२॥

अर्थ—जैसे मन्दहु पवन एक क्षणमात्रकरि ऐसा बधै है सो सर्व आकाशमें विस्तर जाय, तैसे मन्दहू लोभ बधै है जो क्षणमात्रमें सर्वजगतकी संपदाके ग्रहण करनेमें व्याप्त होजाय । अब लोभ बधै तदि कहा दोष होय है, सो कहे हैं । गाथा—

लोभे य वड्ढिदे पुण कज्जाकज्जं णरो ण चिंतेदि ।

तो अप्पणो वि मरणं अगणिंतो साहसं कुणदि ॥८६३॥

अर्थ—बहुरि यो नर लोभकू बधता सन्ता 'यह करने योग्य है, यह नहीं करने योग्य है' या प्रकार कार्य अकार्यकूं नहीं चितवन करे है । ततः कहिये युक्त अयुक्तका विचारका अभावतै आपका मरणहूकूं नहीं गिणता महान् साहस करत है–चोरी करत है । भावार्थ—लोभ बधै तदि युक्त अयुक्तका विचार नष्ट होजाय है, यो विचार नहीं करे, जो "मैं कौन हूं ? मेरा कुल कौन है ? मेरा मातापितादिकनिकी कहा प्रतिष्ठा है ? इस मनुष्यजन्ममें यो अवसर पाय मोकूं कहा कार्य करना उचित है ? अर पापपुण्यका कहा फल है ? वा मैं लोभी होय कौन गतिकूं प्राप्त होऊंगा ! तथा जाका जस है, ताका जीवन सफल है, मैं अन्याय परका धन ग्रहणकरिके महा अपवाद कलंक अर जगतमे धिक्कार धिक्कार पाय नरकमें प्राप्त हूंगा !" इत्यादिक विचार नहीं करे है । अर लोभी हुवा परधनहरणादिक करि ऐसा कर्म करे है, जाकरि इस लोकहीमें "बन्दिगृह सेवना, नासिकाछेदन, सर्वस्वहरण, शूलारोपण, हस्तादिकछेदन" तीव्र दडन प्राप्त होय, मरणकरि नरकधरामें नाना प्रकारके वचनके अगोचर ऐसे असंख्यातकालपर्यन्त दुःख भोगि बहुरि अनन्तानन्तकालपर्यन्त त्रसस्थावरमें घोर दुःख भोगता अनन्तानन्त जन्ममरण करता परिभ्रमण करे है । गाथा—

सव्वो उवहिदबुद्धी पुरिसो अत्थे हिदे य सव्वो वि ।

सत्तिप्पहारविद्धो व होदि हियमंमि अदिदुहिदो ॥८६४॥

अत्थम्मि हिदे पुरिसो उम्मत्तो विगयचेयणो होदि ।

मरदि व हक्कारकिदो अत्थो जीवं खु पुरिसस्स ॥८६५॥

अर्थ--सर्वही लोक अर्थ जो धन तामें स्थायी है बुद्धि जाकी ऐसा है, सो धनकूं कोऊकरि हरते सन्ते जैसे हृदयमें शक्ति नामा आयुधका प्रहारकरि वेध्या पुरुषकीनांई अतिदुःखित होय है। बहुरि धनकूं हरता सन्ता पुरुष उन्मत्त होय है, बावला हुवा बकवाद करे है। वस्त्रादिकनिकी सुधि नहीं रहे है, तथा चेतना जो ज्ञानचेतना ताकरि रहित होय है, तथा हाय हाय करता महादुःखकरिके मरण करे है, तातें या पुरुषका धन है सो जीव है। जानें अन्यका धन हरचा तानें प्राण हरचा! प्राणहरणतैंहू धनहरणका तथा जीविकाहरणका दुःख बहोत होय है। गाथा--

अडईगिरिदरिसागरजुद्धाणि अडन्ति अत्थलोभादो।
पियबन्ध चेवि जीवं पि णरा पयहन्ति धणहेदुं ॥८६६॥

अत्थे सन्तम्मि सुहं जीवदि सकलत्तपुत्तसम्बन्धो।
अत्थं हरमाणेण व हिदं हवदि जीविदं तेसिं ॥८६७॥

अर्थ---ये मनुष्य धनके अर्थि महान् भयंकर सिंह, व्याघ्र, गज, सर्पादिकनिकी भरी हुई बनीमें प्रवेश करे है, तथा पर्वतनिकी भयंकर गुफानिमें प्रवेश करे है, तथा महाभयंकर समुद्र तथा शस्त्रांका संपातकरि जहां अनेक जोद्धानिके तथा हस्ती, घोडेनिके रुधिरके प्रवाहकरि अतिविषम जहां शस्त्रनिकरि अन्धकार हो रह्या ऐसा विषम संग्रामस्थानमें प्रवेश करे है! अपने प्राणनितें प्यारे स्त्री, पुत्र, मित्र, बांधवनिकूं छोडिकरि तथा अपने जीवनेकीहू आशा छोडिकरि बनी पर्वत गुफा नदी समुद्र संग्राम इत्यादिकनिमें प्रवेश करे है। जातें धन होता सन्ता स्त्रीपुत्रादिक कुटुम्बसहित सुख जैसे होय तैसे जीवे है। ऐसे महाक्लेशकरि उत्पन्न करिये ऐसे धनकूं जो चोरे है--लूटे है, सो महापापी परधनकूं हरनेवाला पुरुष अन्य जीवनिका सर्व कुटुम्बसहितका प्राण हरचा। भावार्थ--जिस महावनीमें तथा पर्वतादिकमें कोऊ जावनेकूं समर्थ नहीं तिस विषमस्थानमें कोऊ धन देने वाला होय तो अपने प्यारे स्त्री पुत्रादिकनिकूं त्यागकरि भयंकर स्थानमें प्रवेश करे है। अपने बालक तथा स्त्री तथा वृद्ध मातापितादिकनिकूं छोडि संकडा कोसां परे जहां अपना जातिकुलदेशका कोऊ दीखे नहीं ऐसा धर्मरहित म्लेछदेशनिमें धनके अर्थि बीस वर्ष पचीस वर्ष वसे है। जो कोऊप्रकार म्हारा कुटुम्बवास्ते धन कुमाय लेजाऊं। तथा सर्व प्यारे कुटुम्बके मनुष्य तथा स्त्रीपुत्रादिक धनकी आशाकरि आपके भर्ताकूं, पुत्रकूं, पिताकूं परदेशमें गमन करावे है! ऐसा धनकूं चोरनेवाला महान् दुष्टका पापकूं कौन वर्णन करिसके? वे सर्व कुटुम्बका प्राण हरनेहूतें अधिक पापाचरण किया--ग्रहण किया। गाथा--

चोरस्स णत्थि हियए दया च लज्जा दमो व विस्सासो ।

चोरस्स अत्थहेदुं णत्थि य कादव्वयं किं पि ॥८६८॥

अर्थ--चोरका हृदयमें दया नहीं है, जो दया होय तो ऐसा महान् घात कैसे करे ? चोरके लज्जा नहीं है, जो लज्जा होय तो ऐसा जगतके निंद्यकर्म कैसे करे ? चोरके इन्द्रियां वशीभूत नहीं, इन्द्रियां वशी होय तो आपके घातका कारण महानिंद्यकर्म कैसे करे ? चोरका विश्वास नहीं है, ऐसा घोरकर्म करे ताका कैसे विश्वास होय ? चोरके ऐसा जगतमें नहीं करने जोग्य कोऊही अधर्मकर्म विद्यमान नहीं है, ताहि धनके अर्थि चोर नहीं करे ! गाथा--

लोगम्मि अत्थि पक्खो अवरद्धन्तस्स अण्णमवराधं ।

णीयल्लया वि पक्खे ण होंति चोरिक्कसीलस्स ॥८६९॥

अण्णं अवरज्झन्तस्स दिंति णियये घरम्मि आवासं ।

माया वि य ओगासं ण देइ चोरिक्कसीलस्स ॥८७०॥

अर्थ--हिंसादिक अन्य अपराधकूं करनेवाला पुरुषका लोकमें कोऊ पक्ष करनेवाला होय है । अर चोरीका है स्वभाव जाका ऐसा चोरका माता, स्त्री, पिता, पुत्र, बांधवादिक कोऊही पक्ष करनेवाला नहीं होय है । बहुरि अन्य कोऊ अपराध किया होय, ताकूं तो कोऊ हितवान् मित्र बांधवादिक अपने गृहमें रहनेकूं अवकाश दे है । अर चोरी करनेवालेकूं अपनी माताहू अवकाश नहीं दे है । गाथा--

परदव्वहरणमेदं आसवदारं खु वेंति पावस्स ।

सोगरियवाहपरदारयेहिं चोरो हु पापदरो ॥८७१॥

अर्थ--शिकारीनितै तथा वधिकनितै तथा परस्त्रीके लम्पटीनितैंहू परधन हरण करनेका पाप अधिकतर है । अर परद्रव्यका हरण कूं पापके आवनेका आस्रवद्वार कहे है । गाथा--

सयणं मित्तं आसयमल्लीणं पि य महल्लए दोसे ।

पाडेदि चोरियाए अयसे दुक्खम्मि य महल्ले ॥८७२॥

अर्थ—चोरी करता जो चोर, सो अपने स्वजनाकू, मित्राकू, समीप तिष्ठतेकू, स्थानकू महान् दोषनिमें पटकत है। तथा अपजसमें तथा महान् दुःखमें पटकत है। भावार्थ—चोरी करनेवालेका सर्व हितू, व्यवहारी, कुटुम्बी, पाडोसी महान् दोषमें, अपजसमें, दुःखमें पडत है। गाथा—

बन्धवधजादणाओ छायाघादपरिभवक्खयं सोयं।
पावदि चोरो सयमवि मरणं सव्वस्सहरणं वा ॥८७३॥

अर्थ—चोरी करनेवाला पुरुष बेडी, सांकल, खोडेनिके बन्धन तथा नानाप्रकारकी ताडना तथा तीव्र वेदनाकू प्राप्त होय है। तथा छाया जो शरीरकी कांति सोहू चोरकी बिगडि जाय है। जगतमें तिरस्कारकू प्राप्त होय है। चोर निरन्तर भयकू प्राप्त होय है। शोककूं प्राप्त होय है। स्वयमेव मरणकू प्राप्त होय है। तथा सर्व धन राजादिकनिकरि चोरका हरया जाय है। गाथा—

णिच्चं दिया य रत्तिं च संकमाणो ण णिद्दमुवलभदि।
तेण तओ समन्ता उव्विग्गमओ य पिच्छन्तो ॥८७४॥

अर्थ—चोर है सो उद्वेगने प्राप्त हुवा मृगकीनांई सर्वतरफ अवलोकन करता नित्य कहिये सासता शंका करता दिन वा रात्रिविषै निद्राकूं नहीं प्राप्त होय है। गाथा—

उन्दरकंदपि सद्दं सुच्चा परिवेवमाणसव्वंगो।
सहसा समुच्छिदभओ उव्विग्गो धावदि खलन्तो ॥८७५॥

अर्थ—चोर पुरुष उंदर जो मूसा ताकाहू शब्द श्रवणकरिके अर कम्पायमान है सर्व अंग जाका ऐसा शीघ्रही भयकरि उद्वेगकूं प्राप्त हुवा पडता गिरता दौडै है। भावार्थ—चोरकै निरन्तर भय रहै है मति कोऊ जाण जावो! मति कोऊ पकड ल्यो, मति कोऊ पकडनेकूं आया होय! ऐसा भयभीत हुवा मूसेके शब्द सुणिकरिहू बेहोश हुवा भागे है, गिरे है। गाथा—

धत्ति पि संजमन्तो घेत्तूण किलिदमेत्तमविदिण्णं ।

होदि हु तणं व लहुओ अप्पच्चइओ य चोरो व्व ॥८७६॥

अर्थ--अतिशयकरिके संयम पालतोहू साधु बिना दिया तृणमात्रहू ग्रहणकरिके तृणवत् लघु होय है, अर चौरकी-नाईं प्रतीतिरहित होय है । भावार्थ--अत्यन्त संयम पालतोहू साधु जो एक तृणभी विना दियो ग्रहण करे तो तृणहूतें अधिक निरादरयोग्य होय । जातें संयमी तो अचौर्यादिक व्रतथकी पूज्य है अर जब विना दिया ग्रहण किया तब चोरतें अधिकही भया । गाथा--

परलोगम्मि य चोरो करेदि णिरयम्मि अप्पणो वसदिं ।

तिव्वाओ वेदणाओ अणुभवहिदि तत्थ सुचिरंपि ॥८७७॥

अर्थ--बहुरि चोरी करनेवाला पुरुष परलोकमेंहू आपकी वसति नरकमें करे है । तिन नरकनिमे चिरकालपर्यंत तीव्र वेदनानिकूं अनुभवे है । गाथा--

तिरियगदीए वि तहा चोरो पाउणदि तिव्वदुक्खाणि ।

पाएण णीयजोणीसु चेव संसरइ सुचिरंपि ॥८७८॥

अर्थ--जैसे चोर नरकगतिमें तीव्र दुःख पावे है, तैसेही तिर्यंचगतिहूमें तीव्र दुःखनिनें प्राप्त होय है । अर चोरी करनेवाला बहोत असंख्यातकालपर्यंत नीचयोनि जो कूकर सूकर गर्दभ महिषादिक तथा विकलत्रयादिकनिकी योनिनिमें बाहुल्यपणाकरि परिभ्रमण करे है । गाथा—

माणुसभवे वि अत्था हिदा व तस्स णस्सन्ति ।

ण य से धणमुवचीयदि सयं च ओलट्टदि धणादो ॥८७९॥

अर्थ—बहुरि चोर कदाचित् मनुष्यभवहु पावे, तो मनुष्यभवहूमें ताका धन कोऊ करि हरया हुवा वा विनाहरया नाशकूं प्राप्त होय है । अर ताका धन संचयकूं प्राप्त नहीं होय । अर जहां धन होय, तहांतें आप स्वयमेव दूरि निकसि जाय है ! चोरी करनेका बडा घोर दुःख होना अनेक जन्मनिमें ऐसा फल है । गाथा--

परदव्वहरणबुद्धी सिरिभूदी णयरमज्झयारम्मि ।
होदूण हदो पहदो पत्तो सो दीहसंसारं ॥८८०॥

अर्थ—परका धन हरनेकी है बुद्धि जाकी ऐसा श्रीभूति नामा राजाका पुरोहित, सो नगरके मांहिही नानावेदनाकरि ताडित तथा प्रहत कहिये नाना त्रासनितें मरिकरिके दीर्घ संसारपरिभ्रमणनैं प्राप्त होत भयो । गाथा—

एदे सव्वे दोसा ण होंति परदव्वहरणविरदस्स ।
तव्विवरीदा य गुणा होंति सदा दत्तभोइस्स ॥८८१॥

अर्थ—अर जो परद्रव्यहरणका त्यागी है ताके एते सकलही दोष नहीं होय हैं । जो परका दिया हुवा भोगै ताके पूर्वे जो चोरके दोष कहे तिसतें उलटे गुणही सदा होत हैं । गाथा—

देविंदरायगहवइदेवदसाहम्मि उग्गहं तम्हा ।
उग्गहविहिणा दिण्णं गेण्हसु सामण्णसाहणयं ॥८८२॥

अर्थ—तातें देवेन्द्र, राजा, गृहपति, साधर्मी देवतानिका परिग्रह अवग्रह कहिये देने योग्य विधि करिके दीयाहू मुनिपणाके योग्य, ज्ञान अर संयमका साधन होय सो ग्रहण करहू । भावार्थ—जो ग्रहण करो, सो विधिकरि दिया ग्रहण करहू । अर दिया हुयाहूमें जिसतें सम्यग्ज्ञान बधै तथा संयम वृद्धिकूं प्राप्त होय, सोही ग्रहण करो । संयमकूं मलिन करनेवाला कोटि आग्रहतें दिया हुवाहू ग्रहण मति करो ।

ऐसे अनुशिष्टि नामा महाधिकारविषै अचौर्यमहाव्रतका वर्णन चोईस गाथानिमें कह्या । अब दोयसे इकतालीस गाथानिमें ब्रह्मचर्य नामा महाव्रतका वर्णन करे हैं । तिनमें पांच गाथानिमें सामान्यब्रह्मचर्यकूं उपदेशे हैं । गाथा—

रक्खाहि बंभचेरं अब्बम्भे दसविधं तु वज्जित्ता ।
णिच्चं पि अप्पमत्तो पंचविधे इत्थिवेरग्गे ॥८८३॥

अर्थ—भो मुने ! दशप्रकारका अब्रह्मकूं वर्जनकरिके अर ब्रह्मचर्यकी रक्षा करहू । अर पंचप्रकारकरिके स्त्रीनितें वैराग्य होनेविषै नित्यही प्रमादी मति होहू । अब सो ब्रह्मचर्य पालनेयोग्य कहा है ? सो कहे हैं । गाथा—

जोवो बम्भा जीवम्मि चेव चरिया हविज्ज जा जदिणो ।

तं जाण बंभचेरं विमुक्कपरदेहतित्तिस्स ॥८८४॥

अर्थ--ज्ञानदर्शनादिरूपकरि जो वृद्धिकूं प्राप्त होय, सो ब्रह्म है । सो इहां जीवकूं ब्रह्म कहिये है । सो पर जो देह, तामें प्रवृत्तिकरि रहित जो यति, ताको जो जीवमें चर्या प्रवृत्ति सो ब्रह्मचर्य है । भावार्थ--जीवकूं ब्रह्म कहिये है, ब्रह्म नाम जीवका है । सो अपने अर पर‌के शरीरादिकनिमें प्रवृत्तिकूं त्यागिकरिके अर शुद्धज्ञान-शुद्धदर्शनादिक स्वभावरूप जो आपका आत्मा, तामें जो चर्या कहिये प्रवृत्ति, ताहि ब्रह्मचर्य कहिये हैं । अनादिकी पर वस्तु जो अपना परका शरीर तथा धनधान्यक्षेत्रकुटुम्बादिकनिमें आत्माकी प्रवृत्ति लगि रही है अर जब परमें प्रवृत्ति छूटि अपना जानन-देखनभाव है तामें प्रवृत्ति करना सोही ब्रह्मचर्य है । तातें अन्य जो देहादिक तामें ममत्व त्यागि जैनका यति ब्रह्म जो आत्मा तामें प्रवृत्ति करे है । परके शरीरमें मनवचनकायकरि प्रवृत्तिका त्याग जाके होय, ताके ब्रह्मचर्य होय है । दशप्रकारका अब्रह्मका त्यागतें दशप्रकार ब्रह्मचर्य होय है । तातें अब्रह्मचर्यके दश भेदनिकूं कहे है । गाथा—

इत्थिविसयाभिलासो वत्थिविमोक्खो य पणिदरससेवा ।

संसत्तदव्वसेवा तदिंदियालोयणं चेव ॥८८५॥

सक्कारो संकारो अदीदसुमरणमणागदभिलासे ।

इट्ठविसयसेवा वि य अब्बभं दसविहं एदं ॥८८६॥

एवं विसग्गिभूदं अब्बंभं दसविहंपि णादव्वं ।

आवावे मधुरम्मिव होदि विवागे य कडुयदरं ॥८८७॥

अर्थ--स्त्री सम्बन्धी जे इन्द्रियविषय, तिनिका अभिलाष सो स्त्रीविषयाभिलाष है । स्त्रीनिके सुन्दर नेत्र, मुख, ग्रीवा, बाहू, कुच, उदर, नितम्ब, तथा आभरण, वस्त्र, हावभाव, विलास, विभ्रम इत्यादिकके देखनेमें अभिलाष; तथा तिनके सुन्दर मिष्टवचन, तथा शृङ्गाररसके भरे सुन्दरगीत सुननेमें अभिलाष; तथा स्त्रीनिके कोमल अंगके स्पर्शन करनेमें अभिलाष; तथा अधररसका पान करनेमे अभिलाष; तथा स्त्रीनिके मुखादिकनितें उपज्या गंध, तथा अतर फुलेल

इत्यादिककरि जो उपज्या गन्ध, ताके सूंघनेमें अभिलाष, इत्यादिक स्त्रीसम्बन्धी पंच इन्द्रियनिका विषयमें अभिलाष सो *स्त्रीविषयाभिलाष नामा प्रथम अब्रह्म है । जातै स्त्रीका देखना भोगना इत्यादिक विषय तो भोगांतराय नामा कर्मका* क्षयोपशमके आधीन है, आपके आधीन ही नहीं । परन्तु स्त्रीनिके देखने स्पर्शनेका अभिलाषही ब्रह्मचर्य नामा व्रतका नाश करि अब्रह्म नामा दोषकूं प्रकट करि दुर्गतिका कारण कर्मबन्ध करे है ॥१॥

बहुरि कामकरि विकारी पुरुषके जो वीर्यका मोचन होना सो वस्तिविमोक्ष नामा अब्रह्म है ॥२॥

बहुरि कामविकारके उपजावनेवाले जे पुष्टरस तथा मद करनेवाली वस्तु जिनके भक्षण करनेतैं कामोद्दीपन हो जाय वा अतिलंपटता बधिजाय सो प्रणीतरससेवन नामा अब्रह्म है । जातै स्त्रीसंगविनाही इन पुष्टरसनिका भोजन ब्रह्मचर्यका घात तो करेही है । याकूं वृष्याहारसेवनहु कहे हैं ॥३॥

बहुरि स्त्रीनिकरि तथा कामीपुरुषनिकरि संसक्त कहिये सम्बन्धनै प्राप्त हुवा शय्या तथा आसन, महल, मकान, बाग तथा कामीनिके पहननेजोग्य विकाररूप वस्त्राभरण तिनकूं जो सेवना, सो संसक्तद्रव्यसेवन नामा अब्रह्म है ॥४॥

बहुरि साक्षात् स्त्रीनिका रागभावकरि, प्रीतिपरिणामकरि अवलोकन करना, सो इन्द्रियावलोकन नामा अब्रह्म है ॥ ५ ॥

बहुरि स्त्रीनिका सत्कार आदर वचनालाप रागभावतै करना, सो सत्कार नामा अब्रह्म है ॥६॥

बहुरि अपने शरीरका गंधपुष्पादिकनिकरि तथा स्नान उद्वर्तनादिककरि संस्कार करना, सो संस्कार नामा अब्रह्म है ॥ ७ ॥

बहुरि पूर्वे जो भोग भोग्या वा श्रवण किया, देख्या तिनका यादि करना, सो अतीतस्मरण नामा अब्रह्म है ।८।

बहुरि आगामी कालमें कामभोग क्रीडा शृङ्गारादिकका अभिलाष, सो अनागताभिलाष नामा अब्रह्म है ॥९॥

बहुरि मर्यादरहित यथेच्छ विषयनिका सेवन जो निरर्गल जावना, आवना, बोलना, बैठना, खाना, पीना, रात्रि संचरण करना, यथेच्छ जोग्य अजोग्यका विचाररहित संगति करना, अजोग्यद्रव्यका सेवन, अजोग्यक्षेत्रमें जाना, आना, सोवना, बैठना इत्यादि मर्यादरहित प्रवर्तना, सो इष्टविषयसेवन नामा अब्रह्म है ॥१०॥

भगव.
आरा.

ऐसे ये दशप्रकारका अब्रह्म जीवकूं अचेत करि धर्मरहित करि ऐसा घाते है, जो, बहुरि अनन्तानन्तकालमें सचेत नहीं होय सके ! यातें अब्रह्मकूं विषरूप कह्या है । बहुरि आत्माके संतापका कारण है, तथा दर्शन ज्ञान चारित्रकूं दग्ध करि मूलतें नाश करनेवाला है । तातें अब्रह्म अग्निसमान है । ऐसे अब्रह्मकूं विषरूप तथा अग्निरूप जानना योग्य है । कैसाक है दशप्रकारका अब्रह्म ? आवता तो अज्ञानी जीवनिकूं मिष्ट दीखे है, अर उदयकालमें अतिकटुक है । अब कामतें विरक्त होनेका उपाय कहे है । गाथा—

कामकदा इत्थिकदा दोसा असुचित्तबुड्ढसेवा य ।
संसग्गीदोसा वि य करन्ति इत्थीसु वेरग्गं ।।८८८।।

अर्थ—या जीवके जे दोष कामविकारतें उपजे है; तथा स्त्रीनिकरि कीये दोष होय हैं, तथा शरीरकी अशुचिताजनित दोष हैं, तथा वृद्धसेवाकरि जे गुण होय है, तथा स्त्रीनिकी संगतिकरि जे दोष होय हैं, ते चितवन किये हुये स्त्रीनिमें वैराग्य उपजावे हैं । अब या जीवके उत्पन्न हुआ जो परिणाममें कामका विकार, सो कहा कहा दोष करे है, तिन कामकृतदोषनिकूं पंचावन गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

जावइया किर दोसा इहपरलोए दुहावहा होंति ।
सव्वे वि आवहदि ते मेहुणसण्णा मणुस्सस्स ।।८८९।।

अर्थ—इस लोकविषै तथा परलोकविषै दुःखके करनेवाले जितने दोष है, तिन सर्व दोषनिकूं मनुष्यकी एक मैथुनकी अभिलाषा प्राप्त करे है । गाथा—

सोयदि विलपदि परितप्पदी य कामादुरो विसीयदि य ।
रत्तिदिया य णिद्दं ण लहदि पज्झादि विमणो य ।।८९०।।

अर्थ—कामकरिके पीडित पुरुष सोच करत है, विलाप करत है, परितापकूं प्राप्त होय हैं, विषाद करत है, रात्रिविषै दिनविषै निद्राकूं नहीं लेत है अर विमनस्क हूवा उणमणा चितवन करे है । गाथा—

सयणे जणे य सयणासणे य गामे घरे व रण्णे वा ।

कामपिसायग्गहिदो ण रमदि य तह भोयणादीसु ॥८६१॥

अर्थ—कामपिशाचकरिके गृहीत जो पुरुष, सो स्वजन जे आपके स्त्री, पुत्र कुटुम्बादिक तिनमें नहीं रमे है, तथा अन्यजननिमें तथा शयनमें तथा ग्राममें तथा गृहमें तथा वनमें तथा भोजन, पान, वस्त्र, आभरण, राग, रंग, महल, मकान द्रव्यका उपार्जनमें तथा राजसेवा तथा धनसंपदा लेन देन, धरने मेलनेमें कोऊ रचनामेंहू नहीं रमे है । जातें जिस स्त्री वा पुरुष नपुंसकादिक कोऊमें दर्शन, स्पर्शन, क्रीडनरूप, राग बन्ध्या होय, तासूं मिलेही थिरता पावै । कामपिशाचकी या जाति है ! जो, कोई नीच दासी वा वेश्या वा चांडाली भीलणी इत्यादिक कोऊ नीचस्त्रीसूं स्नेह लाग्या होय तथा कोऊ नीच अधम विजातीय दासकर्म करनेवाला अभक्ष्यभक्षी दासीपुत्र वा घोडेका चाकर तथा चारण भाट डूम्ब इत्यादिकमें जिसमें स्नेह बन्ध्या होय तो ताका संयोग हुवाही जक परेगी ! अनेक रूपवती, कुलवती, वस्त्राभरणसहित आपकी विवाहितस्त्रीनिका संयोग तथा सुबुद्धिपुत्रनिका संयोग विषसमान भासेगा ! तातें कामसमान अन्यपिशाच नहीं है । गाथा—

कामादुरस्स गच्छदि खणो वि संवच्छरो व पुंसस्स ।

सीदन्ति य अंगाइं होदि अ उक्कंठिओ पुरिसो ॥८८२॥

अर्थ—आपका स्नेहीका सम्बन्धरहित जो कामातुरपुरुष ताके क्षणमात्रहू संवत्सर बराबर होजाय है । अर सर्व अंग वेदनाकूं प्राप्त होय है । अर मन ऐसा उत्कंठित होय है, जाकूं दूसरा दीखेही नहीं । बारम्बार परिणाम उसकी वोडीही लग्या रहै, अन्य भोजन शयन स्त्रीपुत्रादिकनिमें रचै नहीं, ताकूं उत्कंठा कहिये है, सो सर्व कामातुरके होय है । गाथा—

पाणिदलधरिदगंडो बहुसो चिंतेदि किं पि दीणमुहो ।

सीदे वि णिवाइज्जइ वेवदि य अकारणे अंगं ॥८६३॥

अर्थ—कामातुर पुरुष अपने हस्ततलपरि धरचा है गंडस्थल जानैं, अर दीन है मुख जाका ऐसा बहुतवार क्योंहू चितवन करे है, अर शीतकालहूमें पसीनेकूं प्राप्त होय है । अर कामीका अंग जो शरीर सो कारणविनाही कम्पायमान होय है । गाथा—

कामुम्मत्तो सन्तो अन्तो डज्झदि य कामचिंताए ।
पीदो व कलकलो सो रदग्गिजाले जलन्तम्मि ।।८६४।।

अर्थ—कामकरि उन्मत्त हुवा सन्ता पुरुष कामकी चिंताकरिके अन्तरंगमें दग्ध होय है । जैसे कोऊ गाल्या ताम्बा ताहि पीय अन्तरंग–हृदयमें दग्ध होय है–मूर्छित होय है, तैसे कामी अपने वांछित जो स्त्रीका संगम वा पुरुषका संगम नहीं पायकरिके बलती जो अन्तरंगमें प्रीतिरूप अग्निकी ज्वाला ताविषें बले है । गाथा—

कामदुरो णरो पुण कामिज्जन्ते जणे हु अलहन्तो ।
धत्तदि मरिदुं बहुधा मरुप्पवादादिकरणेहिं ।।८६५।।

अर्थ—बहुरि कामातुर जो जीव सो आपके वांछित जासूं प्रीतिकरि बन्धननें प्राप्त हुवा ऐसा कोऊ स्त्री तथा पुरुष जो आपसूं पराङ्मुख होजाय वा हजारां दीनता करताहू आपमें प्रीति छोडि दे अथवा और कोऊ धनवान्, रूपवान्, ऐश्वर्यवान् तामें आसक्त होजाय अर आपसूं प्रीति संकोच ले तथा आपका निर्धनपणाकरि वृद्धपणाकरि आपकूं नहीं गिणै, तो बहुतप्रकार जे पर्वततें गिरना, तथा समुद्रमें पडना, तथा अग्निमें प्रवेश करना, तथा भींतिनिकरि, स्तम्भनिकरि मस्तक फोडि मर जाना, तथा वनमें प्रवेशकरि जाना, तथा पाशी कंठमे नाखि मर जाना, तथा शस्त्रघातकरि मरना, तथा विषभक्षणादिकनितें मरिजाना इत्यादिककरि मरणमें प्रवर्तत है ! । भावार्थ—अन्तर्गत जो कोऊ स्त्रीमें वा पुरुष वा नपुंसकमें रागभाव सो काम है ! सो कामभाव जब प्रकट होय है, तब अपने घरमे आपको देवांगनासमान अर अति-स्नेहकी भरी अनेक स्त्री तथा आज्ञाकारी महागुणवन्त पुत्र तथा वांछितकार्यके साधनेवाले सेवकजन तिनमे द्वेष करे है । अर जिसमें मन आसक्त भया तिसकूं बारम्बार चिंतवन करे है ! अर जो आपका वांछितजन नहीं दीखे, तब सर्वकुटुम्ब शून्य दीखे है, दसूं दिशा शून्य दीखे हैं ! अपना रहनेका महल मन्दिर वनसमान तथा मसानसमान दीखे है ! अर सर्व कुटुम्ब अपने हितकी कहै सो विषसमान दीखे है ! । गाथा—

संकप्पंडयजादेण रागदोसचलजमलजीहेण ।
विसयबिलवासिणा रदिमुहेण चिंतादिरोसेण ।।८६६।।

कामभुजगेरण दट्टा लज्जारिणम्मोगदप्पवाढेरण ।
रणासन्ति रणरा अवसा अणेयदुक्खावहविसेरण ॥८९७॥

अर्थ—कामसर्पकरिके डस्या मनुष्य परवश हुवा नाशकूं प्राप्त होय है। कैसाक है कामरूप सर्प ? सर्प तो अडेतें उपजे है, अर कामरूप सर्प मनका संकल्प सोही जो अण्डा ताकरि उपजे है, परिरणामनिके संकल्पविना नहीं उपजे है। बहुरि सर्पके चलायमान दोय जिह्वा होय हैं, अर कामरूप सर्पके रागद्वेषरूप चलायमान जुगल जिह्वा होय हैं। बहुरि सर्प तो बिलमें बसै है अर कामसर्प विषयरूप बिलमें बसनेवाला है। बहुरि सर्पके तो मुख होत है, अर कामरूप सर्पके रति जो आसक्तता सोही मुख ताकरि पुरुषका मर्मकूं काठनेवाला है। बहुरि सर्पके रोष होय है, कामरूप सर्पके चिन्तारूप रोष है। बहुरि सर्प कांचली छोडे है, अर कामरूप सर्प लज्जारूप कांचली छोडे है। बहुरि सर्पके डाढ होय है, अर कामरूप सर्पके रूपका मद तथा धनका शृङ्गारादिकनिका मद सोही तीक्ष्ण दाढ है। अर सर्पके विष होय है। अर कामरूप सर्पके अनेक दुःखनिका बहना भोगना सोही विष है। ऐसे कामरूप सर्पकरि डस्या हुवा जीव आपके ज्ञानदर्शनादिकका नाश करि पराधीन हुवा नाशकूं प्राप्त होय है! नरकनिगोदकूं प्राप्त होय है। गाथा—

आसीविसेरण अवरुद्धस्स वि वेगा हवन्ति सत्तेव ।
दस होंति पुरणो वेगा कामभुअंगावरुद्धस्स ॥८९८॥

अर्थ—सर्पनिमें प्रधान जो आशीविषजातिका सर्प ताकरि डस्या पुरुषके तो सात वेग होय हैं, अर कामरूप सर्पकरि डस्या हुवा पुरुषके दश वेग होय हैं। ते दश वेग कैसे हैं सो कहे हैं। गाथा—

पढमे सोयदि वेगे दट्ठुं तं इच्छदे विदियवेगे ।
रिणस्सदि तदियवेगे आरोहदि जरो चउत्थम्मि ॥८९९॥

डज्झदि पंचमवेगे अंगं छठ्ठे रण रोचदे भत्तं ।
मुच्छिज्जदि सत्तमए उम्मत्तो होइ अट्ठमए ॥९००॥

णवमे ण किंचि जाणदि दसमे पाणेहिं मुच्चदि मदंधो ।
संकप्पवसेण पुणो वेगा तिव्वा व मन्दा वा ॥९०१॥

अर्थ—कामके प्रथमवेगविषै शोच करत है । जाकूं देख्या था तथा श्रवण किया था, ताका बारम्बार चिंतवन करे है । अर द्वितीयवेगविषै देखनेकी अति इच्छा उपजै जो देख्याविना परिणाम अति आकुल, व्याकुल होय है । अर तृतीय-वेग चढे ताविषै दीर्घनिश्वास पटके है । अर चतुर्थवेगविषै शरीरमें ज्वर उत्पन्न होय है । अर पंचमवेगविषै अंग दग्ध होने लगिजाय है । अर छट्ठा वेगविषै भोजन नहीं रुचे है । अर सातमां वेगविषै मूर्छाकूं प्राप्त होय है । अर अष्टमवेग-विषै उन्मत्त होय है । नवमां वेगविषै ज्ञानरहित होय है । दशमां वेगविषै मदकरि अन्ध हुवा प्राणनिकरि रहित होय है । बहुरि संकल्पका वशकरिके ये दशवेग कोऊके तीव्र होय हैं, कोऊके मन्द होय हैं । जैसा रागका तीव्रपणा मन्दपणा होय तिसप्रमाण वेग चढे है । गाथा—

जेट्ठामूले जोण्हे सूरो विमले णहम्मि मज्झण्हे ।
ण डहदि तह जह पुरिसं डहदि विवड्ढन्तउ कामो ॥९०२।

अर्थ—जैसे ज्येष्ठमासका शुक्लपक्षमें निर्मल आकाश में मध्याह्नकालमें जो सूर्यहू आतापकरि दग्ध नहीं करे, तैसे बधता हुवा काम पुरुषकूं दग्ध करे है–आताप करे है । गाथा—

सूरग्गी डहदि दिवा रत्तिं च दिया य डहइ कामग्गी ।
सूरस्स अत्थि उच्छागारो कामग्गिणो णत्थि ॥९०३॥
विज्झायदि सूरग्गी जलादिएहिं ण तहा हु कामग्गी ।
सूरग्गी डहइ तयं अब्भंतरवाहिरं इदरो ॥९०४॥

अर्थ—सूर्यकी अग्नि तो दिवसहीमें दग्ध करे है–आताप करे है, अर काम–अग्नि दिवसमें तथा रात्रिमें सदाकाल दग्ध करे है । बहुरि सूर्यकी आतापकूं रोकनेवाला पदार्थ तो छत्रादिक बहोत है, अर काम अग्निकी आतापकूं रोकने वाली लोकमें वस्तु नहीं है । बहुरि सूर्यकी आताप तो जलयंत्रादिककरि बुझि जाय है, अर कामकी आताप नहीं बुझै

है । बहुरि सूर्यकी अग्नि तो शरीरहीकूं दग्ध करे है, अर कामरूप अग्नि अभ्यन्तर आत्माके ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, शील, संयमादिक तिनकूं दग्ध करे है, अर बाह्यभी शरीरकूं, इन्द्रियनिकूं, यशकूं, व्यवहारकूं पूज्यपणा, कुलवंतपणा तथा धनवंतपणाका नाश करे है । गाथा—

जादिकुलं संवासं धम्मारिण य बन्धवम्मि अगरिणत्ता ।
कुरणदि अकज्जं पुरिसो मेहुरणसण्णापसंमूढो ॥९०५॥

अर्थ—मैथुनकी इच्छाके विषें मोही जो पुरुष सो आपकी जातिकूं नहीं गिणे है, कुलकूं नहीं गिणे है, जिनकी संगति रहै तिनकूं नहीं गिणे है, तथा धर्मकूं कुटुम्बकेनिकूं नहीं गिणता नहीं करने योग्य अकार्यकूं करे है ।

भावार्थ—जो कामके वशीभूत है सो अपना उत्तमकुल, उत्तम जातिकूं तो जलांजलि दीनी । सो प्रत्यक्ष देखिये है । कामीके ऐसा विचारही नहीं है, जो, या स्त्री कौन जाति है ? वा चांडाली है ! तथा चांडाल भील म्लेछ अधमाधम जो जगतमें देखिजे तिनतें रमनेवाली अर मद्यमांसके खावनेवाली वेश्या है वा दासी तथा कुलटा हैं इत्यादिक नीचजाति नीच आचार ताकी ग्लानिरहित अति आसक्त हुवा ताका मुखकी लाला पीवे है ! तथा अधम अंगनिकूं स्पर्श है ! चाटे है । कामीके जातिकुलका विचार नष्ट होय है । चांडाल तथा म्लेछनिको उच्छिष्ट भक्षरण करनेवालीके सामिल अखाद्य खाय है ! मद्य पीवे है ।

कामांधकी जातिकुलकी रक्षा कोऊ देखी नहीं, सुनी नहीं । तथा उत्तम कुल उत्तमजातिका ऐसा मार्ग है–जो, अपनी विवाहीतस्त्रीका संगम करे है अर अन्य स्त्रीकूं, माता, बहण, पुत्रीतुल्य जानि कदाचित् रागभावसूं अवलोकन करनाभी अपना दोऊ लोक नष्ट होना माने है । अर जब कामांध होय है तब माताकूं सेवन करे है ! भगिनीकूं सेवे है ! पुत्रीमें आसक्त होय है ! पुत्रकी स्त्रीमें आसक्त होय है ! तथा औरहू अपने कुटुम्बकी तथा तपस्विनी गुराणी तथा कन्याकुमारी सबमें आसक्त होय कुलभ्रष्ट होय है, धर्मभ्रष्ट होय है, लज्जारहित होय है । तथा तैसेही कोऊ पुरुषमें रागसंयुक्त होय तदि ऐसा विचार नहीं करे है–जो यो पुरुष नीच है, तथा चोर है ज्वारी है, वा व्यभिचारी है वा प्रतिष्ठारहित है, याकी संगतितें मेरा सर्व आपा बिगडि जायगा । सो कामकरिके अन्धके विचारही नहीं है ऐसे तो जातिकुलका नहीं गिरणना कह्या ।

बहुरि कामी पुरुष जिनके साथि आप बसे है, तिनहूकूं नहीं देखे है, जो, मैं नीचकर्म करूंगा तो मेरे सर्व साथी लज्जित होयंगे, तथा मेरा इतना बडा घोरकर्म प्रगट होयगा जब बांधवनिकूं तथा कुटुम्बीनिकू तथा स्वामीकूं सेवकनिकूं धर्मात्माजननिकूं तथा पुत्रनिकूं तथा पाडोसीनिकूं कैसे मुख दिखाऊंगा ? तथा तिनके बीचि बैठि कैसे सुन्दर बात करूंगा ? ऐसा विचार कामोन्मत्तका जाता रहे है । कामी महानिर्लज्ज है । बहुरि कामी धर्मकूं नहीं गिरणे है, जो, मेरा अणुव्रत महाव्रत तप शील सर्व नष्ट हो जायगा तथा सर्वलोकनिमें में धर्मात्मा कहाऊं हूं, जो; अब मेरा कुशीलपणा प्रगट होयगा तो सर्व त्यागीनिका तथा धर्मबुद्धीनिका अपवाद होयगा, ऐसा विचार नहीं करे है । बहुरि आपके बांधवनिकूं नहीं गिरणे है । कामकी वांछाकरि मूढ है ताके करने योग्य अर नहीं करनेयोग्यका विचारही नहीं है । गाथा—

कामपिसायग्गहिदो हिदमहिदं होइ वा ण अप्पणो मुणदि ।
होइ पिसायग्गहिदो वसदा पुरिसो अणप्पवसो ॥९०६॥

अर्थ—कामरूप पिशाचकरि ग्रहण किया पुरुष आपका हित अर अहितकूं नहीं जाने है । पिशाचगृहीत पुरुषकीनांई सर्वकालविषै आपके वशि नहीं रहे है । गाथा—

णीचो व णरो बहुगं पि कदं कुलपुत्तओ वि ण गणेदि ।
कामुम्मत्तो लज्जालुओ वि तह होदि णिल्लज्जो ॥९०७॥

अर्थ—कामकरि उन्मत्त ऐसा कुलवन्तहू पुरुष परके किये बहुतहू उपकार नीचपुरुषकीनांई नहीं गिरणे है । भावार्थ—नीचपुरुषका चाहे जितना उपकार करो, नीचपुरुष परके उपकारकूं नहीं गिरणे है, तैसे कामके वशीभूत पुरुषहू परके बहोत उपकारकूं लोप दे है । बहुरि लज्जावान् मनुष्यहू कामके वशीभूत हुवा निर्लज्ज होय है । गाथा—

कामी सुसंजदाण वि रूसदि चोरो व जग्गमाणाणं ।
पिच्छदि कामग्घत्थो हिदं भणन्ते व सत्तू व ॥९०८॥

अर्थ—जैसे जाग्रता पुरुषमें चौर रोस करे है, तैसे कामी पुरुष सुन्दर संयमीनिमें रोस करे है । कामीकूं शीलवान् त्यागी पुरुष महावैरी दीखे है । बहुरि कामकरिके व्याप्त पुरुष आपके हितकी कहनेवालेकूं शत्रुकीनांई देखे है । गाथा—

आयरियउवज्झाए कुलगणसंघस्स होदि पडिणीओ ।
कामकलिणा हु घत्थो धम्मियभावं पयहिदूणं ॥६०६॥

अर्थ—कामकरि मलिन पुरुष धर्मात्मापणाकूं छोडिकरिके अर आचार्य उपाध्याय कुलगणसंघतै अपूठा होय है । गाथा—

कामग्घत्थो पुरिसो तिलोयसारं जहदि सुदलाभं ।
तेलोक्कपूइदं पि य माहप्पं जहदि विसयन्धो ॥६१०॥

अर्थ—कामकरि ग्रस्या पुरुष त्रैलोक्यमें सार ऐसा श्रुतज्ञानका लाभकूं त्यागे है । भावार्थ—जिस पुरुषके काम-पिशाच लाग्या, ताके पठन-पाठन-धर्मश्रवणतै पराङ्मुखता होय है । अर जो पूर्व अवस्थामें श्रुतग्रहण करया होय, सो नष्ट होय है । बहुरि विषयनिकरि आन्धा पुरुष त्रैलोक्यकरिके पूजित ऐसा अपना महात्म्यपणा त्यागे है । गाथा—

तह विसयामिसघत्थो तणं व तवचरणदंसणं जहइ ।
विसयामिसगिद्धस्स हु णत्थि अकायव्वयं किंचि ॥६११॥

अर्थ—तैसेही जो विषयरूप मांसकरि ग्रस्या लंपटीपुरुष तपश्चरणकूं तथा सम्यग्दर्शनकूं त्यागत है । विषयरूप मांसमें लम्पटीके किंचिन्मात्रहू नहीं करनेयोग्य नहीं है—संपूर्ण अकृत्य करे है । गाथा—

अरहन्तसिद्ध आयरिय उवज्झय सव्ववग्गाणं ।
कुणदि अवण्णं णिच्चं कामुम्मत्तो विगयवेसो ॥६१२॥

अर्थ—कामकरि उन्मत्तपुरुष ताका वेष विकाररूप होय है । बहुरि अरहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधुनिके समूहका सर्वकालविषै अवर्णवाद करे है—झूंटे दोष पंचपरमेष्ठीके प्रकाशे है—निंदा करे है । कामीपुरुषबराबरी कोऊ पातकी है नहीं । गाथा—

अयसमणत्थं दुःखं इहलोए दुग्गदा य परलोए ।
संसारं पि अणन्तं ण मुणदि विसयामिसे गिद्धो ॥६१३॥

अर्थ- -विषयरूप मांसमें जाके तीव्र लम्पटता है सो पुरुष इसलोकमें अपना अपयश होता नहीं जाने है, तथा अनर्थ होता नहीं जाने है, तथा राजका दंडजनित तथा अपवादजनित तथा धनका नाश होनेतै तथा प्राणनिका घात इत्यादिकनितैं उपजता दुःख नहीं जाने है, परलोकमें नरकादिकदुर्गतिमें अपना जाना नहीं जाने है, तथा अनन्तानन्तकाल संसार में परिभ्रमण होय ताहि नहीं जाने है । गाथा—

णीचं पि विसयहेदुं सेवदि उच्चो वि विसयलुद्धमदी ।
बहुगं पि य अवमाणं विसयन्धो सहइ माणीवि ॥६१४॥

अर्थ—विषयनिमें लुब्धबुद्धि कहिये विषयनिका लोभी, कुल, धन, ऐश्वर्य, ज्ञान, तप त्यागकरि जगतमें उच्च है तोहू विषयनिकेतांई नीच स्त्री नीच पुरुषकी सेवा करे है, पादमर्दन करे है, निरन्तर वाका मुख देखे, जो, हमसे कोऊप्रकार प्रसन्न रहै । अर कामीपुरुष नीचस्त्रीपुरुषनितै हस्त जोरे है, अर मुखतें दीनताके वचन कहे है, जो "मैं तुमारा आज्ञाकारी सेवक हूँ, एक तुमारी कृपादृष्टिकी अभिलाषा मेरे निरन्तर रहे है, कहा करूं ? मैं तुमारा संगमविना प्राण धारनेकू असमर्थ हूँ, अर तुमारे द्वारे पड्या हूँ, तुमारी ममत्वदृष्टितै मेरा जीवन जानहु", इत्यादिक वचननिकरि हीनता भाषे है । अर जो वे आज्ञा करे ताही करे है, शरीरकी चाकरी करि अपना धन्यभाग्य माने है । अर आपका घरमें जो सुन्दरवस्तु होय, सो सर्व दे है, अपना सर्व धन दे है । अर वे ग्रहण करै तब आपकूं कृतकृत्य माने है । बहुरि महा अभिमानीहू विषयनिकरि आंधा अपना बहुत अपमान सहै है । तथा ताडना दुर्वचनादिकनिका लाभकूं महान् लाभ माने है । कामांध बरोबरि जगतमें कोऊ अन्ध है हो नहीं । गाथा—

णीचं पि कुणदि कम्मं कुलपुत्तदुगुंछियं विगदमाणो ।
वारत्तिओ वि कम्मं अकासि जह लांधियाहेदुं ॥६१५॥

अर्थ—विषयवांछाकरि अन्धपुरुष मानरहित हुवा कुलवन्तनिकरि निंदनीक उच्छिष्टभोजनादिक सोहू अपने प्रीति के पात्र जो स्त्री तथा पुरुष तिनकरि भक्षण कियाकूं भक्षण करि आपका धन्यभाग्य माने है । जैसे अकुलीन स्त्रीके निमित्त कोऊ वारत्रक नामा यति नीचकर्म करता हुवो । गाथा—

सूरो तिक्खो मुक्खो वि होइ वसिओ जणस्स सधणस्स ।
विसयामिसम्मि गिद्धो माणं रोसं च मोत्तूणं ॥६१६॥

अर्थ—शूरवीर तथा कोऊका कह्या नहीं सहि सके ऐसा तीक्ष्ण कहिये क्रोधी तथा मुख्य कहिये सर्व लोकनिमें प्रधान ऐसा पुरुषहू विषयरूप मांसका लम्पटी हुवा सन्ता मान अर रोष दोऊकूं छांडिकरिके धनवानजनके वशी होत है । भावार्थ—विषयाभिलाषीविना अपना अभिमान छोडि धनवानका दुर्वचन तथा अपमान कौन सहै ? विषयनिके वशतें धनका लोभी होय सर्व सहे । गाथा—

माणी वि असरिसस्सवि चडुयम्मं कुणदि णिच्चमविलज्जो
मादापिदरे दासं वायाए परस्स कामेन्तो ॥६१७॥

अर्थ—कामको इच्छासंयुक्त मानीहू पुरुष असदृश जो अधम नीच, आपकी बराबरी नहीं ऐसा, कोऊ पुरुषका तथा स्त्रीका निर्लज्ज हुवा हजारां चाटुकार कहिये कुसामद्यां नित्यही करे है । वचनकरि कहे है–तुम हमारे पिता हो, तुम हमारी माता हो, तुम स्वामी हो, मैं तुमारे गृहमें दास हुवा रहूँ, मेरे प्राण तुमारी कृपादृष्टितं रहेंगे, मैं आपका सरणा लिया, मेरा तिरस्कार करो वा सत्कार करो, मेरे और कुछ चाह नहीं, एक तुमारी सांची प्रीतिही चाहूं हूं । ऐसे आपका आत्मानें पराधीन करता अधमचेष्टाकूं प्राप्त होय है ।

इहां इतना और जानना–जो, कोऊ जानेगा, मैथुनसेवनहीकूं काम कह्या है । सो मैथुनसेवन करना सोही कामविषय नहीं जानेना । जो कोऊका रूपके देखनेमें तथा अंगके स्पर्शनमें तथा नेत्रसूं नेत्र मिलनेमें तथा रागवचन सुननेमें, एक आसन एकशयन बैठनेसोवनेमें जो तीव्र आसक्तताकरि परके वशीभूत होना सो सर्व कामकी तीव्रताका प्रभाव जानना । जो काम के वशीभूत है, ताके इसलोकमें तो यश उपार्जन करना अर स्वाधीन रहना दोऊ नहीं होय है, अर परलोकके अर्थि हितरूप ऐसा धर्मसेवन, सामायिक, स्वाध्याय, शुभध्यान, शुभभावना, शुभसंगति, वीतरागतादिक सर्व कल्याणरूप कार्यतें पराङ्मुखता होय है । गाथा—

वयणपडिवत्तिकुसलत्तणे पि णासइ णरस्स कामिस्स ।
सत्थप्पहव्व तिक्खा वि मदी मन्दा तहा हवदि ॥६१८॥

अर्थ—कामी पुरुषका वचन बोलनेविषे प्रवीणपणा नष्ट होय है। ये वचन बोलनेके, ये वचन नहीं बोलनेके, तथा हमारा पदस्थ ऐसा इसका पदस्थ ऐसा, अर अनेक जन सुननेवाले कहा कहेंगे ! मै इतना बडा पदस्थधारी; अन्य नीच जन भांडजन तिनकेसे वचन कैसे कहूँ हूं ? ऐसा विचारही जाता रहे है। बहुरि अनेकशास्त्रनिके ज्ञानकरि तथा लोकिक-व्यवहारज्ञानकरि संवारीहू बुद्धि मन्द होय है, नष्ट होय है। गाथा—

होदि सचक्खू वि अचक्खुव बधिरो वा वि होइ सुणमाणो।

दुठ्ठकरेणुपसत्तो वणहत्थी चेव संमूढो ॥६१६॥

अर्थ—कामोन्मत्त पुरुष नेत्रनिकरि सहित है तोहू अन्धकीनाईं नहीं देखे है ! अर कर्णनिकरि सहित है तोहू नहीं सुणत है ! जैसे कपटकी हथणीमें आसक्त वनका हाथी ताकोनाईं मूढ होय है। भावार्थ—जैसे मदकरि मतवाला हस्ती कपटकी हथनीमें आसक्त होय अपना खाडेमें पडना बधबन्धननिकूं प्राप्त होना नहीं जाने है, तैसे कामकरि मतवाला पुरुष नेत्रनिसूं प्रकट देखे है–जो "कामी पुरुष मारचा जाय है, प्रकट अपवावकूं प्राप्त होय है, राजकरि तीव्र दंड पावे है, शरीर करि नष्ट होजाय है, धनरहित होय है, पूज्यपणा, बडापणा प्रतिष्ठा सर्व बिगडिजाय है, नोचस्त्री अर नीचपुरुषनिसूं दीनता करनी पडे है, ऐसे अनेककी अवस्था आप प्रत्यक्ष देखो है अर देखे है" तथापि या जाने है, जगत् बुद्धिरहित मूर्ख है ! समझिसहित विषयसेवन नहीं करि जाने है ? तातें तिनके आपदा आवे है। हम ऐसी बुद्धिसूं प्रवर्ते हैं, सो हमारे क्लेश नहीं आवे। बहुरि आपकूं जगत् दुराचारी जाने है, तथापि ऐसा माने है, हमारा दुराचार कोऊ जाने नाहीं। ऐसे कामकरि अन्धके सुसाकीनाईं अन्धेरी है, देखता संताहू नहीं देखे है। बहुरि कामकरि उन्मत्त अन्य अनेकपुरुषनिके अनेक दुःख श्रवण करे है, तथा कामीनिका नरकगमन श्रवण करे है, तोहू आपके दुःख होना नहीं जाने है, बधिरकीनाईं आचरण करे है। गाथा—

सलिलणिवुढोव्व णरो वुज्झन्तो विगयचेयणो होदि।

दक्खो वि होइ मन्दो विसयपिस ओवहुदचित्तो ॥६२०॥

अर्थ—जैसे जलमें डूब्या अर प्रवाहकरि बहता पुरुष चेतनारहित होय है, तैसे सर्वकार्यनिमें प्रवोण ऐसा पुरुषभी विषयरूप पिशाचकरि जाका चित्त नष्ट हुवा, सो सर्वकार्यनिमें मन्द होय है–मूढ होय है। गाथा—

वारसवासाणि वि संवसिलु कामादुरो ण णासीय ।
पादंगुट्ठमसन्तं गणियाए गोरसंदीवो ॥६२१॥

अर्थ—गोरसंदीप नामा कामी बारह बरसपर्यन्त गणिकाके सामिल वसिकरिकेहू गणिकाका पगमें अंगुष्ठ नहीं था सो जाण्या नहीं ! भावार्थ—कामकरि अन्धकूं चेत नहीं रह्या, जो इस वेश्याका पगके अंगुष्ठ है कि नहीं है । गाथा—

सीदं उण्हं तण्हं खुहं च दुस्सेज्ज भत्त पंथसमं ।
सुकुमारो वि य कामी सहइ भारमवि गरुयं ॥६२२॥

अर्थ--कोमल अंगका धारकहू कामी पुरुष आपका वांछित जो स्त्री तथा पुरुष ताका संगमके अर्थि अपना घरका सुखकारी महल वस्त्र पर्यंक सुन्दरस्त्री पांचूं इन्द्रियनिका भोग छांडिकरिके अर परके द्वारे भूमिमें धूलिमें पत्थरनिमें पड्या हुवा आपका उच्चपणाकूं नहीं जानता अत्यन्त विषयकी आशाकरिके शीतऋतुकी रात्रिविषै शीतवेदना सहे है, तथा ग्रीष्मऋतुका आताप सहे है, तृषा सहे है, क्षुधा सहे है, खोटी शय्या खोटा भोजन अंगीकार करे है, मार्गका खेद सहे है, अर अधिकसूं अधिक भार वहे है, सुकुमार अंगका धारकहू कामांध आपकी वेदना नहीं गिणे है । गाथा—

गायदि णच्चदि धावदि कसइ ववदि लवदि तह मलेइ णरो
तुण्णइ उण्णइ जाचइ कुलम्मि जादो वि विसयवसो ।६२३।
सेवदि णिवादि रक्खदि गोमहिसिमजावियं हयं हत्थि ।
ववहरदि कुणदि सिप्पं सिणेहपासेण दढबद्धो ॥६२४॥

अर्थ--विषयांके वशीभूत हुवा उच्चकुलमें जन्म्याहू पुरुष कहा कहा करे है ? जिसमें प्रीति लागी ऐसा स्त्रीपुरुषके आगे बैठ्या हुवा नीचजनकीनांई गावे है, नाचे है, जो कार्य होय ताके अर्थि दौड़े है, खोदे है, बावे है, लूणे है, मर्दन करे है ? सीवे है, बणे है, याचना करे है । तथा स्नेहपाशकरि बन्ध्या हुवा और कहा करे है ? सेवा करे है, साथि देशांतरमें निकलि जाय है, अपने स्नेहीकी गाइ, भसि, अजा, छेलो तथा अवि कहिये भेड तथा घोडा तथा हाथी इनकी रक्षा करे

है, विराज करे है, तथा शिल्प करे है, तथा स्नेहका मार्‍या उत्तमकुलसम्बन्धी उत्तमजीविका तथा धनसम्पदाकूं त्यागिकरि अपना स्नेहीको साथि नीचकर्मकरि जीविका करि जीवे है, तथा भिक्षा मागता फिरे है। गाथा--

वेढेइ विसयहेदुं कलत्तपासेहिं दुव्विमोएहिं।
कोसेण कोसियारुव्व दुम्मदो णिच्च अप्पाणं ॥६२५॥

अर्थ--जैसे कोशकार नामा रेशमकी लट सो आपके मुखमेंसूं तांत काढि आपहीकूं बांधे है, तैसे दुर्बुद्धि जीव विषयनिके अर्थि स्त्रीरूप पाशीकरि आपकूं नित्यही वेष्टन करे है-बेढे है। कैसीक है स्त्रीरूप पाशी? जो दुःखकरिकेहू नहीं छूटे है। गाथा--

रागो दोसो मोहो कसायपेसुण्ण संकिलेसो य।
ईसा हिंसा मोसा सूया तेणिक्क कलहो य ॥६२६॥
जंपणपरिभवणियडिपरिवादरिपुरोगसोगधणणासो।
विसयाउलम्मि सुलहा सव्वे दुक्खावहा दोसा ॥६२७॥

अर्थ--विषयनिकी वांछाकरि आकुल जो पुरुष तामें दुःखके करनेवाले येते सर्व दोष प्रकट होय है। ते दोष कौन कौन है सो कहे है-राग, तथा द्वेष, तथा कषाय तथा पैशून्य तथा मोह, तथा संक्लेश, तथा परके गुणनिकूं नहीं सहिसकना सो ईर्षा है, तथा हिंसा, तथा झूठ, तथा असूया कहिये गुणनिमें दोषनिका आरोपण करना, तथा चोरी, तथा कलह, तथा वृथा बकवाद, तथा तिरस्कार, तथा कपट, तथा अपवाद इत्यादिक हजारां दोष कामी पुरुषमें प्रकट होय जाय हैं, अर अनेक लोक विना कारण वैरी होजाय है, अर रोग, तथा शोक, तथा धनका नाश येते सर्व दोष कामके वशीभूत पुरुषके प्रकट होय है। सो इनका विस्तार लिखया बहोत कथनी होजाय, प्रत्यक्ष अपने अपने ज्ञानमें प्रकट दीखे हैं। गाथा--

अवि य वहो जीवाणं मेहुणसेवाए होइ बहुगाणं।
तिलणालीए तत्ता सलायवेसो य जोणीए ॥६२८॥

अर्थ—जैसे तिलांकी नालीमें संतप्त लोहकी सलाईके प्रवेशकरि तिलनिका घात होय है, तैसे मैथुनसेवनकरि योनिस्थानमें बहुत बादरनिगोदिया जीवनिका तथा त्रसजीवनिका नाश होय है। गाथा—

कामुम्मत्तो महिलं गम्मागम्मं पुणो अविण्णाय।
सुलहं दुलहं इच्छियमणिच्छियं चावि पत्थेदि ॥९२९॥

अर्थ—बहुरि कामकरि उन्मत्त पुरुष या स्त्री योग्य है वा अयोग्य है, या सुलभ है या दुर्लभ है, या मोकूं वांछे है वा नहीं वांछे है इत्यादिकज्ञानरहित हुवा प्रार्थना करे है–प्रीतिके अर्थि याचना करे है। गाथा—

दठ्ठूण परकलत्तं किहिवा पत्थेइ णिग्घिणो जीवो।
ण य तत्थ किं पि सुक्खं पावदि पावं च अज्जेदि ॥९३०॥

आहट्टिदूण विरमवि परस्स महिलं लभित्तु दुक्खेण।
उप्पित्थमाविसत्थं अणिव्वुदं तारिसं चेव ॥९३१॥

कहमवि तमन्धयारे संपत्तो जत्थ तत्थ वा देसे।
किं पावदि रइसुक्खं भीदो तुरिदो वि उल्लावो ॥९३२॥

अर्थ—प्रथम तो यो कामांध जीव परकी स्त्रीकूं देखिकरि निर्लज्ज हुवा कैसे बांछा करत है? परकी स्त्रीकी वांछामें कछूहू सुखकूं नहीं प्राप्त होय है, केवल पापही संचय करे है। भावार्थ–अन्यस्त्रीकूं देखि अभिलाषा करे सो अभिलाषा कीयां परकी स्त्री आपके कैसे आवेगी? नहीं आवे। अर केवल पापबन्धही होयगा। बहुरि कदाचित् बहुतकाल अभिलाषा करतां करतां दुःखकरिके परकी स्त्रीकूं पायकरिकेहू उद्वेग जो भय तथा अविश्वास अर तृप्तिरहितपणातें जैसे परस्त्रीका लाभ नहीं हुवा तदि वांछाका मारघा दुःखी था, तैसेही तृप्तिविना दुःखीही रहे है। बहुतकाल तरसतां तरसतां वांछा करतां करतां कदाचित् परस्त्रीका मिलापभी होय, तोहू विश्वास नहीं आवे, मति कदाचित् मेरा तिरस्कार कर दे! तथा अन्यलोकनिका बडा भय रहे है, काहूहीका विश्वास नहीं करे है। मति कोऊ देख ले वा जाण जाय तो मारघा जाऊं, आपा बिगडि

जाय इत्यादिक भयही रहे है । बहुरि कोऊ बडा कष्टकरिके कोऊ शूना घरमें वा वनमें, अन्धकारका अवसरमें परकी स्त्री का संगम हुवा तो तहां भयसहित 'मति कोऊ पाछे पाछे आवता होय' ऐसे कंपायमान हुवा अर कठोरभूमिविषे, जहां अंग उपांग दीखे नहीं ऐसा स्थानमें अन्धेरी रात्रिमें कोऊ गलीमें मकानमें व्याकुलचित्त हुवा, वचन बोलनेमेंहू भयभीत हुवा कदाचित् शीघ्रतातें कामसेवन करे है । सो ऐसे भयसहित पुरुष रतिका सुखकूं कैसे प्राप्त होय ? उद्वेग, भय अर अतृप्तता सदाकाल रहे है । गाथा—

परमहिलं सेवन्तो वेरं वधबन्धकलहधणनासं ।
पावदि रायबलादो तिस्से णीयल्लयादो वा ।।६३३।।

अर्थ—परकी स्त्रीकूं सेवन करनेवालेका सर्व लोक वैरी होय है । बहुरि राजाके पुरुषनितें तथा तिस स्त्रीके कुटुम्बीनितें नानाप्रकारका ताडन मारण बन्धन कलह अर धनका नाश अर अपवाद तिनकूं अवश्य प्राप्त होय है । गाथा—

जदि दा जणेइ मेहुणसेवा पावं सगम्मि दारम्मि ।
अवितिव्वं कह पावं ण हुज्ज परदारसेविस्स ।।६३४।।

अर्थ—जो हाल आपकी स्त्रीविषेंही जो मैथुनसेवन पाप उपजावे है, तो परकी स्त्रीका सेवनतें अति तीव्र पाप कैसे नहीं होय ? । इहां कोऊके ऐसी आशंका उपजै, जो, कामसेवनतें आपकी स्त्रीमें वा परकी स्त्रीमें पाप तो दोऊनिमें बरोबरिही होयगा, सो ऐसे नहीं जानना । जातें, अपनी स्त्रीका सेवन तो ऐसा है जो पूर्वोपार्जित कर्म जाका संगम करि दिया तिस स्त्रीनें कर्मका उदयतें तथा मन्दरागतें भोगे है । तातें मन्दरागतें उपज्या मन्दही बन्ध है । अर परकी स्त्रीमें अतितीव्र रागका संकल्पकरि आसक्त होय है । आपकी स्त्रीका तो संयोग करे तबही अल्पराग होय है । अर परकी स्त्रीके मांहि रात्रि अर दिन कोऊ अवसरहूमें आसक्तता नहीं छूटे है, अर रात्रिदिन दुर्ध्यानही बण्यो रहे है, अर तृप्तिता नहीं आवे है । अर जामें ऐसा तीव्र परिणाम उपजे है, जो परस्त्रीकेतांई आप मर जाय अर पैलानें मारि नाखे है वा अन्य दुष्टनिनें धन देय वाका भर्तापुत्रादिकानें मराय नाखे है ! वा जगतमें अपना अपजस नहीं गिने है, जातिकुल भ्रष्ट होना नहीं गिने है ! तथा बन्दिगृहमें पडना, तथा सर्व धनका नष्ट होना, तथा नाक-कान-लिंगछेदनादिक इसलोकमें नाना दंड होइ ताहि नहीं गिने है ! लज्जा सर्व छोडि दे है, धर्मभ्रष्ट होजाय है, कुल छोडि नीचकुलके शामिल होय खानपान करे

है, आपका पदस्थ तथा उच्चपणा, पंडितपणा, तपस्वीपणा, लोकमान्यपणा, पूज्यपणा सर्व बिगाडे है अर नरक जावनेका भय नहीं करे है । तातैं परस्त्रीमें जो आसक्त तिस पुरुषके जो तीव्रपरिणामकरि पापबन्ध होय, तैसा पापबन्ध कोऊही पापी के नहीं होय है ।

कर्मबन्ध तो परिणामनिके आधीन है । अर जाके इस लोकका बिगडना अर परलोकमें नरक जाना दोऊ तो भला ही होहू परन्तु परकी स्त्रीका संगम मेरे होहू ऐसा तीव्र परिणाम होय, तिससमान अधम कोऊ हैही नाहीं । बहुरि अन्य पुरुषकी स्त्रीकूं अन्यपुरुष सेवन करे, तब जातिकुलकी मर्याद गई । माता और जाति रहो, पिता और जाति रह्या, तब सर्व कुल भ्रष्ट होय सर्व धर्म नष्ट होय है । तातैं परस्त्रीकूं अंगीकार करने समान और पापकर्म नहीं है । जातैं परस्त्रीके सेवनेमें अदत्तादान नामा तो चोरीका पाप आवे है अर मायाचार अर झूंठ अर हिंसा अर शीलभंग अर अन्यायप्रवर्तन अर तीव्रराग अर क्रोधादिक कषाय अर विषयनिकी तीव्रता अर अतिआसक्तता अर अतिनिर्लज्जता अर निरन्तर दुर्ध्यानिता इत्यादिक महान् अनर्थनितैं नरकनिगोदका कारण तीव्रकर्मबन्ध करे है । गाथा—

मादा धूदा भज्जा भगिणीसु परेण विप्पयम्मि कदे ।
जह दुक्खमप्पणो होइ तहा अण्णस्स वि णरस्स ।।९३५।।
एवं परजणदुक्खे णिरवेक्खो दुक्खबीयमज्जेदि ।
णीय गोदं इच्छीणउंसवेदं च अदितिव्वं ।।९३६।।

अर्थ—जैसे अपनी माता तथा पुत्री तथा अपनी बहण तथा अपनी स्त्री इनसं कोऊ अन्यपुरुष दुराचार करे तदि आपके दुःख होय है, तैसे अन्यपुरुषकी माता पुत्री भार्या भगिनीसूं व्यभिचार कीयां अन्यपुरुषकेहू दुःख होय है । ऐसे अन्य जनके दुःख होनेका जाके विचार नहीं ऐसा अन्यजनके दुःखमें निरपेक्ष जो कामांध सो दुःखका कारण जो अतितीव्र असाता वेदनी नामा कर्म तथा नीचगोत्र नामा कर्म तथा स्त्रीवेद तथा नपुंसकवेद नामा कर्म ताका संचय करै है । गाथा—

जमणिच्छन्तो महिल अवसं परिभुंजदे जहिच्छाए ।
तह य किलिस्सइ जं सो तं स परदारगमणफलं ।।९३७।।

अर्थ—जो कोई स्त्री नहीं इच्छा करती अवश हुई यथेच्छ जबरदस्तीतें कोऊ पुरुष सेवन करै, सो स्त्री अतिक्लेशनें प्राप्त होय, सो सर्व पूर्वजन्म में परस्त्री सेवन करी, ताका फल है ।। गाथा—

महिलावेसविलंबो जं णीचं कुणइ कम्मयं पुरिसो ।
तह वि ण पूरइ इच्छा त से परदारगमणफल ।।९३८।।

अर्थ—जो कोऊ पुरुष स्त्रीका वेषनें अवलबन करि नीचकर्म करे है, तो हू काम की इच्छा पूर्ण नहीं होय है ! काम की दाहकी मारयाहो बलं है–तृप्तिता नहीं आवे है ! सो सर्व परस्त्री में गमन करनेका फल जानहु ।। गाथा—

भज्जा भगिणी मादा सुदा य बहुएसु भवसयसहस्सेसु ।
अयसायासकरीओ होंति विसीला य णिच्चं से ।।९३९।।

अर्थ— परकी स्त्री मै लंपटी पुरुष नरकनिगोद में परिभ्रमण करि कदाचित् मनुष्यभवकूं प्राप्त होय तो, तहां स्त्री तथा बहण तथा माता तथा पुत्री कुशीलिनी तथा अयश करनेवाली तथा खेद करनेवाली प्राप्त होय है । सो ऐसें कोट्यां भवपर्यंत जो स्त्री माता बहण पुत्री पावै तो व्यभिचारिणी ही पावै–शीलवती नहीं प्राप्त होय है ।

होइ सयं पि विसीलो पुरिसो अदिदुब्भगो परभवेसु ।
पावइ वधबन्धादि कलहं णिच्चं अदोसो वि ।।९४०।।

अर्थ —परकी स्त्री मैं लंपटी पुरुष सो कुशीलका प्रभावतें अन्यभवनिविषेंहू आप कुशीली ही होय तथा अतिदुर्भाग्य होइ तथा निर्दोष भी मारण बधन कलहकूं नित्य ही प्राप्त होय है ।। गाथा—

इहलोए वि महल्लं दोसं कामस्स वसगदो पत्तो ।
कालगदो वि य पच्छा कडारपिंगो गदो णिरयं ।।९४१।।

अर्थ—कामकै वशी हुवो जो कडारपिंग नामा मंत्री का पुत्र सो इस लोक में महान् दुःखकू प्राप्त हुवो अर पश्चात् मरणकरिकै नरककूं प्राप्त हुवो । गाथा—

एदे सव्वे दोसा ण होंति पुरिसस्स वम्भचारिस्स ।
तव्विवरीया य गुणा हवन्ति बहुगा विरागिस्स ।।६४२।।

अर्थ—बहुरि ब्रह्मचारी पुरुषकै ये सर्व दोष-पूर्वे कहे ते-नहीं होय हैं । कामतें विरक्त जो शीलवान् पुरुष, ताकै दोषनितें अपूठे बहुत गुण होय हैं । गाथा—

कामग्गिणा धगधगन्तेण य डज्झन्तयं जगं सव्वं ।
पिच्छइ पिच्छयभूदो सीदीभूदो विगदरागो ।।६४३।।

अर्थ—धगधगायमान जो कामाग्नि ताकरिकै दग्ध होता सर्व जगतकूं देखि, अर गया है राग जाका ऐसा त्यागी पुरुष शांत रूप सुखी हुवा संता तिष्ठे है, अर साक्षीभूत हुवा देखे है ।

ऐसें (अनुशिष्टि अधिकारके) ब्रह्मचर्य नामा महा अधिकरविषें पचावन गाथानि में कामकृत दोष कहे । अब पंसठि गाथानि में स्त्रीकृत दोषतिकूं कहे हैं । गाथा—

महिलाकुलसंवासं पदिं सुदं मादरं च पिदरं च ।
विसयन्धा अगणन्ता दुक्खसमुद्दम्मि पाडेइ ।।६४४।।

अर्थ—विषयनिकरि अंध जो स्त्री सो अपना कुल नहीं गिणै है, जो, 'मैं कौन कुलमें उपजी हूं ? कुमार्ग चालूंगी तो सर्व कुल कलंकित होय जायगा ! ऐसा विचार नहीं करै है ।' बहुरि सहवासी जे कुटुंब के (जन) तिनकी अवज्ञा होना नहीं गिनै है । बहुरि मेरा भर्ताकी जगत में बड़ी प्रतिष्ठा है, मैं कुमार्ग चलूंगी तो मेरा भर्ताकी प्रतिष्ठा बिगड़ि जायगी, ऐसा विचार नहीं करै है । बहुरि मेरा पुत्र महा ऐश्वर्यवान् है, सर्वलोक में मान्य है-पूज्य है । जो मैं अकृत्य करूंगी तो मेरा पुत्र महंतपुरुषनि में कैसे मुख दिखायवेगा ! ऐसा अनर्थ सूं नहीं शंका करै है । बहुरि मेरी माता तथा पिता लज्जित होय कृष्णमुख होय हृदयमें अतिदग्ध होय आर्तध्यानतें मरण करेंगे । मोकूं निद्यकर्म करतें समस्त कुटुंबकै संताप उपजैगा, व्यभिचारिणी दुष्टिणी ऐसा विचार नहीं करती सर्व कुटुंबकूं दुःखके समुद्रमें पटकत है । गाथा—

माणुण्णयस्स पुरिसद्दुमस्स णीचो वि आरुहदि सीसं ।
महिलाणिस्सेणीए णिस्सेणीए व्व दीहदुमं ॥९४५॥

अर्थ—जैसें निःश्रेणी जो निसीरणी ताकरिकें ऊंचा वृक्ष के उपरि चढि जाना होय है, तैसें स्त्री रूप निसीरणी-करिकें, मानकरि ऊंचा जो पुरुषरूप वृक्ष ताका मस्तकविषं नोचपुरुष चढे है । भावार्थ-अभिमानकरिकें महान् उच्च भी पुरुष सो कुशीलिनी स्त्री के निमित्ततें अधमपुरुषनिकरिहू तिरस्कार करनेयोग्य होय है । कुशीलिनी माता बहण पुत्री के निमित्ततें जगत के नोचपुरुषहू धिक्कार धिक्कार करे हैं ।

पव्वदमित्ता माणा पुंसाणं होंति कुलबलधणेहिं ।
बलिएहिं वि अक्खोहा गिरीव लोगप्पयासा य ॥९४६॥
ते तारिसया माणा ओमच्छिज्जन्ति दुट्ठमहिलाहिं ।
जह अंकुसेण णिस्साइज्जइ हत्थी अदिबलो वि ॥९४७॥

अर्थ—इस जगत में पुरुषनिकें "उच्चकुल में उपजनेकरि; तथा शरीर के बलकरि; अथवा राज्य, सेना, सुभट, परिकरके लोक तिनके बलकरि; तथा धन, संपदा, आजीविकानिकरि" पर्वतसमान बड़ा अभिमान होय है ! कैसाक है अभिमान ? जे बडे बलवंतनिकरिहू जिनमें क्षोभ नहीं उपजै, पर्वतसमान सर्व जगतके लोकनिकै प्रगट प्रकाश में आ रह्या है ऐसाहू अभिमान दुष्टस्त्रीनिके संयोगकरिकें मध्या जाय है, बिगडिजाय है ! जैसें अतिबलवानहू हस्ती अंकुश-करिकें बैठाणिये है । भावार्थ—पर्वतसमानहू महान् कठोर अभिमानी पुरुष व्यभिचारिणी स्त्रीका संगकरि अभिमान-रहित होय दीन रंक दासनिकीनांई आचरण करे है ।। गाथा—

आसीय महाजुद्धाइं इत्थिहेदुं जणम्मि बहुगाणि ।
भयजणणाणि जणाणं भारहरामायणादीणि ॥९४८॥

अर्थ—बहुरि इस जगतमेंहू स्त्रीनिके निमित्तही लोकनिकूं भयका उपजावनेवाला भारत रामायणादिकनिमें प्रसिद्ध बहुतवार महान् युद्ध होते भये ।। गाथा—

महिलासु णत्थि वीसंभपणयपरिचयकदण्णदा णेहो ।
लहुमेव परगयमणाओ ताओस कुलंपि य जहन्ति ॥९४९॥

अर्थ—स्त्रीनिविषै विश्वास, तथा प्रीति, तथा परिचय, तथा कृतज्ञता कहिये कीये उपकारका नहीं भूलना, तथा स्नेह येते नहीं ही है । जाते याका परपुरुषमें चित्त गया पाछे विश्वास रहै नहीं, परिचय रहै नहीं, कीये उपकार लोप दे, स्नेह का भंग करै, तथा आपका कुशल जो भला होना ताही शीघ्रही त्याग करे है ।। गाथा—

पुरिसस्स दु वीसंभं करेदि महिला बहुप्पयारेहिं ।
महिला वीसंभेदुं बहुप्पयारेहिं वि ण सक्का ॥९५०॥

अर्थ—इनि स्त्रीनिका ऐसा बुद्धिबलका सामर्थ्य है, जो, पुरुषकूं बहुत प्रकारकरि विश्वास प्रतीति अपनी कराइ दे, झूंठीकूं सांची प्रतीति कराइ दे, जाकू पुरुष बारंबार अनुभई-परिचय कीई ऐसीहू सांचके मांहि झूंठकी प्रतीति कराइ दे, अर स्त्रीकू विश्वास करावने का कोऊ पुरुषका सामर्थ्य नहीं है ।। गाथा—

अदिलहुयगे वि दोसे कदम्मि सुकदसहस्समगणन्ती ।
पइ अप्पाणं च कुलं धणं च णासन्ति महिलाओ ॥९५१॥

अर्थ—अति अल्प दोषकूं होतेहू हजारां उपकार नहीं गिणती ये स्त्री अपने भर्ताकूं मार ले है, तथा आप मरिजाय है, तथा कुल का नाश करे है, तथा धनका नाश करे है ।। गाथा—

आसीविसो व्व कुविदा ताओ दूरेण णिहृदपावाओ ।
रुट्ठो चंडो रायाव ताओ कुव्वन्ति कुलघादं ॥९५२॥

अर्थ—ए दुष्ट स्त्री कैसीक है ? क्रोधकूं प्राप्त हुवा अशीविषजातिका सर्प की नांई आत्माकूं दूरीहीतैं नष्ट करे है । अर रोषकूं प्राप्त हुवा क्रोधी राजाकीनांई कुलका घात करे है ।। गाथा—

अकदम्मि वि अवराधे ताओ वीसच्छमिच्छमाणीओ ।

कुव्वन्ति वह् पादणो सुदस्स ससुरस्स पिदुणो वा ॥९५३॥

अर्थ—अपनी स्वच्छंदप्रवृत्तिकूं इच्छा करती जे स्त्री ते बिना अपराधही आपका भर्त्ताकूं मारत है, तथा पुत्रकूं मारै, तथा सुसराकूं मारै, तथा पिताकूं मारे है । भावार्थ—या स्त्रीकी यथेच्छ स्वच्छंदप्रवृत्तिकूं रोकै ताकूं मारैही ॥ गाथा—

सक्कारं उवकारं गुणं व सुहलालणं च ग्णेहो वा ।

मधुरवयणं च महिला परगदहिदया ण चिंतेइ ॥९५४॥

अर्थ—व्यभिचारिणी स्त्री होय ताकी ऐसी रीति है, जो, आपका भर्त्ता बहुत सन्मान सत्कार करै, तथा वस्त्र आभरण धन भोजन दान देयकरि बहुत उपकार करै, तथा आपका भर्त्ता कुलवान होय, रूपवान होय, यौवनवान होय, शीलवान, विनयवान, गुणवान होय, तथा आपका सुखरूप लाड करतो होय, तथा आपमें बहुत स्नेह धारतो होय, तथा मिष्टवचन बोलतो होय, एते अपने पतिके गुण नहीं चितवन करे है । परपुरुष में रक्त ऐसी स्त्री एते गुणनिका धारक तथा इतने उपकार करनेवालाहू पतिकूं मारयाही चाहै, अर मारै इसमें संशय नहीं । गाथा—

साकेदपुराधिवदी देवरदी रज्जसुक्खपब्भट्टो ।

पंगुलहेदुं छूडो णदीए रत्ताए देवीए ॥९५५॥

अर्थ—देखहु ! साकेतपुरका स्वामी देवरति नामा राजा रक्ता नामा स्त्री के निमित्त राज्य त्यागि देशांतरनै गमन करता राज्यसुखसूं रहित हुवा, ताकू रक्ता नामा राणी पांगुलाके निमित्त नदीके मांहि बहाइ दिया । गाथा—

ईसालुयाए गोववदीए गामकूडधूदिया सीसं ।

छिण्णं पहदो तध भल्लएण पासम्मि सीहबलो ॥९५६॥

अर्थ—कोऊ सिंहबल नामा ताकी गोपवती नामा स्त्री, सो ग्रामकूटको पुत्री जो आपकी सौंकि ताका मस्तक छेद्या, बहुरि शक्ति नामा आयुधकरि सिंहबल नामा भर्ताकूं हणत भई । गाथा—

वीरमदीए सूलगदचोरदट्ठोट्ठिगाए वाणियग्रो ।
पहदो दत्तो य तहा छिण्णो ग्रोट्ठोत्ति ग्रालविदो ॥६५७॥

अर्थ—सूलीउपरि चढ्या चोर ताकरि खंडन किया है ग्रोष्ठ जाका ऐसी वीरमती नामा दुष्ट स्त्री, सो ग्रापका भर्त्ता जो वणिक्पुत्र ताही हत्यो ! ग्रर घोषणा करी—जो, मेरा भर्त्तानें ग्रोष्ठच्छेद किया है ! यातें दुष्टस्त्री जो ग्रनर्थ करे ऐसा ग्रनर्थ जगतमें कोऊ नहीं करे है । गाथा—

वग्घविसचोरग्रग्गी जलमत्तगयकण्हसप्पसत्तूसु ।
सो वीसंभं गच्छदि वीसंभदि जो महिलियासु ॥६५८॥

अर्थ—जो पुरुष स्त्रीनिमें विश्वास करे है; सो व्याघ्रमें, विषमें, चोरमें, ग्रग्निमें, जलमें, मदोन्मत्तहस्तीमें, कृष्ण सर्पमें, शत्रूनिमें विश्वास करे है । गाथा—

वग्घादीया एदे दोसा ण णरस्स तं करिज्जण्हू ।
जं कुणइ महादोसं दुट्ठा महिला मणुस्सस्स ॥६५६॥

अर्थ—मनुष्यके जो महादोष दुष्ट स्त्री करे है; सो महादोष पुरुषके व्याघ्र, विष, चोर, ग्रग्नि, जल, मदोन्मत्त हस्ती, कृष्णसर्प, शत्रु जे हैं ते नहीं करे हैं गाथा—

पाउसकालणदीवोव्व ताग्रो णिच्चंपि कलुसहिदयाग्रो ।
धणहरणकदमदीग्रो चोरोव्व सकज्जगुरुयाग्रो ॥६६०॥

अर्थ—ये स्त्री केसीक हैं ? जैसे वर्षाकालकी नदी ग्रभ्यन्तर मलिन होय है, तैसे इनका चित्त, राग, द्वेष, मोह, ईर्षा ग्रर ग्रसूया कहिये परके गुण नहीं देखि सकना, ग्रर मायाचार इत्यादिक दोषनिकरि निरन्तर मलिन हैं । बहुरि जैसे चोरकी बुद्धि परके धन हरनेमें है, तैसे स्त्रीकी बुद्धिहु मधुरवचनकरिके तथा रतिक्रीडाकरि तथा ग्रनुकूल प्रवृत्तिकरिके पुरुषका धन हरण करनेमें उद्यमी है, ग्रर ग्रपने कार्य करनेमें प्रधान है । गाथा—

रोगो दारिद्दं वा जरा व ण उवेइ जाव पुरिसस्स ।
ताव पिओ होदि णरो कुलपुत्तीए वि महिलाए ॥९६१॥

अर्थ——जितने रोग, दारिद्रय, जरा पुरुषकूं नहीं प्राप्त होय, तितनेही कुलमें उपजी ऐसीहू स्त्रीकूं पुरुष प्रिय है। भावार्थ——कुलवन्तीहू स्त्री रोगी दरिद्री वृद्ध भर्ताकूं नहीं चाहे है। गाथा——

जुण्णो व दरिद्दो वा रोगी सो चेव होइ से वेसो ।
णिप्पीलिओव्व उच्छू मालाव मिलाय गदगन्धा ॥९६२॥

अर्थ——जैसे जिस अवसरमें अपना भर्ता युवान छा, तथा धनवान छा, तथा नीरोग छा, तिस अवसरमें जो आपकूं प्रिय था; तैसे वृद्ध तथा दरिद्री तथा रोगी हुवा सोही आपका भर्त्ता द्वेष करवा जोग्य अप्रिय होत है। जैसे रसका भरया सांठा तथा प्रफुल्लित उज्ज्वल सुगन्ध पुष्पमाला अतिरागतें आदरने योग्य होय है, अर जाका रस काढि लिया ऐसा सांठा तथा मलिन हुई गन्धरहित माला आदरनेयोग्य नहीं होय है, तैसेही वृद्ध तथा दरिद्र तथा रोगी पुरुष आदरने योग्य नहीं होय है। गाथा——

महिला पुरिसमवण्णाए चेव वंचेइ णियडिकवडेहिं ।
महिला पुण पुरिसकदं जाणइ कवडं अवण्णाए ॥९६३॥

अर्थ——स्त्रीका ऐसा सामर्थ्य है, जो सहजही मायाचार कपट करिके अर पुरुषकूं ठिगत है। अर अपना कपटकूं पुरुष नहीं जानि सके है। बहुरि पुरुषका किया कपटकूं या स्त्री सहजही जाणै है——जामें कुछ जतन नहीं ही करे अर सहज जाणि जाय। भावार्थ——स्त्रीकी बुद्धि कपट करनेमें ऐसी प्रवीण है, जो, हजारां कपट करले अर ताके कपटकूं बहोत जतनकरिके पुरुष नहीं जाणि सके है। अर पुरुषका किया कपटकूं सहज जाणि ले है—कपट जाननेमें स्त्रीकी बुद्धिकी बडी तीक्ष्णता है। गाथा——

जह जह मण्णेइ णरो तह तह परिभवइ तं णरं महिला ।
जह जह कामेइ णरो तह तह पुरिसं विमाणेइ ॥९६४॥

अर्थ—पुरुष जैसे जैसे स्त्रीका सन्मान करे है, तैसे तैसे या स्त्री पुरुषका तिरस्कार करे है। अर पुरुष जैसे जैसे याकूं कामके अर्थि चाहे है, तैसे तैसे या पुरुषका अपमान करे है। गाथा—

मत्तो गउव्व णिच्चं पि ताउ मदविभलाउ महिलाओ ।
दासेव सगे पुरिसे किं पि य ण गणन्ति महिलाओ ।।९६५।।

अर्थ—मदोन्मत्त हस्तीकीनाईं रूपका मदकरि तथा यौवनका मदकरि तथा धनका मदकरि तथा वस्त्र आभरण शृङ्गारका मदकरिके ये स्त्रियां निरन्तर जब विह्वल होय हैं, अचेत होय हैं, तब आपका दासीपुत्रमें अर अपने भर्त्तारमें किंचितहू विशेष नहीं जाने है ! । भावार्थ—मदकी भरी हुई स्त्री ऐसा विचार नहीं करे है, जो, मेरा भर्त्ता कुलवान, पूज्य जगतमें प्रसिद्ध मेरा स्वामी है, अर यो महा अधम नीचबुद्धि मेरी दासीका पुत्र है, मैं याको स्वामिनी हूं। ऐसा कामांधके विचार कहां होय है ? । गाथा—

अणिहुदपरगवहिदया तावो वग्घीव दुट्ठहिदयाओ ।
पुरिसस्स ताव सत्तूव सदा पावं विचिंतन्ति ।।९६६।।

अर्थ—जैसे व्याघ्री विना अपराधही मारनेकूं दुष्टहृदयकूं धारे है, तैसे अरोक है परपुरुषमें गया चित्त जाका ऐसी दुष्टस्त्रीहू विना अपराधही मारनेकूं व्याघ्रीकीनाईं दुष्टहृदया है ! बहुरि ते कुशीली स्त्री शत्रुकीनाईं पुरुषका अशुभ ही सदाकाल चिंतवन करे है। गाथा—

संझाव णरेसु सदा ताओ हुन्ति खणमेत्तरागाओ ।
वादोव महिलियाणं हिदयं अदिचंचलं णिच्चं ।।९६७।।

अर्थ—ये स्त्री पुरुषनिमें सर्वकालविषं संध्याका रागकीनाईं अल्पकाल रागकूं धारे हैं। इनिका बहुत बध्या हुवाहू अनुराग एक क्षणमें जाता रहे है। स्त्रीका अन्यपुरुषमे चित्त जाय तब आपका बहुतकालका उपकारी स्नेही, तामें बहुतहू अपना रागभावकूं संध्याका रागकीनाईं क्षणमात्रमें त्यागे है। बहुरि पवनकीनाईं नित्यही इनका हृदय अतिचंचल है, एक पुरुषमें नहीं स्थिर रहे है। गाथा—

जावइयाइं तणाइं वीचीओ वालिगाव रोमाइं।

लोए हवेज्ज तत्तो महिलाचिताइं बहुगाइं ॥६६८॥

अर्थ—लोकविषे जितने तृण हैं, तथा जितने समुद्रमे लहरी हैं, तथा बालू रेतके जितने कण हैं, तथा जितने लोक में रोम हैं–बाल हैं, तितनेहू स्त्रीके परिणामनिके दुष्टविकल्प अधिक हैं। गाथा—

आगास भूमि उदधी जल मेरू वाउणो वि परिमाणं।

मादुं सक्का ण पुणो सक्का इत्थीण चित्ताइं ॥६६९॥

अर्थ—आकाशका तथा भूमिका तथा समुद्रके जलका तथा मेरूका तथा पवनकाहू परिमाण करिये है, परन्तु स्त्रीनिके मनके दुष्ट विकल्पनिका परिमाण नहीं किया जाय है ! । गाथा—

चिट्ठन्ति जहा ण चिरं विज्जुज्जलबुब्बुदो व उक्का वा।

तह ण चिरं महिलाए एक्के पुरिसे हवे पीदी ॥६७०॥

अर्थ—जैसे बीजली तथा जलका बुद्बुदा तथा उल्कापात बहुतकाल नहीं तिष्ठे है, तैसे एकपुरुषविषे स्त्रीकी प्रीतिहू बहुतकाल नहीं तिष्ठे है, स्त्रीका चित्तका राग अनेकपुरुषनिमें गमन करे है। गाथा—

परमाणू वि कहंचिवि आगच्छेज्ज गहणं मणुस्सस्स।

ण य सक्का घेत्तुं जे चित्तं महिलाए अदिसण्ह ॥६७१॥

अर्थ—मनुष्यके कदाचित् कोई प्रकार अतिसूक्ष्महू परमाणु ग्रहणमें आजाय, परन्तु अतिसूक्ष्म जो स्त्रीका परिणाम सो ग्रहण करनेकूं नहीं समर्थ होइ है। गाथा—

कुविदो व किण्हसप्पो दुट्ठो सीहो गओ मदगलो वा।

सक्का हवेज्ज घेत्तुं ण य चित्तं दुट्ठमहिलाए ॥६७२॥

अर्थ—क्रोधकूं प्राप्त हुवा कृष्णसर्प तथा दुष्टसिंह तथा मदकरि व्याप्त हस्ती एते तो ग्रहण करनेकूं समर्थ होइये है, परन्तु दुष्ट स्त्रीनिका चित्त आपके वशी करनेकूं समर्थ नहीं होइए है। गाथा—

सक्कं हविज्ज दट्ठुं विज्जुज्जोएण रूवमच्छिम्मि ।
ण य महिलाए चित्तं सक्का अदिचंचलं णादुं ॥९७३॥

अर्थ—आपका नेत्र आपकूं नहीं दीखे है, तोहू बीजलीके उद्योतकरि आपके नेत्रनिका रूपहू देखनेकूं समर्थ होइए है । परन्तु स्त्रीका अतिचंचल चित्त जानवेकूं नहीं समर्थ होइए है । गाथा—

अणुवत्तणाए गुणवत्तणेहिं चित्तं हरन्ति पुरिसस्स ।
मादा व जाव ताओ रत्तं पुरिसं ण याणन्ति ॥९७४॥

अर्थ—जितने पुरुषका चित्त आपमें आसक्त हुवा नहीं जाने, तितने माताकीनांई अनुकूल प्रवर्तन करिके तथा गुण सहित वचन करिके पुरुषका चित्तकूं हरे है । कौन कौन प्रकारकरि पुरुषका चित्तकूं हरे है, सो कहे हैं । गाथा—

अलिएहिं हसियवयणेहिं अलियरुयणेहिं अलियसवहेहिं ।
पुरिसस्स चलं चित्तं हरन्ति कवडाओ महिलाओ ।९७५।
महिला पुरिसं वयणेहिं हरदि पहणदि य पावहिदएण ।
वयणे अमयं चिठ्ठदि हियए य विसं महिलियाए ।९७६।
तो जाणिऊण रत्तं पुरिसं चम्मट्ठिमंसपरिसेसं ।
उद्दाहन्ति वधन्ति य बडिसामिसलग्गमच्छं व ॥९७७॥

अर्थ—झूंठे हास्यके वचनकरिके, तथा झूंठे रुदनकरिके, तथा झूंठे सोगनकरिके, कपटते ये स्त्रियां पुरुषका चंचलचित्तकूं हरे हैं–आपके वशी करे हैं । बहुरि ये स्त्री वचनकरिके तो पुरुषका मनकूं हरे है, अर पापरूप हृदयकरि पुरुषकूं हणे है–मारे है । जाते स्त्रीनिका वचनमें अमृत बसे है अर हृदयमें महान् विष है । जितने पुरुषकूं आपमें आसक्त नहीं जाने तितने अनुकूल प्रवर्तन तथा अत्यन्त विनयादिककरि पुरुषके आधीन प्रवर्ते है अर पश्चात् पुरुषकूं आपमें आसक्त जाणिकरिके अर पुरुषकूं चाम, हाड, मांसहीका फूतला ज्ञानरहित जानिकरि अपमान करे है । अर जैसे

वडिस जो लोहका वक्र कीला तामें उरझ्या जो मत्स्य ताकीनांई पुरुषकूं बांधत है। भावार्थ—पुरुषकूं जितने आपमें आसक्त हुवा नहीं जाने, तितने अनेक असत्यादिककरि आपमें आसक्त करे, अर जब आपमें रक्त हुवा जाने तदि अवज्ञा करि दे है। गाथा—

उदए पवेज्जहि सिला अग्गी ण डहिज्ज सीयलो होज्ज।
ण य महिलाण कदाई उज्जुयमावो णरेसु हवे ॥९७८॥
उज्जुयभावम्मि असत्तयम्मि किध होदि तासु वीसंभो।
विस्संभम्मि असन्ते का होज्ज रदी महिलियासु ॥९७९॥

अर्थ—कदाचित् पाषाणकी शिला जलविषं तिरे, तथा अग्नि शीतल होय दग्ध नहीं करे। ऐसे नहीं होनेके कार्यहू कदाचित् होय, तोहू स्त्रियनिका भाव तो पुरुषनिमें कदाचित् सरल नहीं होय है। अर सरलभाव नहीं होता सन्ता स्त्रियनिमें विश्वास कैसे होय ? अर विश्वास जो प्रतीति नहीं होता सन्ता स्त्रियनिमें रति जो प्रीति तथा आसक्ति सो कैसे होय ? गाथा—

गच्छिज्ज समुद्दस्स वि पारं पुरिसो तरित्तु ओघबलो।
मायाजलम्मि महिलोदधिपारं ण य सक्कदे गन्तुं ॥९८०॥

अर्थ—महापराक्रमी पुरुष भुजानितें तिरिकरिके समुद्रका पारकूं भी प्राप्त होत है, परन्तु मायाचाररूप जलका भरया जो स्त्रीरूप समुद्र ताके पारकूं गमन करनेकूं महाबलवानहू नहीं समर्थ होत है। गाथा—

रदणाउला सवग्घाव गुहा गाहाउला च रम्मणदी।
मधुरा रमणिज्जावि य सढा य महिला सदोसा य ॥९८१॥

अर्थ—जैसी रत्नसहित व्याघ्रकी गुफा, अर ग्राहकरि व्याप्त रमणीक नदी है, तैसे वचनकरि मधुर अर रूपकरि रमणीक दीखे है, तोहू आपाका ज्ञानरहित महामूर्ख है अर दोषनिकरि सहित है। भावार्थ—जैसी मिष्टजलकरि भरीहू नदी दुष्टजीवनिकी भरी स्पर्शनयोग्य नहीं है, तैसे मधुरवचनकरि युक्तहू दुष्ट स्त्री अंगीकार करनेयोग्य नहीं है। जैसे

रत्ननिकरि भरीहू व्याघ्रकी गुफा रमनेयोग्य नहीं, तैसे वस्त्र आभरण रूप हावभावादिककरि रमणीकहू कुशीलिनी स्त्री आदरनेयोग्य नहीं है । गाथा—

विट्ठं पि ण सब्भावं पडिवज्जदि णियडिमेव उद्देदि ।
गोधाणुलुक्कमिच्छी करेदि पुरिसस्स कुलजावि ॥९८२॥

अर्थ—यह स्त्री कैसीक है ? जिनकूं बारम्बार दिखाया हुवा अर उपदेश्या हुवाहू सत्यार्थभाव नहीं अंगीकार करे है । अर मायाचार छलकूं विना उपदेश्या स्वयमेवही प्राप्त होय है । भावार्थ—स्त्रीके ऐसाही कोऊ कुमतिज्ञानका बल है, जो. धर्मनै लोया न्यायमार्गरूप दोऊ लोकमें हितकारी ऐसी विद्या नानायत्नकरि सिखायाहू नहीं आवे है । अर छल करना, कपट करना, ठिगना, परका कपट जानि लेना, अनेक वचनकी कला करि मोहित करि लेना, धन हरि लेना, मारि लेना, अपना अपराध छिपावना, परके दूषण लगाय देना इत्यादिक विनासिखाया हृदयमें बसे है । बहुरि जैसे गोह नामा जीव जिस मकानकूं पगकरि पकडि लिया, ताकूं अपने अंगका टूक होजाय तोहू जाकूं पकड्या ताकूं नहीं छांडे है, तैसे कुलवन्तीहू स्त्री अपना हठकूं नहीं छांडे है, जो हठ ग्रहण करे तिसकूं कोटि उपायतेहू नहीं छांडे है । गाथा—

पुरिसं वधमुवणेदित्ति होदि बहुगा णिरुत्तिवादम्मि ।
दोसे संघादिदि य होदि य इत्थी मणुस्सस्स ॥९८३॥

अर्थ—निरुक्तिवाद जो शब्दका अर्थ तामें ऐसा भाव जानना, जो 'पुरुषकूं बध जो मरण ताहि प्राप्त करै' तातै याकूं 'बन्धूक' कहै है । बहुरि 'मनुष्यके दोषनिने सङ्घातयति कहिये इकट्ठे करे ताकूं स्त्री कहिये है । भावार्थ—स्त्रीनिकी संगतितै पुरुषमें अनेकदोषनिका संचय होय है, तातै स्त्री है । गाथा—

तारिसओ णत्थि अरी णरस्स अण्णोत्ति उच्चदे णारी ।
पुरिसं सदा पमत्तं कुणदित्ति य उच्चदे पमदा ॥९८४॥

अर्थ—मनुष्यके स्त्रीसमान और अरि कहिये वैरी नहीं है, तातै याकूं नारी कहिये है ! बहुरि पुरुषकूं प्रमादी करे है, तातै याकूं प्रमदा कहिये है । गाथा—

गलए लायदि पुरिसस्स अणत्थं जेण तेण विलया सा ।

जोजेदि णरं दुक्खेण तेण जुवदी य जोसा य ॥६८५॥

अर्थ—पुरुषके कंठविषं अनर्थनिकूं लयति कहिये लीन करे तातें स्त्रीकूं विलया कहिये । बहुरि नरकूं दुःखकरिके योजयति कहिये युक्त करे, तातें याकूं युवति कहिये तथा योषा कहिये । गाथा—

अबलत्ति होदि जं से ण दढं हिदयम्मि धिदिबलं अत्थि ।

कुम्मरणोपायं जं जणयदि तो उच्चदि हि कुमारी ।६८६।

अर्थ—स्त्रीनिके प्रसंगतें पुरुषनिके हृदयविषं धैर्यका बल नष्ट होय है, तातें याकूं अबला कहिये है । बहुरि पुरुषनिके कुमरणको उपाय उत्पन्न करे, तातें याकूं कुमारी कहिये है । गाथा—

आलं जणेदि पुरिसस्स महल्लं जेण तेण महिला सा ।

एवं महिलाणामाणि होंति असुभाणि सव्वाणि ॥६८७॥

अर्थ—पुरुषनिके महान् अनर्थ उपजावे है, तातें याकूं महिला कहिये है । ऐसे स्त्रीके जितने नाम हैं तितने संपूर्ण अशुभ हैं । नामही दोषनिकी घोषणा करे है ।

णिलओ कलीए अलियस्स आलओ अविणयस्स आवासो ।

आयसस्सावसधो महिला मूल च कलहस्स ॥६८८॥

सोगस्स सरी वेरस्स खणी णिवहो वि होइ कोहस्स ।

णिचओ णियडीणं आसवो य महिला अकित्तीए ॥६८९॥

अर्थ—जितनो जगतमें कलह, सो स्त्रीके निमित्ततें होय है, तातें स्त्री है सो कलहका स्थान है । तथा सकल असत्य यामे वसे है, तातें या स्त्री असत्यका स्थान है । बहुरि या स्त्री अविनयका आवास है, यामें रागी पुरुष पिताकी, उपाध्यायकी शिक्षा नहीं ग्रहण करे है, तातें अविनयका स्थान है । बहुरि खेदकूं अवकाश देनेवाली है । बहुरि कलहका मूल है,

इसबिना कलहकी उत्पत्ति होय नहीं। बहुरि शोककी नदी है। अर वैरकी खानि है। क्रोधका पुंज है। बहुरि मायाचार का समूह है। बहुरि अकीर्तिका आश्रय है। गाथा—

णासो अत्थस्स खओ देहस्स य दुग्गदीपमग्गो य।
आवाहो य अणत्थस्स होइ पहुवो य दोसाणं ॥९९०॥

अर्थ—स्त्री है सो अर्थका नाश करनेवाली है, जातैं जितना धन उपार्जन करै है तितना स्त्रीके मार्ग होय नष्ट होय है। बहुरि स्त्रीनिका रागतैं देहकाहू नाश होय है। बहुरि स्त्रीही नरक-तिर्यंचगति जावनेका मार्ग है। बहुरि अनर्थ रूप जल आवनेका धोरा है। बहुरि दोषनिकूं उत्पन्न करनेवाली है। गाथा—

महिला विग्घो धम्मस्स होदि परिहो य मोक्खमग्गस्स।
दुक्खाण य उप्पत्ती महिला सुक्खाण य विवत्ती ॥९९१॥

अर्थ—स्त्री है सो धर्ममें विघ्न है अर मोक्षमार्ग के आगल है, दुःखनिकी उत्पत्तिभूमि है, सौख्यनकूं नाश करनेकूं विपत्ति है। गाथा—

पासो व बन्धिदुं जे छेत्तुं महिला असीव पुरिसस्स।
सिल्लं व विंधिदुं जे पंकोव निमज्जिदुं महिला ॥९९२॥
सूलो इव भित्तुं जे होइ पवोढुं तहा गिरिणदी वा।
पुरिसस्स खुप्पदुं कद्दमोव मच्चुं व्व मरिदुं जे ॥९९३॥
अग्गीवि य डहिदुं जे मदोव पुरिसस्स मुज्झिदुं महिला।
महिला णिकत्तिदुं करकचोव कंडूव पउलेढुं ॥९९४॥
पाडेदुं परसू वा होदि तहा मुग्गरो व ताडेदुं।
अवहरणं पि य चुण्णेदुं जे महिला मणुस्सस्स ॥९९५॥

अर्थ--ये स्त्री कैसीक है ? पुरुषकूं बाधनेकूं पाश है, अर छेदनेकूं खड्गकीनांई है, अर भेदवेकूं बहाला (भाला) सेल कीनांई है, अर डबोइवेकूं महान् कर्दम है, अर भेदवेकूं शूल है, अर परिणामके बहाइवेकूं पर्वततैं उतरती नदीकीनांई है, मांहि पैसि जानेकूं तथा गडिवेकूं अन्ध कर्दमकीनांई है, मारनेकूं मृत्युकीनांई है, बहुरि दग्ध करनेकूं अग्निकीनांई है, पुरुषकूं मूढ करनेकूं मदिराकीनांई है, चीरवेकूं करोतकीनांई है, खुजालवेकूं खाजिकीनांई है, फाडिवेकूं फरसीकीनांई है, तथा ताडना करनेकूं मुद्गरकीनांई है, चूर्ण करिवेकूं पीसनीकीनांई है, ऐसे पुरुषकै दुःख उपजावनवाली स्त्री है । गाथा--

चन्दो हविज्ज उण्हो सीदो सूरो वि थड्डमागासं ।
ण य होज्ज अदोसा भद्दिया वि कुलबालिया महिला॥९९६

अर्थ--कदाचित् चन्द्रमा उष्ण होजाय, अर सूर्य शीतल होजाय, अर आकाश कठोर होजाय, तोहू कुलवन्ती स्त्रीहू दोषरहित नहीं होय है अर सरलपरिणामकूं नहीं धरे है । गाथा—

एए अण्णोय बहुदोसे महिलाकदे वि चिंतयदो ।
महिलाहितो विचित्तं उव्वियदि विसग्गिसरसीहिं ॥९९७॥
वग्घादीणं दोसे णच्चा परिहरदि ते जहा पुरिसो ।
तह महिलाणं दोसे दठ्ठुं महिलाओ परिहरइ ॥९९८॥

अर्थ—स्त्रीनिकरि किये येते दोष तथा अन्यहू बहुत दोष, तिनने चिंतवन करता पुरुषका चित्त इनि स्त्रियनितैं उद्वेगरूप होय है—पराङ्मुख होय है । कैसीक हैं ये स्त्री ? विषसमान तो अचेत करनेवाली तथा मारनेवाली हैं, अर अग्निसमान अन्तरंगमें दाह करनेवाली अर आत्माका ज्ञान दर्शन चारित्रकूं दग्ध करनेवाली हैं । जैसे पुरुष व्याघ्रादिक दुष्ट तिर्यंचनिके किये दोष जानि व्याघ्रादिकांकी संगतितैं दूरिहीं भागि तिष्ठे है, तैसे स्त्रियनिके दोषनिकूं देखि महान् पुरुष इनका दूरिहीतैं त्याग करे हैं । गाथा—

महिलाणं जे दोसा ते पुरिसाणं पि हुन्ति णीचाणं ।
तत्तो अहियदरा वा तेसिं बलसत्तिजुत्ताणं ॥९९९॥

अर्थ—जे दोष स्त्रीनिके पूर्वे कहे, ते सर्व दोष नीचपुरुषनिकेंहू होय हैं, अथवा बलकी शक्तिकरि युक्त जे पुरुष तिनके स्त्रीनितेंहू अधिक दोष होय हैं। भावार्थ—कितने पुरुषनिका तो परिणामही नपुंसकनितें अधिक नीच है, नित्यही भंड वचन बोलनेवाले अतिहास्यके स्वभावके धारक हैं, रात्रिदिन कामकी तीव्रताकूं धारे हैं, तथा पुरुषपणामेंहू कितने ऐसे हैं "जे स्त्रीकेसे आभरण, केशभार, दन्तनिके मसी, कज्जल, कुंकुमादिक, हावभाव विलास विभ्रम गान स्पर्शन वचनकूं धारण करिके अर आपकूं धन्य माने हैं! स्त्रीनिकीनांई अंगकी चेष्टा, केशनिका संस्कार करे हैं, ते पुरुषपर्यायमेंहू नीच आचरणके धारक तिनिकी संगतिकूं व्यभिचारिणी स्त्रीका संगकीनांई त्याग करि उच्च आचरण करना योग्य है। गाथा—

जह सीलरक्खयाणं पुरिसाणं णिंदिदाओ महिलाओ।
तह सीलरक्खयाणं महिलाणं णिंदिदा पुरिसा ॥१०००॥

अर्थ—जैसे शीलकी रक्षा करनेवाले पुरुषनिके स्त्री निंदनेयोग्य है, तैसे अपना शीलकी रक्षा करनेवाली धर्मात्मा स्त्रियां तिनके पुरुषनिका संग निंदनेयोग्य है। जे कुलवन्ती, शीलवन्ती धर्मात्मा स्त्री हैं, तिनिकूं पुरुषनिकी संगति तथा कुशीलिनी स्त्रीनिकी संगति सर्वथा त्यागनेयोग्य है। गाथा—

किं पुण गुणसहिदाओ इच्छीओ अत्थि वित्थडजसाओ।
णरलोगदेवदाओ देवेहिं वि वन्दणिज्जाओ ॥१००१॥
तित्थयरचक्कधरवासुदेवबलदेवगणधरवराणं।
जणणीओ महिलाओ सुरणरवरेहिं महियाओ ॥१००२॥

अर्थ—बहुरि शीलादिक गुणनिकरि सहित अर विस्तारनै प्राप्त हुवा है यश जिनका, अर मनुष्यलोकमें देवता समान अर देवनिकरि वन्दनीक ऐसी स्त्री लोकमें नहीं है कहा? अपि तु हैं ही। तीर्थङ्कर, चक्रधर, वासुदेव, गणधर इनकूं उत्पन्न करनेवाली इनकी माता, देवमनुष्यनिमें प्रधान तिनकरि वन्दनीक—ऐसी स्त्रियांभी जगतमें होतही हैं। गाथा—

एगपदिव्वइकण्णावयाणि धारिंति कित्तिमहिलाओ ।
वेधव्वतिव्वदुक्खं आजीवं णिंति काओ वि ॥१००३॥

अर्थ—कितनी स्त्रियां एकपतिका व्रतकरि सहित अणुव्रतनिनें धारण करे हैं अर विधवापणाका तीव्रदुःख जीवे जितने नहीं प्राप्त होय हैं । गाथा—

सीलवदीवो सुच्चन्ति महीयले पत्तपाडिहेराओ ।
सावाणुग्गहसमत्थाओ वि य काओ व महिलाओ ॥१००४॥

अर्थ- -इस लोकमें शीलव्रतकूं धारती पृथ्वीविषें देवनिकरि सिंहासनादिक प्रातिहार्यनिकूं शीलके प्रभावकरि प्राप्त भई अर शापमें अर अनुग्रहमें है शक्ति जिनकी ऐसीहू कितनीक स्त्री पृथ्वीतलमें हैंही । गाथा—

उग्घेण ण वूढाओ जलन्तघोरग्गिणा ण दड्ढाओ ।
सप्पेहिं सावज्जेहिं वि हरिदा खद्धा ण काओ वि ॥१००५॥

सव्वगुणसमग्गाणं साहूणं पुरिसपवरसीहाणं ।
चरमाणं जणणित्तं पत्ताओ हवन्ति काओ वि ॥१००६॥

अर्थ—लोकमें कितनी शीलवतीनिकूं शीलके प्रभावकरि प्रबल जल बहावेकूं समर्थ नहीं होय है । अर प्रज्वलित होती घोर अग्नि नहीं दग्ध करिसके है । अर सर्प तथा सिंह व्याघ्रादिक दुष्टजीव दूरिहीतें छांडि जाय हैं, ऐसीहू स्त्रियां हैं ही । अर जे सर्वगुणसमूहके धारक साधु तिनकी तथा पुरुषनिमें प्रधान चरम शरीरी तिनकी मातापणाकूं धारण करती कितनी स्त्रियां जगतमें होय ही हैं । भावार्थ—जगतमें ऐसी स्त्रियां होय हैं, जिनकूं देव वन्दना करे हैं, सम्यग्दर्शनके धारण करनेवाली, एकजन्म बीचि धारण करि तीसरे जन्म निर्वाण गमन करनेवाली, महान् साहसके धरनेवाली, जगतके पूज्य, महासती, धर्मकी मूर्ति वीतरागरूपिणी तिनकी महिमा कोटिजिह्वानितें कोटिवर्ष वर्णन करनेकूं समर्थ कोऊ नहीं है । गाथा—

मोहोदयेण जीवो सव्वो दुस्सीलमइलिदो होदि ।

सो पुण सव्वो महिला पुरिसाणं होइ सामण्णा ॥१००७॥

तह्मा सा पल्लवणा पउरा महिलाण होदि अधिकिच्चा ।

सीलवदीओ भणिदे दोसे किह णाम पावन्ति ॥१००८॥

अर्थ—सर्वही जो जीव सो मोहका उदयकरि कुशीलकरि मलिन होय है, सो मोहका उदय स्त्रीनिके अर पुरुषनिके सामान्य होय है, तातैं या कथनो बहुतप्रकार स्त्रीनिकूं आश्रयकरिके होत है, अर जो शीलव्रत धारण करनेवाली स्त्रियां हैं तिनके पूर्वैं कहे जे दोष ते कैसे प्राप्त होय ? जे मोहके वशीभूत हैं तिन स्त्रीपुरुषनिके ये सर्व दोष जानने, मोहरहित कदाचित् दोषनिकूं नहीं प्राप्त होय है ।

ऐसे ब्रह्मचर्य नामा महाव्रतका वर्णनमें स्त्रीकृतदोषनिका पैसठि गाथानिमें वर्णन किया । अब ब्रह्मचर्यव्रतके कथन विषै अडसठि गाथानिमे अशुचित्वका वर्णन करे हैं । गाथा—

देहस्स बीयणिप्पत्तिखेत्तआहारजम्मवुढ्ढीओ ।

अवयवणिग्गमअसुई पिच्छसु वाधी य अधुवत्तं ॥१००९॥

अर्थ—देहके विषै वीतरागताका कारण ग्यारह अधिकार ज्ञानी शीलवान तिनकूं जानने योग्य है । इस देहका बीज कहा है, सो जानना ॥१॥ तथा देहकी उत्पत्ति कैसी, सो जान्या चहिये ॥२॥ तथा देहकी उत्पत्तिका क्षेत्र जानना, जो, या देहकी कहां उत्पत्ति होय है ? ॥३॥ बहुरि देहका आहार कहा है ? ॥४॥ तथा देहका जन्म कैसे होय ? ॥५॥ तथा देह वृद्धिकूं कैसे प्राप्त होय ? ॥६॥ तथा देहके अवयवांका निर्गमन कहिये प्रकट होना ॥७॥ तथा देहका मध्यतैं मल निकलना ॥८॥ तथा देहमें अशुचिता ॥९॥ तथा देहमें व्याधि ॥१०॥ तथा देहका अध्रुवपणा ॥११॥ ये ग्यारह अधिकार चिंतवन करना । तिनमैं बीजकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

देहस्स सुक्कसोणिय असुई परिणामिकारणं जह्मा ।

देहो वि होइ असुई अमेज्झघदपूरवो व तदो ॥१०१०॥

अर्थ—जातैं देह को उत्पत्तिका कारण महा अशुचि माताका रुधिर पिताका वीर्य है, जैसें मलिनवस्तुका कोया जो घेवर सोहू मलिन ही होय है, तैसें अशुचिबीजतैं देहहू अशुचिही उपजे है । गाथा—

दठ्ठुं विहिंसणीयं अमेज्झमिव संकुदो पुणो होज्ज ।
ओज्जिग्घिदुमालद्धुं परिभोत्तुं चावि तं बीयं ।।१०११।।

अर्थ—जो देखतैं ही विष्टाकीनांई ग्लानिकै योग्य है, तो ऐसा मलिन माता का रुधिर पिता का वीर्य सो सूंघिवेकूं, आलिंगन करवेकूं अर भोगिवेकूं कैसें समर्थ होइये ?

समिदकदो घदपुण्णो सुज्झदि सुद्धत्तणेण समिदस्स ।
असुचिम्मि तम्मि बीए कह देहो सो हवे सुद्धो ।।१०१२।।

अर्थ—जैसें समित जो गेहूं की कणिका ताका कोया जो घेवर सो गोहांकी कणिकका शुद्धपणातैं घेवरहू शुद्धही होय है । अर अशुचि जो माताका रुधिर पिताका वीर्य तातैं उपज्या देह कैसें शुद्ध होय ? मलिनतैं उपज्या महामलिनही होय । ऐसें तो देहका बीज कह्या । अब शरीरकी उत्पत्तिका क्रमकूं पांच गाथानिकरि निरूपण करे है । गाथा—

कललगदं दसरत्तं अच्छदि कलुसीकदं च दसरत्तं ।
थिरभूदं दसरत्तं अच्छदि गब्भम्मि तं बीयं ।।१०१३।।
तत्तो मासं बुब्बुदभूदं अच्छदि पुणो वि घणभूदं ।
जायदि मासेण तदो मंसप्पेसी य मासेण ।।१०१४।।
मासेण पंच पुलगा तत्तो हुन्ति हु पुणो वि मासेण ।
अंगाणि उवंगाणि य णरस्स जायन्ति गब्भम्मि ।।१०१५।।
मासम्मि सत्तमे तस्स होदि चम्मणहरोमणिप्पत्ती ।
फदणमट्ठममासे णवमे दसमे य णिग्गमणं ।।१०१६।।

सव्वासु अवत्थासु वि कललादीयाणि ताणि सव्वाणि ।
असुईणि अमिज्झाणि य विहिंसणिज्जाणि णिच्चंपि१०१७

अर्थ—गर्भमें तिष्ठता जो मिल्या हुवा माताका रुधिर अर पिताका वीर्य, सो दश रात्रिपर्यंत तो हालता हुवा तिष्ठे है अर दश दिन गया पाछें काला होय दश रात्रि तिष्ठे है, अर बीस दिन पाछें दस दिन में थिर होय तिष्ठे है—हलन चलन नहीं करै । ऐसें एक मांस तो व्यतीत होय । पाछें दूजे मासविषें बुद्बुदारूप होय तिष्ठे है, तीजे मासविषें वे बुद्बुद घन कहिये कठोरताने प्राप्त भया तिष्ठे है । बहुरि चौथे मासविषें मांसकी पेशी मांसकी डली होय तिष्ठे है । बहुरि पांचमां महीनामैं पंच पुलक उस मांसकी डलीमैं निकसे है, एक मस्तक का आकार, अर दोय हस्तन का अर दोय पगनिका ऐसे पंच अंकुर होय हैं । बहुरि छठे मासविषें मनुष्य के अंग उपांग प्रकट हैं । तिनमें दोय पग, दोय बाहू, एक नितंब, एक पूठि, एक हृदय, एक मस्तक ये तो आठ अंग हैं, अर अंगनिमै नेत्र नाशिका कर्ण मुख ओठ अंगुली इत्यादिकनि की उपांग संज्ञा है । सो छठे महीने में अंग उपांग गर्भविषें प्रकट होय हैं । अर सप्तम मासविषें मनुष्यका चाम, तथा नख, तथा रोम जे बाल, तिनकी उत्पत्ति होय है, अर अष्टम मासविषें गर्भ में किंचित् चलन करे है–हाले है, अर नवमां मासविषें तथा दशमां मासविषें उदरबारै निर्गमन होय है । ऐसें जिस दिन गर्भमें माताका रुधिर पिताका वीर्य स्थिति रह्या, तिस दिनतैं कलिलादिक जे सकल व्यवस्था तिनविषें महामलिनवस्तुकीनाई अशुचि नित्यही ग्लानियोग्यही रह्या ! ऐसें या देहको उत्पत्तिहू महा अशुचिही कही । अब जहां यो देह उपज्यो उस देहके क्षेत्रकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं । गाथा–

आमासयम्मि पक्कासयस्स उवरिं अमेज्झमज्झम्मि ।
वत्थिपडलपच्छण्णो अच्छइ गब्भे हु णवमासं ॥१०१८॥

अर्थ—भक्षण कीया जो भोजन सो उदरकी अग्निकरि अपक्व हो है, ताकूं आम कहिये, ताके रहने का स्थान ताहि आमाशय कहिये । अर जो भोजन उदरकी अग्निकरि पकि गया ताकूं पक्व कहिये, सो पक्व आहार जो मल ताके रहनेका स्थानकूं पक्वाशय कहिये है । सो आमका रहने का स्थानविषें अर पक्व जो मल ताका स्थान के उपरि पक्व अपक्व जो विष्टा ताके बीचि वस्तिपटल जो मांसरुधिरकरि व्याप्त जो जालकासा आकार, ताके मांहि नव महीनापर्यंत गर्भ में तिष्ठत है । गाथा–

वमिदा अमेज्झमज्झे मासंपि समक्खमत्थिदो पुरिसो ।
होदि हु विहिंसणिज्जो जदि वि हु णीयल्लओ होज्ज॥१०१९॥
किह पुण णवदसमासे उसिदो वमिगा अमेज्झमज्झम्मि ।
होज्ज णविहिंसणिज्जो जदि वि हु णीयल्लओ होज्ज।१०२०।

अर्थ—वमन अर विष्ठा इनके मध्य एक महिनामात्रहू कोई कूं प्रत्यक्ष तिष्ठता देखें तो यद्यपि आपका निज बंधु होइ तोहू ग्लानि करनेयोग्य होय है। बहुरि जो नव महिना तथा दश महिना पर्यंत वमन अर विष्ठाके मध्य तिष्ठया पुरुष ग्लानियोग्य कैसे नहीं होय ? यद्यपि आपको घणो प्रिय हितू बांधवही होहू, सुग्या करने योग्य होय ही है। ऐसें तीन गाथानिकरि क्षेत्रकी अशुचिता वर्णन करी। अब जिस आहारकरि देह वृद्धिकूं प्राप्त हुवा, तिस आहारकूं पांच गाथानिकरि कहे हें। गाथा–

दन्तेहिं चव्विदं वीलणं च सिंभेण मेलिदं सन्तं ।
मायाहारियमण्णं जुत्तं पित्तेण कडुएण ॥१०२१॥
वमिगं अमेज्झसरिसं वादविओजिदरसं खलं गब्भे ।
आहारेदि समन्ता उवरिं थिप्पंतगं णिच्चं ॥१०२२॥
तो सत्तमम्मि मासे उप्पलणालसरिसी हवइ णाही ।
तत्तो पाए वमियं तं आहारेदि णाहीए ॥१०२३॥

अर्थ—गर्भविषें तिष्ठता मनुष्य काहेका आहार करे है, सो कहे हैं। माताकरि भक्षण कीया जो अन्न सो प्रथम तो दंतनिकरि चर्वण कीया, बहुरि वीलनं कहिये सूक्ष्म कीया, बहुरि कफकरि मिल्या, बहुरि कडवा पित्तकरि संयुक्त हुवा, वमन कीया जो मलिन मल ताके सदृश हुवा, बहुरि गर्भमें पवनकरिकें खलभाग अर रसभाग जुदा कीया सो सर्व तरफतें उपरितें झरता-पड़ता जो बूंद ताही नित्य ही गर्भ में तिष्ठता जन आहार करे है। बहुरि छ महिनापाछें सप्तम

मासविषे कमलकी नालीसदृश नाभि होय है सो नाभिकी नालीकरि महान् मलिन वमन अर अपक्व मल ताहि आहार करे है। गाथा—

वमियं व अमेज्झं वा आहारिदवं स किं पि ससमक्खं।
होदि हु विहिंसणिज्जो जदि वि य णीयल्लओ होज्ज ॥१०२४॥
किह पुण णवदसमासे आहारेदूण तं णरो वमियं।
होज्ज ण विहिंसणिज्जो जदि वि य णीयल्लओ होज्ज।१०२५।

अर्थ—जो आपका निजबंधुभी होय अर जो एकवारहू आपके प्रत्यक्ष वमन वा अमेध्य जो विष्ठा ताहि भक्षणकरे तो ग्लानि के योग्य हो जाय, आदरिबे जोग्य नहीं रहे, तो नव महीना वा दश महीनापर्यंत वमनकूं आहार करै सो कैसे ग्लानियोग्य नहीं होय ? यद्यपि अपना निजबंधु होय तोहू ग्लानियोग्य ही है। ऐसें आहारकी अशुचिता वर्णन करी। अब शरीर के जन्मकूं दोय गाथानिकरि करे हैं। गाथा—

असुचि अपेच्छणिज्ज दुग्गंधं मुत्तसोणियदुवारं।
वोत्तुं पि लज्जणिज्जं पोट्टमहं जम्मभूमी से ॥१०२६॥
जदि दाव विहिंसिज्जइ वत्थीए मुहं परस्स आलट्टुं।
कह सो विहिंसणिज्जो ण होज्ज मल्लोढपोट्टमुहो ।१०२७।

अर्थ—जो उदरका मुख है सो इस देह की जन्मभूमि है, सो कैसाक है उदरका मुख ? महान् अशुचि है, बहुरि देखने योग्य नहीं है, बहुरि दुर्गंध है, बहुरि मूत्र अर रुधिर इनके निकलने का द्वार है, बहुरि मुखतें नाम लेने में बड़ी लज्जा उपजै है। ऐसा उदरका मुख जन्मभूमिहू महान् अशुचि है ! जो हाल अन्य कोऊकी बस्तिमुख जो रुधिरमांस का भरचा जालकीनांई प्राणीकूं आच्छादन करनेवाली थैली सो स्पर्शनेतें देखनेतेंही महाग्लानि आवै, तो आलिंगन कीया जो योनिमुख तथा जरायुपटल में वसना कैसे ग्लानियोग्य नहीं होय ? ऐसें जन्मभूमि की अशुचिता कही। अब शरीर की वृद्धिकूं च्यारि गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

बालो विहिंसणिज्जाणि कुणदि तह चेव लज्जणिज्जाणि ।
मेज्झामेज्झं कज्जाकज्जं किंचिवि अयाणन्तो ॥१०२८॥
अण्णस्स अप्पणो वा सिंहाणयखेलमुत्तपुरिसाणि ।
चम्मट्ठिवसापूयादीणि य तुण्डे सगे छुभदि ॥१०२९॥
जं किं चि खादि जं किं चि कुणदि जं किं चि जंपदि अलज्जो ।
जं किं चि जत्थ तत्थ व वोसरदि अयाणगो बालो ॥१०३०॥
बालत्तणे कदं सव्वमेव जदि णाम संभरिज्ज तदो ।
अप्पाणम्मि वि गच्छे णिव्वेदं किं पुण परंमि ॥१०३१॥

अर्थ—यो मनुष्य बाल्य अवस्था के विषै "यो वस्तु शुचि है, यो अशुचि है, तथा यो कार्य करनेयोग्य है, यो कार्य करनेयोग्य नहीं है," ऐसैं किंचिन्मात्रहू नहीं जानता महानिंद्य ग्लानियोग्य कर्म करे है–अर महा लज्जनीय कर्म करे है। सो बाल्य अवस्था में कहा कहा निंद्य कर्म करे है सो कहे हैं–अन्यका तथा आपका नासिका का मल, तथा कफ, तथा मूत्र, तथा विष्ठा, तथा चाम, तथा हाड, तथा नसां, तथा राधि इत्यादिक महानिंद्य वस्तु अपने मुखविषै क्षेपे है! बाल्य अवस्था में अज्ञानी बाल खाद्य तथा अखाद्य खाय है, बोलने योग्य वा अयोग्य का विचार रहित वचन बोले हैं। जोग्य तथा अजोग्य का ज्ञानरहित कार्य कार्य करे है, बहुरि निर्लज्ज हुवा जोठें तीठें शुचि अशुचि स्थान में मलमूत्र छोडे है। बहुत कहा कहिये? जो बाल्यपणामैं आपविषै आप जो सर्व कीया ताकूं जो स्मरणहू करै तो वैराग्यकूं प्राप्त होजाय, परविषै वर्त्ते है ताका तो कहा कहना! । ऐसैं देहकी वृद्धि मैं अशुचिता दिखाई। अब देहके अवयवनिकूं चौदह गाथानिकरि कहे हैं। गाथा–

कुणिमकुडी कुणिमेहिं य भरिदा कुणिमं च सवदि सव्वत्तो ।
ताणं व अमेज्झमयं अमेज्झभरिदं सरीरमिणं ॥१०३२॥

अर्थ—यो देह कुथित जो मलिनवस्तु ताकी कुटी है, तथा मलिनवस्तुहीकरि भरी है, तथा सर्व तरह सर्वद्वारनितैं वा सर्वशरीरके अंग–उपांगनितैं सिड्या दुर्गंध महामलिन मल ताकूं निरंतर स्रवे है–झरे है, तथा मलका भरया

मलका भाजनकोनांई यो शरीर मलकरि भरचो है अर मलमयही है। अब शरीरके अवयवनिकूं तेरह गाथानिकरि जणावे है। गाथा—

अट्ठीणि हुन्ति तिण्णि हु सदाणि भरिदाणि कुणिममज्जाए।
सव्वम्मि चेव देहे संधीणि हवन्ति तावदिया ॥१०३३॥

ण्हारूण णवसदाइं सिरासदाणि य हवन्ति सत्तेव।
देहम्मि मंसपेसीण हुन्ति पंचेव य सदाणि ॥१०३४॥

चत्तारि सिराजालाणि हुन्ति सोलस य कण्डराणि तहा।
छच्चेव सिराकुच्चा देहे दो मंसरज्जू य ॥१०३५॥

सत्त तयाओ कालेज्जयाणि सत्तेव होंति देहम्मि।
देहम्मि रोमकोडीण होंति सीदी सदसहस्सा ॥१०३६॥

पक्कामयासयत्था य अन्तगुंजाओ सोलस हवन्ति।
कुणिमस्स आसया सत्त हुन्ति देहे मणुस्सस्स ॥१०३७॥

थूणाओ तिण्णि देहम्मि होंति सत्तुत्तरं च मम्मसदं।
णव होंति वणमुहाइं णिच्चं कुणिमं सवन्ताइं ॥१०३८॥

देहम्मि मच्छुलिंगं अंजलिमित्तं सयप्पमाणेण।
अंजलिमित्तो मेदो उज्जोवि य तत्तिओ चेव ॥१०३९॥

तिण्णि य वसंजलीओ छच्चेव य अंजलीओ पित्तस्स।
सिंभो पित्तसमाणो लोहिदमद्धाढगं होदि ॥१०४०॥

मुत्तं आढयमेत्तं उच्चारस्स य हवन्ति छप्पच्छा ।
वीसं णहाणि दन्ता बत्तीसं होंति पगदीए ॥१०४१॥

किमिणो व वणो भरिदं सरीरं किमिकुलेहिं बहुगेहिं ।
सव्वं देहं अप्फंदिदूण वादा ठिदा पच ॥१०४२॥

एवं सव्वे देहम्मि अवयवा कुणिमपुग्गला चेव ।
एक्कं पि णत्थि अंगं पूय सुचियं च जं होज्ज ॥१०४३॥

अर्थ—इस देहविषै तीनसै हाड हैं । कैसेक है हाड ? सिडीहुई मींजीकरि भरे हैं । सर्वही देहविषै तीनसैही संधि हैं । बहुरि देहविषै नवसै ण्हारू (स्नायु) कहिये नसां हैं । अर सातसै शिरा कहिये छोटी नसां हैं । बहुरि देहविषै पांचसै मांसकी पेशी हैं, तिनकूं लोकमें डली वा बोटी कहे हैं । बहुरि देहविषै च्यारि नसांके जाल हैं । सोलह कंडरा हैं । षट् सिरामूल हैं, नसांनिके मूल हैं । दोय मांसके रज्जू हैं । बहुरि सप्त त्वचा हैं । सात कलेजा हैं । देह में असी लाख कोडि रोम हैं । बहुरि पक्वाशय अर आमाशयमें तिष्ठती सोलह आंतनकी यष्टि हैं । सप्त मलके आश्रय हैं । इस मनुष्यदेहके विषै तीन स्थूणी हैं । एकसो सात मर्मस्थान हैं अर नव व्रणमुख हैं, मल निकसनेके द्वार हैं, ते नित्यही दुर्गंध मल स्रवे हैं । बहुरि देहविषै मस्तिक अपनी एक अंजुलिप्रमाण है । बहुरि एक अंजुलि मेद नामा धातु है । एक अंजुलिप्रमाण वीर्य है, शुक्र है । बहुरि मांसके मांहि घृत होय ताहि वसा कहे हैं, सो अपनी तीन अंजुलिप्रमाण है । बहुरि पित्त छह अंजुलिप्रमाण है । बहुरि पित्तबराबरि कफहू छह अंजुलिप्रमाण है । बहुरि रुधिर अर्द्ध आढकप्रमाण है । अर मूत्र आढकप्रमाण है । अर मल छह सेर है । इहां आढककूं आठ सेर कहै हैं । बहुरि देहमें बीस नख हैं । अर बत्तीस दंत हैं । यह प्रमाण सामान्यप्रकृतिकरि कह्या हुवा है, विशेष हीनाधिक भी होय है । एता प्रमाणका नियम ही नहीं, देश काल रोगादिक के निमित्ततें अनेक प्रकार होय हैं । सिड्या हुवा व्रणकीनांई बहुत कृमिनिकरि भरया हुवा सर्व देह है । बहुरि सर्व देहकूं व्याप्यकरि पंच पवन तिष्ठे हैं । ऐसें सर्व देहविषै सर्वही अवयव कहिये अंग उपांग ते सिडे हुये दुर्गंध पुद्गल हैं । या देह में ऐसा एकहू अंग नहीं है, जो पवित्र है–शुचि है, समस्त अशुचिही है । गाथा–

जदि होज्ज मच्छियापत्तसरसियाए तयाए णो थगिदं ।

को णाम कुणिमभरियं सरीरमालद्धुमिच्छेज्ज ॥१०४४॥

अर्थ—जो यो देह मक्षिकाकी पर समान भी जो त्वचा कहिये चाम ताकरिकै आच्छादित नहीं होय, तो मलिन मांसरुधिरादिककरि भरयो जो यो शरीर ताही स्पर्शन करनेकूं कौन इच्छा करै ? । भावार्थ-या देहके उपरितै जो मक्षिकाकी पर समान भी जो चामडी उतरि जाय, तो कोऊसूं देख्याहू नहीं जाय । गाथा–

परिदड्ढसव्वचम्मं पंडुरगत्तं मुयंतवणरसियं ।

सुठ्ठु वि दइदं महिलं दठ्ठूं पि णरो ण इच्छेज्ज ॥१०४५॥

अर्थ—जो या देहका सर्व चाम दग्ध होजाय अर जो श्वेत शरीर निकलि आवै व्रणांमैंसूं रस झरने लगिजाय, तो बहुतहू प्रिय जो स्त्री ताहि देखने कूंहू मनुष्य इच्छा नहीं करे है ।

ऐसें तेरह गाथानि में शरीर के अत्यंत अशुचि अवयवनिकूं दिखाये । अब देहतें मैलका निर्गमन तीन गाथानिकरि कहे हैं । गाथा–

कण्णेसु कण्णगूधो जायदि अच्छीसु चिक्कणंसूणि ।

णासागूधो सिंघाणयं च णासापुडेसु तहा ॥१०४६॥

खेलो पित्तो सिंभो वमिया जिब्भामलो य दन्तमलो ।

लाला जायदि तुण्डम्मि मुत्तपुरिसं च सुक्कमिवरत्थे ॥१०४७॥

सेदो जादि सिलेसो व चिक्कणो सव्वरोमकूवेसु ।

जायन्ति जूवलिक्खा छप्पदियाओ य सेवेण ॥१०४८॥

अर्थ—इस देह में जे कर्ण हैं तिनविषै कर्णगूथ उपजे हैं । अर नेत्रनिमैं नेत्रमल अर अश्रु उपजे है । अर नासिका के पुटनिमै सिंहाणक जो नासिका का मल उपजे है । बहुरि मुखविषै खंखार, तथा पित्त, तथा कफ है, तथा वमन, तथा

जिव्हाका मल, तथा दंतमल, तथा लाला उत्पन्न होय है । अर अधोद्वारनिमैं मूत्र, तथा मल तथा वीर्य उत्पन्न होय है, बहुरि सर्व रोमनिके छिद्र तिनमेंतें सचिक्कण पसेव निकले हैं । बहुरि पसेवकरि यूका, तथा लिक्षा, तथा चर्मयूका उत्पन्न होय है । भावार्थ-पसेवनितें जूं तथा लीख तथा चमजूं उत्पन्न होय हैं । ऐसें तीन गाथानिकरि निर्गमन कह्या । अब अशुचिता दश गाथानिकरि कहै हैं । गाथा-

विट्ठापुण्णो भिण्णो व घडो कुणिमं समन्तदो गलइ ।
पूदिगालो किमिणोव वणो पूदिं च वादि सदा ॥१०४९॥

अर्थ—जैसें विष्ठाका भरया फूटा घडा सर्वतरफतें दुर्गंध मलकूं स्रवे है; तैसें शरीरहू सर्वतरफतें निरंतर मल स्रवे है, बहुरि जैसें कृमिनिका भरया व्रण सो दुर्गंध राधिकूं स्रवे है, तैसें या शरीरकूं जानहु । गाथा-

इंगालो धोवन्ते ण सुज्झदि जह महापयत्तेण ।
सव्वेहिं समुद्देहिम्मि सुज्झदि देहो ण धुव्वन्तो ॥१०५०॥

अर्थ—जैसें कोइलाकूं सर्व समुद्र के जलकरि बड़े यत्नकरि धोवतांहू उज्ज्वल नहीं होय है—मांहीतें श्यामता निकलै है, तैसें देहकूं बहोत जलादिकतें धोयेहू मांहीतें पसेवादिक मलही निकले है । गाथा-

सिण्हाणुब्भंगुव्वट्टणेहि मुहदतअच्छिधुवणेहिं ।
णिच्चंपि धोवमाणो वादि सदा पूदियं देहो ॥१०५१॥

अर्थ—स्नान, तथा अतर फुलेल, तथा उवटणा तिनकरिकै, तथा मुख दंत नेत्रनिके धोवनेकरिकै, तथा नित्यही स्नानादिकनिमैं धोया हुवाहू देह दुर्गंधही सदा वमे है । भावार्थ-चंदन कपूर अतर फुलेल वारंवार लगावतेंहू तथा वारंवार धोवतेहू यो देह अपनो दुर्गंधता नहीं छांडे है । अपने संसर्गतें अन्य सुगंधद्रव्यनिकूंहू दुर्गंध करे है । गाथा-

पाहाणधादुअंजणपुढवितयाछल्लिवल्लिमूलेहिं ।
मुहकेसवासन्तंबोलगन्धमल्लेहिं धूवेहिं ॥१०५२॥

अभिभूददुव्विगन्धं परिभुज्जदि मोहिएहिं परदेहं ।
परिभुज्जदि पूइयमं संजुत्तं जह कडुगभंडेण ॥१०५३॥

अर्थ—पाषाण जो रत्न, तथा सुवर्ण, तथा अंजन, तथा मृत्तिका, तथा सुगन्ध त्वचा छालि तथा वेलि, तथा मूल जो जड, तथा मुखकूं सुगंध करनेवाले द्रव्य, तथा केशनिकूं सुगंध करनेवाले तांबूल गंध माल्य धूप, तिनकरि दूरि कीया है दुर्गंध जाका ऐसा परके देहकूं मूढजन अति आसक्त हुवा भोगे है । जैसे कटुक भांड जे मिरच हिंगु इत्यादिककरि संस्कार रूप कीया जो महादुर्गंध मांस ताहि भक्षण करे है । भावार्थ—जैसे महादुर्गंध मांसकूं हिंगु मिरच इत्यादिकनितें सुधारि अर लोलपी पापी भक्षण करे है, तैसे नीच पुरुष अन्य के दुर्गंधमलिनशरीरकूं आभरण वस्त्र सुगंधादिकनितें सुधारि भोगता आपकूं धन्य माने है । गाथा—

अब्भंगादीहिं विणा सभावदो चेव जदि सरीरमिमं ।
सोभेज्ज मोरदेहुव्व होज्ज तो णाम से सोभा ॥१०५४॥

अर्थ—जो मयूर नामा पक्षीका देहकोनाईं स्नान उद्वर्तन तेल फुलेलविना स्वभावतेंही जो यो शरीर शोभावान् होय, तदि तो शोभा सांची होय । अर जो स्वयं मलिन, दुर्गंध, तो परकृत काही की शोभा ? । गाथा—

जदि दा विहिंसदि णरो आलद्धुं पडिदमप्पणो खेलं ।
कध द णिपिवेज्ज बुधो महिलामुहजायकुणिमजलं ॥१०५५॥

अर्थ—जो अपना कफ पड्या हुवाकूं आप स्पर्श करनेकूं बडी ग्लानि करे है, तो अब स्त्रीका मुखकी लालका दुर्गंध बुरा जल कामी कैसे पीवै ? गाथा—

अन्तो वहिं व मज्झे व कोइ सारो सरीरगो णत्थि ।
एरंडगो व देहो णिस्सारो सव्वहिं चेव ॥२०५६॥

अर्थ—जैसे एरंडकी लकडीमें कहूंही सार नहीं, तैसे इस मनुष्यके देहमें मांहि बाहिर मध्यमें, सर्व शरीर में कठैंही सार नहीं है । गाथा—

चमरीबालं खग्गिविसाणं गयदन्तसप्पमणिगादी ।

दिट्ठो सारो ण य अत्थि कोइ सारो मणुस्सदेहम्मि ॥१०५७।

अर्थ—चमरीगायके बाल, गेंडाके सींग, हस्तीके दंत, सर्पके मणि इत्यादिक देहके अंग कोऊ कार्यके साधनेतें सारहू है; परंतु मनुष्यके देहमै तो कोऊ वस्तु साररूप नहीं है । गाथा—

छगलं मुत्त दुद्धं गोणाए रोयणा य गोणस्स ।

सुचिया दिट्ठा ण य अत्थि किंचि सुचि मणुयदेहस्स ।१०५८।

अर्थ—बकरेका मूत्र, गायका दुग्ध, बलधका गोरोचन लौकिकमें शुचिहु देखिये है । परंतु मनुष्यदेहविषें तो किंचित्‌हू शुचि नहीं है । ऐसें देहमें अशुचिता दश गाथानिकरि दिखाई । अब तीन गाथानिकरि देह मै व्याधि दिखावे है । गाथा—

वाइयपित्तियसिंभियरोगा तण्हा छुहा समादी य ।

णिच्चं तवन्ति देहं अद्दहिदजलं व जह अग्गी ॥१०५९॥

अर्थ— जैसें चूलाऊपरि तिष्ठता पात्रमें जलकूं अग्नि औटावे है, तपावे है; तैसें वातपित्त कफ रोग तथा क्षुधा तृषा तथा श्रम जो खेद ते देहकूं नित्यही तप्तायमान करे हैं । गाथा—

जदि रोगा एक्कम्मि चेव अच्छिम्मि होंति छण्णउदी ।

सव्वम्मि दाइं देहे होदव्वं कदिहिं रोगेहिं ॥१०६०॥

पंचेव य कोडीओ भवन्ति तह अट्ठसट्ठिलक्खाइं ।

णव णवदिं च सहस्सा पंचसया होंति चुलसीदी ॥१०६१॥

अर्थ—जो एक नेत्रविषें छिनवें रोग होत हैं, तो संपूर्ण देहविषें कितने रोग होने जोग्य होय ? पांच कोटि अडसठि लाख निन्याणवें हजार पांचसें चोरासी रोग देहमें उपजनेजोग्य हैं । ऐसे तीन गाथानिमें रोगका वर्णन किया । अब देहको अध्रुवता ग्यारह गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

पीणत्थणिदुवदणा जा पुव्वं णयणदइदिया आसे ।
सा चेव होदि संकुडिदंगो विरसा य परिजुण्णा ॥१०६२॥

अर्थ—इस शरीरका स्वरूप देखहू ! जो स्त्री पूर्वे यौवन अवस्थामें पीनस्तनी कहिये जाका कुच पुष्ट था, अर चन्द्रमावत् आनन्दकारी जाका मुख था, अर नेत्रनिकूं अतिवल्लभ थी, जाका स्पर्शनतें तृप्ति नहीं आवे थी, सोही स्त्री वृद्ध अवस्थामें तथा रोगकी अवस्थामें तथा दारिद्रय शोकादिककरि दुःख अवस्थामें कैसी भई है ? जाका सर्व अंग संकुचित अर शृङ्गारहास्यादिक रसरहित विरस तथा कामरसरहित अत्यन्त जीर्ण कुटीकीनांई दीखे है । गाथा—

जा सव्वसुन्दरंगी सविलासा पढमजोव्वणे कन्ता ।
सा चेव मदा सन्ती होदि हु विरसा य बीभच्छा ॥१०६३॥

अर्थ—जो स्त्री प्रथमयौवनमें सर्व सुन्दर अंगका धारनेवाली थी, अर अनेकविलाससहित थी, अर मनोहर थी, सोही स्त्री मृतक हुई सन्ती अतिविरस दीखे है, अर अति भयानक दीखे है । ऐसे दोय गाथानिकरि शरीरकी तथा शरीर की कांतियौवनकी अध्रुवता कही । अब संयोगहूकी अध्रुवता दोय गाथानिकरि दिखावे है । गाथा—

मरदि सयं वा पुव्वं सा वा पुव्वं मदिज्ज से कन्ता ।
जीवन्तस्स व सा जीवन्ती हरिज्ज बलिएहिं ॥१०६४॥

सा वा हवे विरत्ता महिला अण्णेण सह पलाएज्ज ।
अपलायन्ति व तगी करिज्ज से देमणस्सणि ॥॥१०६५॥

अर्थ—बहुरि जो मनकूं आह्लादकारी स्नेहकी भरी रूपवान, विनयवान, यौवनवान, स्त्रीकूं छांडि पहली आप मरण करे तो मरणका अवसरमें महान् दुःख उपजे है ! जो, हाय हाय ! या स्त्री मो विना कैसे जन्म पूरा करेगी ? अर मुर्झविना याका वांछित कार्य कोन साधेगा ? अर मोकूं ऐसा संजोग मिलना अब अनेकजन्मनिमेंहू नहीं ! ऐसे आर्तध्यान करता दुर्गतिमें जाय पडे हैं । बहुरि जो स्त्रीका मरण पहली होवे तो, आप वाका गुण स्मरण करता वियोगका दुःखकरि

अत्यन्त तप्तायमान होता, राति अर दिन शोकमे जलता विलाप करे है ! हाय ! उस वल्लभाकू कहा देखू ! मेरा कौन सहायी रह्या ? सर्व कुटुम्बमें मेरा कोऊ नहीं ! मेरा दुःख सुख कोनकू कहूं ? दसू दिशा शून्य दीखे हैं, मेरा ऐश्वर्यका सुख कोनकू आवे ? मेरा यश सुनि कोन हर्षित होय ? मेरे मांहि दुःख देखि कोनकू दरद आवे ? जगतमें कोऊ मेरा रह्या नहीं ! पुत्रबांधवादिक मेरा धनका ग्राहक हैं, मेरा कोऊ नहीं, मै असहाय हूं, मेरा आभरण वस्त्रादिक देखि कोम राजी होय ? मेरी शय्या, मेरा आसन, महल, मकान, वस्त्र, आभरणके भोगनेमें कोऊ सहायी साथी नहीं, मेरी सहचरी जो मोकू एक घडी आया नहीं देखती तो अतिव्याकुल मृगीकीनांई धैर्यधारण नहीं करती, अब मोकू कोन यादि करे ? अर मेरा अभिप्रायकू कोन पूछे ? अर कदाचित् निर्धनता होय तथा रोग आवे तो मेरा दुःखमें कोन पूछनेवाला ? कोऊ दीखे नहीं ! सर्व घर भरया है, तोऊ स्त्री विना ऊजड है ! ग्राम नगर शून्य दीखे है ! इत्यादिक संक्लेशपरिणाम करि दुर्ध्यानकू प्राप्त होय महादुःखतें मरणकरि दुर्गति जाय है। बहुरि आपभी जीवे है अर जीवती स्त्रीकू कोऊ बलवान दुष्ट राजा वा म्लेछ, चोर, भील जबरीतें खोसि ले जाय, तो एता बड़ा दुःख अर दुर्ध्यान होय है, जो, कोऊ वचनद्वारे कहनेकू समर्थ नहीं–यो दुःख मरण करनेतेंहू अधिक है। बहुरि कदाचित् आपकी स्त्री आपमें विरक्त होय अन्यकी लैर ऊठि जाय तो बड़ा दुःख है ! बहुरि जो अन्यपुरुषमें आसक्त हो जाय तो बड़ा दुःख है ! बहुरि जो आपकी आज्ञाबारें प्रवर्ते तो दुःख होय है ! बहुरि दुष्टनी होय तथा कलहकारिणी होय तथा कटुकवचन बोलनेवाली तथा निर्दयपरिणाम धारण करनेवाली इत्यादिक दुःख देनेवाली होय तो राति दिनमें एक घडीहू समता नहीं आवे, कौनकू कहूं ? कहां जाऊं? जिसकू कहूं सो हास्य करे, वा बड़ी दीनता है ! इत्यादिक दुःख स्त्रीके निमित्ततें होय है। अब शरीरको अध्रुवपणं कहे हैं। गाथा—

रूवाणि कट्ठकम्मादियाणि चिट्ठन्ति सारवंतस्स।
धणिदं पि सारवन्तस्स ठादि ण चिरं सरीरमिदं ॥१०६६॥

अर्थ—काष्ठपाषाणमयरूप तो संवारया हुवा बहुतकाल तिष्ठे है अर यो मनुष्यशरीरकू अत्यन्तसंस्कार करताहू चिरकालपर्यन्त नहीं तिष्ठे है। गाथा—

मेघहिमफेणउक्कासंझाजलबुब्बुदो व मणुयाणं।
इन्दियजोव्वणमदिरूवतेयबलवीरियमणिच्चं ॥१०६६॥

अर्थ—मनुष्यनिका इन्द्रिय यौवन मति रूप तेज बल वीर्य ये सर्व मेघ तथा ओसका जल तथा फेण (फेन-झाग) तथा बीजली तथा संध्याकी रक्तता तथा जलका बुदबुदाकीनांई अनित्य हैं—विनाशीक हैं। गाथा—

साधुं पडिलाहेदुं गदस्स सुरयस्स अग्गमहिसीए।
णट्ठं सदीए अंगं कोढेण जहा मुहुत्तेण ॥१०६८॥

अर्थ—साधुका आहारदानके अर्थि गया जो सुरत नामा राजा ताकी सती नामा पट्टराणीका कोडकरिके एकमुहूर्त में अंग नष्ट हुवो। गाथा—

वज्झो य णिज्जमाणो जह पियइ सुरं च खादि तंबोलं।
कालेण य णिज्जन्ता विसए सेवन्ति तह मूढा ॥१०६९॥

अर्थ—जैसे कोईकूं मारणेकूं लेजाय अर वह पुरुष मदिरा पीवै! अर तांबूल भक्षण करै! तैसे कालकरिके ले गये मूढ—जिनके भय नहीं, लज्जा नहीं, ते विषयसेवन करे हैं। गाथा—

वग्घपरद्धो लग्गो मूले य जहा ससप्पबिलपडिदो।
पडिदमधुबिंदुभक्खणरदिओ मूलम्मि छिज्जन्ते ॥१०७०॥
तह चेव मच्चुवग्घपरद्धो बहुदुक्खसप्पबहुलम्मि।
संसारबिले पडिदो आसामूलम्मि संलग्गो १०७१॥
बहुविग्घमूसएहिं आशामूलम्मि तम्मि छिज्जन्ते।
लेहदि विभयविलज्जो अप्पसुहं विसयमधुबिंदुं ॥१०७२॥

अर्थ—जैसे निर्जन वनमे महादरिद्री कोऊ पुरुष व्याघ्रका भयकरिके भाग्यो, सो एक अंधकारसहित अर सर्पनि करि तथा अजगरसहित एक कूप छो तामें पड्यो! सो कूपमांहि एक वृक्ष छो, सो ताकी जड भींतिमें छी, सो यो पुरुष उस जडकूं पकडि अनाधार लटके, अर नीचे अजगर मुख फाडि राख्यो! तथा सर्प मुख फाडि राख्यो! जो, यो पुरुष

पडे तो भक्षण करां, अर जिस जडकूं अवलम्बन करि निराधार लटके छा, तिस जडकूं धोला अर काला दोय मूंसा काटनेका उद्यम करने लग्या! अर ताहि अवसरमें इसकूं जड पकरि लटकनेतें वृक्ष कांप्या, सो वृक्षमें मधुमक्षिकाका छत्ता छा, सो मक्षिका उडिकरि इसका देहके आइ लागि। सो ताकी घोरवेदना भोगता कूवामें लटकि रह्या! सो याका ऊंचा मुख छा, तामें मधुछात्तातें सहतकी एक बून्द आय पड़ी, सो सहतकी बून्दकूं आस्वादनकरि सर्वदुःख भूलि गया! तिस अवसरमें आकाशमें एक विद्याधर विमानमें बैठ्या जाय छा, सो या पुरुषका दुःख देखि अति दयावान् होय आकाशमेंतें उतरि कूवाके ऊपरि आय इस पुरुषकूं कह्या—जो, हे भद्र! मेरा हस्त ग्रहण करि, मैं तोकूं विमानमें बैठाय बहोत धन देय तेरे वांछितस्थानकूं प्राप्त करूंगा, अब ढील मति करो। जिस जडकूं पकडि लटको हो जिसके आधार जीवो हो, सो जड सम्पूर्ण कटि गई है, अर बाकी नहीं रही है, सो जड टूटी अर तुम पडोगे। अर नीचे अन्धकूपमें अजगर मुख फाड्या बैठ्या है सो निगलि जायगा! तातें शीघ्रही हस्त ग्रहण करो। तब ऐसे वचन सुणि कूपमे लटकता पुरुष बोल्या—या एक बूंद सहतकी लटकि रही है, सो याका आस्वादन करि तुमारा हस्तग्रहण करूंगा। तब विद्याधर करुणावान् होइ बहुरि कह्या—अरे निर्लज्ज मूर्ख! इतना बड़ा दुःख सहे है! अर मरणकूं नहीं देखे है! सो या बूंदमें कहा स्वाद है! जड कट गई है, गिरनेकी तयारी है, अर या बूंदहू लटकतीहो दीखे है, अर तेरे मुखमें नहीं आवेगी, अर तू पडि अजगरके मुखमें जाय नष्ट होयगा! ऐसे बारम्बार कहतेहू मूढ याही कहे—अब बूंद आजाय है अर आस्वादन करिके तुमारा विमानमें बैठि चलूंगा। ऐसे सहतकी बूंदकी आशा करि कालका विलम्ब करि रह्या। सो इतनेमें वृक्षकी जड कटि गई! सो टूटि पडिकरि अजगरका मुखमें प्रवेश किया! तैसे संसारी मिथ्यादृष्टि जीवहू संसाररूप वनमें परिभ्रमण करता पर्यायरूप अन्धकूपमें पड्या! तामें अजगर समान तो निगोद है, अर चतुर्गतिस्थानीय सर्प हैं, अर वृक्षको जडसमान याकी आयु है, अर राति दिन जाय है सोही काले धोले मूंसेनिकरि आयुरूप जडका कटना है, अर मोहकी मक्षिकासमान कुटुम्बादिकनिके तथा क्षुधातृषाके दुःख हैं, अर सहतकी बूंद समान विषयनिका सुख है, अर विद्याधर समान दयावान विनाकारण बांधव यह निर्ग्रन्थ गुरु है, सो बारम्बार उपदेश करे है, परन्तु सहतकी बूंदकी आशासमान विषयनिकी तृष्णाकरि संसारमें डूबे है, निगोदमें जाय पडे है! । इनि तीन गाथानिका भाव लिख्या। ऐसे अध्रुवपणा कह्या। अब अशुचिपणा च्यारि गाथानिकरि कहे हैं।

गाथा—

बालो अमेज्झलित्तो अमेज्झमज्झम्मि चेव जह रमदि ।

तह रमदि णरो मूढो महिलामज्झे सयममेज्झो ॥१०७३॥

अर्थ—जैसे अज्ञानी बालक मलकरि लिप्त मलविषैंही रमे है तैसे मूढ मनुष्य आप अत्यन्त मलिन हुवा सन्ता अनेक अशुचिताकरि भरया जो स्त्रीका शरीर तिसविषै रमे है, ज्ञानीके रमनेयोग्य नहीं है । गाथा—

कुणिमरसकुणिमगंधं सेविंता महिलियाए कुणिमकुडी ।

जं होंति सोचइत्ता एद हासावहा तेसिं ॥१०७४॥

अर्थ—अशुचि मल रुधिरादिक है रस जामें अर अशुचि है गन्ध जामें ऐसा अत्यन्त अशुचि जो स्त्रीका शरीर ताहि सेवन करि अर आप शुचि होय है, आपकूं उज्ज्वल माने हैं, तिनका शुचिपणा जगतमें हास्यका बहनेवाला है । ऐसा मलिन देहमें आसक्त होय आपकूं उज्ज्वल माने है, सो जगतमें हास्य करने योग्य है । गाथा—

एवं एदे अच्छे देहे चिंतन्तयस्स पुरिसस्स ।

परदेहं परिभोत्तुं इच्छा कह होज्ज संघिणस्स ॥१०७५॥

अर्थ—ऐसे देहविषै येते मलादिक अर्थ तिनकूं चिंतवन करतो अर देहमें ग्लानि सहित जो पुरुष सो अन्य जो स्त्री पुरुषका देह ताहि भोगवेकूं कैसे इच्छा करे ? । गाथा—

एदे अत्थे सम्मं दोसं पिच्छन्तओ णरो संघिणो ।

ससरीरे वि विरज्जइ किं पुण अण्णस्स देहम्मि ॥१०७६॥

अर्थ—एते अर्थ देहमें सत्य देखतो पुरुष ग्लानिसहित होय है, तदि आपका शरीरहीमें विरक्त होय है, तदि अन्य का देहमें कैसे रागी होइ ? । ऐसे अशुचिता वर्णन करी । अब वृद्धसेवा नामा ब्रह्मचर्यका अधिकार ताहि पनरा (१५) गाथानि करि कहे हैं । गाथा—

थेरा वा तरुणा वा वुड्ढा सीलेहिं होंति वुड्ढेहिं ।

थेरा वा तरुणा वा तरुणा सीलेहिं तरुणेहिं ॥१०७७॥

अर्थ—अवस्थाकरिके वृद्ध होहू वा तरुण होहू, वृद्धिनं प्राप्त भये जे शील कहिये क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य संयम तप त्याग आकिञ्चन्य ब्रह्मचर्य इनि गुणनिकी वृद्धिकरि वृद्ध होत है। बहुरि अवस्थाकरि वृद्ध होहू वा तरुण होहू, तरुणशील जो हास्य तथा कामकी आधिक्यता तथा कषायनिकी प्रबलता तथा भोजनादिक कथामें राग ताकरि पुरुष तरुण होय है। गाथा—

जह जह वयपरिणामो तह तह णस्सदि णरस्स बलरूवं।

मदा य हवदि काम्ररदिदप्पकीडा य लोभो य ॥१०७८।

अर्थ—जैसे जैसे अवस्थाका परिणमन होय है, तैसे तैसे मनुष्यका बल तथा रूप विनसता जाय है अर काम तथा रति तथा दर्प जो मद तथा क्रीडा तथा लोभ मन्दताकूं प्राप्त होय है। भावार्थ—बाल्य अवस्था तथा यौवन अवस्था जैसे जैसे व्यतीत होय, तैसे तैसे शरीरके बलका तथा रूपका नाश होयही है अर अवस्था वृद्ध होय तबि कामको तथा आसक्तताकी तथा मद तथा कौतुक क्रीडा तथा लोभ स्वयमेवही घटै, तथा सामर्थ्य घटनेतें घटेही है, लोकनितें लज्जा आवेही है। गाथा—

खोभेदि पत्थरो जह दहे पडंतो पसण्णमवि पंकं।

खोभेइ तहा मोहं पसण्णमवि तरुणसंसग्गी ॥१०७९॥

अर्थ—जैसे जलका ह्रदमे पडतो जो पत्थर, सो जलमें प्रशान्त हो रह्याहू कर्दमकूं 'क्षोभयति' कहिये जलमें ऊंचा करि जलकूं कर्दमकरि मलिन करे है, तैसे तरुणपुरुषकी सगति प्रशांत हुवाहू मोहकूं उदय करे है। भावार्थ—जैसे स्वच्छहू जलका ह्रद भारे पत्थरके पडनेतें मलिन होय है, तैसे तरुणकी संगतितें उज्ज्वलपरिणाम भी कामादिककरि मलिन होय हैं। गाथा—

कलुसीकदंपि उदयं अच्छं जह होइ कदयजोएण।

कलुसो वि तहा मोहो उवसमदि हु वुड्ढसेवाए ॥१०८०॥

अर्थ—जैसे कर्दमकरि मलिनभी जल कतकफलके संयोगतें स्वच्छ उज्ज्वल होय है, अर कर्दम नीचे दबि जाय है; तैसे आत्मा का ज्ञानपरिणामकूं मलिन करता जो मोह सो वृद्धपुरुषनिकी संगतितें तत्काल दबि जाय है, ज्ञानपरिणाम उज्ज्वल होय है, तातैं जे गुणनिकरि वृद्ध हैं तिनकी संगतिही जीवका कल्याण है। गाथा—

लीणो वि मट्टियाए उदीरदि जलासयेण जह गन्धो ।
लीणो उदीरदि णरे मोहो तरुणासयेण तहा ॥१०८१॥

अर्थ--जैसे मृत्तिका जो मांटी ताके विषै लीन जो गंध सो जलका मिलापकरि उदयकूं प्राप्त होय है, तैसेही तरुणका आश्रयकरि मोह तीव्र उदयकूं प्राप्त होय है ! । भावार्थ--जैसे मांटीमें दब्या हुवा गन्ध जलके पडनेतें प्रगट होय है; तैसे तरुण पुरुष तथा कामी रागी द्वेषीकी संगतितैं काम राग द्वेष प्रकट होय हैं । गाथा--

सन्तो वि मट्टियाए गन्धो लीणो हवदि जलेण विणा ।
जह तह गुट्ठीए विणा णरस्स लीणो हवदि मोहो ॥१०८२॥

अर्थ--जैसे मृत्तिकामें विद्यमानहू गन्ध जलविना मांटीमें लीनही रहे है, तैसे करुणकी गोष्ठिविना मनुष्यकै मोह लीन ही रहे है- बाहिर प्रकट नहीं होय है । गाथा--

तरुणो वि वुढ्ढसीलो होदि णरो वुढ्ढसंसिओ अचिरा ।
लज्जासंकामाणावमाणभयधम्मवुढ्ढीहीं ॥१०८३॥

अर्थ--वृद्धपुरुषनिका सगतिकरिके तरुणपुरुषहू शीघ्रही लज्जाकरिके तथा शंकाकरिके तथा मानकरिके तथा अपमानकरिके तथा धर्मबुद्धिकरिके वृद्धशील कहिये उत्तमपुरुषनिकेसे स्वभावकूं धारण करे है । गाथा--

वुढ्ढो वि तरुणसीलो होइ णरो तरुसंसिओ अचिरा ।
वीसंभणिव्विसंको समोहणिज्जो य पयडीए ॥१०८४॥

अर्थ--तरुणपुरुषनिकी संगतिकरिके वृद्धपुरुषहू शीघ्रही विश्वासकरिके तथा निर्विशंकताकरिके तथा स्वभावहीसूं मोहसहित वर्तनाकरिके तरुणपुरुषकासा अधमस्वभाव हास्य कौतुक काम कोपादिकरूप स्वभावकूं धारण करे है । गाथा-

सुण्डयसंसग्गीए जह पादुं सुण्डओऽभिलसदि सुरं ।
विसए तह पयडीए संमोहो तरुणगोट्ठीए ॥१०८५॥

अर्थ—जैसे मद्यपान जिनका कुलहूमें नहीं ऐसे असोंड जे हैं तेहू मद्य पीवनेवालेकी संगतिकरि मदिरा पीवनेका अभिलाष करे हैं, तैसे स्वभावकरिकेही संसारी मोहसहित वर्ते हैं, बहुरि जे तरुण इन्द्रियविषयनिकरि विकल तिनकी संगतिकरिके उत्तमपुरुष त्यागी पुरुषहू विषयनिकी वांछा करनेमें प्रवर्ते हैं। गाथा—

तरुणेहिं सह वसंतो चलिंदिओ चलमणो य वीसत्थो ।
अचिरेण सइरचारी पावदि महिलाकद दोसं ॥१०८६॥

अर्थ—जो पुरुष तरुणपुरुषनिकी संगतिमें बसे है, ताकी इन्द्रियां चलायमान होयही हैं, अर मनहू अनेकरागद्वेषनि के विकल्पनिकरि चलायमान होय है अर भयलज्जारहित हुवा विश्वासकूं प्राप्त होय है। तथा थोरे कालमें स्वेच्छाचारी होय पूर्वें स्त्रीकृत दोष कहे तिनकूं प्राप्त होय ही है। गाथा—

पुरिसस्स अप्पसत्थो भावो तिहिं कारणेहिं संभवइ ।
वियरम्मि अंधयारे कुसीलसेवाए ससमक्खं ॥१०८७॥

अर्थ—पुरुषका परिणाम तीन कारणनिकरि अप्रशस्त होय हैं, खोटे होय हैं—एक तो एकाकी स्त्रीनिमें रहनेतें, अर अन्धकारमें गमनादिकतें, अर कुशीलेनिकी संगतितें प्रत्यक्ष बिगडे हैं। गाथा--

पासिय सुच्चा व सुरं पिज्जन्तं सुण्डओ भिलसदि जहा ।
विसए य तह समोहा पासिय सोच्चा व भिलसन्ति ।१०८८।

अर्थ—जैसे मद्यपानी मद्यकूं पीवते देखिकरिके तथा श्रवणकरिके मद्य पीवनेकूं अभिलाष करे है, तैसे मोही पुरुष विषयनिकूं देखिकरिके तथा कामभोगरूप हास्य इत्यादिक विषयनिकूं श्रवणकरिके विषयनिमें अभिलाष करे हैं। गाथा—

जादो खु चारुदत्तो गोट्ठीदोसेण तह विणीदो वि ।
गणियासत्तो मज्जासत्तो कुलदूसओ य तहा ॥१०८९॥

अर्थ—तथा महाविनयवानहू चारुदत्त नामा श्रेष्ठी संगतिके दोषकरि गणिकामें आसक्त हुवो। तथा मद्यमें आसक्त हुवो। अर कुलको दूषक हुवो। गाथा—

तरुणस्स वि वेरग्गं पण्हाविज्जदि णरस्स बुड्ढेहिं।
पण्हाविज्जइ पाडच्छीवि हु वच्छस्स फरुसेण ॥१०६०॥

अर्थ—ज्ञान विनय तपकरिके वृद्धपुरुष जे हैं, तरुण पुरुषहूके वैराग्य उत्पन्न करे हैं। जैसे वत्सका स्पर्श गायकूं झरता है दुग्ध जाके ऐसी करिये है। भावार्थ—जैसे बाछडेका स्पर्शकरि गऊके दुग्ध उतरि आवे है, तैसे ज्ञानवान् विनयवान् तपस्वनिका संगकरि तरुणहूके वैराग्य उत्पन्न होय है। गाथा—

परिहरइ तरुणगोठ्ठी विसं व वुढ्ढाउले य आयदणे।
जो वसइ कुणइ गुरुणिद्देसं सो णिच्छरइ बंभं ॥१०६१॥

अर्थ—जो पुरुष तरुण जो विषयांमें आसक्त तिनकी संगति तो विषकीनांईं आत्माके गुणनिकूं घात करनेवाली जानिकरि छांडे है अर ज्ञान विनय शील तपकरि वृद्ध हैं तिनके स्थानकमे बसे हैं, सो गुरुनिकी आज्ञा पाले है अर सोही ब्रह्मचर्य नामा व्रतका निस्तार करे है–निर्वाह करे है। भावार्थ—जिनके तरुण विषयानुरागीनिके सामिल बसना अर तरुणनितें गोष्ठी करना बणि रह्या है, तिनका ब्रह्मचर्य बिगडिजाय है, अर जिनके ज्ञान वैराग्यके धारकनिके सामिल बसना है, तिनके शुद्धब्रह्मचर्य रहे है।

ऐसे ब्रह्मचर्य नामा अधिकारविषे वृद्धसेवा पनरह गाथानिकरि कही। अब बाईस गाथानिमें स्त्रीका संसर्ग जो संगति, तातें जे दोष उपजे हैं तिनकूं कहे हैं। गाथा—

आलोयणेण हिदय पचलदि पुरिसस्स अप्पसारस्स।
पेच्छन्तयस्स बहुसो इच्छीण थणजहणवदणाणि ॥१०६२॥
लज्जं तदो विहिंसं परिचयमध णिव्विसंकिदं चेव।
लज्जालुओ कमेणारुहंतओ होदि वीसत्थो ॥१०६३॥

वीसत्थदाए पुरिसो बोसंभं महिलियासु उवयादि ।
वीसंभादो पणयो पणयादो रदि हवदि पच्छा ।।१०६४।।

उल्लावसमुल्लावहिं चा वि अल्लियणपेच्छणेहिं तहा ।
महिलासु सइरचारिस्स मणो अचिरेण खुब्भदि हु ।१०६५।।

ठिदिगदिविलासविब्भमसहासचेट्ठिदकडक्खदिठ्ठीहिं ।
लीलाजुदिरदिसम्मेलणोवयारेहिं इत्थीणं ।।१०६६।।

हासोवहासकीडारहस्सवीसत्थजंपिएहिं तहा ।
लज्जामज्जादीणं मेरं पुरिसो अदिक्कमदि ।।१०६७।।

अर्थ—अल्पधैर्य का धारक जे मोही पुरुष तिनके स्त्रीके स्तन तथा जघन तथा मुख इनका देखनेकरि मन अत्यन्त चलायमान होय है, अर चलायमान हुवा पाछे लज्जा नष्ट होय है, अर लज्जाकूं गया पाछे तिस स्त्रीका देखना तथा समीप जावना तथा हंसना इत्यादिक स्त्रीनिमें परिचयकूं प्राप्त होय है, अर स्त्रीनिमें परिचय हुवा पाछे या शंका मनमें नहीं रहे है–जो, याकरि सहित मोकूं कोऊ देखेंगे तो कहा कहेंगे ? ऐसे लज्जावानहू पुरुष क्रमतें निःशंक होय विश्वासकूं प्राप्त होय है; जो; या स्त्रीका मेरे मांहि अत्यन्त प्रेम है, मेरा याका हित ममत्वकी वार्ता दूजे ठिकाणे जाय नहीं, ऐसा विश्वास उपजे है । ऐसे अपने मनके विश्वासतें स्त्रीमें विश्वासनं प्राप्त होय है। अर ज्यूं विश्वास बधे त्यूं विश्वासतें स्नेह बधे है, अर स्नेहतें रति जो आसक्तता सो बधे है, अर आसक्तता पाछे परस्पर वचनालाप प्रवर्ते है, तथा बारम्बार मिलना तथा बारम्बार देखना तिनकरि स्त्रीमै स्वेच्छाचारी पुरुषको मन शीघ्रही क्षोभकूं प्राप्त होय है, देख्या विना, वचनालाप कियाविना, एकांतमें मिल्याविना मनकूं जक नहीं पडे है। बहुरि स्त्रीनिके स्थिति रहना तथा गमन करना तथा नेत्रनिके विलास तथा भ्रकुटीनिके विभ्रम तथा हास्य चेष्टा तथा कटाक्षदृष्टि तथा शरीरकी कांति तथा रति तथा मिलाप तथा हास्य उपहास क्रीडा एकांतमें विश्वासरूप वचनालापकरि पुरुष लज्जा कुलमर्यादकी सीमा उल्लंघन करे है।

ठाणगदिपेच्छिदुल्लावादी सव्वेसिमेव इच्छीणं ।
सविलासा चेव सदा पुरिसस्स मणोहरा हुन्ति ॥१०९८॥

अर्थ—सर्वही स्त्रीका विलासकरि सहित स्थान गति अवलोकन वचनालाप सदा पुरुषका मनकूं हरेही है । गाथा—

संसग्गीए पुरिसस्स अप्पसारस्स लद्धपसरस्स ।
अग्गिसमीवे लक्खेव मणो लहुमेव वियलाइ ॥१०९९॥

अर्थ—अल्प है धैर्यका बल जाका अर स्त्रीनिमें किया है परिचय जाने ऐसा पुरुषका मन स्त्रीनिका संसर्गकरिके अग्निके समीप घृतकीनांई नरम होइ बहजाय है । गाथा—

संसग्गीसम्मूढो मेहुणसहिदो मणो हु दुम्मेरो ।
पुव्वावरमगणन्तो लंघेज्ज सुसीलपायारं ॥११००॥

अर्थ—यो प्राणीनिको मन जिस कालमें स्त्रीनिका संसर्गकरि मूढ होय है अथवा मोही होय है तथा मैथुनकी वांछासहित होय है तथा मर्यादरहित होय है, तिसकाल पूर्वापर नहीं गिणतो सुन्दर शीलरूप कोट ताहि उल्लंघन करत है । गाथा—

इन्दियकसयसण्णागारवगुरुया सभावदो सव्वे ।
संसग्गिलद्धपसरस्स ते उदीरन्ति अचिरेण ॥११०१॥

अर्थ—स्त्रीनिका संसर्गविषै पाया है प्रसार कहिये फैलाव जाने, ऐसा पुरुषकै स्वभावहोतें विनायत्नहोतें सर्व इन्द्रिय कषाय संज्ञा गौरव शीघ्रही उत्कटताने प्राप्त होय है । भावार्थ—जो पुरुष स्त्रीनिमें प्रचार करै, ताके पांचू इन्द्रियां विषयनिमें अतितीव्रताकूं प्राप्त होय हैं, क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय प्रबलताकूं प्राप्त होय है । बहुरि आहार भय मैथुन परिग्रह ये च्यारि प्रकारके संज्ञाकी प्रबलता होय है, तथा ऋद्धिगौरव, रसगौरव, सातगौरवकरि सहित होय है, तातैं स्त्रीनिका संसर्ग करना बडा अनर्थ है । गाथा—

मादं सुदं च भगिणीमेगन्ते अल्लियन्तगस्स मणो ।

खुब्भइ णरस्स सहसा किं पुण सेसासु महिलासु ॥११०२॥

अर्थ--एकांतमें माता, पुत्री, बहण इनिकूंहू अवलोकन करता पुरुषका मन शीघ्रही क्षोभनें प्राप्त होय है, तो अन्य स्त्रीनिमें चलायमान होय ताका तो कहा आश्चर्य है? गाथा—

जुण्णं पोच्चलमइलं रोगिय बीभस्स [illegible]

मेहुणपडिगं पच्छेदि मणो तिरियं च खु णरस्स ॥११०३॥

अर्थ—तीव्र कामके परिणामतें जीर्ण जो वृद्धा स्त्री ताकूं कामीका मन प्रार्थना करे है, बहुरि जो निःसार होय, मलिन होय तथा रोगिणी होय तथा जाकूं देखताही भय आवै ऐसी भयानक होय तथा कुरूप होय तथा तिर्यंचणी होय ऐसीहू स्त्रीकूं कामी पुरुष वांछा करे है । गाथा--

दिट्ठाणुभूदसुदविसयाणं अभिलाससुमरणं सव्वं ।

एसा वि होइ महिलासंसग्गी इत्थिविरहम्मि ॥११०४॥

अर्थ--जो स्त्री नहींहू होय, तोहू स्त्रीनिमें कोया संसर्ग कैसाक है । जा थकी पूर्वे देखे सुने अनुभव किये जे विषय तिनका अभिलाष तथा स्मरण चितवन हृदयमें निरन्तर बणेही रहे है–स्त्री सम्बन्धी विषयवासना जाय नहीं है । गाथा-

थेरो बहुस्सुदो पच्चई पमाणं गणी तवस्सित्ति ।

अचिरेण लभदि दोसं महिलावग्गम्मि वीसत्थो ॥११०५॥

अर्थ—जो पुरुष स्त्रीनिके समूहमें विश्वास करे है सो वृद्ध होहू तथा बहुश्रुती होहू तथा बहुतप्रतीतिका पात्र प्रमाणभूत होहू, तथा संघका अधिपति, सर्व लोकनिमें मान्य पूज्य गणी होहू तथा तपस्वी होहू तोहू स्त्रीनिकी संगतितें थोरा कालमें अपवाद अजस दुराचारकूं प्राप्त होयहीगा। जो स्त्रीनिकी संगति तथा स्त्रीनिसूं वचनालाप करेगा, ताकी प्रतिष्ठा बिगडि जायगी, धर्मभ्रष्ट होजायगा, ज्ञानादिक सर्वगुण भ्रष्ट होय संसारमें डूबि जायगा । गाथा--

किं पुण तरुणा अबहुस्सुदा य सइरा व विगदवेसा य ।

महिलासंसग्गीए गट्ठा अचिरेण होहन्ति ॥११०६॥

अर्थ—जो वृद्ध तपस्वी ज्ञानवानही स्त्रीके संसर्गकरि भ्रष्ट हो जाय, तो तरुण अर श्रुतका ज्ञानरहित तथा स्वेच्छाचारी तथा विकाररूप आभरण भेष वस्त्रादिकके धारण करनेवाले स्त्रीनिकी संगतिकरि तथा स्त्रीनितें वचनालाप करि नहीं नष्ट होयगे कहा ? भो लोक हो ! स्त्रीनितें किंचित्‌हू संसर्ग राखेगा तिनकूं नष्ट भये ही जानहु । गाथा—

सगडो हु जइणिगाए संसग्गीए दु चरणपब्भट्ठो ।

गणियासंग्गीए य कूववारो तहा गट्ठो ॥११०७॥

अर्थ—सकट नामा मुनि जैनी नामा ब्राह्मणीकी संसर्गकरि चारित्रतें भ्रष्ट हुवो अर कूपचार नामा मुनि वेश्याका संसर्गकरि नष्ट होत भयो । गाथा—

रुद्दो परासरो सच्चईयरायरिसि देवपुत्तो य ।

महिलारूवालोई गठ्ठा संसत्तदिठ्ठीए ॥११०८॥

अर्थ—रुद्र, तथा पाराशर, तथा सात्यकी, तथा राजर्षि, तथा देवपुत्र एते महान् ऋषि स्त्रीके रूप देखनेमें आसक्त जो दृष्टि ताकरि नष्ट होते भये । गाथा—

जो महिलासंसग्गी विसंव दठ्ठूण परिहरइ णिच्चं ।

णित्थरइ बम्भचेरं जावज्जीवं अकम्पो सो ॥११०९॥

अर्थ—जो पुरुष स्त्रीका संसर्ग विषकीनाईं देखि करिके नित्यही त्याग करै है सो निष्कम्प हुवा यावज्जीव ब्रह्मचर्यका निर्वाह करे है । भावार्थ—स्त्रीमात्रका संसर्ग त्यागेगा, ताके निश्चल ब्रह्मचर्य होवेगा । अर जो स्त्रीकी संगति, स्त्रीतें वचनालाप तथा अवलोकन करेगा ताका ब्रह्मचर्य नष्ट होयहोगा । गाथा—

सव्वम्मि इत्थिवग्गम्मि अप्पमत्तो सदा अवीभत्थो ।

बम्भं निच्छरदि वद चरित्तमूलं चरणसारं ॥१११०॥

अर्थ—जो पुरुष संपूर्णस्त्रीनिके समूहमें प्रमादरहित है अर सदाकाल स्त्रीनिका विश्वास नहीं करे है-दूरिही रहे है, सो पुरुष चारित्रका मूल आचरणमें सार ऐसा ब्रह्मचर्यव्रतका निस्तार करे है। गाथा—

किं मे जंपदि किं मे पस्सदि अण्णो कहं च वट्टामि।

इदि जो सदाणुपेक्खइ सो दढबंभव्वदी होदि ॥१११११॥

अर्थ—जाके निरन्तर ऐसा भय रहे है—जो, मै स्त्रीसूं वचनालाप करूंगा तथा रागतें देखूंगा, तो ये अन्यलोक मोकूं कहा कहेंगे? कहा देखेंगे? मोकूं कैसे बर्तेंगे? मोकूं अत्यन्त नीच अधम पापिष्ठ कहेंगे, देखेंगे, बर्तेंगे। या प्रकार जिनके हृदयमें सदाकाल ऐसा चिंतवन रहे है, ते पुरुष दृढ ब्रह्मचर्यके धारक होय हैं। गाथा—

मज्झण्हतिक्खसूरं व इच्छिरूवं ण पासदि चिरं जो।

खिप्पं पडिसंहरदि य मणं खु सो णिच्छरदि बम्भं ।१११२।

एवं जो महिलाए सद्दे रूवे तहेव संफासे।

ण चिरं सज्जदि हु मणं णिच्छरदि स संततं बंभं ॥१११३॥

अर्थ—जो पुरुष मध्याह्नकालका तीक्ष्णसूर्यकीनाई स्त्रीका रूपकूं ठहरि रागरूप हुवा नहीं देखे है, दृष्टिकूं पडतां प्रमाण शीघ्रही संकोच ले है-मुद्रित कर ले है, सो ब्रह्मचर्यका निस्तार करे है। बहुरि ऐसेही स्त्रीके शब्द सुननेमें तथा रूप देखने में तथा स्पर्श करनेमें जाका मन चिरकाल नहीं ठहरे है-लगेही नहीं है, सो पुरुष ब्रह्मचर्यव्रतका निर्वाह करे है। ऐसे ब्रह्मचर्य नामा महा अधिकारमें स्त्रीसंसर्गके करनेतें जे दोष होय हैं, तिनका वर्णन बाईस गाथानिमें कह्या। अब स्त्रीनिके वशी नहीं होय हैं, तिनकी महिमाका दश गाथानिकरि उपदेश करे। गाथा—

इहपरलोए जदि दे मेहुणविरसत्तिया हवे जण्हु।

तो होहि तमुववुत्तो पंचविधे इत्थिवेरग्गे ॥१११४॥

अर्थ—हे आत्मन्! इसलोक सम्बन्धी तथा परलोकमें जो तुमारे मैथुनमें परिणाम होय-ब्रह्मचर्यमें पापके उदयतें

नहीं तिष्ठे; तो तुम स्त्रीकृत दोष, तथा मैथुन कृत दोष, तथा संसर्गकृत दोष, तथा शरीरकी अशुचिता, तथा वृद्धसेवा ये पंचप्रकार स्त्रीनिमें विरक्त करनेके कारण कहे तिनमें उपयुक्त होहू, ताते तुमारा परिणाम कामवासनातें छूटि ब्रह्मचर्यमें दृढ होय है । गाथा—

उदयम्मि जायवढ्ढिय उदएण ण लिप्पदे जहा पउमं ।

तह विसएहिं ण लिप्पदि साहू विसएसु उसिग्रो वि ।।१११५।।

अर्थ—जैसे जलविषै उपज्या अर जलमें वृद्धिकूं प्राप्त हुवा जो कमल, सो जलकरिके नहीं लिप्त होय है, तैसे साधु जो है, सो विषयनिमें वर्ततहू विषयनिकरि नहीं लिप्त होत है । भावार्थ—यद्यपि कमल जलमें उपजे है अर जलमें ही वृद्धिनै प्राप्त होय है, तोहू कमलमें ऐसी सचिक्कणता गुण है जातें कमलमें जल चिपेही नहीं, तैसे उत्तम साधुजननिके भेदविज्ञानका प्रभावतें वीतरागता ऐसी प्रकट होय है सो सर्वविषयनिकूं जाणे है, अर लीनता तथा आसक्तताकूं प्राप्त नहीं होय है ।

उग्गाहितस्सुदधिं अच्छेरमणोल्लणं जह जलेण ।

तह विसयजलमणोल्लणमच्छेरं विसयजलहिम्मि ।।१११६।।

अर्थ—जैसे कोऊ समुद्रकूं अवगाहन करे अर ताके समुद्रके जलकरिके आर्द्रपणा नहीं होय—नहीं भीजै सो बडा आश्चर्य तैसे विषयरूप समुद्रमें वास करता कोऊ पुरुष विषयरूप जलकरि नहीं लिप्त होय सो बडा आश्चर्य है । भावार्थ—वीतराग भेदविज्ञानका ऐसा महिमा है, जो, त्रैलोक्य पांचूं इन्द्रियनिका विषयमयी है, तोहू साधुजन तामें लिप्त नहीं होय है । गाथा—

मायागहणे बहुदोससावए अलियदुमगणे भीमे ।

असुइतणिल्ले साहू ण विप्पणस्सन्ति इत्थिवणे ।।१११७।।

अर्थ—यो स्त्रीरूप वन मायाचारकरि गहन है—जामें प्रवेश नहीं दीखे, बहुरि बहुत जे ईर्षा, चपलता, पिशुनता इत्यादिक दोष तेही जे दुष्टजीव तिनकरि व्याप्त है, बहुरि झूंठरूप वृक्षनिके समूह हैं, बहुरि इसलोकमेंहू भयानक अर परलोकमेंहू भयानक अर अशुचितारूप तृणांनिकरि व्याप्त ऐसे स्त्रीरूपवनमें साधुजन आपा भूलि नष्ट नहीं होय हैं ।

सिंगारतरंगाए विलासवेगाए जोव्वणजलाए ।

विहसियफेणाए मुणी णारिणईए ण बुज्झन्ति ॥१११८॥

अर्थ—या नारीरूप नदी शृङ्गाररूप है तरंग जामें, अर विलासरूप है वेग जामें, अर यौवनरूप है जल जामें, अर मन्दहास्य है झाग जामे, ऐसी नारीरूप नदीमें मुनीश्वर नहीं डूबे हैं। या नारीरूप नदी उत्तममुनिनके चित्तकूं नहीं बहाय सके है। गाथा—

ते अदिसूरा जे ते विलाससलिलमदिचवलरदिवेगं ।

जोव्वणणईसु तिण्णा ण य गहिया इत्थिगाहेहिं ॥१११९॥

अर्थ—जगत मे ते अति शूरवीर हैं, जो यौवनरूप नदीकूं पार उतर गये अर यौवनरूप नदीमें स्त्रीरूप महाग्राह कहिये मत्स्य तिनकरि नहीं ग्रहण कीये गये। कैसीक है यौवनरूप नदी ? विलासरूप है जल जामें, अर अतिचपल रतिरूप है वेग जामें। भावार्थ—जे यौवनरूप नदीकूं तिरि पार होगये, ते धन्य हैं। इस यौवननदीमें स्त्रीरूप मत्स्यकरि कौन बचे हैं ? जे स्त्रीमें नहीं रचे, तेही धन्य हैं। गाथा—

महिलावाहविमुक्का विलासपुंखा कडक्खदिट्ठिसरा ।

जण्ण विधन्तीह सदा विसयवणे सो हवइ धण्णो ॥११२०॥

अर्थ—नारीरूप पारधीकरि छोड्या अर विलासरूप है पांख जाके, ऐसे कटाक्षदृष्टि रूप बाण जिनकूं विषयरूप वनमें प्रवर्ततेकू सर्वकालमें नहीं घाते हैं, ते धन्य हैं। भावार्थ—इस विषयरूप वनमें जो नारीनिके कटाक्षबाणकरि नहीं घात्या गया, सो धन्य है। गाथा—

विव्वोगतिक्खदन्तो विलासखंधो कडक्खदिट्ठिणहो ।

परिहरदि जोव्वणवणे जमित्थिवग्घो तगो धण्णो ॥११२१॥

अर्थ—नानाप्रकार के भ्रकुटीके विभ्रमही हैं तीक्ष्ण दन्त जाके, अर नेत्रनिके विलासही हैं स्कन्ध जाके, अर कटाक्षदृष्टि ही है नख जाके, ऐसा स्त्रीरूप व्याघ्र जाकूं यौवनरूप वनमें नहीं घात किया, सो धन्य है। गाथा—

तेल्लोक्काडविडहणो कामग्गी विसयरुक्खपज्जलिओ ।

जोव्वणतणिल्लचारी जं ण डहइ सो हवइ धण्णो ॥११२२॥

अर्थ—त्रैलोक्यरूप वनकूं दग्ध करता अर विषयरूप वृक्षनिकरि प्रज्वलित ऐसा कामरूप अग्नि है सो जिस यौवन रूप तृणनिमें गमन करते पुरुषकूं नहीं बालै है, सो पुरुष धन्य है। भावार्थ—कामरूप अग्नि जाकूं यौवन अवस्थामें दग्ध नहीं किया सो पुरुष धन्य है। गाथा—

विसयसमुद्दं जोव्वणसलिलं हसियगइपेक्खिवुम्मीयं ।

धण्णा समुत्तरन्ति हु महिलामयरेहिं अच्छिक्का ॥११२३॥

अर्थ—यो विषयरूप समुद्र है तामें यौवनरूपी जल है अर स्त्रीनिके हास्य तथा गमन अर अवलोकन येही जामें लहरि हैं। सो ऐसा विषयरूप समुद्रकूं जे स्त्रीरूप मगर–मच्छनिकरि नहीं स्पर्शन कीये–नहीं ग्रहण किये समुद्रकूं तिरत हैं, ते धन्य हैं। भावार्थ—विषयरूप समुद्र में स्त्रीरूप मगरमच्छ बसै हैं, सो ऐसे समुद्रकूं स्त्रीरूप मत्स्यसूं जे टलि अर पार उतर गये, ते धन्य हैं।

ऐसे अनुशिष्टि नामा महा अधिकारविषै ब्रह्मचर्यका वर्णन चोयसे इकतालीस गाथामें समाप्त किया। अब परि-ग्रहत्याग नामा व्रतकूं सडसठि गाथानिकरि कहे हैं।

अब्भंतरबाहिरए सव्वे गंथे तुमं विवज्जेहि ।

कदकारिदाणुमोदेहिं कायमणवयणजोगेहिं ॥११२४॥

अर्थ—हे आत्मन्! अभ्यन्तर अर बाह्य जे सर्व परिग्रह तिननें मनवचनकाय–कृतकारितअनुमोदनाकरि तुम त्याग करहु। गाथा—

मिच्छत्तवेदरागा तहेव हासादिया य छद्दोसा ।

चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भन्तरा गंथा ॥११२५॥

अर्थ—वस्तुका यथावत् श्रद्धानका अभाव, सो मिथ्यात्व ॥१॥ अर स्त्रीका विषयमें, अर पुरुषका स्पर्शनादिविषय में, अर नपुंसकका अंगादिकनिके स्पर्शमें, तथा स्त्रीपुरुष दोऊके मध्य रमनेमें, जो रागकरि आसक्तता, वे तीन वेद हैं ॥३॥ तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये छह नोकषाय ॥६॥ अर क्रोध, मान, माया, लोभ ये च्यारि कषाय ॥४॥ ऐसे ये चौदह अभ्यन्तरपरिग्रह हैं । गाथा—

बाहिरसंगा खेत्तं वत्थं धणधण्णकुप्पभंडाणि ।
दुपयचउप्पय जाणाणि चेव सयणासणे य तहा ॥११२६॥

अर्थ—धान्य उत्पन्न होनेका क्षेत्र ॥१॥ अर आयगां रहनेयोग्य तथा अन्य मकान तिनकूं वास्तु कहिये ॥२॥ बहुरि सोना, रूपा, रुपया, महोर इत्यादिकनिकूं धन कहिये ॥३॥ बहुरि चावल तथा गेहूं जव इत्यादिक धान्य होय हैं ॥४॥ बहुरि वस्त्रादिक कुप्य हैं ॥५॥ बहुरि कुंकुम, कर्पूर, मिरच, हिंग्वादिक भांड हैं ॥६॥ दासी दास तथा अन्य सेवकनिका समूह द्विपद हैं ॥७॥ बहुरि हस्ती, घोडा, बलध इत्यादिक चतुष्पद हैं ॥८॥ बहुरि पालकी विमान इत्यादिक यान हैं ॥९॥ बहुरि शय्या पर्यंकादिक अर सिंहासनादिक आसन ॥१०॥ ये दशप्रकार बाह्यग्रन्थ हैं । बाह्यपरिग्रहका परित्यागविना आत्माके दर्शन ज्ञान चारित्र वीर्य अव्याबाधसुख इत्यादिक गुणनिके घात करनेवाला मोहमलका अभाव नहीं होय है । ऐसे दृष्टांत करि कहे हैं । गाथा—

जह कुण्डओ ण सक्को सोधेदुं तन्दुलस्स सतुसस्स ।
तह जीवस्स ण सक्का मोहमलं संगसत्तस्स ॥११२७॥

अर्थ—जैसे तुससहित जो तन्दुल, ताका कुण्ड जो अन्तरमल, सो दूरि करनेकूं नहीं समर्थ होइए है; तैसे बाह्यपरिग्रहमें आसक्त जो जीव सो आपके अभ्यन्तर जो मोहमल ताके दूरि करनेकूं नहीं समर्थ होइए हैं । भावार्थ—चावलनिका उपरला तुस पहली दूरि होजाय, तदि तो मांहिली लालीहू दूरि होसके है । अर जाका तुसही दूरि नहीं होय ताकी लाली मेटनेकूं कौन समर्थ है ? तैसे जाने बाह्यपरिग्रहही नहीं त्याग्या, ताका अभ्यन्तर आत्मा उज्ज्वल कदाचित्‌ही नहीं होय है । गाथा—

रागो लोभो मोहो सण्णाओ गारवाणि य उदिण्णा ।

तो तइया घेत्तुं जे गंथे बुद्धी णरो कुणइ ॥११२८॥

अर्थ—परद्रव्यमें आसक्तता, सो राग है । परिग्रहकी इच्छा, सो लोभ है । परवस्तुमें अपणास सो मोह है । हमारे यो वस्तु सुखकारी है ऐसा इच्छारूप जो परिणाम, सो संज्ञा है । पर्याय सम्बन्धी बडापनाका अभिमान धरना, सो गौरव है । जिस अवसरमें राग, लोभ, मोह, संज्ञा, गौरव ये उत्कटताने प्राप्त होय हैं, तिस अवसरमें यो मनुष्य परिग्रह ग्रहण करनेकी बुद्धि करे है । भावार्थ—अभ्यन्तर राग, लोभ, संज्ञा गौरव इनकी उत्कटताबिना परिग्रह नहीं ग्रहण करे है, तातें जाके बाह्यपरिग्रह हैं, ता   ं मतें अभ्यन्तर राग लोभ मोहकी प्रबलता होयही है । गाथा—

चेलादिसव्वसंगच्चाओ पढमो हु होदि ठिदिकप्पो ।

इहपरलोइयदोसे सव्वे आवहदि संगो हु ॥११२९॥

अर्थ—जातें वस्त्रादिक सर्व संगका परित्याग, सो प्रथमस्थितिकल्प है; तातें इस लोकमें अर परलोकमें सर्वदोषनिकूं परिग्रहही धारण करे है । गाथा—

देसामासियसुत्तं आचेलक्कन्ति तं खु ठिदिकप्पे ।

लुत्तोत्थ आदिसद्दो जह तालपलंबसुत्तम्मि ॥११३०॥

अर्थ— आचारांगका स्थितिकल्प नामा अधिकारविषें जो आचेलक्यपद कह्या है, सो यहु देशामर्षिक सूत्र है, तातें वस्त्रमात्रहीका त्याग नहीं जानना—वस्त्रकूं आदि लेय सर्वही आभरण वस्त्रशस्त्रादिक परिग्रहका त्याग जानना । इहां कोऊ कहै, आचेलक्यादि या प्रकार आदि शब्द क्यों नहीं सूत्रमें धरया ? तो तहां आदिपदका लोप व्याकरणमें होजाय है । जैसे तालप्रलम्बादिकमें आदि शब्दका लोप होगया है, तैसे इहांभी आदि शब्दका लोप जानना । गाथा—

ण य होदि संजदो वत्थमित्तचागेण सेससंगेहिं ।

तह्मा आचेलक्कं चाओ सव्वेसि होइ संगाणं ११३१॥

अर्थ—जातें वस्त्रमात्रहीका त्यागकरि अन्यपरिग्रहकूं धारणकरिके संजमी नहीं होय है, तातें आचेलक्य जो वस्त्र का त्याग कह्या है सो सर्वपरिग्रहका त्यागही कह्या है । गाथा—

संगणिमित्तं मारेइ अलियवयणं च भणइ तेणिक्कं ।
भजदि अपरिमिदमिच्छं सेवदि मेहुणमवि य जीवो ।११३२।

अर्थ—परिग्रहके निमित्त परके द्रव्य हरनेका इच्छक होय परकूं मारे है । अथवा परिग्रहके निमित्त छकायके जीवनिका घात करनेवाला आरम्भ करे है, खोटी सेवा करे है, जामें अनेकजीवनिका घात हो जाय, तथा अयोग्य विणज करे है, तथा महापाप करनेवाला शिल्पकर्म करे है, धनका लोभी सकल घोरकर्म करे है । धनका लोभी झूंठ बोलेही है, अर लोभी होय सो परधनकूं चोरे है, परिग्रहका लोभी कुशील सेवन करे, तथा अप्रमाणिक इच्छाकूं प्राप्त होयही है । तातें परिग्रहका लंपटीके पांचूं पापनिमें प्रवृत्ति होयही है । गाथा—

सण्णागारवपेसुण्णकलहफरुसाणि णिठ्ठुरविवादा ।
संगणिमित्तं ईसासूयासल्लाणि जायन्ति ॥११३३॥

अर्थ—परिग्रहके निमित्त तीव्र इच्छा उपजे है, तथा परिग्रह धारण करेगा ताके बडा गौरव बडा गर्व होय है, तथा परिग्रहके निमित्त परका दोषनिका प्रकाश करे है—चुगली करे है, तथा परके निमित्त कलह करे है, तथा धनके अर्थि कठोरवचन कहे है, तथा निष्ठुरवचन कहे है, तथा परिग्रहके निमित्त विवाद करे है, परिग्रहके निमित्त ईर्षा करे है, तथा असूया—आदेखसका भाव करे है । यो पुरुष इसके अर्थि दे है, मेरे अर्थि नहीं दे है तथा इस कार्यमें याके तो भला हुवा अर मेरे नहीं हुवा याका नाम ईर्षा है । तथा अन्य धनवानकूं नहीं देखि सकना याका नाम असूया है । येते सर्व दोष परिग्रहमें आसक्तपुरुषके जानने । गाथा—

कोधो माणो माया लोभो हास रइ अरदि भयसोगा ।
संगणिमित्तं जायइ दुगुंच्छ तह रादिभत्तं च ॥११३४॥

अर्थ—परिग्रहके निमित्त चारयों कषाय प्रबल होय हैं । कोई ऋण मांगने आवे तो बडा क्रोध उपजे है, तथा कोऊ धनाढ्य आपकूं कुछ नहीं देवे तो वासूं बडा क्रोध उपजे है जो आप जबर होय तदि अन्यका धन बलात्कार हरनेकूं

बडा कोध करे है, तथा आपका कोई धन हरण करे तो ताऊपरि बडा क्रोध करे है, कोऊ आपका धनकूं खरच करावे ताऊपरि बडा क्रोध करे है, धनके वास्ते ऐसा क्रोध करे है परकूं बिना अपराध नाना मार मारे है–प्राणरहित करे है आप मरि जाय है ! परिग्रहके निमित्त आपका मरना नहीं देखे है, ऐसे अनेक प्रकार परिग्रहके निमित्त क्रोध करे है । तथा धन पाय आपकूं ऊंचा जाने हैं, जगतकूं रंकसमान देखे है, आप परिग्रहका बडा अभिमान करे है, आपकूं इन्द्र समान जाने है । धनका अभिमानकरि धर्मात्माका तिरस्कार करे है, माता पिता गुरु उपाध्यायका अविनय करे है, जगतकूं तृणसमान देखे हैं, परिग्रह मदकरि अन्धसमान होजाय है, तातें परिग्रहतें बडा अनर्थरूप अभिमान होय है । बहुरि परिग्रहतें मायाचार बहुत करे है, परिग्रहवासतें नाना प्रकार छल करे है, जगतमें परिग्रहके निमित्त बडी ठिगाठिगी लगी रही है । परिग्रहवास्ते पाखण्डरूप भेष धारण करे है, तातें परिग्रह मायाचारका निवास है । बहुरि परिग्रहवानकी तृष्णा नहीं मिटे है, सौसूं हजार, हजारसूं लक्ष, लक्षतें कोटि, कोटिनतें राजापणा चक्रीपणा अधिकाधिकही वांछा करे है, संग्रह करता करता नहीं धापे है, महा आरम्भ विस्तारे है, जगतकूं ठिग्या चाहे है, नहीं करनेका कार्य करे है, इत्यादिक परिग्रहतें लोभ की आधिक्यता होय है । परिग्रहवास्ते आप हास्य का पात्र बणि जाय है, लज्जा छांडि दे है । बहुरि अति आसक्तताकूं प्राप्त होय है । अर परिग्रह बिगडि जाय तदि अत्यन्त अरति जो मरणसूं अधिकपीडा ताकूं प्राप्त होय है । अर परिग्रहधारीके निरन्तर भय रहे है । 'मति कोऊ हर ले' तथा राजाका तथा चोरका तथा दुष्टनिका तथा दायियादारनिका परिग्रहधारीके शाश्वत भय रहे है । तथा परिग्रह नष्ट जाय तो महाशोक उपजे है, धन नष्ट होनेहालेके जैसा शोक होय है तैसा काहूके नहीं होय है । अर परिग्रहका धारी है सो परिग्रह जहां नहीं देखे ऐसे दरिद्री पुरुषनिमें तथा दरिद्रीनिके गृह कुटुम्बमें महाग्लानि करे है । तथा परिग्रह का धारक रात्रिभोजनादिक सकलपाप अंगीकार करे है । परिग्रहका लोलपी खाद्य अखाद्य योग्य–अयोग्यमें विचारही नहीं करे है । गाथा—

गंथो भयं णराणं सहोदरा एयरत्थजा जं ते ।
अण्णोण्णं मारेदुं अत्थणिमित्तं मदिमकासी ॥११३५॥

अर्थ—मनुष्यनिके परिग्रह है सो भय है–भयका कारण है, यातें–जातें एकलछनगरमें एकउदरतें उपजे भाई धनके अर्थि परस्पर मारनेमें बुद्धि करत भये, तातें—जाके परिग्रह है ताके निश्चयते भय जानहु । गाथा—

अत्थणिमित्तमदिभयं जादं चोराणमेक्कमेक्केहिं ।

मज्जे मंसे य विसं संजोइय मारिया जं ते ॥११३६॥

अर्थ—धनके निमित्त चोरनिके प्रति भय उत्पन्न होतो भयो । अर धनके अर्थिही परस्पर मद्यमें मांसमें विष संयुक्त करि परस्पर मारे गये । गाथा—

संगो महाभयं जं विहेडिदो सावगेण संतेण ।

पुत्तेण चेव अत्थे हिदम्मि णिहिदिल्लए साहुं ॥११३७॥

अर्थ—जातें परिग्रह महाभय है, इस परिग्रहतें महान् धर्मात्माका भी परिणाम बिगडे है । देखो ! जमींमें मेल्या हुवा धन आपका पुत्र काढि ले गया, तदि सत्पुरुषहू श्रावकके ऐसी शंका उपजी, जो मेरा जमींमें धरया धनकूं साधु जाने था, सो कदाचित् इनका परिणाम बिगडि धन हरया होय ! ऐसा विचारि साधुकूं बाधारूप किया ।

याका ऐसा सम्बन्ध है–कोऊ एक शुद्धचारित्रका धारक मुनीश्वर एक नगरके बाह्य वन छो तामें वर्षाऋतुमें च्यारि महिनाको जोग धारण करि तिष्ठे, तिस अवसरमें उस नगरका एक श्रावक मुनीश्वरांकी वन्दना करिके विचार किया, जो मेरा बडा भाग्यतें च्यारि महिना साधुका संगम हुवा" अब मैं ऐसे करूं, जो च्यारि महीना मेरे साधुनिकी सेवा अर धर्मश्रवणहीमें व्यतीत होय । ऐसा विचारि अर अपना बिसनी कपूत पुत्रका भयकरि अपना घरका सारभूत जो धन, सो एक कलशमें मेलि अर जहां मुनीश्वर तिष्ठे छा तहां ल्याय भूमिमें खोदि धरि दिया, अर आप निर्भय हुवा साधुके निकटि धर्मश्रवण करि च्यारि महीना साधुसेवामें व्यतीत किया । परन्तु जिस अवसरमें घरधकी धनका कलश ल्याय मुनीश्वरांका आश्रममें गाडे छो, तिस अवसरमें आपका व्यसनी पुत्र छिप्यो हुवो देखे छो, सो कोइक दिन पिता तो नगरमें भोजनकूं गयो अर पाछांसूं धनका कलश जमींमेंतें निकासि ले गयो !

अब चतुर्मास पूरा हुवा, मुनि विहार करि गया, अर श्रावकहू तिनकूं कितनी दूरि पहुंचाय वन्दनाभक्ति करि नगरमें पाछो आयो । तदि विचारी, जो "धनका कलश अब घरि ले चलूं" सो जिस मकानमें गाड्या छा, वहां आय देखे तो कलश नहीं ! तदि परिणाममें किंचित् व्याकुल होय विचार किया, मेरा धनका कलश कौन ले गया ? इहां वनमें कोऊ ही देखनेवाला नहीं छा, एक दिगम्बर साधुही छा, तातें अब चालि उनकूं पूंछना । ऐसा विचार करि आपका पुत्रकूं लारे

लेय मुनीश्वरनिके निकटि जाय पहुँच्या । तदि मुनि जाणि लीनी जो "यो सेठ धनका भरया कलशवास्ते आया है ।" परंतु साधुका कहनेका मार्ग नहीं ! प्राण जाओ परन्तु साधु सदोषवचन नहीं कहै । तदि श्रेष्ठी कही, हे भगवन् ! आप गमन करते हो, परन्तु एक मैं कथा कहूँ हूँ सो श्रवण करते जावो । तदि मुनीश्वरां कही कथा कहो ये-हम श्रवण करे हैं । तदि एक कथा श्रेष्ठी कही तदि ताकां उत्तररूप एक कथा साधु कही । बहुरि एक कथा सेठ कही, अर एक कथा साधु कही । ऐसे आठ कथा श्रेष्ठी कही अर आठ कथा साधु कही । सो सोलह कथाका नाम आगे दोय गाथानिमें नाममात्र वर्णन करसी ।

सो ऐसे प्रकट तो दोऊ कहि सके नहीं, अर श्रेष्ठी तो ऐसे कहे, जो, हे स्वामिन् ! वे तो एसा उपकार किया अर दूजा वाका अपकार करे ! सो जो उपकारीका अपकार करना जोग्य है कहा ? तब साधु कहै, उपकारीका अपकार करना जोग्य नहीं । परन्तु मेरी कथा सुनहु । सो एक कथा साधु कहे, तामें ऐसा भाव कहै, जो, विना समझ्या अपराधरहितकूं दूषण लगाना जोग्य है कहा ? । तदि श्रेष्ठी कहै, विनासमझ्या दूषण लगावना जोग्य नहीं । ऐसे दोऊनिकी सोलह कथा होय चुकी, तदि पुत्र पितासे कही, हे पिता ! यो धनको कलश मैं ले गयो, सो यो तुम ग्रहण करो ! इस धन बरोबरी कोऊ परिणाम बिगाडनेवाला नहीं है ! धिक्कार होहू या धनकूं ! जाके निमित्ततें तुमसारिखे महा श्रद्धानी व्रती श्रावकनिका परिणाम चलि गया ! जो ऐसा विचार नहीं उपज्या--जो, 'ऐसे धर्मात्मा दिगम्बर, जिनके निकट च्यारि महीना धर्म श्रवण करि भलै प्रकार निश्चय करि लिया ! यो मेरा धनका कलश कैसे ले जाय ? जिनके इन्द्रलोक अहंमिद्रलोककी सम्पदामें विषकी बुद्धि प्रवर्ते है ! अर अपना देहहूमें ममता नहीं, सो परधनमें ममता कैसे करै ? हे पिता ! अब यह धनका कलश तुम ग्रहण करो, मैं तो अब दिगम्बर दीक्षा धारण करूंगा ! तब श्रेष्ठीहू धनका निमित्तसूं अपना परिणाम का श्रद्धानका मलिनपणा जाणि परिग्रहतें विरक्त होय, दीक्षा धारण करता हुवा । तातें परिग्रह है सो धर्मकी श्रद्धाकूं क्षणमात्रमें बिगाडे हैं । गाथा—

दूओ बंभण विग्घो लोओ हत्थी य तह य रायसुयं ।
पहियणरो वि य राया सुवण्णयारस्स अक्खाणं ।।११३८।।
वण्णरणउलो विज्जो वसहो तावस तहेव चूदवणं ।
रक्खसिवण्णीडुंडुदुह मेदज्ज मुणिस्स अक्खाणं ।।११३९।।

अर्थ— १. दूत, २. ब्राह्मण, ३. व्याघ्र, ४. लोक, ५. हस्ती, ६. राजपुत्र, ७. पथिक नर, ८. राजा इन सम्बन्धी आठ अर १. वानर, २. नकुल, ३. वैद्य, ४. वृषभ, ५. तापस, ६. वृक्ष, ७. सिवणी, ८. सर्प ये आठ कथा ऐसे सोलह कथा परस्पर होत भई। ते प्रथमानुयोगके ग्रन्थनितें जाननी। गाथा—

सीदुण्हादववावं वरिसं तण्हा छुहासमं पंथं।
दुस्सेज्जं दुज्झत्तं सहइ वहइ भारमवि गुरुयं ॥११४०॥

गावइ णच्चइ धावइ कसइ ववइ लवदि तह मलेइ णरो।
तुण्णदि विणादि जायदि कुलम्मि जादो वि गंथत्थो ।११४१।

अर्थ—परिग्रहका अर्थी शीतकी वेदना, तथा उष्णकी वेदना, तथा आताप जो तावडाकी तथा पवनकी वेदना, तथा वर्षाकी वेदना, तथा तृष्णाकी वेदना, तथा क्षुधाकी वेदना नानादुःखरूप भोगे है। बहुरि परिग्रहका अर्थी खेद भुगते है, परिग्रहवास्ते महान् श्रम करे है, तथा परिग्रहका लोभी धनाढ्य लोकनिका बाह्य अंगणमें पडा रहे है। तथा लोभी हुवा दुर्भक्त जो खोटा नीरसभोजन करे है। तथा अन्यके द्वारे निरादरसूं दिया भोजन ग्रहण करे है। अर बनका लोभी हुवा बहुत भार वहे है। बहुरि उच्चकुलमें उपज्याहू पुरुष परिग्रहका लोभी धनके अर्थि आपका कुलनें तथा जातिनें तथा धर्मनें पदस्थनें—पूज्यपणानें नहीं गिणतो नीचपुरुषनिके करनेजोग्य महानीचकर्म करे है। ते नीचकर्म कौन कौन हैं सो कहे हैं—गावे है, तथा नाचे है, तथा आगांकूं दोडे है, तथा खेती करे है, तथा बाहे है, तथा लूणें है, तथा पावमर्दनादिक करे है, तथा सींवे तथा बणें है, तथा याचना करै है इत्यादि नीचकर्म लोभी विना कोन करै? गाथा—

सेवइ णियादि रक्खइ गोमहिसमजावियं हयं हत्थि।
ववहरदि कुणदि सिप्पं अहो य रत्ती य गयणिद्दो ॥११४२॥

अर्थ—बहुरि धनके अर्थि प्रधमपुरुषनिकी सेवा करे है, परिग्रहके निमित्त देश बाहिर निकलि जाय है, तथा धन के अर्थि गायनिकी तथा भेंसी तथा छ्याली तथा मींढा तथा घोडा तथा हाथीनिकी रक्षा करे है, चाकरी करे है, तथा पशूनिका व्यवहार करे है तथा दिनरात्रिमें शिल्पकर्म करे है, रात्रिकूं निद्राहू नहीं लेवे है। गाथा—

आउधवासस्स उरं देइ रणमुहम्मि गंथलोभादो ।

मगरादिभीमसावबबहुलं अदिगच्छदि समुद्दं ॥११४३॥

अर्थ—परिग्रहका लोभतें संग्रामविषै आयुधांकी वर्षाके सन्मुख अपना हृदय देत है । अर परिग्रहकी वांछातें मगरमत्स्यादिकरि भयानक अर बहुत हैं दुष्टजीव जामें ऐसे समुद्रमें प्रवेश करे है । गाथा—

जदि सो तत्थ मरिज्जो गंथो भोगा य कस्स ते होज्ज ।

महिलाविहिंसणिज्जो लूसिददेहो व सो होज्ज ॥११४४॥

अर्थ—जो कदाचित् धनका लोभी रणविषै मरिजाय, तथा समुद्र विषै मरि जाय, तो परिग्रह तथा भोग कौनके होय ? तथा रणमें जावनेतें तथा समुद्रमें प्रवेश करनेतें देह लूखो होजाय, विरूप होजाय तो स्त्रीनिकै ग्लानि करनेयोग्य होजाय, तदि धनपरिग्रहका कहा सुख होय ? गाथा—

गंथणिमित्तमदीविय गुहाओ भीमाओ तह य अडवीओ ।

गंथणिमित्तं कम्मं कुणइ अकादव्वयंपि णरो ॥११४५॥

अर्थ—ग्रन्थके निमित्त भयानक गुफामें प्रवेश करे है तथा भयानकवनीमें प्रवेश करे है । तथा ग्रन्थके निमित्त यो नर नहीं करने योग्यहू कर्म करे है । गाथा—

सूरो तिक्खो मुक्खो वि होइ वसिओ जणस्स सधणस्स ।

माणी वि सहइ गंथणिमित्तं बहुयं पि अवमाणं ॥११४६॥

अर्थ—परिग्रहके निमित्त शूरवीर तथा तीक्ष्ण कहिये 'काहूकी नहीं सहिसके' ऐसा स्वभावका तीखा तथा मूर्खहू धनसंयुक्तपुरुषकै वशीभूत होय है, तथा अभिमानीहू परिग्रहके निमित्त महान् अपमानकूं सहे है । गाथा—

गंथणिमित्तं घोरं परितावं पाविदूण कंपिल्ले ।

लल्लक्कं संपत्तो णिरयं पिण्णागगंधो खु ॥११४७॥

अर्थ—कांपिल्यनगरविषें पिण्याकगन्ध नामा पुरुष परिग्रहके अर्थि महान् संताप पायकरिके अर लल्लक नाम नरककूं प्राप्त भयो । गाथा—

एवं चेट्ठंतस्स वि संसइदो चेव गंथलाहो दु ।
ण य संचीयदि गंथो सुइरेणवि मंदभागस्स ॥११४८॥

अर्थ—ऐसे नाना प्रकार उद्यम नाना प्रकार नीचप्रवृत्ति करताहू पुरुषकै परिग्रहको लाभ संशयरूप है–लाभ होय तथा नहीं होय । नीचप्रवृत्ति करतां लाभ होयही ऐसा नियम नहीं है । जातें मन्दभाग्य पुरुषके बहुतकाल घोर उद्यम करिकेहू संचय तथा लाभ नहीं होय है । गाथा—

जदि वि कहंचि वि गंथा संचीएजण्ह तह वि से णत्थि ।
तित्ती गंथेहिं सदा लोभो लाभेण वढ्ढदि खु ॥११४६॥

अर्थ—जो कदाचित् परिग्रहका संचयहू होय, तोहू ताकै तृप्तिता परिग्रहकरि नहीं होय है, जातें लाभकरिके लोभ सदा वृद्धिकूंही प्राप्त होय है । जैसे जैसे धनका लाभ होय तैसे तैसे लोभ वृद्धिकूं प्राप्त होय है । गाथा—

जध इंधणेहिं अग्गी लवणसमुद्दो णदीसहस्सेहिं ।
तह जीवस्स ण तित्ती अत्थि तिलोगे वि लद्धम्मि ॥११५०॥

अर्थ—जैसे इन्धनकरि अग्नि तृप्त नहीं होय अर हजारां नदीनिकरि समुद्र तृप्त नहीं होय; तैसे संसारी जीव त्रैलोक्यका लाभ होय तोहू तृप्त नहीं होय है । गाथा—

पडहत्थस्स ण तित्ती आसी य महाधणस्स लुद्धस्स ।
संगेसु मुच्छिदमदी जादो सो दीहसंसारी ॥११५१॥

अर्थ—महाधनका धनी अर महालोभी ऐसा पटहस्त नामा वणिक ताके बहुत धनतेंहू तृप्ति नहीं हुई, सो परिग्रहमें महाममतारूप बुद्धिको धारि अनन्तसंसारी होतो हुवा । तातें परिग्रहसमान तृष्णा बधावनेवाला और कोऊ नहीं है । गाथा—

तित्तीए असंतोए हाहाभूदस्स घण्णचित्तस्स ।
किं तत्थ होज्ज सुक्खं सदा वि पंपाए गहिदस्स ॥११५२॥

अर्थ—अर परिग्रहतें तृप्ति नहीं आवें तदि हाय हाय करतो अर लम्पटी है चित्त जाको अर सदाकाल तृष्णाकरि ग्रहण कियो पकड्यो ऐसा लोभीके परिग्रहमें सुख होत है कहा ? नहीं ही सुख होत है । गाथा—

हम्मदि मारिज्जदि वा बज्झदि रुंभदि य अणवराधे वि ।
आमिसहेदुं घण्णो खज्जदि पक्खीहिं जह पक्खी ॥११५३॥

अर्थ—जैसे मांसके निमित्त लम्पटी हुवा जो पक्षी सो कोऊ अन्य मांसकूं ले जावता पक्षीकूं देखि वाकूं मारे है, खाय जाय है; तैसे अपराधरहितहू धनाढ्य पुरुषकूं धनका अर्थी दुष्ट राजा, दाइयादार भाई, तथा चोर, तथा दुष्ट कोटपाल, तथा दुष्ट आपका कुटुम्बी विनाकारणही मारे है । तथा हणे है, तथा बान्धे है, रोके है । ऐसा विचार नहीं करे है, जो, बिना अपराध याकूं कैसे मारूं हूं ? धन खोसलेनेमें लूटनेमें जिनका परिणाम, तिन निर्दयीनिकें काहेकी दया ? तातें परिग्रहका निमित्ततें हनना, मारना, बन्धना, रुकना सर्व दुःख सहना होय है । गाथा—

मादुपिदुपुत्तदारेसु वि पुरिसो ण उवयाइ वीसंभं ।
गंथणिमित्तं जग्गइ कंक्खंतो सव्वरत्तीए ॥११५४॥

अर्थ—यो पुरुष परिग्रहके निमित्त माताकेविषै, तथा पितामें, तथा पुत्रमें, तथा स्त्रीमें विश्वास नहीं करे है । यद्यपि ये माता, पिता, पुत्र, स्त्री विश्वास करनेयोग्य हैं, तथापि सर्वरात्रि परिग्रहकी रक्षा करता जाग्रत रहे है । गाथा—

सव्वं पि संकमाणो गामे-णयरे घरे व रण्णे वा ।
आधारमग्गणपरो अणप्पवसिओ सदा होइ ॥११५५॥

अर्थ—परिग्रधारी पुरुष सर्वलोकनितैं शकाकूं प्राप्त हुवा ग्राममें, नगरमें, तथा गृहमें, तथा वनमें, आधार हेरनेमें तत्पर सदा अनात्मवश होय है । भावार्थ—परिग्रहका धारी भयवान् हुवा सर्व जायगां आपकी रक्षा करनेवाला कोऊका सहाय, कोऊका आश्रय निरन्तर चाहता पराधीन होय है । गाथा—

गंथपडियाए लुद्धो वीराचरियं विचित्तमावसधं ।
णेच्छदि बहुजणमज्झे वसदि य सागारिगावसए ॥११५६॥

अर्थ—जो परिग्रहका लोभी है, सो धीरपुरुषनिकरि आचरण किया ऐसा एकान्तस्थान नहीं इच्छा करे है, बहुत जननिके मध्य गृहस्थनि गृह तिनमें वसे है । गाथा—

सोदूण किंचिसद्दं सग्गंथो होइ उट्ठिदो सहसा ।
सव्वत्तो पिच्छन्तो परिमसदि पलादि मुज्झदि य ।।११५७।।

तेणभएणारोहइ तरुं गिरिं उप्पहेण व पलादि ।
पविसदि य हृदं दुग्गं जीवाण वहं करेमाणो ॥११५८॥

तह वि य चोरा चारभडा वा गच्छं हरेज्ज अवसस्स ।
गेण्हिज्ज दाइया वा रायाणो वा विलुंपिज्ज ॥११५९॥

अर्थ—परिग्रहसहित जो पुरुष सो किंचिन्मात्रहू शब्दश्रवणकरिके अर शीघ्रही ऊठि सर्वदिशामें अवलोकन करतो अपना द्रव्यकूं स्पर्शन करे है, तथा लेय भागे है, तथा अज्ञान हुवा मोह जो बेखबगी ताहि प्राप्त होय है । बहुरि चौरका भयकरिके वृक्षकूं आरोहण करे है, पर्वत ऊपरि भयतें चढ़ि जाय है, तथा चोर लुटेरेनिके भयतें उत्पथमार्ग होय भागे है, तथा जलका दहमें पडे है, तथा महान् विषमस्थानमें जाय है, कोऊ आपकूं भागतेकूं रोके तिन जीवनिकूं मारता भाग जाय है । ऐसे भयवान् हुवा दौडे है तोहू चोर तथा प्रबल योद्धा ताकूं वशीभूत करि पकडि अर धनहरण करें है, अथवा दायियादार जे भाई बन्धु ते धन हरण करें हैं, तथा राजा लूटि ले है, ताका दुःखकूं कौन कहने समर्थ है ? गाथा—

संगणिमित्तं कुद्धो कलहं रोलं करिज्ज वेरं वा ।
पहणेज्ज व मारेज्ज व मारेजेज्ज व य हम्मेज्जा ॥११६०॥

अहवा होइ विणासो गंथस्स जलग्गिमूसायादीहिं ।
णट्ठे गंथे य पुणो तिव्वं पुरिसो लहदि दुक्खं ॥११६१॥

अर्थ—परिग्रहके निमित्त क्रोधी होय है, कलह करे है, तथा विवाद करे है, बैर करे है, हणे है–ताडन करे है, तथा मारे है, तथा परकरिके मारिये है । अथवा जलकरिके अग्निकरिके मूषादिककरिके परिग्रह नष्ट होय तब पुरुष तीव्र दुःखकूं प्राप्त होय है । गाथा—

सोयइ विलवइ कन्दइ णट्ठे गंथम्मि होइ वीसण्णो ।
पज्झादि णिवाइज्जइ वेवइ उक्कंठिओ होइ ॥११६२॥

अर्थ—परिग्रह नष्ट होता सन्ता शोच करे है, तथा विलाप करे है, पुकार करे है, विषादी होय है, चिन्ता करे है, सन्तापकूं प्राप्त होय है, कंपायमान होय है, तथा उत्कंठित होय है । गाथा—

डज्झदि अन्तो पुरिसो अप्पिए णट्ठे सगम्मि गन्थम्मि ।
वायावि य अविखप्पइ बुद्धी विय होइ से मूढा ॥११६३॥

अर्थ—आपका अल्पहू परिग्रहका नाश होता सन्ता अन्तःकरणमें दाहकूं प्राप्त होय है, वचनहू नष्ट होय है, अर जाकी बुद्धिहू मूढ होय है । गाथा—

उम्मत्तो होइ णरो णट्ठे गन्थे गहोवसिट्ठो वा ।
घट्टदि मरुप्पवादादिएहिं बहुधा णरो मरिदुं ॥११६४॥

अर्थ—जैसे पिशाचकरि गृहीत पुरुष उन्मत्त होय है–आपा भूलि जाय है, तैसे परिग्रहका नाश होय तब पुरुष उन्मत्त होय जाय है, तथा पर्वतादिकतें पतन करि अपना बहुतप्रकारकरि मरिवेकूं चेष्टा करे है । गाथा—

चेलादीया संगा संसज्जन्ति विविहेहिं जन्तूहिं ।
आगन्तुगा वि जन्तू हवन्ति गन्थेसु सण्णिहिवा ॥११६५॥

अर्थ—वस्त्रादिक परिग्रह हैं ते नानाप्रकारके जूवां उटकणादिकका संसर्गकरि सहित होत हैं। बहुरि वस्त्रादिक परिग्रहमें उपरिले तथा भूमिपरि विचरते कीडी, कीडा, मछर, डांस, मकडी, कानखजूरचा इत्यादिक अनेक आगन्तुक जीव प्राप्त होय हैं। गाथा—

आदाणे णिक्खेवे सरेमणे चावि तेसि गन्थाणं।
उक्कस्सणे वेक्कसणे फालणे पप्फोडणे चेव ॥११६६॥
छेदणबन्धणवेढणआदावणधोव्वणादिकिरियासु।
संघट्टणपरिदावणहणणादी होदि जीवाणं ॥११६७॥
जदि वि विविंचदि जन्तू दोसा ते चेव हुन्ति से लग्गा।
होदि य विकिंचणे वि हु तज्जोणिविओजणा णियमं।११६८

अर्थ—वस्त्रादिक परिग्रह ग्रहण करनेमें, तथा स्थापन करनेमें, तथा पसारणेमें, तथा उत्कर्षण कहिये ऐंठी ऊंठी खींचनेमें, तथा बांधनेमें, छोडनेमें, तथा हलावनेमें, तथा छेवनेमें, तथा बंधनेमें, बेठनेमें, वोढनेमें, तावडेमें सुकावनेमें तथा धोवनादि क्रियानिमें जीवनिका संघट्टन तथा परितापन तथा हनन जो मारण सो प्रकट होय है। अर यद्यपि वस्त्रादिकनितें जीव निराकरण करिये तोहू तेही दोष लगे हैं। जातें तिन जीवनिके दूरि करनेमेंभी तिन जीवनिका अपने योनिस्थानके छूटनेतें मरण होय है। तातें परिग्रही निश्चयतें जीवनिकी विराधनाही करे है। ऐसे अचित्तपरिग्रहके दोष कहिकरिके अब सचित्त परिग्रहके दोष कहे हैं। गाथा—

सच्चित्ता पुण गन्था वधन्ति जीवे सयं च दुक्खन्ति।
पावं च तण्णिमित्तं परिगिण्हन्तस्स से होई ॥११६९॥

अर्थ—सचित्त जे दासी दास गोमहिष्यादिक परिग्रह हैं, ते जीवनिनें मारे हैं–घाते हैं, तथा आपहू दुःखकूं प्राप्त होय है, तथा खेती इत्यादिक आरम्भमें युक्त किये हुये महापाप करे हैं, तातें सचित्तपरिग्रह ग्रहण करतेके तिनके निमित्ततें पापही होय है। गाथा—

इन्दियमयं सरीरं गन्थं गेण्हदि य देहसुक्खत्थं ।
इन्दियसुहाभिलासो गन्थग्गहणेण तो सिद्धो ॥११७०॥

अर्थ--जातैं यो शरीर इन्द्रियमय है-इन्द्रियनितैं शरीर जुदा नहीं, अर परिग्रह जो परिग्रह ग्रहण करे है, सो शरीर का सुखके निमित्त करे है । तातैं परिग्रह ग्रहण करनेतैं इन्द्रियनिका सुखका अभिलाष सिद्ध भया । सो इन्द्रियजनितसुखका अभिलाष कर्मबन्धको निमित्त है, तातैं मोक्षाभिलाषीकूं परिग्रहका त्यागही उचित है । गाथा--

गन्थस्स गहणरक्खणसारवणाणि णियदं करेमाणो ।
विक्खित्तमणो ज्झाणं उवेदि कह मुक्कसज्झाओ ॥११७१॥

अर्थ--परिग्रही पुरुष त्याग्या है स्वाध्याय जानें ऐसा स्वाध्यायरहित हुवा परिग्रहकी रक्षा तथा परिग्रहका ग्रहण तथा परिग्रहका संवारना, ऐसे नित्यही परिग्रहमें लीनताकरि विक्षिप्त है मन जाका सो कैसे शुभ ध्यान करै ? गाथा--

गन्थेसु घडिदहिदओ होइ दरिद्दो भवेसु बहुगेसु ।
होदि कुणन्तो णिच्चं कम्मं आहारहेदुम्मि ॥११७२॥

अर्थ--जाका चित्त परिग्रहमें आसक्त है, सो बहुतभवपर्यंत दरिद्री हुवा आहारके अर्थि बहुत नीचकर्म करता भ्रमण करे है । गाथा--

विविहाओ जायणाओ पावदि परभवगदो वि धणहेदुं ।
लुद्धो पंपागहिदो हाहाभूदो किलिस्सदि य ॥११७३॥

अर्थ--परिग्रहमें आसक्त पुरुष परभवमें धनके निमित्त नाना प्रकार पीडाकूं प्राप्त होय है, अर लोभी हुवो आशा के आधीन हाय हाय करतो क्लेशकूं प्राप्त होय है । गाथा--

एदेसिं दोसाणं मुंचइ गन्थजहणेण सव्वेसिं ।
तव्विवरीया य गुणा लभदि य गंथस्स जहणेण ॥११७४॥

अर्थ--अर परिग्रहका त्याग करिके ऐते सर्व दोष त्यागत हैं, अर इनि दोषनितें अनेले गुणनिकूं धारण करे है-प्राप्त होय हैं। गाथा--

गन्थच्चाओ इन्दियणिवारणे अंकुसो व हत्थिस्स।
णयरस्स खाइया वि य इन्दियगुत्ती असंगत्तं ॥११७५॥

अर्थ—जैसे हस्तीकूं उत्पथमार्गतें रोकनेकूं अंकुश है, तैसे इन्द्रियनिकूं विषयनितें रोकनेकूं परिग्रहत्याग नामा व्रत समर्थ है। जैसे नगरकी रक्षाके अर्थि खाई है, तैसे इन्द्रियनिकूं रागभावतें तथा कामभावतें रोकनेकूं एक परिग्रहरहितपणाही समर्थ है। गाथा—

सप्पबहुलम्मि रण्णे अमन्तविज्जोसहो जहा पुरिसो।
होइ दढमप्पमत्तो तह णिग्गन्थो वि विसएसु ॥११७६॥

अर्थ—जैसे सर्प हैं बहुत जामें, ऐसे वनविषं मंत्ररहित, विद्यारहित, औषधरहित, जो पुरुष सो अत्यन्त अप्रमादी-सावधान हुवा वसे है, तैसे क्षायिकसम्यक्त्व केवलज्ञान यथाख्यातचारित्ररूप जे मंत्र-विद्या-औषधरहित निर्ग्रंथहू रागादिक सर्पनिकरि व्याप्त जो विषयरूप वन तामें प्रमादी हुवा नहीं वसे है-सावधान ही रहे है। गाथा—

रागो हवे मणुण्णे विसए दोसो य होइ अमणुण्णे।
गन्थच्चाएण पुणो रागद्दोसा हवे चत्ता ॥११७७॥

अर्थ—मनोज्ञविषमें राग होय है अर अमनोज्ञमें द्वेष होय है, अर मनोज्ञ अमनोज्ञ दोऊ प्रकारका परिग्रहका त्याग करिके रागद्वेषका त्याग होय है। भावार्थ—कर्मबन्धका मूलकारण राग अर द्वेष हैं। अर रागद्वेषका कारण परिग्रह है। जहां परिग्रहका त्याग भया, तहां संसारपरिभ्रमणका कारण रागद्वेषका अभाव होय है। तातें परिग्रहका त्यागही संसार का अभावका कारण जानहु। गाथा—

सीदुण्हदंसमसयादियाण दिण्णो परीसहाण उरो।
सीदादिणिवारणए गन्थे णियय जहन्तेण ॥११७८॥

अर्थ—शीत उष्णादिक वेदनाकूं निराकरण करनेवारे जे वस्त्रादिक परिग्रह तिनकूं त्याग करतो पुरुष, शीत उष्ण दंशमशकादिक वेदनारूप परीषह सहनेकूं अपना हृदयकूं दिया। भावार्थ—जानें नग्नपना धारया, तानें सकलपरीषह सहना अंगीकार किया। गाथा—

जम्हा णिग्गन्थो सो वादादवसीददंसमसयाणं।
सहदि य विविधा बाधा तेण सदेहे अणादरदा ॥११७९॥

अर्थ—जातें ये निर्ग्रन्थ मुनि पवन तथा आताप तथा शीत तथा दंशमशकनिकरि कोई नानाप्रकारकी बाधा सहे है, ता कारणकरि इनूंने अपना देहविषहू अनादरता अंगीकार करी। गाथा—

संगपरिमग्गणादी णिस्संगे णत्थि सव्वविक्खेवा।
ज्झाणज्झेणाणि तओ तस्स अविग्घेण वच्चन्ति ॥११८०॥

अर्थ—परिग्रहका लाभकूं हेरना, तथा धनवानकूं अवलोकना, तथा याचना करना, दीन मन करना, तथा धनकी रक्षा करना, नष्ट होनेका भय करना इत्यादिक सर्वविक्षेप परिग्रहका त्यागीके नहीं होय हैं। अर विक्षेप नहीं होय तदि निर्विघ्नताकरि ध्यान तथा स्वाध्यायमें निरन्तर प्रवृत्ति होय है। तातें सर्वतपनिमें प्रधान जे ध्यानस्वाध्याय तिनमें प्रवर्तन करने का उपाय एक परिग्रहका त्यागहो है। गाथा—

गन्थच्चाएण पुणो भावविसुद्धी वि दीविदा होइ।
ण हु संगघडिदबुद्धी संगे जहिदुं कुणदि बुद्धी ॥११८१॥

अर्थ—बहुरि परिग्रका त्यागकरिके भावनिकी विशुद्धता दिपै है, परिग्रहमें आसक्त है बुद्धि जाकी ऐसा पुरुष परिग्रह त्यागनेमें बुद्धि नहीं करे है। गाथा—

णिस्संगो चेव सदा कसायसल्लेहणं कुणदि भिक्खू।
संगा हु उदीरन्ति कसाए अग्गीव कट्ठाणि ॥११८२॥

अर्थ--परिग्रहरहितही साधु सदाकाल कषायनिकूं कृश करे है। परिग्रहका धारीके कषायनिकी तीव्रताही होय है। जैसे काष्ठ अग्नीकूं बधावे है, तैसे परिग्रह कषायनिकं उत्कट करैही है। गाथा—

सव्वत्थ होइ लहुगो रूव विस्सासियं हवदि तस्स।

गुरुगो हि संगसत्तो सकिज्जइ चावि सव्वत्थ ॥११८३॥

अर्थ—परिग्रहरहित जो साधु ताके गमनमें तथा आगमनमें सर्व जायगां भाररहित—स्वाधीनता होय है। तथा निर्ग्रन्थरूपभी सर्वके विश्वास करने जोग्य होय है। बहुरि परिग्रहमे आसक्त जो साधु ताके बडा भार है, अर परिग्रहका धारक सर्व जगतमें शंका करने जोग्य होय है। गाथा—

सव्वत्थ अप्पवसिओ णिस्संगो णिब्भओ य सव्वत्थ।

होदि य णिप्परियम्मो णिप्पडिकम्मो य सव्वत्थ ॥११८४॥

अर्थ--बहुरि परिग्रहरहित जो साधु सो सर्व ग्राममें, नगरमें, वनमें स्वाधीन रहे है, अर सर्व अवसरमें सर्व स्थाननिमें निर्भय रहे है, अर सर्व कालमें व्यापाररहित—प्रवृत्तिरहित होय है। अर इस कार्यकूं तो मैं किया अर यह कार्य मेरे करना है—इत्यादिक सर्व विकल्परहित परिग्रहका त्यागी होय है। गाथा—

भारक्कन्तो पुरिसो भारं ऊरुहिय णिव्वुदो होइ।

जह तह पयहिय गन्थे णिस्संगो णिव्वुदो होइ ॥११८५॥

अर्थ--जैसे भारकरि दब्या पुरुष भारकूं उतारिकरि सुखी होय है, तैसे संगरहित साधुहू परिग्रहका भार उतारि सुखी होय है। गाथा--

तह्मा सव्वे संगे अणागए वड्ढमाणए तीवे।

तं सव्वत्थ णिवारहि करणकारावणुण्णाहिं ॥११८६॥

अर्थ--तातें, भो ज्ञानी हो ! तुम, आगे होयंगे, तथा वर्तमान, तथा होय गये ऐसे संपूर्ण परिग्रहनिकूं कृत-कारित-अनुमोदनाकरि निराकरण करो ! जो परिग्रह गया ताकूं यादि मति करो, अर आगेकूं वांछा मति करहू, अर वर्तमान है तिनमे राग मति करो। गाथा--

जावन्ति केइ संगा विराधया तिविहकालसंभूवा ।
तेहिं तिविहेण विरवो विमुत्तसंगो जह सरीरं ॥११८७॥

अर्थ—भो कल्याणके अर्थी हो ! इस जीवके तीन कालमें उपजे जितने केई संग रत्नत्रयके विनाशक हैं, तिनतैं मन-वचन-काय करिके विरक्त होय संगतें रहित हुवा शरीरकूं त्यागो । भावार्थ—जो रत्नत्रयकी विराधना करनेवाला परिग्रह है, ताका मन-वचन-कायकरि पहली त्याग करो, पाछै अवसर पाय देहका ममतारहित हुवा त्याग करो । परिग्रहीकै देहतें ममता नहीं घटे है ।

एवं कदकरणिज्जो तिकालतिविहेण चेव सव्वत्थ ।
आसं तण्हं संगं छिंद ममत्ति च मुच्छं च ॥११८८॥

अर्थ—ऐसे किया है करने जोग्य जानें ऐसा जो तुम, सो तीन कालमें मन-वचन-कायकरिके सर्व पर पदार्थनिमें आशा तथा तृष्णा तथा संग तथा ममत्व तथा मूर्च्छानिका त्याग करो । गाथा—

सव्वग्गंथविमुक्को सीदीभूवो पसण्णचित्तो य ।
जं पावइ पीयिसुहं ण चक्कवट्टी वि तं लहइ ॥११८९॥
रागविवागसतण्णादिगिद्धि अवतित्ति चक्कवट्टिसुहं ।
णिस्संगणिव्वुइसुहस्स कहं अग्घइ अणंतभागं पि ॥११९०॥

अर्थ—इस जगतमें जो पुरुष सर्वसंगरहित है अर तृष्णाकी आतापकरि रहित जाका चित्त शीतल है, अर लोभकी मलिनतारहित जाका उज्ज्वल चित्त है, ऐसा पुरुष जो प्रीति अर सुखकूं प्राप्त होय है, सो सुख अर प्रीतिकूं चक्रवर्तीहू नहीं प्राप्त होय है । जातें चक्रवर्तिका सुख तो रागका उदयतें उपज्या है । जो तीव्र राग नहीं होय तो अति बेखबरि हुवा अतिनिद्य विषयनिमें कैसे रमै ? बहुरि तृष्णासहित है–जिनतें चाहकी दाह नहीं मिटे है । बहुरि अतिगृद्धिता जो अति-लम्पटता ताकरि सहित है, जातें भोगनिमें उलझ्या आपका आपाकूं नहीं सुलझाय सके है । बहुरि ये भोग भोगे हुवेहू तृप्ति

नहीं करै। तातैं पराधीनतारहित रागादिककी आतापरहित जो निस्संगनिके निराकुलतारूप आत्मिकसुख है ताका अनन्तवें भागहू चक्रवर्तिके सुख नहीं है।

ऐसे अनुशिष्टि नामा महाअधिकारविषै महाव्रतनिका अधिकारविषै परिग्रहत्याग नामा महाव्रतका वर्णन समाप्त किया। अब महाव्रतनिकी सार्थक संज्ञा कहे हैं।

साधेंति जं महत्थं आयरिदाइं च जं महल्लेहिं।
जं च महल्लाहं सयं महव्वदाइं हवे ताइं ॥११६१॥

अर्थ—जातै ये पंचपापनिका त्याग महान् अर्थ जो निर्वाणके अनन्तज्ञानादि गुण तिनकूं सिद्ध करै हैं तातै इनकूं महाव्रत कहिये हैं। बहुरि महान् जे तीर्थङ्कर चक्रवर्ती गणधरादिक तिनकरि आचरण किये हैं, तातै भी महाव्रत कहिये हैं। बहुरि ये पंचमहाव्रत स्वयमेव महान् हैं, तातै ये महाव्रत हैं। गाथा—

तेसिं चेव वदाणं रक्खट्ठं रादिभोयणणियत्ती।
अट्ठप्पवयणमादाओ भावणाओ य सव्वाओ ॥११६२॥

अर्थ—तिन महाव्रतनिकी रक्षाके अर्थि रात्रिभोजनका त्याग तथा अष्टप्रवचनमातृकाका धारण करना, तथा संपूर्ण भावनानिकूं भावना करना श्रेष्ठ है। सो अष्टप्रवचनमातृका तो पंचसमिति तथा तीन गुप्तिकूं कहिये हैं, सो आगे इहांही वर्णन करसी। तथा पांच महाव्रतनिकी पचीस भावना हू आगे इस ग्रन्थमें कहसी।

तेसिं पंचण्हं पि य अह्याणमावज्जणं व संका वा।
आदविवत्ती य हवे रादीभत्तप्पसंगम्मि ॥११६३॥

अर्थ—रात्रिभोजनका प्रसंग होतां ते पंचमहाव्रत हैं तिनका तो नाश होय है अर व्रतभग होने की शंका होय है अर आत्मविपत्तिहोय है। भावार्थ-यद्यपि रात्रिभोजन तो जैनी अव्रतीहू नहींकरे है, तथापि ऐंठं त्यागका उपदेशकरि जन्मांतरनिमेंहू आकांक्षा नहीं होय ऐसे विरक्तता करावे है। जो रात्रिभोजन करेगा ताके अहिंसादिक एकहू व्रत नहीं रहैगा। अर शंका

रात्रि रहबोही करं, अर रात्रिनं स्थाणु कंटकादिकरि आपका नाशहू होयही है, तातं रात्रिभोजन तो त्यागने जोग्य ही है। गाथा—

अण्हयदारोपरम्णदरस्स गुत्तीओ होन्ति तिण्णेव।
चेट्ठिदुकामस्स पुणो समिदोओ पंच दिट्ठाओ ॥११९४॥

अर्थ—बाह्यचेष्टारहित प्रवृत्तिरहित जो साधु ताके तीन गुप्ति होय हैं। बहुरि गमन, आगमन, शयन, आसन, आहार, निहार, विहार इत्यादिक प्रवृत्ति करनेका इच्छक साधुकै पंचसमिति भगवान् दिखाई हैं—कही हैं। अब मनकी गुप्ति तथा वचनगुप्तिकूं कहे हैं। गाथा—

जा रागादिणियत्ती मणस्स जाणाहि तं मणोगुत्ति।
अलियादिणियत्ती वा मोणं वा होइ वचिगुत्ती ॥११९५॥

अर्थ—जो मनका राग द्वेष मोहादिक भावनितै रहित होना सो मनोगुप्ति जानहु। बहुरि असत्यादिकवचननिमें वचनकी प्रवृत्तिरहित होना तथा मौनरूप रहना सो वचनगुप्ति है। आगे कायगुप्तिकूं कहे हैं। गाथा—

कायकिरियाणियत्ती काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती।
हिंसादिणियत्ती वा सरीरगुत्ती हवदि दिट्ठा ॥११९६॥

अर्थ—देहकी हलनचलनादि क्रियातै निवृत्ति होना, सो कायगुप्ति है; अथवा कायमें ममता त्यागि कायोत्सर्ग करना सो कायगुप्ति है; अथवा हिंसादिकनितै निवृत्ति होना, सो कायगुप्ति है। गाथा—

छेत्तस्स वदी णयरस्स खाइया अहव होइ पायारो।
तह पावस्स णिरोहो ताओ गुत्तीओ साहुस्स ॥११९७॥

अर्थ—जैसे क्षेत्रकी रक्षाके अर्थि क्षेत्रके वाडि होय है, तथा नगरकी रक्षाके अर्थि खाई अथवा प्राकार कहिये कोट होय है; तैसे साधुके पापके रोकनेविषै तीन गुप्ति परम उपाय है। गाथा—

तह्मा तिविहेण तुमं मणवचिकायप्पओगजोगम्मि ।
होहि सुसमाहिदमदी णिरन्तरं ज्झाणसज्झाए ।।११६८।।

अर्थ—ताते भो ज्ञानी जन हो ! तुम मनवचनकायकी प्रवृत्ति रोकनेकूं ध्यान तथा स्वाध्यायमें मनवचनकायकरिके निरन्तर भले प्रकार सावधानबुद्धिरूप होहू ।

अब पंचसमितिका निरूपणविषै ईर्यासमितिका निरूपणके अर्थि कहे हैं । गाथा—

मग्गुज्जोदुपओगालम्बणसुद्धीहिं इरियदो मुणिणो ।
सुत्ताणुवीचि भणिदा इरियासमिदी पवयणम्मि ।।११६९।।

अर्थ—आचारांगसूत्रके अनुसारकरि जो मार्गशुद्धि, तथा उद्योतशुद्धि, तथा उपयोगशुद्धि, तथा आलम्बनशुद्धि ऐसे च्यार प्रकारकी शुद्धिताकरिके गमन करता जो मुनि ताके भगवानका सिद्धान्तमें ईर्यासमिति कही है ।

तहां मार्गशुद्धता तो ऐसे जाननी—जा मार्गमें बहुत त्रस नहीं होय, तथा बीज अंकुर हरित तृण पत्र जल कर्दमादि रहित होय, तथा गाडा, गाडी, हाथी, घोडा, वलध, मनुष्यादिक बहुत जामें गमन करि गये होय, अर अनेकमनुष्यादिकनिकी जा मार्गमें गमनागमनकी प्रवृत्ति होय, तथा जामें उन्मत्त पुरुष तथा स्त्री तथा दुष्ट तिर्यंच मार्ग रोके नहीं खडे होय, ऐसे मार्गमे गमन करे ।

बहुरि रात्रिमे गमन नहीं करे, तथा दीपकचन्द्रमादिकनिका उद्योतकरिके संयमीनिका गमन नहीं होय है । तातैं सूर्यका उद्योतकरि मार्ग स्पष्ट दीखने लगिजाय तदि च्यारि हाथप्रमाण जमींकूं दूरिहीतैं अवलोकन करि गमन करना । तथा सूत्रकी आज्ञाप्रमाण अभ्यन्तर तो ज्ञानका उद्योत अर बाह्यसूर्यका उद्योतकरि गमन करे, सो उद्योत शुद्धता जाननी ।

बहुरि निर्दयतारहित धर्मध्यान चिंतवन करता, द्वादश भावना भावता, आहारका लाभ, स्वादादिककूं नहीं चिन्तवन करता, तथा अभिमानादिक दोषरहित गमन करे, ताके उपयोगशुद्धतासहित गमन जानना ।

बहुरि गुरुवन्दना, तथा चैत्य वन्दना, तथा यतीश्वरनिकी वन्दनाके अर्थि गमन करै है । तथा अपूर्वशास्त्रका श्रवणके अर्थि, तथा संयमध्यानके योग्य क्षेत्र अवलोकनके अर्थि, तथा धर्मात्मा साधुकी वैयावृत्यके अर्थि, तथा मुनोकूं एकस्थान

नहीं रहना तातैं अन्य धर्मरूप प्रदेशनिमें विहार करनेके अर्थि, तथा आहार नीहारके अर्थि गमन करे। अर वन, वृक्ष, कूवा, बावडी, नदी, तलाव, ग्राम, नगर, महल, मकान, बाग इत्यादिकके अवलोकनके अर्थि कदाचित् गमन नहीं करे है, ताके अवलम्बन शुद्धि होय है।

बहुरि सूत्रके अनुसार गमन करे है। अतिविलम्बतैं गमन नहीं करे है। अर अतिशीघ्र गमन नहीं करे है। बहुरि भय रहित तथा विस्मयरहित, क्रीडाविलासरहित तथा उल्लंघना उछलना दोडना इत्यादिकदोषरहित गमन करे। तथा लम्बायमान भुजाकरि गमन करै। तथा चपलतारहित ऊर्ध्व तिर्यक अवलोकनरहित गमन करै। बहुरि कंपायमान होता जो पाषाण ईंट काष्ठ तिनऊपरि पग देय गमन नहीं करै, विनासोध्या विनाविचारचा पग नहीं धरै। तथा मार्गमें गमन करते कोऊसूं वचनालाप नहीं करै। अर जो कदाचित् बोलनेकाही अवसर आजाय तो खडारहिकरिके अर थोरे अक्षरनकरिके धर्मका अवलम्बनसहित वचन कहे। बहुरि तुस भुस आला-गोवर तथा मलमूत्र, तृणनिका समूह तथा पाषाण, काष्ठफलक दूरहितैं टारै। तथा गौ, बलध, कूकरा, गाडो, घोडा, हाथी, भेंसा, मींढा, गधा इत्यादिक अनेकतिर्यंचनिकूं टालिकरिके गमन करनेमें प्रवीण होय ताकै ईर्यासमिति होय है। अब भाषा समितिको वर्णन करे हैं। गाथा—

सच्चं असच्चमोसं अलियादीदोसवज्जमणवज्जं ।

वदमाणस्सणुवीची भासासमिदी हवदि सुद्धा ॥१२००॥

अर्थ—लोकविषै वचन च्यारि प्रकार हैं। सत्य, असत्य, उभय, अनुभय। तिनमें असत्य अर उभय इनि दोय वचनकूं त्यागि अर सत्य अर अनुभय इनि दोय प्रकार वचनकूं सूत्रके अनुकूल बोलता पुरुषके शुद्ध भाषासमिति होय है। कैसाक है सत्यवचन अर अनुभय वचन ? असत्यादिक दोषरहित है, अर पाप रहित है, तातैं दोय वचनही श्रेष्ठ हैं।

भावार्थ—सांचे समीचीन वचनकूं सत्य कहिये हैं। अर असम्यक् बुरा वचन ताकूं मृषा कहिये वा असत्य कहिये है। अर जामैं सांच अर झूंठ दोऊ होय ताकूं सत्य मृषा कहिये हैं वा उभय कहिये हैं। अर जामैं सत्यहू नहीं अर असत्य हू नहीं ताकूं अनुभय कहिये अथवा असत्य मृषा कहिये।

अब प्रकरण पाय च्यारि प्रकारका वचनकूं संक्षेपकरि कहिये हैं। प्राणीका दोऊ लोकसम्बन्धी हितनैं वांछा करता खोटे अभिप्रायरहित सत्य कहो वा असत्य कहो उस वचनकूं सत्य कहिये हैं। अर प्राणीका अहितकूं चाहता जाका खोटा परिणाम होय, सो सत्य कहो वा असत्य कहो, ताकूं असत्यही कहिये हैं। अथवा घटकूं घट कहना सत्य है। अर मृग-

तृष्णाकूं जल कहना असत्य है। बहुरि कुण्डिकाकूं घट कहना उभय वचन है, जैसे जलधारणादिक क्रिया घटमें प्रवर्ते तैसे कुण्डिकामैंहू प्रवर्ते है, तातें अर्थक्रियाका करनेतें तो सत्य है, जैसे जलका धारण स्नान पानादिक क्रिया घटतें होय तैसे कुण्डिकाहूतें होय है, तातें तो सत्य है, अर घटकी अकृति तथा नामादिक नहीं प्रवर्ते तातें असत्य है। ऐसे कुण्डिकाकूं घट कहना सत्य असत्य दोऊरूपपणातें उभयवचन है। बहुरि जामें सत्य असत्य दोऊ नहीं तिस वचनकूं अनुभय कहिये। सो सत्यका स्वरूप अर अनुभयवचनका स्वरूप सूत्रकार आपही कहसी। तातें इहां विशेष नहीं लिख्या है। अब सत्यवचनका दशभेद कहे हैं। गाथा—

जणवदसंमदिठवणा णामे रूवे पडुच्चववहारे।
संभावणववहारे भावेणोपम्मसच्चेण ॥१२०१॥

अर्थ—१. जनपदसत्य, २. संवृतिसत्य, ३. स्थापनासत्य, ४. नामसत्य, ५. रूपसत्य, ६. प्रतीत्यसत्य, ७. संभावना सत्य, ८. व्यवहारसत्य, ९. भावसत्य, १०. उपमासत्य। ऐसे दशप्रकार सत्यवचन भगवान् कहे हैं।

१. तिनमें जो अनेकदेशनिमें जिस जिस देशके बसनेवाले व्यवहारी लोक, तिनका जो वचन, ताकूं जनपदसत्य कहिये हैं। जैसे रांधे चावलनिकूं महाराष्ट्र देशमें 'भातु' कहे हैं, कोऊ 'भेदु' कहे हैं, आंध्रदेशमें 'वंटकमु' कहे हैं वा 'कूंड' कहे हैं। कर्णाटदेशमें 'कूलु' कहे हैं, द्रविडदेशमें 'चोंरु' कहे हैं, मालवमें वा गुजरातमें 'चोखा' कहे हैं। सो ऐसे देशकी भाषाकरि वस्तुकूं कहना, सो जनपदसत्य है। जनपद नाम देशका है, अथवा आर्य अनार्य जे नाना प्रकार देश तिनमें जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादिकका स्वरूपका उपायका उपदेश करनेवाला वचन 'जैसे धर्म दयास्वरूपही है' तथा राजा राणा इत्यादिक वचन सो सर्व जनपदसत्य है।

२. बहुरि जो वचन सर्वलोकमें मान्य होय ताकूं संवृतिसत्य कहिये हैं। जैसे कमल पृथ्वी जल पवन बीज इत्यादिक अनेककारणनितें उपज्या है, तोहू ताकूं सर्वलोक पंकज कहे हैं। कमल केवल पंक जो कर्दम ताहीतें तो नहीं उपज्या है, तोहू पंकज कहना संवृतिसत्य है। अथवा राजाकी पट्टराणी मनुष्यिणी है तोहू सर्वलोक ताकूं देवी कहे हैं, सो संवृतिसत्यही है।

३. बहुरि अन्यवस्तुका धर्म अन्य जो तद्रूप अथवा अतद्रूप तामें आरोपण करिये स्थापनाकरिये, सो स्थापनासत्य है। जैसे धातुपाषाणका प्रतिबिंबमें अथवा अक्षतादिकनिमें ये चन्द्रप्रभस्वामीहै ऐसे मुख्यवस्तुका स्थापनकरना, सो स्थापनासत्य है।

४. बहुरि जो शब्दका अर्थरूप तो नहीं होय अर जैसा नाम कहे तैसा तामें गुणहू नहीं होय, तामें व्यवहारकी प्रसिद्धताके अर्थि लौकिकजनांकरि किया सो नामसत्य है। जैसे कोऊकूं देवदत्त कह्या तथा जिनदत्त कह्या, जिनादिक ताकूं दिया नहीं तोऊ ताकूं जिनदत्त कहे हैं। अथवा मनुष्यकूं इन्द्रराज कहै, तथा चन्द्र सूर्य कहै, तथा चतुर्भुज कहै, सो नामसत्य है।

५. बहुरि जगतमें नेत्रनिका व्यवहारकी आधिक्यता है, तातैं पुद्गलका रूप गुणकी प्रधानताकरि जो वचन कहना, सो रूपसत्य है। जैसे हंसनिकी पंक्ति में हंसनिका रस, रुधिर चूंच, पग रक्त हैं तोऊ श्वेत कहना सो रूपसत्य है।

६. बहुरि कोऊ पदार्थकी अपेक्षाकरिके अन्यस्वरूप कहना; जैसे कायरकी अपेक्षा कोऊकूं शूरवीर कह्या, मन्द-ज्ञानीकी अपेक्षा कोऊकूं ज्ञानी कह्या, दीर्घकी अपेक्षा कोऊकूं ह्रस्व कह्या सो सर्व प्रतीत्यसत्य है।

७. बहुरि असंभवका परिहारपूर्वक वस्तुका धर्मकी विधि है लक्षण जाका ऐसी संभावना करिके जो वचन, सो संभावनासत्य है। जैसे इन्द्र एक तर्जनी अंगुलीकरि मेरुकूं उखालनेकूं है अथवा इन्द्र जम्बूद्वीपकूं पलट दे ऐसे कहना, सो इन्द्रमें मेरुकूं अंगुलीकरि उठावनेकी अर जंबूद्वीपकूं पलट देने की शक्तिका अभाव नहीं, परन्तु सामर्थ्य है ही, सो क्रियाकी अपेक्षाविना जो वस्तुका सामर्थ्य कहना, सो संभावनासत्य है।

८. बहुरि नैगमनयकूं प्रधानकरि कहना, जैसे कोऊ पुरुष पाणी भरै था तथा अग्नि बाले छा, ताकूं कोऊ पूछी—तुम कहा करो हो ? तब कही–भात पकावां हां, सो इहा हाल चांवलही धरे हैं, इनकूं भात कहना सो व्यवहारसत्य है।

९. बहुरि अतीन्द्रिय अर्थविषै भगवानका परमागममे कह्या जो विधिनिषेध, तींका संकल्परूप परिणामकूं भाव कहिये है, ताकै आश्रय जो वचन, सो भावसत्य है। जैसे शुष्क कहिये सूका पर पक्व कहिये अग्निमें पकाया तथा ताता किया तथा आमली लवण जामें मिलाय दिया, बहुरि वाकी पत्थरादिकनितै पोस्या बांट्या तथा जंत्रमें पेल्या ऐसा द्रव्य प्रासुक है, ताके सेवनेमें पापबन्ध नही है। ऐसे पापका त्यागरूप प्रासुकद्रव्य सर्वज्ञ भगवान् कह्या है। ऐसे प्रासुकहू द्रव्यमें सूक्ष्मप्राणी आय पडे अर इन्द्रियनिके गोचर नहीं, तिनमें सर्वज्ञप्रणीत आगमकी प्रमाणतातै शुद्ध जानना, सो भावसत्य है।

१०. बहुरि जाकी गिणती नहीं करी जाय ऐसे प्रमाणकूं पल्य जो खाडा ताकी उपमा करि कहिये, सो उपमासत्य है। जैसे याका आयु पल्यप्रमाण है, तथा ग्रीष्म अग्नि है, ऐसे कहना उपमासत्य है।

ऐसे सत्यके दश भेद कहे, सो भाषासमितिका धारक सत्य कहे है । गाथा—

तव्विवरीदं मोसं तं उभयं जत्थ सच्चमोसं तं ।
तव्विवरीया भासा असच्चमोसा हवे दिट्ठा ॥१२०२॥

अर्थ—जो वचन दशप्रकारका सत्यवचनतें विपरीत कहिये उलटा है, सो मृषावचन कहिये असत्यवचन है । अर जामें सत्य असत्य दोऊ सो उभयभाषा है । जैसे कमंडलकूं घट कहना, जातें घटकीनाईं जलधारण स्नानपानादिक अर्थ क्रिया करे है, तातें तो सत्य है, अर घटका आकार तथा नामादिक नहीं, तातें असत्य है । ऐसे उभयवचन कह्या । अर जामें सत्य अर असत्य दोऊ नहीं, ऐसे वचनकूं अनुभयवचन कह्या है । जैसे कोऊ कही 'मोकूं क्यूं प्रतिभासै है ?' इहां सामान्यकरिके अर्थ प्रतिभास्या है, सो अपनी अर्थक्रियाकारी जो विशेषनिर्णय ताका अभावतें सत्य ऐसे नहीं कह्या जाय । अर सामान्यप्रतिभासमें आयाही, तातें ताकूं असत्यहू नहीं कह्या जाय । तातें अनुभयवचनकी जाति जुदीही है । अब आमंत्रणादी अनुभयवचनके नव भेद कहे हैं । गाथा—

आमन्तणि आणवणी जायणि संपुच्छणी य पण्णवणी ।
पच्चक्खाणी भासा भासा इच्छाणुलोमा य ॥१२०३॥
संसयवयणी य तहा असच्चमोसा य अट्ठमी भासा ।
णवमी अणक्खरगदा असच्चमोसा हवदि णेया ॥१२०४॥

अर्थ—१. आमंत्रणी, २. आज्ञापनी, ३. याचिनी, ४. सम्पृच्छनी, ५. प्रज्ञापनी, ६. प्रत्याख्यानी, ७. इच्छानुलोमवचनी, ८. संशयवचनी, ९. अनक्षरात्मिका । ऐसे नवप्रकार अनुभयवचन है ।

कोऊ पुरुष अन्यकार्यमें आसक्त था, ताकूं सन्मुख करनेकूं हे देवदत्त इत्यादि वचन सो आमंत्रणी भाषा है ॥१॥ मैं तुमकूं आज्ञा करूं हूं सो आज्ञापनी भाषा है ॥२॥ मैं एक याचना करूं हूं इत्यादि याचनी भाषा है ॥३॥ मैं एक आपकूं पूछूं हूं आपृच्छनी भाषा है ॥४॥ मैं एक आपकूं जणाऊं हूं सो प्रज्ञापनी भाषा है ॥५॥ मैं एक त्याग करूं हूं इत्यादि प्रत्याख्यानी भाषा है ॥६॥ जैसी आपकी इच्छा है तैसे मोकूं करना ऐसे इच्छानुलोमवचनी है ॥७॥ या बुगलां

की पंक्ति है अकि ध्वजा है ? इत्यादि संशयवचनी भाषा है ॥८॥ अर बेइन्द्रियकी तथा त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असञ्ज्ञोपञ्चेन्द्रिय, तिर्यञ्चनिकी तथा बालककी अक्षररहित जो भाषा सो अनक्षरी भाषा है ।

ये नवप्रकारकी भाषा श्रवण करनेवालेनिकै सामान्यकरिके तो अर्थका एक अंशका जनावनेतैं तो प्रकट अर विशेष अर्थका प्रकट करने के अभावतैं अप्रकट ऐसी अनुभयभाषा है । सो यामें विशेष अर्थ तो प्रकट नहीं हुवा, तातैं तो सत्य कैसे कह्या जाय ? अर सामान्य अर्थके प्रकट करनेतैं असत्य कैसे कह्या जाय ? तातैं अनुभयपणा जानना । अर लोकमें औरहू अनेकप्रकार अनुभयभाषा हैं । सो ये नवप्रकार कहे वचनमेंही गर्भित हैं । कोऊ प्रश्न करै, जो, तिर्यंचनिकी अनक्षरात्मकभाषामें सामान्य अर्थका अंश जनावनेका अभावतैं अनुभयवचन कैसे कह्या ? ताकूं उत्तर करे हैं जो, द्वीन्द्रियादिक अनक्षरभाषाकूं बोलनेवाला जीव ताके वचनके श्रवण करिके तिनका सुख दुःख प्रकरणादिकका अवलंबन करिके हर्षविषादादिक अभिप्रायकूं जान्या जाय है, तातैं सामान्य अर्थका जनावनेतैं अनक्षरात्मक वचनहू अनुभयवचन है । इहां कोऊ प्रश्न करै, जो, केवलीकी दिव्यध्वनिके सत्यवचन अर अनुभयवचनपणा कैसे संभवै ? ताका उत्तर ऐसा है—जो भगवानकी दिव्यध्वनिके उत्पत्तिविषैं तो अनक्षरात्मकपणाकरिके श्रोताजननिके कर्णप्रदेशकी प्राप्तिका समयपर्यंत तो अनुभयभाषापणाकी सिद्धि है अर ताके अनन्तर श्रोताजनाका अभिप्रायका अर्थनिमें संशयादिकका निराकरण करिके सम्यग्ज्ञानका उपजावनेकरि सत्यवचनकी सिद्धि है । ऐसे पंचसमितिविषैं भाषासमितिका वर्णन किया । गाथा—

उग्गमउप्पायणएसणाहिं पिंडमुवधि सेज्जं च ।
सोधितस्स य मुणिणो विसुज्झए एसणासमिदी ॥१२०५॥

अर्थ—आहार और उपधि कहिये उपकरण और वसतिका इनकूं उद्गम उत्पादन एषणा इनि दोषनिकरि रहित इनकूं सोधन करता मुनिके एषणासमिति शुद्ध होय है । भावार्थ—उद्गम, उत्पादन, एषणा दोषरहित शुद्ध आहार और उपकरण, अर वसतिकाकूं जो मुनि ग्रहण करे है, ताके शुद्ध एषणासमिति होय है । गाथा—

सहसाणाभोगिददुप्पमज्जिय अपच्चवेसणा दोसो ।
परिहरमाणस्स हवे समिदी आदाणणिक्खेवो ॥१२०६॥

अर्थ—ऐसे आदाननिक्षेपणाके दोष टारि जो शरीरका तथा उपकरणादिकका उठावना मेलना करे है, ताके आदाननिक्षेपणा समिति होय है। जो शीघ्रतासूं शरीरादिकक्ं उठावे, मेले, पसारे, संकोचे, सहसानिक्षेपदोष है। बहुरि नेत्रनिसूं देखेबिना तथा कोमल पिछिकातें सोधेबिना उठावना मेलना, सो अनाभोगितदोष है। बहुरि अनादरतें सोधना मन बिना लगाये लोकनिकूं अपनी शुद्धता दिखावनेकूं तथा आचारमात्र समभि जीवदयाकरि रहित होय सोधना, सो दुष्प्रमार्जितदोष है। बहुरि वस्तुकूं बहोत काल गये पीछे सोधना–जामें जीवनिका निवास होय जावे तदि सोधे तथा साधुकूं प्रभातकाल अर अपराण्हकाल दोय कालमें संस्तर उपकरण सोधनेकी आज्ञा है। तहां प्रमादी होय काल व्यतीत भये सोधना, सो अप्रत्युपेक्षणदोष है। इनि दोषनिकूं टारि शरीर पुस्तकादिक उपकरणका उठावना मेलना प्रमादरहित यत्नाचारतें करै ताके आदाननिक्षेपणासमिति होय है। गाथा—

एदेण चेव पदिट्ठावणसमिदीवि वण्णिया होदि।
वोसरणिज्जं दव्वं थंडिल्ले वोसरिंतस्स॥१२०७॥

अर्थ—इस आदाननिक्षेपणा समितिका वर्णनकरिकेही प्रतिष्ठापना नामा समितिका वर्णन होय है। सो स्थंडिल भूमि जो निर्जंतु प्रासुक छिद्ररहित उद्योतरूप क्षेत्रमें मल, मूत्र, कफ, केश, नखनिकूं क्षेपण करते मुनिके प्रतिष्ठापना समिति होय है। गाथा—

एदाहिं सदा जुत्तो समिदीहिं जगम्मि विहरमाणो हु।
हिंसादीहिं ण लिप्पइ जीवणिकायाउले साहू॥१२०८॥
पउमणिपत्तं व जहा उदयेण ण लिप्पदि सिणेहगुणजुत्तं।
तह समिदीहिं ण लिप्पइ साधू काएसु इरियन्तो॥१२०९॥

अर्थ—या प्रकार जे पंचसमिति तिनकरिके जगतमें प्रवर्तन करते जे साधु ते छकायके जीवनिकरि व्याप्त जो लोक, तामें हिंसादिकपापनिकरि नहीं लिपे हैं। जैसे सचिक्कणतागुणसहित जो कमलिनीका पत्र, सो जलमें रहताहू जल

करि लिप्त नहीं होय है, तैसे पंचसमितिकूं पालन करता साधु जीवनिकरि व्याप्तहू लोकमें प्रवर्तन करताहू हिंसादिक पापनिकरि नहीं लिपे है। गाथा—

सरवासे वि पडन्ते जह दढकवचनो ण विज्झदि सरेहिं।
तह समिदीहिं ण लिप्पइ साधू काएसु इरियन्तो ॥१२१०॥

अर्थ—जैसे रणके अंगणमें दृढ बकतर धारण करता पुरुष बाणनिकी वर्षा होताभी बाणनिकरि नहीं भेद्या जाय है, तैसे समिति धारण करिके साधुहू छकायके जीवनिकरि व्याप्त लोकमें प्रवर्तन करताहू पापकरि लिप्त नहीं होय है। गाथा—

जत्थेव चरइ बालो परिहारण्हू वि चरइ तत्थेव।
बज्झदि पुण सो बालो परिहारण्हू वि मुच्चइ सो ॥१२११॥
तह्मा चेट्ठिदुकामो जइया तइया भवाहिं तं समिदो।
समिदो हु अण्णमण्णं णादियदि खवेदि पोराणं ॥१२१२॥

अर्थ—जिस क्षेत्रमें, वा बिहारमें, तथा आहारपानमें, तथा इन्द्रियद्वारें श्रवण करनेमें, अवलोकनमें, तथा भोजनके आस्वादनमें अयत्नाचारी रागी द्वेषी हुवा अज्ञानी प्रवर्ते है, तिसहीमें यत्नाचारी रागद्वेषरहित हुवा सम्यग्ज्ञानी प्रवर्तन करे है। तिनमें अज्ञानी तो कर्मबन्धकूं प्राप्त होय हैं अर ज्ञानी निर्जरा करे है। तातें जिस कालमें गमनकी इच्छा होय तथा वचन बोलनेकी तथा आहार, पान, शयन, आसनकी तथा मेलने उठावनेकी इच्छा होय, तिस कालमें समितिरूप होय परम यत्नाचारतें प्रवर्तन करहू। समितिरूप प्रवर्तता यत्नाचारी ज्ञानी नवीन नवीन कर्म नहीं ग्रहण करे है अर पुरातन बांध्या कर्मकी निर्जरा करे है। गाथा—

एदाओ अट्ठपवयणमादाओ णाणदंसणचरित्तं।
रक्खन्ति सदा मुणिणो मादा पुत्तं व पयदाओ ॥१२१३॥

अर्थ—ऐसे पंचसमिति तथा तीन गुप्तिस्वरूप जे ये अष्टप्रवचनमातृका, ते मुनीश्वरनिके दर्शनज्ञानचारित्रनिकूं सदाकाल रक्षा करे हैं। जैसे जतनकूं धारती माता पुत्रकी रक्षा करे है, तैसे साधुका रत्नत्रयकी रक्षा करनेवाली अष्ट-प्रवचनमातृका जाननी। त्रयोदश प्रकार अखंडचारित्रकूं आराधना करता साधुके एकेक व्रतकी रक्षाके अर्थि पांच पांच भावना परमागमविषै कही है। तातै अब अहिंसाव्रतकी पांच भावना कहे हैं। गाथा—

एसणणिक्खेवादाणिरियासमिदी तहा मणोगुत्ती।
आलोयभोयणं वि य अहिंसाए भावणा होंति ॥१२१४॥

अर्थ—पूर्वं आहारकी विधि जैसे वर्णन कीनो, तैसे छीयालीस दोष अर बत्तीस अन्तराय अर चोदह मल तिनकरि रहित शुद्ध आहार ग्रहण करना, सो एषणासमिति है। तथा यत्नाचारसहित शरीर तथा उपकरणनिका उठावना, मेलना, सो आदाननिक्षेपणासमिति है। बहुरि निर्जन्तु भूमिविषै ईर्यापथ शोधता गमन करना, सो ईर्यासमिति है। बहुरि मनकूं अशुभध्यानतै रोकि शुभध्यानमें लगावना, सो मनोगुप्ति है। बहुरि दिवसमें नेत्रनितै अवलोकन करि पानभोजन करना, सो आलोकितपान भोजन है। जो साधु अहिंसामहाव्रतकूं धारण करि व्रतकी रक्षा किया चाहै; सो, भोजनका अवसरमें तो एषणाशमिति, अर शरीरादिकनिका उठावने मेलनेका अवसरमे आदाननिक्षेपणासमिति, अर गमनका अवसरमें ईर्या समिति अर मनोगुप्ति अर आलोकित पानभोजन इनि पंचभावनानिकूं निरन्तर विस्मरण नहीं करना। अब सत्यमहाव्रत की पंच भावना कहे हैं। गाथा—

कोधभयलोभहस्सपदिण्णा अणुवीचिभासणं चेव।
विदियस्स भावणाओ वदस्स पंचेव ता होंति ॥१२१५॥

अर्थ—जो सत्यमहाव्रत धारण करै, ताकूं क्रोधका तथा भयका तथा लोभका तथा हास्यका तो त्याग करना, अर सूत्रके अनुकूल वचन बोलना योग्य है। आगे अचौर्यव्रतकी पांच भावना कहे हैं। गाथा—

अणणुण्णादग्गहणं असंगबुद्धी अणुण्णवित्ता वि।
एदावन्तियउग्गहजायणमध उग्गहाणुस्स ॥१२१६॥

वज्जणमणणुणादगिहप्पवेसस्स गोयरादीसु ।
उग्गहजायणमणुवीचिए तहा भावणा तइए ॥१२१७॥

अर्थ—कमडलु पींछी पुस्तकादिक साधर्मीनिकूं जणायाविना—आज्ञाविना नहीं ग्रहण करना, तथा आज्ञाकरिकेहू ग्रहण कीये जे उपकरणादिक तिनमें आसक्तताका अभाव, तथा ग्रहण करनेयोग्यमेंहू जितनातैं प्रयोजन तितना मात्र याचना करना, तथा ग्रहण करनेयोग्यमें ग्रहण करनेकी बुद्धि करना अथवा विनाजणाया साधर्मीनिके उपकरणादिकनिका ग्रहण नहीं करना, तथा गोचरीका अवसरमेंहू गृहस्थकी आज्ञाविना गृहस्थके घरमें प्रवेश नहीं करना, सूत्रके अनुकूल वस्तु का ग्रहण करना, ये अचौर्यव्रतकी पंच भावना हैं । अब ब्रह्मचर्यव्रतकी पंच भावनाकूं कहे हैं । गाथा—

महिलालोयणपुव्वरदिसरणं संसत्तवसहिविकहाहिं ।
पणिदरसेहि य विरदी भावणा पंच बंभस्स ॥१२१८॥

अर्थ—ब्रह्मचर्यव्रतको पांच भावना हैं । तिनमें स्त्रीनिके स्तन—जघन—वदनकूं रागभावकरि देखनेका त्याग, तथा अपनी असंयम अवस्थामें जे कामभोगादिक सेवन कीये थे तिनका स्मरण—चितवन करनेका त्याग, तथा स्त्रीनिका संसर्ग तथा स्त्रीनिकरि सेये स्थान आसन वसतिकानिका त्याग, तथा जिनवचननिकरि स्त्रीनिका कामभोगरूप चातुर्यताका प्रकट करना होय ऐसी विकथानिका त्याग, तथा कामकी उत्कटताका करनेवाला रसकारी भोजनका त्याग करना, ये ब्रह्मचर्य व्रतकी पंचभावना भावनेयोग्य हैं । अब परिग्रहत्यागव्रतकी पंच भावना कहे हैं । गाथा—

अपडिग्गहस्स मुणिणो सद्दफरिसरसयरूवगंधेसु ।
रागद्दोसादीणं परिहारो भावणा हुन्ति ॥१२१९॥

अर्थ—परिग्रहका त्यागी साधुकै शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध जे पंच इन्द्रियनिके विषय तिनमें सुन्दरमें रागका त्याग करना अर अमनोज्ञमें द्वेषका त्याग करना, सो परिग्रहत्याग महाव्रतकी पंचभावना हैं । अब भावनाका महिमा कहे हैं । गाथा—

ण करेदि भावणाभाविदो खु पीडं वदाण सव्वेंसि ।
साधू पासुत्तो समुहदो व किमिदाणि वेदन्तो ॥१२२०॥

अर्थ—एक एक व्रतकी पंच पंच भावना भावता साधु शयन करताहू तथा मूर्छाकूं प्राप्त भयाहू समस्तव्रतनिकूं पीडा नहीं करे है, तो साक्षात् भावना भावताकै व्रत कैसे मलिन होय ? व्रतनिकी उज्ज्वलता ही होय । गाथा—

एदाहिं भावणाहिं हु तह्मा भावेहिं अप्पमत्तो तं ।
अच्छिद्दाणि अखंडाणि ते भविस्सन्ति हु वदाणि ॥१२२१॥

अर्थ—तातै भो मुने ! इनि पचीस भावनानिकूं प्रमादरहित भये निरन्तर भावना करो । तुमारै छिद्ररहित निरन्तर अखंडव्रत पूर्ण होयंगे । अब निःशल्य कहिये शल्यरहितके व्रत होय हैं, तातै माया मिथ्यात्व निदान ये तीन प्रकार की शल्य निराकरण करो, ऐसे कहे हैं । गाथा—

णिस्सल्लस्सेव पुणो महव्वदाइं हवन्ति सव्वाइं ।
वदमुवहम्मदि तीहिं दु णिदाणमिच्छत्तमायाहिं ॥१२२२॥

अर्थ—जातै शल्यरहितकेही सकल महाव्रत होय हैं अर निदान मिथ्यात्व माया ये तीन शल्य व्रतनिका घात करे हैं, तातैं निःशल्य होना योग्य है । अब सत्तरि गाथानिकरि निदानशल्यकूं कहे हैं । गाथा- -

तत्थं णिदाणं तिविहं होइ पसत्थापसत्थभोगकदं ।
तिविधं पि तं णिदाणं परिपंथो सिद्धिमग्गस्स ॥१२२३॥

अर्थ—तिन तीन शल्यनिमें निदान शल्य तीन प्रकार है । एक प्रशस्तनिदान, दूजा अप्रशस्तनिदान, तीजा भोगकृतनिदान । ऐसे तीन प्रकारकाही निदान निर्वाणका मार्ग जो रत्नत्रय, तामें विघ्न है—रत्नत्रयका विनाशकरनेवाला है । अब प्रशस्तनिदानका निरूपण करे हैं । गाथा—

संजमहेदुं पुरिसत्तसत्तबलविरियसंघदणबुद्धी ।
सावअबंधुकुलादीणि णिदाणं होदि हु पसत्थं ॥१२२४॥

अर्थ—जो संजम धारनेके अर्थि अन्यजन्ममें पुरुषार्थ, उत्साह, अर शरीरतें उपज्या बल, अर वीर्यान्तरायके क्षयोपशमतें उपज्या वीर्य, अर वज्रवृषभनाराच जो उत्तमसंहनन, अर उत्तम बुद्धि, अर श्रावकधर्म, अर धर्ममें सहायी बन्धुजन, वा बन्धुजनका अभाव, तथा निर्वाणके योग्य निर्मलकुलादिकनिकी चाह करना, सो प्रशस्तनिदान होत है। भावार्थ—जाके ऐसी वांछा, जो, कोऊ प्रकार मेरे श्रावकधर्मकी प्राप्ति होहू, तथा पुरुषार्थ बल वीर्य संहनन ऐसा मेरे होय जाथकी मेरी संजममें शीघ्रही प्रवृत्ति हो जाय। ऐसी वांछा करना, सो प्रशस्तनिदान है। अब अप्रशस्तनिदानकूं कहे हैं। गाथा—

माणेण जाइकुलरूवमादि आइरियगणधरजिणत्तं ।
सोभग्गाणादेयं पत्थन्तो अप्पसत्थं तु ॥१२२५॥

अर्थ—बहुरि जो अभिमानकरिके उत्तमजाति, उत्तमकुल, उत्तमरूप, उत्तमबुद्धि, तथा आचार्यपणा, तथा गणधरपणा, तथा तीर्थंकरपणा तथा सौभाग्य, तथा आज्ञा, तथा आदरकी प्रार्थना करै, ताके अप्रशस्तनिदान होत है। गाथा—

कुद्धो वि अप्पसत्थं मरणे पच्छेइ परवधादीयं ।
जह उग्गसेणघादे कदं णिदाणं वसिट्ठेण ॥१२२६॥

अर्थ—जो मरणकालमें क्रोधी होय अर परका मारणादिककी वांछा करे है ताके अप्रशस्तनिदान होत है। जैसे वसिष्ठ नामा मुनि उग्रसेन राजाकूं मारनेके अर्थि निदान किया। अब भोगकृतनिदानका निरूपण करे हैं। गाथा—

देविगमाणुसभोगो णारिस्सरसिट्ठिसत्थवाहत्तं ।
केसवचक्कधरत्तं पच्छन्तो होदि भोगकदं ॥१२२७॥

अर्थ—देवनिका भोग, तथा मनुष्यका भोग, तथा नारीनिका ईश्वरपणा, तथा श्रेष्ठीपणा, तथा संघका-जातिकुलका अधिपतिपणा, तथा केशवपणा, तथा चक्रवर्तीपणाकूं प्रार्थना करे; ताके भोगकृतनिदान होत है। गाथा—

संजमसिहरारूढो घोरतवपरक्कमो तिगुत्तो वि ।
पगरिज्ज जइ णिदाणं सोवि य वढ्ढेइ दीहससारं ॥१२२८॥

अर्थ—जो संयमके शिखरऊपरि चढ्या होय, तथा घोरतप घोरपराक्रमका धारक होय, तथा तीन गुप्तिका धारक होय, ऐसा उत्कृष्टचारित्रका धारकहू साधु कदाचित् निदान करै, तो दीर्घसंसारकी वृद्धि करै । बहुतकाल संसारपरिभ्रमण करै । तदि अल्पचारित्रका धारक निदान करै तो बहुतकाल संसारभ्रमण नहीं करै कहा ? करैही करै । गाथा—

जो अप्पसुक्खहेदुं कुणइ णिदाणमविगणियपरमसुहं ।
सो कागणीए विक्केइ मणिं वहुकोडिसयमोल्लं ॥१२२९॥

अर्थ—जो इन्द्रियजनित अल्पसुखके निमित्त आत्मिक-अतीन्द्रिय-निर्वाणके सुखकूं अवज्ञा करिके अर निदान करे है, सो बहुतकोटि धन है मोल जाका ऐसो मणिकूं एक कोडीमें वा एक दमडीमें बेचे है । भावार्थ—शुद्धसंयम धारण करनेतें आत्मिक अतीन्द्रिय-निर्वाणका सुख होय है अर कोऊ दुर्बुद्धिकूं प्राप्त होय भोगनिमें निदान करि विषयांके निमित्त संयम बिगाडे है, सो कोटिधन है मोल जाका ऐसो मणिकूं कोडी एकमें वा दमडीमें बेचे है । गाथा—

सो भिंदइ लोहत्थं णावं भिंदइ मणिं च सुत्तत्थं ।
छारकदे गोसीरं डहदि णिदाणं खु जो कुणदि ॥१२३०॥

अर्थ—जो धर्मात्मा होय निदान करे है, सो अनेक रत्नांकी भरी 'समुद्रमें गमन करती' नावकूं लोहके अर्थि भेदे है । तथा सूतके अर्थि मणिमय हारकूं तोडे है । तथा भस्मके निमित्त गोसार नाम दुर्लभचन्दनकूं दग्ध करे है । गाथा—

कोढी सन्तो लद्धूण डहइ उच्छुं रसायणं एसो ।
सो सामण्णं णासेइ भोगहेदुं णिदाणेण ॥१२३१॥

अर्थ—जो परमरसायनरूप मुनिपणाकूं भोगांके निमित्त निदानकरिके नाश करे है, सो पुरुष जैसे कोऊ कोढी मनुष्य रसायनरूप इक्षुरस प्राप्त होय ताकूं ढोलत है, तैसे जानना । गाथा—

पुरिसत्तादिरिगदाणं पि मोक्खकामा मुणी ण इच्छन्ति ।

जं पुरिसत्ताइमग्रो भावो भवमग्रो य संसारो ॥१२३२॥

अर्थ—मोक्षके इच्छुक मुनि पुरुषलिंग तथा उत्तमसंहननादिक पावनेकाहू निदान नहीं करे हैं। जातें पुरुषलिंग पुरुषार्थ संहननादिक सर्व भव है, अर भवमय संसार है। तातें जो पुरुष लिंग संहननादिककी वांछाकरि निदान करे है; सो संसारकीही चाहना करी। तातें वीतरागमुनि पुरुषार्थादिकनिहूकी वांछा नहीं करे है। अब सम्यग्ज्ञानी कहा वांछा करे है, सो कहे हैं। गाथा—

दुक्खक्खयकम्मक्खयसमाधिमरणं च वोधिलाभो य ।

एयं पत्थेयव्वं ण पच्छणीयं तग्रो अण्णं ॥१२३३॥

अर्थ—हमारे शरीरधारणादिक जन्ममरणादिक तथा क्षुधा, तृष्णा, काम रागादिक जे दुःख, तिनिका क्षय होहू। बहुरि अनादिका आत्माकूं पराधीन करनेवाला मोहनीयादिक कर्मका क्षय होहू। तथा रत्नत्रयसहित मरण होहू। तथा बोधि जो रत्नत्रयका लाभ हमारे होहू। सम्यग्दृष्टीके इतनी प्रार्थना करने योग्य है। इनतें अन्य इस भव परभवमें प्रार्थना करने योग्य नहीं है। गाथा—

पुरिसत्तादीणि पुणो संजमलाभो य होइ परलोए ।

आराधयस्स णियमा तदत्थमकदे णिदाणे वि ॥१२३४॥

अर्थ—बहुरि आराधनाकूं आराधते मनुष्यके पुरुषार्थादिकके अर्थि नहीं निदान करते भी नियमथकी परलोकमें पुरुषलिंगादिक अर संयमका लाभ होयही है। गाथा—

माणस्स भंजणत्थं चिंतेदव्वो सरीरणिव्वेदो ।

दोसा माणस्स तहा तहेव संसारणिव्वेदो ॥१२३५॥

अर्थ—बहुरि मानका भंजनके अर्थि शरीरतें वैराग्यचिंतवन करना योग्य है। अर समस्त दोष मानहीतें हैं, तातें इस पंच परिवर्तनरूप संसारपरिभ्रमण करना सो मान ही का दोष है। अब कुलका अभिमानका अभावके अर्थि उपाय कहे हैं। गाथा—

कालमणन्तं णीचागोदो होदूण लहइ सगिमुच्चं ।

जोणीमिदरसलागं ताओ वि गदा अणन्ताओ ॥१२३६॥

अर्थ—संसारपरिभ्रमण करता जो संसारी जीव, सो अनन्तकालपर्यन्त अनन्तवार नीचगोत्रका धारक होयकरिके एकवार उच्चगोत्र धारत है । ऐसे अनन्तवार नीचयोनि धारण करै, तदि एकवार उच्चयोनि धारण करै । बहुरि अनन्तवार उच्चयोनिका धारकहू हो गया । ऐसे नीचा ऊंचा अनादिका होता आवे है । इतना विशेष है—नीचयोनि अनन्त पावे तदि एक उच्चयोनि पावे है । तातै कुलका अभिमान करना वृथा है । गाथा—

उच्चासु व णीचासु व जोणीसु ण तस्स अत्थि जीवस्स ।

वढ्ढी वा हाणी वा सव्वत्थ वि तित्तिओ चेव ॥१२३७॥

अर्थ—उच्चयोनिमें वा नीचयोनिमें कोऊ योनिमें प्राप्त होहू, जीवकी वृद्धि वा हानि होय नहीं । सर्व योनिनिमें असंख्यात प्रदेशीही रहे है । गाथा—

णीचो वि होइ उच्चो उच्चो णीचत्तणं पुण उवेइ ।

जीवाणं खु कुलाइं पधियस्स व विस्समन्ताणं ॥१२३८॥

अर्थ—नीचयोनि जे कूकर सूकर चांडालादिकनिकी योनिकूं प्राप्त होय । बहुरि उच्च देव मनुष्य ब्राह्मणक्षत्रियादिकनिकी योनिकूं प्राप्त होय है । बहुरि उच्चकुलकूं प्राप्त होय है । बहुरि नीच कुलकूं प्राप्त होय है । जैसे मार्गमें गमन करता पथिक एकेक विश्रामस्थानकूं छांडि अन्यस्थानकूं प्राप्त होय है । बहुरि ताकूं भी त्यागि अन्यस्थानकूं प्राप्त होय है । तैसे जीवका नीच उच्च कुलमें परिभ्रमण जानना । गाथा—

बहुसो वि लद्धविजडे को उच्चतम्मि विब्भओ णाम ।

बहुसो वि लद्धविजडे णीचत्ते चावि किं दुक्खं ॥१२३९॥

अर्थ—जिस उच्चकुलकूं बहुतवार प्राप्त होय होय त्याग किया, अब तिस उच्चकुलके पावनेमें कहा विस्मय है ? अर जिस नीचकुलकूं बहुतवार प्राप्त होय छोड्या तिस नीचकुलके पावनेमें कहा दुःख है । गाथा—

उच्चत्तणम्मि पीदी संकप्पवसेण होइ जीवस्स ।
णीचत्तणे ण दुक्खं तह होइ कसायबहुलस्स ॥१२४०॥

अर्थ—इस तीव्र मानादिक कषायके धारक जीवके उच्चपणामें भी संकल्पका वशकरिके प्रीति आनन्द होय है, जो "मैं उच्चकुलमें उपज्या हूं तथा पूज्य हूं, उच्च हूं ।" अर नीचपणामैंहू तैसेही सकल्पका वशतें दुःख होय है, जो "हाय ! मैं इन लोकनितें नीचा हूं ।" ऐसे नीच उच्चपणाहू कषायी जीवके संकल्पके वशतें होय है । अर निश्चयकरि देखिये तो आत्मा नीचा ऊंचा है नहीं । अभिमानतें आपकूं नीचा ऊंचा माने है । गाथा—

उच्चत्तणं व जो णीचत्तं पिच्छेज्ज भावदो तस्स ।
उच्चत्तणे य णीचत्तणे वि पीदी ण किं होज्ज ॥१२४१॥

अर्थ—जो जीव उच्चपणाकीनाईं नीचपणाकूं भावनितें देखे है, ताके उच्चपणामें तथा नीचपणामें दोऊमें सुख होत है । जाके, उच्चनीचपणा दोऊही आत्मातें भिन्न-कर्मके किये हुये चितवनमें आवे हैं, ताके आपका नीचापणा देखि दुःख नहीं उपजे है, आपके निर्धनपणा, अकुलीनपणा तथा आदरका अभाव देखिकरिके भी आनन्दरूपही रहे है । गाथा—

णीच्चत्तणं व जो उच्चत्तं पेच्छेज्ज भावदो तस्स ।
णीचत्तणेव उच्चत्तणे वि दुक्खं ण किं होज्ज ॥१२४२॥

अर्थ—जो जीव उच्चपणाकूं नीचपणाकीनाईं जो भावनितें देखे, ताके नीचत्व उच्चत्व दोऊही अवस्थामें दुःख नहीं होय है कहा ? होयही है । उच्चनीचपणाका सुखदुःख तो भावनिके संकल्पतें है, और प्रकार नहीं है । गाथा—

तह्मा ण उच्चणीचत्तणाइं पीदिं करेन्ति दुःक्खं वा ।
संकप्पो से पीदीं करेदि दुक्खं च जीवस्स ॥१२४३॥

अर्थ—तातें जीवके उच्चपणा प्रीति नहीं करे है अर नीचपणा दुःख नहीं करे है । सुख अर दुःख जीवके संकल्प करे हैं । भावार्थ—नीचपणांका दुःख अर उच्चपणांका सुख संकल्पके वशतें होय है । गाथा—

कुणदि य माणो णीचागोदं पुरिसं भवेसु बहुएसु ।
पत्ता हु णीचजोणी बहुसो माणेण लच्छिमदी ॥१२४४॥

अर्थ—मानकषाय इस जीवकूं बहुतभवनिमें नीचगोत्र जो चांडाल भीलादिकनिके कुलमें तथा ग्रामसूकर कूकरादिक अधर्मतिर्यंचनिमें तथा नारकीनिमें बारम्बार उत्पन्न करे है। जैसी लक्ष्मीमती ब्राह्मणी मानकषायकरिकै बहुतवार नीचयोनिनिकूं प्राप्त होती भई। गाथा—

पूयावमाणरूवविरूवं सुभगत्तदुब्भगत्तं च ।
आणाणाणा य तहा विधिणा तेणे व पडिसेज्ज ॥१२४५॥

अर्थ—पूज्यपणां अपमान, रूप, विरूप, सौभाग्य, दुर्भाग्य, आज्ञा, अनाज्ञा तैसी विधिकरिकेही निषेध करनेजोग्य है। भावार्थ—आपके पूज्यपणाका अभिमान तथा अपमानपणाका दुःख, तथा रूपका आनन्द अर विरूपपणाका दुःख तथा सौभाग्यपणाका अभिमान तथा दुर्भाग्यपणाका दुःख, अर आज्ञा आपकी प्रवर्ते ताका सुख तथा आज्ञा आपकी नहीं माने ताका दुःख इत्यादिक अभिमानजनित संकल्पके वशतें होय हैं, वस्तुत्वकरि कछूहू नहीं। तातें वस्तुका सत्यार्थरूप समझि निषेध करना योग्य है। गाथा—

इच्चेवमादि अविचिंतयदो माणो हवेज्ज पुरिसस्स ।
एदे सम्मं अत्थे पसदो णो होइ माणो हु ॥१२४६॥

अर्थ—इत्यादिक दोष नहीं चितवन करते पुरुषके अभिमान होय है। अर एते पदार्थनिकूं सत्यार्थ अवलोकन करता पुरुषके मान नहीं होय है। गाथा—

जइदा उच्चत्तादिणिदाणं संसारवड्ढणं होदि ।
कह दोहं ण करिस्सदि संसारं परवधणिदाणं ॥१२४७॥

अर्थ—जो उच्चगोत्रादिकरूप जो अपना उच्चपणाका निदान करनाही संसारका बधावनेवाला होय है, तो परजीवनिका घात करनेका निदान दीर्घ संसार कैसे नहीं करसी ? गाथा—

आयरियत्तादिणिदाणे वि कदे णत्थि तस्स तम्मि भवे ।
धणिदं पि संजमन्तस्स सिज्झणं माणदोसेण ॥१२४८॥

अर्थ—आचार्यत्वादिकपदका निदान करतां भी ताके तिस भवमें अतिशयकरिके संयम धारण करताकेहू मानका दोषकरिके आचार्यादिपणा सिद्ध नहीं होय है । जातें आचार्यादिकपदस्वकी चाहनाभी मानकषायकी तीव्रतातें होय है, तातें जाके अभिमानकी तीव्रता, ताके सिद्धि होना बहुतजन्महूमें दुर्लभ है । अब जो जीव भोगनिमें दोष चिंतवन करे है, ताके भोगनिमें वांछारूप निदान नहीं होय है । गाथा—

भोगा चिंतेदव्वा किंपाकफलोवमा कडुविवागा ।
महुरा व भुंजमाणा मज्झे बहुदुक्खभयपउरा ॥१२४९॥

अर्थ—ये इन्द्रियनिके भोग किंपाकफलकीनांई भोगनेमें मिष्ट हैं, अर परिपाक अतिकडवा है । कैसेक हैं भोग ? बहुत दुःख अर भय तिनकरिके प्रचण्ड हैं । गाथा—

भोगणिदाणेण य सामण्णं भोगत्थमेव होइ कदं ।
साहोलंवो जह अत्थिदो वि णेको वि भोगत्थं ॥१२५०॥

अर्थ—भोगनिका निदानकरिके जो श्रमणपणा धारण करना है, ताके मुनिपणा भोगनिके अर्थही करना भया ! कर्मका क्षयके निमित्त नहीं होय है । भोगनिमें राग करिके जाका चित्त व्याकुल है, ताके नवीन कर्मका प्रवाह आवे है, निर्जरा तो अतिदूरिही है । जैसे वनमें कोऊ साहालंग नामा तपस्वी भोगनिके अर्थ निदान किया । इसकी कोई कथा है, सो आगमतें जाननी । गाथा—

आवडणत्थं जह ओसरणं मेसस्स होइ मेसादो ।
सणिदाणबंभचेरं अव्वंभत्थं तहा होइ ॥१२५१॥

अर्थ—जैसे मेष जो मींढो ताके अन्य मींढाते दूरि जाना है—उलटे पांवकरि बहुत पाछा जावना है, सो परस्पर मस्तकका अधिक अभिघातके अर्थि है। तैसे निदानसहित ब्रह्मचर्य धारण करना है सो अब्रह्मके अर्थि होय है। जाते अनन्त भव संसारमें परिभ्रमण करेगा।

जह वाणिया य पणियं लाभत्थं विक्किणन्ति लोभेण।
भोगाण पणिदभूदो सणिदाणो होइ तह धम्मो ॥१२५२॥

अर्थ—जैसे वणिक् लाभके अर्थि पण्य जो किराणा ताहि बेचे है, तैसे निदानसहित चारित्रादिक धर्म धारना भोगनिके लोभकरिके अंगीकार करना है। परमार्थके अर्थि नहीं है। गाथा—

सपरिग्गहस्स अब्बंचारिणो अविरदस्स से मणसा।
काएण सीलवहणं होदि हु णडसमणरूवं व ॥१२५३॥

अर्थ—जो अभ्यन्तरवेदतें उपज्या रागभाव सोही परिग्रह तिसकरि सहित है, तथा मनकरि कुशीलका वांछक तातें अब्रह्मचारी है, तथा इन्द्रियजनित सुखका वांछक तातें अव्रती है। जाका अभ्यन्तर आत्मा तो ऐसा है अर कायकरिके शीलधारण करे है, मुनिव्रत धारे है, तथा परिग्रह ग्रहण नहीं करे है—नग्न रहे है, पींछी कमंडलु धारे है, कायोत्सर्ग करे है, दुर्धरतप करे है, सो नटश्रमणरूप है। जैसे स्वांग ल्यावनेवाला नट अनेक स्वांग ल्यावे तिनमें कोऊ जैनके साधुकाहू स्वांग ल्यावे, परन्तु स्वांग ल्याये साधु नहीं होय है, तैसे अभ्यन्तर वीतरागता विना अभिमान भोग विषयका वांछक मुनिकेहू नटकासा स्वांगही होय है। गाथा—

रोगं कंखेज्ज जहा पडियारसुहस्स कारणे कोई।
तह अण्णेसदि दुक्खं सणिदाणो भोगतण्हाए ॥१२५४॥

अर्थ—जैसे कोऊ नीरोग होयकरिके अर इलाजका सुखके अर्थि रोगकूं वांछा करै, तैसे भोगनिकी तृष्णाकरि निदानसहित पुरुष आगामी कालमें बहुत दुःखकूं इच्छा करे है, हेरे है। गाथा—

खंदेण आसणत्थं वहेज्ज गरुगं सिलं जहा कोइ।
तह भोगत्थं होदि हु संजमवहणं णिदाणेण ॥१२५५॥

अर्थ—जैसे कोऊ पुरुष आपके आसनके अर्थि बहुत भारी पाषाणकी शिला अपने स्कन्ध ऊपरि लिये फिरे, जो "मोकूं जहां बैठना होगा, तहां शिला बिछाय बैठूंगा।" तैसे भोगनिके अर्थि निदान करिके संयम धारना होय है। गाथा

भोगोवभोगसोक्खं जं जं दुक्खं च भोगणासम्मि।
एदेसु भोगणासे जातं दुक्खं पडिविसिट्ठं ॥१२५६॥

अर्थ—संसारमें भोगोपभोगकी प्राप्तितें जितने जितने सुख होय हैं अर भोगोपभोगके नाशतें जितने जितने दुःख होय हैं, तिनमें भोगनिकी प्राप्तिके सुखतें भोगनिके नाशतें उपज्या दुःख अत्यन्त अधिक है। भावार्थ—भोगोपभोगका नाश होय है तदि भोगनिके संयोगमें जो सुख भाया तातें बहुतगुणां दुःख उपजे है। गाथा—

देहे छुहादिमहिदे चले य सत्तस्स होज्ज कह सोक्खं।
दुक्खस्स य पडियारो रहस्सणं चेव सोक्खं खु ॥१२५७॥

अर्थ—क्षुधा तृषादिककी बाधाकरि पीडित अर चलायमान विनाशीक जो देह ताकेविषै प्राणीके सुख कैसे होय? नहीं होय। ये इन्द्रियजनितसुख हैं ते क्षुधा, तृषा, काम, रागादिकजनित दुःखकू थोरे काल अल्प करनेवाले हैं, अर पाछै अधिक वेदना बधावे हैं। भावार्थ—ये इन्द्रियजनित सुख नहीं हैं–सुखाभास हैं–मोही जीवनकूं सुखसे दीखे हैं। जैसे जाके शीतकी पीडा होय, सो अग्नितें तापनकूं सुख माने है, अर जाके गरमीकी बाधा होय, सो शीतलपवनकूं सुख माने है; अर वातादिकजनितवेदना जाके होय, सो अग्निका सेककूं अर दुर्गंध तैलका मर्दनकूं सुख माने है; अर जाके खाजिकी वेदना होय, सो खुजावनेकूं सुख माने है; तैसे इन्द्रियजनित विषयानुरागकी पीडा का दुःख नहीं सह्या जाय तदि विषयनिकू चाहे है। तथा क्षुधावेदनाकी पीडाका मारचा भोजन चाहे है, तृषाकी वेदनाकरि पीडित शीतलजलकूं चाहे है। खावना, पीवना, वोढना ये सुख नहीं हैं, वेदनाके इलाज हैं। सोहू भोगनिके भोगनेतें वेदना थोरे काल किंचित् मन्द होय है, बहुरि अधिक अधिक वेदना उपजावे है। सुख तो सो है, जहां वेदनाही नहीं उपजै। सुख तो निराकुलतालक्षण

ज्ञानानन्द है। अर जो इन्द्रियनिके विषयद्वारे भी जो सुख है, सोहू इन्द्रियजनितज्ञानद्वारेंही जानना। ज्ञानबिना कहूहो सुख है ही नहीं। तातें भोगनिकूं वेदनाका इलाजमात्र जानि भोगनिका निदान त्यागि निर्वांछक हुवा परमधर्म सेवन करो! जातें फेरि वेदनाही नहीं होय। गाथा—

जह कोडिल्लो अग्गि तप्पन्तो णेव उवसम लभदि।
तह भोगे भुंजन्तो खणं पि णो उवसमं लभदि ॥१२५८॥

अर्थ—जैसे कोढी पुरुष अग्निकरि तप्तायमान होता संताहू उपशमताकूं नहीं प्राप्त होय है, रुधिर उमले है, ताकरि अधिक अधिक अग्निके सेकमें वांछा उपजे है तैसे संसारी जीव भोगनिकूं भोगताहू क्षणमात्रहू भोगनिकी चाहनारूप दाहतें उपशमताने नहीं ही प्राप्त होय है। ज्यूं ज्यूं भोगे है, त्यूं त्यूं अधिक अधिक तृष्णा बधती जाय है। गाथा—

सोक्खं अणपेक्खित्ता बाधदि दुक्खमणुगंपि जह पुरिसं।
तह अणपेक्खिय दुक्खं णत्थि सुहं णाम लोगम्मि ॥१२५९॥

अर्थ—जैसे अणुमात्रहू दुःख पुरुषकूं सुखकी नहीं अपेक्षाकरिके बाधा करे है, तैसे लोकमें दुःखकी अपेक्षा नहीं करिके कोऊ सुख हैही नहीं। भावार्थ—दुःख तो सुखविनाही होय है। अर सुख दुःख बिना है ही नाहीं। क्षुधा तृषादिक जनित दुःख जाके पहली होयगा, ताके भोजनपान सुख करेगा। विना क्षुधाकी वेदना तथा तृषाकी वेदनाविना भोजनपान सुख करेगा नहीं। मिष्टरस तथा लवणादिक रस तिनकी चाहनारूप दुःख जाके उपजैगा सोही मिष्टरसकूं भक्षण करि सुख मानेगा। अर जाके मिष्टरसकी आकांक्षा अन्तरंगमें पित्त वातादिकजनित नहीं उपजी, ताकूं मिष्टरसका नामभी नहीं सुवावेगा। सूर्यका कठोर आतापकरि तप्तायमान होयगा, ताकूं शीतल छाया शीतल पवनकरि सुख होयगा। शीतकरि जाका शरीर संकुचित होयगा, ताकूं सूर्यका आताप तथा अग्निका तापन सुखरूप होय है। स्थान आसनतें उपज्या खेद जाके होयगा, सो शयनमें सुख मानेगा। जाका चरणहस्तादिकनिमें फूटणी तथा वेदना उपजेगी, सो दबाया चाहेगा। जाके चरणनितें गमन करनेमें दुःखव्यापै, ताके पालकी इत्यादिक ऊपरि चढना सुख होयगा। जाके विरूपपणाका दुःख होयगा, सो आभरणनिका दुःखकारी बन्धनकूं सुख मानेगा, तथा सुन्दरवस्त्रनितें सुख मानेगा। जाके दुर्गन्धादिकजनित दुःख, ताके चन्दन अगुरादिकनिमें सुख दीखे है।

जाके कामवेदनाजनित दुःख होय ताके मैथुनरूप महासंक्लेशकर्ममें सुख होय है। तातें बहुत कहनेकरि कहा? जितने इन्द्रियजनित सुख हैं, ते पूर्वं दुःख उपजै तदि किंचिन्मात्र थोरे काल जिनि विषयनितें दुःख उपशमै, ताकूं जीव सुख माने है, सो सुख है, नहीं अति दुःखही है। सुख तो जाके वेदनाही नहीं अर निराकुलता लक्षण संपूर्णपदार्थनिकूं एककालमें जानना है। अर इन्द्रियजनित सुख तो परिपाकमें अति आतापके उपजावने वाले वेदनाकी आसतें सुख भासे है। जैसे कोढी अग्निकरि तप्तायमान होता अग्नितें सुख माने है, अर अग्नितें तपनेमें अधिक अधिक अभिलाष करे है, तैसे कामादिकवेदनापीडित पुरुषहू अति आतुर हुवा स्त्रीनिके संगमादिकविषयनिमें रचे है। गाथा—

कच्छुं कंडुयमाणो सुहाभिमाणं करेदि जह दुक्खे।
दुक्खे सुहाभिमाणं मेहुण आदीहिं कुणदि तहा ॥१२६०॥

अर्थ— जैसे खाजिरोगसहित पुरुष खाजिकूं खुजावतां दुःखमें सुख माने है, तैसे कामी पुरुष मैथुनादि कामचेष्टाकरि दुःखमें सुख माने है। गाथा—

घोसादकीं य जह किमि खंतो मधुरित्ति मण्णदि वराओ।
तह दुक्खं वेदन्तो मण्णइ सुक्खं जणो कामी ॥१२६१॥

अर्थ—जैसे कृमि कहिये लट कडवी तोरघूं तथा विषके फल तिनकूं भक्षण करता जहरहीकूं मधुर माने है, तैसे दीन ऐसा कामी जन प्रत्यक्ष शरीरादिकदुःखनिकूं अनुभव करता कामकी वेदनाका मारया सुख माने है। गाथा—

सुठ्ठु वि मग्गिज्जन्तो कत्थ वि कयलीए णत्थि जह सारो।
तह णत्थि सुहं मग्गिज्जन्ते भोगेसु अप्पं पि ॥१२६२॥

अर्थ—जैसे बहुत चोकसतें हेरिये तोहू केलिके स्तम्भमें कहांहू सार नहीं निकसे है, तैसे भोगनिमें अल्पहू सुख नहीं है। गाथा—

ण लहदि जह लेहन्तो सुक्खल्लयमठ्ठियं रसं सुणहो।
से सगतालुगरुहिरं लेहन्तो मण्णए सुक्खं ॥१२६३॥

महिलादिभोगसेवी ण लहदि किंचिवि सुहं तथा पुरिसो ।
सो मण्णदे वराओ सगकायपरिस्समं सुक्खं ॥१२६४॥

अर्थ—जैसे श्वान सूके हाडकूं आस्वादन करता हाडथकी रसकूं नहीं प्राप्त होय है, तिस हाडनिकी कोरतें अपना तालवा गुलाफा फाटि रुधिर निकले है ताकूं डाडमेतें निकस्या मानि भ्रमतें सुख माने है ? तैसे स्त्रीके भोगनिकूं सेवन करता कामी किंचित्मात्रहू सुखकूं नहीं प्राप्त होय है ! सो कामकी पीडातें बराक हुवा दीन हुवा अपना कायका परिश्रमकूंहो सुख माने है । गाथा—

तह अप्पं भोगसुहं जह धावन्तस्स अहिदवेगस्स ।
गिम्हे उण्हातत्तस्स होज्ज छायासुहं अप्पं ॥१२६५॥

अर्थ—जैसे अति उष्ण ग्रीष्मकालमें नहीं ठहरया है वेग जाका ऐसा दौडता पुरुषके मार्गमें कोऊ एक वृक्षादिक की छायामें दोडतां अल्पकाल सुख होइ है, तैसे कर्मकरि महादुःखरूप संसारमें परिभ्रमण करते पुरुषके भोगनिका सुखहू अति अल्पकाल है ।

अहवा अप्पं आसाससुहं सरिदाए उप्पियंतस्स ।
भूमिच्छिक्कंगुट्ठस्स उब्भमाणस्स होदि सोत्तेण ॥१२६६॥

अर्थ—अथवा जैसे नदीके मध्य बडे जोरके प्रवाहकरि बहता अर डूबता पुरुषका भूमिमें अंगुष्ठ स्पर्श होनेका अति अल्पकाल आश्वासनरूप सुख है, जो मैं थम्म्या, जीया, ऐसा एक पलकमात्र भूमिका अंगुष्ठके स्पर्शनतें आश्वास है । फेरि बहि करि मरण करे है; तैसे संसारी जीव कर्मजनित त्रासकरि बहता कोऊ किंचिन्मात्र विषय धन परिबार इत्यादिकका सम्बन्ध मिलता आश्वास माने है, पाछै बहता निगोदकूं जाय प्राप्त होय है । गाथा—

दीसइ जलं व मयतण्हिया हु जह वणमयस्स तिसिदस्स ।
भोगा सुहं व दीसन्ति तह य रागेण तिसियस्स ॥१२६७॥

अर्थ—जैसे वनमें तृषाकरि पीडित जो वनका मृग, ताकूं दूरि तिष्ठता मृगतृष्णा नामा घास सो जल दीखे है; सो जल जानि दौडे है, तहां जल नहीं। तदि आगानें तथा अन्य दिशामें मृगतृष्णा दीखे, तदि उसकी तरफ दौडे, तदि वहांभी जल नहीं दीखे। आगानें वा अन्यदिशामें मृगतृष्णा नामा घास दीखे, तदि उसमांहू दौडे, वहांभी नहीं दीखे। तदि अन्यवोडी ऐसे दोडता दोडता तृष्णाका मारचा प्राणरहित होय है; तैसे तीव्ररागकरि तृष्णाकूं प्राप्त हुवा संसारी पुरुषहू भोगनिकूं सुख माने है। सुख है नहीं ! ऐसे भोगनिमें अतितृष्णाकरि मरणनें प्राप्त होय नरकनिगोदकूं जाय प्राप्त होय है। गाथा—

वग्धो सुखेज्ज मदयं अवगासेऊण जह मसाणम्मि ।
तह कुणिमदेहसंफंसणेण अबुहा सुखायन्ति ॥१२६८॥

अर्थ—जैसे श्मसानभूमिमें मृतककूं आस्वादनकरि व्याघ्र, कूंकरा, स्याली सुखी होत हैं, तैसे स्त्रीनिके अशुचि अंगकूं स्पर्शन करिके अज्ञानी विषयांध सुखी होय हैं। गाथा—

जावन्ति केइ भोगा पत्ता सव्वे अणन्तखुत्ता ते ।
को णाम तत्थ भोगेसु विभओ लद्धविजडेसु ॥१२६९॥

अर्थ—हे आत्मन् ! जितने केई भोग है, तितने सर्वही तुम अनन्तवार भोग लिए अब अनन्तवार भोगे अर छोडे तिनकी प्राप्ति में कहा विस्मय है ? गाथा—

जह जह भुंजइ भोगे तह तह भोगेसु वड्ढदे तण्हा ।
अग्गीव इंधणाइं तण्हं दीविन्ति से भोगा ॥१२७०॥

अर्थ—संसारी जीव जैसे जैसे भोगनिकूं भोगे हैं, तैसे तैसे भोगनिमें तृष्णा बधे है। जैसे ईंधन अग्निकूं बधावे है। गाथा—

जीवस्स णत्थि तित्ती चिरं पि भोएहिं भुञ्जमाणेहिं ।
तित्तीए विणा चित्तं उव्वूरं उव्वुदं होइ ॥१२७१॥

अर्थ—इस जीवके चिरकाल भोगनेमें आये जे भोग, तिनकरि तृप्ति नहीं होय है। अर तृप्तिविना चित्त उद्वेगरूप तथा उझ्या हुवा रहे है। गाथा—

जह इंधरोंहि अग्गी जह व समुद्दो णदीसहस्सेंहि ।
तह जीवा ण हु सक्का तिप्पेदुं कामभोगेंहि ॥१२७२॥

अर्थ—जैसे ईंधनिकरि अग्नि नहीं तृप्त होत है, तथा हजारां लाखां नदीनिके प्रवाहकरि समुद्र तृप्त नहीं होत है, तैसे कामभोगनिकरि संसारी जीवहू तृप्त होनेकूं नहीं समर्थ होइये है। गाथा—

देविंदचक्कवट्टी य वासुदेवा य भोगभूमीया ।
भोगेंहि ण तिप्पन्ति हु तिप्पदि भोगेसु किह अण्णो ।१२७३

अर्थ—देवनिके इन्द्र, तथा चक्रवर्ती, तथा नारायण, प्रतिनारायण, तथा भोगभूमियां सागरांकी तथा पल्यनिकी तथा पूर्वनिकी आयुपर्यंत अप्रमाण जगतके सारभूत भोग भोगे तिनतैं तृप्त नहीं भये; तो अन्यसंसारीनिके अल्प भोग तिनकूं अल्पकाल भोगि कैसी तृप्ति होयगी? गाथा—

संपत्तिविवत्तीसु य अज्जणरक्खणपरिग्गहादीसु ।
भोगत्थं होदि णरो उद्धुयचित्तो य घण्णो य ॥१२७४॥

अर्थ—संपदामें तथा आपदामें धनका उपार्जनमें तथा रक्षणमें तथा संचय करनेमें तथा आदिशब्दकरि खरच करनेमें, देनेमें, भोगनेमें, सर्व लोकके परिग्रहमें, आपके परिग्रहमें तथा परके परिग्रहमें संसारी जीव भोगनिके अर्थि चलचित्त होय है। तथा आपदा आवे तदि भोगनिके वियोगतैं परिणाम अत्यन्त क्लेशित होय है, निरन्तर उत्कंठा लगी रहे है। अर संपदा आवे तदि भोगनिमें ऐसा लोभ होय है जो अचेत हो जाय है। तातैं जाके भोगनिकी इच्छा है, तिससमान कोऊ जगतमें क्लेशित नहीं है। गाथा—

उद्धुयमणस्स ण सुहं सुहेण य विणा कुदो हवदि पीदी ।
पीदीए विणा ण रदी उद्धुयचित्तस्स घण्णस्स ॥१२७५॥

अर्थ--जाका चल चित्त है ताके सुख नहीं है, अर सुखबिना प्रीति कैसे होय ? अर प्रीतिबिना रति जो आसक्तता सो नहीं होय । जाकूं उत्कंठारूप डाकिनी ग्रहण किया, ताके कोठेहू कोई अवसर में हू परिणाम थिरताकूं नहीं पावे है । गाथा--

जो पुण इच्छदि रमिदुं अज्झप्पसुहम्मि णिव्वुदिकरम्मि ।
कुणदि रदिं उवसन्तो अज्झप्पसमा हु णत्थि रदी ।।१२७६।।

अर्थ--जो वीतरागी निर्वाणसुखमें रत हुवा सो निर्वाणका करनेवाला अध्यात्मसुखमें मन्दकषायी हुवा रति करो । अध्यात्मसमान रति जो सुख सो है नहीं । गाथा--

अप्पायत्ता अज्झपरदी भोगरमणं परायत्तं ।
भोगरदीए चइदो होदि ण अज्झप्परमणेण ।।१२७७।।

अर्थ--अध्यात्मरति तो स्वाधीन है, इसमें परद्रव्यकी अपेक्षा नहीं है । अर भोगनिमें रमण पराधीन है । जातें परद्रव्यका आलम्बनविना भोग नहीं होत है । बहुरि भोगरतितें तो छूटे है अर अध्यात्मरतितें नहीं छिगे है । जातें भोगनिमें अनेक विघ्न आवे हैं अर अध्यात्मरति विघ्नका नाश करनेवाली है । गाथा--

भोगरदीए णासो णियदो विग्घा य होंति अदिबहुगा ।
अज्झप्परदीए सुभाविदाए णासो ण विग्घो वा ।।१२७८।।

अर्थ--भोगनिमें रति जो सुख सो नाशसहित है अर भोगनिमें विघ्न निश्चयतें आवेही है । अर भलेप्रकार अनुभव किया जो अध्यात्मसुख तिसविषें विघ्न नहीं है अर ताका नाशहू नहीं है । अब इन्द्रियजनितसुखनिका शत्रुपणा दिखावे हैं । गाथा--

दुक्खं उप्पादिंता पुरिसा पुरिसस्स होदि जदि सत्तू ।
अदिदुक्खं कदमाणा भोगा सत्तू किह ण हुन्ती ।।१२७९।।

अर्थ--जो जगतमें पुरुषके दुःख उपजावने वाले पुरुष हैं, ते शत्रु होय हैं; तो अतिदुःखका उपजावनेवाला भोग कैसे शत्रु नहीं होय ? गाथा--

इधइं परलोगे वा सत्तू मित्तत्तणं पुणमुवेंति ।

इधइं परलोगे वा सदाइ दुःखावहा भोगा ।।१२८०।।

अर्थ--बहुरि शत्रु हैं ते तो इस लोकमें वा परलोकमें मित्रपणाकूं प्राप्त होय हैं । अर भोग हैं ते इस लोकमें तथा परलोकमें सदाकाल दुःखका वहनेवाले ही होय हैं । गाथा--

एगम्मि चेव देहे करेज्ज दुक्खं ण वा करेज्ज अरी ।

भोगासे पुण दुक्खं करन्ति भवकोडिकोडीसु ।।१२८१।।

अर्थ--वैरी है सो एकही देहविषै दुःख करे तथा नहीं करे, अर ये भोग इस जीवके कोटाकोटि भवनिमें तथा असंख्यात अनन्तभवनिमें दुःख करे हैं । तातैं भोगतैं उत्पन्न होय जे दोष तिनकूं जाणि भोगनिके अर्थि निदान मति करो । गाथा--

मधुमेव पिच्छदि जहा तडिओलंवो ण पिच्छदि पपादं ।

तह सणिदाणो भोगे पिच्छदि ण हु दीहसंसारं ।।१२८२।।

अर्थ—जैसे कोऊ तटमें लूमता पुरुष ऊपरि मधुछत्ताहीकूं देखे है, अर अपना पतनकूं नहीं देखे है । तैसे निदान सहित पुरुष भोगनिहीकूं देखे है, अपना पतन होय दीर्घकाल संसारमें परिभ्रमण होना नहीं देखे है । गाथा—

जालस्स जहा अन्ते रमन्ति मच्छा भयं अयाणन्ता ।

तह संगादिसु जीवा रमन्ति संसारमगणन्ता ।।१२८३।।

अर्थ--जैसे मत्स्य आपके भयकूं नहीं जानता धीवरके पसारे जालमें रमत है; तैसे संसारी जीव आपका ससारमें परिभ्रमण नहीं गिणता परिग्रहादिकमें रमत है । देवलोकादिकनिकेहू वस्त्र अलंकार भोजनादिक दुःख निराकरण करनेकूं नहीं सामर्थ्य है, ऐसे कहे हैं । गाथा—

दुक्खेण देवमाणुसभोगे लद्धूण चावि परिवडिदो ।

णियदिमदीदि कुजोणीं जीवो सघरं पउत्थो वा ।।१२८४।।

अर्थ—कोऊ बड़े दुःखकरिके देवनिके मानुषनिके भोगनिकूं पायकरिकेहू पर्यायतें छूटि नियमतें कुयोनिनिकूं प्राप्त होय है। जैसे प्रवासी अपने घरकूं प्राप्त होय है। गाथा—

जीवस्स कुजोणिगदस्स तस्स दुक्खाणि वेदयन्तस्स ।
किं ते करन्ति भोगा मदोव वेज्जो मरन्तस्स ॥१२८५॥

अर्थ—कुयोनिकूं प्राप्त भया अर कुयोनिनिमें दुःखनिकूं भोगता जीवके इन्द्रयनिके भोग कहा करे ? कुयोनिमें पडतेके अर दुःख भोगतेके इन्द्रियनिके भोग सहायी शरण होय नहीं हैं। जैसे मरण करते जीवके, पूर्वकालमें मरणकिया जो वैद्य, सो रक्षक नहीं होय है। भावार्थ—जो वैद्य मरि गया, सो कहातें आवेगा ? अर मरते जीवकी रक्षा तथा रोग का अभाव कैसे करेगा ? तैसे भोगे हुये भोग नरकतिर्यंचमें दुःख भोगते जीवके कैसे सहायी होयंगे ? गाथा—

जह सुत्तवद्धसउणो दूरंपि गदो पुणो व एदि तहिं ।
तह संसारमदीवि हु दूरंपि गदो णिदाणगदो ॥१२८६॥

अर्थ—जैसे दीर्घसूत्रतें बद्ध पक्षी दूर गया हुवाहू बहुरि उसही स्थानकूं प्राप्त होय है; जातें उडि चल्या तो कहा भया ? पग तो सूतकी डोरीतें बन्ध्या है, जाय नहीं सकेगा। तैसे निदान करनेवाला अतिदूर स्वर्गादिकमें महर्द्धिक देवनिमें प्राप्त भयाहू संसारहीमें परिभ्रमण करेगा–देव लोक जायकरिकेहू निदानके प्रभावतें एकेंद्रियतिर्यंचमें तथा पंचेन्द्रियतिर्यंचनिमें तथा मनुष्यनिमें आय पापसंचयादिक करि नरकनिगोदादिकनिमें दीर्घकाल परिभ्रमण करेगा। गाथा—

दाऊण जहा अत्थं रोधणमुक्को सुहं घरे वसइ ।
पत्ते समए य पुणो रुंभइ तह चेव धारणिओ ॥१२८७॥
तह सासण्णं किच्चा किलेसमुक्कं सुहं वसइ सग्गे ।
संसारमेव गच्छइ तत्तो य चुदो णिदाणकदो ॥१२८८॥

अर्थ—जैसे ऋणसहित पुरुष परके बन्दीगृहमें पड्या हुवा धन देयकरिके अर कितनेक दिनका करार करिके बन्दि-गृहतें छूटि सुखरूप हुवा अपने घरमें वसे है, बहुरि करार पूरा होनेके अवसरमें जाका धन वृद्धिसहित लिया होय सो फेरि

बन्दिगृहमें रोके है; तैसे साधुपणा धारणकरिके अर निदान करे है, सो कितनेक काल स्वर्गविषे क्लेशरहित सुख भोगता वसे है, बहुरि आयु पूर्ण भये स्वर्गतैं चयकरिके संसारहीकूं प्राप्त होय है। गाथा—

संभूदो वि णिदाणेण देवसुक्खं च चक्कहरसुक्खं।
पत्तो तत्तो य चुदो उववण्णो णिरयवासम्मि ॥१२८९॥

अर्थ—संभूत नामा मुनि निदानकरिके देवनिके सुख भोगि बहुरि चक्रीपणाका सुख भोगि अर पाछै मरण करि नरकमे जाय उपज्या है। इहां ऐसा जानना–जो मुनिपणामें तथा देशव्रतिपणामें मन्दकषायके प्रभावतें तथा तपश्चरणके प्रभावतें स्वर्गलोकमें उपजावने वाला तथा अहमिंद्रलोकमें उत्पन्न करनेवाला शुभकर्म बांध्या होय अर पाछै निदान करे, तो नीच भवनत्रिकादिक अधमदेवनिमें जाय उपजै। जाके पुण्य अधिक होय अर अल्पपुण्यका फलके जोग्य निदान करे तो अल्पपुण्य वाला देव मनुष्य जाय उपजै। अर अधिक पुण्यका देवनिमें तथा मनुष्यनिमें उपजा चाहे तो नहीं उपजे। निदानतें अल्प मिले, अधिक नहीं मिले। जैसे जाके निकट बहुतमोलकी वस्तु होय अर अल्पधनमें बेचे तो अल्प धन मिलि जाय अर अल्पमोलकी वस्तुकूं अधिकधनमें बेचे तो अधिकधन नहीं मिले है। जो मुनिश्रावकका धर्म साक्षात् स्वर्गमोक्ष का देनेवाला धारण करि भोगनिमें निदान करि बिगाडे है, सो एक कौडीमें चिंतामणिरत्न बेचे है? अथवा ईंधनके अर्थि कल्पवृक्षकूं काटे है। भोगनिके अर्थि निदान करने बराबरि कोऊ जगतमें अनर्थ है नहीं। नारायणादिकहू निदानतें ही परिभ्रमण करे हैं। गाथा—

णच्चा दुरन्तमद्धुयमत्ताणमतिप्पयं अविस्सायं।
भोगसुहं तो तम्हा विरदो मोक्खे मदिं कुज्जा ॥१२९०॥

अर्थ—कैसेक हैं भोग? दुःखरूप है फल जाका ऐसा, अर अस्थिर, अर रक्षा करनेकूं समर्थ नहीं, अर अतृप्तिता का करनेवाला, अर विश्रामरहित, अन्तसहित, ऐसे भोगनिकूं जानिकरिके अर ज्ञानी जन भोगनिके सुखतें विरक्त होय अर मोक्षमें बुद्धि करे। गाथा—

अणिदाणो य मुणिवरो दंसणणाणचरणं विसोधेदि।
तो सुद्धणाणचरणो तवसा कम्मक्खयं कुणइ ॥१२९१॥

अर्थ—जो मुनिवर निदानरहित है, सो दर्शनज्ञानचारित्रकूं शुद्ध करे है। अर दर्शनज्ञानचारित्र शुद्ध जाके होय, सो ध्यान नामा तपकरि कर्मका क्षय करे है।

इच्चेवमेदमविचिंतयदो होज्ज हु णिदाणकरणमदी।
इच्चेवं पस्सन्तो ण हु होदि णिदाणकरणमदी ॥१२६२॥

अर्थ— ऐसे पूर्वोक्तप्रकार निदानदोषनिकूं नहीं चितवन करते पुरुषके निदान करनेमें बुद्धि होय है; अर निदानकूं विषसमान अनंतदुःखनिका करनेवाला जो भावनितें देखे है, ताकै निदान करने में बुद्धि नहीं होय है।

ऐसें सत्तरि गाथानिमें निदानशल्यका वर्णन कीया। अब मायाशल्यकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा—

मायासल्लस्सालोयणाधियारम्मि वण्णिदा दोसा।
मिच्छत्तसल्लदोसा य पुव्वमुववण्णिया सव्वे ॥१२६३॥

अर्थ—मायाशल्यतें उपजे दोष पूर्वे आलोचना नामा अधिकारमें वर्णन कीये अर मिथ्याशल्यके दोषहू सर्व पूर्वे वर्णन कीये। तातें माया मिथ्या निदान तीनप्रकारकी शल्य हृदयथकी निकासहु। गाथा—

पब्भट्ठबोधिलाभा मायासल्लेण आसि पूदिमुही।
दासी सागरदत्तस्स पुप्फदन्ता हु विरदा वि ॥१२६४॥

अर्थ—पुष्पदंता नामा आर्यिका शल्यकरि भ्रष्ट भया है रत्नत्रयका लाभ जाकै, ऐसी मायाचारका पापकरि सागरदत्त नामा वणिककै महादुर्गंधदेहकूं धरनेवाली पूतिमुखी नामा दासी होती भई! देखहू! कहां देवलोकका देनेवाला आर्यिकका व्रत, अर कहां वणिकके घर दुर्गंधदासी होना! मायाशल्य महान् अनर्थ करनेवाला है। ऐसें मायाशल्यतें उपजे दोष कहे। अब मिथ्याशल्यकृत दोष एकगाथामैं कहे हैं।

मिच्छत्तसल्लदोसा पियधम्मो साधुवच्छलो सन्तो।
बहुदुक्खे संसारे सुचिरं पडिहिंडिओ मरिची ॥१२६५॥

अर्थ—प्रतिवल्लभ है धर्म जाकूं, अर साधुपुरुषनिमें प्रीतियुक्त हुवा संताहू मरीची एक मिथ्यात्वशल्यके दोषतें बहुत दुःखरूप संसारमें बहुत असंख्यातकालपर्यंत परिभ्रमण करता हुवा। ऐसें मिथ्यात्वशल्यका वर्णन कीया। अब ऐसे साधु-समूह निर्वाणपुरीकूं प्रवेश करे हैं, सो कहे हैं। गाथा—

इय पव्वज्जाभंडि समिदिबइल्लं तिगुत्तिदिढचक्कं।
राविय भोयणउद्धं सम्मत्तक्खं सणाणधुरं ॥१२९६॥
वदभंडभरिदमारुहिदसाधुसत्थेण पत्थिदो समयं।
णिव्वाणभंडहेदुं सिद्धपुरीं साधुवाणियओ ॥१२९७॥
आयरियसत्थवाहेण णिज्जउत्तेण सारविज्जन्तो।
सो साहुवग्गसत्थो संसारमहाडविं तरइ ॥१२९८॥
तो भावणादियन्तं रक्खदि तं साधुसत्थमाउत्तं।
इन्दियचोरेहिंतो कसायबहुसावदेहिंतो ॥१२९९॥

अर्थ—ऐसें दीक्षारूप गाडीमें चढिकरिके अर साधूनिका समूहसहित जो निर्वाणपुरीप्रति गमन करे है, सो साधु-वणिक् संसाररूप वनी के पार उतरे है। कैसी है संसाररूप गाडी? जाकै समितिरूप तो बलध है, अर तीनगुप्ति दृढ पहिये हैं, अर रात्रिभोजनका त्याग सोही गाडीका ऊर्ध्वभाग है, अर सम्यक्त्वरूप अक्ष है, अर सम्यग्ज्ञानरूप धुरा है, अर व्रतरूप भांड वस्तु तिनकरि भरो है, ऐसी दीक्षागाडीऊपरि चढि प्रयाण करनेवाला साधुरूप वणिक् बहुरि निरंतर आपके तथा परके हित करने में उद्यमी ऐसे आचार्य सोही जो सार्थवाह कहिये संघका स्वामी, ताकरि प्रशंसा कीया साधुका समूह, सो संसारमहावनीकूं तिरे हैं पार उतरे है। संसारवनीमे इंद्रियरूप तो चोर वसे हैं, अर कषायरूप सिंहव्याघ्र-सर्पादिक दुष्टजीव बसे हैं, तिनतें साधुसमूहकी शुभभावनाही रक्षा करे है। गाथा—

विसयाडवीए मज्झे ओहीणो जो पमाददोसेण।
इन्दियचोरा तो से चरित्तभंडं विलुम्पन्ति ॥१३००॥

अर्थ—अर जो साधु प्रमादके दोषकरि पंचेंद्रियनिके विषयनिमें अपसरण करे है—प्रवर्तन करे है, तिस साधुरूप वणिकका चारित्ररूप भांड कहिये धनकूं इन्द्रियरूप चोर लूटे हैं।

अहवा तल्लिच्छाइं कूराइं कसायसावदाइं तं।

खज्जन्ति असंजमदाढाइं किलेसादिदंसेंहिं ॥१३०१॥

अर्थ—अथवा विषयनिकी वांछा करनेवालेनिकूं कषायरूप क्रूर दुष्ट तिर्यंच असंयमरूप दाढनिकरि अर संक्लेशरूप दंतनिकरि भक्षण करे हैं। भावार्थ–जो विषयनिकूं वांछे हैं ताकूं कषाय अर संक्लेश मारिही नाखे है। गाथा—

ओसण्णसेवणाओ पडिसेवन्तो असंजदो होइ।

सिद्धिपहपच्छिदाओ ओहीणो साधुसत्थादो ॥१३०२॥

अर्थ—जो मुनिका व्रत धारि अयोग्यवस्तुका सेवन करे है, सो अयोग्यसेवनतें असंयमी होय है, पश्चात् निर्वाणके मार्ग में गमन करता जो साधूनिका समूह तातैं अपसृत कहिये निकले है, तातैं अवसन्न कहिये है। अवसन्नसंज्ञक मुनि है, सो मुनिनके संघ के बाह्य जानना। गाथा—

इन्दियकसायगुरुगत्तणेण सुहसीलभाविदो समणो।

करणालसो भवित्ता सेवदि ओसण्णसेवाओ ॥१३०३॥

अर्थ—जो साधु इंद्रियकषायका बडापणाकरिकै सुखियास्वभाव होय तथा त्रयोदशप्रकार चारित्र में आलसी होयकरिकै अर साधुपणातें चलायमान होय सो अवसन्न है। ऐसें अवसन्नका स्वरूप कह्या। गाथा—

केई गहिदा इन्दियचोरेहिं कसायसावदेहिं वा।

पंथं छंडिय णिज्जन्ति साधुसत्थस्स पासम्मि ॥१३०४॥

अर्थ—कितनेक मुनि इंद्रियरूप चोरनिकरि तथा कषायरूप दुष्टतिर्यंचनिकरि ग्रहण कीये हुये रत्नत्रय मोक्षमार्गकूं त्यागिकरिकै अर बाह्य भेषकरि साधुसारिसा रहे हैं–जगतकूं साधु दीखे है, अर साधु नहीं भेषमात्र हैं, तातैं इनकूं साधुसंघ के पार्श्ववर्तीपणातैं पार्श्वस्थ कहिये हैं।

तो साधुसत्थपंथं छंडिय पासम्मि गिज्जमाणा ते ।
गारवगहणकुडिल्ले पडिदा पावेन्ति दुक्खाणि ॥१३०५॥

अर्थ—जे साधुनिके समूहका मार्ग छांडिकरिकै अर पार्श्वस्थपणानै प्राप्त भये हैं, ते अभिमान तथा रसगारव ऋद्धिगारव सातगारवकरिकै आच्छादित जो पार्श्वस्थपणारूप वन तामैं पडे दुःखनिकूं प्राप्त होय हैं । गाथा—

सल्लविसकंटएहिं विद्धा पडिदा पडन्ति दुक्खेसु ।
विसकंटयविद्धा वा पडिदा अडवीए एगागी ॥१३०६॥

अर्थ—जैसें विषकंटकरि वेध्या पुरुष एककाकी वनी मैं पड्या हुवा दुःख भोगे है, तैसें मिथ्यात्व-माया-निदान तीन शल्यरूप विषकंटकरि वेध्या हुवा साधु दुःखनिमैं पडत है ।

पंथं छंडिय सो जादि साधुसत्थस्स चेव पासाओ ।
जो पडिसेवदि पासत्थसेवणाओ हु णिद्धम्मो ॥१३०७॥

अर्थ—जो साधुसमूहकी निकटतातें मार्गकूं छांडिकरिकै अर चारित्रकी विराधना करे है, सो पार्श्वस्थका सेवन करनेवाला धर्मरहित है । गाथा—

इन्दियकसायगुरुयत्तणेण चरणं तणं व पस्सन्तो ।
णिद्धम्मो हु सवित्ता सेवदि पासत्थसेवाओ ॥१३०८॥

अर्थ--जो साधुका व्रत अंगीकार करिकैहू इंद्रिय और कषाय इनिका तीव्रपणातें चारित्रकूं तृणसमान देखे है, सो अधर्मी होयकरिकैं अर पार्श्वस्थपणाकूं सेवे है—अंगीकार करे है । ऐसें पार्श्वस्थका स्वरूप कह्या । अब कुशील-जातिका भ्रष्टमुनिका स्वरूप कहे हैं ।

इन्दिचोरपरद्धा कसायसावदभएण वा केई ।
उम्मग्गेण पलायन्ति साधुसत्थस्स दूरेण ॥१३०९॥

तो ते कुसीलपडिसेवणावणे उप्पधेण धावन्ता ।
सण्णाणदीसु पडिदा किलेससुत्तेण वुढ्ढन्ति ॥१३१०॥

सण्णाणदीसु ऊढा वुढ्ढा थाहं कहंपि अलहन्ता ।
तो ते संसारोवधिमदन्ति बहुदुक्खभीसम्मि ॥१३११॥

अर्थ—कितनेक साधु इन्द्रियचोरकरि उपद्रवकूं प्राप्त भये अर कषायरूप दुष्टतिर्यंचके भयकरिकैं उन्मार्गकरिकैं साधूका समूहतें दूरि निकले हैं। भावार्थ-कितनेक साधुपणा अंगीकार करिकै भी इन्द्रियनिके विषय अर कषाय इनकरि पीडित भये साधुपणाका मार्गकूं उल्लंघनकरि मिथ्यामार्गमें प्रवर्तन करे हैं। बहुरि तिस साधुका मार्गतें निकस्या कुशील-प्रतिसेवनारूप वनविषं उन्मार्गकरिकै दोडते च्यारि संज्ञारूप नदीमैं पडे क्लेशरूप प्रवाहकरिकै डूबे हैं। बहुरि संज्ञानदीके प्रवाहकरि बहता कहू भी ठहरनेकूं स्थान नहीं प्राप्त होत है। पाछै बहता बहता बहुतदुःखनिकरि भयंकर जो संसार-समुद्र तामैं प्रवेश करे हैं। कुशीलमुनि त्रसस्थावरयोनिनिमैं अनंतकाल परिभ्रमण करे हैं। गाथा—

आसागिरिदुग्गाणि य अदिगम्म तिदंडकक्खडसिलासु ।
ऊलोडिदपब्भट्टा खुप्पन्ति अणंतियं कालं ॥१३१२॥

अर्थ—बहुरि कुशीलमुनि है सो आशारूप पर्वतके शिखरतें पडिकरिकै मन वचन कायकी कुटिलप्रवृत्तिरूप कर्कश-शिलाविषं लोटते भ्रष्ट भये अनंतकाल व्यतीत करे हैं। भावार्थ-कुशीलमुनि विषयनिकी आशायकी मनवचनकायकी वक्रताकूं प्राप्त होय अर भ्रष्ट हुवा अनंतसंसारपरिभ्रमण करे हैं। गाथा—

बहुपावकम्मकरणाडवीसु महदीसु विप्पणट्ठा वा ।
अदिट्ठणिव्वुदिपधा भमन्ति सुचिरंपि तत्थेव ॥१३१३॥

अर्थ—बहुरि कुशीलमुनिकै कहा होय है, सो कहे हैं। ते कुशीलमुनि बहुत पापकर्मके करनेरूप महावनी तिनविषं नष्ट भये। तथा नहीं देख्या है निर्वाणका मार्ग जिननें ऐसे चिरकालपर्यंत संसारमें भ्रमण करे हैं। गाथा—

दूरेण साधुसत्थं छंडिय सो उप्पधेण खु पलादि ।
सेवदि कुसीलपडिसेवणाओ जो सुत्तदिट्ठाओ ॥१३१४॥

अर्थ--जे साधुनिके संघकूं दूरिही त्यागिकरिकें अर एकाकी हुवा उन्मार्गमें प्रवर्तन करे हैं ते कुशीलप्रतिसेवना सेवे हैं, ऐसें जिनसूत्रमे दिखाया है । गाथा--

इन्दियकसायगुरुगत्तणेण चरणं तणं व पस्सन्तो ।
णिद्धंधसो भवित्ता सेवदि हु कुसीलसेवाओ ॥१३१५॥

अर्थ--जे इंद्रिय अर कषाय इनका तीव्रपणाकरिकें चारित्रकूं तृणसमान देखता चारित्रतें भ्रष्ट होय हैं, ते निर्लज्ज होयकरिकें कुशीलसेवाकूं सेवन करे हैं । ऐसें कुशीलजातिके भ्रष्टमुनिका स्वरूप कह्या । अब यथाछंदजातिके भ्रष्टमुनि स्वरूप कहे हैं ।

सिद्धिपुरमुवल्लीणा वि केइ इन्दियकसायचोरेहिं ।
पविलुत्तचरणभंडा उवहदमाणा णिवट्टन्ति ॥१३१६॥
तो ते सीलदरिद्दा दुक्खमणंतं सदा वि पावन्ति ।
बहुपरियणो दरिद्दो पावदि तिव्वं जधा दुक्खं ॥१३१७॥
सो होदि साधुसत्थादु णिग्गदो जो भवे जधाछंदो ।
उस्सुत्तमणुवदिट्ठं च जधिच्छाए विकप्पन्तो ॥१३१८॥

अर्थ--कितनेक साधु निर्वाणपुरप्रति गमन करनेमें उद्यमी भये हुयेहू इन्द्रिय अर कषायरूप चौरनकरि चारित्ररूप धन नष्ट करिकें अर मुनिपणाका अभिमानकूं नष्ट करे हैं, ते उलटे संसारही में बाहुडे हैं । पश्चात् शील जो आपका सत्यार्थ निज स्वभाव ताकरि रहित दरिद्री हुवा सदाकाल संसारमें अनंतदुःख पावे हैं । जैसें बहुतपरिवार कुटुम्ब का धनी दरिद्री भया तीव्र दुःख पावे है, तैसें निजस्वभावरहित भया जीव त्रसस्थावरयोनिमें घोरदुःख पावे है । अर

जो शीलतें नष्ट होय साधुमुनिनिके संघतें निकलि जाय तदि सूत्रविरुद्ध गुरुनिका उपदेशरहित यथेच्छ कल्पना करता स्वच्छंद होय है। भावार्थ–कितनेक जीव साधुपणाहू धारै, अर महाव्रतादिक अंगीकारहू करै, अर निर्वाणके अर्थि निरंतर उद्यमहू करै, परंतु इन्द्रियकै विषय तथा कषायनिकै वशी होय चरित्रधर्मका नाश करि मुनिपणाका अभिमान बिगाडि शीलरहित दरिद्री हुवा गुरुनिका उपदेशविनाही उत्सूत्र कहिये सूत्रविरुद्ध आपकी इच्छाकरि कल्पना करे है, तिनकूं स्वच्छंद कहिये हैं। ते उन्मार्गी संसारमें अनंतदुःखकूं प्राप्त होय हैं। गाथा–

जो होदि जधाछन्दो हु तस्स धणिदंपि संजमित्तस्स।
णत्थि दु चरणं खु हादि सम्मत्तसहचारी ॥१३१९॥

अर्थ––जो मुनि स्वेच्छाचारी है सो अतिशयरूप संयम में प्रवर्तन करै तोहू ताकै चरित्र नहीं होय है। चारित्र है सो सम्यक्त्व का सहचारी है। यातें सम्यक्त्वसहितही के चारित्र होय है। अपनी इच्छातें सूत्रविरुद्ध आचरण करै, ताकै सम्यक्त्वहू नहीं अर चारित्रहू नहीं होय है। गाथा––

इदियकसायगुरुगत्तणेण सुत्तं पमाणमकरन्तो।
परिमाणेदि जिणुत्ते अत्थे सच्छन्ददो चेव ॥१३२०॥

अर्थ––जो साधु इंद्रिय अर कषाय इनकी तीव्रताकरिकै जिनेंद्रकरि कहे हुये सूत्रकूं नहीं प्रमाण करता जिनेंद्र के कहे अर्थनिकूं अवज्ञा करे है, जिनोक्त अर्थहू मैं स्वच्छंद मार्गरहित प्रमाण करे है, सो साधु स्वच्छंद है–जिनेंद्रका सत्यार्थ मार्गतें भ्रष्ट है। ऐसें यथाछंदका स्वरूप कह्या। अब संसक्तका स्वरूप कहे हैं। गाथा–

इन्दियकसायदोसेहिं अधवा सामण्णजोगपरितन्तो।
जो उव्वायदि सो होदि णियत्तो साधुसत्थादो ॥१३२१॥

अर्थ––केई इन्द्रिय अर कषायनिके दोषकरि चारित्रतें चलायमान होय है अथवा सामान्य मनवचनकाय के योगनिकरि दग्या हुवा चारित्रतें भ्रष्ट होय है, सो साधु साधुनिका संघतें निवृत्त होय हैं–रहित होय है। गाथा–

इंदियकसायवसिया केई ठाणाणि ताणि सव्वाणि।
पाविज्जन्तो दोसेहिं तेहिं सव्वेहिं संसत्ता ॥१३२२॥

अर्थ--कितने मुनि इन्द्रियनिके अर कषायके वसि भये, ते सकलदोषनिकरि सकल अशुभपरिणामनिके स्थाननिकूं प्राप्त होय हैं, ते संसक्त कहे हैं। ऐसें संसक्तजातिका भ्रष्टमुनिका स्वरूप कह्या। गाथा--

इय एदे पंचविधा जिणेहिं सवणा दुगुंछिदा सुत्ते।
इन्दियकसायगुरुयत्तणेण णिच्चंपि पडिकुद्धा ॥१३२३॥

अर्थ--ऐसे ये पंचप्रकार के भ्रष्ट मुनि जिनेंद्रभगवान् परमागम में निद्यरूप कहे हैं। ये निद्यमुनि हैं। ते मुनिका भेष धारे है, तथापि इन्द्रियनिके विषयनिकी तीव्रतातें नित्यही जिनेंद्रधर्मतैं प्रतिकूल हैं--पराङ्मुख हैं। ऐसे पार्श्वस्थपणा कह्या। गाथा--

दुट्ठा चवला अदिदुज्जया य णिच्चं पि समणुबद्धा य।
दुक्खावहा य भीमा जीवाणं इन्दियकसाया ॥१३२४॥

अर्थ--जीवनिके ये पांच इन्द्रिय अर क्रोधादिक च्यारि कषाय ये अतिदुखकारी हैं। कैसेक हैं इन्द्रिय अर कषाय? आत्मा के उपद्रवकारीपणातें दुष्ट हैं, अर अवस्थित नहीं तातैं चपल है, अर महान् बलवानहू-जीति न सके तातें अतिदुर्जय हैं, अर चारित्रमोहके तीव्र उदयतें बारम्बार आत्मातें बन्धे है, अर दुःखके वहने वाले हैं, अर अति भयकारी है। भावार्थ--आत्माके जितने क्लेश हैं तितने विषयनिके अनुरागतें हैं, तथा कषायनिकी तीव्रतातें हैं, तथा विषय नहीं प्राप्त होय तो महादुःख होय है। अर जो प्राप्त होय करि विनसि जाय तो अति दुःख होय है। अर विषय तथा अभिमानादिकतैंही भय उपजे है। विषयादिक विनसनेका जगतमें बडा भय होय है। गाथा--

तरुतेल्लंपि पियन्तो वत्थो जह वादि पूदियं गन्धं।
तध दिक्खिदो वि इन्दियकसायगन्धं वहदि कोई ॥१३२५॥

अर्थ--जैसे बकरा सुगन्धतैल तथा अत्तर पीवताहू दुर्गन्धही पसेवकूं तथा मदकूं उगले है, तैसे कितने पुरुष जिन दीक्षा ग्रहणकरि संयम धारताहू मिथ्यादर्शन तथा चारित्रमोह का तीव्र उदयतें इन्द्रियनिके विषयनिकी वांछाकूं तथा क्रोधादिकषायतें उपजी मलिनताकूं प्राप्त होय है। गाथा--

भुंजन्तो वि सुभोयणमिच्छदि जध सूयरो समलमेव ।
तध दिक्खिदो वि इन्दियकसायमलिणो हवदि कोइ ।१३२६

अर्थ—जैसे ग्राम सूकर सुन्दर मेवा मिष्टान्न भोजन करतेहू विष्टाके भक्षण करनेकीही इच्छा करते हैं, तैसे कोऊ दीक्षा ग्रहण करिकेहू भ्रष्ट होय इन्द्रियनिके विषयनिकी लालसा करे है, तथा कषायनिके आधीन होय है । गाथा—

वाहभएण पलादो जूहं दठ्ठूण वागुरापडिदं ।
सयमेव मओ वागुरमदीदि जह जूहतण्हाए ।।१३२७।।
पंजरमुक्को सउणो सुइरं आरामए सुविहरन्तो ।
सयमेव पुणो पंजरमदीदि जध णीडतण्हाए ।।१३२८।।
कलभो गएण पंकादुद्धरिदो दुत्तरादु बलिएण ।
सयमेव पुणो पंकं जलतण्हाए जह अदीदि ।।१३२९।।
अग्गिपरिक्खित्तादो सउणो रुक्खादु उप्पडित्ताणं ।
सयमेव तं दुमं सो णीडणिमित्तं जध अदीदि ।।१३३०।।
लंघिज्जन्तो अहिणा पासुत्तो कोइ जग्गमाणेण ।
उठ्ठविदो तं घेत्तुं इच्छदि जध कोदुगहलेण ।।१३३१।।
सयमेव वंतमसणं णिल्लज्जो णिग्घिणो सयं चेव ।
लोलो किविणो भुंजदि सुहणो जध असणतण्हाए ।१३३२।
एवं केई गिहवाससदोसमुक्का वि दिक्खिदा संता ।
इंदियकसायदोसे हि पुणो ते चेव गिण्हन्ति ।।१३३३।।

अर्थ—जैसे व्याध जो शिकारी, सो मृगनिकूं पकडनेकूं वनमें जाल पसारचा, तदि कोऊ मृग शिकारीका भयकरिकै बडी दूरि भागि गया अर अन्य समस्तमृगनिका समूह जालमें फसि गया। तदि दूरि भाग्याहू मृग अपने यूथकी तृष्णाकरि स्वयमेव जालमें आय पडे है, यद्यपि शिकारीके भयतें भागि गया तथापि यूथविना अकेला आपकूं देखि, क्लेशित होय, अपने साथीनिकूं हेरता स्वयमेव अपने यूथके सामिल जालमें आय पडे है, पाछै शिकारीकरि मारचा जाय है। तैसे संसारी जीव परिग्रह त्यागि, दीक्षित होय करिके इन्द्रिय कषायनिका प्रेरचा परिग्रहमें बहुरि आय फसे है। तथा जैसे पिंजरातें छूट्या पक्षी बहुत काल बागबगीचेनिमें विहार करताहू स्थानकी तृष्णाकरि बहुरि स्वयमेव पिंजरेकूं प्राप्त होय है; तैसे संसारी जीव गृहकुटुम्ब के बन्धनतें छूटि दीक्षित होयकरिकेहू विषयकषायनिका प्रेरचा हुवा बहुरि स्थानादिकमें ममत्वकरि आय फसे हैं। तथा जैसे हस्तीका बच्चा कर्दम में फस्या ताकूं कोऊ बलवान् हस्ती बडे अगाध कोचतें बाहिर काढचा, परन्तु बहुरि जलकी तृष्णाकरि स्वयमेव कर्दममे जाय फसे है; तैसे कोऊ त्यागी हुवाहू विषयनिकी तृष्णाकरिके संसाररूप कर्दममें बहुरि उलझि मरे है।

तथा जैसे कोऊ वृक्षके अग्नि लागी, तदि उस वृक्षमें बसनेवाले पक्षी अपने घुरसाले छोडिकरिके उस वृक्षके बाहिर भागे, परन्तु अपने घुरसालेकूं दग्ध होता जानि च्यारिवोडी वृक्षके ऊपरि भ्रमण करि उस वृक्षहीमें पडि दग्ध होय हैं; तैसे इन्द्रियनिके विषय तथा कषायका प्रेरचा दीक्षित हुवाहू विषयरूप अग्निमें पडि दुर्गतिकूं जाय प्राप्त होय है। तथा जैसे कोऊ पुरुष शयन करे था, ताकूं सर्प उल्लंघन करि गया, पाछै कोऊ जाग्रत पुरुष ताकूं जगायकरि कही "अरे, तोकूं सर्प उल्लंघन करि गया है"। तदि तिससर्पकूं कौतूहलकरि ग्रहण करनेकी इच्छा करै; तैसे परिग्रहकूं त्यागि बहुरि ग्रहण करना है। तथा जैसे आपकरि वमन करचा भोजनकूं निर्लज्ज निर्घृण लोलपी नीच श्वान भोजनकी तृष्णाकरि भक्षण करे है, तैसे निर्लज्ज नीच सूगलो कोऊ पुरुष विषय कषाय त्यागि जिनदीक्षा ग्रहण करिकेहू बहुरि विषयनिकूं भोगे है।

ऐसें कितने गृहवासका दोष छांडिकरिके दीक्षित हुवा सन्ताहू इन्द्रियनिके विषय तथा कषायनिके दोषकरिके बहुरि तिन गृहवासके दुःखनिहीकूं ग्रहण करे हैं। कैसाक है गृहवास ? यह हमारा यह हमारा, ऐसा ममत्वका आधार है, ममत्व यामें वसे है। बहुरि निरन्तर जीवके आशा अर लोभके उत्पन्न करनेमे समर्थ है। बहुरि कषायनिकी खानि है। बहुरि इसके पीडा करूं, इसके उपकार करूं, ऐसे परिणाम करनेमें समर्थ है। बहुरि पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पति इनकी हिंसामें प्रवृत्ति करावनेवाला है। बहुरि चेतन अचेतन अल्प तथा बहुत धनके ग्रहण करनेमें तथा बधावनेमें मन-

वचनकायकरिके परिश्रम करावनेवाला है। बहुरि इस गृहवासमें तिष्ठता जन असारकूं सार, तथा अनित्यकूं नित्य, तथा अशरणकूं शरण, तथा अशुचिकूं शुचि, तथा दुःखकूं सुख, तथा अहितकूं हित, तथा अनाश्रयकूं आश्रय, तथा शत्रूकूं मित्र मानता संता सर्वतरफ दौडे है। बहुरि कैसा है गृहवास ? तामें मनुष्य महादुःखी हुवा तिष्ठे है, जैसे लोहके पींजरे सिंह तिष्ठै, तथा पासीमें पड्या मृग तिष्ठै, तथा जैसे कर्दम में मग्न वृद्ध हस्ती, तैसे अन्यायकर्दममें मग्न होय रह्या है।

बहुरि नानाप्रकारके बन्धनकरि बन्ध्या बन्दीखानेमें जैसे चोर तिष्ठै, तथा व्याघ्रनिके बीचि बलरहित हरिण तिष्ठै, तथा पासीमें खेच्या जलचर जीव तिष्ठै, तिनकीनांई तिष्ठता प्राणी कामरूप बहुत अन्धकारके पटलकरि आच्छादित करिये है। तथा रागरूप महासर्पके जहरकरि लोक उपद्रवसहित वर्ते हैं—अचेत होय रहे हैं। तथा चितारूप डाकिनी ग्रासीभूत करे है। तथा शोकरूप ल्यालीकरि उपद्रवरूप होय है। तथा जामें क्रोधरूप अग्नि भस्म करे है। तथा आशारूप लताकरि प्राणीनिकूं बांधिये है। तथा इष्ट पुत्र स्त्री मित्रादिकके वियोगरूप वज्रपातकरि खंड करिये है। तथा वांछित का अलाभरूप बाणनिकरि बेधिये है। बहुरि मायारूप वृद्धस्त्री दृढ आलिंगन करे है। जहां तिरस्काररूप कुहाडेनितें विदारिये है, जहां अपयशरूप मलकरि लोपिये हैं, जहां मोहरूप वनहस्तीकरि घातिये है, जहां पापरूप शिकारी मारिकरि नीचें पटके है, जहां भयरूप लोहकी शलाकानिकरि व्यथा करिये है, जहां पश्चात्तापरूप काक दिनप्रति शब्द करे है, जहां ईर्षाकरि विरूपताकूं प्राप्त होइये है, जहां परिग्रहरूप पिशाच ग्रहण करे है।

बहुरि गृहवासमें तिष्ठतो पुरुष असंयमके सन्मुख होय है। तथा ईर्षारूप स्त्रीसूं प्यार करे है। तथा अभिमानरूप राक्षसका अधिपतिपणाकूं अनुभवे है। तथा विस्तीर्ण उज्ज्वल चारित्ररूप छत्रका सुखकूं नहीं प्राप्त होय है। तथा संसारके दुःखतें आत्माकूं नहीं रक्षा करिसके है। तथा कर्मका नाश करनेकूं नहीं समर्थ होय है। तथा मरणरूप विषके वृक्षकूं नहीं दग्ध करे है। तथा मोहरूप दृढ सांकलकूं नहीं तोडे है। तथा अनेक विचित्र योनिनिमें परिभ्रमणकूं नहीं निषेध करे है। इसप्रकार गृहवासके दोषनिकूं त्यागिकरि अर संयम ग्रहण करिकेहू अधम पुरुष विषयकषायके वशीभूत होय बहुरि परिग्रहादिक अंगीकार करे है; सो पूर्वे कहे अनर्थनिकूं अंगीकार करे है। गाथा—

बन्धणमुक्को पुनरेव बंधणं सो अचेयणोदीदि।
इन्दियकसायबंधणमुवेदि जो दिक्खिदो सन्तो ॥१३३४॥

अर्थ--जो दीक्षा ग्रहण करिकेहू इन्द्रियकषायके बन्धनकूं प्राप्त होय है, सो अज्ञानी बन्धनतें छूट्या हुवाहू बहुरि बन्धनकूं प्राप्त होय है। गाथा—

मुक्को वि णरो कलिणा पुणो वि तं चेव मग्गदि कलिं सो।
जो दिक्खिदो वि इन्दिय कसायमइयं कलिमुवेदि ॥१३३५॥

अर्थ--जो दीक्षित होयकरिकेहू इन्द्रियकषायमय कलहकूं प्राप्त होय है, सो कहा करे है? जैसे कोऊ पुरुष कलह करिके छूट्या हुवा बहुरि कलहहीकूं हेरे है! तैसे अनर्थ करे है। गाथा—

सो णिच्छदि मोत्तुं जे हत्थगयं उम्मुयं सपज्जलियं।
सो अक्कमदि कण्हसप्पं छादं वग्घं च परिमसदि ॥१३३६॥

सो कंठोल्लगिदसिलो दहमत्थाहं अदीदि अण्णाणी।
जो दिक्खिदो वि इन्दिय कसायवसिगो हवे साधू ॥१३३७॥

अर्थ--जो अज्ञानी साधु दीक्षित होयकरिकेहू इन्द्रियकषायके वशी होय है; सो हस्तमें प्राप्त हुवा जो प्रज्वलित अंगारा ताहि नहीं छांड्या चाहे है, अथवा कृष्णसर्पकूं ग्रहण करे है, अथवा क्षुधावान् व्याघ्रकूं आलिंगन करे है, तथा कंठ विषं शिला बांधि अगाधद्रहमें प्रवेश करे है। गाथा—

इन्द्रियगहोवनिट्ठो उवसिट्ठो ण दु गहेण उवसिट्ठो।
कुणदि गहो एयभवे दोसं इदरो भवसदेसु ॥१३३८॥

अर्थ—इन्द्रियरूप पिशाचकरि ग्रहण किया पुरुष गृहीत कहिये परवश है अर पिशाचकरि ग्रहण किया गृहीत नहीं है। जातें पिशाच तो एकभवमें दोष करे है–अनर्थ करे है, अर इन्द्रियनिके विषय संख्यात, असंख्यात, अनन्तभवनिमें अनर्थ करे हैं। गाथा—

होदि कसाउम्मत्तो उम्मत्तो तध ण पित्तउम्मत्तो ।
ण कुणदि पित्तुम्मत्तो पावं इदरो जधुम्मत्तो ॥१३३९॥

अर्थ—जैसे कषायनिकरि उन्मत्त मनुष्य उन्मत्त होय है, तैसे पित्तकरि उन्मत्त नहीं होय है। जैसे कषायनिकरि उन्मत्त पाप करे है, तैसे पित्तकरि उन्मत्त पाप नहीं करे है। जातें कषायनिकरि उन्मत्त तो हिंसादिकपापनिमें प्रवर्तन करे है अर कर्मनिकी स्थितिकूं दीर्घ करे है अर पापप्रकृतिनिमें अनुभाग बधावे है, अर पुण्यप्रकृतिनिमें अनुभाग घटावे है, ऐसे पित्तोन्मत्त अनर्थ नहीं करे है। गाथा—

इन्दियकसायमइओ णरं पिसायं करन्ति हु पिसाया ।
पावकरणवेलंबं पेच्छणयकरं सुयणमज्झे ॥१३४०॥

अर्थ—इन्द्रियकषायरूप पिशाच हैं ते पुरुषनें पिशाच करे हैं तथा पाप करनेमें विलम्ब नहीं करे हैं, तथा सुजनां के मध्य निंद्य करे हैं। गाथा—

कुलजस्स जस्समिच्छत्तगस्स णिधणं वरं खु पुरिसस्स ।
ण य दिक्खिदेण इन्दियकसायवसिएण जेदुं जे ॥१३४१॥

अर्थ—आपके यशकूं इच्छा करता अर महान् कुलमें उत्पन्न भया ऐसा पुरुषकूं मरण करना श्रेष्ठ है, परन्तु जिनेन्द्र की दीक्षा ग्रहण करिके इन्द्रियकषायके वशि होय जीवना श्रेष्ठ नहीं है। गाथा—

जध सण्णद्धो पग्गहिदचावकंडो रधी पलायन्तो ।
णिंदिज्जदि तध इन्दियकसायवसिगो वि पव्वज्जिदो ॥१३४२॥

अर्थ—जैसे ग्रहण कीया है धनुषबाण जानें अर सज्या हुवा ऐसा रथी जो महान् जोद्धा सो रणमें भागता संता निंद्यताकूं प्राप्त होय है, तैसे दीक्षा ग्रहण करिके अर इंद्रियकषायके वशवर्त्ती होय सो जगतमें निंद्यवेजोग्य होय है। गाथा—

जध भिक्ख हिंडन्तो मउडादि अलंकिदो गहिदसत्थो ।
णिंदिज्जइ तध इन्दियकसायवसिगो वि पव्वज्जिदो ।१३४३।

अर्थ—जैसे कोऊ मुकुटादिक आभरणकरि भूषित अर समस्तशस्त्रनिकूं ग्रहण कीये भिक्षाके निमित्त परिभ्रमण करे, ताकूं जगतमें निंदिये है; तैसे जिनेन्द्र दीक्षा ग्रहण करिकै अर इन्द्रियकषायनिके आधीन होय सो मुनि निंदा करने योग्य है । गाथा—

इन्दियकसायवसिगो मुंडो णग्गो य जो मलिणगत्तो ।
सो चित्तकम्मसमणोव्व समणरूवो असमणो हु ॥१३४४॥

अर्थ—जो मूंडहू मुंडाय अर नग्न होय अर मलिन शरीर स्नानादिक संस्काररहित मुनि होयकरिके इन्द्रिय-कषायनिके वश होय है, सो चित्रामका मुनिकीनांई मुनिकासा रूप है, तोऊ मुनि नहीं है । गाथा—

णाणं दोसे णासिदि णरस्स इन्दियकसायविजयेण ।
आउहरणं पहरणं जह णासेदि अरिं ससत्तस्स ॥१३४५॥

अर्थ—पुरुषके इन्द्रिय अर कषायका विजय करिके ज्ञान है सो दोषनिका नाश करे है, जो इन्द्रियकषायके विजय विना ज्ञानाभ्यासपणा है, तथा ज्ञानीपणा है, सो वृथा है । जैसे पराक्रमी जोद्धा के हस्तविषै मारनेवाला शस्त्र वैरीकूं मारे है अर कायरके हस्तमें शस्त्र वैरीनिका घात करनेमें समर्थ नहीं है । भावार्थ—ज्ञान है सो मिथ्यात्वादिक अनेक-दोषनिका नाश करनेवाला है, परन्तु विषयकषायके जीतनेवाला पुरुषके है । जैसे आयुध वैरीकूं मारे है, परन्तु शूरवीर के हाथि हुवा मारे है । गाथा—

णाणंपि कुणदि दोसे णरस्स इन्दियकसायदोसेण ।
आहारो वि हु पाणो णरस्स विससंजुदो हरदि ॥१३४६॥

अर्थ—मनुष्यके इन्द्रियनिके विषय अर कषायनिके दोषकरिके ज्ञानभी दोषनिकूं करे है । जैसे विषकरिके मिल्या सुन्दर आहारहू प्राणनिकूं हरे है । भावार्थ—यद्यपि ज्ञान पावना बहुत गुणकारक है, तथापि जो विषयकषायनिमें लीन

है ताके ज्ञानभी दोषही करेगा—विपरीत परिणमन करेगा, गुण नहीं करेगा । ज्ञान भावना तो मन्दकषायीके तथा विषय वांछारहितके गुणकारक है । गाथा—

णाणं करेदि पुरिसस्स गुणे इन्दियकसायविजयेण ।
बलरूववण्णमाऊ करेहि जुत्तो जधाहारो ॥१३४७॥

अर्थ—मनुष्यके ज्ञानहू इन्द्रियकषायका विजयकरिके गुणनिकूं करे है । जैसे योग्य आहार बल रूप तेज वर्ण आयुकूं विस्तीर्ण करे है । गाथा—

णाणं पि गुणे णासेदि णरस्स इन्दियकसायदोसेण ।
अप्पवधाए सत्थं होदि हु कापुरिसहत्थगयं ॥१३४८॥

अर्थ—जैसे कापुरुषका हस्तमें प्राप्त हुवा शस्त्र अपनेही मरणके अर्थि होत है, तैसे मनुष्यके इन्द्रियकषायनिके दोषकरिके ज्ञानाभ्यासहू गुणनिका नाश करनेवाला होय है । विषयनिका लम्पटी तीव्रकषायीका ज्ञान तीव्र बन्ध करे है । ज्ञानी होय निंद्यकर्म करै तिसका जगत् अपवाद करे है । गाथा—

सबहुस्सुदो वि अवमाणिज्जादि इन्दियकसायदोसेण ।
णरमाउधहत्थंपि हु मदयं गिद्धा परिभवन्ति ॥१३४९॥

अर्थ—जैसे आयुध है हस्तविषै जाके ऐसाहू मृतकमनुष्यका गृध्रपक्षी तिरस्कार करे है, तैसे बहुतश्रुतका धारकहू इन्द्रियकषायका योगकरिके अवज्ञा करिये है । भावार्थ—जो पुरुष बहुतश्रुतज्ञानका धारकहू होयकरिके अर इन्द्रियांका विषयांमें लंपटी होय है तथा कषायनिमें प्रवर्तन करे है, सो जगतमें सर्वप्रकारकरि तिरस्कारकूं प्राप्त होय है । जैसे मृतक मनुष्य शस्त्रधारकहू होय तोहू काकगृध्रादि निर्भय भया ताका मांसकूं चूंथे है । गाथा—

इन्दियकसायवसिगो बहुस्सुदो वि चरणे ण उज्जमदि ।
पक्खीव छिण्णपक्खो ण उप्पडदि इच्छमाणो वि ॥१३५०॥

अर्थ--इन्द्रियनिके विषय तथा कषायके वशीभूत हुवा बहुश्रुती पुरुषहू चारित्रमें उद्यम नहीं करि सके है। पापनितें भयकरि पापकूं त्याग्या चाहै, तोहू विषयनिका अनुरागतें कषायनिकी तीव्रतातें पापहीके मार्गमें प्रवर्तन करे है। जैसे जाकी पांखां छेदी गई ऐसा पक्षी उडनेकी इच्छा करे, तोहू नहीं उडि सके है। गाथा—

णस्सदि सगपि बहुगं पि णाणमिंदियकसायसम्मिस्सं।
विससम्मिसिददुद्धं णस्सदि जध सक्कराकढिदं ॥१३५१॥

अर्थ--इन्द्रियनिके विषय अर कषायसूं मिल्या हुवा बहुत बडा ज्ञानहू स्वयमेव नाशकूं प्राप्त होय है। जैसे मिश्री मिलाय अग्निपरि ओटाया दुग्धहू विषकरि मिल्या हुवा नष्ट होय है। गाथा—

इन्दियकसायदोसमलिणं णाणं ण वट्टदि हिदे से।
वट्टदि अण्णस्स हिदे खरेण जह चन्दणं ऊढं ॥१३५२॥

अर्थ— विषय अर कषायके दोषकरि मलिन ज्ञान है सो आपके हितविषें नहीं प्रवर्ते है। जैसे गर्दभकरि बह्या चन्दनका भार अन्यलोकनिकूं सुगन्धरूप करनेकरि अन्यके हितमें प्रवर्ते है अर आप तो भारही वहे है--आप सुगन्ध ग्रहण नहीं करे है। तैसेही विषयानुरागी तथा कषायी पुरुष ज्ञानका अभ्यास तथा व्याख्यानकरि अन्यलोकनिकूं धर्ममें प्रवर्तन कराय अन्यकी हितमें प्रवृत्ति करावे है। परन्तु आप विषयनिमें कषायनिमें अंधा हुवा अपने आत्माकूं तो नरक तिर्यंच-गतिविषेंही पटके है। गाथा—

इन्दियकसायणिग्गहणिमीलिदस्स हु पयासदि ण णाणं।
रत्तिं चक्खुणिमीलस्स जधा दीवो सुपज्जलिदो ॥१३५३॥

अर्थ--जैसे रात्रिके विषें दीपक समस्तवस्तुका प्रकाश करने वाला है, परन्तु जाका दोऊ नेत्र निमीलित होय रह्या ऐसा अन्धकूं दीपक कुछ दिखावनेमें समर्थ नहीं है। तैसे इन्द्रियनिके विषय अर कषाय जिसने नहीं निग्रह किया तथा विषयकरि हृदय जाका मुद्रित होय रह्या, ताके ज्ञान नहीं प्रकाश करे है—पदार्थनिकूं यथावत् नहीं दिखाय सके है। गाथा—

इन्दियकसायमइलो बाहिरकरणणिहुदंण वेसेण ।
आवहदि को वि विसए सउणो वीदंसगेणेव ॥१३५४॥

अर्थ--कोऊ बाह्य गमन आगमनादिक क्रियामें निश्चल साधुकासा आचरण करे है अर अन्तरंगमें इन्द्रियनिके विषय तथा कषायकरि मलिन हुवा विषयनिकूं वहे है सो ठिग है, साधु नहीं है। (सो पाशकरि बन्ध्या हुवा पक्षीकीनांई बन्ध्या जाय है।) गाथा--

घोडगलिंडसमाणस्स तस्स अब्भंतरम्मि कुधिदस्स ।
बाहिरकरणं किं से काहिदि बगणिहुदकरणस्स ॥१३५५॥

अर्थ--जैसे घोडेकी लादि बाह्य तो सचिक्कण दीखे है अर मांहि महादुर्गंध मलिन है, ताकी बाह्य उज्ज्वलताकरि कहा साध्य है ? तैसे जो साधु बाह्य नग्नता तथा शीत उष्णादिकपरीषहकी सहनता तथा अनशनादिक तप इनिकरि तो उज्ज्वल है अर अभ्यन्तर विषयनिकी इस लोक परलोकमें चाहना तथा अभिमानादिक कषायकरि मलीन है, ताका आचरण बुगलाकीनांई बाहिर इन्द्रियां रोकि राखी है अर अन्तरगमें दुष्टता है, ताका बाह्य व्रततपकरि कहा साध्य है ? वृथा है। गाथा--

बाहिरकरणविसुद्धी अब्भंतरकरणसोधणत्थाए ।
ण हु कुंडयस्स सोधी सक्का सतुसस्स कादुं जे ॥१३५६॥

अर्थ--बाह्यक्रियाकी शुद्धता है सो अभ्यन्तर विनयादिक तथा ध्यानादिककी शुद्धि ताके अर्थि होय है। जातें तुष सहित तन्दुलकी अभ्यन्तर लालो नहीं दूरि होय है। पहली तुष दूरि होयगा तदि अभ्यन्तर रक्तता दूरि होयगी। तैसे जाका बाह्य आचरण शुद्ध होयगा ताहोका अभ्यन्तर आत्मपरिणाम शुद्ध होयगा। तातें बाह्यप्रवृत्ति शुद्ध करि आत्माकी शुद्धता करो। गाथा--

अब्भंतरसोधीए सुद्धं णियमेण बाहिरं करणं ।
अब्भतरदोसेण हु कुणदि णरो बाहिरं दोसं ॥१३५७॥

अर्थ—अभ्यन्तर आत्मपरिणामकी शुद्धताकरि बाह्यक्रियाकी शुद्धता नियमकरिके होय है। अर अभ्यन्तरदोषकरिके पुरुष बाह्यदोषकूं नियमकरिके करेही है। गाथा—

लिंगं च होदि अब्भन्तरस्स सोधीए बाहिरा सोधी।

भिउडीकरणं लिंगं जह अन्तो जादकोधस्स ॥१३५८॥

अर्थ—या बाह्य शुद्धता है सो अभ्यन्तर शुद्धताका लिंग कहिये चिह्न है। जैसे जाके अभ्यन्तर क्रोध उपज्या होय, ताका भ्रकुटीका वक्र करना लिंग है। भावार्थ—जाकी भ्रकुटी टेढी बांकी चढी रही होय, ताके अन्तरंगमें क्रोध जान्या जाय है, तैसे बाह्यचिह्ननिकरि अभ्यन्तरपरिणाम जान्या जाय है। गाथा—

ते चेव इन्दियाणं दोसा सव्वे हवन्ति णादव्वा।

कामस्स य भोगाण य जे दोसा पुव्वणिद्दिट्ठा ॥१३५९॥

अर्थ—जे दोष पूर्वे काम के तथा भोगनिके कहे, तेही समस्त दोष इन्द्रियनि के विषयनितें होत हैं, ऐसे जानना योग्य है। गाथा—

महुलित्तं असिधारं तिक्खं लेहिज्ज जध णरो कोई।

तध विसयसुहं सेवदि दुहावहं इहहि परलोगे ॥१३६०॥

अर्थ—जैसे कोऊ मूढ नर सहतसूं लपेटी तीक्ष्ण खड्गकी धाराकूं आस्वादे है, तहां जीभ के स्पर्शमात्र तो मिष्टता, अर जीभ कटि गिर परै ताका महान् दुःख भोगे है। तैसे इस लोक में तथा परलोक में दुःख के बहने वाले विषयसुख ताकूं मूढ सेवन करे है!

सद्देण मअो रूवेण पदंगो वणगअो वि फरिसेण।

मच्छो रसेण भमरो गंधेण य पाविदो दोसं ॥१३६१॥

इदि पचहिं पंच हदा सद्दरसफरिसगंधरूवेहिं।

इक्को कहं ण हम्मदि जो सेवदि पंच पंचेहिं ॥१३६२॥

अर्थ—कर्ण इन्द्रियका विषय जो शब्द ताका श्रवणकरिकै मृग मारया जाय है। तथा रूपके अवलोकनकरिके पतंग दीपक में पडि मरे है। तथा स्पर्शन इन्द्रियका विषयकरिके वन का हस्ती बंधकू प्राप्त होय है। तथा जिह्वा इन्द्रिय के विषयकरिके जल के मत्स्य मत्स्यी मारे जाय हैं। तथा गंध के लोभकरिके भ्रमर कमल में मुद्रित होय मरे है। ऐसे पंच इन्द्रियनिकै शब्द रस स्पर्श रूप गंध ऐसे पंचविषयनिकरिके पांचू हते गये, तो एक पुरुष पांचू विषयनिकू सेवे सो कैसे नहीं हण्या जाय? गाथा—

सरजूए गंधमित्तो घाणिंदियवसपदो विणीदाए।
विसपुप्फगंधमग्घाय मदो णिरयं च संपत्तो ॥१३६३॥

अर्थ—विनीता नाम नगरी को पति गंधमित्र नामा राजा सरयूनदीके तटविषे विषका पुष्पका गंध सूंघिकरिके मरणकू प्राप्त होय नरककू प्राप्त भया। गाथा—

पाडलिपुत्ते पंचालगीदसद्देण मुच्छिदा सन्ती।
पासादादो पडिदा णट्ठा गंधव्वदत्ता वि ॥१३६४॥

अर्थ—पटणानगरविषे गंधर्वदत्ता नामा स्त्री पंचालगीत के श्रवणकरि अचेत भई संती महलतें पतनकरिके प्राणरहित होत भई। गाथा—

माणुसमंसपसत्तो कंपिल्लवदी तधेव भीमो वि।
रज्जब्भट्ठो णट्ठो मदो य पच्छा गदो णिरयं ॥१३६५॥

अर्थ—मनुष्य का मांस में आसक्त जो कांपिल्यनगर का स्वामी भीम नामा राजा राज्यते भ्रष्ट होय बहुरि मरणकू प्राप्त होय पाछै नरककू प्राप्त भया। गाथा—

चोरो वि तह सुवेगो महिलारूवम्मि रत्तदिट्ठीओ।
विद्धो सरेण अच्छीसु मदो णिरयं च संपत्तो ॥१३६६॥

अर्थ—तथा सुवेग नामा चोर स्त्री का रूप में दीई है दृष्टि जाने सो नेत्रनिविषे बाणकरि बेध्या हुवा मरिकरिके नरककूं प्राप्त भया। गाथा—

फासिंदिएण गोवे सत्ता गहवदिपिया वि णासक्के।
मारेदूण सपुत्तं धूयाए मारिदा पच्छा ॥१३६७॥

अर्थ—नासक्य नाम ग्रामविषै गृहपतिकी स्त्री स्पर्शन इन्द्रिय का विषयकरि गुवालमें आसक्त होय अर अपने पुत्रकूं मारिकरिके अर पीछै अपने पुत्री के प्रहारतै मरिकरिकै नरककूं प्राप्त भई। ऐसें इन्द्रियजनितदोषनिकूं दिखाय अब क्रोधकृतदोष पन्द्रह गाथानिकरि दिखावे हैं। गाथा—

रोसाइट्ठो णीलो हदप्पभो अरदिअग्गिसंसत्तो।
सीदे वि णिवाइज्जदि वेवदि य गहोवसिट्ठो वा ॥१३६८॥

अर्थ—रोषकरिकै व्याप्त पुरुष की कांति नील होजाय है, देहकी प्रभा नष्ट होजाय है, अर अरतिरूप अग्निकरि तप्तायमान भया शीतकालहू मै तप्त होय है, तृषावान् होय है, पिशाचकरि ग्रहण कीया ताकीनाई सर्व अंग कंपायममान होय है। गाथा—

भिउडीतिवलियवयणो उग्गदणिच्चलसुरत्तलुक्खक्खो।
कोवेण रक्खसो वा णराण भीमो णरो भवदि ॥१३६९॥

अर्थ—मनुष्य है सो कोपकरिकै भ्रकुटी चढाय त्रिवलीसहित मुखका धारक होय है, अर विस्तीर्ण-निश्चल-रक्त-रूक्ष-नेत्र होय है, मनुष्यनिके मध्य भयानक राक्षसकीनांई होय है। गाथा—

जह कोइ तत्तलोहं गहाय रुट्ठो परं हणामित्ति।
पुव्वदरं सो डज्झदि डहिज्ज व ण वा परो पुरिसो ॥१३७०॥

अर्थ—जैसें कोऊ क्रोधी तप्तलोहकूं ग्रहण करिकै कहै——मै परकूं हणूं हूं, सो पूर्व आप दग्ध होय है ! पाछै परपुरुष दग्ध होय वा नहीं होय। पर तांई पहुंचेगा वा नहीं पहुँचेगा, परंतु तप्तलोहकूं ग्रहण करनेवाला तो पहली दग्ध होयही है। गाथा—

तध रोसेरा सयं पुव्वमेव डज्झदि हु कलकलेरोव ।

अण्णस्स पुरो दुक्खं करिज्ज रुट्ठो रा य करिज्जा ।।१३७१।।

अर्थ—तैसे ही क्रोधी ताया हुवा लोह के समान रोषकरिके पूर्वे आपकू दग्ध करे है, पीछे अन्य के दुःख करे वा नहीं करे । गाथा–

रणासेदूरा कसायं अग्गी रणासदि सयं जधा पच्छा ।

रणासेदूरा तध रारं रिगरासवो रास्सदे कोधो ।।१३७२।।

अर्थ—जैसे अग्नि इंधनकू नाश करिके पीछे स्वयमेव अपना नाशकू प्राप्त होत है—बुझे है, तैसे क्रोध जीवका ज्ञानदर्शनसुखादिक का नाश करि पाछे आत्माकू निगोद पहुँचाय आप नष्ट होय है । गाथा–

कोधो सत्तुगुराकरो रगीयारणं अप्परगो य मण्रगुकरो ।

परिभवकरो सवासे रोसे रणासेदि रगरमवसं ।।१३७३।।

अर्थ—क्रोध है सो शत्रूनिके गुराकाररगक है । जाते जो क्रोधी होयगा सो सहज ही मारचा जायगा, इसलोक परलोक में दुःख का अकीर्तिका पात्र होयगा, ताते शत्रूनिके गुराकारक है । अर अपने बांधवनिके तथा आपके शोक करनेवाला होय है । अपने स्थान में तिरस्कार करनेवाला है । यो रोष मनुष्यकू परवश जैसे होय तैसे नाश करे है ।

रग गुरो पेच्छदि अववददि गुरो जंपदि अजंपिदव्वं च ।

रोसेरा रुद्दहिदओ रणारगसीलो रगरो होदि ।।१३७४।।

अर्थ—यो मनुष्य क्रोधकरि के गुरानिकू नहीं देखे है अर गुरानिकाहू अपवाद करे है, अर नहीं बोलनेजोग्य बोले है । रोषकरिके रौद्रहृदय हुवा नारकीकासा स्वभाव होय है ।

जध करिसयस्स धण्णं वरिसेरा समज्जिदं खलं पत्तं ।

डहदि फुलिंगो दित्तो तध कोहग्गी समरासारं ।।१३७५।।

अर्थ—जैसे खेती करनेवाला किसाणका एक वर्षपर्यंत महाकष्टकरि संचय कीया धान्य खला में प्राप्त भया ताकूं अग्निका एक फुलिंगा दग्ध करे है, तैसें क्रोधरूप अग्नि बहुतकाल का संचय कीया साधुपणारूप सारवस्तु ताहि क्षणमात्र में दग्ध करे है ।

जध उग्गविसो उरगो दब्भतणंकुरहदो पकुप्पंतो ।

अचिरेण होदि अविसो तप होदि जदी वि णिस्सारो ।१३७६।

अर्थ—जैसे उत्कटविषका धारक सर्प डाभ के वा तृणनिके अंकुरेनिकरि हत्या हुवा क्रोधकरि कोप करता तृणनि ऊपरि फण पटकता थोरा काल में निर्विष होय है,- शक्तिरहित होय है, तैसें क्रोध करता साधुहू धर्मरहित हुवा निःसार होय है । गाथा–

पुरिसो मक्कडसरिसो होदि सरूवो वि रोसहदरूवो ।

होदि य रोसणिमित्तं जम्मसहस्सेसु य दुरूवो ।।१३७७।।

अर्थ— सुंदर रूपवान् पुरुषहू रोषकरिके हण्या जाय है रूप जाका सो मर्कटसमान लालमुख अर विपरीत आकृतिकूं प्राप्त होय है । बहुरि क्रोध करने तें आगामी हजारां लाखां कोट्यां जन्मपर्यंत कुरूप होय है । गाथा–

सुठ्ठु वि पिओ मुहुत्तेण होदि वेसो जणस्स कोधेण ।

पधिदो वि जसो णस्सदि कुद्धस्स अकज्जकरणेण ।।१३७८।।

अर्थ—आपका अत्यंत प्यारा भी होय सोहू क्रोधकरिके जनांके एकमुहूर्त में वैर करनेयोग्य होय है । क्रोधी पुरुष अकार्य करनेकरिके विख्यातहू अपना जसकूं नाश करे है ।

णीयल्लगो वि कुद्धो कुणदि अणीयल्ल एव सत्तू वा ।

मारेदि तेंहि मारिज्जदि वा मारेदि अप्पाणं ।।१३७९।।

अर्थ—क्रोधी पुरुष आपके पुत्रबांधवादिक निज जे हैं तिननेंहू तथा अनिज जे पर जे हैं तिननेंहू शत्रुकीनांई मारे है, अथवा तिनकरिके आप मारया जाय है, तथा आपही आपकूं मारे है । गाथा–

पुज्जो वि णरो अवमाणिज्जदि कोवेण तक्खणे चेव ।

जगविस्सुदं वि णस्सदि माहप्पं कोहवसियस्स ॥१३८०॥

अर्थ—पूज्यहू मनुष्य कोपकरिकें तोंहीं क्षण में अवज्ञा करने योग्य होय है । क्रोध के वशीभूत जो है ताका जगत में विख्यातहू माहात्म्य है सो नाशकूं प्राप्त होय है ।

हिंसं अलियं चोज्जं आचरदि जणस्स रोसदोसेण ।

तो ते सव्वे हिंसालियचोज्जसमुब्भवा दोसा ॥१३८१॥

अर्थ—रोषके दोषकरिके हिंसा करे है, असत्य बोले है, चोरी करे है । तातें ते हिंसा अलोकवचनादिक दोष सर्व क्रोधी के होय हैं । गाथा—

वारवदीय असेसा दड्ढा दीवायणेण रोसेण ।

बद्धं च तेण पावं दुग्गदिभयबन्धणं घोरं ॥१३८२॥

अर्थ—द्वीपायनमुनि रोषकरिके समस्त द्वारावती नगरी दग्ध करी । अर क्रोधकरिके दुर्गति के भयकूं कारण ऐसा, अर घोर पापका बंध कीया ।

ऐसें अनुशिष्टि अधिकारविषै पद्रहगाथानिकरि क्रोधका वर्णन कीया । अब सात गाथानिकरि मानकषाय के दोष कहे है । गाथा—

कुलरूवाणाबलसुदलाभिस्सरयत्थमदितवादीहिं ।

अप्पाणमुण्णमेंतो नीचागोद कुणदि कम्म ॥१३८३॥

अर्थ—कुल, रूप, आज्ञा, बल, श्रुतलाभ, ऐश्वर्य, बुद्धि, तपादिकका मदकरि आत्माकूं ऊंचा मानता पुरुष नीचगोत्रनामकर्मकूं बांधे है । गाथा—

दठ्ठूण अप्पणादो हीणे मुक्खाउ विंति माणकलिं ।

दठ्ठूण अप्पणादो अधिए माणं ण यन्ति बुधा ॥१३८४॥

अर्थ--मूर्ख पुरुष है ते आपतें हीन लोकनिकूं देखिकरिकें मानरूप कालिमाकूं बहे हैं। अर ज्ञानी जन हैं ते आपतें अधिक पुरुषनिकूं देखिकरिके अभिमानकूं नहीं प्राप्त होय हैं।

माणी विस्सो सव्वस्स होदि कलहभयवेरदुक्खाणि ।
पावदि माणी णियद इहपरलोए य अवमाणं ।।१३८५।।

अर्थ—अभिमानी पुरुष समस्त लोकनिके वैर द्वेष करने योग्य होय है। बहुरि अभिमानी पुरुष इस लोकमें कलह भय वैर दुःखनिकूं प्राप्त होय है, अर परलोक में निश्चयथकी अनेकभवनिमें अपमानकूं प्राप्त होय है। गाथा—

सव्वे वि कोहदोसा माणकसायस्स होदि णादव्वा ।
माणेण चेव मेधुणहिंसालियचोज्जमाचरदि ।।१३८६।।

अर्थ— पूर्वे कहे जे समस्त क्रोध के दोष, ते मानकषाय के धारकहूके होय हैं—ऐसे जाननेयोग्य है। अभिमानकरिके हो मैथुन, हिंसा, असत्य, चौर्य इत्यादिक पापनिकूं आचरे है।

सयणस्स जणस्स पिओ णरो अमाणी सदा हवदि लोए ।
णाणं जसं च अत्थं लभदि सकज्ज च साहेदि ।।१३८७।।

अर्थ—मानरहित विनयवान् पुरुष लोक में स्वजन अर परजन तिनके सदाकाल प्रिय होय है। मानरहित विनयवान् पुरुष जो है, सो ज्ञान अर जस अर अर्थकूं प्राप्त होय है, ज्ञान अर जस उपार्जन करे है, इस लोक परलोक में अर्थ उपार्जन करे है—अपने कार्यकूं साधे है। गाथा—

ण य परिहायदि कोई अत्थे मउगत्तणे पउत्तम्मि ।
इह य परत्त य लब्भदि विणएण हु सव्वकल्लाणं ।।१३८८।।

अर्थ—मार्दव जो कोमलपणा तिसकरि युक्त होते संते कोऊ पुरुषहू अपना अर्थ के नाशकूं नहीं प्राप्त होय है। भावार्थ—मार्दवगुणयुक्त पुरुषका कोऊ प्रयोजन तथा धन बड़ापणा नहीं घटे है। विनयकरिके इस लोक परलोक में सर्वकल्याणकूं प्राप्त होय है।

सट्ठि साहस्सीओ पुत्ता सगरस्स रायसीहस्स ।

अदिवलवेगा सन्ता णट्ठा माणस्स दोसेण ॥१३८६॥

अर्थ—अभिमानका दोषकरिकें सगर नामा चक्रवर्तिका साठि हजार पुत्र अतिबलका गर्व बहोत था, ते गर्वकरिके नष्ट होते भये ।

ऐसे सात गाथानिकरि मानकषायका स्वरूप कह्या । अब मायाचारकूं सात गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

जध कोडिसमिद्धो वि ससल्लो ण लभदि सरीरणिव्वाणं ।

मायासल्लेण तहा ण णिव्वुदिं तव समिद्धो वि ॥१३९०॥

अर्थ—जैसे कोटीधन का धनी पुरुषहू जो शल्यकरि सहित होय सो शरीरके सुखकूं नहीं प्राप्त होय है, तैसे मायाशल्यसहित पुरुष तपकरि सहितहू निर्वाणकूं नहीं प्राप्त होय है ।

होदि य वेस्सो अप्पच्चइदो तध अवमदो य सुजणस्स ।

होदि अचिरेण सत्तू णीयाणवि णियडिदोसेण ॥१३९१॥

अर्थ—एक मायाचार जो कपट ताके दोषकरिके समस्त स्वजनांके द्वेष करने योग्य होय है । मायाचारतें अपने समस्त स्वजन मित्र बैरी होइ हैं । तथा कपटी प्रीति करनेयोग्य नहीं होय है, तथा स्वजनांके मध्यहू अवज्ञा करने योग्य, तिरस्कार करने योग्य होय है, अर थोरे कालमें आपके निज जे मित्रादिक तिनहूका मायाचारी शत्रु होजाय है ।

पावइ दोसं मायाए महल्लं लहु सगावराधेवि ।

सच्चाण सहस्साण वि माया एक्का वि णासेदि ॥१३९२॥

अर्थ—अत्यंत अल्प अपराधीहू मायाचारकरि शीघ्र ही महान् दोषकूं प्राप्त होय है । एकही मायाचार हजारां सत्यनिका नाश करे है । गाथा—

मायाए मित्तभेदे कदम्मि इधलोगिगच्छपरिहाणी ।

णासदि मायादोसा विसजुददुद्धंव सामण्णं ॥१३९३॥

अर्थ—मायाचारकरिके मित्रभेद होते संते इस लौकिक अर्थकी परिहानि होय है। अर मायाचाररूप दोषतें विष-सहित दुग्धकीनांई श्रमणपणा नाशकूं प्राप्त होय है। भावार्थ-जहां मायाचार तहां मित्रता है ही नहीं, मायाचार प्रकट हुवा पीछें बहुतकालकी मित्रताहू क्षणमात्र में नष्ट होय है, अर मायाचारीका व्यवहारही मलिन होजाय, तदि परमार्थ-धर्मरूप साधुपणा तो जैसे विषकरि दुग्ध विनसे है, तैसे नाशकूं प्राप्त होय है।

माया करेदि णीचागोदं इच्छी णवुंसयं तिरियं।

मायादोसेण य भवसएसु डंभिज्जदे बहुसो ॥१३६४॥

अर्थ—मायाचारकरिकें नीचगोत्रका बंध होय है, तथा स्त्रीपणा, नपुंसकपणा, तिर्यंचपणा बहुतभवनिमैं होय है, तथा मायाचाररूप दोषकरिके बहुतबार सैकड़ा भवनिमै परकरिके ठिग्या जाय है। गाथा—

कोहो माणो लोहो य जत्थ माया वि तत्थ सण्णिहिदा।

कोहमदलोहदोसा सव्वे मायाए ते होंति ॥१३६५॥

अर्थ—जहां मायाचार है तहां क्रोध, मान, लोभ ये सर्व निकटवर्ती हैं। क्रोध, अभिमान, लोभ ये समस्तदोष मायाचारकरि प्रकट होय हैं। गाथा—

सस्सो य भरधगामस्स सत्तसंवच्छराणि णिस्सेसो।

दढ्ढो डंभणदोसेण कुम्भकारेण रुट्ठेण ॥१३६६॥

अर्थ--रोषकूं प्राप्त भया जो कुम्भकार सो कपटका दोषकरिके भरतग्राम का समस्त धान्य सप्तवर्षपर्यंत दग्ध कीयो! ऐसे मायाचारका दोष सप्तगाथा मै वर्णन कीया अब लोभकषायकूं छह गाथानिकरि वर्णन करे हैं। गाथा—

लोभेणासाधत्तो पावइ दोसे बहुं कुणदि पावं।

णीए अप्पाणं वा लोभेण णरो ण विगणेदि ॥१३६७॥

अर्थ—लोभकरिके आशाकरिकै ग्रस्या प्राणी बहुत दोषनिनै प्राप्त होय है। अर लोभकरिके बहुत पाप करे है। अर लोभ करिकै अपने स्वजन बांधव मित्रनिकूं नहीं गिणै है, अपना लोभ ही साध्या चाहे है। अर लोभकरिके अपना आत्मा मैं आवता मरण, दुःख, विपत्ति नहीं गिणै है। लोभीकूं आपका तथा परका दोऊका चेत नहीं रहे है। गाथा—

लोभो तणे वि जादो जणेदि पावमिदरत्थ किं वच्चं ।
लगिदमउडादिसंगस्स वि हु ण पावं अलोहस्स ॥१३६८॥

अर्थ—तृणहूमै उत्पन्न भया लोभ पापकूं उपजावे है, तो अन्यवस्तुमै कीया लोभ जो पाप उपजावे है, ताका कहा कहना ? अर जो लोभरहित पुरुष मुकुटादि आभरणसहित है तोऊ पापकूं नहीं प्राप्त होय है। लोभी के समता-संतोष नहीं होय है। जातें लोभ तो शरीर धन धान्यादिक मे अहंकार-ममकारबुद्धि है। अर जाके परवस्तुमें मूर्च्छा ममताबुद्धि नहीं है ताके पापबंधहू नहीं है। गाथा-

साकेदपुरे सीमन्धरस्स पुत्तो मिगद्धवो णाम ।
भद्दयमहिसणिमित्तं जुवराजो केवली जादो ॥१३६९॥

अर्थ—साकेतपुरविषें सीमंधरका पुत्र मृगध्वज नामा युवराज भद्रमहिषी के निमित्त केवली होतो हुवो। इसकी कथा ग्रंथांतरतें जाननी। गाथा-

तेलोक्केण वि चित्तस्स णिव्वुदी णत्थि लोभघत्थस्स ।
संतुट्ठो हु अलोभो लभदि दरिद्दो वि णिव्वाणं ॥१४००॥

अर्थ—लोभकरिके जाका चित्त व्याप्त भया ताके त्रैलोक्यका राज्यकरिकेहू तृप्ति नहीं आवे है-सुखी नहीं होय है। अर लोभरहित संतोषी दरिद्री है--धनरहित है, तोहू निर्वाण जो सुख ताकूं प्राप्त होय है। गाथा--

सव्वे वि गंथदोसा लोभकसायस्स हुंति णादव्वा ।
लोभेण चेव मेहुणहिंसालियचोज्जमाचरदि ॥१४०१॥

अर्थ—लोभकषायका धारकके सर्वही परिग्रहसबधी दोष होय हैं-ऐसे जनना। लोभकरिकेही मैथुन, हिंसा, असत्य, चौरीकूं आचरण करे है। गाथा-

रामस्स जामदग्गिस्स वजं घित्तूण कत्तविरिओ वि ।
णिधणं पत्तो सकुलो ससाहणो लोभदोसेण ।।१४०२।।

अर्थ—एक लोभका दोषकरिके रामको तथा यामदग्न्यको वस्त्र ग्रहणकरिके कार्तवीर्य नामा कोऊ अपना कुल-सहित तथा सेनासहित मरणकूं प्राप्त भया । इसकी कथा प्रथमानुयोग के ग्रंथनितें जानना ।

ऐसें छह गाथानिमैं लोभका वर्णन कीया । अब सामान्य इन्द्रियकषायनिका स्वरूप सत्ताईस गाथानिमै वर्णन करे हैं । गाथा–

ण हि तं कुणिज्ज सत्तू अग्गी बग्घो व किण्हसप्पो वा ।
जं कुणइ महादोसं णिव्वुदिविग्घं कसायरिवू ।।१४०३।।

अर्थ—जो कषायरूप बैरी निर्वाणमें विघ्न अर महादोष करे है, सो दोष बैरी नहीं करे है, अग्नि नहीं करे है, व्याघ्र नहीं करे है, कृष्णसर्प नहीं करे है । बैरी तो एक जन्म दुःख दे है, अग्नि एकवार दग्ध करे है, व्याघ्र एकबार भक्षण करे है, कृष्णसर्प एकबार डसे हैं, अर कषाय अनंतजन्म दुःख देनेवाले हैं ।। गाथा–

इन्दियकसायदुद्दन्तस्सा पाडेंति दोसविसमेसु ।
दुःखावहेसु पुरिसे पसढिलणिव्वेदखलिया हु ।।१४०४।।

अर्थ—इन्द्रिय अर कषायरूप दुर्दम अश्व कहिये अशिक्षित घोडे जिनकी वैराग्यरूप लगाम शिथिल होगई ते घोडे पुरुषनिनें दुःख के वहनेवाले पापरूप विषम स्थाननि में पटके हैं । गाथा–

इन्दियकसायदुद्दन्तस्सा णिव्वेदखलिणिदा सन्ता ।
ज्झाणकसाए भीदा ण दोसविसमेसु पाडेन्ति ।।१४०५।।

अर्थ—इन्द्रियकषायरूप दुर्दम अश्व वैराग्यरूप लगामकरि वशीभूत किये संते अर ध्यानरूप चाबुककरि भयवान् भये, पुरुषनिनें दोषरूप विषमस्थाननिमै नहीं पटकत हैं ।

इन्दियकसायपण्णगदठ्ठा बहुवेदणुद्दिदा पुरिसा ।
पब्भट्टझाणसुक्खा संजमजीवं पविजहन्ति ॥१४०६॥

अर्थ—इन्द्रिय और कषायरूप सर्पकरि डस्या अर बहुतवेदनाकरि व्याप्त भया अर भ्रष्ट हुवा है ध्यानरूप सुख जिनका ऐसे पुरुष संयमरूप जीवका त्याग करे हैं–छांडे हैं ।

ज्झाणागदेहिं इन्दियकसायभुजगा विरागमन्तेहिं ।
णियमिज्जन्ता संजमजीवं साहुस्स ण हरन्ति ॥१४०७॥

अर्थ—ध्यान रूप वैद्य हैं ते वैराग्यरूप मंत्रकरिके रोके हुये जे इन्द्रियकषायरूप सर्प ते साधुका संयमरूप जीवकूं नहीं हरे है--नहीं घाति सके हैं ॥ गाथा--

सुमरणपुंखा चिंतावेगा विसयविसलित्तरइधारा ।
मणधणुमुक्का इन्दियकंडा विंधन्ति पुरिसमयं ॥१४०८॥

अर्थ—संसारविषै इन्द्रियरूप बाण पुरुषरूप मृगकूं घाते हैं । बाणके पांख होय हैं, इन्द्रियरूप बाणके विषयनकूं स्मरण करना सोही पांख हैं । अर चिंतारूप वेगकूं धारे हैं । अर विषयरूप विषकरि लिप्त हैं । अर जिनके रति जो आसक्तता सोही धार है । अर मनरूप धनुषकरि छूटे हैं । ऐसे इन्द्रियबाण जीवरूप मृगका घात करे हैं । गाथा—

धिदिखेडएहिं इन्दियकंडे ज्झाणवरसत्तिसंजुत्ता ।
फेडन्ति समणजोहा सुणाणदिठ्ठीहिं दठ्ठूण ॥१४०९॥

अर्थ—ध्यानरूप श्रेष्ठशक्तिकरिके संयुक्त जे श्रमणरूप जोधा ते इन्द्रियरूप बाणनिकूं सम्यग्ज्ञानरूप दृष्टिकरि देखिकरिके धैर्यरूप खेट नाम आयुधकरिके छेदे हैं–रोके हैं । भावार्थ–ये इन्द्रियनिके विषयरूप बाण जिनके लागे हैं, तिनका ज्ञानसंयमादिरूप प्राण नष्ट होय निगोदमें जाय परे हैं । यातैं साधुरूप जोधा सांची ज्ञानदृष्टितैं विषयरूप बाणनिकूं अपने घात करनेवाले देखिकरिके धैर्यरूप आयुधकरि छेदे हैं–आपके लागने नहीं दे हैं । गाथा—

गंथाडवीचरन्तं कसायविसकंटया पमायमुहा ।

विंधन्ति विसयतिक्खा अधिदिदढोवाणहं पुरिसं ॥१४१०॥

अर्थ—परिग्रहरूप गहनवनोमें कषायरूप विषके कांटे बिखरि रहे हैं । कैसेक हैं विषयरूप विषके कांटे ? प्रमादरूप जिनके मुख हैं, अर विषयनिकी चाहनारूप तिनकी तीक्ष्ण अणी है, ऐसी विषयरूपकंटकनिकी भरी परिग्रहवनीमें धैर्यरूप पगरखीरहित जो पुरुष प्रवेश करे है, सो कषायरूप विषकंटकनिकरि बेधे हुये मरणकरि दुर्गतिकूं प्राप्त होय हैं । गाथा—

आबद्धधिदिदढोवाणहस्स उवओगदिठ्ठिजुत्तस्स ।

ण करिन्ति किंचि दुक्खं कसायविसकटया मुणिणो ॥१४११

अर्थ—पहरी है धैर्यरूप पगरखो जानैं, अर उपयोगकी शुद्धतारूप दृष्टिकरि संयुक्त जो मुनि, ताके कषायरूप विषके कांटे किंचिन्मात्रहू दुःख नहीं करे हैं । गाथा—

उड्डुहणा अदिचवला अणिग्गहिदकसायमक्कडा पावा ।

गंथफललोलहिदया णासन्ति हु संजमारामं ॥१४१२॥

अर्थ—जे पुरुष असंजमी है, अर अतिचपल जिनका मन है, अर पापरूप जिनकी प्रवृत्ति है, अर जिनने कषायरूप मर्कटका निग्रह नहीं किया, अर परिग्रहरूप फलमें जिनका मन लोलुपी है, ते पुरुष सजमरूप बागका विध्वंस करे हैं । बहुरि अनन्तकालमें ताकूं संजम दुर्लभ होय है । गाथा—

णिच्चं पि अमज्झत्थे तिकालविसयाणुसरणपरिहत्थे ।

संजमरज्जूहिं जदी बन्धन्ति कसायमक्कडए ॥१४१३॥

अर्थ—जती हैं ते संजमरूप रज्जूकरिके कषायरूप मर्कटनिकूं बांधत हैं । कैसेक हैं कषायरूप मर्कट ? मध्यस्थ नहीं हैं, निरन्तर चपल हैं । बहुरि कैसेक हैं कषायमर्कट ? भूत-भविष्यद्वर्तमानकालमें दोषनिकूं प्राप्त होनेमें प्रवीण हैं । ऐसे कषायरूप मर्कटनिकूं दिगम्बर जतीही संजमरूप रस्सेनकरि बांधनेकूं समर्थ हैं, अन्य नहीं हैं । गाथा—

धिदिवम्मिएहिं उवसमसरेहिं साधूहिं णाणसत्थेहिं ।
इन्दियकसायसत्तू सक्का जुत्तेहिं जेदुं जे ॥१४१४॥

अर्थ—धैर्यरूप बगतर, अर उपशमभावरूप बाण, अर ज्ञानरूप शस्त्रनिकरि युक्त जे साधु, ते इन्द्रियकषायरूप शत्रु जीतिवेकूं शक्य होय हैं। गाथा—

इन्दियकसायचोरा सुभावणासंकलाहिं वज्झन्ति ।
ता ते ण विकुव्वन्ति चोरा जह संकलाबद्धा ॥१४१५॥

अर्थ—ये इन्द्रिय अर कषायरूप चोर सुन्दरभावनारूप सांकलनिकरि बांधिये तो ते विकार नहीं करे, जैसे दृढ सांकलनिकरि बांध्या चोर विकार नहीं करे। गाथा—

इन्दियकसायवग्घा संजमणरघादणे अदिपसत्ता ।
वेरग्गलोहदढपंजरेहिं सक्का हु णियमेदुं ॥१४१६॥

अर्थ—संयमरूप मनुष्यका घात करनेमें अति आसक्त ऐसे इन्द्रियकषायरूप व्याघ्र हैं, ते वैराग्यरूप लोहके दृढपंजर करिके रोकिबेकूं शक्य होइये हैं। जैसे मनुष्यनिका घात करनेमें आसक्त ऐसा व्याघ्र पींजरे विना रोकनेकूं नहीं शक्य होइए है। तैसे इन्द्रियकषाय तो व्याघ्र हैं, अर संजमरूप मनुष्यका घात करे हैं, सो ऐसे इन्द्रियकषाय व्याघ्र वैराग्यरूप पिंजरेनि विना कैसे रोके जाय? गाथा—

इन्दियकसायहत्थी वयवारिमदीणिदा उवायेण ।
विणयवरत्ताबद्धा सक्का अवसा वसे कादुं ॥१४१७॥
इन्दियकसायहत्थी वोलेदुं सीलफलियमिच्छन्ता ।
धीरेहिं रुंभिदव्वा धिदिजमलारुप्पहारेहिं ॥१४१८॥
इन्दियकसायहत्थी दुस्सीलवणं जदा अहिलसेज्ज ।
णाणंकुसेण तइया सक्का अवसा वसं कादुं ॥१४१६॥

अर्थ--इन्द्रियकषायरूप हस्ती है ते उपायकरिके व्रतरूप आगलकीभूमिनैं प्राप्त किये अर विनयरूप बरत्रा जो गजबन्धनी करिके बन्धे हुये पहली कहींके वश नहीं थे, तेहू वश करनेकूं शक्य होइये हैं। भावार्थ--जैसे मदोन्मत्त हस्ती कहींके वश नहीं, तेहू कोऊ उपायकरिके आगलका स्थानमें प्रवेश कराय वस्त्राकरिके बांधि दे, तदि बशि होय है। तैसे ये इन्द्रिय अर कषाय तो मदोन्मत्त हस्ती हैं, अर व्रत हैं ते आगलके स्थान हैं अर विनयरूप बरत्रा है, सो व्रतकी आगलमें आये जे विनयसूं बन्धि जाय तदि इन्द्रियकषाय बश होयही हैं।* गाथा--

जदि विसयगंधहत्थी अदिणिज्जदि रागदोसमयमत्ता।
चिट्ठिदुणज्झाणजोहस्स वसे णाणंकुसेण विणा ॥१४२०॥
विसयवणरमणलोला बाला इन्दियकसायहत्थी ते।
पसमे रामेदव्वा तो ते दोसं ण काहिन्ति ॥१४२१॥

अर्थ--जो मनरूप गन्धहस्ती स्वयमेव परिग्रहरूप वनीमे प्रवेश करे है, रागद्वेषरूप मदकरिके उन्मत्त होय रह्या है, ज्ञानरूप अकुशविना ध्यानरूप जोद्धा के वशीभूत हुवा नहीं तिष्ठे है, तेतैं ये विषयरूप वनमें रमणके लोलपी ऐसे इन्द्रिय कषायरूप बालहस्ती तिनकूं प्रशमभाव जो वीतरागभाव तिसमें रमावना योग्य है। जो इन्द्रियकषाय प्रशमभावमें लीन हो जाय, तो संसारपरिभ्रमणके कारण ऐसे अनर्थ नहीं करे। भावार्थ—हे भव्य! रागद्वेषकरि सहित यो आत्मा अंग-पूर्वनिके ज्ञानविना जितने शुक्लध्यानमें लीन नहीं होय, तितने इन्द्रियकषायनिकूं समभावमें लीन करना उचित है। गाथा—

सद्दे रूवे गन्धे रसे य फासे सुभेय असुभे य।
तम्हा रागद्दोसं परिहर तं इन्दियजएण ॥१४२२॥

अर्थ—तातैं, भो मुने! इन्द्रियनिके विजयकरिके शुभ और अशुभ जे शब्द और रूप तथा गन्ध तथा रस और स्पर्श इनमें रागद्वेष का त्याग करहु। गाथा--

---

नोट—* गाथा संख्या १४१८-१४१६ पं० सदासुखजी की प्रति में नहीं है। अन्य प्रतियों में है। इनका अर्थ हिन्दी टीकाकार पं० जिनदास फडकुले ने इस प्रकार किया है—इन्द्रियकषाय रूपी हाथी जब शीलरूपी अर्गला को उल्लंघने की अभिलाषा धारण करते हैं तब धीर पुरुष उनको संतोष रूपी कर्ण प्रहारों से वश करते है। १४१८॥ इन्द्रियकषायरूपी हाथी जब दुःशीलरूप बनमे प्रवेश करने को इच्छा करता है तब भेदज्ञान रूप अंकुश से अवश होने पर भी वश होजाता है। —संपादक

जह णोरसं पि कडुयं श्रोसहं जीविदत्थिश्रो पिबदि ।
कडुयं पि इन्दियजयं णिव्वुइहेदुं तह भजेज्ज ॥१४२३॥

अर्थ--जैसे जीवनेका अर्थी जो रोगी, सो नीरस अर कटुकहू श्रौषधकूं पीवेही है, तैसे अनन्तजन्ममरणका अभाव करने का अर्थी जो ज्ञानी, सो कटुकहू इन्द्रियनिका विजयकूं निर्वाणके अर्थि अंगीकार करे है । यद्यपि संसारी मोही जीवनिके विषयनिका त्याग करना अतिविषम है, तथापि ज्ञानी क्षणमात्रमें त्यागे है । गाथा--

जे श्रासि सुभा एण्हिं असुभा ते चेव पुग्गला जावा ।
जे श्रासि तदा असुभा ते चेव सुभा इमा इण्हिं ॥१४२४॥

अर्थ--जे पुद्गल इस वर्तमानकालमें शुभ दीखे हैं, तेही पुद्गल पूर्वे अनन्तभवनिमें दुःख देने वाले अशुभ भये हैं । अर जे पुद्गल इस वर्तमानकालमें अशुभ दीखे हैं, तेही पूर्वे अनन्तवार सुखकारी शुभ भये हैं । गाथा--

सव्वे वि य ते भुत्ता चत्ता वि य तह श्राणंतखुत्तो मे ।
सव्वेसु एत्थ को मज्झ विंभश्रो भुत्तविजढेसु ॥१४२५॥

अर्थ--सर्वप्रकारके पुद्गलद्रव्य अनन्तवार आहार-शरीर-इन्द्रियरूप परिणमन करायकरि भोगे अर अनन्तवार त्यागे, ऐसे सर्वपुद्गल, तिनके ग्रहणत्यागमें कहा विस्मय है ? गाथा--

रूवं सुभं च असुभं किंचि वि दुक्खं सुहं च ण य कुणदि ।
संकप्पविसेसेण हु सुहं च दुःखं च होइ जए ॥१४२६॥

अर्थ--शुभ रूप अर अशुभ रूप जीवके किंचित्हू सुख दुःख नहीं करे है, रूपकूं देखि संकल्पविशेषकरिके जगतमें सुख दुःख होय है । गाथा--

इह य परत्त य लोए दोसे वहुगे य श्रावहइ चक्खू ।
इदि अप्पणो गणित्ता णिज्जेदव्वो हवदि चक्खू ॥१४२७॥

अर्थ--नेत्र इन्द्रियका विषय इस लोकमे तथा परलोकमें बहुत दोषनिकूं कहे है ! या हेतुतें नेत्र इन्द्रियका विषयनिकूं तिरस्कार करिके आपके नेत्र इन्द्रियकूं जीतना योग्य है । गाथा--

एवं सम्मं सद्दरसगंधफासे विचारयित्ताणं ।
सेसाणि इन्दियाणि वि णिज्जेदव्वाणि बुद्धिमदा ।।१४२८।।

अर्थ--ऐसे इन्द्रियनिके विषयनिकूं इस लोक परलोकमें दोषकारी विचारिकरिके अर शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श हैं विषय जिनके ऐसे शेषहू कर्ण, रसना, नासिका, स्पर्शन इन्द्रियनिकूंहू बुद्धिवानानकूं जीतना योग्य है । अब क्रोधके जीतनेका उपाय कहे है । गाथा--

जदिदा सवति असन्तेण परो तं णत्थि मेत्ति खमिदव्वं ।
अणुकम्पा वा कुज्जा पावइ पावं वरावेत्ति ।।१४२९।।

अर्थ--जो मेरे मांहि दोष नहीं अर दोष कहे है, गालि देवे है, तो ऐसा विचार करे जिसमें दोष है तिसकूं कहे है, मेरे मांहि ऐसा दोष नहीं । ऐसे विचारि क्षमा करे । अथवा इसका कह्या दोष मेरे लगे नहीं, यो हमारे दोष यथेच्छ कहो, हमारे कहा हानि है ? अथवा ऐसा विचारि करुणा करे, जो मेरा निमित्तसूं यो गरीब पापकूं प्राप्त होसी, इसकूं मोहनीयकर्म तथा ज्ञानावरणकर्म दाबि राख्या है, सो कषायनिका प्रेरया वृथा बकवाद करि आपकूं नरकनिगोद में पटके है ! इस प्रकार करुणाही करै । गाथा--

जदि वा सवेज्ज संतेण परो तह वि पुरिसेण खमिदव्वं ।
सो अत्थि मज्झ दोसो ण अलीयं तेण भणिदत्ति ।।१४३०।।

अर्थ--जो दोष आपमें विद्यमान होय सो दोष परपुरुष प्रकट करै तो तहां भी क्षमा करे । यो हमारो दोष सांचा प्रकट करे है, मेरे मांहि दोष विद्यमान है, इसने झूंठ नहीं कह्या है, अब मोकूं ये दोष बुरे लागे हैं, तो शीघ्रही मोकूं इस दोषका त्याग करना । जिस दोषतें मेरा अपवाद होय सो मोकूं ग्रहण करना उचित नहीं । गाथा--

सत्तो वि ण चेव हदो हदो वि ण य मारिदो त्ति य खमेज्ज
मारिज्जन्तो विसहेज्ज चेव धम्मो ण णट्ठोत्ति ॥१४३१॥

अर्थ—मोकूं गालीही देवे है, मारे तो नहीं है ! अर जो मारै, तो मेरा प्राणनिका घात तो नहीं किया ! जगत में मारि नाखने वाले भी होय हैं । अर जो प्राण हरै तो चितवन करै–इसने धर्म तो मेरा नहीं हरया, प्राण तो विनाशीक है, और निमित्तते नाश होताही, इसका कछू अपराध नहीं । ऐसे चितवन करता क्षमाही करै । गाथा—

रोसेण महाधम्मो णासिज्ज तणं च अग्गिणा सव्वो ।
पावं च करिज्ज माहं बहुगंपि णरेण खमिदव्वं ॥१४३२॥

अर्थ—जैसे अग्निकरिके तृणनिका नाश होय है, तैसे रोषकरिके महान् धर्म का नाश होय है । अर रोषकरिके जीव के महापाप होय है । तातें बहुत प्रकार करिके क्षमा करना योग्य है । गाथा—

पुव्वकदमज्झपावं पत्तं परदुःखकरणजादं मे ।
रिणमोक्खो मे जादो मे अज्जत्ति य होदि खमिदव्वं ॥१४३३॥

अर्थ—कोऊका कुवचन श्रवण करिके तथा मारण ताडन करिके उत्तम पुरुष ऐसे चितवन करे हैं–मेरा पूर्वजन्मकृत पाप है, जो मैं अन्यजीवनिकै दुःख कीया, ताकरिके पापकर्म उपार्जन कीया, सो यह मेरे उदय आया है, सो आपका फल देय नाशकूं प्राप्त होयगा । जैसे कोऊका ऋण देना होय, अर दे देवे, तदि क्लेशरहित होजाय । तैसे जो पापकर्मका उदयकूं क्रोधादिकरहित समभावनिकरि सहूंगा तो आगामै तो बंध नहीं होयगा, अर पूर्वकृत पाप निर्जरि जायगा । तातें अब क्षमाही करना योग्य है ।

पुव्वं सयमुवभुत्तं काले णाएण तेत्तियं दव्वं ।
को धारणीओ धणियस्स दितओ दुक्खिओ होज्ज ।१४३४।

अर्थ—पूर्वे परका धन आप ऋण करि भोग्या । बहुरि अवसर पाय धनवाला मांगे तदि न्यायमार्गकरिके देखिये

तो जितना धन पेलाका देना है तितना देने में कौन दुःखित होय ? न्यायमार्गी तो बड़ा ही आदरतें पेलेका धन देय ऋणरहित होय सुखित होय है। तैसें पूर्वं आप पापबंधका कारण अन्यजीवनकूं कुवचन कह्या, झूंठा कलंक लगाया, ताका फल यह उदय आया है, सो न्यायही है। अब इसके भोगने में विषाद नहीं करना, यहही आत्महित है। गाथा—

इह य परत्त य लोए दोसे बहुए य आवहदि कोधो।
इदि अप्पणो गणित्ता परिहरिदव्वो हवइ कोधो ॥१४३५॥

अर्थ—यो क्रोध इस लोक में तथा परलोक में बहुत दोषनिकूं वहै है, ऐसे आपकी अवज्ञा करिके, क्रोधकषायका परित्याग होय है। ऐसे क्रोधकृत परिणामके जीतनेका उपाय वर्णन करिके, अब मानकृत परिणामकूं जीतनेकी भावना कहे हैं। गाथा—

को एत्थ मज्झ माणो बहुसो णीचत्तणं पि पत्तस्स।
उच्चत्ते य अणिच्चे उवट्ठिदे चावि णीचत्ते ॥१४३६॥

अर्थ—बहुतवार नीचकुल नीचजाति पाया, तथा अनेकवार कुरूप हुवा, अज्ञानी हुवा, तथा रंक हुवा, दीन हुवा, बलरहित हुवा, अनंतवार नीचपनेकूं प्राप्त भया जो मैं, ताके अब इस मनुष्यजन्म में कहा मान है ? अनंतकालपर्यंत अनंतजन्मनि में बहुत अपमान भया, अब मान करना बड़ी लज्जा है, यो विनाशीक उच्चपणो होता हू नीचपणा नजीक ही जानहु। तातें अभिमान छांडि मार्दव धारना योग्य है।

अधिगेसु बहुसु संतेसु ममादो एत्थ को मह माणो।
को विब्भओ वि बहुसो पत्ते पुव्वम्मि उच्चत्ते ॥१४३७॥

अर्थ—मुझतें धनकरि, ज्ञानकरि, कुलकरि, रूपकरि, ऐश्वर्यकरि अधिक बहुत मनुष्यनिकूं होते संते मेरे इनमें कहा मान है ? अर पूर्वं बहुतवार पायकरिके छूट्या अर बहुरि शुभकर्म का उदयकरि प्राप्त हुवा जो उच्चपणा तामैं अब हमारे कहा आश्चर्य है ? भावार्थ—कुल, बल, ऐश्वर्य, धन, ज्ञान, रूप मुझतें अधिक अधिक बहुत लोकनिमै पाइये है। अर पूर्वं उच्चपणा भी अनेकवार पाय पाय छूट्या है। अब किंचिन्मात्र पाया तामैं गर्व करना अतिनिंद्य है। गाथा—

जो अवमाणणकरणं दोसं परिहरइ णिच्चमाउत्तो ।

सो णाम होदि माणी ण दु गुणचत्तेण माणेण ।।१४३८।।

अर्थ—जगत में अपमान करनेका कारण दोषनिका त्याग नित्य ही उपयुक्त हुवा करे सो मानी है. अन्यगुणरहित मानकरिके काहेका मानी ? भावार्थ–कोऊ लौकिकजन ऐसें कहे, जो–महंतपुरुषनिके तो मानही धन है, मान गया, जाका सब बडापना गया । इहां मानका अभावकूं श्रेष्ठ कैसें कहो हो ? ताकूं उत्तर ऐसें है—मान तो जाका गया जो निंद्यकर्म करि अपना अपमान करावै, सो तो मान त्यागनेयोग्य है । अर ऐसा मान तो राखना, जो, मैं उत्तमकुल में उपज्या हूं, मोकूं नोचकुलवालेकीनांईं अयोग्यवचन, गाली, भंडवचन बोलना योग्य नहीं, अभक्ष्य भक्षण करना योग्य नहीं, व्यसन सेवन करना योग्य नहीं, मोकूं ऐश्वर्य पाय कहींका अपमान करना योग्य नहीं, क्रोध करना योग्य नहीं, मायाचार करना योग्य नहीं, लोभ करना योग्य नहीं, बलकूं पाय निर्बलका घात करना योग्य नहीं । दीननिकी रक्षाही करनी, ज्ञान पाय आत्माकूं रागादिक भावकर्मनितें छुडाय निजस्वरूप मे स्थिर करना उचित है । ऐसा मान तो श्रेष्ठ है । अर जो कर्मका उदयतें धन ऐश्वर्य कुल जात्यादिक पाय इनका गर्व करना जो—मैं उच्च हूं, कुलवान् हूं, ज्ञानवान् हूं और समस्त नीचे हैं, अज्ञानी हैं, ऐसा अभिमान दुर्गतिका कारण त्यागने योग्य है । गाथा—

इह य परत्तय लोए दोसे बहुगे य आवहदि माणो ।

इदि अप्पणो गणित्ता माणस्स विणिग्गहं कुज्जा ।।१४३९।।

अर्थ—यो अभिमान इसलोक में तथा परलोक में आपके बहुत दोष हैं तिनकूं वहै है, ऐसे मानकी अवज्ञा करिके अर मानका निग्रह करना योग्य है । ऐसे मानकृत दोष कहे । अब मायाचाराकृत दोषनिका स्वरूप कहे हैं । गाथा–

अदिगूहिदा वि दोसा जणेण कालंतरेण णज्जन्ति ।

मायाए पउत्ताए को इत्थ गुणो हवदि लद्धो ।।१४४०।।

अर्थ—अति छिपाये हुयेहू दोष कालांतरकरिके लोकनिकरि जानने में आवे हैं, छिपायकरि कहा किया ? तातें इहां रची जो माया ताकरि कहा गुण प्राप्त होय है ? कुछ गुण प्रकट होय नहीं, केवल तीव्र अशुभकर्मका बंध ही होय है । गाथा–

पडिभोगम्मि असन्ते णियडिसहस्सेहिं गूहमाणस्स ।

चन्दग्गहोव्व दोसो खणेण सो पायडो होइ ॥१४४१॥

अर्थ—भाग्य नहीं होता संता हजार कपट करिकें छिपावतेंहूं भाग्यरहित पुरुषका दोष क्षणमात्र में चंद्रमाका ग्रहणकीनांई प्रकट होय है। जैसें राहू चंद्रमाकू ग्रस्या, तदि कोऊकूं राहू जावता आवता दीख्या नहीं, अत्यंत छिपिकरिकें ग्रस्या है, तथापि तिसही क्षण मे लोकनिमें प्रकट होगया, जो "राहू पापीविना चंद्रमाकूं कौन ग्रसै?" तैसें हजार कपटनिकरि छिपाया दोष जगतमें प्रकट होयही है, कपट छिप्या नहीं ही रहे है।

जणपायडो वि दोसो दोसोत्ति ण घेप्पए सभागस्स ।

जह समलत्ति ण घिप्पदि समलं पि जए तलायजलं ।१४४२।

अर्थ—भाग्यवान् पुरुषका लोकनिमें प्रकटहू दोष जगत में दोषपणाकरि नहीं ग्रहण करे है! दोषहू जगतकूं गुणही दीखे है! जैसे मलकर्दमकरि सहितहू तलावका जल तिसकूं यो तलाव 'कर्दम तथा मलसहित है' ऐसा ग्रहण नहीं करिये है, जितने जल है तितने जलका भरया तलाव जगत कहे है, मल भरया है तोहू जगत मलका भरया नहीं कहे है।

डंभसएहिं बहुगेहिं सुपउत्तेहिं अपडिभोगस्स ।

हत्थं ण एदि अत्थो अण्णादो सपडिभोगादो ॥१४४३॥

अर्थ—बहुत यत्नकरिके कीया जो बहुत मायाचार ताकरिकेहू भाग्यरहित के हाथि अन्य पुण्यवान का धन नहीं प्राप्त होय है। मायाचारकरिके केवल दुर्गतिका कारण पापबंध ही होय है। अर पुण्यहीन के हाथि पुण्यवानका धन नहीं आवे है। गाथा—

इह य परत्तय लोए दोसे बहुए य आवहइ माया ।

इदि अप्पणो गणित्ता परिहरिदव्वा हवइ माया ॥१४४४॥

अर्थ—माया नामा कषाय इस लोक में तथा परलोक में बहुतदोषनिकूं वहे है—धारण करे है। यातैं ज्ञानकरि माया का तिरस्कार करिके माया का परिहार करना योग्य है। ऐसे मायाकषायकूं पांच गाथानिकरि वर्णन कीया। अब लोभकषायकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

लोभे कए वि अत्थो ण होइ पुरिसस्स अपडिभोगस्स ।
अकएवि हवदि लोभे अत्थो पडिभोगवंतस्स ॥१४४५॥

अर्थ—लोभ करता संताहू भाग्यहीन पुरुषके धन नहीं होय है । अर भाग्यवान् पुरुषके लोभ नहीं करता संताहू धनका संचय होय है । गाथा–

सव्वे वि जए अत्था परिगहिदा ते अणन्तखुत्तो मे ।
अत्थेसु इत्थ को मज्झ विंभओ गहिदविजडेसु ॥१४४६॥

अर्थ—जगतके विषं समस्तजातिके अर्थ जे परिग्रह हैं, ते मैं अनंतबार ग्रहण कीये, अर अनंतबार ग्रहण होय करिके छूटे, अब इनकी प्राप्ति होने में कहा आश्चर्य है ? ।

इह य परत्तय लोए दोसे बहुए य आवहइ लोभो ।
इदि अप्पणो गणित्ता णिज्जेदव्वो हवदि लोभो ॥१४४७॥

अर्थ—लोभ है सो इस लोकमें तथा परलोकमें बहुतदोषनिकूं धारण करे है, यातैं ज्ञानका प्रभावकरिके याका नाश करिके लोभकषाय जीतना योग्य होय है । ऐसे इन्द्रियकषायका स्वरूप कह्या । अब निद्राविजय करनेका उपाय दश गाथानिमें वर्णन करे है ।

णिद्दं जिणाहि णिच्चं णिद्दा हु णरं अचेयणं कुणइ ।
वट्टिज्ज हु पासुत्तो खवओ सव्वेसु दोसेसु ॥१४४८॥

अर्थ—भो क्षपक ! निद्रा जो है ताहि जीतहु ! या निद्रा मनुष्यकूं अचेतन करे है, योग्यायोग्यका विवेकरहित करे है, निद्राकूं प्राप्त भया जो क्षपक कहिये मुनि सो समस्त हिंसादिक दोषनिमें वर्त्ते है । कोऊ या कहै–"निद्रा नामा कर्मका उदयतैं निद्रा आवे है, ताकूं कैसे जीतै ?" ताका समाधान करे हैं । गाथा–

जदि अधिबाधिज्ज तुमं णिद्दा तो तं करेहि सज्झायं ।
सुहुमत्थे वा चिंतेहि सुणव संवेगणिव्वेगं ॥१४४९॥

अर्थ—जो निद्रा तुमकूं बाधा करे तो तुम स्वाध्याय करो, अर सूक्ष्मपदार्थंनिनें चिंतवन करो, तथा धर्मानुरागिणी—संसारदेहभोगनितें विरक्त करनेवाली कथा श्रवण करो । अब अन्य प्रकार निद्रा जीतनेका कारण कहे हैं । गाथा—

पीदी भए य सोगे य तहा णिद्दा ण होइ मणुयाणं ।
एदाण तुमं तिण्णिवि जागरणत्थं णिसेवेहिं ॥१४५०॥
भयमागच्छसु संसारादो पीदिं च उत्तमट्ठम्मि ।
सोगं च पुरादुच्चरिदादो णिद्दाविजयहेदुं ॥१४५१॥
जागरणत्थं इच्चेवमादिकं कुण कमं सदा उत्तो ।
झाणेण विणा वंज्झो कालो हु तुमे ण कायव्वो ॥१४५२॥

अर्थ—मनुष्यनिके प्रीति अर भय अर शोक होते सन्ते निद्रा नहीं होय है । तातैं जागरणके निमित्त प्रीति, अर भय, अर शोक इनि तीननकूं अंगीकार करो । इहां निद्राके विजयके अर्थि पंचपरिवर्तनरूप संसारके अनन्तजन्ममरणनितें तो भय करो । अर उत्तमार्थ जो रत्नत्रय ताकेविषै प्रीति करो । अर पूर्वै खोटे आचरण किये तिनका शोक करो । कैसे करना ? सो कहे हैं—नरकादिक गतिमें बारम्बार परिभ्रमण करता जो मैं, सो शरीर सम्बन्धी तथा आगन्तुक तथा मानसिक तथा क्षेत्रकालादिकतें उपज्या विचित्र दुःख भोगे । तेही दुःख बहुरि आगाने भोगनेमें आवसी, ऐसे संसारका भय करहु । बहुरि समस्त आपदाके समूहका नाश करनेकूं, तथा स्वर्गमुक्ति के सुखनिकूं प्राप्त होनेकूं, तथा असार शरीर का भार उतारनेकूं तथा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्तसुख रूप साम्राज्य लक्ष्मी ग्रहण करनेकूं तथा कर्मरूप विषके वृक्षकूं उपाडनेकूं समर्थ अर अनन्त भवनिमें पूर्वे नहीं पाई ऐसी रत्नत्रयकी आराधना करनेकूं, मैं उद्यमी भया हूं । ऐसे रत्नत्रयमें प्रीति करहू । बहुरि हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म, परिग्रह इनि पंचपापनिविषै, तथा मिथ्यात्वकषायनिविषै तथा अशुभ मन, वचन, कायके योगनिविषै, तथा कामके कारणनिविषै मैं मंद-

भागी प्रवर्तन किया है। तथा हित अहितका विचारमें मूढबुद्धि करि, तथा सत्यार्थमार्गका उदेश देने वाला का नहीं लाभ होनेतें, तथा प्रबल ज्ञानावरणका उदयतें, जिनेन्द्रका प्ररूप्या पदार्थनिका नहीं जाननेतें, तथा कदाचित् पदार्थ जाननेमें आये तोहू श्रद्धानके अभावतें, तथा चारित्रमोहके उदयतें सन्मार्ग जो रत्नत्रय तिसमें नहीं प्रवर्तन करनेतें मैं दुःखरूप समुद्रमें मग्न हुवा हूं–डूब्या हूं! ऐसे उद्वेगरूप चित्तकरिके निद्राका विजय होय है। ऐसे निद्राकूं जीति जागरणके अर्थि इत्यादिक संसारतें भय, अर रत्नत्रयमें प्रीति, अर खोटे आचरणतें भय, ऐसें सदाकाल चिंतवन करो, अर शुभध्यानविना मनुष्य जन्मका काल निष्फल मति व्यतीत करो। गाथा—

संसाराडविणित्थरणमिच्छदो अणपणीय दोसाहिं।
सोदुं ण खमो अहिमणपणीय सोदुं व सघरम्मि ॥१४५३॥

अर्थ—जैसे जाका गृहमें सर्प होय सो पुरुष सर्पकूं गृहमेंतें निकासेविना शयन करनेकूं नहीं समर्थ होय है; तैसे संसाररूप वनीके पारकूं प्राप्त होनेका इच्छुक पुरुष दोषनिकूं नहीं दूरि करिके शयन करनेकूं नहीं समर्थ होय है। गाथा—

को णाम णिरुव्वेगो लोगे मरणादिअग्गिपज्जलिदे।
पज्जलिदम्मि व णाणी धरम्मि सोदुं अभिलसिज्ज।१४५४।

अर्थ—जैसे दग्ध होते गृहमें कौन ज्ञानी शयन करनेका अभिलाष करै? तैसे जन्ममरणादिक अग्निकरिके प्रज्वलित लोकविषें कौन ज्ञानी उद्वेगरहित हुवा शयन करै? ज्ञानीके संसारका बडा भय है, अचेत हुवा शयन नहीं करे है, आत्माकूं संसारपरिभ्रमणतें रक्षा करनेकूं सदाकाल सावधान रहे है। गाथा—

को णाम णिरुव्वेगो सुविज्ज दोसेसु अणुवसंतेषु।
गहिदाउहाण बहुयाण मज्झयारेव सत्तूणं ॥१४५५॥

अर्थ—जैसे ग्रहण किया है आयुध जिनने ऐसे बहुत शत्रूनिके मध्य निर्भय भया कौन शयन करै? जैसे रागादिक आत्माका घात करनेवाले दोष तिनको नहीं नष्ट होता कौन ज्ञानी निर्भय हुवा शयन करे? जागृतही रहे है। भावार्थ—परमार्थीनिके रागद्वेष कामक्रोधादिकनिका बडा भय है। सो इन दोषनिकूं मारनेकूं सदा उद्यमी हुवा ध्यान स्वाध्यायमें लीन होय निद्राका विजयही करे है। गाथा—

णिद्दा तमस्स सरिसो अण्णो णत्थि हु तमो मणुस्साणं ।
इदि णच्चा जिणसु तुमं णिद्दा ज्झाणस्स विग्घयरी ।।१४५६

अर्थ—मनुष्यनिके निद्रारूप अन्धकारके समान अन्य अन्धकार नहीं है । ऐसे जाणि हे भव्य ! तुम ध्यानमें विघ्न करनेवाली निद्रा ताहि विजय करहु । गाथा—

कुण वा णिद्दामोक्खं णिद्दामोक्खस्स भणिदवेलाए ।
जह वा होइ समाही खवणकिलिंतस्स तह कुणह ।।१४५७।।

अर्थ—हे भव्य ! निद्रा त्यागनेका अवसर जो तीनप्रहर रात्रि व्यतीत भये पीछे निद्राका त्याग करहू । क्षपण कहिये उपवासकरिके खेदखिन्न जो तुम, तिनके जैसे रत्नत्रयधर्ममें तथा शुभध्यानमें सावधानी होय तैसे यत्न करहू । ऐसे दश गाथानिमें निद्राका विजय वर्णन किया । अब सत्ताईस गाथानिमें तप का महिमा तथा तपमें प्रेरणा वर्णन करे हैं । गाथा—

एस उवावो कम्मसवदारणिरोहणो हवे सव्वो ।
पोराणयस्स कम्मस्स पुणो तवसा खओ होइ ।।१४५८।।

अर्थ—यो पूर्वे वर्णन कियो जो समस्त उपाय सो तो कर्मके आस्रव रोकनेमें है । बहुरि पूर्वें बांध्या जो कर्म ताका तपकरि क्षय होय है । भावार्थ—नवीन कर्मबन्धके रोकनेका तो यो समस्त उपाय वर्णन किया । अर पूर्वे बन्धन किया जे कर्म तिनका नाश तपकरिके होय है । सो कर्म नाश करनेका उपाय एक तप है । गाथा—

अब्भन्तरबाहिरगे तवम्मि सत्ति सगं अगूहन्तो ।
उज्जमसु सुहे देहे अप्पडिबद्धो अणलसो तं ।।१४५९।।

अर्थ—भो भव्य ! ऐसे जानिकरिके अब तुम शरीरके सुखमें तो आसक्तताका त्याग करो ! अर आलस्यरहित हुवा बारह प्रकार के बाह्य अभ्यंतर तपमें अपनी शक्तिकूं नहीं छिपावता उद्यम करो । गाथा—

सुहसीलदाए अलसत्तणेण देहपडिबद्धदाए य ।
जो सत्तीए संत्तीए ण करिज्ज तवं स सत्तिसमं ।।१४६०।।
तस्स ण भावो सुद्धो तेण पउत्ता तदो हवदि माया ।
ण य होइ धम्मसद्धा तिव्वा सुहदेहपिक्खाए ।।१४६१।।
अप्पा य वंचिओ तेण होइ विरियं च गूहियं भवदि ।
सुहसीलदाए जीवो बन्धदि हु असादवेदणियं ।।१४६२।।

अर्थ—जो पुरुष आपके शक्ति होता संताहू सुखमें आसक्तपणाकरि तथा आलसीपणाकरि तथा देहमें आसक्तता-करि अपनी शक्तिप्रमाण तप नहीं करे है, तिस पुरुषके भावशुद्धि नहीं है–शक्तिसमानहू तप नहीं करनेतें भावनिकी शुद्धता कहा रही ? बहुरि भावनिकी शुद्धताविना मायाचारही प्रवर्तन कीया ! देहका सुखमें आसक्तबुद्धिकरि ताके धर्ममें तीव्र श्रद्धान भी नहीं होय है । जातें विनाशीकदेहमें जाकै प्रीति प्रवर्ते है, सो देहहीको आपा जान्या है, ताकै धर्म कहा ? केवल मायाचार है । बहुरि जो देहके सुखमें आसक्त है, सो पुरुष अपने आत्माकूं ठिग्या ! तथा अपना वीर्य छिपाया, तथा देह के सुखमें आसक्तता करि असातावेदनीयकर्मका बंध कीया । ऐसे तो जो देहका सुखमें आसक्त होय तप नहीं करै, ताके दोष दिखाये । अब जो आलस्यकरि तप नहीं करे है, ताके दोष दिखावे हैं । गाथा–

विरियन्तरायमलसत्तणेण बन्धदि चरित्तमोहं च ।
देहपडिबद्धदाए साधू सपरिग्गहो होइ ।।१४६३।।

अर्थ—जो आलसी होयकरिके शक्तिप्रमाणहू तप नहीं करे है, सो वीर्यांतराय नामा कर्मबंधकूं करे है, तथा चारित्रमोहकर्मकूं बांधे है, तथा शरीर में आसक्तताकरि साधु जो मुनि सो परिग्रहसहित होय है । जातैं समस्तपरिग्रहकूं शरीरका सुखके अर्थि ग्रहण करे है, तातें जो शरीरके सुखमें आसक्त है, सो समस्तपरिग्रहमें आसक्त है । बहुरि जो शक्ति-

समानहू तप नहीं करे अर अपनी शक्तिकूं छिपावे है, सो मायाचारी है, तातें तिस साधुके मायाजनितहू दोष आवे है ऐसे कहे हैं। गाथा—

मायादोसा मायाए हुन्ति सव्वे वि पुव्वरिणद्दिट्ठा।
धम्मम्मि रिणप्पिवासस्स होइ सो दुल्लहो धम्मो ।।१४६४।।

अर्थ—जो शक्तिप्रमाणहू तप नहीं करे सो मायाचारी भया, तिस मायाचारी के जे मायाचार में पूर्वे दोष कह्या, ते समस्त होय हैं। बहुरि मायाचारकरि धर्ममें निरादर करनेवाले के संसारमें धर्म पावना अत्यंत दुर्लभ होय है। भावार्थ—जो धर्मसेवन में मायाचार करे है, सो धर्मका तिरस्कार करे है—अनादर करे है, धर्मसूं पराङ्मुख भया है, ताकूं फेरि अनंतभवनिमें धर्मका समागम मिलना कठिण होय है। गाथा—

पुव्वुत्तवगुरणाणं चुक्को जं तेरण वंचिओ होइ।
विरियरिणगूही बन्धदि मायं विरियन्तरायं च ।।१४६५।।

अर्थ—जो शक्ति होतेहू तप नहीं करे है, सो पूर्वे कहे जे संवरनिर्जरादिक गुण, तिनकरिके छूटे है, तिसकारण-करि आपकूं आप ठिग्या है बहुरि आपका वीर्य जो शक्ति ताहि छिपावनेवाला मायाचारकर्मकूं तथा वीर्यांतरायकर्मका तीव्र बंध करे है।

तवमकरिंतस्सेदे दोसा अण्णे य होंति सन्तस्स।
होंति य गुणा अरणेया सत्तीए तवं करेन्तस्स ।।१४६६।।

अर्थ—तपकूं नहीं करते साधुके अन्यहू अनेक दोष होय है। अर शक्तिकरिकें तपकूं करते साधुके अनेक गुण होय हैं। अब तपश्चरण के गुणनिकूं दिखावे हैं।

इह य परत्त य लोए अदिसयपूयाओ लहइ सुतवेरण।
आवज्जिज्जन्ति तहा देवा वि संइन्दिया तवसा ।।१४६७।।

अर्थ—सम्यक्तपकरिके इस लोकमें तथा परलोकमें अतिशयरूप पूजाकूं प्राप्त होय है। तथा सांचे तपकरिके इन्द्रनिकरि सहित समस्त देव सेवा करे हैं। गाथा–

अप्पो वि तवो बहुगं कल्लाणं फलइ सुप्पओगकदो।
जह अप्पं वडबीअं फलइ वडमणेयपारोहं ॥१४६८॥

अर्थ—उज्ज्वल उपयोगतें कीया अल्पहू तप बहुतकल्याणनिकूं फले है। जैसे अल्पहू बडका बीज बाह्या हुवा अनेक बड अनेक डाहलेनिकूं फले है। गाथा–

सुठ्ठु कदाण वि सस्सादीणं विग्घा हवन्ति अदिबहुगा।
सुठ्ठु कदस्स तवस्स पुण णत्थि कोइ वि जए विग्घो॥१४६९॥

अर्थ—भली विधिकरिके उत्पन्न कीये जे धान्यादिक, तिनमें तो कदाचित् अतिबहुत विघ्न होय हैं, परंतु सम्यक्परिणामकरिके कीया जो तप, ताके मध्य कोऊ भी विघ्न जगत में नहीं ही है। गाथा–

जरणमरणादिरोगादुरस्स सुतवो वरोसधं होदि।
रोगादुरस्स अदिविरियमोसधं सुप्पउत्तं वा ॥१४७०॥

अर्थ—जैसे रोगकरि पीडित पुरुष के अतिवीर्यवान् औषध भले जतनतैं युक्त करी हुई रोगकूं हरे है, तैसे जन्म-मरणरोगकरि पीडित प्राणीके सम्यक्तपही जन्ममरणरूप रोगके मेटनेकूं श्रेष्ठ औषध है। गाथा—

ससारमहाडाहेण डज्झमाणस्स होइ सीयघरं।
सुतवोदाहेण जहा सीयघरं डज्झमाणस्स ॥१४७१॥

अर्थ—जैसे ग्रीष्मऋतुका दाहकरि दग्ध होते पुरुषके शीतगृह जो धारागृह, सो दाहके दूरि करने वाला होय है। तैसे संसारकी महादाहकरिके दग्ध होते जीवके सम्यक्तप है सोही शीतलगृह है। गाथा—

णीयल्लओ व सुतवेण होइ लोगस्स सुप्पिओ पुरिसो।
मायाव होइ विस्ससणिज्जो सुतवेण लोगस्स ॥१४७२॥

अर्थ—सम्यक्तपके धारण करनेतें यो पुरुष लोकके अपना निजमित्र बांधव पुत्रकीनाईं अत्यन्त प्रिय होय है। अर सम्यक्तपकरिके यो पुरुष समस्तलोकके अपनी माताकीनाईं विश्वास करने योग्य होय है। जातें तपस्वी समस्तलोकनिके प्रिय होय है अर समस्तलोकनिके विश्वास करनेयोग्य होय है। गाथा—

कल्लाणिड्ढिसुहाइं जावदियाइं हवे सुरणराणं।
जं परमणिव्वुदिसुहं व ताणि सुतवेण लब्भन्ति ॥१४७३॥

अर्थ—पंचकल्याण अर अद्भुतऋद्धि तथा विभूति जितनी देवनिके तथा मनुष्यनिके होय है तथा जो सर्वोत्कृष्ट निर्वाणका सुख ते समस्तही सुख सम्यक्तपकरि प्राप्त होय हैं। गाथा—

कामदुहा वरधेणू णरस्स चिंतामणिव्व होइ तम्रो।
तिलओव्व णरस्स तम्रो माणस्स विहूसणं सुतम्रो ॥१४७४॥

अर्थ—मनुष्यके तप है सो कामना परिपूर्ण करनेकूं कामधेनु है, तथा वांछित देनेकूं चिंतामणिसमान है, तथा यह तप मनुष्यके तिलककीनाईं सकल आभूषणनिमें प्रधान है। तथा सम्यक्तप है सो लोकमें मान्यजननिका मानका भूषण है। गाथा—

होइ सुतवो य दीओ अण्णाणतमंधयारचारिस्स।
सव्वावत्थासु तम्रो वढ्ढदि य पिदा व पुरिसस्स ॥१४७५॥

अर्थ—अज्ञानरूप अन्धकारमें गमन करता जीवके ज्ञानरूप उद्योत करनेकूं यो सम्यक्तप है सो दीपक है। तथा समस्त अवस्थामें पुरुषके एक यो सम्यक्तप पिताकीनाईं रक्षक है। जातें अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, तथा श्रुतकेवल, तथा केवलज्ञान तपतेंही होय। तथा इस जीवकूं संसारपतनतें रक्षा करनेकूं भी तपही समर्थ है। गाथा—

विसयमहापंकाउलगड्डाए संकमो तवो होइ।
होइ य णावा तरिदुं तवो कसायातिचवलणदिं ॥१४७६॥

अर्थ--संसारी जीवके फसावनेकूं पंच इन्द्रियनिके विषयरूप महाकर्दमका भरया खाडा तिसतें निकासनेवाला एक तपही है। बहुरि कषायरूप अतिचपलनदी ताहि तिरवेकूं एक तपही नाव है। भावार्थ--विषयरूप कर्दममें उलझ्या हुवा जीवकूं तपही निकासनेवाला है। तथा कषायरूप प्रबलनदीके पार करनेकूं भी एक तपही समर्थ है। गाथा--

फलिहो व दुग्गदीणं अणेयदुक्खावहाण होइ तवो।
आमिसतण्हाछेदणसमत्थमुदकं व होइ तवो ॥१४७७॥

अर्थ—एक यह तप दुर्गतिमें गमनके रोकनेकूं अर्गल है–जीवकूं दुर्गति नहीं जाने दे है। कैसीक है दुर्गति ? अनेक दुःखनिकूं धारण करनेवाली है। बहुरि विषयनिमें महातृष्णा ताके छेदनेकूं समर्थ जो जल, ताकीनांईं यो सम्यक्तप है।

मणदेहदुक्खवित्तासिदाण सरणं गदी य होइ तवो।
होइ य तवो सुतित्थं सव्वासुहदोसमलहरणं ॥१४७८॥

अर्थ--मनके दुःख तथा देहके दुःख तिनकरि त्रासकूं प्राप्त होते जीवनकूं सम्यक्तपही शरण है। तथा दुःखनितें निकासवेकूं तपही गति है। तथा समस्त पापदोषरूप मलके हरनेकूं–दूरि करनेकूं तपही सत्य तीर्थ है। इस जीवके पाप हरनेकूं तपतीर्थविना अन्यतीर्थ समर्थ नहीं। गाथा—

संसारविसमदुग्गे तवो पणट्ठस्स देसओ होदि।
होइ तवो पच्छयणं भवकंतारम्मि दिग्घम्मि ॥१४७९॥

अर्थ--संसाररूप विषम दुर्गम वनी, तिसमें मार्ग भूलि बहुतकाल परिभ्रमण करता जीवकूं मोक्षका मार्गका उपदेशकरि संसारबनीतें निकासनेवाला एक तपही है। बहुरि दीर्घ जो संसाररूप वन तामें पथ्य भोजनहू तपही है। गाथा—

रक्खा भएसु सुतवो अब्भुदयाणं च आगरो सुतवो।
णिस्सेणी होइ तवो अक्खयसोक्खस्स मोक्खस्स ॥१४८०॥

अर्थ—भयनिमें रक्षा करनेवाला एक तपही है। समस्त देवमनुष्यसम्बन्धी अभ्युदय तिनकी खानि एक तपही है। तथा अविनाशीकसुखका ठिकाना जो मोक्ष ताकी निसरणीभी एक सम्यक्तपही है। गाथा—

तं णत्थि जं ण लब्भइ तवसा सम्मं कएण पुरिसस्स ।
अग्गीव तणं जलिओ कम्मतणं डहदि य तवग्गी ॥१४८१॥

अर्थ—ऐसा जगतमे उत्तमवस्तु नहीं है जो सम्यक्तपकरि पुरुषकूं प्राप्त नहीं होय है । जैसे अग्नि तृणनिकूं दग्ध करे है, तैसे तपरूप अग्नि कर्मरूप तृणनिकूं दग्ध करे है । गाथा—

सम्मं कदस्स अपरिस्सवस्स ण फलं तवस्स वण्णेदुं ।
कोई अत्थि समत्थो जस्स वि जिब्भासयसहस्सं ॥१४८२॥

अर्थ—जिसके लक्ष जिह्वा होय सोहू, सांचा किया अर आस्रवरहित, ऐसे तपका फल वर्णन करनेकूं नहीं समर्थ होय है । गाथा—

एवं णादूण तवं महागुणं संजमम्मि ठिच्चाणं ।
तवसा भावेदव्वा अप्पा णिच्चं पि जुत्तेण ॥१४८३॥

अर्थ—ऐसे तपका महान् गुण जानिकरिके अर संयममें तिष्ठिकरिके अर नित्यही उपयुक्त जो तप ताकरि आत्मा भावने योग्य है । गाथा—

जह गहिदवेयणो वि य अदयाकज्जे णिउज्जदे भिच्चो ।
तह चेव दमेयव्वो देहो मुणिणा तवगुणेसु ॥१४८४॥

अर्थ—जैसे अपने कार्यका अर्थी जो स्वामी वेदनासहितहू सेवककी नहीं दया करिके अपना कार्य आजाय तिसमें युक्त करिये है; तैसे ही मुनिहू देहकूं तपरूप गुणनिविषै दमै है । ऐसे तप नामा उत्तरगुणका सत्ताईस गाथानिमें वर्णन किया । गाथा—

इच्चेव समणधम्मो कहिदो मे दसविहो सगुणदोसे ।
एत्थ तुममप्पमत्तो होहि समण्णागदसदीओ ॥१४८५॥

अर्थ—अब संस्तरनें प्राप्त भया मुनिकूं ऐसे निर्यापक गुरु उपदेश देयकरिके बहुरि कहे—हे क्षपक ! ऐसे गुण दोषकरिके सहित दश प्रकार मुनिधर्म है सो मै तुमकूं कह्या । अब इस श्रमणधर्म में सावधान हुवा प्रमादरहित हुवा सन्ता धर्ममें बुद्धिकूं लीन करहु । गाथा—

तो खवगवयणकमलं गणिरविणो तेहिं वयणरस्सीहिं ।
चित्तप्पसायविमलं पफुल्लिदं पीदिमयरंदं ॥१४८६॥

अर्थ—ततः कहिये तिस निर्यापकगुरुनिकी ऐसी शिक्षा हुआ पाछै निर्यापकाचार्यरूप सूर्यकरि पूर्वे कहे जे शिक्षाके वचन तेही किरण, तिनकरि क्षपकका मुखरूप कमल प्रफुल्लित होय है । कैसाक है मुखकमल ? आचार्यनिके शिक्षाके वचन तिनविषै जो प्रीति सोही तामें सुगन्ध है । बहुरि कैसाक है मुखकमल ? चित्तकूं प्रसन्न करिके अर निर्मल भया है । गाथा—

वयणकमलेहिं गणिअभिमुहेहिं सावत्थिदत्थिपत्तेहिं ।
सोभदि ससभा सूरोदयम्मि फुल्लं व णलिणिवणं ।१४८७॥

अर्थ—इस जगतमें सूर्यका उदय होते जैसे प्रफुल्लित कमलिनीका बन सोहे है, तैसे उपदेश सुनिकरि आश्चर्यरूप है नेत्रपत्र जामें ऐसा आचार्यनिके सन्मुख जो मुखरूप कमल तिनकरि क्षपकहू सोहे है । गाथा--

मणिउवएसामयपाणएण पल्हादिदम्मि चित्तम्मि ।
जाओ य णिव्वुदो सो पादूणय पाणयं तिसिओ ॥१४८८॥

अर्थ—जैसे कोऊ बहुतकालका तृषाकरि पीडित पुरुष अमृतमय जल पानकरि तृप्त होय है, तैसे क्षपकमुनिहू आचार्यनिका उपदेशरूप अमृतके पीवनेकरि आनन्दितचित्त हुवा सुखकूं प्राप्त होय है । गाथा—

तो सो खवओ तं अणुसट्ठिं सोऊण जादसंवेगो ।
उट्ठित्ता आयरियं वन्दइ विणएण पणदंगो ॥१४८९॥

अर्थ—तैठा पाछें गुरुनिकी शिक्षा श्रवण करिके अर उपज्या है परमधर्म में अनुराग जाके ऐसा क्षपकमुनि संस्तर में उठिकरिके अर विनयकरिके नम्रीभूत है अंग जाका ऐसा आचार्यनिकूं वन्दना करे । गाथा—

भंते सम्मं णाणं सिरसा य पडिच्छिदं मए एदं ।
जं जह उत्तं तं तह काहेंत्ति य सो तदो भणइ ।।१४६०।।

अर्थ— वन्दना किये पश्चात् क्षपक गुरुनिसूं वीनती करे है । भगवन् ! मै आपका दिया सम्यग्ज्ञान मस्तककरि अंगीकार किया । अब जैसी आप आज्ञा करो, तैसे मैं प्रवर्तन करस्यूं । ऐसे नम्रीभूत होय विनयकरिके गुरुनिके चरणारविन्दाके सम्मुख होय वीनती करें । गाथा--

अप्पा णिच्छरदि जहा परमा तुट्ठी य हवदि जह तुज्झ ।
जह तुज्झ य संघस्स य सफलो हु परिस्समो होइ ।।१४६१।।
जह अप्पणो गणस्स य संघस्स य विस्सुदा हवदि कित्ती ।
संघस्स पसायेण य तहहं आराहइस्सामि ।।१४६२।।

अर्थ—क्षपक गुरुनितै वीनती करे है । भगवन् ! जैसें मेरा आत्मा संसारतै निस्तीर्णताने प्राप्त होय अर जैसे आपके परम संतोष होय, अर जैसे मेरा अनुग्रहमें प्रवर्तन कीयो जो समस्त संघ तिसका परिश्रम सफल होय अर जैसे मेरी अर आप जे आचार्य तिनकी अर सकल संघकी उज्ज्वल कीर्ति जगतमें विख्यात होय तैसे संघके प्रसादकरिके आराधना ग्रहण करस्यूं ।। भावार्थ-क्षपक गुरुनिसूं अपना अभिप्राय प्रकट करे है । जो, हे भगवन् ! आपके चरणारविंदके प्रसादतै ऐसा सत्यार्थ उपदेश पाय मैं कदाचित् समाधिमरणमें शिथिल नहीं होऊंगा, जैसे आत्मा संसारसमुद्रके पार होय तैसे करूंगा, तथा जैसे आप गुरुजननिका चरणारविंदाकी कीर्ति उज्ज्वल विस्तरेगी तैसे करूंगा । तथा मेरे हितमें उद्यमी अर समाधिमरण करावनेके अर्थि रात्रिदिन वैयावृत्यने सावधान जो सर्व संघ ताका परिश्रम सफल होयगा तैसी निर्दोष उज्ज्वल आराधाना ग्रहण करूंगा । ऐसे अपने परिणामका आराधनामरणमें उत्साह अर परम शूरवीरता प्रगट गुरुनिकूं दिखाया । गाथा—

धीरपुरिसेहिं जं आयरियं जं च ण तरंति कापुरिसा ।

मणसा वि विचिंतेदुं तमहं आराहणं काहं ॥१४६३॥

अर्थ—जो आराधना गणधरादिक धीरपुरुषनिकरि आचरण की अर जिस जिस आराधनाकूं कापुरुष जे विषय के लंपटी तथा तीव्रकषायका धारक मनकरिके चिंतवन करनेकूंहू नहीं समर्थ होय है ! तिस आराधनाकूं मै आपके प्रसादते आराधन करस्यूं ।

एवं तुज्झं उवएसामिदमासादइत्तु को णाम ।

बीहेज्ज छुहादीणं मरणस्स वि कायरो वि णरो ॥१४६४॥

अर्थ—हे भगवन् ! ऐसे आपका उपदेशरूप अमृतकूं आस्वादन करि कौन कायर पुरुषहू क्षुधातृषादिकनिका तथा मरणका भयको प्राप्त होय है ! नहीं होय है, यह मेरे निश्चय है । भावार्थ—आपका उपदेशरूप अमृत जिस पुरुषनें पान कर लिया, सो कायरहू मरण रोग क्षुधा तृषादिकका भय नहीं करे है । जातें ऐसा श्रद्धान प्रगट होय है, जो, क्षुधा तृषा रोगादिक तो देहकूं मारेगा, मेरा आत्मा अखंड अविनाशी ज्ञानानदरूप ताहि कोऊ नाश करने समर्थ नहीं । ऐसा स्वरूप में निश्चलपणा आपका उपदेशहीका प्रभावतें होय है । गाथा—

किं जंपिएण बहुणा देवा वि सइन्दिया महं विग्घं ।

तुम्हं पादोवग्गहगुणेण कादुं ण तरिहंति ॥१४६५॥

अर्थ—हे भगवन् ! बहुत कहनेकरि कहा ? आपके चरणनिका उपकाररूप गुणकरि हमारे आराधनामैं विघ्न करनेकूं इन्द्रनिसहित देवहू समर्थ नहीं है । अन्य विषयकषाययुक्त पुरुषनिकी तो कहा कथा । गाथा—

किं पुण छुहा व तण्हा परिस्समो वादियादि रोगो वा ।

काहिंति ज्झाणविग्घं इन्दियविसया कसाया वा ॥१४६६॥

अर्थ—जो इंद्रनिसहित देवता ही हमारी आराधनामै विघ्न नहीं करि सके, तो ये क्षुधा तृषा तथा परिश्रम तथा वातपित्तकफादिक रोग तथा इन्द्रियनिके विषय तथा क्रोधादिक कषाय हमारे ध्यान में विघ्न करे कहा ? अपि तु नहीं करें ! गाथा—

ठाणा चलेज्ज मेरू भूमी ओमच्छिया भविस्सिहिदि ।

ण य हं गच्छमि विगदिं तुज्झं पायप्पसाएण ॥१४९७॥

अर्थ—कदाचित् मेरुगिरि पर्वत स्थानते चलायमान होय, तथा पृथ्वी उलटि औंधी होजाय; तदिहू आप जे गुरु तिनके चरणारविंदके प्रसादतै मैं विकारकूं प्राप्त नहीं होऊं—आराधनातैं चलायमान नहीं होऊं । गाथा—

एवं खवओ संथारगओ खवइ विरियं अगूहन्तो ।

देदि गणी वि सदा से तह अणुसट्ठिं अपरिदन्तो ॥१४९८॥

अर्थ—ऐसे संस्तरकूं प्राप्त भया जो क्षपक सो अपनी शक्तिकूं नहीं छिपावता संता कर्मनिकूं क्षपावै है । अर आचार्यहू आलस्यरहित हुवा जैसे क्षपकके ज्ञान जागृत रहे तैसे सदाकाल परमधर्म शिक्षा करे है । भावार्थ—क्षपक तो अपनी शक्ति नही छिपावे है अर आचार्य उपदेश देने में आलसी नहीं होय है ।

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यान नामा मरणके चालीस अधिकारनिविषैं सातसे सत्तरि गाथानिकरि अनुशिष्टि नामा तेतीसमां अधिकार समाप्त कीया ॥ ३३ ॥ अब उगणीस गाथानिमैं सारणा जो धर्मतैं चलायमान होतेकी रक्षा करने का चोतीसमां अधिकार वर्णन करे है । गाथा—

अकडुगमतित्तयमणं विलंब अकसायमलवणं मधुरं ।

अविरस मदुव्विगंधं अच्छमणुण्हं अणादिसीदं ॥१४९९॥

पाणगमसिभलं परिपूयं खीणस्स तस्स दादव्वं ।

जह वा पच्छं खवयस्स तस्स तह होइ दायव्वं ॥१५००॥

अर्थ—समाधिमरण की प्रतिज्ञा करि क्षीणशरीरी जो क्षपक, ताके अर्थि पानक कहिये पीवनेयोग्य आहार ऐसा देना योग्य है—जो क्षपक के पथ्य होय, परिपाक मे गुणकारक होय, शरीर में रोग का उपशम करे, सो पीवनेयोग्य आहार देनेयोग्य है । जो कटुक नही होय, अर तीक्ष्ण चिरपरा नहीं होय, अर खाटा नहीं होय, अर कषायला नहीं होय, तथा लवणरहित होय, तथा मिष्ट नही होय, खांड मिश्री इत्यादिक का मिलापरहित होय, तथा विरस जो स्वादुरहित

सो नहीं होय, तथा दुर्गंध नहीं होय। ऐसा स्वच्छ उज्वल होय। अर उष्ण नहीं होय, अर अतिशीत नहीं होय, तथा कफ करनेवाला नहीं होय, अर पवित्र होय। ऐसा जलादिक पानद्रव्य क्षपक के देने योग्य है।

संथारत्थो खवओ जइया खीणो हवेज्ज तो तइया।

वोसरिदव्वो पुव्वविधिणेव सोपाणगाहारो ॥१५०१॥

अर्थ—बहुरि जिस अवसर में संस्तर में तिष्ठता क्षपकका शरीर क्षीण होजाय तदि पूर्वे जो तीन आहार का त्याग में जैसे विधि कही तैसे पानक आहारहू त्यागने योग्य है।

एवं संथारगदस्स तस्स कम्मोदएण खवयस्स।

अंगे कच्छइ उट्ठिज्ज वेयणा ज्झाणविग्घयरी ॥१५०२॥

अर्थ—ऐसे संस्तर में तिष्ठता क्षपक के कर्मका उदयकरिके कोई अंग में ध्यानका विघ्न करनेवाली वेदना उपजै तो कहा करे ? सो कहे—

बहुगुणसहस्सभरिया जदि णावा जम्मसायरे भीमे।

भिज्जदि हु रयणभरिया णावा व समुद्दमज्झम्मि ॥१५०३॥

गुणभरिदं जदि णावं दठ्ठूण भवोदधिम्मि भिज्जन्तं।

कुणमाणो हु उवेक्खं को अण्णो हुज्ज णिद्धम्मो ॥१५०५॥

अर्थ— कर्मका उदयकरि क्षपकका देहमें ध्यानका विघ्न करनेनाली वेदना उपजि आवै, तो, जैसे समुद्र के मध्य रत्ननिकरि भरी नाव फूटि जाय, तैसे बहुतगुणरत्ननिकी भरी साधु रूप नाव भयानक संसार समुद्र में फूटि जाय है। तातैं धर्मात्मा साधुजन जैसे क्षपक के वेदना का उपशम होय तैसे उपदेशादिक प्रतीकार करैं, अर वेदना घटि परिणाम समतारूप व्रतनिमें सावधान होय तैसे वैयावृत्यादिक करे। अर जो गुणनिकरि भरी साधुरूप नावकूं वेदनादिकनितैं संसार समुद्र में फूटतो देखि अर जो रक्षाको उपाय उपदेश वैयावृत्यादिक नहीं करे है—उदासीन रहे है, तो तिससमान अन्य कौन धर्मरहित अधर्मी होय है ? जो गुणनिकरि सहित साधूका धर्म बिगडता होय अर जो अपनी शक्तिप्रमाणहू रक्षा नहीं करे तो धर्मतैं पराङ्मुख भया अपना धर्मही बिगाड्या। गाथा—

वेज्जावच्चस्स गुणा जे पुव्व विच्छरेण अक्खादा ।
तेसिं फिडिओ सो होइ जो उवेक्खेज्ज तं खवयं ॥१५०५॥

अर्थ—जो साधु धर्मका मार्ग जाणिकरिकेहू अन्य मुनीश्वर वेदनाकरिके चलायमान होय तिसकूं धर्मोपदेश देय-करि तथा शरीरकी टहल करनेकरि नहीं स्थिर करे है तथा सजमीके योग्य अन्यहू इलाजकरि वैयावृत्य नहीं करे है, केवल क्षपकमें उदासीन हो रहे है, सो साधु पूर्वे जे वैयावृत्यके गुण विस्तारकरिके कहे, तिन गुणनितें रहित होय है । गाथा—

तो तस्स तिगिंछा जाणएण खवयस्स सव्वसत्तीए ।
विज्जादेसेण वसे पडिकम्मं होइ कायव्वं ॥१५०६॥

अर्थ—तातें क्षपककी चिकित्साकूं जाननेवाले वैद्यका उपदेशकरिके समस्त शक्तिकरिके प्रतीकार करना योग्य है । गाथा—

णाऊण विकारं वदणाए तिस्से करेज्ज पडियारं ।
फासुगदव्वेहिं करेज्ज वायकफपित्तपडिघादं ॥१५०७॥

अर्थ—क्षपकका रोगादिककूं जानिकरिके अर तिस रोगकी वेदनाका इलाज साधुके योग्य प्रासुकद्रव्यनिकरि करै । अर प्रासुकद्रव्यनिकरि वात, पित्त, कफका नाश करै । गाथा—

बच्छीहिं अवद्दवणतावणेहिं आलेवसीदकिरियाहिं ।
अब्भंगणपरिमद्दण आदीहिं तिगिंछदे खवयं ॥१५०८॥

अर्थ—बहुरि वस्तिकर्म जो मूत्रका आशयमें बत्ती इत्यादिक तथा उष्णकरण तथा तापन तथा लेपन तथा अन्य शीतक्रिया तिनकरिके, तथा मर्दन तथा अंगका दाबना, मसलना इत्यादिक प्रासुकद्रव्यनिकरिके, मुनि तथा धर्मात्मा श्राव-कादिक संघमें होय सो क्षपकका इलाज करे । जातें धर्मात्मा व्रतीकूं वेदनापीडित देखि जे छांडे हैं ते अधर्मी हैं । जैसे बने तैसे उनका धर्मकी रक्षा ही करे । अर धर्मात्मा व्रतीनिके अंतकालमें कर्मका प्रबल उदयकरि रोगवेदनादिक प्रबल आताप

आजाय अर तिसकरि शिथिल होजाय अर अजोग्य आचरणहू करनेकूं चलायमान होजाय तो तहां धैर्यवान् होय स्थिती-करणही करे। अर अनेक योग्य उपायनिकरि दुःख दूरिही करे। अर जे दुःख आवतांथका सधर्मीकूं छोड़ि जाय है ते महानिर्दयी हैं, धर्मतें पराङ्मुख हैं, अर धर्मकी निंदा करावनेवाले हैं, उनके समाधिमरण नहीं होयगा। अर आगाने समाधिमरण करनेमें सकल अन्यमुनि शिथिल होय है। गाथा—

एवं पि कीरमाणो परियम्मे वेदणा उवसमो सो।
खवयस्स पावकम्मोदएण तिव्वेण हु ण होज्ज ॥१५०९॥
अहवा तण्हादिपरीसहेहिं खवओ हविज्ज अभिभूदो।
उवसग्गेहिंव खवओ अचेदणो होज्ज अभिभूदो ॥१५१०॥
तो वेदणावसट्टो वाउलिदो वा परीसहादीहिं।
खवओ अणप्पवसिओ सो विप्पलवेज्ज जं किं पि ॥१५११॥
उब्भासेज्ज व गुणसेढीदो उदरणबुद्धिओ खवओ।
छट्ठं दोच्चं पढम वासया कुंटिलिदपदमिच्छन्तो ॥१५१२॥
तह भुञ्जन्तो खवगो सारेदव्वो य सो तवो गणिणा।
जह सो विसुद्धलेस्सो पच्चागदवेदणो होज्ज ॥१५१३॥

अर्थ—ऐसे पूर्वोक्त प्रासुकद्रव्यनितें प्रतीकार करतेहू क्षपकके तीव्र पापकर्मका उदयकरि वेदनाका उपशम नहीं होय—वेदना नहीं घटे, जातैं पापकर्मका प्रबल उदय होय, तदि समस्त प्रतीकार निष्फल जाय है, अथवा तृषाक्षुधाकी परीषहकरिकै क्षपक तिरस्कृतरूप होय है, अथवा अनेक रोग क्षुधा तृषा शीत उष्णतादिक उपसर्गनिकरि क्षपक तिरस्कार ने प्राप्त हुवा अचेत होजाय, तथा वेदना के वशतें पीडित होय, तथा व्याकुल होय, अथवा परीषह उपसर्गादिककरि क्षपक आपके वश नहीं होता रोग के वशतें विलाप करने लगि जाय—प्रलाप करने लगि जाय, अथवा अयोग्यवचन कहे, अथवा

गुणश्रेणीतें उतरने की बुद्धिकूं प्राप्त भया क्षपक छठा रात्रिभोजनकूं चाहै, तथा द्वितीय भोजन जो जलपान ताकूं याचै, तथा प्रथम जो भोजन ताकूं याचने लगि जाय, तथा मोहकूं प्राप्त हुवा स्खलितपद जो मुनिव्रतकूं भग करने इच्छा करे तदि आचार्य करुणानिधान किंचितूहू धैर्यकूं नहीं त्यागता, क्षपककी सारणा जो व्रतकी रक्षा ताहि तैसे करे "जैसे यो क्षपक लेश्याकी उज्ज्वलताकूं प्राप्त होय, तथा चेतना बाहुडि आवै"। बहुरि मुनिके धर्ममे सावधान होजाय तैसे सारणा करे। अब सारणा जो रत्नत्रय की रक्षा ताका उपाय कहे है। गाथा—

कोसि तुमं किं णामो कत्थ वसंसि को व सपही कालो।
किं कुणसि तुम कह वा अत्थसि किं णामगो वाहं ।१५१४।
एव आउंच्छित्ता परिक्खहेदुं गणी तय खवयं।
सारइ वच्छलयाए तस्स य कवयं करिस्सन्ति ॥१५१५॥

अर्थ—हे आत्मकल्याण के अर्थी! तुम कौन हो? तुमारा नाम कहा है? तुम कहा बसो हो? अबार कौन काल वर्ते है? तुम कहा करो हो? तुम कौनप्रकार तिष्ठो हो? हमारा नाम कहा है? ऐसे आचार्य तिसकी सावधानी की परीक्षा के अर्थि क्षपककूं वारवार पूछिकरिकें अर ताकी रक्षा करे। कितनेक ऐसे पूछनेतेंही सचेत होय हैं—अहो! मैं मुनिका व्रत धारि सन्यास कीया है, ये आचार्य परमोपकार करनेवाला गुरु है. मैं कैसे अचेत हुवा अयोग्य आचरण करूं हूं! मोकूं अब सावधान होय रत्नत्रय सेवन और मरण करना उचित है। ऐसे पूछनेतें सावधान होजाय है। अथवा जो इसमें चेतना है अक अचेत है? ऐसा निश्चय करिके, अर क्षपक में वात्सल्यभाव करिके, अर आचार्य भगवान् विचारै—जो सचेत है तो अब याके आराधना की रक्षा करनेवाला कवच करिस्यूं। गाथा।

जो पुण एवं ण करिज्ज सारणं तस्स वियलचक्खुस्स।
सो तेण होइ णिद्धधसेण खवओ परिचत्तो ॥१५१६॥

अर्थ—इस प्रकार जो चलायमान है चित्तकी प्रवृत्ति जाकी ऐसा क्षपकका जो आचार्य गुरु रक्षण नहीं करै, तो तिस निर्दयी गुरुनें क्षपकका त्याग कीया, छोड्या! यह बड़ा अनर्थ भया! गाथा—

एवं सारिज्जन्तो कोई कम्मुवसमेण लभदि सदिं ।
तह य ण लब्भिज्ज सदिं कोई कम्मे उदिण्णम्मि ।१५१७।

अर्थ— ऐसे सारणा जो रक्षण कीया हुवा कोऊ साधु चारित्रमोहकर्मका उपशमकरिके अथवा असातावेदनीयकर्मका उपशमकरिके ऐसा स्मरणकूं प्राप्त होय है—अहो ! बडा अनर्थ है जो, त्रैलोक्य में दुर्लभ ऐसा संयम अंगीकार करिके अर अकाल में भोजनपानकी इच्छा करूं हूं ! अबार हमारे संन्यासका अवसरमें समस्त आहारपान का त्यागका अवसर है, मैं समस्तसंघकूं साक्षी करिकै समस्त च्यारि प्रकारका आहारका त्याग कीया है, जो सल्लेखनामरण अनंतानन्तकालमें नहीं पाया। सो अब गुरुनिके प्रसादत प्राप्त भया है। अब मेरे समस्त विषयानुराग त्याग करि परमवीतरागता का अवसर है, तातै मोकूं परमसंयममै सावधानताकरिके आत्मकल्याणमें सावधानी करनी ! ऐसें कोऊ साधु तो अपने व्रतसंयम पूर्वे धारण किये तिनमें दृढ होय है । अर कोऊ साधु ज्ञानावरणादिकनिका तीव्र उदयकरिके स्मृतिकूं नहीं प्राप्त होय है—अचेत ही रहे है ।

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यान मरण के चालीस अधिकारनिविषें सारणा नामा चोतीसमां अधिकार उगणीस गाथानिकरि समाप्त किया ।।३४।। अब कवच नामा अधिकार एकसो चहोत्तरि गाथानिमैं वर्णन करे हैं । गाथा—

सदिमलभंतस्स वि कादव्वं पडिकम्ममट्ठियं गणिणा ।
उवदेसो वि सया से अणुलोमो होदि कायव्वो ।।१५१८।।

अर्थ—ऐसे आचार्य क्षपककूं अपना मुनिपणा तथा आराधनामरणकी प्रतिज्ञा तथा च्यार प्रकार आहारका त्यागकी यादिगिरी जो स्मरण ताहि करावैं, अर जो साधु स्मरण कराया हुवाहू स्मृतिकूं प्राप्त नहीं होय—त्यागमें, संयम मे चेतनाकूं प्राप्त नहीं होय, तो गणी जो आचार्य सो शिथिलतारहित हुवा संता क्षपकके स्मरण दृढ होय तैसे प्रतीकार करै । भावार्थ—जो क्षपक सावधान नहीं भी होय, रोगतै तथा वेदनातै बेखबरी होय ताकाहू आचार्य प्रतीकार सचेत होनेका उपाय करेहो । इलाज किये बिना स्थिरता नहीं रहे है । बहुरि आचार्य तिस क्षपकके अनुकूल उपदेशहू सदाकाल करै । गाथा—

भगव. आरा

चेयन्तोऽपि य कम्मोदयेण कोई परीसहपरद्धो ।
उब्भासेज्ज वउक्कावेज्ज व भिदेज्ज व पदिण्णं ॥१५१९॥
ण हु सो कडुवं फरुसं व भाणिदव्वो ण खीसिदव्वो य ।
ण य वित्तासेदव्वो ण य वट्टदि हीलणं कादुं ॥१५२०॥

अर्थ--कोऊ साधु चेतनाकूं प्राप्त हुवाहू कर्मका उदयकरिके परीषहनकरि क्लेशकूं प्राप्त हुवा सन्ता अयोग्य वचन बोले, तथा रुदन करे, तथा आतुर-पीडित हुवो अपनी व्रतप्रतिज्ञा भंग करे, तदि तिस साधुकूं कटुवचन कहनेयोग्य नहीं है । तथा सो तिरस्कार करनेयोग्य नहीं । तथा हास्य करने योग्य नहीं । तथा त्रास देनेयोग्यहू नहीं । तथा पराभव करनेयोग्यहू नहीं है । गाथा--

फरुसवयणादिगेहिं दु माणी विप्फुरिसिदो तगो सन्तो ।
उद्धाणमवक्कमणं कुज्जा असमाधिकरणं च ॥१५२१॥

अर्थ--कठोरवचनादिककरि विराधित हुवा तथा तिरस्कारकू प्राप्त हुवा साधु अभिमानकूं प्राप्त हुवा सन्ता अपध्यानकूं प्राप्त होय है । तथा मर्याद उल्लघन करिके अर संस्तरतें बाहिर भागि जाय । तथा असावधानीतें असमाधि मरण करे है । तातें बडा अनर्थ जानि चलायमान हुवा क्षपककूं कठोर वचनादिक नहीं कहे हैं । गाथा--

तस्स पदिण्णामेरं भित्तुं इच्छन्तयस्स णिज्जवओ ।
सव्वादरेण कवयं परीसहणिवारणं कुज्जा ॥१५२२॥

अर्थ—प्रतिज्ञारूप मर्यादकूं भेदनेका इच्छक जो क्षपक ताके निर्यापकाचार्य परीषह निवारण करनेमे समर्थ ऐसा कवच सर्व आदरकरिके करै । भावार्थ-जैसे सुभट अभेद्य बकतर पहरि रणमें प्रवेश करे, तो वैरीनिके बाणनिकरि नाशकूं नहीं प्राप्त होय है, तैसे साधुरूप सुभटहू संन्यास के अवसरमें कर्मनितें जो महासग्राम तिसमे प्रवेश करता गुरुनिका उपदेशरूप कवच जो बकतर ताहि धारण करता संता कर्मरूप वैरीके प्रेरे जे विषयकषायरूप शस्त्र तिनकरिके नाशकूं नहीं प्राप्त होय है ।

णिद्धं मधुरं पल्हादणिज्ज हिदयंगमं अतुरिदं वा ।
तो सीहावेदव्वो सो खवओ पण्णवंतेण ।।१५२३।।

अर्थ—महान् बुद्धिमान् जो गुरु सो क्षपककूं शिक्षारूप वचन कहने जोग्य है। कैसे वचन कहै ? स्नेहसहित कहै, अर कर्णनिकू प्रिय कहै, अर आनद करनेवाले कहै-जिनकूं श्रवण करते ही सर्व दुःखका स्मरण नष्ट होजाय, बहुरि हृदयमे प्रवेश करि जाय—ऐसा वचन कहै। बहुरि शीघ्रताकूं लीये वचन नहीं कहै। गाथा—

रोगादंके सुविहिद विउलं वा वेदणं धिदिबलेण ।
तमदीणमसंमूढो जिण पच्चूहे चरित्तस्स ।।१५२४।।

सव्वे उवसग्गे परिसहे य तिविहेण णिज्जिणहि तुमं ।
णिज्जिणिय सम्ममेदं होहिसु आराहओ मरणं ।।१५२५।।

अर्थ—हे सुन्दर चारित्रके धारक मुने ! ये दीनतारहित हुवा सता तथा मोहरहित हुवा संता धैर्यके बलकरिके, चारित्रमे विघ्न करनेवाले जे रोग जे महान् व्याधि, अर आतंक जे अल्प व्याधि तिननें तथा प्रबलवेदनानें जीतहु। तथा समस्त उपसर्गनिनें तथा परीषहनिनें मन वचन कायकरिके जीतहु। अर रोग वेदना उपसर्ग परीषहनिकूं जीतिकरिके अर मरणकाल के विषं सम्यक्प्रकार च्यार आराधनाका आराधक होहू। भावार्थ—रोगादिक व्याधि अशुभकर्मके उदयकरिके होय हैं, तातैं जो रोग उपसर्ग परिषह आये जगतमे दीन भये विचरोगे, अर धैर्य छांडोगे तोहू कोऊ तुमारा उपद्रव दूरि करने समर्थ नहीं है। तुमारा तुमही भोगोगे. अपने परिणामनिकरि उपजाया जो अशुभकर्म ताहि दूरि करनेकूं, अर शुभकर्म देनेकूं कोऊ देव दानव इंद्र अहमिंद्र जिनेंद्र समर्थ है नहीं ! तातें रोग उपसर्ग परीषहादिक आये कायरता छांडि महान् धैर्य अंगीकार करि क्लेशरहित हुये भोगना श्रेष्ठ है। यातैं पूर्वकर्मकी निर्जरा होय अर आगै नवीन बंधको अभाव होय। गाथा—

संभर सुविहिय जं ते मज्झम्मि चदुव्विहस्स संघस्स ।
वूढा महापदिण्णा अहयं आराहइस्सामि ।।१४२६।।

अर्थ—हे चारित्रधारक ! च्यारि प्रकारके संघमें तुम महाप्रतिज्ञा धारण करी थी, जो, मै "आराधना धारण करस्यूं" सो तुम स्मरण करो-यादि करो ! भूलि गये कहा ?

को णाम भडो कुलजो माणी थोलाइदूण जणमज्झे ।
जुज्झे पलाइ आवडिदमेत्तओ चेव अरिभीदो ॥१५२७॥

अर्थ—कुलमें उत्पन्न भया मानी सुभट लोकनिके मध्य भुजानिका आस्फालन करिकें अर जुद्धके विषं बैरीकूं सम्मुख आवतेही बैरीतै भयवान् हूवा कौन भागे ? कुलवान् भटपणाका अभिमानी तो बैरीकूं पीठ नहीं दिखावेगा । गाथा

थोलाइदूण पुव्वं माणी सन्तो परीसहादीहिं ।
आवडिदमित्तओ चेव को विसण्णो हवे साहू ॥१५२८॥

अर्थ—तैसेही कोऊ मुनि धर्मका मानी होय अर सर्वसंघमें भुजानिका आस्फालन कीया, जो, "मैं च्यारि आराधना धारण करस्यूं" ऐसी प्रतिज्ञा करिके बहुरि परीषहवैरीनकूं सन्मुख आवतेही कुण चलायमान होय ? कौन विषादी होय ? उत्तमसाधु तो प्रतिज्ञा करिके बहुरि कदाचित् चलायमान होय विषाद नहीं ही करेगा ।

आवडिया पडिकूला पुरओ चेव क्कमन्ति रणभूमिं ।
अवि य मरिज्ज रणे ते ण य पसरमरीण वढ्ढन्ति ।१५२९।

तह आवडिदप्पडिकूलदाए साहू विमाणिणो सूरा ।
अइतिव्ववेयणाओ सहन्ति ण य विगडिमुवयान्ति ॥१५३०॥

अर्थ—जैसे शूरवीरपणाका अभिमानी जो पुरुष सो वैरीनिकूं सम्मुख आवतें रणकी भूमिमें आगे ही गमन करे है-वैरीनिके सम्मुख जाय है, अर रणभूमिविषं मरणही करै, परंतु जीवते सते रणभूमिमे वैरीका प्रसर नहीं बधने दे है, तैसे मानी अर शूरवीर ऐसे साधु जे हैं, तेहू आपदाकू प्रतिकूल होते अतितीव्रवेदनानिकू समभावनिकरि सहे है अर परिणामनिको विकृतताकूं प्राप्त नहीं होय हैं । गाथा—

थोलाइयस्स कुलजस्स माणिणो रणमुहे वरं मरणं ।

ण य लज्जणयं काउं जावज्जीवं सुजणमज्झे ॥१५३१॥

अर्थ—कीया है भुजानिका आस्फालन कहिये ठकोरना जाने ऐसा कुल में उपज्या मानीकूं रणविषै मरण करना श्रेष्ठ है, परतु यावज्जीव स्वजननिके मध्य लज्जाके योग्य कर्म करिके जीवना श्रेष्ठ नहीं । गाथा—

समणस्स माणिणो संजदस्स णिहणगमणं पि होइ वरं ।

ण य लज्जणय कादुं कायरदादीणकिविणत्तं ॥१५३२॥

अर्थ—श्रमण अर मानी ऐसा संजमी जो मुनि ताकूं मरणकूं प्राप्त होना श्रेष्ठ है, परन्तु लज्जा करनेयोग्य जो कायरपणा, दीनपणा, कृपणपणा करना श्रेष्ठ नहीं । भावार्थ—जिस पुरुषके ऐसा अभिमान है, जो मै संजमी हूं, जिनेन्द्र करि आदरे व्रतसयम धारण करे हैं, जो संजम अनन्तभवनिमे दुर्लभ सो मेरे वीतरागगुरुनिके प्रसादतै प्राप्त भया है, अर अब किंचित् रोगादिकजनित उपसर्गपरिषह कर्मके उदयकरि आये हैं तो अब मरणकूं प्राप्त होना श्रेष्ठ है ! जो एकवार मरनाही है ! अर गुरुनिके प्रसादतै व्रतसहित मरण हो जाय तो इस समान मेरा कल्याण और है नहीं । अर इस अवसरमें कायर होय व्रतनितै शिथिल होना तथा दीन होय विलाप करना तथा व्रतनिका नाश करि नीचकर्म करि इलाज चाहना, यह इस लोकमे महालज्जायोग्य निंद्यकर्मकरि दोऊ लोकका नाश करि दुर्गतिके दुःखनिको कौन आदरे । गाथा—

एयस्स अप्पणो को जीविदहेदुं करिज्ज जंपणयं ।

पुत्तपउत्तादीणं रण पलादो मजणलछ ॥१५३३॥

तह अप्पणो कुलस्स य संघस्स य मा हु जीवदत्थं तं ।

कुणसु जणे जंपणयं किविणं कुव्वं सगणलंछं ॥१५३४॥

अर्थ—जैसे कोऊ उत्तमकुलमें उत्पन्न हुवा ऐसा शूरवीर पुरुष एक अपना जीवनेके अर्थि रणमें भागता सन्ता पुत्र पौत्रादिकनिकी जगतमें निन्दा अपवाद तथा स्वजननिके कलंक कौन उत्पन्न करे ? तैसे एक अपना जीवनेके अर्थि अधमपणा करता सन्ता आपका तथा कुलका तथा संघका लोकनिमे अपवाद मति करावो ! आपका संघकूं तथा धर्मकूं कलंक मति लगावो । गाथा—

गाढप्पहारसंताविदा वि सूरा रणे अरिसमक्खं ।
ण मुहं भंजन्ति सयं मरन्ति भिउडीए सह चेव ॥१५३५॥

अर्थ--शूरवीर पुरुष हैं ते संग्रामविषै दृढप्रहारकरिके संतापित भये भ्रकुटीसहित मरण तो करे हैं ! परन्तु बैरीनिके सन्मुख अपने मुखकूं भंग नहीं करे है-उलटा मुख नहीं करे है । गाथा--

सुठ्ठु वि आवइपत्ता ण कायरत्तं करिन्ति सप्पुरिसा ।
कत्तो पुण दीणत्तं किविणत्तं वा वि काहिन्ति ॥१५३६॥

अर्थ– तैसे ही सत्पुरुष हैं ते अत्यंत आपदाकूं प्राप्त भयेहू कायरपणा नहीं करे हैं, तो दीनपणा कृपणपणा तो कैसे करे ? गाथा–

कोई अग्गिमदिगदा समन्तओ अग्गिणा वि डज्झन्ता ।
जलमज्झगदा व णरा अत्थन्ति अचेदणा चेव ॥१५३७॥
तत्थ वि साहुक्कारं सगअंगुलिचालणेण कुव्वन्ति ।
केई करन्ति धीरा उक्किट्ठिं अग्गिमज्झम्मि ॥१५३८॥

अर्थ--केई उत्तम पुरुष अग्निकूं प्राप्त भये सर्वतरफतें अग्निकरिके दग्ध होतेहू जैसे जलके मध्य प्राप्त भये निराकुल अचेतनकीनाईं तिष्ठत हैं अर अग्निमें तिष्ठतेहू केई धीरवीर पुरुष अपनी अंगुलिचालनकरिके साधुकारही करे हैं । जो, "भलो भई ! कर्मका ऋण चुक्या" अर केई अग्निके मध्य उत्कोशन करे हैं । गाथा—

जदिदा तह अण्णाणी संसारपवड्ढणाय लेस्साए ।
तिव्वाए वेदणाए सुहसाउलया करिन्ति धिदिं ॥१५३९॥
किं पुण जदिणा संसारसव्वदुक्खक्खयं करन्तेण ।
बहुतिव्वदुक्खरसजाणएण ण धिदी हवदि कुज्जा ॥१५४०॥

अर्थ—तथा जो अज्ञानीके संसार बधावनेवाली लेश्याकरिके तीव्रवेदनाकूं होता संताहू परलोकसंबंधी सुखके स्वाद में लंपटी हुवा धैर्य धारण करे है, तो संसारके समस्तदुःखकूं क्षय करता अर चतुर्गतिरूप संसारके बहुत तीव्र दुःखरसकूं जानता जैनका यति धैर्यधारण नहीं करे कहा ? करेही करे। भावार्थ—इस जगत में कितनेक अज्ञानीहू तीव्रवेदनाकूं आवते भी परलोक के सुखका अर्थी होइ धैर्य धारण करे, जो "वेदना में कायर नहीं होऊंगा, तो देवलोक के सुखकूं प्राप्त हूंगा" तो संसारके समस्तदुःखका नाश करनेका इच्छुक दिगम्बर साधु रोगादिक दुःख आये धैर्य धारण कैसे नहीं करे ? गाथा

असिवे दुब्भिक्खे वा कन्तारे वा भए व आगाढे।
रोगेहिं व अभिभूदा कुलजा माणं ण विजहन्ति ॥१५४१॥
ण पियन्ति सुरं ण य खन्ति गोमयं ण य पलंडुमादीयं।
ण य कुव्वति विकम्मं तहेव अण्णंपि लज्जणयं ॥१५४२॥

अर्थ—मारी होतेहूं तथा दुर्भिक्ष काल पडतेहू तथा भयानक वनो में प्राप्त होते तथा अत्यंत गाढे भयमें तथा रोगनिकरि तिरस्कार कीये हुयेहू कुलमें उपजे पुरुष अपना मान नहीं छांडे हैं। जाते मारीके भयतें, दुर्भिक्षादिकके भयतै मदिरा नहीं पीवे है, मांस नहीं खाय हैं, कांदे[1] भक्षण नहीं करे हैं, तथा कुकर्म नहीं करे हैं, तथा औरहू लज्जनीयकर्म नहीं करे हैं। कुलवंत पुरुष बहुत दुःख आवतें ही निंद्यकर्म नहीं करे, तो परमार्थमें प्रवर्तते निंद्यकर्म कैसे करे ? गाथा—

किं पुण कुलगणसंघजसमाणिणो लोयपूजिदा साधू।
माणं पि जहिय काहन्ति विकम्मं सुजणलज्जणयं ॥१५४३॥

अर्थ—बहुरि अपने कुलका तथा गणका तथा संघका जस उत्पन्न करनेका अहंकारवान् अर लोकमें पूज्य ऐसे उत्तम साधु अपना लोकपूज्य अभिमान त्यागनिकरिके अर सज्जनपुरुषनि मैं लज्जनीक निंद्यकर्म करे कहा? कदाचित् नहीं करे।

जो गच्छिज्ज विसादं महल्लमप्पं व आवदिं पत्तो।
तं पुरिसकादर विंति धीरपुरिसा हु संढुत्ति ॥१५४४॥

1 टीकाकार का कांदे लिखने का आशय सभी कंद (जमींकंद) से है। मूलाराधना मे लशुन गृंजन आदि सभी कंद लिखे हैं।—सम्पादक

अर्थ—जो पुरुष महान् आपदा तथा अल्प आपदाकूं प्राप्त हुवो संतो विषादकूं प्राप्त होय है, तिस पुरुषकूं धीर-नीर पुरुष कायर कहे हैं अथवा नपुंसक कहे है। गाथा—

मेरुव्व णिप्पकंपा अक्खोभा सागरुव्व गंभीरा।
धिदिवन्तो सप्पुरिसा हुन्ति महल्लावईए वि ॥१५४५॥

अर्थ—महान् आपदाकूं आवता भी धैर्यके धारी सत्पुरुष जे है ते मेरुकीनांई निष्प्रकंप कहिये अचल होय हैं अर समुद्रकीनांई क्षोभरहित गंभीर होय हैं। भावार्थ—सत्पुरुषनिका ऐसाही स्वभाव है, जो अनेक दुःख आपदा आवतेंहू परिणामनिमें चलायमान नहीं होय है, अर जिनका परिणाम समुद्रकीनांई क्षोभकूं प्राप्त नहीं होय है। गाथा—

केई विमुत्तसंगा आदारोविदभरा अप्पडिकम्मा।
गिरि पब्भारमभिगदा बहुसावदसंकडं भीमं ॥१५४६॥
धिदिधणियबद्धकच्छा अणुत्तरविहारिणो सुदसहाया।
साहिन्ति उत्तमट्ठं सावददाढंतरगदे वि ॥१५४७॥

अर्थ—केतेक साधु त्याग्या है समस्त परिग्रह जिनने, ऐसे, अर अपने आत्मस्वरूपविषें आरोपण कीया है आपा जिनने, अर उपसर्गादिकनिके नहीं आदरे है इलाज जिनने, अर बहुत सिंह व्याघ्र सर्पादिक दुष्टजीवनिकरि व्याप्त, अर भयानक ऐसे पर्वतनिके शिखरनिकूं प्राप्त भये अर धैर्यरूप अत्यंत बाधी है कमरि जिनने अर सर्वोत्कृष्टचारित्र में प्रवर्तन करते, अर श्रुतज्ञानका है सहाय जिनके ऐसे साधु सिंहव्याघ्रादिक दुष्ट जीव तिनकी दाढनिके मध्य प्राप्त भयेहू उत्तमार्थ जो रत्नत्रय ताहि साधे है, कायर होय शिथिल नहीं होय है। गाथा—

भल्लुंकिए तिरत्तं खज्जन्तो घोरवेदणट्टोऽवि।
आराधणं पवण्णो ज्झाणेणावन्तिसुकुमालो ॥१५४८॥

अर्थ—स्यालिनीनिकरि तीन रात्रिपर्यंत खाद्यमान कहिये भक्षण कीया अर घोरवेदनाकरि व्याप्त ऐसेहू अवंति-सुकुमाल नामा मुनि ध्यानकरिके आराधनानिकूं प्राप्त भया। भावार्थ—क्षपककूं शिक्षा करे है। भो मुने! महान् कोमल

अंगका धारक अर तत्कालका दीक्षित ऐसा सुकुमाल नामा श्रेष्ठी, ताका अंगकूं स्यालिनी अपने बच्चेनिकरि सहित तीन दिनपर्यंत भक्षण कीया। परंतु आप परमधैर्यके धारक शुद्धभावनिकरि तीन दिनपर्यंत घोर उपद्रव सहिकरि उत्तमार्थकूं साध्या, चलायमान नहीं भया।

मोग्गिलगिरिम्मि य सुकोसलो वि सिद्धत्थदइय भयवंतो।

वग्घीण वि खज्जन्तो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५४६॥

अर्थ—मुद्गल नाम पर्वतविषें सिद्धार्थ पुत्र जो भगवान् सुकोशल नामा महामुनि माताको जीव जो व्याघ्री ताकरिके भक्षण कीया हुवाहू उत्तम अर्थ जो रत्नत्रयका निर्वाह ताहि प्राप्त भया। गाथा–

भूमीए समं कीलाकोट्टिददेहो वि अल्लचम्मं व।

भयवं पि गयकुमारो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५०॥

अर्थ—भूमिविषें आला चामडाकीनाईं कीलेनिकरि वेध्या है देह जाका, ऐसाहू भगवान् गजकुमार नामा साधु उत्तमार्थकूं प्राप्त होत भया। गाथा–

कच्छुजरखाससोसो भत्तेच्छदुच्छिकुच्छिदुक्खाणि।

अधियासयाणि सम्मं सणक्कुमारेण वाससदं ॥१५५१॥

अर्थ—भो मुने ! देखहु ! सनत्कुमार नाम महामुनि सो वर्षपर्यंत खाजि ज्वर कास शोष तीव्रक्षुधा, अग्निकी बाधा तथा वमन तथा नेत्रपीडा, उदरपीडा इत्यादि अनेकरोगजनित दुःखनिकूं भोगतेहू संक्लेशरहित परिणामनिकरि सम्यक् प्रकार सहते भये, परिणाम में धैर्य नहीं छांडि रत्नत्रयधारण करत भये। गाथा–

णावाए णिब्बुडाए गंगामज्झे अमुज्झमाणमदी।

आराधणं पवण्णो कालगओ एणियापुत्तो ॥१५५२॥

अर्थ—गंगा नाम नदीके मध्य नाव डूबता संता एणिकपुत्र नामा साधु मोहरहित हुवा च्यारि आराधनाकूं प्राप्त होय मरण कीया अर कायरता नहीं धारी। तातें, भो कल्याणका अर्थी हो ! तुमकू दुःखमें धैर्य धारण करि आत्महित में सावधान होना उचित है। गाथा–

ओमोदरिए घोराए भद्दबाहू असंकिलिट्ठमदी ।

घोराए तिगिंच्छाए पडिवण्णो उत्तमं ठाणं ॥१५५३॥

अर्थ—भद्रबाहु नामा मुनि घोरतर क्षुधाकी वेदनाकरि पीडित हुवाहू संक्लेशरहित बुद्धिकूं अवलंबन करते प्रबल अल्प आहार नाम जो तप ताही धारण करिके उत्तम स्थानकूं प्राप्त भए । भावार्थ-भद्रबाहु नामा मुनिके तीव्र क्षुधाका रोग उपज्या, तोहू अवमौदर्य जो अल्पभोजन तपही धारण करि उत्तमस्थानकूं प्राप्त भया, परन्तु भोजनमें लालसा नहीं करी । गाथा—

कोसंबीललियघडा वूढा णइपूरएण जलमज्झे ।

आराधणं पवण्णा पावोवगदा अमूढमदी ॥१५५४॥

अर्थ—कोशांबीनगरीविषे ललितघटा नामकरि प्रसिद्ध जे बत्तीस महामुनि हैं, ते जलके मध्य नदीका प्रवाहकरिके डूबे हुयेहू मोहरहित होय प्रायोपगमनसंन्यासकूं प्राप्त होय आराधनाकूं प्राप्त भये । गाथा—

चंपाए मासखमाणं करित्तु गंगातडम्मि तण्हाए ।

घोराए धम्मघोसो पडिवण्णो उत्तमं ठाणं ॥१५५५॥

अर्थ—चंपानगरीके बाह्य गंगाके तटविषं धर्मघोष नामा महामुनि एक महिनाका उपवास धारणकरिके अर घोर तृषाकी वेदनाकरि संक्लेशरहित भये उत्तम अर्थ जो आराधनासहित मरण ताहि प्राप्त भया । तृषाकी वेदनातें जलकी इच्छा नहीं धरी, संजम नहीं बिगाड्या, धैर्य धारणकरि आत्मकल्याण किया । गाथा—

सीदेण पुव्ववइरियदेवेण विकुव्विएण घोरेण ।

सन्तत्तो सिरिदत्तो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५६॥

अर्थ—पूर्वजन्मको वैरी जो देव तींकरि विक्रियारूप किया जो घोर शीत तिसकी वेदनाकरि व्याप्त श्री श्रीदत्त नाम मुनि संक्लेशरहित हुवा उत्तमस्थानकूं प्राप्त भया । गाथा—

उण्ह वावं उण्ह सिलावलं आदवं च अविउण्हं ।
सहिदूण उसहसेणो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५७॥

अर्थ—वृषभसेन नामा मुनि है, सो उष्णपवनकू तथा उष्णशिलातलकूं तथा अतिउष्ण सूर्यका आतापकूं संक्लेश रहित हुवा सहिकरिके उत्तम अर्थकू प्राप्त भया । गाथा—

रोहेडयम्मि सत्तीए हओ कोंचेण अग्गिदइदो वि ।
तं वेयणमधियासिय पडिवण्णो उत्तम अट्ठं ॥१५५८॥

अर्थ—रोहेडग नाम नगरविषें अग्नि नामा राजाका पुत्र क्रौंच नाम वैरीकरिके शक्ति नामा आयुधकरि हत्या हुवा शक्तिकी वेदनाकूं सहिकरिके उत्तम अर्थकू प्राप्त भया । गाथा—

काइंदि अभयघोसो वि चंडवेगेण छिण्णसव्वंगो ।
तं वेयणमधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५९॥

अर्थ—काकन्दी नाम नगरीविषें अभयघोष नामा मुनिहू चन्डवेग नाम कोऊ वैरीकरि सर्व अंग छेद्या हुवा तिस घोर वेदनाकूं प्राप्त होयकरिके उत्तम अर्थ जो रत्नत्रय ताकूं प्राप्त होत भया । गाथा--

दंसेहिं य मसएहिं य खज्जन्तो वेदणं परं घोरं ।
विज्जुच्चरोऽधियासिय पडिवण्णो उत्तम अट्ठं ॥१५६०॥

अर्थ--विद्युच्चर नामा चोर डांस अर मांछरनिकरि भक्षण किया हुवा परमघोर वेदनाकूं संक्लेशरहित हुवा सहिकरिके अर उत्तम अर्थ जो आत्मकल्याण ताहि साधता भया । गाथा—

हत्थिणपुरगुरुदत्तो सम्मलिथाली व दोणिमंतम्मि ।
डज्झन्तो अधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५६१॥

अर्थ—हस्तिनागपुर में बसनेवाला गुरुदत्त नाम मुनि द्रोणिमति पर्वतविषे संभलिथालीनांई दग्ध होता सन्ता उत्तम अर्थकूं साधता भया। इहां संमलिथालीका अर्थ हमारी समझिमें नहीं आया है, तातैं नहीं लिख्या है।

(हरे धान्यकणिशको घडामें भरके उसका मुख ढांकिकरिके किंचित् भूमिमे गाडि ऊपरसे अग्नि प्रज्वलित करके धान्य-कणिशको पकाना उसका नाम संबलिथाली है। इसको मरेठीमें 'उपरहंडी' कहते हैं। संशोधकः) गाथा—

गाढप्पहारविद्धो पूइंगलियाहिं चालणीव कदो।
तध वि य चिलादपुत्तो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५६२॥

अर्थ—चिलातपुत्र नाम मुनिकूं कोऊ पूर्व अवस्थाका वैरी दृढ आयुधनिकरि घात्या, अर बहुरि घावनिमें स्थूल कीडे चढि आये, तिन स्थूल कीडेनिकरि चालिनीकीनांई सर्व छिद्ररूप किया, तोहू संक्लेशरहित हुवा समभावनितैं वेदनाकूं सहिकरि उत्तम अर्थकूं प्राप्त भया। गाथा—

दंडो जउणवंकेण तिक्खकंडेहिं पूरिदंगो वि।
तं वेयणमधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५६३॥

अर्थ—यमुनावक्रके तीक्ष्णबाणनिकरि पूर्ण है अंग जाका ऐसा दंड नामा मुनि घोरवेदनाकूं समभावनितैं सहिकरिके उत्तम अर्थ जो आराधना ताही प्राप्त होत भया। गाथा—

अभिणंदणादिया पंचसया णयरम्मि कुंभकारकडे।
आराधणं पवण्णा पीलिज्जन्ता वि यन्तेण ॥१५६४॥

अर्थ—कुम्भकारकट नामा नगरविषे जंत्र जो घाणी तीमें पीडे हूये अभिनन्दनादिक पांचसै मुनि समभावनितैं आराधनाकूं प्राप्त होत भये। गाथा—

गोट्ठे पाओवगदो सुबन्धुणा गोच्चरे पलिवदम्मि।
डज्झन्तो चाणक्को पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५६५॥

अर्थ--कोऊ सुबन्धु नामा वैरी गायनिके रहनेका गृहके अग्नि लगाई, तिस गायनिके गृहमें दग्ध होता चाणक्य नामा, प्रायोपगमन संन्यास धारणकरि संक्लेशरहित हुवा उत्तम अर्थकू साधता भया। अग्निमें दग्ध होता सन्ता समभावनितें सर्व अन्तरंग बहिरंग उपाधि त्यागि आत्मकल्याण किया। गाथा--

वसदीए पलिविदाए रिट्ठामच्चेण उसहसेणो वि।
आराधणं पवण्णो सह परिसाए कुणालम्मि ॥१५६६॥

अर्थ--कुलाल नाम ग्रामका बहिर्भागविषै रिष्टाच्च नामा वैरी मुनिनिकी भरी वसतिकाकू दग्ध करी, तिसमें मुनिनकी सभासहित वृषभसेन नामा मुनि आराधनाकू प्राप्त होत भया। भावार्थ--वृषभसेन नामा आचार्य समस्त मुनिनिकी सभासहित वसतिकामें तिष्ठे थे, तिनकू रिष्टामच्च नामा (रिष्ट नाम का आमात्य) वैरी दग्ध किया! ते दग्ध होतेहू परमवीतरागता धारणकरि आराधनाकू प्राप्त भये, किंचितूहू संक्लेश नहीं किया। गाथा--

जदिदा एवं एदे अणगारा तिव्ववेदणट्टा वि।
एयागी पडियम्मा पडिवण्णा उत्तमं अट्ठं ॥१५६७॥

किं पुण अणयारसहायगेण कीरन्तयम्मि पडिकम्मे।
सघे ओलग्गन्ते आराधेदुं ण सक्केज्ज ॥१५६८॥

अर्थ--निर्यापकाचार्य सस्तरनें प्राप्त भया क्षपककू कहे है-- भो मुने! जो इतने मुनि तीव्रवेदनाकरि पीडित अर असहाय, एकाकी, अर इलाज-प्रतिकार-वैयावृत्य रहित हुयेहू कायरतारहित परम धैर्य धारण करि उत्तम अर्थकू प्राप्त भये, तो भो मुने! तुम तो मुनिनिका सहायसहित अर सर्वसंघकू इलाजमें उपासना करता सन्ता तुम आराधना के आराधनेमें कैसे नहीं उद्यमी होत हो? भावार्थ--आगममें प्रसिद्ध जगतमें विख्यात येते मुनि एकाकी, अर जिनका कोऊ सहायी नहीं, अर कोऊ जिनका वैयावृत्य करने वाला नहीं, अर कोऊ जिनका इलाज नहीं, अर जिन उपरि दुष्ट वैरीनिनें घोर उपसर्ग किये, अर अग्निमें दग्ध किये, अर शस्त्रनितैं विदारे, अर जलमें डबोय दिये, अर पर्वतादिकतै गेरि दिये, तथा तिर्यंचनिकरि भक्षण कियेहू परम साम्यभाव नहीं तज्या! प्राणरहित भये। परन्तु आराधनातें शिथिल नहीं

भये अर आत्मकल्याण किया। तुमारे तो समस्त आचार्यादिक बड़े ज्ञानी, दयावान्, धैर्यके धारी, परमहितोपदेशमें उद्यमी, अर शरीरका वैयावृत्य करनेमें सावधान, अर समस्त योग्य इलाज करनेमें तत्पर, ऐसो सर्वसंघ महाई है; अर तीव्र उपसर्गादिक उपद्रवभी नहीं आये है। अब ऐसे अवसरमे तुम आराधना ग्रहण करनेमे कैसे शिथिल भये हो? आपाको समालना योग्य है। अब कायरता छांडहु, धीरता अंगीकार करहु। गाथा--

जिणवयणममिदभूदं महुरं कण्णाहुदिं सुणन्तेण।

सक्का हु संघमज्जे साहेदुं उत्तम अट्ठं ॥१५६९॥

अर्थ--भो मुने! समस्तसंघके मध्य अमृतरूप अर मधुर ऐसे जिनेन्द्रके वचन कर्णनिमें प्रवेश किया, तिसकूं श्रवण करते जो तुम तिनके उत्तम अर्थ जो च्यारि आराधना ताहि आराधनेकूं समर्थपणा है। भावार्थ--जिनेन्द्रभगवानके वचन श्रवण किये हुये अमृत जो मोक्ष ताका जो आत्मिकसुख तिसका साक्षात् अनुभव करावे है अर मोक्षकूं दे है। तातें जिनवचन अमृतभूत है अर कर्णनिकूं प्रिय हैं तातैं मधुर है। ऐसे जिनेन्द्रके वचन जिनके कर्णद्वार होय हृदयमें प्रवेश किये, सो पुरुष च्यारि आराधनारूप परिणामवेमें कैसे असमर्थ होय? गाथा--

णिरयतिरिक्खगदीसु य माणुसदेवत्तणे य संतेण।

जं पत्तं इह दुक्ख तं अणुचिंतेहि तच्चित्तो ॥१५७०॥

अर्थ--भो क्षपक! इहां तुमारे कहा दुःख आये हैं जिनतें शिथिल भये हो? इस ससारमे परिभ्रमण करते तुम नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगतिनिविषै जो दुःख प्राप्त भये हो, सो तिनमे चित्त लगाय चिंतवन करो! ऐसे कोऊ दुःख बाकी नहीं रहे, जे तुम ससारमे नहीं भोगे। अनन्तवार अग्निमें दग्ध होय होय मरे हो। अनन्तवार जलमें डूबि डूबि मरे हो। अनन्तवार पर्वतनितें पतन करि करि मरे हो। अनन्तवार कूप, तलाब, समुद्रमें मरे हो। अनन्तवार नदीमें बहि मरे हो। अनन्तवार शस्त्रनितें विदारे गये हो। अनन्तवार घाणीमें पेले गये हो। अनन्तवार दुष्टनिकरि खाये गये हो, पीसे गये हो, रांधे गये हो, भुलसे गये हो। अनन्तवार क्षुधाकी तीव्रवेदनातें मरे हो। अनन्तवार तृषाकी वेदनातें मरे हो। अनन्तवार शीतवेदनातें, अनन्तवार उष्णवेदनातें, अनन्तवार वर्षाकी बाधातें, अनन्तवार पवनकी वेदनातें, अनन्तवार विषभक्षणतें मरे हो। अनन्तवार तीव्ररोगकी वेदनाकरि मरे हो। अनन्तवार भयकरि मरे हो। अनन्तवार सिंह, व्याघ्र, सर्पादिक दुष्ट

जीवनिकरि विदारे गये हो। अनन्तवार चोरनिकरि, भीलनिकरि, राजानिकरि, कोटपालकरि, म्लेच्छनिकरि मारे गये हो। अनन्तवार अपनी स्त्री पुत्र बांधवमित्र कुटुम्बादिकनिकरि तथा शत्रुनिकरि मारे गये हो। अब इस अवसरमें मरण का भयकरि रत्नत्रयकूं बिगाडना उचित नहीं है। बहुत दुःखनिकरि अनन्तकाल व्यतीत भया। अब किंचिन्मात्र वेदना के प्राप्त होनेतें परमधर्ममें शिथिल होना उचित नहीं। आगे, पूर्वे नरकमे वेदना भोगि तिनकूं दिखावे हैं। गाथा—

णिरएसु वेदणाओ अणोवमाओ असावबहुलाओ।
कायणिमित्तं पत्तो अणन्तखुत्तो बहुविधावो ॥१५७१॥

अर्थ—भो मुने! इस संसारमें शरीरके निमित्त असंयमी होय ऐसा कर्म उपार्जन किया, जिसतें नरकभूमिकूं प्राप्त भया जो तुम, सो नरकनिविषें बहुतप्रकारकी उपमारहित असाताकी आधिक्यतासहित वेदना अनन्तवार भोगी।

जदि कोइ मेरुमत्तं लोहुण्डं पक्खविज्ज णिरयम्मि।
उण्हे भूमिमपत्तो णिमिसेण विलेज्ज सो तत्थ ॥१५७२॥

अर्थ—उष्णनरकनिमें ऐसी ऊष्मा है, जो कोऊ मेरुप्रमाण लोहका पिण्ड क्षेपै, तो भूमिकूं नहीं प्राप्त होय तितने एक निमेषमात्रमें गलिकरि रस होय बहि जाय। ऐसे पहली दूसरी तीसरी चौथी पृथ्वीके बिलनिमें तथा पांचवीं पृथ्वी के दोय लाख बिल सब मिलि बियासी लाख बिलनिमें घोर उष्णवेदना असख्यातकालपर्यन्त कर्मनिके वशी होय भोगी! तो इस मनुष्यजन्ममें ज्वरादिकरोगजनित तथा तृषाजनित तथा ग्रीष्मकालजनित किञ्चित् उष्णता आय प्राप्त भई तो धर्म के धारकनिकूं समभावनिकरि नहीं सहने योग्य है कहा? यह अवसर समभावतें परीषह सहनेका है, अर नहीं सहोगे तो कर्म बलवान् है, छोडनेका नहीं। तातें परम धैर्य अवलम्बन करो। गाथा—

तह चेव य तद्दहो पज्जलिदो सीयणिरयपक्खित्तो।
सीदे भूमिमपत्तो णिमिसेण सडिज्ज लोहुण्डं ॥१५७३॥

अर्थ—तैसेही दोय लाख नरकके शीतबिल, तिनमें लाख योजनप्रमाण लोहका पिड क्षेपिये तो नरकको शीत-भूमिकूं नहीं प्राप्त होय, तितने एक निमेषमात्रमें खंड खंड होय बिखरि जाय। ऐसी शीतवेदना शीतनरकके पंचमके तथा

छट्ठो सातवीं पृथ्वीके बिलनिमें जन्म धारण करि असंख्यात कालपर्यन्त कर्मनिके बशी होय भोगी, तो अब इस मनुष्य-जन्ममें शीतज्वरादिकजनित तथा शीतकालजनित आई, प्राप्त भई जो शीतवेदना सो धर्मके धारकनिकूं सहनेयोग्य नहीं है कहा ? तातैं सचेत होहू । किंचिन्मात्र थोरे काल आई जो शीतवेदना, तातैं कायर होय परमधर्म बिगाडि संसारमें परिभ्रमण मति करो । गाथा—

होदि य णरये तिव्वा सभावदो चेव वेदणा देहे ।

चुण्णीकदस्स वा मुच्छिदस्स खारेण सित्तस्स ॥१५७४॥

अर्थ--नरकनिविषें स्वभावहीतैं देहविषै तीव्र वेदना होय है । तथा तिनका देह नारकीनिकरि चूर्ण किया तथा मूर्छाकूं प्राप्त भया तथा क्षारजलकरि सींचे हुये नारकीनिके शरीरमे प्रचुर वेदना होय है । गाथा—

णिरयकडयम्मि पत्तो जं दुक्खं लोहकंटएहिं तुम ।

णेरइएहिं य तत्तो पडिओ जं पाविओ दुक्खं ॥१५७५॥

अर्थ—नरकरूप कटक कहिये सेना तिसविषं तथा नरकरूप खाडेविषं नारकीनिकरि पटक्या जो तुम, सो लोहमय कांटेनिकरि जो दुःखकूं प्राप्त भयो हो, तिन नारकीनिके दीये दुःखकूं चितवन करो । इहां तुमारे रोगादिकतैं उपज्या तथा भूमिके स्पर्शतैं उपज्या कहा ? जिसतैं अत्यंत कायर होतहो ! । गाथा—

जं कूडसामलीए दुक्खं पत्तोसि जं च सूलम्मि ।

असिपत्तवणम्मि य जं जं च कय गिद्धकंकेहिं ॥१५७६॥

अर्थ—हे मुने ! नरकनिविषें कूटशाल्मलीवृक्ष जिनके ऊर्ध्व अधः कंटक तिनकरि घसीटनेकरि दुःख प्राप्त भये हो । तथा शूलीके अग्रभागविषै तथा असिपत्रवनविषै तथा वज्रमय है चूंच जिनकी ऐसे गृध्रपक्षी तथा कंकपक्षी तिनकरि दुःखकूं प्राप्त भये हो ।

सामसवलेहिं दोसं वइतरणीए य पाविओ जं सि ।

पत्तो कयंववालुयमइगम्ममसायमदितिव्वं ॥१५७७॥

अर्थ—नरकनिमें श्यामशबलसंज्ञक तथा अंबावरीषजातिके दुष्ट असुरकुमार देव तिनकरि परस्पर करायो घात तथा मारण तिनकरि अति तीव्र दुःख सहे, तिनकूं चित्तमें धारो। तथा दुःसह महादुर्गंध क्षार रुधिर राधिमय महाभयानक वैतरणीनदीमें प्राप्त भये, तिस घोरदुःखकूं कौन वर्णन करि सकै ? सर्व अंग फाटि जाय अर जिनमें अग्नि समान आताप-कारी महान् वेदना करनेवाला जल बहै, ऐसी वैतरणीनदीके प्रवेशकरि महादुःख भोगे। तथा कदंबसमान बालू रेत महा दुःखकारी तिनकूं प्राप्त होयकरिके तीव्र असाताकूं प्राप्त भया ! गाथा—

जं णीलमंडवे तत्तलोहपडिमाउले तुमे पत्तं।
जं पाइओसि खारं कडुयं तत्तं कलयलं च ॥१५७८॥

अर्थ—तथा लोहमय नीलमंडप तिनमें तप्त लोहमय फूतल्या (पुतलियां) तिनके स्पर्शननें बलात्कारकरि प्राप्त भया, तिनके अतिदुःखकारी आलिंगन, तिनकरि जो दुःख प्राप्त भया, तिसकूं मनमें चिंतवन करो। तथा नारकीनिकरि पाया महाक्षार कटुक तप्तायमान रस तिसकरि घोरदुःखकूं प्राप्त भया। भावार्थ—नरकधरामें तप्तायमान महा विकराल जिनका स्वरूप, अर अग्निकूं उगलती, अर तीक्ष्ण कंटकमय तप्तायमान है देह जिनका, ऐसी लोहमय फूतल्यां बलात्कारकरि पकडे हैं, तिनकरि सर्व मर्मस्थान भग्न होय है। अर तिनके स्पर्शन करनेकरि उपजी जो तीव्रवेदना सो वचनद्वार कही नहीं जाय ! सो भोगे है। परंतु आयु पूर्ण भयेविना नरकमें मरण नहीं होय है। तथा ताम्र गालिकरि पावे है। तथा सिंडासेनितें मुख फाडि महाकटुक क्षाररसकूं पावे है। गाथा—

जं खाविओसि अवसो लोहंगारे य पज्जलन्ते तं।
कंडुसु जं सि रद्धो जं सि कवल्लीए तलिओ सि ॥१५७९॥

अर्थ—भो मुने ! जो परवश हुवा संडासेनिकरि मुखकूं विदारि अर प्रज्वलते लोहमय अंगारे भक्षण कराये तिनकूं यादि करो। तथा कढाईनिमें रांधे तथा लोहमय यत्रमें तले गये तिनकूं चितारो। गाथा—

कुट्टाकुट्टि चुण्णाचुण्णि मुग्गरमुसुण्ढिहत्थेहिं।
जं वि सखंडो खंडि कओ तुमं जणसमूहेण ॥१५८०॥

अर्थ—हे मुने ! जो ये मुद्गर मुषंडि[1] तथा हस्तकरिके कूटाकूटी करिके तथा चूर्णाचूर्णि करिके नारकीनिके समूहकरि बारम्बार खंडन किये गये, तिसकूं चितवन करो । भावार्थ—नरकमें नारकी परस्पर आयुधनिकरि तथा हस्तपादनिकरि घात करे हैं । तिनके घातनिकरि तुमहू बारंबार खंडन किये गये हो । गाथा—

जं आवट्टदो उप्पाडिदाणि अच्छीणि णिरयवासम्मि ।

अवयस्स उक्खया जं सतूलमूलायते जिब्भा ।।१५८१।।

अर्थ—बहुरि नरकधराविषै परवश जो तुम, ताके मस्तक छेद्या गया तथा नेत्र उपाडे तथा समस्त जिह्वा उखाली तिसकूं विचारो । गाथा—

कुम्भीपाएसु तुमं उक्कढिओ जं चिरं पि व सोल्लं ।

जं सुट्ठिउव्व णिरयम्मि पउलिदो पावकम्मेहिं ।।१५८२।।

अर्थ—हे मुने ! तुम पापकर्मकरिके कुम्भीपाकनिविषै चिरकालपर्यन्त औटाये, तथा नरकविषै शूलमें पोया मांसकीनांईं अगारविषै सेके पकाये गये, सो चितवन करो । गाथा—

जं भज्जिदोसि भज्जिदंगपि व जं गालिओसि रसयं व ।

जं कप्पिओसि वल्लूरयं व चुण्णं व चुण्णकदो ।।१५८३।।

अर्थ—नरकमें तुम भज्जिदग नाम[2] शाककीनांईं भंगनै[3] प्राप्त भये हो—विदारे गये हो, तथा रसवत्[4] गाले गये हो, अर बल्लूरवत्[5] कतरे गये हो, अर चूर्णवत् चूर्ण किये गये हो । सो चितवन करो । गाथा—

चक्केहिं करकचेहिं य जं सि णिकत्तो विकत्तिओ जं च ।

परसूहि फाडिओ ताडिओ य जं तं मुसंडीहिं ।।१५८४।।

अर्थ—भो मुने ! नरकविषै चक्रनिकरि छेदे गये हो, करोतनिकरि चीरे गये हो, तथा कतरे गये हो, तथा नाना खंडरूप किये गये हो, तथा फरसीनिकरि फाडे गये हो, तथा मुसंडी मुद्गरनिकरि ताडे गये हो, तिनकूं चितवन करो ।

१. मुषंडि-भूसुण्डि=एक शस्त्र, २. भज्जिद नामक शाक, ३ पकाये गये-यह भी अर्थ किया गया है, ४. गुडरस, ५. शुष्क मांसवत् ।

पासेंहि जं च गाढं बद्धो भिण्णो य जं सि दुघणेहि ।

जं खारकद्दमे खुप्पिओ सि ओमच्छिओ अवसो ॥१५८५॥

अर्थ—हे मुने ! तुम नरकविषै जो पासीनिकरि दृढ बाधे गये हो, तथा जो घननिकरि भेदे गये हो अर परवश भये क्षार कर्दममें नीचा मस्तक ऊपरि पग करि गाडे गये हो, तिन दुःखनिकूं यादि करो । गाथा--

जं छोडिओसि जं मोडिओसि जं फाडिओसि मलिदोसि ।

ज लोडिदोसि सिंघाडएसु तिक्खेसु वेएण ॥१५८६॥

अर्थ--भो मुने ! नरकविषै जो थे हस्तपादादिकरि भग्न भये हो, अर जो पटके गये हो, अर जो फाडे गये हो, अर जो मर्द्दले गये हो, अर जो तीक्ष्ण शृंगाटक जे तीक्ष्ण पत्थर तथा कंटक तिनविषै वेगकरिके जो लोटे हो, घसीटे गये हो, तिन दुःखनिकूं चितवन करो । गाथा--

विच्छिण्णगोवंगो खारं सिच्चित्तु वीजिदो जं सि ।

सत्तीहिं विमुक्कीहिं य अदयाए खुंचिओ जं सि ॥१५८७॥

पगलंतरुधिरधारो पलंबचम्मो पभिन्नपोट्टसिरो ।

पउलिदहिदओ जं फुडिदत्थो पडिचूरियंगो य ॥१५८८॥

जं चडयंडतकरचरणंगो पत्तो सि वेदणं तिव्वं ।

णिरए अणंतखुत्तो तं अणुचिंतेहिं णिस्सेसं ॥१५८९॥

अर्थ--हे मुने ! नरकनिविषै छिद्या है अंगोपांग जाका ऐसे तुमकूं अन्य नारकी क्षारकरि सींचिकरिके पवनतें कंपायमान किये हो । बहुरि तीक्ष्ण शक्ति नामा आयुध तिनकरिके दयारहित होय खेंच्या गया हो । तथा पलट्या गया हो । बहुरि झरती है रुधिरकी धारा जिनके ऐसे, अर लटकता है खालडा जाके ऐसे, अर बिदारघा गया है उदर अर मस्तक जाका, अर तप्तायमान है हृदय जाका, अर फूटि गई है आंखि जाकी, अर चूर्णचूर्ण किया है अंग जाका, अर वेदनाकरि

कांपता है हस्तपाद जाका ऐसे तुम नरकविषै तीव्र वेदनाकूं अनन्तबार प्राप्त भये हो। सो समस्त नरकके दुःख चिंतवन करो।

भावार्थ—भो मुने ! इहां तुमारे कहा वेदना है ? नरकनिविषै अनन्तबार जैसी वेदना भोगी तैसी इस लोकमें देखनेमें आवै नहीं, श्रवणमें आवे नहीं, अनुभवमें आवे नहीं। जहां मुद्गरनिकरि मर्मस्थाननिकूं भेदना, करोतनिकरि चीरना, बसोलेनिकरि छीलना, कुहाडेनिकरि फाडना, जत्रनिकरि पीसना, कुम्भीनिमे औटावना, शस्त्रनिकरि खंड करना, नाना आयुधनिकरि मारना, तिनकरि अनन्तकाल दुःख भोगे है। तथा नरकका क्षेत्रही ऐसा है–जो कोटिवृश्चिकनिकरि एककाल वेदना नहीं होय तैसी पृथ्वीके स्पर्शकी वेदना है। तथा पर्वतसमान खैरके अंगारनिपरि लोटनाहू नरककी पृथ्वी के स्पर्शतै सुखकारी दीखे है। तथा महान् कडवी दुर्गन्ध नरककी मृत्तिका, तो कणमात्र भक्षण करतैंही मूर्छित हो जाय। नारकीनिके ऐसी क्षुधा है, जो, सकलपृथ्वीके अन्नादिक भक्षण कियेहू उपशम नहीं होय, अर एक कणमात्र मिले नहीं। तथा नारकीनिके ऐसी तृषाकी प्रबल वेदना है, जो, समस्तसमुद्रका जल पी जाय तोहू उपशम नहीं होय, अर एक बून्द मात्रहू मिले नहीं है। पूर्वजन्ममें अभक्ष्य भक्षण किये हैं, रात्रिमे भोजन किये है, सप्तव्यसन सेये हैं, हिंसादिक महापाप किये हैं, निर्माल्य खाये हैं, व्रतीनिकूं कलंक लगाये है, विपरीत देव गुरु धर्मका मार्ग चलाया है, तिन घोरपापनिका नरक में फल जानना।

तथा नरकभूमिकी मट्टी ऐसी दुर्गन्ध है, जो इस मनुष्यलोकमे एक कणहू आवे तो पहले पटलकीतै आध आध कोसके पंचेन्द्रिय मनुष्य तिर्यंच दुर्गंधकरि मरण करै। तथा दूसरा पटलकीत एक कोसके। ऐसे सातमा नरकको जो गुण-चासमों पटल ताकी मृत्तिकाको एक कणभी जो मध्यलोकमें आवे तो साढा चोईस चोईस कोसके पचेंद्रिय मनुष्य तिर्यंच दुर्गंध करि मरण करे हैं। ऐसी जहां दुर्गन्ध नारकी भोगे है। तथा नरककी पृथ्वी पर्वत वृक्ष तथा नारकीनिके अत्यन्त भयकर रूप देखनेका दुःखका वर्णन कौन कहि सकै ? ऐसी इस लोकमें वस्तुही नहीं, जाकी उपमा दीजे। तथा नारकीनिका तथा दुष्ट असुरकुमारनिका महा भयंकर शब्द सुनिये। तथा नारकीनिके शरीरमें कोटिन रोगनिका एककाल उदय आवे है। तथा मानसिक बडा दुःख नारकीनिके है। तथा असुरकुमारनिमें अबावरीषादि दुष्ट देव अत्यन्त दुःख करनेवाली सामग्री प्रकट करे हैं, तथा मारे हैं, तथा नारकीनिकूं लडावे है। नारकीनिकी ऐसी पर्याय है, जो परस्पर देखतेप्रमाण

अतिक्रोध प्रज्वलित होय है, देखतेही परस्पर नेत्रनिकूं उपाड़े हैं, आंत्रनिकूं काटे हैं, उदरक विदारे हैं। इत्यादिक नाना प्रकारके परस्पर दुःख करे हैं। तहां आयु पूर्ण हुवा विना मरण नहीं। तिलतिलमात्र खड हो जाय हैं, तोहू नारकीनिका शरीर पारेकीनांई मिलि जाय है। आयु पूर्ण हुवा बिना नरकमैतें निकलना नहीं होय है। सो ऐसे दुःख अनन्तकाल भोगे तो अब ये संन्यासमरणका अवसरमें कर्मके उदयतें आये अति अल्पकाल रोगादिकतें उपज्या तथा क्षुधातृषादिकतें उत्पन्न भया कहा दुःख है? अब धैर्य धारणकरि वेदनाकूं समभावनितें सहिकरिके अपना आत्मकल्याण करो। अर भो मुने! जहां अनन्तानन्त काल परिभ्रमण किया ऐसा तिर्यंचगतिके दुःखनिकूं अब ऐसे चिंतवन करो, ऐसा कहे हैं। गाथा—

तिरियगदिं अणुपत्तो भीममहावेदणाउलमपारं।
जन्मणमरणरहट्टं अणंतखुत्तो परिगदो जं ॥१५६०॥

अर्थ—भयानक है महावेदना जामैं, अर नहीं है पार जाका, ऐसी तिर्यंचगतिकूं प्राप्त हुवा, जन्ममरणरूप घटीयंत्रकूं अनन्तवार प्राप्त भया, तिसकूं चिंतवन करो। भावार्थ—जैसे अरहटका घटीयंत्र एकतरफ रीता होता जाय एक तरफ भरता जाय, तैसे निरन्तर एक आयु पूर्ण करि मरे है; अन्यमें जन्मे है। ऐसे जन्म अर मरण निरन्तर करते करते अनन्तकाल व्यतीत भये हैं। तिनमे अनन्तानन्तकाल एकेन्द्रियनिमे व्यतीत भये। अर यद्यपि त्रसपर्यायका असंख्यात काल है तथापि अनेकवारपरिवर्तनकरि अनन्तकालही त्रसमे व्यतीत भया। तिनके दुःख कौन कहि सके? गाथा—

ताडणतासणबंधणवाहणलंछणविहेडणं दमणं।
कण्णच्छेदणणासावेहणणिल्लंछणं चेव ॥१५६१॥

छेदणभेदणडहणं णिपीलणं गालणं छुहातण्हा।
भक्खणमद्दणमलणं विकत्तणं सीदउण्हं च ॥१५६२॥

जं अत्ताणो णिप्पडियम्मो बहुवेदणट्टिओ पडिओ।
बहुएहिं मदो दिवसेहिं चडप्फडन्तो अणाहो तं ॥१५६३॥

अर्थ— बहुरि तिर्यंचगतिविषै नानाप्रकारकरि ताडन तथा त्रासन, बन्धन, वाहन, लंबन, विहुंडन, दमन, कर्णच्छेदन, नासिकावेधन, बीजविनाशन तथा छेदन, भेदन, दहन, निपीडन, गालन तथा क्षुधा, तृषा, भक्षण, मर्दन, मलन, विकीर्णन, शीत, उष्ण इत्यादिक दुःखनिकूं अशरण हुवो तथा नहीं है इलाज जाका ऐसा अर बहुतवेदनाकरि पीडित पडता हुवा बहुत दिननिपर्यन्त दुःख भोगिभोगिकरि मरचा, वडवडाट करता अनाथ हुवा वारम्बार मरण किया, सो चिंतवन करो।

भावार्थ— तिर्यंचगतिविषै नानाप्रकारकी लाठी, मूंकी, चाबकनिकी ताडना भोगी, तथा नानाप्रकारके शस्त्रनिकी त्रास भोगी; तथा नानाप्रकारके दृढबन्धन, नासिकावेधन, हस्तपादादिबन्धन, ग्रीवाबन्धन, पिंजरेनिका बन्धनमें बन्ध्या हुवा तीव्रदुःखकूं प्राप्त भया; तथा कर्णच्छेदन, नासिकाच्छेदन, तथा शस्त्रनितैं वेधन तथा घसीटनां इत्यादिक दुःख सहे; तथा बहुतभारकरि हाडनिके खड हो गये; तथा मार्गमें बोझ लादि बहुत दूरि क्षेत्रपर्यन्त रात्रिमें अर दिनमें बहाया; तथा अग्निमे बल्या, जलमें डूब्या, तथा परस्पर भक्षण किया हुवा, तथा क्षुधा, तृषा, शीत, उष्णजनित घोरवेदना भोगी, तथा पीठ गल गई, अशक्त हुवा कर्दमादिकनिमें, तथा घोर आतापमे पड्या हुवा, घोर क्लेशकू प्राप्त भया तिनकूं चिंतवन करो! इहां कहा दुःख है? गाथा—

रोगाश्रो विविहाश्रो तह य णिच्चं भयं च सव्वत्तो।
तिव्वाओ वेदणाओ धाडणपादाभिघादाओ ॥१५६४॥

अर्थ—तथा तिर्यंचगतिमे नानाप्रकारके रोग, तथा सर्वतरफतै शाश्वतो भय, तथा दुष्टतिर्यंचनिकरि तथा मनुष्यनिकरि कृत घोरवेदना, तथा वचनकृत तिरस्कार, तथा चरणनिके घात तिनकूं दीर्घकालपर्यंत भोगता भया। गाथा—

सुविहिय अदीदकाले अणन्तकायं तुमे अदिगदेण।
जम्मणमरणमणन्तं अणन्तखुत्ता समणुभूदं ॥१५६५॥

अर्थ—हे सुन्दरचारित्रके धारक! पूर्वे गया जो अतीतकाल, तिसविषै अनन्तकाय जो निगोद, तिनविषै प्रवेश करिके तुम जन्ममरणकी पीडाकूं अनन्तबार भोगी है, सो चिंतवन करो। गाथा—

इच्चेवमादिदुक्खं अणन्तखुत्तं तिरिक्खजोणीए ।

जं पत्तोसि अदीदे काले चित्तेहि तं सव्वं ॥१५९६॥

अर्थ—भो मुने ! अतीतकालविषं तिर्यग्योनिविषं इत्यादिक दुःख अनन्तवार प्राप्त भये, सो समस्त चितवन करो । इहां तुमारे कहा दुःख है ? ऐसे तिर्यंचगतिके दुःखनिका स्मरण कराया । अब देवमनुष्यपर्यायमें जे दुःख भोगे, तिनकूं दिखावे हैं । गाथा—

देवत्तमाणुसत्तो जं ते जाएण सकयकम्मवसा ।

दुक्खाणि किलेसा वि य अणन्तखुत्तो समणभूदं ॥१५९७॥

अर्थ—हे मुने ! अपने किये कर्मनिके वशतें देवपणामें तथा मनुष्यपणाविषं उत्पन्न भये भी तुम दुःखनिकूं तथा क्लेशनिकूं अनन्तवार अनुभव किये हैं—भोगे हैं । गाथा—

पियविप्पओगदुक्खं अप्पियसंवासजाददुक्खं च ।

जं वेमणस्सदुख जं दुक्खं पच्छिदालाभे ॥१५९८॥

परभिच्चदाए जन्ते असब्भवयणेहिं कडुगफरुसेहिं ।

णिब्भत्थणावमाणणतज्जणदुक्खाइं पत्ताइं ॥१५९९॥

अर्थ—देवमनुष्यपर्यायविषं अपने प्राणनितेंहू अधिक प्रिय तिनका वियोगका दुःख, तिनकू यादि किये हृदय फटि जाय सो बहुतवार प्राप्त भया । तथा जिनका नाम श्रवणमें आया हुवाहू मस्तकके शूलसमान वेदना करे, ऐसे महादुष्ट अप्रियनिके संग बसनेकरि उत्पन्न भया जो दुःख सो बहुतवार भोगे । तथा वांछितका लाभ नहीं होते जो मनके बिगडनेका जो दुःख प्राप्त भये, तिनकूं चितवन करो । बहुरि परके सेवकपणाविषं पराधीन हुवा अयोग्य वचननिकरिके तथा कटुकवचननिकरि कठोरवचननिकरि, तिरस्कार तथा अपमान तर्जनादिक दुःखनिकूं प्राप्त भये हो, तिनकूं चितवन करो । गाथा—

दीणत्तरोसचिंतासोगामरिसग्गिपउलिदमणो जं ।

पत्तो घोरं दुक्खं माणुसजोणीए संतेण ॥१६००॥

अर्थ—मनुष्ययोनि होते सन्ते दीनपणा तथा रोष, चिंता, शोकके वशि होय दुःख भोग्या तथा क्रोधरूप अग्निकरि प्रज्वलित है मन जाका ऐसा जीव जो घोर दुःखकू प्राप्त भया, सो स्मरण करो। गाथा—

दंडणमुंडणताडणधरिसणपरिमोसर्संकिलेसा ।

धणहरणदारधरिसणघरदाहजलादिधणनासं ॥१६०१॥

अर्थ—तथा तीव्र राजादिकनिके तथा दुष्ट कोटपालनिकरि तथा राजाके दुष्ट मंत्री तथा भील म्लेछनिकरि दिया तीव्र दंडकरि, तथा मुण्डन करनेकरि, तथा नानाप्रकारकी ताडना तथा नरकके बिलसमान बन्दीखानेनिमें रोकनेकरि, तथा चोरनिकरि क्लेशकूं प्राप्त भया, तथा बलात्कारकरि धनका हरणका दुःख, तथा स्त्रीके हरणका दुःख तथा गृहका अग्निकरि दग्ध होनेतें उपज्या दुःख, तथा गृह धनादिकका जलकरि बहनेतें उपज्या दुःख, तथा निर्धन-धनरहित होनेतें उपजे अनेक दुःख मनुष्यजन्ममे बहुतवार प्राप्त भये हो; तिनकूं यादि करि परमसमताग्रहण करना उचित है। गाथा—

दंडकसालट्ठिसदाणि डंगुराकंटमद्दण घोरं ।

कुम्भीपाको मच्छयपलीवणं भत्तवुच्छेदो ॥१६०२॥

दमणं च हत्थिपादस्स णिगलअंदूरवरत्तरज्जूहिं ।

बन्धणमाकोडणयं ओलंवणणिहणणं चेव ॥१६०३॥

कण्णोट्ठसीसणासाछेदणदन्ताण भंजणं चेव ।

उप्पाडणं च अच्छीण तहा जिब्भायणीहरणं ॥१६०४॥

अग्गिविससत्तुसप्पादिवालसत्थाभिघादघादेहिं ।

सीदुण्हरोगदंसमसएहिं तण्णाछुहावीहिं ॥१६०५॥

जं दुक्खं संपत्तो अणन्तखुत्तो मणे सरीरे य ।

माणुसभवे वि तं सव्वमेव चिन्तेहि तं धीर ॥१६०६॥

अर्थ—हे मुने ! मनुष्यभवविषें इस जीवनें जे जे दुःख भोगे हैं, तिनकूं यादि करो। दंड वेद (बेंत) लाठीनिकरि मारे गये हो, घोडेनिके मारनेके कसा कहिये चाबके तिनकी मार भोगी है, तथा लोहंडीनिके संकडेनिकरि चूरे गये हो, तथा ठोकरेनिके प्रहार अर मुष्टीनिके प्रहार भोगे हैं, तथा कंटकनिकी भूमिमें मर्दले गये हो, घोर कहिये भयानक जैसें होय तैसे कढाहेनिमें पकाये गये हो, तथा मस्तक ऊपरि अग्नि प्रज्वलित करी गई है, तथा दमन कीया है, निर्बल कीये गये हो, तथा सांकलनिकरि हस्तपाद बांधे तिनकी वेदना भोगी है, तथा रज्जू रसेनिकरि अंडक बांधि मारे गये हो, तथा रज्जूनिकरि सर्व अगकूं बांधि मारे हैं, तथा आक्रोडन कहिये दोऊ हस्त पृष्ठपरि लेय बांधना तथा ग्रीवामें पासीकरि बाधि वृक्षनिकी शाखानिके झुलावना, तथा एक पांवकूं वृक्षकी शाखाके बांधि नीचे मस्तक करि लटकावना, तथा भोजन पान के अभाव करिमारे गये हो। तथा खाडाखोदि उसमें गाडि धूलिते खाडा भरि पूर्ण करनेकरि पराधीन परघा घोरदुःख भोगे हैं, तथा मनुष्य भवविषें कर्णनिका काटना, ओष्ठका छेदना, मस्तक विदारना, नासिका छेदना, दांतनिका भजन करना, नेत्रनिका उपाडना, जिह्वाका निकालि लेना इत्यादिकनिकरि पराधीन हुवा अनेकवार दुःख भोगे हैं। तथा अग्निमें बलिकरि मरे हो, तथा विषभक्षणकरि मरे हो, तथा शत्रुनिकरि नानाप्रकारके घातनिकरि मारे गये हो. तथा सर्पनिकरि डसे गये हो, सिंहव्याघ्रादिकनिकरि विदारे गये हो, शत्रुनिके घातनिकरि घाते गये हो, तथा शीत उष्ण डांस मच्छरनिकी वेदनाकरि तथा क्षुधातृषादिककी वेदनाकरि मारे गये हो। औरहू कूपमें पड़ना, पर्वततें गिरना, वृक्षके पड़नेकरि जायगा, मकानके पड़नेकरि दबि मरना, तथा वर्षाकी बाधाकरि, पवनकी बाधाकरि, गडेनिकी मारकरि, बिजुलीके पडनेकरि, तीव्र रोगादिककरि घोर दुःख पाय पाय अनेकवार मरे हो। मनुष्यभवहूमें शरीरसम्बन्धी दुःख तथा दारिद्रजनित, अपमानजनित, इष्टवियोगादि जनित मानसिक दुःख समस्त जो दुःख ते अनन्तवार भोगे हैं, तिनकूं हे धीर ! चिंतवन करो। इहां संन्यासका अवसरमें किंचित् उपजी वेदना ताका कहा दुःख है ? अब समभावनितें सहिकरि सर्वदुःखका अभाव करने का अवसर है, तातैं कायरता तजो, परमधैर्य धारणकरि परीषहनिकूं जीति सकलकल्याणकूं प्राप्त होहू ! यह कर्मके विजय करनेका अवसर है, इस अवसरमें गाफिल रहना उचित नहीं। गाथा—

सारीरादो दुक्खादु होइ देवेसु माणसं तिव्वं।
दुक्खं दुस्सहमवसस्स परेण अभिजुज्जमाणस्स ॥१६०७॥

अर्थ—बहुरि देवगतिविषें अन्यदेवनिकरि वाहनादिकपणाकूं प्राप्त किया अर महर्द्धिकदेवनिके आधीन परवश जो देव तिसके शरीरदुःखतेंहू अधिक मानसिक दुःसह दुःख होत है। गाथा--

देवो माणी सन्तो पासिय देवे महद्धिढए अण्णे।
जं दुक्खं सम्पत्तो घोरं भग्गेण माणेण ॥१६०८॥

अर्थ—देव अभिमानी हुवो सन्तो अन्य महर्द्धिकदेवनिनें देखिकरिके मानभगकरिके घोरदुःखकूं प्राप्त भया, तिनकूं चितवन करो। गाथा--

दिव्वे भोगे अच्छरसाओ अवसस्स सग्गवासं च।
पजहंतगस्स जं ते दुक्खं जादं चयणकाले ॥१६०९॥

अर्थ--स्वर्गलोकमें मरणका अवसरमें कर्मके आधीन हुवा बहुत अप्सरानिके दिव्यभोगनिकूं तथा स्वर्गका निवासकूं छांडते देवके महान् दुःख उत्पन्न होय है, तिसकूं चितवन करो। गाथा—

जं गब्भवासकुणिमं कुणिमाहारं छुहादिदुक्खं च।
चिन्तंतगस्स यं सुचि सुहिदयस्स दुक्खं चयणकाले।१६१०।

अर्थ—महापवित्र अर सुखित जो देव ताके मरणकालविषें ऐसा चितवन होय है, जो मेरा गमन अब तिर्यंचगति तथा मनुष्यगतिके गर्भमें होयगा। तहां महादुर्गन्ध जो गर्भवासमें वसना, तिसकूं, अर मनुष्यतिर्यंचगतिसम्बन्धी मलिन दुर्गन्ध आहार, तिसकूं अर क्षुधातृषादिकका दुःखनिकूं चितवन करतेके महान् दुःख उत्पन्न होय है। भावार्थ—इस मनुष्यपर्यायमें निर्धनता, अर सप्तधातुमय मलिन रोगनिका भरया देहका धारना, अर कुदेशमें बसना, अर स्वचक्रपरचक्र का दुःख सहना, अर वैरीसमान बांधवनिमें बसना, अर कुपुत्रके संयोगका संताप सहना, अर दुष्टस्त्रीके संग रहना, अर नीरस आहार भोगना, अपमानका सहना, चोर तथा दुष्टराजा, दुष्टमंत्री कोटपालकी नानात्रासनिकरि भयभीत होय जीवना, अर अकालमे स्त्री पुत्र कुटुम्बादिकका वियोग होना, परका सेवकादिक होय पराधीन रहना, दुर्वचन सहना, क्षुधा तृषादिकनिकी तीव्रवेदना सहना इत्यादिक दुःखनिका भरया जो मनुष्यजन्म तिसकेविषें अपना मरण नजीक आया जाणि

लेवे, तो तत्काल बेखबरि हो जाय, सर्वशरीरका रुधिर पलटि जाय, सावधानी बिगड़ि जाय। अर देखिये तो मनुष्यजन्म में बहोत थोरे दिननतें आया है, अर विकाररहित दुःखरहित दिव्यशरीरादिकहू नहीं पाया है, तिस मनुष्यदेहकूं त्यागतें ही एता दुःख होय है। तो स्वर्गलोकका धातुउपधातुरहित दिव्यशरीर असंख्यातकालपर्यन्त स्वर्गनिका निवास तिसकूं तो छोडना अर दुर्गन्ध मलिन देह धारण करना आपकूं छहमहिना पहली दीखे तिस दुःखकूं कोऊ वचनद्वारे कहवेकूं समर्थ नहीं है। मिथ्यादृष्टि देव महान् विलाप करे है। स्वर्गलोकका छूटना अर प्रेमके भरे असंख्यात देवनिका वियोग होना अर मनुष्यतिर्यंचनिके हाड, मांस, चाम मलमूत्रमय दुर्गन्ध शरीर धारण करना दीखे, तिस दुःखकरि देवनिके बड़ा विलाप जानना। गाथा—

एवं एदं सव्वं दुक्खं चदुगदिगदं च जं पत्तो।
तत्तो अणन्तभागो होज्ज ण वा दुक्खमिमगं ते ॥१६११॥

अर्थ—हे मुने! इसप्रकार चतुर्गतिनिमें परिभ्रमण करता जीव जो समस्तदुःखनिकूं प्राप्त हुवा, तिसतें अनन्तवें भागहू दुःख तुमारे इस अवसरमें नहीं होत है। तुम कैसे कायर होय धर्मकूं मलिन करो हो? गाथा—

संखेज्जमसंखेज्जं कालं ताइं अविस्समन्तेण।
दुक्खाइं सोढाइं किं पुण अविअप्पकालमिमं ॥१६१२॥

अर्थ—हे मुने! जो ऐसे चतुर्गतिके घोरदुःख विश्रामरहित तुम सख्यात काल असंख्यात काल सहे, तो इस संन्यासके अवसरमें अति अल्पकाल आया जो रोगादिजनित दुःख नहीं सहनेयोग्य है कहा? अब धैर्य धारणकरि वेदनाकूं सहिकरि अपना आत्माका कल्याण करो। गाथा—

जदि तारिसाओ तुह्मे सोढाओ वेदणाओ अवसेण।
धम्मोत्ति इमा सवसेण कहं सोढुं ण तीरेज्ज ॥१६१३॥

अर्थ—हे मुने! जो तुम परवश होयकरिके चतुर्गतिमैं तैसी वेदना सही, तो इस अवसरमें वेदनाके सहनेकूं धर्म जानते तुम आपके वशकरिके कैसे सहनेकूं नहीं समर्थ होइए हैं? गाथा—

तण्हा अरणन्त खुत्तो संसारे तारिसी तुमं आसी ।

जं पसमेदुं सव्वोदधीरणमुदगं ण तीरेज्ज ॥१६१४॥

अर्थ—हे मुने ! संसारमें तुमारे तैसी तृषाकी वेदना अनंतवार होत भई, जिसकूं उपशांत करनेकूं सर्व समुद्रनिका जलहू समर्थ नहीं है । गाथा–

आसी अरणन्तखुत्तो संसारे ते छुधावि तारिसिया ।

जं पसमेदुं सव्वो पुग्गलकाओ रण तीरेज्ज ॥१६१५॥

अर्थ—हे मुने ! संसारविषे तुमारे ऐसी क्षुधावेदनाहू अनंतवार भई, जिसकूं उपशम करनेकूं समस्तपुद्गलकायहू नहीं समर्थ होत है । गाथा–

जदि तारिसया तण्हा छुधा य अवसेरण ते तदा सोढा ।

धम्मोत्ति इमा सवसेरण रण कधं सोढुं रण तीरेज्ज ॥१६१६॥

अर्थ—जो पूर्वें तिस कालमें अ–वश होयकरिके तैसी दुस्सह घोरतृष्णा तथा क्षुधा तुम सही, तो अब स्ववश होयकरिके क्षुधा तृषा सहनेकूं धर्म जानते तुम कैसे सहिवेकूं नहीं समर्थ होइये हैं ? भावार्थ–पूर्वें अनंतकालते कर्मनिके वशि होय अनंतवार वेदना भोगी, तो अब चारित्रधर्मके अर्थि उद्यमी तिनकूं स्ववश होयकरिके समभाव धारि वेदना सहना परमकल्याण है, जातें बहुरि वेदनाके पात्र नहीं होहुगे ।

सुइपारणएरण अरणुसट्ठिभोयणेरण य सदोवगहिएण ।

ज्झारणोसहेण तिव्वा वि वेदरणा तीरदे सहिदुं ॥१६१७॥

अर्थ—तीनप्रकार धर्मकथाका श्रवणरूप पानकरिके अर गुरुनिकी शिक्षारूप भोजनकरिके अर ग्रहण कीया जो शुभध्यानरूप औषधकरिके तीव्रवेदना सहिवेकूं समर्थ होइए हैं ।

भीदो व अभीदो वा गिप्पडियम्मो व सपडियम्मो वा ।

मुच्चइ रण वेदरणाए जीवो कम्मे उदिण्णम्मि ॥१६१८॥

(१ पुरणोवगहिएण-यह भी पाठ है ।)

अर्थ—हे मुने ! कर्मका प्रबल उदय होते भयसहित होहू, तथा भयरहित होहू, इलाजरहित होहू, वा इलाजसहित होहू, वेदनाते नहीं छूटोगे । गाथा–

पुरिसस्स पावकम्मोदएण ण करन्ति वेदणोवसमं ।
सुठ्ठु पउत्ताणि वि ओसधाणि अदिवीरियाणी वि ।१६१६।

अर्थ—इस जीवके पापकर्मका उदय तिसकरिके अतिशक्तिवानहू औषध बहुत यत्नतें युक्त कीया हुवाहू वेदनाका उपशम नहीं करे है । गाथा–

रायादिकुडुंबीणं अदयाए असंजमं करन्ताणं ।
धण्णन्तरी वि कादुं ण समत्थो वेदणोवसमं ।।१६२०।।
किं पुण जीवणिकाये दयन्तया जादणेण लद्धेहिं ।
फासुगदव्वेहिं करेन्ति साहुणो वेदणोवसमं ।।१६२१।।

अर्थ—जिनके दया नहीं ऐसे अदयाकरिके असंयमकूं करते जे राजादिक कटुम्बी तिनके जो वेदनाका उपशम करिवेकूं धन्वंतरि जो वैद्यनिका शिरोमणि सोहू समर्थ नहीं । तो जीवनिकायनिमैं दया करते जे तुमारे प्रतीकार करनेवाले साधु जन ते याचनाकरि प्राप्त भये जे प्रासुकद्रव्य तिनकरि संस्तरगत साधुके वेदनाको उपशम करै कहा? करनेकूं नहीं समर्थ होय हैं । भावार्थ–हे मुने ! थे वेदनाकरि आकुल भये, वेदनाका दूरि करनेवाला इलाजकी वांछाकरि अति आकुल हो, जो, 'हमारी वेदना मिटे, जैसे जतन करो ।' सो ऐसे जानहु । जगत मैं राजासमान सामग्री अन्य कौन के होय ? जिनके समस्त औषधि अर जिनके 'यो औषधि करनै योग्य है यो योग्य नहीं' ऐसा विचार नहीं, अर महान् आरंभ करते वा हिंसा करते जिनके किंचित् दया नहीं, अर जिनके भक्ष्य अभक्ष्यका किंचितहू संयम नहीं, तथा रात्रि खावनेका, दिवसमें खावने, बारंबार खावनेका किंचित् हू संजम नहीं । अर बडे २ धन्वंतरिसदृश वैद्य इलाजके करनेवाले, तोहू कर्मके उदयकरि आई रोगजनितवेदना ताहि दूरि करनेकूं समर्थ नहीं ! तो महादया के पालनेवाले अर संजमी ऐसे ये तुमारो वैयावृत्य करनेवाले साधु ते परघरि जाचना करि प्राप्त भये जो प्रासुकद्रव्य तिनकरि तुमारी वेदनाका उपशम कैसे करैंगे ? तातैं धैर्य धारण करि अपना उपजाया कर्मका फल समभावनिकरि भोगो । जो तुमारे नवीन कर्मबंध नहीं होय अर पूर्वे बांध्या तिनकी निर्जरा होय । गाथा–

मोक्खाभिलासिणो संजदस्स णिधणगमणं पि होदि वरं ।
ण य वेदणाणिमित्तं अप्पासुगसेवणं कादुं ॥१६२२॥
णिधणगमो एयभवे णासो ण पुणो पुरिल्लजम्मेसु ।
णाणं असंजमो पुण कुणइ भवसएसु बहुगेसु ॥१६२३॥

अर्थ—मोक्षके अभिलाषी जे संयमी जन तिनकूं मरणकूं प्राप्त होना तो श्रेष्ठ है; अर वेदनाका उपशमके अर्थि अयोग्यद्रव्यका सेवन करना श्रेष्ठ नहीं । जातें मरणकूं प्राप्त होना तो एकजन्म में नाश है–आगेकूं अनेकभवनि में नाश नहीं है; अर असंजम है सो बहुत संकडें भवनिमें नाश करनेवाला है । तातें एकजन्म में थोरे दिन जीवनेकूं संजमका नाश करना उचित नहीं । गाथा–

ण करेन्ति णिव्वुइं इच्छया वि देवा सइन्दिया सव्वे ।
पुरिसस्स पावकम्मे अणुक्कमगे उदिण्णम्मि ॥१६२४॥
किह पुण अण्णो काहिदि उदिण्णकम्मस्स णिव्वुदिं पुरिसो ।
हत्थीहिं अतोरं तं भंतुं भंजिहिदि किह ससओ ॥१६२५॥

अर्थ—जीवके उदयके अनुक्रमकरिके पापकर्मकूं उदय आवता संता सुख करनेकी इच्छा करते ऐसे इंद्रनिकरि सहित समस्त च्यारि निकायके देवही सुख करनेकूं समर्थ नहीं हैं; तो अन्य कोऊ पुरुष असातावेदनीय कर्मकी उदीरणा होते सुख कैसे करसी ? जिसकूं भंग करनेकूं महाबलवान् हस्तीही समर्थ नहीं; तिसकूं बशरहित सुसा कैसे भंग करै !

ते अप्पणो वि देवा कम्मोदयपच्चयं मरणदुक्खं ।
वारेदुं ण समत्था धणिदं पि विकुव्वमाणा वि ॥१६२६॥

अर्थ—कर्मका उदय है कारण जाकूं ऐसा आपके आया जो मरणका दुःख ताहि दूरि करनेकूं अतिशयकरि विक्रिया करते देवहू समर्थ नहीं हैं । गाथा–

उज्झन्ति जत्थ हत्थी महाबलपरक्कमा महाकाया ।
सुत्तो तम्मि वहन्ते ससया ऊढेल्लया चेव ॥१६२७॥

अर्थ—जिस नदीके बड़े प्रवाहमें महान् बलपराक्रमके धारक, अर बडा है देह जिनका, ऐसे हस्तीही बहते चले जाय, तिस प्रवाहविषे सुसा वहै, तिसका कहा आश्चर्य है ?

किह पुण अण्णो मुच्चहिदि सगेण उदयागदेण कम्मेण ।
तेलोक्केण वि कम्मं अवारणिज्जं खु समुवेदं ॥१६२८॥

अर्थ—उदयकूं प्राप्त भया कर्म त्रैलोक्यकरिकेहू रोक्या नहीं जाय ! तो आपकरि उपजाया अर उदयके अवसरकूं प्राप्त भया कर्म आपकूं कैसे छांडै ? भावार्थ-उदयमें आया कर्म कोईकरि निवारण कीया नहीं रुके है । गाथा—

कह ठाइ सुक्कपत्तं वाएण पडन्तयम्मि मेरुम्मि ।
देवे वि य विहडयदो कम्मस्स तुमम्मि का सण्णा ।१६२९।

अर्थ—जिस पवनकरि मेरुका पतन होय, तिस पवनतें शुष्कपत्र कैसे तिष्ठे ? देवनिनेंहू विघ्न करता कर्म, तिसके तुमारेविषें कहा विचार है ? । भावार्थ—जो कर्म स्वर्गलोकके इन्द्रादिक देवनिहीका पतन कर देवे, तो तुमारा पतन करने में तिसके कहा विचार है ? गाथा—

कम्माइं बलियाइं बलिओ कम्मादु णत्थि कोइ जगे ।
सव्वबलाइं कम्मं मलेदि हत्थीव णलिणिवणं ॥१६३०॥

अर्थ—जगतविषें कर्म बलवान् है, कर्मतें अधिक बलवान् जगत में कोऊही नहीं है । जातें विद्याका, बंधुजनका, शरीरका, धनका, परिवारका सर्व बल है, तिनने कर्म एक क्षणमात्रमें जैसे कमलिनीके वनकूं मदोन्मत्त हस्ती मर्दन करै, तैसे मर्दन करे है । गाथा—

इच्चेवं कम्मुदओ अवारणिज्जोत्ति सुठ्ठु णाऊण ।
मा दुक्खायसु मणसा कम्मम्मि सगे उदिण्णम्मि ॥१६३१॥

अर्थ— तातैं भो कल्याणके अर्थी हो ! इस प्रकार कर्मका उदयकूं भलेप्रकार अरोक जानि अर अपने कर्मकूं उदीरणाकूं प्राप्त होते सते मनकरिके दुःख मति करो । भावार्थ–उदयमें आया कर्मकूं जिनेंद्र, अर्हमिंद्र, समस्त इन्द्र, देव टारिनेकूं समर्थ नहीं है । तातैं अरोक जानि असाताका उदयमें दुःख मति करो, दुःख करोगे तो अधिक अधिक असाताकर्म और बंधेगा अर उदय तो टरेगा नहीं । गाथा–

पडिकूविदे वि सण्णे रडिदे दुक्खादिदे किलिट्ठे वा ।
ण य वेदणोवसामदि णेव विसेसो हवदि तिस्से ॥१६३२॥
अण्णो वि को वि ण गुणोत्थ संकिलेसेण होइ खवयस्स ।
अट्टं सुसंकिलेसो उज्झाणं तिरियाउगणिमित्तं ॥१६३३॥

अर्थ—हे मुने ! विलाप करनेतैं, विषादरूप होनेतैं, रोवनेतैं, दुःखकरि पीडित होनेतैं, तथा क्लेशरूप होनेतैं; वेदना नहीं उपशमेगी–नहीं घटेगी, वेदनामैं तफावतभी नहीं होयगा । वेदनामैं सक्लेश करनेकरि अन्य कोऊभी गुण नहीं उपजैगा । एक बहोत संक्लेशथकी तिर्यंचगतिका कारण आर्त्तध्यान होयगा । गाथा–

हदमागासं मुट्ठीहिं होइ तह कंडिया तुसा होंति ।
सिगदाओ पीलिदाओ घुसिलिदमुदयं च होइ जहा ॥१६३४॥

अर्थ—जैसे मुष्टिनिके प्रहारकरि आकाशको ताडना करना निरर्थक है, जैसे तंदुलनिके निमित्त तुषनिकूं खोटना कूटना निरर्थक है, जैसे तेलके अर्थि बालू रेतका पीलना निरर्थक है, जैसे घृतके अर्थि जलका विलोडना मथनां निरर्थक है, केवल महान् खेदका कारण है; तैसे असातावेदनीयादिक अशुभकर्मकूं उदय आवता जो विलाप करना, रोवना, संक्लेश करना, दीनता भाखना निरर्थक है–दुःख मेटनेको सो समर्थ नहीं, केवल वर्तमानकालमें दुःख बधावे अर आगाने तिर्यंचगति तथा नरकनिगोदकूं कारण ऐसा तीव्रकर्म बांधै जो अनंतकालहू मैं नहीं छूटे । गाथा–

पुव्वं सयमुवभुत्तं कालं णाएण तेत्तियं दव्वं ।
को धारणीओ धणिदस्स देन्तओ दुक्खिओ होज्ज ॥१६३५॥

तह चेव सयं पुव्वं कदस्स कम्मस्स पाककलम्मि ।
णायागयम्मि को णाम दुक्खिओ होज्ज जाणन्ता ॥१६३६॥

अर्थ—जैसे कोऊ पुरुष किसीका द्रव्य करजकरि आप भोग्या, अब करार पूर्ण भये अवसरविषे न्यायमार्गकरि तिस धनवानका तितना द्रव्य देनेमें कौन ऋणवान् पुरुष न्यायतें दुःखित होय ? न्यायमार्गी तो परका धनका करज लिया सो करार पूर्ण भये देनेमें दुःख नहीं करे। तैसेही पूर्वे आप कर्म उपार्जन किया, अब न्यायमार्गकरि अवसरमें उदय आय रस दिया तिसकूं भोगता कौन ज्ञानी दुःख करे ? ज्ञानी तो कर्मका ऋण चुकनेका बडा आनन्द माने है । गाथा—

इय पुव्वकदं इणं मज्ज महं कम्मारणगत्ति णाऊण ।
रिणमुक्खणं च दुक्खं पेच्छसु मा दुक्खिओ होज्ज ॥१६३७॥

अर्थ—या प्रकार अबार हमारे पूर्वकृत कर्म उदय आया है ऐसे जाणिकरिके दुःखकूं ऋणमोचनकीनांईं देखहु अर दुःखित मति होहु । भावार्थ—कर्मका उदयजनित दुःख आवे है तिसकूं अपना ऋण चुकना मानि हर्ष मानहु अर दुःख मति करो । गाथा—

पुव्वकदमज्झ कम्मं फलिदं दोसेण इत्थ अण्णस्स ।
इदि अप्पणो पओगं णच्चा मा दुक्खिदो होज्ज ॥१६३८॥

अर्थ—जो उपसर्ग तथा वेदना दुःख आवते चिंतवन करै हमारा पूर्वकृत कर्म फल्या है इसमें अन्य किसीका दोष नहीं है, ऐसे आपके प्रयोग जानि दुःखित मति होहु । गाथा—

जदिदा अभूदपुव्वं अण्णेसिं दुक्खमप्पणो चेव ।
जादं हविज्ज तो णाम होज्ज दुक्खाइदुं जुत्तं ॥१६३९॥

अर्थ—भो मुने ! जो दुःख अन्यके पूर्व नहीं हुवा होइ अर तुमारेही दुःख उत्पन्न भया होय, तो दुःख करना जोग्य है । संसारमें पूर्वकर्मके उदयतें समस्त जीवनके ही दुःख आवे है, तुमारेही दुःख नहीं आया है । गाथा—

सव्वेसिं सामण्णं अवस्सदायव्वयं करं काले ।
णाएण य को दाऊण णरो दुक्खादि विलवदि वा ।१६४०।
सव्वेसिं सामण्णं करभूदमवस्सभाविकम्मफलं ।
इण मज्ज मेत्ति णच्चा लभसु सदिं तं धिदिं कुणसु ।१६४१।

अर्थ--जो समस्त जीवनिके अवसरविषै सामान्य कर देनेयोग्य होय, तो न्यायकरिके देना आया कर जो हासिल वा दण्ड ताहि देनेमें कौन नर दुःखित होय विललाप करे ? न्यायमार्गी तो नहीं दुःख करै । तैसेही समस्तजीवनिके सामान्य कररूप कर्मका फल है, सो कर्मका फल आजि हमारे उदय आया है. ऐसे जानिकरि अपना स्वरूपकूं स्मरण करिके अर धैर्य धारण करो । भावार्थ—संसारी जीवनिके अनादिकालतें कर्म लगि रहे हैं, ते कर्म अपने उदयके अवसरमें समस्तही देव मनुष्य तिर्यंच नारकादिक जीवनिकूं अपना शुभ अशुभ फल देवे हैं, तातें कर्मका फल है सो कर है, कर तो दियां ही सरसी । तो अवसर पाय तुमारे कोऊ असाताका उदय आगया, अब न्यायमार्गतें आया सो भोगना पडेहोगा । जो समभावनितें भोगते दुःखकूं नहीं प्राप्त होउगे, तो फल देय शीघ्र निर्जरेगा । अर कायर होय भोगते दुःखित होउगे, तो कर्म अतिप्रबल है ! तीर्थंकर, चक्री, नारायण, बलभद्र, इन्द्र, अहमिंद्रनिकूं नहीं छोड्या, तो तुमकूं कैसे छोडेगा ? प्रबल रस भोगोगे अर अन्यायमार्गी होय अधिक अधिक कर्मबन्धकूं प्राप्त होउगे । तातें न्यायमार्गी होय अर कर्मके ऋणतें छूट्या चाहो हो, तो कर्मके उदयमें आकुलता त्यागि परम धैर्य धारण करो । गाथा—

अरहन्तसिद्धकेवलि अधिउत्ता सव्वसंघसक्खिस्स ।
पच्चक्खाणस्स कदस्स भंजणादो वरं मरणं ।।१६४२।।

अर्थ—अरहन्त अर सिद्ध अर केवलीनिकूं तथा तिस क्षेत्रमें तिष्ठते देवतानिकूं तथा समस्त संघकूं साक्षीकरिके किया जो त्याग, तिसका भंग करनेतें मरण श्रेष्ठ है । मरण तो अवश्य होयहोगा, परन्तु व्रतभंग करना इस लोकमें महानिंद्य है, तथा मार्ग बिगाडना है, धर्मका अपवाद करावना है, अर परलोकमें बहुतकालपर्यंत अनन्तदुःखनिसहित अनन्त जन्ममरण करना है । गाथा--

आसादिदा तओ होति तेण ते अप्पमाणकरणेण ।

राया विव सक्खिकदो विसंवदन्तेण कज्जम्मि ॥१६४३॥

अर्थ--जैसे राजाकी साक्षिकरि किया जो कार्य तिसमें विसम्वाद करता, अन्यप्रकार करता, पुरुष राजाकी अवज्ञा करी-अपमान किया । तैसे अरहन्तादिक पंचपरमेष्ठी की साक्षीतें ग्रहण किये जे व्रतादिक तिनकूं भंग करता पुरुष अरहन्तादिकनिकी विराधना करी-अवज्ञा करी, उनकूं कछु गिण्या नहीं ! उनतें पराङ्मुख भया । गाथा--

जइ दे कदा पमाणं अरहन्तादी हवेज्ज खवएण ।

तस्सक्खिदं कयं सो पच्चक्खाणं ण भंजिज्ज ॥१६४४॥

अर्थ--भो मुने ! जो अरहन्तादिक पंचपरमेष्ठी तुमने प्रमाण किया हैं, तो तिनकी साक्षीतें किया जो त्यागव्रत सल्लेखना ताहि भंग मति करो । गाथा--

सक्खिकदरायहीलणमावहइ णरस्स जह महादोसं ।

तह जिणवरादिआसादणा वि दोसं महं कुणदि ॥१६४५॥

अर्थ--जैसे राजाकूं साक्षी करिके किया कार्यका लोप करना है, सो राजाका तिरस्कार है, सो पुरुषके महादोषकूं प्राप्त करे है; तैसे जिनवरादिकांकी विराधनाहू इस लोक परलोकमे जीवके महान् दोषकूं करे है । गाथा--

तित्थयरपवयणसुदे आइरिए गणहरे महड्ढीए ।

एदे आसादन्तो पावइ पारंचियं ठाणं ॥१६४६॥

अर्थ--तीर्थंकरनिकी तथा रत्नत्रयकी, श्रुतज्ञानकी, आचार्यनिकी, गणधरनिकी, महर्द्धिकनिकी विराधना करता पुरुष पारंचिक नामा प्रायश्चित्तकूं प्राप्त होय है । पंचपरमेष्ठिनिकी अवज्ञा करते पुरुषके महान् प्रायश्चित्त होय है । गाथा--

सक्खीकयरायासादणे हु दोस करे हु एयभवे ।

भवकोडीसु य दोसं जिणादि आसादणं कुणइ ॥१६४७॥

अर्थ—राजाकूं साक्षी करि राजाका लोपना एक भवमें दोष करे है अर जिनादिकको विराधना करी हुई कोटि जन्मनिमें दोष करे है। गाथा—

मोक्खाभिलासिणो संजदस्स णिधणगमणं पि होइ वरं।

पच्चक्खाणं भंजंतस्स ण वरमरहृदादिसक्खिकदा।।१६४८।

अर्थ--मोक्षका अभिलाषी ऐसा सयमीके मरणकूं प्राप्त होना श्रेष्ठ है, परन्तु अरहन्तादिकनिकी साक्षीकरि किया प्रत्याख्याम जो त्याग, ताका भंग करना श्रेष्ठ नहीं है। गाथा—

णिधणगमणमेयभवे णासो ण पुणो पुरिल्लजम्मेसु।

णासं वयभगो पुण कुणइ भवसएसु बहुएसु।।१६४६।।

अर्थ—मरणकूं प्राप्त होना तो एकभवमे नाश है, अन्य होनहार जन्मनिमें नाश नहीं है, अर व्रतभंग करना बहुत भवनिके—सैकडेनिमें अपना नाश करे है। गाथा—

ण तहा दोसं पावइ पच्चक्खाणमकरित्तु कालगदो।

जह भंजणा हु पावदि पच्चक्खाणं महादोसं।।१६५०।।

अर्थ--प्रत्याख्यानकूं नहीं करिके जो मरण करे है, सो तैसे दोषकूं प्राप्त नहीं होय है, जैसे प्रत्याख्यानके भंजनतें महादोषकूं प्राप्त होय है। भावार्थ—जो संन्यास नहीं धारण करे, अर असंयमका त्यागहू नहीं करिके मरण करे है, सो तो अनादिका संसारी है हो, उसने तो रत्नत्रय पायाही नहीं। परन्तु जो संन्यास धारण करि महाव्रतादि अंगीकार करि छांडे है–बिगाडे है, सोपुरुष अनन्तानन्त कालहूमें रत्नत्रयकूं नहीं प्राप्त होय है। जो त्यागकी वस्तुकासेवन है, सो प्रत्याख्यान का भंग है, सो आहारकूं त्यागिकरिके बहुरि आहारकूं प्रार्थना करता जीव समस्त हिंसादिकनिकूं अंगीकार करे है। गाथा—

आहारत्थं हिंसइ भणइ असच्चं करेइ तेणक्कं।

रूसइ लुब्भइ मायां करेइ परिगिण्हदि य संगे।।१६५१।।

अर्थ—आहारके अर्थि छकायको जीवनिके हिंसा करे है, असत्यवचन बोले है, चोरी करे है, रोष करे है, लोभ करे है, मायाचार करे है, परिग्रहकूं ग्रहण करे है। भावार्थ—आहारकी वांछा करता जीव ऐसा आरम्भ करे है जिसमें असख्यात अनन्तजीवनिका घात हो जाय है, अभक्ष्यभक्षण करे है। हिंसाकूं नहीं गिने है, आहारही के अर्थि निंद्य असत्यवचननिमें प्रवर्तन करे है। आहारका लोभी हुवाही परधनहरण करे है, क्रोध लोभ मायाचारहू आहारमें लुब्ध हुवाही करे है, परिग्रहमें अति आसक्तता भी भोजनका लंपटीहीके जानहु। गाथा—

होइ णरो णिल्लज्जो पयहइ तवणाणदंसणचरित्तं ।

आमिसकलिणा ठइओ छायं मइलेइ य कुलस्स ॥१६५२॥

अर्थ--आहारका लंपटी पुरुष निर्लज्ज होइ है, आहारका लंपटी अपना पदस्थ नहीं देखे है, कुलजाति नहीं देखे है, बहुत धनका धनीहू नीच रंक शूद्रादिकनिके घरि भोजनकूं जाय बैठे है, भोजनका लोलुपी, तपश्चरण, ज्ञानाभ्यास, दर्शन, चारित्र समस्तकूं छांडि भोजनमें पडे है, अपना अपमानादिककूं नहीं देखे है, अभक्ष्यमें उच्छिष्टमें मांसादिकनिमें आसक्त होय करिके अपना उत्तम कुलकी कांतिकूं मलिन करे है। गाथा--

णासदि बुद्धी जिब्भावसस्स मंदा वि होदि तिक्खा वि ।

जोणिगसिलेसलग्गो व होइ पुरिसो अणप्पवसो ॥१६५३॥

अर्थ--जो जिह्वा इन्द्रियके वश होय है, तिस पुरुषकी बुद्धि नष्ट होय है, तथा बुद्धि विपरीत होय भ्रष्ट होय है, बहुरि तीक्ष्णबुद्धिहू अत्यन्त मन्द होय है। बहुरि आहारका लम्पटी आपका वश नहीं रहे है. पराधीन होय है, जैसे जोणिकश्लेषलग्न पुरुष पराधीन होय है; तैसे जानहु। इहां "जोणिकसिलेसलग्गो"[1] इस पदका अर्थ नहीं जाननेमें आया है, ताते नहीं लिख्या है। [संस्कृत टीका--णासदि बुद्धि–बुद्धिर्नश्यति आहारलम्पटतया युक्तायुक्तविवेकाकरणात्। कस्य ? जिह्वावशस्य। तीक्ष्णाऽपि सती पूर्वं बुद्धिः कुण्ठा भवति। रसरागमलोपप्लुता अर्थयाथात्म्यं न पश्यतीति पारसीकश्लेशलग्न लिंग इव भवति। पुरुषोऽनात्मवशः। इस टीकापरसे विद्वज्जन जान लेवेंगे।]

धीरत्तणमाहप्पं कदण्णदं विणयधम्मसब्भावो ।

पयहइ कुणइ अणत्थं गललग्गो मच्छओ चेव ॥१६५४॥

[1] मूलाराधना में जोणिसिलेसलग्गो का अर्थ—वज्रलेपात्रलग्न इव किया है।

अर्थ—भोजनका लम्पटी धीरपणाकूं छांडे है। जातें अतिलम्पटीके सोधने, देखनेमें विचार नहीं होय है, अति-गृद्धितातें भक्षणही करे है। बहुरि भोजनका लम्पटी अपना कुल जाति पदस्थादिक नहीं अवलोकन करता जैठे मिष्टभोजन मिलि जाय तैठें ही योग्य अयोग्यका विचारही नहीं करता भक्षण करे है, तातें अपना महानपणाकूं हू छांडे है। बहुरि भोजनका लम्पटी परका उपकारकूंहू नहीं जाणे है, भोजनके देनेवालेके वशीभूत हुआ आपका उपकार करनेवाला स्वामी गुरु मित्र बांधवादिक तिनका उपकारकूं लोपि उलटा आप अपकार करनेमें उद्यमी होय है। बहुरि भोजनका लम्पटी का विनयहू नहीं रहे है, जातें विनय तो लम्पटतारहित निर्लोभीका होय है, भोजनके लम्पटीका विनय तो अपना स्त्रीपुत्रादिक ही नहीं करे है, तातें भोजनका लम्पटी विनयहू छांडे है। बहुरि जिसके भोजन में लम्पटता, तिसके धर्मका श्रद्धानकाहू अभावही होय है, जो आत्मिकसुख जाने है, तिसके भोगनिमें अरुचि विरक्तता हुवा बिना रहै नहीं। तातें भोजनका लम्पटी धर्मका श्रद्धानरहित ही होय है। तातें धर्मकी श्रद्धाकाहू त्यागही भया। जैसे कंठकूं पकड़ि मत्स्य अनर्थ करे है, तातें अधिक अनर्थ भोजनकी लम्पटता करे है। गाथा—

आहारत्थं पुरिसो माणी कुलजादि पहिदकित्ती वि।
भुंजन्ति अभोज्जाए कुणइ कम्मं अकिच्च खु ॥१६५५॥

अर्थ—जो पुरुष महान् अभिमानी होय अर जिसके कुलकी जातिकी कीर्तिहू जगतमें विख्यात होय, ऐसाहू पुरुष भोजनके अर्थि लम्पटी होयकरिके नहीं भोजन करनेयोग्य ऐसे अभक्ष्य तथा परकी उच्छिष्टादिक भक्षण करे है। तथा भोजनका लम्पटी दीन हुवा परके मुखकूं देखता फिरे है। तथा याचना करे है, नहीं करने योग्य निंद्यकर्म करे है। गाथा—

आहारत्थं मज्जारिसुंसुमारी अही मणुस्सी वि।
दुब्भिक्खादिसु खायन्ति पुत्तभंडाणि दइयाणि ॥१६५६॥

अर्थ—बहुरि दुर्भिक्षविषें मार्जारी तथा सुंसुमारी—जो जलमें बसनेवाला मत्स्यविशेष तथा सर्पिणी तथा मनुष्यिणीहू आहारके अर्थि अपने अतिवल्लभ सन्तान तिनहूकूं भक्षण करे है। गाथा—

इहपरलोइयदुक्खाणि आवहन्ते णरस्स जे दोसा।
ते दोसे कुणइ णरो सव्वे आहारगिद्धीए ॥१६५७॥

अर्थ—इस लोक तथा परलोकमें मनुष्यके दुःख देनेवाले जे दोष हैं, तिन सर्व दोषनिकूं मनुष्य आहारका अतिगृद्धिताकरिके करे है। गाथा—

अवधिट्ठाणं णिरयं मच्छा आहारहेदु गच्छन्ति।
तत्थेवाहारभिलासेण गदो सालिसिच्छो वि ॥१६५८॥

अर्थ—स्वयंभूरमण समुद्रके महामत्स्य आहारकी गृद्धिताकरिके अनेक जीवनकूं भक्षण करिके सप्तम नरककूं गमन करे है। अर शालिसिक्थ नामा मत्स्य अत्यन्त अल्प शरीरका धारक जो कोऊ जीवकूं भक्षण करनेकूं समर्थ नहीं है, तोहू भोजनमें अति अभिलाष करिकेही सप्तम नरककूं प्राप्त होय है। गाथा—

चक्कधरो वि सुभूमो फलरसगिद्धीए वंचिओ सन्तो।
णट्ठो समुद्दमज्झे सपरिजणो तो गओ णिरयं ॥१६५६॥

अर्थ—सुभौम नामा चक्रवर्ती छखंड भरतक्षेत्रको स्वामीहू कोऊ एक विदेशीका भेषधारी आया जो वैरी देव, ताका ल्याया एक फल, तिसके रसकी लम्पटताकरि ठिग्या गया सन्ता परिवारके लोकनिसहित समुद्रमें डूबिकरि सप्तमनरककूं प्राप्त भया! तो औरनिकी कहा कथा? गाथा—

आहारत्थं काऊण पावकम्माणि तं परिगओ सि।
संसारमणादीयं दुक्खसहस्साणि पावन्तो ॥१६६०॥

पुणरवि तहेव तं संसारं किं भमिदुमिच्छसि अणन्तं।
जं णाम ण वोच्छिज्जइ अज्जवि आहारसण्णा ते ॥१६६१॥

अर्थ—हे मुने! तुम पूर्वजन्मनिमें आहारके अर्थिहो पापकर्मनिकूं करिके हजारनि दुःखनिकूं प्राप्त होते सन्ते अनादिसंसारमें प्रवेश किया, अनादिहीका निगोदादिकनिमे दुःख भोगते अनादि अनन्त काल व्यतीत किया, अब फेरिहू अनन्तसंसारमें भ्रमिवेकी इच्छा करोहो कहा? जो, ऐसा साधुपणाका अवसर पायकरिकेहू अबभी तुमारे आहारमें वांछा

नहीं घटे है । जानिए है ऐसा जिनेन्द्रभगवानका परमागमका उपदेश, अर व्रत धारण करना, अर संन्यास ग्रहण करना— ऐसे अवसरहूमें आहारमें लालसा नहीं नष्टभई तो अनन्तानन्तकाल संसारमे क्षुधा, तृषा, रोग, जन्म, मरण वियोगादिक करि दुःखही भोगवोगे । गाथा—

जीवस्स णत्थि तित्ती चिरपि भुंजन्तयस्स आहारं ।
तित्तीए विणा चित्तं उव्वूरं उद्धुदं होय ॥१६६२॥

अर्थ— हे मुने ! जो तुम या विचारो "मै आहारकरि तृष्णाकूं मेटि तृप्त होऊंगा" सो कदाचित् आहारकरि जीव तृप्त नहीं होय है । या क्षुधा वेदना तो वेदनीयकर्मकी शक्तिका नाश हुवा मिटेगी । सो देखहू—अतिदीर्घकालतैंहू आहारकूं भक्षण करते जीवके तृप्ति नहीं है अर तृप्तिविना चित्त अत्यन्त चलायमानही रहे है । भावार्थ—संसारी जीव अनादिकालतें भोजन करे है, तोहू तृप्ति नहीं भई है, अर तृप्तिताविना सुख काहेका ? उलटी चाहकी दाह बधै है । गाथा—

जह इंधणेहिं अग्गी जह य समुद्दो णदीसहस्सेहिं ।
आहारेण ण सक्को तह तिप्पेदुं इमो जीवो ॥१६६३॥

अर्थ—जैसे अग्नि इंधनकरि तृप्त नहीं होय है, अर समुद्र हजारनि नदीनिकरि तृप्त नहीं होय है, तैसे यो जीव आहारकरि तृप्ति करनेकूं नहीं शक्य है, उलटी लालसाही बधे है । गाथा—

देविंदचक्कवट्टी य वासुदेवा य भोगभूमा य ।
आहारेण ण तित्ता तिप्पदि कह भोयणे अण्णो ॥१६६४॥

अर्थ—आहारकरिके देवेन्द्र अर चक्रवर्ती अर वासुदेव अर भोगभूमिके मनुष्यही तृप्त नहीं भये, तो भोजनकरिके अन्यजन तृप्त होय कहा ? कदाचित् तृप्त नहीं होय । भावार्थ—देवनिके लाभांतरायका अत्यन्त क्षयोपशमतें उपज्या अत्यन्त बल वीर्य तेज कांतिका करनेवाला दिव्य स्वाधीन अमृतमय आहार तिसकूं असंख्यात कालपर्यंत भोग्या तोहू क्षुधावेदनाका अभाव होय तृप्तिता नहीं भई । तथा चक्रवर्ती नारायण के दिव्य आहार अत्यन्त पुण्यके प्रभावतें भोगांतराय लाभांतराय के अत्यंत क्षयोपशमतें प्राप्त भया, तिसकूं बहुतकाल भोग्या, तथा कल्पवृक्षनितें उपज्या दिव्य आहार भोग

भूमिके मनुष्यनिके असंख्यात कालपर्यन्त भोग्या, तोहू तृप्ति नहीं भई ! तो अन्य सामान्य अन्नादिकनिके किंचित् आहारतें कैसी तृप्ति होयगी ? तातें धैर्य धारणकरि आहारकी वांछाकूं छांडना योग्य है । गाथा—

उद्धुदमणस्स ण रदी विणा रदीए कुदो हवदि पीदी ।

पीदीए विणा ण सुहं उद्धुदचित्तस्स घण्णस्स ॥१६६५॥

अर्थ—भोजनके लम्पटीका चित्त एक आहारहू में नहीं ठहरे है-मिष्टभोजन करते करते खाटा भोजनमें वांछा उपजे है, बहुरि चिरपरामें, बहुरि लवणमें, बहुरि अन्य अन्य भोजनमें चित्त उडता फिरे है । यातें चलायमान है चित्त जाका ताके रति नहीं होय है, अर रतिविना प्रीति नहीं होय, अर प्रीति बिना सुख नहीं होय है । तातें आहारमें गृद्धिता लम्पटताकरि चलायमान है चित्त जाका तिसके सुख कदाचित् नहीं होय है । गाथा—

सव्वाहारविधाणेहिं तुमे ते सव्वपुग्गला बहुसो ।

आहारिदा अदीदे काले तित्तिं च सि ण पत्तो ॥१६६६॥

किं पुण कंठप्पाणो आहारेदूण अज्जमाहारं ।

लभिहिसि तित्तिं पाऊणुदधिं हिमलेहणेणेव ॥१६६७॥

अर्थ—हे मुने ! अतीतकालविषं तुम समस्त आहारके विधानकरिके समस्तजातिके पुद्गल बहुतवार भक्षण किये, तोहू तुमारे तृप्तता नहीं भई । तो अब कंठगतप्राण जो तुम, सो इस अवसरमें किंचित् आहार ग्रहण करिके तृप्तताकूं प्राप्त होहुगे कहा ? नहीं तृप्त होहुगे । जैसे कोऊ समुद्रका समस्तजल पीयकरिकेही तृप्त नहीं भया, सो उसकी बून्दके चाटने करि कैसे तृप्त होयगा ? तातें आहारकी अभिलाषा छांडिकरि संतोषरूप परम अमृतका आस्वादन करो । गाथा—

को एत्थ विंभओ दे बहुसो आहारभुत्तपुव्वम्मि ।

जुंजेज्ज हु अभिलासो अभुत्तपुव्वम्मि आहारे ॥१६६८॥

अर्थ—इस संसारमें पूर्वकालमें बहुतवार भोग्या जो आहार, तिसके भोगनेमें तुमारे कहा आश्चर्य है ? जो पूर्वे नहीं भोग्या ऐसा आहारविषं अभिलाष करे तो युक्तभी है । सो ऐसा कोऊ आहार नहीं, तिसकूं बहुतवार तुम नहीं भोग्या । गाथा—

आवादमेत्तसोक्खो आहारे ण हु सुखं बहुं अत्थि ।
दुःखं चेवत्थ बहुं आहट्टन्तस्स गिद्धीए ॥१६६९॥

अर्थ—यो, आहार जिह्वाका अग्रविषे पतनमात्र सुखरूप भासे है, बहुतकाल सुख नहीं है, अतिगृद्धिताकरि ग्रहण करनेवाले के बहुत दुःखही है । भावार्थ--आहारको लम्पटी जीव बहुतकाल तो नानास्वादरूप जो आहार ताको वांछाते आकुलतारूप दुःखी रहे है । बहुरि बहुतकाल आहारकी विधि मिलावनेकूं धनसंग्रह करना-कुमावना, सेवा करना, दीनता करना तिनकरि दुःखी रहे है । बहुरि स्त्रीपुत्रादिक आपके जे वांछित आहारकी विधि मिलावे हैं, तिनके आधीन होना तथा आप बहुतकालपर्यंत आरम्भ करि खावना अर तिसका स्वाद एक क्षणमात्रका है, ताते आहारकी गृद्धिताते दुःखही जानहु । गाथा—

जिब्भामूलं बोलेदि वेगदो वरहओव्व आहारो ।
तत्थेव रस जाणइ ण य परदो ण वि य से पुरदो ॥१६७०॥

अर्थ--आहार करनेमें सुखके कालकी मन्दताकूं दिखावे है-श्रेष्ठहू आहार घोडेकीनांई वेगकरिके जिह्वाका मूलकूं उल्लंघन करे है अर जिह्वाका अग्रभागहो रसकूं जाने है, जिह्वाका अग्रमें नहीं प्राप्त हुवा तिसपहलीहू रसकूं नहीं जाने है, अर जिह्वाते पार उतरया पाछेहू स्वाद नहीं रहे है । ताते रसके आस्वादकूं जाननेका सुखहू अत्यन्त अल्पकालही रहे है । भावार्थ-ससारी जीव अतिलंपटताकरिके तो भोजनके जीमनेमें प्रवर्ते अर ग्रास मुखमें मेलताप्रमाण रसना इन्द्रियको स्पर्श होतेंही ऐसी गृद्धिता उपजे, सो आहारकूं किंचित्कालहू ठहरने नहीं देवे, रस छूटे पाछे निगलि कंठमें उतारिही जाय । अर रसकूं स्वादनेमात्रहीमें अतिगृद्धिताते सुख दीखे है, जिह्वाके स्पर्श ही हुवा, स्पर्शनपहलीहू सुख नहीं छा अर निगलि गयापाछेहू सुख नहीं रहे है । गाथा—

अच्छिणिमिसेणमेत्तो आहारसुहस्स सो हवइ कालो ।
गिद्धीए गिनइ वेगं गिद्धीए विणा ण होइ सुखं ॥१६७१॥

अर्थ— सो आहारके आस्वादते उपज्या जो सुख तिसका काल नेत्रके टिमकारने मात्र है । ज्यों ज्यों ग्रासमैतें रस निकसे है, त्यो त्यों गृद्धिताकरिके वेगकरि निगले है । अर गृद्धताविना सुख नहीं होय है । चाहकी दाहमें किंचित् भोज-

नाहि मिलि जाय तिसहीकूं संसारी जीव सुख माने है। गाथा—

दुक्खं गिद्धीघत्थस्साहट्टुन्तस्स होइ बहुगं च।
चिरमाहट्टियदुग्गयचेडस्स व अण्णगिद्धीए ॥१६७२॥

अर्थ—अतिगृद्धिताकरि पीडित होय भोजन करते पुरुषके बहुत दुःख होय है। जैसे दरिद्रीका घरकी दासीका पुत्र अन्नकी गृद्धिताकरि बहुतकालपाछे आहार मिले तिसकूं भक्षण करतेके दुःख होय है। गाथा—

को णाम अप्पसुक्खस्स कारणं बहुसुखस्स चुक्केज्ज।
चुक्कइ हु संकिलिसेण मुणी सग्गापवग्गाणं ॥१६७३॥

अर्थ—ऐसा कौन बुद्धिवान् है ? जो किंचिन्मात्रकाल आहारका अल्पसुखके निमित्त बहुतसुखतें चलायमान होय। तैसे आहारके स्वादनेका अल्पकालका सुख तिसके निमित्त संक्लेशकरिके अर स्वर्गमुक्तिके सुखनितें कौन मुनि चिगै ? भावार्थ—किंचित्कालमात्र भोजनके स्वादका सुखके अर्थि स्वर्गमुक्तिका कारण सम्यक्चारित्र ताहि कौन मुनि बिगाडे ? गाथा—

महुलित्तं असिधारं लेहइ भुंजइ य सो सविसमण्णं।
जो मरणदेसयाले पच्छेज्ज अकप्पियाहारं ॥१६७४॥

अर्थ—जो पुरुष मरणके देशकालमें अयोग्य आहारकी वांछा करे है, तथा आहारकूं प्रार्थना करे है, सो पुरुष सहतकरि लिप्त खड्गकी धाराका आस्वादन करे है तथा विषसहित अन्नका भोजन करे है। गाथा—

असिधारं व विसं वा दोसं पुरिसस्स कुणइ एयभवे।
कुणइ दु मुणिणो दोसं अकप्पसेवा भवसएसु ॥१६७५॥

अर्थ—सहतलपेटी खड्गकी धाराका आस्वादन तथा विषसहित भोजन ये तो पुरुषके एकभवमें दोष करे

है अर अयोग्य आहारादिकनिका सेवन मुनीश्वरनिके तथा श्रावकनिके बहुत सैकडां हजारां भवनिमें दोष करे है। तातें अयोग्यवस्तुका सेवन योग्य नहीं है, आगामी कालमें बहुत दुःखदायी है। गाथा—

जावन्ति किंचि दुक्खं सारीरं माणसं च संसारे।
पत्तो अणन्तखुत्तं कायस्स ममत्तिदोसेण ॥१६७६॥

अर्थ—हे मुने ! संसारमें जितने केई शरीर सम्बन्धी तथा मनःसम्बन्धी दुःख अनन्तवार प्राप्त भये हो, ते सर्व दुःख एक देहमें ममत्वके दोषकरि प्राप्त भये हो। संसारमें जितने दुःख हैं ते शरीरके ममत्वकरिके प्राणी भोगे है। गाथा—

एण्हं पि जदि ममत्तिं कुणसि सरीरे तहेव ताणि तुमं।
दुक्खाणि संसरन्तो पाविहसि अणन्तयं कालं ॥१६७७॥

अर्थ—हे मुने ! अबभी जो शरीरमें तुम ममत्व करोगे तो अनन्तकालपर्यन्त संसारमे परिभ्रमण करते दुःखनिकूं प्राप्त होहुगे। गाथा—

णत्थि भयं मरणसमं जम्मणसमयं ण विज्जदे दुःखं।
जम्मणमरणादंकं छिण्णममत्तिं सरीरादो ॥१६७८॥

अर्थ—इस संसारमें मरणसमान भय नहीं है अर जन्मसमान दुःख नहीं है। तातें जन्ममरणकरि व्याप्त जो शरीर तातें ममताकूं छांडहु। गाथा—

अण्णं इमं सरीरं अण्णो जीवोत्ति णिच्छिदमदीओ।
दुक्खभयकिलेसयरीं मा हु ममत्तिं कुण सरीरे ॥१६७९॥

अर्थ—यो शरीर अन्य है अर जीव अन्य है, इस प्रकार निश्चयरूप है बुद्धि जाकी ऐसे तुम, सो अब दुःख अर भय अर क्लेश इनिका करनेवाला शरीरविषें ममता मति करो। भावार्थ—शरीर तो अनेक पुद्गलपरमाणुनिका समूहरूप पुद्गलमय है, जड है, अचेतन है, विनाशीक है। अर आत्मा अमूर्तिक है, ज्ञाता है, चेतन है, अविनाशीक है, तातें पुद्गल

अन्य है अर आत्मा अन्य है, इन दोऊनिकूं प्रकट भिन्न अनुभव करते तुम शरीरविषें ममत्व मति करो। कैसाक है शरीर ? क्षुधा, तृषा, रोग, शोक वियोगादिककरि आत्माके महान् दुःख उपजावने वाला है अर भय अर संक्लेशका उपजावने वाला है, तातैं ज्ञानभावनाकूं पायकरिकेहू अब शरीरमें ममता करना योग्य नहीं है। गाथा--

सव्वं अधियासन्तो उवसग्गविधिं परीसहविधिं च।
णिस्संगदाए सल्लिह असंकिलेसेण तं मोहं ॥१६८०॥

अर्थ--हे मुने ! समस्त उपसर्गके प्रकारनिकूं अर समस्त क्षुधा, तृषा, रोगादिकतैं उपजे परीषहनिके भेदनिकूं निःसंगपणाकरि सहते जो तुम, सो अब संक्लेशपरिणामरहित होयकरिके मोहकूं कृश करो। गाथा--

ण वि कारणं तणादोसंथारो ण वि य संघसमवाओ।
साधुस्स संकिलेसो तस्स य मरणावसाणम्मि ॥१६८१॥

अर्थ--मरणके अवसरमें संक्लेश करता साधुके सल्लेखनाको कारण तृणादिकनिका संस्तर नहीं है, अर समस्त संघका समूह भी नहीं है, संक्लेशपरिणामका धारक जीवके तृणादिकनिका संस्तर वृथा है, संघका सम्बन्धहू कार्यकारी नाहीं। संक्लेशरहित मन्दकषायी वीतरागीविना सल्लेखनामरण नहीं होय है। गाथा--

जह वाणियगा सागरजलम्मि णावाहिं रयणपुण्णाहिं।
पत्तणमासण्णा वि हु पमादमूढा विवज्जन्ति ॥१६८२॥

सल्लेहणा विसुद्धा केई तह चेव विविहसंगेहिं।
संथारे विहरन्ता वि संकिलिट्ठा विवज्जन्ति ॥१६८३॥

अर्थ--जैसे वणिक् समुद्रके जलके मध्य रत्ननिकरि भरी नावकरिके गमन करि पत्तनके समीप प्राप्त भयाहू प्रमादतैं समुद्रमें डूबि नाशकूं प्राप्त होय है; तैसे केई जीव उज्ज्वल सल्लेखना धारण करतेहू नाना प्रकारके रागद्वेष मोहादिक भावरूप परिग्रह करिके संक्लेशपरिणामी भये संस्तरमें प्रवर्ततेहू संसारसमुद्रमे डूबे है। गाथा--

सल्लेहणापरिस्समभिमं कयं दुक्करं च सामण्णं ।
मा अप्पसोक्खहेउं तिलोगसारं वि णासेइ ।।१६८४।।

अर्थ—हे मुने ! अनशनादि तपकरि किया जो सल्लेखनाका परिश्रम तथा तीन लोकमें सार स्वर्गमोक्षका देने वाला जो दुःखकरिके करनेकूं असमर्थ ऐसा साधुपणा ताहि अल्प जो आहारका सुख ताके निमित्त विनाश मति करो। भावार्थ—आहारका अत्यन्त अल्प सुख तिसके निमित्त आहारकी वांछाकरिके तीन लोकमें उत्कृष्ट ऐसा साधुपणा अर सल्लेखना इनिका नाश करना योग्य नहीं, तातें अल्पकाल जीवन रह्या है, सो अब आहारकी वांछा त्यागि परमसंयमभावमे यत्न करो। गाथा—

धीरपुरिसपण्णत्तं सप्पुरिसणिसेवियं उवणमित्ता ।
धण्णा णिरावयक्खा संथारगया णिसज्जन्ति ।।१६८५।।

अर्थ—उपसर्ग अर परीषहनिकूं प्राप्त होतेहू जिनका धैर्य नहीं छूट्या ऐसे धीरपुरुषनिकरि उपदेश्या अर सत्पुरुषनिकरि सेवन किया ऐसा रत्नत्रयमार्गकूं प्राप्त होयकरिके अर धन्यपुरुष आहारादिक शरीरादिकमैं वांछारहित भये संस्तर मे प्राप्त हुये शुद्ध होय हैं। गाथा—

तम्हा कलेवरकुडी पव्वोढव्वत्ति णिम्ममो दुक्खं ।
कम्मफलमुवेक्खन्तो विसहसु णिव्वेदणो चेव ।।१६८६।।

अर्थ—तातें भो कल्याणके अर्थी हो ! इस कलेवरकुटीकूं अत्यन्त त्यागने योग्य है ऐसे जानहु। अर यो देहकलेवर हमारा नहीं है, ऐसे ममतारहित भये तिष्ठो। बहुरि कर्मके फलमें उदासीन भये वेदनारहितकीनाईं दुःखकूं सहना योग्य है। गाथा—

इय पण्णविज्जमाणो सो पुव्वं जायसंकिलेसादो ।
विणियत्तंतो दुक्खं पस्सइ परदेहदुक्खं वा ।।१६८७।।

अर्थ- -निर्यापकाचार्यनिकरि इसप्रकार भेदविज्ञानकूं प्राप्त किया जो क्षपक, सो पूर्वे अज्ञानभावतें उपज्या जो संक्लेश, तातें निवृत्त हुवा। जैसे परके देहमें उपज्या दुःख आपकूं नहीं प्राप्त होय, तैसे अपनी देहमें उपज्या दुःखकूं हू परके देहका दुःखकीनांईं देखे है। गाथा—

रायादिमहड्ढियागमणपओगेण चा वि माणिस्स।
माणजणणेण कवयं कायव्वं तस्स खवयस्स ॥१६८८॥

अर्थ —जैसे राजादिक महान् ऋद्धिके धारकनिके आगमनकरिके अभिमानी शूरवीर होय सो बकतर पहरिकरिके युद्धकूं तयार होय है। तैसे क्षपकहू ऐसे चितवन करे है- हमारी धीरता देखनेकूं ये महान् ऋद्धिके धारक वीतराग मुनि मेरे निकट आये हैं, अब जो इनके अग्रभागविषे प्राण जाय हैं तो यथेच्छ जावो, परन्तु धैर्यकूं त्यागि व्रतभंग करि धर्मकूं लज्जित नहीं करूंगा। ऐसे उत्तमपुरुषनिके ससर्गतें कायरहू धैर्यरूप बकतर धारणकरि कर्मनितें जुद्ध करनेकूं उद्यमी होय है। गाथा—

इच्चेवमाइकवचं भणिदं उस्सग्गियं जिणमदम्मि।
अववादियं च कवयं आगाढे होइ कादव्वं ॥१६८९॥

अर्थ--जिनेन्द्रके मतविषे इत्यादिक उत्सर्गिक कवच कह्यो अर अपवादिक कवच (विशेषरूप कवच) आगाढ जो निश्चितमरण तिसविषे करना योग्य है। गाथा—

जह कवचेण अभिज्जेण कवचिओ रणमुहम्मि सत्तूणं।
जायइ अलंघणिज्जो कम्मसमत्थो य जिणदि य ते ।१६९०

अर्थ--जैसे अभेद्य बकतरकरिके सज्या हुवा जोद्धा संग्रामके अग्रभागविषे बैरीनिके अलंघ्य होय है-बैरीनिके शस्त्रनिकरि नहीं घात्या जाय है, प्रहरणादि क्रियामे समर्थ होय है; तैसे कवच वर्णन किया। तिसकूं हृदयमें धारण करता पुरुषहू कर्मवैरीनिकरि घात्या नहीं जाय है, अर कर्मके मारनेमे—प्रहरणादिक्रिया करनेमें समर्थ होय है, अर कर्मवैरीनि कूं जीतत है। गाथा--

एवं खवग्रो कवचेण कवचिग्रो तह परीसहरिऊणं ।
जायइ ग्रलंघणिज्जो ज्झाणसमत्थो य जिणंदि य ते ।१६६१।

ग्रर्थ--ऐसे क्षपक कवचकरिके सहित हुवो परोषहरूप वैरीनिके ग्रलघ्य होय है ग्रर ध्यानमें समर्थ होय है, ग्रर कर्मवैरीनिकूं जीतत हैं । गाथा--

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस ग्रधिकारनिविषै कवच नामा पैंतीसमां ग्रधिकार एकसो चहोत्तरि गाथानिमैं समाप्त कीया । ग्रब चौदह गाथानिकरि समता नामा छत्तीसमां ग्रधिकारनैं वर्णन करे हैं । गाथा-

एवं ग्रधियासंतो सम्मं खवग्रो परीसहे एदे ।
सव्वत्थ ग्रपडिवद्धो उवेदि सव्वत्थ समभावं ॥१६६२॥

ग्रर्थ—ऐसे वीतरागगुरुनिकरि धारण कराया जो कवच तिसका प्रभावकरिके क्षुधा तृषा रोग वेदनादिक परीषहनिकूं सक्लेशरहित परमसमताकरि सहता जो क्षपक सो शरीरविषै, वसतिकाविषै, सकलसंघविषै, वैयावृत्य करनेवालेनिविषै ग्रौर समस्त क्षेत्रकालादिविषै रागद्वेषरहित हुवा, कोऊमैंहू परिणामनिकरि नहीं बंधनरूप होता, परमसमताकूं प्राप्त होय है । गाथा-

सव्वेसु दव्वपज्जयविधीसु णिच्चं ममत्तिदो विजडो ।
णिप्पणयदोसमोहो उवेदि सव्वत्थ समभावं ॥१६६३॥

ग्रर्थ—सो साधु समस्त द्रव्यपर्यायनिके विकल्पनिविषै शाश्वत ममत्वरहित है, ग्रर स्नेह द्वेष मोहकरि रहित है, सो सर्वत्र समभावकूं प्राप्त होय है । भावार्थ-संसारमें जितने वस्तु ग्रहण में ग्रावे हैं, तितने सर्व मोतैं ग्रन्य हैं-मेरा नाहीं, ऐसे निर्ममत्व होय जिसके कहूं चेतन ग्रचेतन पदार्थमैं राग द्वेष मोह नहीं होय है, सोही समभावकूं प्राप्त होय है । गाथा-

संजोगविप्पग्रोगेसु जहदि इट्ठेसु वा ग्रणिट्ठेसु ।
रदि ग्ररदि उस्सुगत्तं हरिसं दीणत्तणं च तहा ॥१६६४॥

अर्थ—बहुरि जो कवचकरिके धैर्य धारण कीया जो साधु सो संयोगमें तो रति नहीं करे है, अर वियोगमें अरति नहीं करे है, इष्टवस्तुके संयोगमें उत्सुकता तथा हर्ष नहीं करे है अर अनिष्टवस्तुके संयोगविषे दीनपणाकूं तथा विषादकूं त्यागत है।

मित्तेसुयणादीसु य सिस्से साधम्मिए कुले चावि।
रागं वा दोसं वा पुव्वं जायंपि सो जहइ ॥ १६६५॥

अर्थ—मित्रनिविषे तथा स्वजनादिकनिविषे, तथा शिष्यनिविषे, साधर्मीनिविषे कुलविषे पूर्वे उपज्याहू रागद्वेष ताहि कवच धारण करता साधु त्यागे है। गाथा—

भोगेसु देवमाणुस्सगेसु ण करेइ पच्छणं खवओ।
मग्गो विराधणाए भणिओ विसयाभिलासोत्ति ॥१६६६॥

अर्थ—कवचकरिके दृढ भया जो साधु सो देवमनुष्यनिके भोगनिविषे वांछा नहीं करे है। जातें विषयनिमें अभिलाष है सो मार्ग जो रत्नत्रयधर्म तथा दशलक्षणधर्म की विराधनाका कारण है, ऐसे जिनेंद्रभगवान् कह्या है। गाथा—

इट्ठेसु अणिट्ठेसु य सद्दफरिसरसरूवगंधेसु।
इहपरलोए जीविदमरणे माणावमाणे च ॥१६६७॥
सव्वत्थ णिव्विसेसो होदि तदो रागदोसरहिदप्पा।
खवयस्स रागदोसा हु उत्तमट्ठं विर धेंति ॥१६६८॥

अर्थ—जो वीतरागकवच धारण करे है सो मुनि इष्ट अनिष्ट जे शब्द स्पर्श रस रूप गंध पंचेंद्रियनिके विषय तिनविषे तथा इसलोक परलोकविषे तथा जीवनमरणविषे तथा मानापमानविषे रागद्वेषरहित हुवा सर्वविषे समान होय है। जातें इस जगतमें जेते इन्द्रियनिके विषय हैं, तेते पुद्गलद्रव्यके पर्याय हैं अर ज्ञानानंदस्वरूप जो मैं तातें भिन्न है। अब मैं कौनमें रागद्वेष करूं ? यातें जैनका यति समस्त परद्रव्यनिमें अर इंद्रियनिके विषयनिमें रागद्वेषरहित होय है। ये रागद्वेष हैं ते साधुका उत्तमार्थ जो आराधनामरण ताका विनाश करे हैं। गाथा—

जदि वि य से चरिमंते तसमुदीरदि मारणंतियमसायं ।

सो तह वि असंमूढो उवेदि सव्वत्थ समभावं ।।१६९९।।

अर्थ—यद्यपि जो क्षपकके अंतकालविषै मरणपर्यंत दुःख उदीरणाकूं प्राप्त होय, तोहू मोहरहित हुवा समस्त-दुःख में तथा दुःखसुखकी सामग्रीमैं समभावकूं प्राप्त होय है ।

एवं सुभाविदप्पा विहरइ सो जाववीरियं काये ।

उट्ठाणे सयणे वा णिसीयणे वा अपरिदंतो ।।१७००।।

अर्थ—ऐसे आचार्यनिके निकट भलेप्रकार भाया है आत्मा जाने, ऐसा क्षपक, सो जितने अपनी शक्ति बणी रहे, तितने शरीरमें तथा उठनेमें, शयनमें, आसनमें खेदरहित हुवा प्रवर्त्तन करे । भावार्थ-जितने अपनी शक्ति रहै, तितने गमनमें, आगमनमें, शयनमें, आसनमें परका सहाय नहीं चाहै, आपके करनेयोग्य कार्य आपही करे । गाथा-

जाहे सरीरचेट्ठा विगदत्थामस्स से यदणुभूदा ।

देहादि वि ओसग्गं सव्वत्तो कुणइ णिरवेक्खो ।।१७०१।।

सेज्जा संथारं पाणयं च उवधिं तहा सरीरं च ।

विज्जावच्चकरा वि य वोसरइ समत्तमरूढो ।।१७०२।।

अर्थ—क्षपकके जिसकालमें शरीरका बल नष्ट होवे-शरीरकी चेष्टा गमन, आगमन तथा उठनेमें-बैठनेमें अति अल्प रहि जाय, तिस कालमें समस्तमें वाछारहित हुवा देहादिकनिका त्याग करे । अर समस्तरत्नत्रयमें आरूढ हुवा संता शय्या संस्तर पानक उपकरण तथा शरीर अर वैयावृत्यके करनेवालेनिकाहू त्याग करे । भावार्थ-शरीरकी चेष्टा घटि-जाय तदि शय्या संस्तर देहादिकमें ममताभाव छांडिकरिके अर वैयावृत्य करनेवालेनिमैंहू त्यागरूप होय है, इनका संयोग में राग नहीं करे, वैयावृत्य करावनेमेंहू राग त्यागै है । गाथा-

अवहट्टु कायजोगे व विप्पओगे य तत्थ सो सव्वे ।

सुद्धे मणप्पओगे होइ णिरुद्धज्झवसियप्पा ।।१७०३।।

अर्थ—तिस अवसरमे समस्त कायके योगनिनं अर वचनके प्रयोगनिनं निराकरण करिके रोक्या है अन्यविषयनिमैं प्रचार जानै, ऐसा मनकूं शुद्ध होत सतै समस्तपरद्रव्यनिमें प्रवृत्ति त्यागि चित्तकूं अपने वशि करि एकाग्र चित्तनिरोधरूप होय है।

एव सव्वत्थेसु वि समभावं उवगओ विसुद्धप्पा।
मित्ती करुणं मुदिदमुवेक्खं खवओ पुण उवेदि ॥१७०४॥
जीवेसु मित्तचिंता मेत्ती करुणा य होइ अणुकंपा।
मुदिदा जदिगुणचिंता सुहदुक्खधियासणमुवेक्खा ॥१७०५॥

अर्थ—इस प्रकार समस्तपदार्थनिमै समभावकूं प्राप्त भया अर उज्ज्वल है चित्त जाका ऐसा जो क्षपक, सो मैत्री अर करुणा अर मुदित अर उपेक्षा कहिये मध्यस्थता इनकूं प्राप्त होय है। सो ये च्यारि भावना कौन कौन स्थान में करिये? सो कहे हैं–चतुर्गतिमें अनादिके परिभ्रमण करते अर अनंतानंत दुःख कर्मके वशि होय भोगते ये संसारी जीव, इनके दुःखका अभाव होहु, कोऊ प्राणीमात्रके दुःख मति होहू, ऐसे समस्त एकेंद्रियादिक प्राणीनिके विषै मनवचनकायकरिके दुःखकी उत्पत्तिका अभाव चिंतवन करना, सो मैत्रीभावना है। बहुरि शारीरमानस दुःखादिककरिके पीडित जे रोगी जन वा बंदिगृहमें बंधन पडे तथा क्षुधा तृषा शीत उष्णकरिके पीडित तथा निर्दयनिकरि ताडनारूप कीये तथा अपने जीवितकूं इच्छा करते वा दीन जन तिनविषै जो उपकार करनेका वा अनुग्रह करनेका वा दुःख हरनेका परिणाम, सो करुणाभावना है। अथवा ये संसारी जीव मिथ्यात्व अविरति कषाय अशुभ योगनिकरि अशुभकर्म उपार्जन कीये हैं तिनके वशतै अनंत जन्म मरण जरा रोग शोक इष्टवियोग अनिष्टसंयोग दारिद्र्य विषयानुराग तीव्रकषायनिकरि दुःख भोगे हैं, इनका मिथ्यात्वरागादिक दूरि करनेमें उपकारबुद्धिका प्रवर्तन होना, सो करुणा है। बहुरि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप, दानशीलादिक गुणनिके धारकनिकूं देखि तथा चिंतवन करि मनवचनकायमें आनंदरूप होना, दर्शनस्पर्शनकी वांछा करना, गुणनिमैं अनुराग करना, सो मुदितभावना है। बहुरि तीव्रकषायी जीवनिमैं तथा व्यसनी हठग्राही मिथ्यादृष्टि, आपथापी पापमें प्रवीण दुष्ट धर्मके द्रोही जीव तिनविषै रागद्वेषरहित होय उनके सुखदुःख नहीं चाहना, मध्यस्थ रहना, राग प्रीति नहीं करना अर द्वेष वरहू नहीं करना, सो उपेक्षा भावना है।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषै समता नामा छत्तीसमां अधिकार चौवह गाथानिकरि समाप्त कीया। अब ध्यान नामा संतीसमां अधिकार दोयसे सात गाथानिकरि कहे हैं। तिनमैं शुभध्यानसामान्यकूं बारह गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

दंसणणाणचरित्तं तवं च विरियं समाधिजोगं च।
तिविहेणुवसंपज्जिय सव्वुवरिल्लं कमं कुणइ ॥१७०६॥

अर्थ—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, अपनी शक्तिको नहीं छिपावना सो वीर्य, चित्तकूं एकाग्र विकल्परहित करना सो समाधियोग, इनकूं जो मुनि मनवचनकायकरि अंगीकार करे है, सो सर्वोत्कृष्ट क्रियाकूं करै है। अब शुभध्यान में प्रवर्तनेका इच्छुक ताके परिकर दिखावे है। गाथा—

जिदरागो जिददोसो जिदिंदिओ जिदभओ जिदकसाओ।
अरदिरदिमोहमहणो झाणोवगओ सदा होहि ॥१७०७॥

अर्थ—जीते है पांचू इन्द्रियनिके विषयमें राग जानैं, अर जीते हैं समस्त चेतन अचेतन पदार्थनिमें द्वेष जानैं, अर जैसे पांचूं इन्द्रिय अपने अपने विषयनिमैं नहीं जाय सके तैसे जीते हैं पंच इंद्रिय जानैं, अर जीते है इसलोकका, तथा परलोकका, मरणका, वेदनाका, अनारक्षाका, अगुप्तिका, अकस्मात्का सातप्रकार भय जानैं। अर जीते है क्रोध मान माया लोभ कषाय जानै। अर रतिभाव अर मोहभाव इनका कीया है नाश जानैं, सो पुरुष ध्यानमें सदाकाल प्राप्त होय है। गाथा—

धम्मं चदुप्पयारं सुक्कं च चदुव्विधं किलेसहरं।
संसारदुक्खभीओ दुण्णि वि झाणाणि सो झादि ।१७०८।

अर्थ—संसारके दुःखनितैं भयभीत जो क्षपक, सो क्लेशका नाश करनेवाला जो च्यारिप्रकारका धर्मध्यान तिसकूं तथा च्यारिप्रकारका शुक्लध्यान ताकूं ऐसे दोयप्रकार ध्यान ध्यावत है। गाथा—

ण परीसहेहिं संताविउं वि सो झाइ अट्टरुद्दाणि।
सुट्ठु वहाणे सुद्धं पि अट्टरुद्दा वि णासंति ॥ १७०९ ॥

अर्थ—अनेकप्रकारके क्षुधा तृषा रोगादिक परिषह तिनकरि बाधा कीया हुवाहू क्षपक आर्त रौद्र दोऊ जे अशुभ-ध्यान तिनकूं नहीं ध्यावे है। जातें आर्त रौद्र ये दोऊ जे अशुभध्यान, ते सम्यक् उपयोग में प्राप्त होय शुद्धहू जो क्षपक ताका नाश करे है। तातें प्राणनिके हरनेवालाहू परीषह उपसर्गनिका संताप आवते संते क्षपक आर्त रौद्र दुर्ध्यानिकूं नहीं प्राप्त होय है। गाथा—

अट्टे चउप्पयारे रुद्दे य चउव्विधे य जे भेदा।
ते सव्वे परिजाणदि संथारगओ तओ खवओ ॥१७१०॥
अमणुण्णसंपओगे इट्ठविओए परिस्सहणिदाणे।
अट्टं कसायसहियं झाणं भणियं समासेण ॥१७११॥

अर्थ—संस्तरकूं प्राप्त भया जो क्षपक, सो च्यारिप्रकारके आर्तध्यानकूं तथा च्यारिप्रकारके रौद्रध्यानकूं अर तिनके समस्तभेदनिकूं जाने है। जानेविना अनादिकालके दोऊ दुर्ध्यान आत्मगुणके घातक हैं, इनतें छूटना कैसे होय? इनमें आर्तध्यान के भेदनिकूं ऐसे जानना—

अमनोज्ञवस्तुका संयोगतें उपज्या जो परिणाममें संक्लेश, सो अनिष्टसंयोगज नामा आर्तध्यानका भेद है। ॥१॥ बहुरि इष्टवस्तुके वियोगतें उत्पन्न भया जो संक्लेश, सो इष्टवियोगज नामा आर्तध्यानका भेद है ॥ २ ॥ बहुरि क्षुधा तृषा रोगादिकको वेदनातें उपज्या जो संलेश, सो वेदनाजनित आर्तध्यानका भेद है ॥ ३ ॥ बहुरि भोगनिकी अभिलाषाकरि उपज्या जो संक्लेश, सो निदान नामा आर्तध्यानका चौथा भेद है ॥ ४ ॥ सो कषायसहित आर्तध्यान संक्षेपतें वर्णन कीया। इहां ऐसें जानना—जो ऋत जो दुःख, तातें उपज्या ध्यान, तिसकूं आर्तध्यान कहिये हैं।

अब अनिष्टसंयोगज नामा आर्तध्यानका किंचित् विशेष ऐसें जानना—जे अपना स्वजन, धन, शरीरकूं नाश करनेवाले जे अग्नि, जल, पवन, विष शस्त्र, सर्प, हस्ती, सिंह, व्याघ्र, दुष्ट राक्षस, तथा स्थलके जीव जे क्रूर महिषादिक, जलके जीव जे दुष्ट मत्स्यादिक, अर बिलके जीव जे मूषकादिक, तथा दुष्ट राजा, तथा वैरी, तथा भील, चोर लुटेरे, तथा दुष्ट स्त्री, कपूतपुत्र, दुष्टबांधवादिक इनके संयोगतें, तथा निकट प्राप्त होनेतें उपज्या जो मनके संक्लेश सो अनिष्ट-संयोगज प्रथम आर्तध्यान है।

अनिष्टसंयोग होय है, तब परिणाम मे बड़ा संक्लेशदुःख उपजे है अर यहही चितवन लग्या रहे "जो, मेरे इसका वियोग कैसे होय ? कदि होयगा ? कहा करूं ? कोनसूं कहूं ? कहां जाऊं ? ऐसा विकल्प पापबंधका कारण तिसकूं अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कह्या है। सो सम्यग्दृष्टिके अनिष्टसयोग होय, तब ऐसें चितवन करे—हे आत्मन् ! पदार्थका सत्यार्थस्वरूप चितवन करो, इस जगतमें कोऊ वस्तुहू अनिष्ट नहीं है, अपना किया पापकर्म एक अनिष्ट है, सो पापकर्म उदय आय अनिष्टसंयोगरूप रस दे है, नरकनिमैं असंख्यातकालपर्यंत अनिष्टकाही संयोग रह्या, तथा तिर्यंचगतिमे परस्पर कलह तथा मारण तथा बध बंधन लादन अंगच्छेदनादिककरि अनिष्टसयोग बहुत अनंतकाल भोगे, तथा विकलत्रयनिकी बाधा भोगी, अब तुमारे नवीन अनिष्ट कहा प्राप्त भया है ? तातें अब परमसमताभाव अंगीकार करो। जो ससारमें वास करैगा, तिसके तो अनिष्टसामग्री प्रकट हुयाई करेगी। तातें अन्यपदार्थनिमै द्वेषबुद्धि छांडि एक दुष्टकर्म के नाश करनेमें परम उद्यम करो। तुमारे पुण्यका उदय आवता तो ये स्त्रीपुत्रबांधवादिक दुष्ट कैसे होते ? तातें ससारमें समस्त पुण्यपापकी रचना है। पाप उदय आवे तदि अपना इष्ट मित्र, प्यारी स्त्री, सपूत पुत्र, हितकारी बांधव ये समस्त वैरीरूप होय महादुःखकू देइ मारे है ? तातें कोऊ जगतमें अनिष्ट इष्ट नहीं है। ये दुष्टकर्म वैरी है इनको अनिष्ट जानहु। वृथा परपदार्थमें अनिष्टका सकल्प करि वैर बांधि दुर्गतिका कारण अशुभकर्मका बध मति करो।

बहुरि अपने प्यारे पुत्रका, स्त्रीका, मित्रका, बाधवका, तथा चित्तकू प्रीति करनेवाला राज्यका, तथा ऐश्वर्य तथा भोग उपभोगका, तथा नगर ग्राम महल मकान धन वस्त्र परिग्रहका वियोग होतें जो शोक क्लेश भ्रम भयका उपजना सो इष्टवियोगज आर्तध्यान है। हाय ! अब मेरा इष्ट कैसे प्राप्त होय ? कहा देखूं ? कोनसूं कहूं ? कहां जाऊं ? कैसे जीऊं ? मेरा आधार कौन रह्या ! कौनका शरण लेऊं ? बड़ा दुःसहदुःखकूं कैसे भुगतूं ? इत्यादिक सक्लेश इष्टके वियोगतें होय है। बडे बडे ज्ञानवान् शूरवीर धैर्यके धारकनिके हृदय इष्टके वियोगतें फाटिजाय है, धैर्य छूटि जाय है ! ऐसे इष्टवियोगज आर्तध्यानकूं एक सम्यग्ज्ञानीही जीते है।

सो सम्यग्ज्ञानी इष्टका वियोग होते ऐसे चितवन करे है—इस जगतमें कोऊ वस्तु इष्ट अनिष्ट है नहीं, अपने रागभावतें इष्ट माने है, द्वेषभावतें अनिष्ट माने है। पुण्य उदय आवे तदि समस्त इष्ट होय परिणमे है, पाप उदय आवे तदि अनिष्ट होय परिणमे है। संसारमें जितने इष्टनिके संबंध भये हैं तितनेका वियोग अवश्य होयगा। तातें अब इष्टके

वियोगमें शोच करना पापबंधका कारण है, अर समस्त चेतन अचेतन वस्तुमै मेरा अनेकवार संयोग होय होय वियोग भया है। अनेकवार मित्रके शत्रु भये, शत्रुके मित्र भये। कोऊ मेरा अनादिका शत्रु मित्र है नहीं, समस्त अपने अपने मुतलब के विषयकषायके निमित्त शत्रुमित्रपणा करे हैं। बहुरि समस्तवस्तु पर्यायार्थिकनयकरि विनाशीक है, मैं अज्ञानी परद्रव्यनिमें मोहकरि वृथा ममता करि राखी है। जो मेरी दीर्घ आयु है, तदि तो अनुक्रमकरि वियोग होयगा। आजि माताका, आजि पिताका, आजि स्त्रीका, आजि पुत्रका, आजि मित्रका बांधवका ऐसे समस्तनिके अपने अपने आयुके अनुसार निश्चयकरि वियोग होयगा। अर मेरी अल्प आयु है तो समस्तनिसूं एककाल वियोग होयगा। जातें मेरा मरण होई तदि समस्तका वियोग एक क्षणहोमें होय, तातें परवस्तुमें ममताभावकरि संसारमें परिभ्रमण करनेका कारण जो कर्मबंध ताकरि दुःखकूं अंगीकार करना उचित नहीं है। मैं अनादिका एकाकी हूं, एकाकी आया हूं, एकाकी जाऊंगा, तातें इष्टवस्तुका वियोगमें पश्चात्ताप करने बरोबरि अन्य मूर्खता नहीं है।

बहुरि कास, श्वास, ज्वर, उदर, भगंदर, उदरशूल, शिरःशूल, नेत्रशूल, अतिसार, कोढ, वात, पित्त, कफ इत्यादिक क्षणक्षणमें वृद्धिनें प्राप्त होते जे रोग तिनकरिकें परिणाममें जो व्याकुलताका उपजना, सो रोगार्त्त नामा आर्त्तध्यान है। तथा मेरे यो रोग कैसे मिटे! कहा करूं! कोनसूं इलाज कराऊं! कौन वैद्य मेरा दुःख मेटे! तथा कोऊ देवता मेरी सहाय करै! वा मंत्रतंत्र औषधि मणि मुद्रा मंडलादिककरि मेरा दुःख हरनेवाला कोऊ प्राप्त होजाय! ऐसा निरंतर संक्लेशरूप परिणामनिका होना सो वेदनाजनित आर्त्तध्यान दुर्गतिका कारण है। सम्यग्दृष्टि रोगादिकनिकूं ऐसे चिंतवन करे है–जो, मेरे तो बडा रोग ज्ञानावरणादिककर्म है। सो मेरा स्वरूपकूं पराधीन करि राख्या है। अर संसारमें अनंतानंतकालतें जन्ममरणादिक करावे है। अर यो शरीरही रोग है, जिसमें शाश्वती क्षुधावेदना, तृषावेदना शीतवेदना, उष्णवेदना निरंतर उपजे हैं। कैसाक है शरीर? सात धातु सात उपधातुका पिंड है, अर महादुर्गंधमय अनेकरोगनिकरि भरया है। ऐसा देहमें, वसिकरि नीरोगपणा चाहना बडी मूर्खता है! अर एक रोग मिट्या तो दूसरा और उपजेगा, मेरा पूर्वकर्मजनित उदय है, कायर होय भोगूंगा तो रोग नहीं छोडेगा, धैर्यधारण करूंगा तो नहीं छांडेगा, कर्मके उदयकूं मेटनेकूं कोन समर्थ है? जगतमें देव, दानव, इन्द्र, धरणेंद्र, जिनेंद्र कर्मके उदयकूं टालनेकूं समर्थ नहीं है! कर्म हरनेकूं अर कर्म देनेकूं कोऊ जगतमें समर्थ है नहीं; तातें रोगमें आकुलता करि अशुभ तिर्यंचगतिका कारण कर्मका दृढबंध करना उचित नहीं। जैसे भगवान् ज्ञानी मेरे होना देख्या है, तैसे होयगा। यो रोग है सो देहमें है, देहका

घात करेगा, मेरा रूप अविनाशी ज्ञानदर्शनमय आत्मा तिसका नाश करनेमें समर्थ नहीं; तातें रोगमें आर्तध्यान करना तिर्यंचगतिका कारण है ।

बहुरि जो भोगनिके अर्थि देवपणा, इन्द्रपणा, तथा राजापणा, श्रेष्ठीपणा चाहना; सो निदान नामा आर्त्तध्यान है । तथा आपके भोगसामग्रीकी वांछा करना, तथा रूपकी वांछा करना, ऐश्वर्य चाहना, जगतमें अतिविख्यात कीर्ति चाहना, तथा जिनेंद्र चक्रवर्त्ती नारायणपदकूं चाहना, तथा वैरीनिकरि रहित राज्य चाहना, तथा रूपवती स्त्रीनिकूं चाहना, तथा आपका सत्कार पूजा चाहना, तथा वैरीनिका दुष्टनिका नाश चाहना, तथा शत्रुनिके घातके अर्थि बलवीर्यादिककी वांछा तथा दीर्घकाल जीवनेकी इच्छा सो निदान नामा आर्त्तध्यान है ।

सो सम्यग्ज्ञानी परवस्तुकी वांछा नहीं करे है । भोगनिके सुख हैं, ते सुखाभास है, अज्ञानी जीवनिकूं सुख भासे है । ये भोग हैं, राज्य है, ते कर्मके आधीन है; पुण्य उदय होय तो प्राप्त होय, पूर्वजन्मकृत पुण्यका उदय नहीं होय तो कोटि कष्ट करे तोहू लेशमात्र भी प्राप्त नहीं होय है । अर ये भोग प्राप्त भयेहू अतितृष्णा आकुलताके बधावनहारे है, तथा विनाशीक है, अंतरगमें चाहकी अति दाह उपजे है तदि इनकू ग्रहण करे है । ये भोग असातावेदनीयजनित उपज्या दुःख तिसका किञ्चिन्मात्र काल उपशमन करनेका इलाज है । जिसकू गरमी व्यापे है, तिसकूं शीत पवन भलो भासे है । जिसके क्षुधावेदना पीडा करे, तिसकूं भोजन सुखकारी भासे है । जिसके तृषावेदना पीडा करे, तिसकूं शीतल जल सुख भासे है । जिसकूं शीतवेदना कामवेदना पीडा करेगी, तिसकू अग्निका तपना रुईके वस्त्र पहरना, स्त्रीसंगम करना सुख भासे है । जाके वेदनाही नहीं ताके यह भोगरूप इलाज कैसे सुख करे ? तातें पांच इन्द्रियनिके विषय सुखरूप नहीं हैं ।

जिसने निराकुलतालक्षण वेदनारहित स्वाधीन अविनाशी अंतरहित अप्रमाण आत्मिकसुखका अनुभव नहीं किया, सो पुरुष विषयनिके अर्थि दीन हुवा दुःखहीकूं सुख माने है । यह भोगसंपदा अभिमान बधावे है, मद उपजावे है, अपना रूपकू भुलावे है, दीनता करावे है, तातें दुःखही है । ऐसे वस्तुका स्वरूपकूं यथार्थ जानता जो सम्यग्दृष्टि सो या प्रकार चिंतवे है—जो, परद्रव्य मेरा कदाचित् ही होय नहीं, मैं चेतन, ये विषय जडरूप, मेरे इन दुःखकारी विषयनिसूं कहा संबंध ? मैं अनंतज्ञान अनंतसुखरूप हूँ, मेरे इनकरि अनादिकालसूं दुःखही उपज्या, तातें मोकूं इन्द्र अहमिंद्रलोककी संपदाहू महादुःखरूप बंधनरूप भासे है, ऐसे चिंतवन करते सम्यग्दृष्टि आगामी वांछारूप निदान नहीं करे हैं । ऐसे च्यारिप्रकारककरिके आर्त्तध्यान संक्षेपकरि वर्णन कीया । अर जीवनिके अभिप्राय असंख्यात हैं तथा अनंतजीवनिकी

अपेक्षा अनंते परिणाम हैं, तिस अपेक्षा आर्त्तध्यानके असंख्यात अनंत भेद हैं, तिनकूं जाननेकूं भगवान् केवली ही समर्थ हैं, अन्य समर्थ नहीं।

यो आर्त्तध्यान कहूं रागी द्वेषी मोही जीवनिकूं रमणीक भासे है, तथापि परिपाककालमें अपथ्य भोजनकीनांई महादुःख उपजावनेवाला है, अर कृष्णादिक अशुभलेश्यानिके बलकरि उत्पन्न होय है। पंचगुणस्थानतांईं तो च्यारि भेद होय हैं, अर प्रमत्तगुणस्थान के धारकके निदान नहीं होय है। तीन भेद छट्ठे गुणस्थानपर्यन्त कदाचित् होय हैं। परन्तु सम्यग्दृष्टिके अपना तथा परपदार्थका सम्यग्ज्ञान है, तातें अर कषायनिकी मन्दतातें कदाचित् किंचिन्मात्र होय है। परन्तु जैसे विपरीतग्राही मिथ्यादृष्टिके तिर्यंचगतिका कारण होय, तैसे नहीं होय है। अनादिकालका संक्लेशपरिणामनिके संस्कारतें प्राणीनिके विनायत्नही आर्तध्यान उपजे है, अर अनन्तदुःखनिकरि सहित तिर्यंचगतिमे परिभ्रमण होना याका फल है, अर याका अन्तर्मुहूर्तकाल है, अन्तर्मुहूर्तपाछे अन्य आर्त्त रौद्र पलट्या करे! अर याके बाह्यचिह्न ऐसे जानने— भयवान् होना, शोकमें मग्न होना, चिन्ता करना, शंका करना, प्रमादी होना, कलह करना, भ्रमरूप होना, बारम्बार निद्राका आवना, आलस्य लेना, विषयांमें उत्कंठित होना, अचानक अबुद्धिपूर्वक वचन बोलि ऊठना, शरीरमें जाड्यता होना, खेदरूप रहना, दीर्घनिश्वास नाखना, हाहाकारकरि ऊठना, बेखबरि होई जाना। इत्यादिक अनेक संतापक्लेशरूप चिह्न आर्त्तध्यानके भगवान् परमागममें वर्णन कीये हैं। तातें भगवान् वीतरागका धर्म धारण करि आर्त्तध्यानके परिणामनिकूं प्राप्त मति होहू। अब रौद्रध्यानका स्वरूप संक्षेपकरि कहे हैं। गाथा—

तेणिक्कमोससारक्खणेसु तह चेव छव्विहारम्भे।
रुद्दं कसायसहियं झाणं भणियं समासेण ॥१७१२॥

अर्थ—परधन हरण करनेमें, असत्यप्रवृत्ति करावनेमें, तथा परिग्रहका रक्षणमें, तथा छकायके जीवनिको विराधनेमें रौद्र कषायसहित परिणाम होय, सो संक्षेपकरि रौद्रध्यान भगवान् कह्या है। अब इहां किंचित् विशेष ऐसा जानना—रौद्र जो तीव्र कषायके परिणामनिकरि उपज्या जो चिंतवन, सो रौद्रध्यान है। सो हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द, परिग्रहानन्द ये च्यारि भेदकरि संयुक्त है। तिनमें हिंसानन्दकूं कहे हैं।

जिसका निरन्तर निर्दयी स्वभाव होय, स्वभावहीतें क्रोधाग्निकरि तप्तायमान होय। तथा धनका, बलका, ऐश्वर्यका, ज्ञानका, कुलका, जातिका, रूपका, कलाविज्ञान, पूज्यता इत्यादिकनिके मदकरि उद्धत होयकरिके जगतकूं तृण

समान लघु देखता होय । तथा जिसकी बुद्धि पाप करनेमें प्रवीण होय, महाकुशीलो खोटे स्वभावका धारक होय । धर्मका, पापका, पुण्यका, जीवका, परलोकका अभाव मानता होय । नास्तिकमार्गी होय । तथा एकब्रह्मरूप समस्तकूं श्रद्धानकरि परलोकका अभाव माननेवाला होय । तथा जीवका अभाव कहनेवाला ऐसा ब्रह्माद्वैतवादी होय । तथा बाह्य समस्तपदार्थ ग्रहणमें आवे हैं, तिनका अभाव कहनेवाला ज्ञानाद्वैतवादी होय । एक ज्ञानविना अन्य सर्व अपने आत्मा का, तथा परके आत्माका, तथा स्वर्ग, नरक, नगर, ग्राम, पृथ्वी, आकाश, काल, पुद्गलके अभावकूं कहनेवाला ज्ञानाद्वैतवादी कहे है–समस्त वस्तु जगतमें दीखे है, सो भ्रम है, एक ज्ञानमात्रही है । बाह्यवस्तु भ्रमसौं जान्या जाय है, वस्तुत्वकरि ज्ञानविना कोऊही पदार्थ नांही । तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, पवनरूप जे भूतचतुष्टय, तातें आत्माकी उत्पत्ति मानि परलोकका तथा पाप पुण्यका अभाव माननेवाला चार्वाकमतके धारकहू नास्तिकही है । ये ब्रह्माद्वैतवादी, तथा चार्वाक नास्तिक परलोकका अभाव कहनेवाले जीवके घातमें, मांसका भक्षण करनेमें पाप नहीं सरधान करे हैं । ये हिंसामे आनंद मानते हिंसानन्द नामा रौद्रध्यानमें प्रवर्तें हैं ।

तथा आपकरिके वा परकरिके प्राणीनिका समूह नाशकूं प्राप्त होते वा पीडाकूं प्राप्त होते, विध्वंस होते जो हर्षका करना, सो हिंसानन्द नामा रौद्रध्यान है । जिसके हिंसाके कर्ममे प्रवीणता होय, तथा पापरूप उपदेश देनेमें निपुणता होय, तथा नास्तिकमतमें निपुणता होय, अर दिन दिन प्रति हिंसामें आसक्तता, अर निर्दयीनिके संगममें बसना, अर स्वाभाविक क्रूरताकूं प्राप्त होना, सो हिंसानन्द नामा रौद्रध्यान है । बहुरि जाके ऐसा विचार रह्या करे–जो, ये मेरे वैरी दाइयादार दुष्ट मनुष्यनिका मरना कोन उपायकरि होय ? इनकूं मारनेमें कौन समर्थ है ? इनके मारने में कौनके राग है ? इनसे कौनका वैर है ? ये कदि मारे जायंगे ? ऐसे कोऊ निमित्त के जानने वाला ज्योतिषीनिकूं पूछनेका चिंतवन करना, तथा ये मरि जायगे वा इनकूं कोऊ मारि नाखै तो हम बहुत ब्राह्मणनिकूं भोजन करावे तथा अनेकदेवतानिका बडा उत्सवसहित पूजन करे वा बडा दान देवे ऐसे चिंतवन करना, सो हिंसानन्द नामा रौद्रध्यान है ।

तथा जिसके जलके जीव मारनेमे कौतुक होय–हर्ष होय, तथा आकाशमें गमन करने वाले काक, चील, चिडी, सूवा इत्यादिक अनेकपक्षीनिके मारनेमे उत्साह होय । तथा जाके पृथ्वीमें विचरनेवाले मृग, सूकर, सिंहव्याघ्रादिकनिके मारनेमे उपाय तथा उत्साह तथा चितवन होय । तथा जीवनिकूं शस्त्रतें मारनेमे, बाणनितें वेधनेमें, परस्पर लडायनेमें

चामके उपाडनेमें, जीवनिके नेत्र उपाडनेमें, नख उपाडनेमें, जिह्वा निकालि लेनेमें, इन्द्रिय उपाडनेमें, अग्निमें दग्ध करनेमें, जलमें डबोय देनेमें, पर्वतादिकनितें गेरनेमें, नासिका छेदनेमें, हस्तपाद काटनेमें, समस्तकुटुम्बकू मारनेमें, नानाप्रकारको ताडन मारण छेदनादिककरि त्रास देनेमें हर्ष होय, कौतुक होय, उपाय होय सो समस्त हिंसानन्द नाम रौद्रध्यान है।

बहुरि संग्राममें इनकी जीति होहू इसकी हारि होहू इत्यादिक हिंसानन्द नामा रौद्रध्यान है। बहुरि प्राणीनिका मरण, तथा तिरस्कार, तथा नानाप्रकारको ताडना देखिकरिके वा श्रवण करिके वा चितवन करिके जो आनन्द होय है, सो नरकके ले जावनेवाला हिंसानन्द नामा रौद्रध्यान है। इस वैरीने मेरा अपमान करचा है, धन हरचा है, मेरे मित्रनिकू तथा कुटुम्बकेनिका घात किया है, तथा मेरी आजीविका हरी है-बिगाडी है, मेरी जमीं जायगा बलात्कारकरि हरी है, मेरी हास्य करी है, गाली दीई है, मेरी निंदा अपवाद किया है, अब कोऊ देवका सानुकूलपणातें मेरा अवसर आवतें वा कोई मेरा सहायी हो जाय, तो इसकू नानाप्रकारको त्रास देई मारि, मेरा बदला लेऊं, तदि मेरा जीवना सफल है, वे दिन धन्य है—ऐसे चितवन करता रहै। तिसके हिंसानन्द नामा रौद्रध्यान होय है। कहा करूं ? मेरी शक्ति बिगडि गई ! कोऊ मेरा सहायी रह्या नहीं, धन भी नहीं रह्या, अवसर बिगडि गया, तातें ये मेरे वैरी हैं ! इनका नाम सुणूं हूं अर इनका उदय देखूं हूं तदि मेरे हृदयमें अग्नि बले है ! दाह उपजे है ! अब मेरा अवसर नहीं, अवसर आवे तो इसकू ऐसे कैसे रहने द्यू ? परलोकताईं मारूंगा ऐसा चितवन सो हिंसानन्द है।

इस दुष्टवैरीका नाश होहु ! इसका स्त्री पुत्र मरि जावो ! इसका मूलसूं विनाश हो जावे। इसने मोकूं दुःख दिया है, इसकूं भगवान ईश्वर दुःख देवेगा—ऐसा चितवन करता सो हिंसानन्द नामा रौद्रध्यान है। बहुरि अन्यजीवनिके दुःख आपदा अपमान अपकार देखिकरिके मनमें आनन्द मानना, तथा अन्यजीवांके विघ्न आवता आनन्द मानना सो हिंसानन्द नामा रौद्रध्यान है। बहुरि अन्यजीवां के सुख देखि, तथा गुण देखि, तथा अन्यजीवांका जस श्रवणकरि, वा उच्चता देखिकरि परिणाममें संक्लेश करना, ईर्षा करना सो हिंसानन्द नामा रौद्रध्यान है। बहुरि पृथ्वीका आरम्भ करि हर्ष करना। तथा जलके आरम्भ, जलका छिडकनेकरि तथा जलमें मग्न होना, तिरना इत्यादिकरि आनन्द मानना। तथा अग्निका आरम्भ, पवनका आरम्भ, वनस्पतिका आरम्भ, छेदनकाटनकरि आनन्द मानना। तथा अनेक बागवननिमें विहार करिके आनन्द मानना। तथा अत्तर फुलेल पुष्पमालादिकनिके आरंभ करि हर्षित होना। तथा कामसेवनकरि हर्षित होना। तथा अभक्ष्यभक्षण करि हर्षित होना। तथा विवाहादिक महा-

हिंसाके आरम्भादिकका आरंभकरि आनन्द मानना। तथा सुन्दर भोजन, वाहन, गमन आगमनकरि आनन्द मानना। सो समस्त हिंसानन्द नामा रौद्रध्यान है। बहुत कहनेकरि कहा? संसारी जीवनिके जे हिंसाके विकल्प हैं, तितने हिंसानन्द नामा रौद्रध्यान है। बहुरि हिंसाके कारण आयुधादिक उपकरण ग्रहण करना, तथा हिंसक जीव जे श्वान, मार्जार, चीता, सिंह, व्याघ्र, बाज, सिकरा, चिडी, काक, चील, सूवा, मैना, तीतर, कूकडा इत्यादिक दुष्टजीवनिकूं पालना, रक्षा करना, लडावना, प्रीति करना, सो समस्त हिंसानन्द दुर्ध्यान है।

अब मृषानन्द नामा दूसरा रौद्रध्यानकूं कहे हैं। असत्यकी कल्पना करि जिसका चित्त मलिन है तिसके मृषानन्द नामा रौद्रध्यान होय है। मेरे मांहि ऐसा सामर्थ्य है, जो लोकनिकूं कपटके शास्त्रनिकरि अनेक हिंसादिकनिके मार्गनिमें लगाय बहुत धन उपार्जन करि इन्द्रियजनित सुख भोगने, तथा मेरी वचनकलाके प्रभावकरि सांचेकूं झूंठा करूंगा अर झूंठेकूं सांचा करूंगा, अर वचनकी चातुर्यताके बलकरि लोकनितें धन, तथा हस्ती, घोडे, वस्त्र, सुवर्ण, आभरण, ग्राम, रूपवती कन्या ग्रहण करूंगा, ऐसा चिंतवन जाके होय, सो मृषानन्द रौद्रध्यानका धारक है। तथा असत्यके सामर्थ्यतें राजनिकरि तथा चोरनिकरि मेरे वैरी हैं तिनका घात कराऊंगा, निर्दोष हैं तिनके दोष प्रकट करद्यूंगा, चोरीकरि रहित है तिनमें चोरी प्रकट करद्यूंगा, शीलवन्तनिकूं जगतमें कुशीली दिखाय द्यूंगा, धनका नाश कराय द्यूंगा, बन्दिगृहमें नानाबन्धननिकरि मारणकरि त्रास भुगताऊंगा, इत्यादि चिंतवन करना सो मृषानन्द नामा रौद्रध्यान है।

बहुरि झूंठ बोलि आनन्द मानना, सत्यार्थधर्मके तथा धर्मके धारीनिके दोष कहिकरि आनन्द मानना, तथा झूंठ हिंसाके पुष्ट करनेवाले शास्त्र बणाय आनन्द मानना, तथा कामकी कथाकरि आनन्द मानना, भोजन कथाकरि, स्त्रीनिकी कथाकरि, तथा पापी जीवनिका सामर्थ्य वर्णन करि, तथा हिंसाके आरम्भकी प्रशंसा करिके आनन्द मानना, तथा पापरूप कथाके श्रवणकरि आनन्द मानना, तथा परनिंदा, परकी चुगलीकी वार्ताके कहनेकरि, तथा श्रवणकरि आनन्द मानना, तथा चोर दुष्ट म्लेछनिकी कथा करनी, तथा तिनकी कला चतुराई सामर्थ्यकी प्रशंसा करना सो समस्त मृषानन्द नामा रौद्रध्यान है। ये मनुष्य मूर्ख हैं, ज्ञानरहित है, हेय उपादेयका विचाररहित हैं, इनकूं मेरे वचनकी चातुर्यताकरि नवीन कुमार्गमें प्रवर्तन करावस्यूं, इत्यादिक अनेक असत्यके संकल्पकरि जो आनन्द उपजे है, सो दुर्गतिमें बहुतकाल परिभ्रमण करनेका कारण मृषानन्द नामा रौद्रध्यान जानना। जे संसारके दुःखनितें भयभीत हैं, ते अयोग्यवचनका स्वप्नेहूमें चिंतवन नहीं करे हैं।

अब चौर्यानन्द नामा रौद्रध्यानकूं कहे हैं। जो चोरीका उपदेश देनेमें निपुणपणा, तथा चोरी करनेमैं प्रबलपणा, तथा चोरी करनेके उपायमे चित्तका रहना, सो चौर्यानन्द रौद्रध्यान है। बहुरि चोरीके अर्थि बारम्बार चितवन करना, अर चोरी करि बहुत हर्षित होना, अर चोरी करि अन्य कोऊ अन्यका धन हरण किया होय तिसमें हर्षित होना, सो चौर्यानन्द है। बहुरि जिसके ऐसा चितवन लग्या रहै—अब मैं कोऊ शूरवीर पुरुषका सहाय पायकरिके तथा नानाप्रकार के उपायनिकरिके लोकनिका बहुतकालतें सचय किया धनकूं ग्रहण करस्यूं। बहुरि ऐसे चितवन करे–जो, मेरे इसका धन कैसे हाथि लगे? कैसे ये अचेत गाफिल होय? वा कोई मर्मका जाननेवाला मेरे सामिल होय तदि मेरे हाथि प्रचुर धन आवे, ऐसा चितवन सो चौर्यानन्द है। बहुरि कोई प्रकार मेरे गड्या धन हाथि लगि जाय, वा भूल्या परथा किसी प्रकार परधन आवे, तदि मेरा जीवना बुद्धि कुलादिक समस्त सफल है, जगतमे न्यायका धन कोऊके आवे नहीं, जगतमें जो सुख देखिये है सो तो परके धनहीतें है, बहुरि अन्यायतें धन आवे जिसमें बडा पुरुषार्थ वा भाग्य वा बुद्धिकी तीव्रता मानि आनन्द करना। तथा बहुमोलकी वस्तु थोडे मोलमें लेय आनन्द मानना इत्यादिक समस्त चौर्यानन्द रौद्रध्यान साक्षात् नरकगतिका कारण है।

अब परिग्रहानन्द रौद्रध्यानका विशेष कहे हैं। जो पुरुष बहुत आरम्भमे तथा बहुत परिग्रहमें रक्षाके अर्थि उद्यम करे, अर बहुत परिग्रह होय तदि आपकूं धन्य माने–कृतार्थ माने, मै राजा हूं, प्रधान हूं ऐसे मानना सो परिग्रहानन्द रौद्र ध्यान है। बहुरि ऐसे चितवन करे, जो, मै पुरुषनिमें प्रधानपुरुष हूं, जैसा मेरा ऐश्वर्य है तैसा औरनिके नाहीं, मै बड़े पुरुषार्थकरि अनेकवैरीनिका मारण करि यह विभव उत्पन्न किया है, तथा अपने गृहमे तिष्ठती नानाप्रकारकी सामग्री तथा महल उद्यान रत्न सुवर्ण स्त्री, पुत्र, वस्त्र, शय्या, आसन, असवारी, पयादे, सेवक इनकूं देखि चितवन करि आनन्द मानना सो परिग्रहानन्द है। जो परिग्रह बधाय आनन्द मानना, सो दुर्गतिका कारण परिग्रहानन्द दुर्ध्यान है। इसका विशेष परिग्रहत्याग महाव्रतमें कहे ही है। इहां विशेष लिखे कथन बधि जाय।

ये च्यारि प्रकारके रौद्रध्यान कृष्णलेश्याकरि सहित हैं, इनका फल नरकमें गमन करना है। क्रोधकी तीव्रता, क्रूरवचनका बोलना, परकूं ठिगनेमें कुशलता, कठोरता, निर्दयता ये रौद्रध्यानके चिह्न हैं। तथा अग्निके फुलिंगे समान नेत्रका होना, तथा भ्रकुटीकी वक्रता करना, भयानक आकृतिकरि शरीरका कंप होना, पसेवनिका आवना इत्यादिक रौद्र ध्यानतें देहमें चिह्न प्रकट होय हैं। यो रौद्रध्यान क्षायोपशमिकभाव है, इसका अन्तर्मुहूर्त काल है, दुष्ट अभिप्रायके

वशतें होय है, खोटे अवलम्बनतें उपजे है, धर्मरूप वृक्षकूं दग्ध करनेवाला है, जिसका अन्तःकरण परिग्रह आरम्भ कषायादिककरि मलिन होय ताके उपजे है, देशविरतगुणस्थानपर्यन्त होय है। ऐसे संसारपरिभ्रमणके कारण आर्त्तरौद्रकूं जानि इनका त्याग करि परिणाम उज्ज्वल करना श्रेष्ठ है। गाथा—

अवहट्टु अट्टरुद्दे महाभये सुग्गदीए पच्चूहे।
धम्मे सुक्के य सदा होदि समण्णागदमदीओ ॥१७१३॥

अर्थ—नरकादिकमें प्राप्ति करने तें महान् भयके करनेवाले अर शुभगतिके नष्ट करनेकूं महाविघ्नके कारण ऐसे आर्त्तरौद्र दोऊ दुर्ध्याननिकूं त्यागिकरिके, अर धर्मध्यान शुक्लध्यानमें सम्यग्बुद्धिकूं प्राप्त करनेवाला सदाकाल होहु। गाथा

इन्दियकसायजोगणिरोधं इच्छं च णिज्जरं विउलं।
चित्तस्स य वसियत्तं मग्गादु अविप्पणासं च ॥१७१४॥
किंचिवि दिट्ठिमुपावत्तइत्तु झाणे णिरुद्धदिट्ठीओ।
अप्पाणम्मि सदिं संधित्ता संसारमोक्खट्ठम् ॥१७१५॥
पच्चाहरित्तु विसयेहिं इन्दियेहिं मणं च तेहिंतो।
अप्पाणम्मि मणं तं जोगं पणिधाय धारेदि ॥१७१६॥
एयग्गेण मणं रुंभिऊण धम्मं चउव्विहं झादि।
आणापायविवागं विचयं संठाणविचयं च ॥१७१७॥

अर्थ—जो इन्द्रियनिकूं वश करनेकी, अर कषायका निग्रह करनेकी, अर योगनिका निरोधकी इच्छा करत है, तथा प्रचुरनिर्जराकी इच्छा करत है, तथा चित्तकूं आपके वशी किया चाहे है, तथा रत्नत्रयमार्गतें नहीं छूट्या चाहे है, तो, किंचित् बाह्यपदार्थनितें दृष्टिसंकोच करिके, अर शुभध्यानमें अन्तर्दृष्टिकूं रोकिकरिके, अर संसारका अभावके अर्थि आत्मा विषें स्मरण जोडिकरिके, अर विषयनितें इन्द्रियनिकूं रोकिकरिके, अर इन्द्रियनितें मनकूं रोकिकरिके, अर योग्य वीर्यलि-

रायका क्षयोपशम विचारिकरिके, अर मनकूं आत्मामें धारण करे। सो मनकूं एकाग्र रोकिकरिके, अर आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय च्यारि प्रकार धर्मध्यानकूं ध्यावत है। भावार्थ—जो इन्द्रियनिका तथा कषायनिका निग्रह चाहे, तथा प्रचुरनिर्जरा चाहे, तथा चित्तका वशीकरण चाहे, तथा रत्नत्रयमार्गतें नहीं छूट्या चाहै, सो अभ्यन्तर आत्मदृष्टिकरिके अर इन्द्रियनिकूं विषयनितें रोकिकरिके अर इन्द्रियनितें मनकूं रोकिकरिके अर धर्मध्यानमें चित्तकूं रोके। गाथा—

धम्मस्स लक्खणं से अज्जवलहुगत्तमद्दवोवसमा।
[1]उवदेसणा य सुत्ते णिसग्गजाओ रुचीओ दे ॥१७१८॥

अर्थ—तिस धर्मध्यानका लक्षण आर्जव कहिये कपटरहित सरलता है, तथा निष्परिग्रहता ताकूं लघुत्व कहिये भाररहितपणा कहिये है, तथा जात्यादिक अष्टप्रकार मदका अभाव सो मार्दवधर्मका लक्षण है, तथा उपशमभाव कहिये कषायनिकी मन्दता है, तथा जिनेन्द्रके सूत्रका उपदेश करना, तथा स्वभावतेंही पदार्थनिमें सत्यार्थ रुचि ये धर्मके लक्षण जानने। भावार्थ—जो कपटका अभावकरि सरलताका प्रकट होना, तथा परिग्रहरहित होइ आत्मामें लघुत्वगुण प्रकट करना, तथा अष्टमदरहित होइ मार्दव अग धरना, कषायनिकी मन्दता करना, जिनसूत्रका उपदेश करना, तथा जिनेन्द्रके उपदेशे सत्यार्थपदार्थनिमें श्रद्धान करना ये धर्मके लक्षण हैं, इनतें धर्म जाण्या जाय है, इन गुणनिविना धर्म नहीं होय है। गाथा—

आलंवणं च वायण पुच्छण परिवट्टणाणुपेहाओ।
धम्मस्स तेण अविसुद्धाओ सव्वाणुपेहाओ ॥१७१९॥

अर्थ—धर्मध्यानका आलम्बन पंचप्रकारकी स्वाध्याय है—वाचना, पृच्छना, परिवर्त्तन, अनुप्रेक्षा, अर इनतें अविरुद्ध समस्त अनुप्रेक्षानिका भावना, ये धर्मध्यान करनेका बाह्य अभ्यन्तर अवलम्बन है। भावार्थ—धर्मध्यानका प्रधान अवलम्बन पंचकारकी स्वाध्याय है। तिनमें निर्दोष ग्रन्थ अर निर्दोष अर्थका धर्मानुरागी होइ पठनपाठन करना, सो वाचना है। अर अपने संशयके दूरि करनेके अर्थि, तथा पदार्थनिका निश्चय होनेके अर्थि, वा विशेष जानने के अर्थि, तत्त्वका निर्णयके अर्थि, उद्धततारहित, विसंवादरहित, महाविनयसंयुक्त, वात्सल्ययुक्त अजुली जोडिकरि बहुश्रुतीनिकूं प्रश्न करना,

१, सुत्तस्सुवदेसणा णिसग्गाओ अत्थ रुचिगोमे—ऐसा भी पाठ है।

सो पृच्छना नाम स्वाध्याय जानना । बहुरि जिनसूत्रको आज्ञातें सम्यक् ज्ञानवान् गुरुनिके संयोगतें परमार्थभूत जान्या हुवा अर्थका मनकरि बारम्बार अभ्यास करना–चितवन करना, सो अनुप्रेक्षा नाम स्वाध्याय है ।

बहुरि शब्द अर अर्थ गुरुनिकी परिपाटीतें शुद्ध उच्चारन करना, पाठ करना, सो आम्नाय नामा स्वाध्याय है । बहुरि अपनी विख्याततातूं नहीं इच्छा करता धर्मोपदेश करे, तथा धर्मका उपदेश देइ भोजनका लाभ धन संपदा वसतिकादि का लाभ नहीं इच्छा करता तथा अपनी पूजा मान्यता नहीं इच्छा करता केवल अपना अर परका कल्याणके अर्थि समस्त जीवनिका हित करनेवाली जे धर्मकथा तिनका उपदेश करना, सो धर्मोपदेश नाम स्वाध्याय है ।

ऐसे पंचप्रकारका स्वाध्याय धर्मध्यानका अवलम्बन है, सो ग्रहण करना योग्य है । अब च्यारिप्रकारका धर्मध्यान में आज्ञाविचय नामा धर्मध्यानकूं कहे हैं । गाथा—

पचेव अत्थिकाया छज्जीवणिकाए दव्वमण्णे य ।
आणागज्झे भावे आणाविचएण विचिणादि ॥१७२०॥

अर्थ—पंच अस्तिकाय–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश इनिकूं अस्तिकाय कहिये हैं । जातें उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनपरिणतिकरि युक्त होइ, सो अस्ति है, ताकूंही सत् कहिये है । जामें उत्पाद व्यय ध्रौव्य नहीं सो सत्ही नहीं । समस्तवस्तु सर्वथा नित्य नहीं है, सर्वथा क्षणिक नहीं है । सर्वथा नित्य वस्तुके अनुक्रमतें वर्तती जे पर्याय, तिनका अभावतें विकारवान्पणाका अभाव होई–परिणतिरहित होइ । अर सर्वथा क्षणविनाशीकही मानिये तो प्रत्यभिज्ञानका अभाव होय है, या वस्तु वाही है ऐसे कहना नहीं बणै । तथा कोऊकूं बालक अवस्थामें देखि बहुरि दशवर्षपाछे देख्या तदि जाण्या, जो, "वे दशवर्ष पहली बाल्य अवस्थामें देख्या था, सोही यह है" । क्षणविनाशीकमें ऐसा प्रत्यभिज्ञान नहीं होय है । तातें प्रत्यभिज्ञानका कारण कोऊस्वरूपकरिके ध्रौव्यपणाकूं अवलम्बन करता अर कितनी पर्याय क्रमकरिके प्रवर्तते तिनकरिके विनाश अर उत्पादन एककाल अवलम्बन करता ऐसे एक समयमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीन परिणतिकूं धारण करते वस्तुकूं 'सत्' ऐसा जानना योग्य है । जैसे घटपर्यायका नाश होना, सोही कपालपर्याय का उत्पाद है । अर कपाल का उत्पाद होना, सोही घटपर्यायका नाश है । अर मृत्तिका दोऊ पर्यायनिमें ध्रुव है । तातें घटका नाश होनेका अर मांटीकी ध्रुवताका काल भिन्न नहीं है ।

बहुरि घटमें समय समय सूक्ष्मपरिणति उपजे है अर विनशे है, अर मृत्तिकाकरिके ध्रौव्य है। जो पर्यायार्थिक नयकरिकेहू नहीं उपजे है अर नहीं विनसे है, तो नवीन घट था सो पुराणा कैसे होइ ? तातें अर्थपर्याय तो समय समयमें उपजे है अर विनसे है। अर व्यंजनपर्याय जो स्थूलपर्याय सो बहुतकालमें विनसे है। जैसे घटपर्याय तो व्यंजनपर्याय है, सो बहुतकालमें विनसे, परन्तु अर्थपर्याय तो घटमें समय समय उपजे विनसे है। जैसे मनुष्यपर्याय तो व्यंजनपर्याय है, सो आयु पर्यन्त एक रहे है अर अर्थपर्याय समय समयविषै भिन्न भिन्न उपजती निरन्तर असंख्यात उत्पन्न होइ होइ विनसे है। अर द्रव्य ध्रुव रहे है। यातें समस्त जे जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश इनि पांचनि में उत्पाद व्यय ध्रौव्य है, तातें इनकूं 'अस्ति' कहिये है। अर जाका प्रदेश बहुत होय, ताकूं काय कहिये। सो एक जीवके असंख्यात प्रदेश हैं अर पुद्गल संख्यातप्रदेश तथा असंख्यातप्रदेश तथा अनन्तप्रदेशकूं धारण करे है। अर धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्यके असंख्यात असंख्यात प्रदेश हैं। आकाशके अनन्त प्रदेश हैं। अर बहुप्रदेशीकूं काय कहिये हैं। अर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये बहुप्रदेशी हैं तातें इनकूं अस्तिकाय कहिये हैं। इनके उत्पादव्ययध्रौव्यपणातें तो अस्तिपणा है अर बहुप्रदेशीपणातें कायपणा है, तातें इनकूं अस्तिकाय कहिये हैं। अर कालाणुनिके उत्पादव्यय-ध्रौव्यतातें अस्तिपणा तो है, परन्तु बहुत प्रदेश नहीं, तातें कायपणा नहीं, यातें कालकूं अस्तिपणातें द्रव्यनिमें तो कह्या अर कायनिमें नहीं कह्या। जातें जे अपने अपने गुणपर्यायनिकूं समय समय प्राप्त होइ, तिनकूं द्रव्य कहिये। अर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये छहूही समय समय एकपरिणतिकूं छांडे हैं, अर नवीन ग्रहण करे हैं, अर आप ध्रुव रहे हैं, तातें इनकूं द्रव्य कहिये हैं। अर कालके द्रव्यपणा तो है, परन्तु एकप्रदेशी है–बहुतप्रदेशी नहीं तातें कायपणा नहीं। यातें द्रव्य तो छह प्रकार है अर अस्तिकाय पांचही हैं, तिनकूं भगवान् सर्वज्ञ वीतरागकी आज्ञातें 'आज्ञाविचय' धर्मध्यानकरिके चिंतवन करे।

बहुरि पृथ्वीही है काय जिनके ऐसे पृथ्वीकाय, अर जलही है काय जिनके ते अप्कायिक, अर अग्नि है काय जिनके ऐसे अग्निकायिक जीव, अर पवन है काय जिनके ते जीव पवनकायिक, अर वनस्पति है काय जिनके ते वनस्पति कायिक ये तो पंचप्रकार स्थावर अर द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेन्द्रिय इनकूं त्रस कहिये हैं। इन छकायनिमें जिनेन्द्र करि देख्या हुवा जीव है। तातें जीवनिकी छकाय अर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये षड्द्रव्य, ये सर्वज्ञकी आज्ञाकरि ग्रहण करने योग्य 'आज्ञाविचय' धर्मध्यानमें चिंतवन करे। गाथा—

कल्लाणपावगाणउपाये विचिणादि जिणमदमुवेच्च ।
विचिणादि वा अवाए जीवाण सुभे य असुभे य ॥१७२१॥

अर्थ—जिनेन्द्रमतकूं प्राप्त होयकरिके अर आपके कल्याण प्राप्ति होने के उपायनिकूं चितवन करे, सो अपाय विचय धर्मध्यान है। भावार्थ—मेरा कल्याण कैसे होय ? जिनेन्द्र भगवान् मेरा हित होनेका उपाय कैसा कह्या है ? मेरा राग, द्वेष, मोह कैसे मन्द होय ? मेरा शुद्ध वीतरागभाव कैसे प्रकट होय ? ऐसे चितवन करना, सो अपायविचय धर्मध्यान है। अथवा मेरे अशुभ मनवचनकायका अभाव कैसे होय, तथा जीवनिके शुभ अशुभ बन्धका नाश चाहना, सो अपायविचय धर्मध्यान है। मेरे अशुभकर्मका नाश जिस अवसर होइ, तिस अवसर मेरा कल्याण है। ऐसे कर्मका नाश होनेमें उद्यम परिणाम संगति चारित्रकूं अभिलाष करना, सो अपायविचय धर्मध्यान है। गाथा—

एयाणेयभवगदं जीवाण पुण्णपावकम्मफलं ।
उदओदीरणसंकमबंधे मोक्खं च विचिणादि ॥१७२२॥

अर्थ—बहुरि विपाकविचय धर्मध्यानविषें जीवनिके एकभवतैं तथा अनेकभवनितैं प्राप्त भयापुण्यपापकर्मका फल तथा उदय उदीरणा संक्रमण बन्ध मोक्ष इनिकूं चितवन करे। गाथा--

अहतिरियउड्ढलोए विचिणादि सपज्जए ससंठाणे ।
एत्थे व अणुगदाओ अणुपेहाओ वि विचिणादि ॥१७२३॥

अर्थ—संस्थानविचयधर्मध्यानमें अधोलोक, तिर्यग्लोक, ऊर्ध्वलोक पर्यायनिकरि सहित तथा संस्थानकरि सहित तिनकूं चितवन करे। अर संस्थानविचय धर्मध्यानही में द्वादशभावनाका चितवन करे। गाथा--

अब द्वादशभावनाका कथन एकसो सत्तावन गाथानिमें कहे हैं।

अद्धुवमसरणमेगत्तमण्णसंसारलोयमसुइत्तं ।
आसवसंवरणिज्जर धम्मं बोधिं च चिंतिज्ज ॥१७२४॥

अर्थ--१. अध्रुव, २. अशरण, ३. एकत्व, ४. अन्यत्व, ५. संसार, ६. लोक, ७. अशुचित्व, ८. आस्रव, ९. संवर १०. निर्जरा, ११. धर्म, १२. बोधि ये द्वादश भावना बारम्बार चिंतवन करे। भावार्थ--ये द्वादश भावना वैराग्यकी माता भगवान् तीर्थंकरदेवनिकरि चिंतवन करी हुई समस्त जीवनिके हित करनेवाली, दुःखित जीवनिकूं शरणभूत, आनंद करनेवाली, परमार्थमार्गकूं दिखावनेवाली, तत्वनिका निश्चय करावनेवाली, सम्यक्त्व उपार्जन करावनेवाली, अशुभध्यानकूं नष्ट करने वाली, कल्याणके अर्थीनिकूं नित्यही चिंतवन करना श्रेष्ठ है। गाथा--

लोगो विलीयदि इमो फेणोव्व सदेवमाणुसतिरिक्खो।
रिद्धीओ सव्वाओ सिविणयसंदंसणसमाओ ॥१७२५॥

अर्थ--देव मनुष्य तिर्यंचनिकरि सहित यो लोक फेन जो झाग तिसकीनांई विलय होय है। अर समस्त ऋद्धि हैं ते स्वप्नके दर्शनसमान है। भावार्थ—जैसे जलके झाग वा बुदबुदा देखते देखते विलाय जाय है, तैसे देवनिका देह तथा मनुष्यतिर्यंचनिके देहहू क्षणमात्रमें विलय होय हैं। अर समस्त ऋद्धि संपदा राज्य विभव एक क्षणमें ऐसे विनसे है, जैसे स्वप्नमें देख्या हुवा बहुरि नहीं दीखे। गाथा—

विज्जूव चंचलाइं दिट्ठपणट्ठाइं सव्वसोक्खाइं।
जलबुब्बुदोव्व अधुवाणि हुंति सव्वाणि ठाणाणि ॥१७२६॥

अर्थ—समस्त इन्द्रियजनित सौख्य बिजलीवत् चंचल हैं। जैसे विजुली पूर्वे दीखे बहुरि नष्ट होजाइ, फिर नहीं दीखे, तैसे इन्द्रियनिके विषयजनित सुख नष्ट हुवा पाछै बहुरि नहीं दीखे हैं। अर समस्त ग्राम नगर गृह मकान जलके बुदबुदेकीनांई अस्थिर हैं। यातै यह मेरा स्थान है, यह मेरा गृह है, मै इहां वसूं हूं. ये मेरे विषय हैं, इन्द्रिय हैं, ऐसा संकल्प मति करो। समस्त इन्द्रपणा, चक्रीपणा विनाशीक जाणि अपना ज्ञानदर्शनस्वरूपमें आपा धारण करो। गाथा—

णावागदाव बहुगइपधाविदा हुन्ति सव्वसंबंधी।
सव्वेसिमासया वि अणिच्चा जह अब्भसंघाया ॥१७२७॥

अर्थ—समस्त सम्बन्ध कैसे हैं? जैसे एक नावमें अनेकदेश अनेकग्रामके पुरुष सामिल होइ बैठे, बहुरि

नाव तीरां लागे तदि उतरि नानामार्गकूं प्राप्त होय हैं, तैसे समस्त कुटुम्बके एककुलरूप नावमें सामिल होइ बहुरि आयु के अन्तविषैं नानागतिनिकूं प्राप्त होय हैं। बहुरि जिस स्वामी, सेवक पुत्र, स्त्री, भ्रातानिके आश्रय होयकरिके जीवना चाहे हैं, ते समस्त आश्रय बादलेनिके समूहकीनांईं अनित्य हैं—विनाशीक हैं। गाथा—

संवासो वि अणिच्चो पहियाणं पिण्डणं व छाहीए।

पीदी वि अच्छिरागोव्व अणिच्चा सव्वजीवाणं ॥१७२८॥

अर्थ——बन्धुजन तथा मित्र तथा परिवार के जननिकरि सहित वसना है सो अनित्य है। जैसे मार्गमें पथिकनिका समूह एक वृक्षकी छायाकूं प्राप्त होइ बहुरि अपने अपने ग्रामकूं वा अपने अपने मार्गकूं उठि जाय है——बहुरि मिलना नहीं होय है। तैसे कुटुम्बके जन मित्रजनहू एककुलमें एकगृहमें आइ बसे हैं। बहुरि अपनी अपनी गतिनिकूं प्राप्त होय हैं——बहुरि नहीं मिले हैं। बहुरि समस्तजनांकी प्रीतिहू नेत्रनिका रागकीनांईं अनित्य है। भावार्थ——समस्तलोकनिकी प्रीति एक मुतलबकी है, क्षणमात्रमें पलटे है। जैसे नेत्रनिमें रक्तता एकक्षणमात्रमें पलटे है, तैसी संसारकी प्रीति जाननी। गाथा—

रत्तिं एगम्मि दुमे सउणाणं पिण्डणं व संजोगो।

परिवेसोव अणिच्चो इस्सरियाणाधणारोग्ग ॥१७२९॥

अर्थ——जैसे सूर्यके अस्तसमयविषैं एकवृक्षविषैं अनेक पक्षी इकट्ठे होइ बसे हैं, उनका ऐसा संकेत परस्पर नहीं है—जो, "अपनेतांईं इस वृक्षविषैं सामिल रहना" विनासंकेतही अनेकदेशनिके आइ प्राप्त होय हैं, प्रातःकाल नानादेशनिकूं गमन करे हैं। तैसे संकेतविनाही अनेकगतिनितैं आया कुटुम्बीनिका संयोग होय है, बहुरि मरणकूं प्राप्त होइ त्रसस्थावरादि अनेक योनिस्थानकूं प्राप्त होय हैं। बहुरि जैसे चन्द्रमासूर्यका कुंडाला होइ विनसि जाय है, तैसे ऐश्वर्य तथा आज्ञा तथा धन तथा नीरोगपणा विनसि जाय है। गाथा——

इन्दियसामग्गी वि अणिच्चा संझाव होइ जीवाणं।

मज्झण्हं व णराणं जोव्वणमणवट्ठिदं लोए ॥१७३०॥

अर्थ--जीवनिके इन्द्रियनिकी सामग्रीहू संध्याकालकी लालीकीनांई अनित्य है। क्षणमात्रमें नेत्र नष्ट होइ अन्धा होय है, कर्ण नष्ट होइ बधिर होय है, जिह्वा थकि जाय है, हस्तपाद रुकि जाय है। अर लोकके विषं जैसे मध्याह्नकी छाया टलि जाय है, तैसे यौवन मनुष्यनिके थिर नहीं है। गाथा—

चन्दो हीणो व पुणो विढ्ढदि एदि य उदू ग्रदीदो वि।
णदु जोव्वणं णियत्तइ णदीजलमदच्छिदं चेव ॥१७३१॥

अर्थ—जगतमें कृष्णपक्षमें हीन भया चन्द्रमा तो शुक्लपक्षमें बहुरि वृद्धिकूं प्राप्त होय है। अर नक्षत्र ग्रस्त भयाहू बहुरि उदय होय है। अथवा हिम शिशिर बसन्त ऋतु इत्यादिक गई हुईहू बहुरि आवत हैं। परन्तु यौवन गया हुवा "जैसे नदीका जल गया हुवा नहीं बाहुडे तैसे" नहीं आवे है। गाथा--

धावदि गिरिणदिसोदंव आउगं सव्वजीवलोगम्मि।
सुकुमालदा वि हीयदि लोगे पुव्वण्हछाहो व ॥१७३२॥

अर्थ--समस्त जीवलोकमें आयु ऐसे निरन्तर जाय है--जैसे पर्वतकी नदीका प्रवाह दौडे है। अर देहकी सुकुमारताहू ऐसे नष्ट होय है—जैसे पूर्वाह्णकालकी छाया क्षणमें घटे है। गाथा--

अवरण्हरुक्खछाहो व ग्रट्ठिदं वढ्ढदे जरा लोगे।
रूवं पि णासइ लहुं जलेव लिहिदेल्लयं रूवं ॥१७३३॥

अर्थ--जैसे अपराह्णकालमें वृक्षकी छाया अथिर जैसे होय तैसे लोकमें वृद्धिनें प्राप्त होय है, तैसे जरा क्षणक्षणमें वृद्धिनें प्राप्त होय है। कैसी है जरा? जिसनें आवते संते जैसे जलमें लिख्या रूप शीघ्र विनशि जाय है, तैसे पुरुषका रूप शीघ्र विनसे है। भावार्थ—कैसीक है जरा? सुन्दररूपही जो कूंपल, तिनकूं दग्ध करनेकूं दावाग्निसमान है। अर सौभाग्यरूप पुष्पनिके नष्ट करनेकूं गडेनकी वृष्टिसमान है। अर स्त्रीनिकी प्रीतिरूप हरिणीके भक्षण करनेकूं व्याघ्रीसमान है। ज्ञाननेत्रके मुद्रित करनेकूं धूलिकी वृष्टिसमान है। अर तपरूप कमलनिके वनकूं नष्ट करनेके अर्थि हिमानीका पतनसमान है। दीनता उत्पन्न करनेकी माता है। तिरस्कारके बधावनेकूं धार समान है। अर मृत्युकी दूती है। भयकी प्यारी सखी है। ऐसी जरा लोकनिके मध्य विस्तरे है। गाथा—

तेओ वि इन्दधणुतेजसण्णिहो होइ सव्वजीवाणं ।
विट्टुपणट्टा बुद्धी वि होइ मुक्काव जीवाणं ॥१७३४॥

अर्थ—समस्त जीवनिका तेज है सो इन्द्रधनुषका तेजसमान है । जैसे इन्द्रधनुषका नानारंगनिका तेज प्रकट होइ क्षणमात्रमें विनसे है, तैसे जीवनिका तेज विनासीक जानना । जीवनिकी बुद्धि है सो बिजलीकीनांई प्रकट होयकरि नष्ट होय है । गाथा—

अदिवडइ बलं खिप्पं रूवं धूलीकदंबरं छाए ।
वीचीव अद्धुवं वीरियंपि लोगम्मि जीवाणं ॥१७३५॥

अर्थ—बहुरि बल है सोहू जैसे नगरकी गली मै धूलिकरिकं बणाया पुरुषका आकार सो विनसि जाय; तैसे शीघ्र पतननं प्राप्त होय है । अर लोकविषं जीवांकं वीर्यहू जलमें लहरीकीनांई अथिर है । गाथा—

हिमणिचओ वि व गिहसयणासणभंडाणि होंति अधुवाणि ।
जसकित्ती वि अणिच्चा लोए संज्झब्भरागोव्व ॥१७३६॥

अर्थ—लोककेविषं गृह, शय्या, आसन, भांड, आभरणादिक समस्त हिमनिचय जो पालाका समूह ताकीनांई अथिर है । अर लोकमें यशस्कीर्ति है सोहू संध्याकी लालीकीनांई विनाशीक है । गाथा—

किह दा सत्ता कम्मवसत्ता सारदियमेहसरिसमिणं ।
ण मुणन्ति जगमणिच्चं मरणभयसमुत्थिया सन्ता ।१७३७॥

अर्थ—मरणके भयतं व्याप्त भये संते अर कर्मके वशकरिकं पीडित ऐसे संसारी प्राणी इस जगतकूं शरदकी मेघ समान कैसे अनित्य नहीं जाणत हैं ? इहां औरहू विशेष कहिये हैं—इस जगतमें जेते पदार्थ नेत्रनिके गोचर देखिये हैं, ते समस्त विनसेंगे । शरीर है सो रोगनिकरि व्याप्त है, यौवन जरा करि व्याप्त है, ऐश्वर्य विनाशकरि सहित है । इस संसारमें बलभद्र—नारायण का ऐश्वर्य क्षणमात्र में नष्ट होगया, जिनकं देवनिकरि रची द्वारावती नगरी नष्ट होती भई,

औरनिकी कहा कथा ? लक्ष्मी विनाशकरि सहित जानहु, जीवन मरणकरि सहित है । अर स्त्री पुत्र मित्र कुटुम्बादिकनिके जेते संयोग हैं तिनका वियोग निश्चयतें होयगा, जैसे इन्द्रधनुष तथा बिजुलीका चमत्कार क्षणभंगुर है तैसे समस्तसबंध क्षणभंगुर जानहु । देह बण्या नहीं रहेगा, बल वीर्य नष्ट होयंगे, इन्द्रिय विनाशकूं प्राप्त होयगी, तातें जितने इन्द्रियबल नष्ट नहीं होइ, अर जरा देहकूं जर्जरा नहीं करे, तितने परमधर्ममें यत्नकरि अपना हित करना श्रेष्ठ है ।

या लक्ष्मी बड़े पुण्यवान् चक्रवर्ती तिनके स्थिर नहीं रही, तो अन्य रंकनिकी कहा कथा ? अतिबलवानहू मरण-रहित नहीं होय है । नाना प्रकार के भोजनकरि पोषते पोषतेहू शरीर नष्ट होयहीगा । अर ये भोग हैं ते काले नागके फणसमान भयंकर दुर्गतिके दुःख उपजावनेवाले हैं, तोहू थिर नहीं हैं । अर यो देह, स्त्री, पुत्र, मित्र, बांधव अवश्य नष्ट होयंगे; तो इनके अर्थि इस लोकमें वृथा पापबंधकरि नरकमें गमन करना श्रेष्ठ नहीं । स्त्री पुत्र मित्रादिक किसीके लैर परलोक जाय नहीं, अपने उपार्जन कीये शुभाशुभ कर्म साथी हैं, तातें अनित्य भावना भावहु ।

अर ये जाति, कुल, देश, नगर देहकी लैरही वियोगने प्राप्त होयगे, जातिकुलमें आपा धरो सो पर्यायकी लैरही विनसे है । इस मनुष्यशरीरकरिके दोऊ लोकमें कल्याणकारी कार्य करो, अर लक्ष्मी परके उपकारनिमित्त लगावो । या लक्ष्मी कोई कुलवानमें, रूपवानमें, बलवानमें, शूरवीरमें, कृपणमें, कायरमें, अकुलीनमें, पूज्यमें, धर्मात्मामें, पराक्रमीमें, अधर्मीमें कहूंमें नहीं रमे है, पूर्वजन्ममें जे पुण्य कीये तिनके प्राप्त होइ, बहुरि मद उपजाय, पापनिमें, प्रवृत्ति कराय, दुर्गति-गमन करावनेवाली है । तातें उत्तम मध्यम जघन्य पात्रनिके दानतें तथा सप्तक्षेत्रनिमें लगायके सफल करहु । अर यौवन रूप पायकरिकें दृढ शीलव्रत पालहु । बल पाइकरिकें क्षमा ग्रहण करो । ऐश्वर्य पायकरिकें मदरहित होई विनयवान् होहु । संयोग पाइ वैराग्यभावना भावहु । ऐसे अनित्यभावना वर्णन करी । अब अशरण भावना अठारह गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

णासदि मदो उदिण्णे कम्मेण य तस्स दीसदि उवाओ ।
अमदंपि विसं सच्छं तणं पि णीयं विहुन्ति अरी ॥१७३८॥

अर्थ—अशुभकर्मकी उदीरणा होता संता बुद्धि नष्ट होय है, कर्मका उदयकूं आवतें एकहू कोऊ उपाय नहीं दीखे है, अमृतहू वैरी होई परिणमे है, प्रबल उदय होतें बुद्धि विपर्यय होइ आपही अपने घातके कर्म करे है । गाथा—

मुक्खस्स वि होदि मदी कम्मोवसमे य दीसदि उवाश्रो ।

णीया अरी वि सच्छं वि तणं अमयं च होदि विसं ॥१७३९॥

अर्थ—बहुरि जब अशुभकर्मका उपशम होइ तब मूर्खकेहू प्रबल बुद्धि प्रकट होइ है, अर अनेक उपाय सुखकारी दीखे हैं, अर वैरीहू अपना मित्र होय है, अर शस्त्रहू तृणसमान होय है, अर विषहू अमृत होय परिणमे है—अशुभकर्मका उपशम होय तदि समस्त उपद्रवकारी वस्तुहू सुखकारी होइ परिणमे है । गाथा—

पाओदएण अत्थो हत्थं पत्तो वि णस्सदि णरस्स ।

दूरादो वि सपुण्णस्स एदि अत्थो अयत्तेण ॥१७४०॥

अर्थ—इस जगतमे मनुष्यके पापका उदयकरि हस्तमें प्राप्त भयाहू जो अर्थ कहिये धन, सो नाशकूं प्राप्त होय है । अर पुण्यवान् पुरुषके पुण्यकर्मके उदयकरि विनायत्नही अतिदूरतै धन आय प्राप्त होय है । भावार्थ—लाभांतरायका क्षयोपशम होय तदि जतनविनाही अनेक दूरि क्षेत्रतैहू अचिंत्य धन आय प्राप्त होय है । अर जब लाभांतराय तथा असाताकर्मका तीव्र उदय होय, तब बडे जतनकरि रक्षा करते करतेहू हस्तमे धरचा धनहू नष्ट होय है । गाथा—

पाओदएण सुठ्ठु वि चेट्ठन्तो को वि पाउणदि दोसं ।

पुण्णोदएण दुठ्ठु वि चेट्ठन्तो को वि लहदि गुणं ॥१७४१॥

अर्थ—पापकर्मका उदयकरि सुन्दर प्रवृत्ति करताहू कोऊ पुरुष दोषकूं प्राप्त होय है । अर पुण्यउदयकरि कोऊ पुरुष दुष्ट चेष्टा करतोहू गुणनिकूं प्राप्त होय है । भावार्थ—अयशस्कीर्ति नामा कर्मका उदय आवे तदि सुन्दरचेष्टा करताहू अपवादकूं प्राप्त होय है । अर यशस्कीर्तिकर्मका उदय होय तदि दुष्टताके कार्य करतेहू जगतमें गुण विख्यात होय हैं । गाथा—

पुण्णोदएण कस्सइ गुणे असन्ते वि होइ जसकित्ती ।

पाओदएण कस्सइ सुगुणस्स वि होइ जसघाओ ॥१७४२॥

अर्थ—पुण्यके उदयकरिके कोऊके गुण नहीं होतेहू जगतमें जसकीर्ति प्रकट होय है, अर गुणसहितहू कोईके पापके उदयकरिके जसका नाश होइ अपजस प्रकट होय है ।

णिरुवक्कमस्स कम्मस्स फले समुवट्ठिदम्मि दुक्खम्मि ।
जादिजरामरणरुजाचिंताभयवेदणादीए ॥१७४३॥

जीवाण णत्थि कोई ताणं सरणं च जो हवेज्ज इधं ।
पायालमदिगदो वि य ण मुच्चदि सकम्मउदयम्मि ॥१७४४॥

अर्थ—उदय आयेपाछे जिसका इलाज नहीं ऐसा कर्मका फल जो जन्म जरा मरण रोग चिंता भय वेदना दुःख इनकूं प्राप्त होते जीवनिके कोऊ रक्षा करनेवाला शरण नहीं है, अपने बंधनरूप कीये कर्मनिके उदय होते पातालमें प्राप्त हुवाहू नहीं छूटत है। भावार्थ—उदय आया कर्म कहूंही नहीं छोडेगा। पातालमें घसेगा तिसकूं हू कर्मका फल जो दुःख जन्म मरण जरा रोग शोक भय वेदना आइ प्राप्त होयंगे। तातें कर्मके उदयमें कोऊ शरण नहीं है। गाथा–

गिरिकंदरं च अडवि सेलं भूमिं च उदधि लोगन्तं ।
अविगन्तूणं वि जीवो ण मुच्चदि उदिण्णकम्मेण ॥१७४५॥

अर्थ—पर्वतकी गुफाविषे, वनीविषे, पर्वतविषे, भूमिविषे, समुद्रविषे, लोकके अंत कहिये मध्यविषे महाविषम स्थानकूं प्राप्त भयेहू जीवकूं उदरीणाकूं प्राप्त भया कर्म नहीं छांडे है। भावार्थ–कर्मका उदय जीवकूं किसी स्थानमेंहू नहीं छांडे है। गाथा–

दुगचदुअणेयपाया परिसप्पादी य जन्ति भूमीओ ।
मच्छा जलम्मि पक्खी णभम्मि कम्मं तु सव्वत्थ ॥१७४६॥

अर्थ—द्विपद जे दुष्ट मनुष्यादिक, चतुष्पद जे सिंहव्याघ्रादिक, अर अनेकपद जे अनेकप्रकारके तिर्यंच अर परिसर्पादिक ये तो भूमिहीमें गमन करे हैं। अर कच्छमत्स्यादि जलहीमें गमन करे हैं। अर पक्षी आकाशहीमें गमन करे है। परंतु कर्म तो सर्वत्र जलमें आकाशमें गमन करे है, कहूंही नहीं छांडे है। गाथा–

रविचन्दवादवेउव्वियाणमगमा वि अत्थि हु पदेसा ।
ण पुणो अत्थि पएसो अगमो कम्मस्स होइ इधं ॥१७४७॥

अर्थ—इस लोकमें ऐसे ऐसे प्रदेश हैं, जिनमें सूर्यचंद्रमाका उद्योत तथा किरण प्रवेश नहीं करिसके हैं। अर वैक्रियिकऋद्धिधारी नहीं गमन करिसके है। परंतु ऐसा कोऊ प्रदेश नाहीं, जहां कर्मका गमन नहीं होय। भावार्थ-इस लोक में सूर्य चंद्रमा तथा वैक्रियिकऋद्धिका जहां प्रवेश नहीं, ऐसे स्थान तो बहुत हैं, परंतु ऐसा स्थान कोऊ नहीं है, जहां कर्म प्रवेश नहीं करिसके। गाथा—

विज्जोसहमन्तवलं बलवीरिय णीयायहत्थिरहजोहा।
सामादिउवाया वा ण होंति कम्मोदए सरणं ॥१७४८॥

अर्थ—कर्मका उदय होते संते विद्या औषध मत्र बल वीर्य अर निजमित्रादिक अर अश्व, हस्ती, रथ, योद्धा अर साम दाम दड भेदादिक उपाय शरण नहीं हैं। गाथा—

जह आइच्चमुदेन्तं कोई वारन्तउ जगे णत्थि।
तह कम्ममुदीरन्तं कोई वारेन्तउ जगे णत्थि ॥१७४९॥

अर्थ—जैसे उदयकूं प्राप्त होता जो सूर्य ताकूं निवारण करनेवाला कोऊ जगतविषै नहीं है, जो सूर्यका उदयकूं रोके; तैसे उदीरणाकूं प्राप्त भया जो कर्म ताकूं कोऊ रोकनेवाला नहीं है। कर्मके सहकारीकारण बाह्यनिमित्त प्राप्त भये पीछे कर्मके उदयकूं रोकनेमें कोऊ देव दानव मनुष्यादिक समर्थ नहीं है। गाथा—

रोगाणं पडिगारो दिठ्ठा कम्मस्स णत्थि पडिगारो।
कम्मं मलेदि हु जगं हत्थीव णिरंकुसो मत्तो ॥१७५०॥

अर्थ—रोगनिका प्रतीकार जो इलाज सो जगतमें देखिये है, अर कर्म उदय आया ताका इलाज नहीं देखिये है। भावार्थ-रोगनिका इलाज तो औषधादिक जगतमें बहुत हैं। परंतु कर्मके उदयकूं रोकनेवाला कोऊ औषध मंत्रतंत्रादिक जगतमे नहीं है। जैसे निरंकुश मदोन्मत्त हस्ती कमलिनीके वनकूं दलमले है; तैसे कर्मका उदय जगतके जीवनिकूं दलमले है। गाथा—

रोगाणं पडिगारो णत्थि य कम्मे णरस्स समुदिण्णे ।

रोगाणं पडिगारो होदि हु कम्मे उवसमन्ते ॥१७५१॥

अर्थ—मनुष्यके असातावेदनीयकर्मकी उदीरणा होय तदि रोगनिका इलाज नहीं होय है । जिसकाल असातावेदनीयकर्मका उपशम होय, तिसकाल औषधादिकनिकरि रोगका इलाज होय है । गाथा—

विज्जाहरा य बलदेववासुदेवा य चक्कवट्टी वा ।

देविंदा व ण सरणं कस्सइ कम्मोदए होंति ॥१७५२॥

अर्थ—अशुभकर्मका उदय होइ तब विद्याधर, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती तथा देवेंद्रहू कोऊके शरण नहीं हैं–रक्षक नहीं हैं । अशुभकर्मका उपशम होइ तथा पुण्यकर्मका उदय होइ तदि समस्त रक्षक होइ हैं । गाथा—

वोल्लेज्ज चंकमन्तो भूमिं उदधिं तरिज्ज पवमाणो ।

ण पुणो तीरदि कम्मस्स फलमुदिण्णस्स बोलेदुं ॥१७५३॥

अर्थ—गमन करता पुरुष भूमिकूं उल्लंघन करे अर तिरनेवाला पुरुष समुद्रकूं उल्लंघन करै; परंतु उदीरणाकूं प्राप्त भया जो कर्मका फल, ताहि तिरिवेकूं वा उल्लंघन करनेकूं कोई नहीं समर्थ होय है । भावार्थ–जगतमें पृथ्वी अर समुद्र दोइ बड़े हैं, सो जगतमें ऐसे ऐसे पुरुषार्थी हैं, जो समुद्रपर्यंत पृथ्वीके अंतकूं प्राप्त होय हैं, अर समुद्रकूं तिरि पैलीपार होजानेवाले भी हैं; परंतु कर्मके उदयकूं उल्लंघन करनेवाले नहीं है ।

सीहतिमिंगिलगहिदस्स णत्थि मच्छो मगो व जध सरणं ।

कम्मोदयम्मि जीवस्स णत्थि सरणं तहा कोई ॥१७५४॥

अर्थ—जैसे वनकेविषै सिंहकरि गिल्या जो हरिण अर जलविषै तिमिंगिलमत्स्यकरि गिल्या जो छोटा मत्स्य, तिनकूं कोऊ शरण नहीं है, तैसे कर्मके उदयकरि ग्रस्या जीवके कोऊ शरण नहीं है । गाथा—

दंसणणाणचरित्तं तवो य ताणं च होइ सरणं च ।

जीवस्स कम्मणासणहेदुं कम्मे उदिण्णम्मि ॥१७५५॥

अर्थ—इस जीवके कर्मकी उदीरणा होते कर्मका नाश करनेकूं कारण दर्शन ज्ञान चारित्र तप रक्षक-शरण होय है, और कोऊ शरण नहीं है। जातें इस संसारमें स्वर्गलोकके इन्द्रका नाश होइ औरनिकी कहा कथा है ? जो अणिमादिक ऋद्धीनिके धारक समस्तस्वर्गलोकके असंख्यात देव मिलिकरिके अपना स्वामी इन्द्रकूंही रक्षा नहीं करिसके, तदि अन्य अधम व्यंतरादिक देव ग्रह यक्ष भूत योगिनी क्षेत्रपाल चंडी भवानी इत्यादिक असमर्थ देव जीवकी रक्षा करने में कैसे समर्थ होयंगे ? जो मनुष्यनिकी रक्षा करनेमें कुलदेवी मंत्र तंत्र क्षेत्रपालादिक समर्थ होइ, तो जगतमें मनुष्य अक्षय होइ जाय। तातें जो अपनी रक्षा करनेमें शरण ग्रह भूत पिशाच योगिनी यक्षनिकूं माने है, सो दृढ मिथ्यात्वकरि मोहित है। जातें आयुका क्षयकरिके मरण होय है अर आयु देनेमें कोऊ देव दानव समर्थ नहीं, तातें मरणकी रक्षा करनेमें कोऊकूं सहायी माने है सो मिथ्यादर्शनका प्रभाव है। जो देवही मनुष्यनिकी रक्षा करनेमें समर्थ होइ, तो आपही देवलोककूं कैसे छांडे ? तातें परमश्रद्धानकरिके ज्ञान दर्शन चारित्र तपका परम शरण ग्रहण करो। संसार में भ्रमण करतेके कोऊ शरण नहीं है। इस जगतमें उत्तम क्षमादिकरूप आपके आत्माकूं परिणमावता आपही आपका रक्षक होय है। अर क्रोध मान माया लोभरूप परिणमन करता आपकूं आप घाते है। तातें अपना रक्षक अर नाशक अपना आपही है। ऐसे अशरण-भावना वर्णन करी। अब एकत्वभावना सात गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

पावं करेदि जीवो बंधवहेदुं सरीरहेदुं च।
णिरयादिसु तस्स फलं एक्को सो चेव वेदेदि ॥१७५६॥

अर्थ—यो जीव बांधव जो कुटुंब ताके निमित्त वा शरीरकी पालनाके निमित्त पापकर्म करे है, बहु आरंभ बहु-परिग्रह में लीन होइ ऐसा पापबंध करे है तिसका फल नरकादिक कुगतिमें एकाकी महादुःख आप भोगे है ॥गाथा—

रोगादिवेदणाओ वेदयमाणस्स णिययकम्मफलं।
पेच्छन्ता वि समक्खं किंचिवि ण करन्ति से णियया ॥१७५७॥

अर्थ—अपने कर्मका फल जो रोगादिक वेदना तिसकूं भोगता जीवके अपना निजमित्र कुटुंबादिक प्रत्यक्ष देखता हू किंचित् दुःख दूरि नहीं करिसके हैं ! तो परलोकमें कौन सहायी होयगा ? एकाकी नरकादिकनिमें कर्मका फलकूं भोगेगा। गाथा—

तह मरइ एक्कओ चेव तस्स ण विदिज्जगो हवइ कोई ।
भोगे भोत्तुं णियया विदिज्जया ण पुण कम्मफलं ।।१७५८।।

अर्थ—अपने आयुका अंत होते एकाकी मरण करे है, मरणकूं रोकि मरणतें रक्षा करनेवाला कोऊ दूजा सहायी नहीं होय है, भोगनिनैं भोगवेकूं कुटुम्बके तथा स्त्री पुत्र मित्रादिक सहायी होय हैं, अर अशुभकर्मके फल भोगने में कोऊ अपना सहायी नहीं होय है । गाथा—

णीया अत्था देहादिया य संगा ण कस्स इह होंति ।
परलोगं अण्णेत्ता जदि वि दइज्जन्ति ते सुठ्ठु ।।१७५९।।

अर्थ— परलोकप्रति गमन करते जीवके स्त्री पुत्र मित्र धन देहादिक परिग्रह कोईहू अपना नहीं होय है । यद्यपि ते स्त्री पुत्रादिक आपकूं अत्यंत चाहे हैं—संबंधकी अत्यंत वांछा करे हैं, तथापि निरर्थक हैं । गाथा—

इहलोगबंधवा ते णियया ण परम्मि होंति लोगम्मि ।
तह चेव धणं देहो संगा सयणासणादीयं ।।१७६०।।

अर्थ—इस लोकमें जे बांधव मित्रादिक हैं, ते परलोकविषं बांधव मित्रादिक नहीं होइ है । तैसेही धन, शरीर, परिग्रह, शय्या, आसन, महल, मकान परलोकमें अपना नहीं होइगे । इस देहके सम्बन्धी इस देहका नाश होतें समस्त सम्बन्ध छूटेंगे । परलोकप्रति कोऊ स्त्री, पुत्र, मित्र सेवकादिक सम्बन्धी परलोकमें सम्बन्ध करनेकूं नहीं जायगे । महल मकान राज्य संपदाका सम्बन्ध इहां ही हे । पुण्यपाप लीये परलोकप्रति एकाकी गमन करेगा । तातें सम्बन्धीनितें ममता करि परलोक बिगाडना महान् अनर्थ है । गाथा—

जो पुण धम्मो जीवेण कदो सम्मत्तचरणसुदमइओ ।
सो परलोए जीवस्स होइ गुणकारकसहाओ ।।१७६१।।

अर्थ—बहुरि इस जीवनें जो सम्यक्त्व चारित्र श्रुतज्ञानका अभ्यासमय धर्म किया है, सो परलोकके जीवके गुणकारक सहायी होय है । इस धर्मबिना कोऊहो अपना सहायी हितू नहीं है । धर्मके सहायतें स्वर्गके महर्द्धिक देव, तथा

अहमिंद्रपणा, इन्द्रपणा, तीर्थंकरपणा, चक्रीपणा, सुन्दरकुल, जाति, रूप, बल, विद्या, जगतमें पूज्यता ये समस्त धर्मके प्रसादतै प्राप्त होय हैं। गाथा—

बद्धस्स बंधणे व ण रागो देहम्मि होइ णाणिस्स।
विससरिसेसु ण रागो अत्थेसु महब्भयेसु तहा ॥१७६२॥

अर्थ—जैसे बन्धनिकरि बन्ध्या पुरुषके बन्धनमें बन्दिगृहमे राग नहीं है, तैसे ज्ञानवन्त पुरुषके देहमें राग नहीं है। अर तैसेही संसारमें अनन्तवार मरण करावनेवाले तथा महाभयके कारण,तातै विषसमान जे धन संपदा परिग्रहादिकनिमें ज्ञानीके राग नहीं होय है। अनन्तदुःखनिकरि भरचा जो संसाररूप वन तिसविषै यो जीव एकाकी परिभ्रमण करे है। अर अपना भावनिकरि उत्पन्न किये कर्मनिका फल चतुर्गतिमे एकाकी भोगे है, एकाकी नरकगमन करे है, एकाकी संकल्प के अनन्तर उपजे दिव्यस्वर्गके सुखरूप अमृतकूं अनुभवे है। सयोगमें, वियोगमें, उत्पत्तिमें, मरणमें, सुखमें, दुःखमें कोई इस जीवका मित्र नहीं है। अपना किया आप एकाकी भोगे है। अर जो धन, स्त्री, पुत्र, मित्र, कुटुम्बादिकके अर्थि निंद्यकर्म करे है, तिनका फल नरकादिकगतिनिमे एकाकी आप दुःख भोगे है। इसके धनादिक भोगनेमें सहायी होय हैं अर पाप-कर्मतै उत्पन्न भये कष्ट तिनके भोगनेमें कोऊ सहायी नहीं होय है। तातै भो आत्मन्! अपना एकाकीपना कैसे नहीं देखो हो? जो जन्ममरणादिक प्रत्यक्ष अनुभवमें आवे है, अर जो मोहतै चेतन अचेतन पदार्थनिकरि अपनो एकता माने है सो अपने आत्माकूं दृढकर्मबन्धनतै अपनी मूलिकरि बांधे है। जिसकाल भ्रमरहित हुवा अपना एकाकीपणा अवलोकन करेगा तिसकाल कर्मबन्धका अभावकरि शुद्धस्वरूपकूं प्राप्त होयगा। अर अपना स्वरूपके मूलनेतै जिसका ज्ञाननेत्र मुद्रित भया, सो कर्मनिके वशि पड्या हुवा दीर्घकाल संसारमे परिभ्रमण करे है। एकाकी उपजे है, एकाकी विनसे है, एकाकी गर्भके दुःख भोगे है, एकाकी निर्धनपणा, बालपणा, वृद्धपणा, नीचपणा समस्त भोगे है। समस्त स्वजन देखे हैं, तोहू कोऊ दुःखका लेशहू नहीं बटाइ सके है। ऐसे जानताहू देहकुटुम्बादिकनिमें मूढ ममत्व नहीं छांडे है। इस जीवका रक्षक सहायी एक दशलक्षण धर्म जानहु और नहीं। ऐसे एकत्वभावना वर्णन करी।

अब अन्यत्वभावना चौदह गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

किहदा जीवो अण्णो अण्णं सोयदि हु दुक्खियं णोयं।
ण य बहुदुक्खपुरक्कडमप्पाणं सोयदि अबुद्धो ॥१७६३॥

अर्थ--परपदार्थनितैं भिन्न जो जीव, सो अन्य जो अपनी जातिके दुःखित कुटुम्बी जन तिनकूं कैसे शोच करे है। इस भांति अपना शोच नहीं करे है—जो, मै अनादिकालतैं शरीर सम्बन्धी अर मनसम्बन्धी अनन्तदुःख भोगे अर आगानैं द्रव्य क्षेत्रकाल भावका सहायतैं उदय आवता असातावेदनोय कर्म तिसकरि अनन्तकाल अनन्तदुःख भोगऊंगा ! मेरा दुःख दूरि होने का कहा इलाज है ? । भावार्थ--अज्ञानी, अन्य जे स्त्री पुत्र कुटुम्बादिक तिनकूं दुखी देखि रागभावतैं अतिशोच करे है, अर अपना नरकतिर्यच गतिमें पतन नजीक आया तिसका शोच नहीं करे हैं, जो, मोकूं अब कहा करना ? कैसे संसारके दुःखनितैं दूरि होय आत्माधीन निराकुलता लक्षण सुखकूं प्राप्त होहू ? ऐसा विचार अज्ञानी नहीं करे है। गाथा--

संसारम्मि अणन्ते सगेण कम्मेण हीरमाणाणं ।
को कस्स होइ सयणो सज्जइ मोहा जणम्मि जणो ॥१७६४॥

अर्थ—पंचपरिवर्तनरूप जो अनन्तसंसार तिस संसारमें अपने कर्मके वशतैं परिभ्रमण करते जीवनिके मध्य कोऊ का कोऊ स्वजन नहीं है। मोह जो मिथ्यात्वभाव तिसकरिके लोकनिमें लोक आसक्त होइ रहे हैं--जो, यह मेरा पुत्र है, भ्राता है, स्त्री है, मित्र है, स्वामी है, सेवक है। कोऊ कोऊका नहीं, समस्त अन्य अन्य हैं, समस्त सम्बन्ध कर्मजनित हैं, विषयकषायके पुष्ट करनेकूं हैं, विनाशीक हैं, अपने अपने रागद्वेष पुष्ट करनेकूं हैं। गाथा—

सव्वो वि जणो सयणो सव्वस्स वि आसि तीदकालम्मि ।
पन्ते य तहाकाले होहिदि सजणो जणस्स जणो ॥१७६५॥

अर्थ—अनन्तकाल व्यतीत भया, तिसमें समस्तजीव अनन्तवार स्वजनभये हैं अर आगाने अनन्तवार जनांकै (लोगों के) जन स्वजन होइगे। तातैं कौन कौनमें स्वजनपणाका संकल्प करेगा ? जे अबार स्वजन मित्र दीखे हैं, ते पूर्वे अनन्तवार तेरे घात करनेवाले शत्रुपणाकूं प्राप्त भये हैं, अर जे अबार शत्रु दीखे हैं, ते अनेकवार तेरे हितकारी मित्र भये हैं, अर आगे ऐसेही होयंगे। तातैं इनमें रागद्वेष बुद्धि करि आपका घात मति करो। समस्त अन्य अन्य हैं। गाथा—

रत्तिं रत्तिं रुक्खे रुक्खे जह सउणयाण संगमणं ।
जादीए जादीए जणस्स तह संगमो होई ॥१७६६॥

अर्थ—जैसे रात्रिरात्रिविषै वृक्षवृक्षमें अनेक पक्षीनिका संयोग होय है; तैसे लोकके जन्मजन्ममें अनेक प्राणीनिका संयोग होय है। जैसे पक्षी रात्रि होइ तब वृक्षका आश्रयविना तिष्ठवेकूं असमर्थ हैं, अपने योग्य वृक्षकूं प्राप्त होइ रात्रि व्यतीत करि प्रातःकाल देशांतरने गमन करे हैं; तैसे संसारी प्राणीहू समस्त आयुके निषेक गलि जाय तदि पूर्वशरीरकूं त्यागि अन्यशरीरकूं ग्रहण करि नवीन नवीन स्वजन सबधीनिकूं ग्रहण करे है। गाथा—

पहिया उवासये जह तहिं तहिं अल्लियन्ति ते य पुणो।
छंडित्ता जन्ति णरा तह णीयसमागमा सव्वे ।।१७६७।।

अर्थ—जैसे अनेक देश अनेक ग्रामनगरके निवासी पथिकजन एक आश्रमस्थानमें रात्रि आय बसे हैं, पश्चात् प्रात भये आश्रमकूं त्यागि नानादेशनिकूं गमन करे हैं: तैसे अनेक योनिनितैं आया प्राणी एक कुलरूप आश्रम मे सामिल होय है, पाछैं अपनो अपनी आयु पूर्ण करि अनेकगतिनिकूं प्राप्त होय है। गाथा—

भिण्णपयडिम्मि लोए को कस्स सभावदो पिओ होज्ज।
कज्जं पडि सम्बन्धं वालुयमुट्ठीव जणमिणमो ।।१७६८।।

अर्थ—भिन्नभिन्न प्रकृतिके धारक जे लोक तिनमें कौन का कौन स्वभावतैं प्रिय होय ? नानास्वभावरूप लोकनिमैं स्वभाव मिल्या विना प्रीति होय नहीं, अर स्वभाव मिलै नहीं। नानाजीवनिके नानाप्रकारके भिन्नभिन्न स्वभाव हैं। यातैं कोऊभी कोऊके प्रिय नहीं होय है। समस्त जीवनिके प्रयोजनप्रति संबध है, कार्यके निमित्तकरिही संबंध है—कार्य नहीं होतैं कोऊ कोऊतैं प्रीतिका सबध नहीं करे है। यो लोक वालूरेतके मूठीकीनाईं सबंधकूं प्राप्त होय रह्या है। जैसे भिन्नभिन्न है स्वभाव जिनके ऐसे वालूरेतके कण जलादिक द्रवरूप द्रव्यके मिलापतैं संबंधकूं प्राप्त होय हैं, जलादिक द्रव्यका संयोग दूरि होतैं भिन्नभिन्न होइ विखरि जाय हैं; तैसे संसारी जीवहू अपने अपने मुतलबके अर्थि कार्य विचारि प्रीति करे हैं, जिससे अपना कुछहू कार्य सधता नहीं दीखै तिससे प्रीति नहीं करे हैं, अपना अभिमान जिसतैं बधता जाने तो प्रीति करे। तथा धनके अर्थि, तथा धनवानतैं आदर पावनेके अर्थि, तथा अपनी विख्याततता होनेके अर्थि, अथवा कोई वस्तुका लाभके अर्थि, वा अपनी बडाईके अर्थि अथवा अपना पूज्यपणा होनेके अर्थि, अथवा जसकीर्त्तिके अर्थि कोऊसूं प्रीति करे

हैं। विनाकार्य कोऊके स्वभावतें प्रीति नहीं जाननी, समस्त अन्य अन्य हैं, कोऊका संबंधी कोऊही नहीं है, यह निश्चय करि परमें प्रीति त्यागि अपना आत्महितमें प्रीति करना उचित है। गाथा–

माया पोसेइ सुयं आधारो मे भविस्सदि इमोत्ति।

पोसेदि सुदो मादं गब्भे धरिओ इमाएत्ति ॥१७६९॥

अर्थ—यो पुत्र मेरा आधार है, इसविना दुःख दरदमें तथा वृद्धअवस्थामें अन्य कोऊ सहायी नहीं, इस अभिप्रायतें पुत्रका पालन पोषण करे है। अर इस मातानें मोकूं गर्भमें धारचा है, इस अभिप्रायतें पुत्र माताकी पोषणा करे है। अथवा माताकी पोषणा नहीं करूंगा तो जगतमें कृतघ्न कहाऊंगा, जगत निंदेगा, इस हेतुतें पोषणा करे है।

होऊण अरी वि पुणो मित्तं उवकारकारणा होइ।

पुत्तो वि खणेण अरी जायदि अवकारकरणेण ॥१७७०॥

तह्मा ण कोइ कस्सइ सयणो व जणो व अत्थि संसारे।

कज्जं पडि हुन्ति जगे णीया व अरी व जीवाणं ॥१७७१॥

अर्थ—वैरी होइकरिकेहू बहुरि उपकार करनेतें मित्र होय है, जातें जिसका दानसन्मानादिक करियेगा, सो शत्रुहू अपना अत्यंत प्रियमित्र होयगा। बहुरि पुत्रहू वांछितभोग रोकनेकरि अपमान तिरस्कारादिक करनेकरि अपना क्षणमात्रमें शत्रु होयगा। तातें कोऊ पुरुष कोऊका संसारमें शत्रु नहीं है वा मित्र नहीं है, कार्यप्रति शत्रुता मित्रता प्रकट होय है। स्वजनपणा, परजनपणा, शत्रुपणा, मित्रपणा, जीवनिके स्वभावतेंही नहीं है; उपकार अपकारकी अपेक्षा मित्रपणा शत्रुपणा जानना। जातें जगतके जीव विषयकषायके वशीभूत हैं। जिसतें आपके पंचेंद्रियनिके विषय पुष्ट होता जाने, तथा अभिमान सधता जाने, परिग्रहकी धनकी वृद्धि जाने, तिसकूं मित्र जाने है। जिसतें अपने विषय रुकता जाने, बिगडता जाने अभिमान घटता जाने, ताहि वैरी जानि तीव्रवैर करे है। और वस्तुत्वकरि कोऊ शत्रुमित्र है नहीं। तातें कोऊमैंहू रागद्वेष करना उचित नहीं है। अब शत्रुमित्रका लक्षण कहे हैं। गाथा–

जो जस्स वट्टदि हिदे पुरिसो सो तस्स बंधवो होदि।

जो जस्स कुणदि अहिदं सो तस्स रिवुत्ति णायव्वो ॥१७७२॥

अर्थ—जिसका हितमें, उपकारमे जो प्रवर्ते सो तिसका बांधव है। अर जो जिसका अहित करे है, सो तिसका वैरी है; ऐसी जगतकी प्रवृत्ति है। अब वीतराग गुरु बांधवनिविषें शत्रुपणा दिखावे हैं। गाथा—

णोया करन्ति विग्घं मोक्खब्भुदयावहस्स धम्मस्स।
कारिंति य अइबहुगं असंजमं तिव्वदुक्खकरं॥१७७३॥
णोया सत्तू पुरिसस्स हुन्ति जदिधम्मविग्घकरणेण।
कारेंति य अतिबहुगं असंजमं तिव्वदुःखयरं॥१७७४॥

अर्थ—निज जे बांधव मित्रादिक हैं ते स्वर्गमोक्षके उदयकूं प्राप्त करनेवाले धर्म में विघ्न करे हैं। अर हिंसा, झूंठ, चोरी, कुशील, परिग्रह में आसक्तताहूप असयमकूं करावे हैं। कैसाक है असंयम? जो अतिमहान् तीव्रदुःखका करनेवाला, संसारमें डबोवनेवाला है; अभक्ष्यभक्षणमें, रात्रिभोजनमें, कुशील सेवनेमें, बहु आरंभ में, बहुपरिग्रहमें प्रवृत्ति कराय अभिमान लोभादिकमें प्रवृत्ति कराय नरकादिकनिमें प्राप्त करे है। तातें जे अपने निज हैं, ते शत्रु हैं। जो पुरुषके धर्ममें विघ्न करनेकरि, अर अतिदुःख देनेवाला असंयम करावनेकरि अपने निजबांधव पुत्रमित्रादिक शत्रुपणाही प्रकट कीया, इसंसिवाय अन्य शत्रुपणा कहा होय है? गाथा—

पुरिसस्स पुणो साधू उज्जोगं संजणन्ति जदिधम्मे।
तध तिव्वदुक्खकरणं असंजमं परिहरावेन्ति॥१७७५॥
तह्मा णोया पुरिसस्स होंति साहू अणेयसुहहेदु।
संसारमदीणन्ता णोया य णरस्स होंति अरी॥१७७६॥

अर्थ—बहुरि जो पुरुषके, साधु है सो रत्नत्रयधर्म मे उद्यम करावे है, तथा तीव्रदुःख कारण जो असंयमभाव ताका त्याग करावे है। तातें अनेकसुखके हेतुतें पुरुषके निजबांधव मित्र ये वीतरागी साधु हैं। अर जे अनेकदुःखका कारण संसारमें प्राप्त करनेवाले निज जे अपने स्त्री पुत्र मित्र बांधवादिक, ते अपने अरि कहिये शत्रु होइ हैं। तातें हे भव्य! तुम समस्तके अन्यपणा चितवन करो। यो आत्मा स्वभावहीकरि शरीरादिकतें विलक्षण है। यद्यपि शरीरादिकतें

अनादिका एक होय रह्या है, तोहू क्षीरनीरकीनांई शरीरादिक अचेतनतें आत्मा चिदानंदमय भिन्न है । शरीर अचेतन, आत्मा चेतन, इनके बंधप्रति एकपणा है तोहू वस्तुतें एक नहीं है–भिन्न हैं । इनके सुवर्ण अर किट्टिकाकीनांई अनादिका मिलाप होतेंहू भिन्नता प्रकट है । इस जगतमें मोहके प्रभावतें अमूर्तिक अर क्रियावान् जो चेतन, ताकरि मूर्तिक अर चेतनारहित इस शरीरकूं धारण करिये है । प्राणीनिका शरीर तो अनेक पुद्गलपरमाणुनिका संचयरूप है; अर आत्मा उपयोगस्वरूप अतींद्रिय ज्ञानदर्शनमय है । तातें भो ज्ञानीजन हो ! जो जन्ममें, मरणमें, प्रत्यक्ष भिन्नप्रतीतिमैं आवे तिनमैं अन्य अन्यपणा कैसे नहीं देखो हो ? मूर्तिक अर अचेतन अर नानारूप भिन्नभिन्न परिणमन करते करते परमाणुनि करि रच्या यह शरीर है, इसकरि आत्माके कहां संबंध है ? तातें अपने शुद्ध ज्ञानानंदमय आत्मातें शरीरकूं अन्य जानना सत्यार्थ है । अर जहां देहतेंही अन्यपणा, तदि प्रकट बाह्य जे स्त्री पुत्र मित्र धन धान्यादिक, तिनतें एकपणा कैसे होय ? प्रकटही बालगोपालादिकनिकूं अन्यपणा दीखे है । जे जे चेतन अचेतन पदार्थनिका सबंध होय हैं, ते ते समस्त अपने आत्मस्वरूपतें विलक्षण है । पुत्र, मित्र, कलत्र, तथा धन, धान्य, ऐश्वर्य, जाति, कुल, ग्राम, नगर इनकूं क्षणक्षणमें अपने स्वरूपतें अन्यस्वभावरूप चिंतवन करो । बहुरि संसारमें पुत्र अन्य है, पिता अन्य है, माता अन्य है, स्त्री अन्य है, औरहू समस्त जे दृष्टिगोचर दीखे है ते समस्त अन्य अन्य है । ऐसे अन्यत्वभावना वर्णन करी ।

अब ससारभावना अठाईस गाथानिमैं वर्णन करे है । गाथा–

मिच्छत्तमोहिदमदी संसारमहाडवी तदोदीदि ।
जिणवयणविप्पणट्टो महाडवीविप्पणट्ठो वा ॥१७७७॥

अर्थ—मिथ्यात्वकरि जाकी बुद्धि मोहित भई, अचेत भई, अर जिनेंद्रके वचनका अवलंबनरहित ऐसा पुरुष संसार रूप महावनी में मिथ्यात्वके प्रभावतें परिभ्रमण करे है । जैसे महावनीमें मार्गकूं भूल्या पुरुष परिभ्रमण करि नष्ट होय है; तैसे भ्रमण करि निगोदकूं जाइ प्राप्त होय है । कैसोक है निगोद ? जिसतें अनंतकालपर्यंत निकलना कठिन है ।

बहुतिव्वदुक्खसलिलं अणन्तकायप्पवेसपादालं ।
चदुपरिवट्टावत्तं चदुगतिबहुपट्टणमणन्तं ॥१७७८॥

हिंसादिदोसमगरादिसावदं दुविहजीवबहुमच्छं ।
जाइजरामरणोदयमणेयजादीसुदुम्मीयं ॥१७७९॥
दुविहपरिणामवादं संसारमहोदधिं परमभीमं ।
अदिगम्म जीवपोदो भमइ चिरं कम्मभण्डभरो ॥१७८०॥

अर्थ—ज्ञानावरणादिक कर्मरूप भांड वस्तु तिनकरि भरया जे जीवरूप जिहाज, सो संसाररूप समुद्रकूं प्राप्त होइ, चिरकाल जो अनंतकालपर्यंत परिभ्रमण करे है । कैसाक है संसारसमुद्र ? बहुत तीव्रदुःखही है जल जामैं, अर अनंतकाय जो निगोदमें प्रवेश करनाही है पाताला जामै, द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप जे च्यारि परिवर्तन वा भवसहित पंचपरिवर्तनही है भवण जामैं, अर च्यारि गतिरूप है बहुत पट्टण जामैं, अर नहीं है अंत जाका, अर हिंसादिक दोषही है मगरादिक दुष्टजीव जामैं, अर त्रस स्थावर जीवही है मच्छ जामै, अर जन्मजरा मरणही है जल जामै, अर अनेक जातिनिके सैकडेही हैं लहरी जामैं, अर दोयप्रकार परिणामही है पवन जामैं, अर महाभयानक है रूप जाका, ऐसा संसारसमुद्रमें जीव अनंतकालपर्यन्त भ्रमण करे है । गाथा--

एगविगतिगचउपंचिंदियाण जाओ हवन्ति जोणीओ ।
सव्वाउ ताउ पत्तो अणन्तखुत्तो इमो जीवो ॥१७८१॥

अर्थ--एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवनिकी ये योनि हैं, ते समस्तयोनि संसारी जीव अनन्तवार प्राप्त भया है । गाथा—

अण्णं गिण्हदि देहं तं पुण मुत्तूण गिण्हदे अण्णं ।
घडिजंतं व य जीवो भमदि इमो दव्वसंसारे ॥१७८२॥

अर्थ—यो जीव अन्यदेह ग्रहण करि बहुरि तिस देहकूं छांडिकरि अन्यदेह ग्रहण करे है । जैसे अरहटमें घटीजंत्र रीता होइ बहुरि भरे है अर बहुरि रीता होइ बहुरि भरे है । तैसे द्रव्यसंसारविषै एकदेह त्यागि अन्यदेह ग्रहण करे है, अन्यकूं त्यागि अन्य ग्रहण करे है । ऐसे नवीन नवीन ग्रहण करते अर त्यागतें अनन्तानन्तकालमें अनन्तानन्तदेह ग्रहण किये हैं अर त्यागे हैं । गाथा--

रंगगदण्डो व इमो बहुविहसंठाणवण्णरूवाणि ।
गिण्हदि मुच्चदि अठिदं जीवो संसारमावण्णो ॥१७८३॥

अर्थ—संसारकूं प्राप्त भयो यो जीव नृत्यके अखाडेकूं प्राप्त भया नटकीनांई बहुत प्रकार संस्थान वर्ण रूप थिरतारहित निरन्तर ग्रहण करे है अर छांडे है । गाथा—

जत्थ ण जादो ण मदो हवेज्ज जीवो अणन्तसो चेव ।
कालं तीदम्मि इमो ण सो पदेसो जए अत्थि ॥१७८४॥

अर्थ—जिस क्षेत्रका प्रदेशमें यो जीव नहीं उत्पन्न भयो अर अनन्तवार नहीं मरयो, ऐसो जगतमें एकहु प्रदेश नहीं है । अतीतकालमें तीनसे तीयालीस राजूमात्र लोकके समस्तप्रदेशनिमें अनन्तानन्तवार जन्म लिया है अर मरण किया है । गाथा—

तक्कालतदाकालसमएसु जीवो अणन्तसो चेव ।
जादो मदो य सव्वेसु इमो तीदम्मि कालम्मि ॥१७८५॥

अर्थ—यो जीव उत्सर्पिणी अर अवसर्पिणी के समस्तसमयनिविषे अतीतकालमें अनन्तवार जन्म लिया है अर अनन्त वार मरण किया है । ऐसा कोई कालका समय बाकी नहीं रह्या है, जिसमें इस जीवने जन्ममरण नहीं किया है । गाथा—

अट्ठपदेसे मुत्तूण इमो सेसेसु सगपदेसेसु ।
तत्तंपि व अद्धहणं उव्वत्तणपरत्तणं कुणदि ॥१७८६॥

अर्थ—यो जीव मध्यके अष्टप्रदेशनिकूं छांडिकरिके शेष अपने आत्मप्रदेशनिविषे तप्तजलरूप आधणके मध्य तिष्ठते तन्दुलकीनांई उद्वर्तन परावर्तन करे है । भावार्थ—जीवके अष्टमध्यप्रदेशनिविना अन्य समस्तप्रदेश संकोचविस्तारनें प्राप्त होइ है । गाथा—

लोगागासपएसा असंखगुणिदा हवन्ति जावदिया ।
तावदियाणि हु अज्झवसाणाणि इमस्स जोवस्स ॥१७८७॥

अज्झवसाणठाणन्तराणि जीवो विव्वइ इमो हु ।
णिच्चं पि जहा सरडो गिण्हदि णाणाविहे वण्णे ॥१७८८॥

अर्थ--जितने असंख्यातगुणे लोकाकाशके प्रदेश है, तितने इस जीवके कर्मके बन्ध होनेजोग्य कषायनिके अर अनुभागके परिणामनिके स्थान है । जैसे करकांट्या नानाप्रकारके रग ग्रहण करे है, तैसे समय समय परिणाम पलटे है, तातै नवीन नवीन अध्यवसाय जो परिणाम सो होय है । गाथा—

आगसम्मि वि पक्खी जले वि मच्छा थले वि थलचारी ।
हिंसन्ति एक्कमेक्क सव्वत्थ भयं खु ससारे ॥१७८९॥

अर्थ—आकाशविषै गमन करते पक्षीकू तो अन्य पक्षी मारे है । जलमे गमन करते मत्स्यादिकनिकू अन्यजलचर मत्स्यादिक मारे है । अर स्थलमें विचरते तिर्यंच मनुष्यनिकूं स्थलचारी दुष्ट तिर्यचमनुष्य मारे है । एक एककू मारे हैं, तातै संसारविषै सर्वत्र समस्त स्थाननिमै निरन्तर भय जानना । गाथा—

ससउ वाहपरद्धो बिलित्ति णाऊण अजगरस्स मुहं ।
सरणंत्ति मण्णमाणो मच्चुस्स मुहं जह अदीदि ॥१७९०॥

तह अण्णाणी जीवा परिद्धमाणच्छुहादिबाहेहिं ।
अदिगच्छन्ति महादुहहेदुं संसारसप्पमुहं ॥१७९१॥

अर्थ—जैसे व्याध जो शिकारी मनुष्य तिसकरि उपद्रवकूं प्राप्त भया जो सुसा, सो फाड्या हुवा अजगरका मुखकूं बिल जाणि अर आपके शरण मानता मृत्युका मुखमे प्रवेश करे है ! तैसे अज्ञानी जीव क्षुधा, तृषा, काम कोपादिककरि

बाधाकूं प्राप्त भया महादुःखका कारण संसाररूप सर्पके मुखमें प्रवेश करे है। मिथ्यात्व विषयकषायनिमें प्रवेश करे है, सोही संसाररूप सर्पका मुख है, संसारमें निगोद प्रधान है। सो निगोदमें प्राप्त होइ अपने ज्ञान दर्शन सुख सत्तादिक भावप्राणनिका लोप करि जडरूप हुवा अनन्तानन्त काल व्यतीत करे है। गाथा—

जावदियाइं दुःखाइं[1] हवन्ति लोगम्मि सव्वजीवेसु।
ताइंपि बहुविधाइं अणन्तखुत्तो इमो पत्तो ॥१७९२॥

अर्थ—लोकके विषं समस्त चतुर्गतिके जीवनिविषं जितने दुःख होय हैं, तितने बहुतप्रकार के दुःख अनन्तवार यो जीव प्राप्त भयो है। जगतमें ऐसा कोऊ दुःख बाकी नहीं रह्या, जो दुःख संसारी जीव नहीं पाया। गाथा—

दुक्खं अणन्तखुत्तो पावेत्तु सुहंपि पावदि कहिं वि।
तह वि य अणन्त खुत्तो सव्वाणि सुहाणि पत्ताणि।१७९३।

अर्थ—इस ससारविषं यो जीव अनन्तवार दुःख पायकरिके कोई प्रकार इन्द्रिय जनित सुखकूं एकवार प्राप्त होय है। बहुरि अनन्तपर्यायनिमें अनन्तवार दुःखनिकूं प्राप्त होइ बहुरि एकवार सुखकूं प्राप्त होय है। ऐसे अनन्तवार विषयाधीन इन्द्रियजनित सुखहू प्राप्त भया। एक सम्यग्दर्शनके धारीनिके स्थान जे गणधर, कल्पेन्द्र तथा लौकांतिकदेवपना तथा नव अनुदिश, पंच अनुत्तर, तीर्थंकरादिकनिके पद कबहु नहीं धारया। गाथा—

करणेहिं होदि विगलो बहुसो वचिचित्तसोदणेत्तेहिं।
घाणेण य जिब्भाए चिट्ठाबलविरियजोगेहिं ॥१७९४॥
जच्चंधबहिरमूओ छादो तिसिओ वणे व एयाई।
भमइ सुचिरंपि जीवो जम्मवणे णट्ठसिद्धिपहो ॥१७९५॥

---

१. जावदियाइं सुहाइं हवन्ति लोगम्मि सव्व जोणीसु—ऐसा पाठ भी मुद्रित पुस्तक मे है। वहा दुख की बजाय सुख के लिए यही बात कही गई है।

अर्थ--इस संसारमे यो जीव बहुतवार वचन, मन, कर्ण, नेत्र, जिह्वा, नासिका, तथा बल, वोर्य इनके संयोगकरि रहित भया इन्द्रियनिकरि विकल होय है। निर्वाणका मार्ग जो रत्नत्रय तिसकरि रहित भयो यो जीव संसाररूप वनविषे चिरकाल जो अनन्तकालपर्यन्त एकाकी "जन्मतें अन्ध भया, तथा बधिर भया, गूंगा भया, क्षुधावान् हुवा, तृषावान् हुवा, वनमें भ्रमण करे तैसे" भ्रमण किया। भावार्थ--संसारमें जोव जन्मतेंही अन्ध हुवा, बहिरा, गूंगा, क्षुधातृषाकरि पीडित बहुतकाल भ्रमण किया है, सो मार्ग जो रत्नत्रय ताहि नहीं ग्रहण करि किया है। गाथा—

एइन्दियेसु पंचविधेसु वि उत्थाणवीरियविहूणो।
भमदि अणन्तं कालं दुक्खसहस्साणि पावेतो ॥१७६६॥

अर्थ--बहुरि पृथ्वीकाय-अप्काय-तेजस्काय-वायुकाय-वनस्पतिकायस्वरूप जे पंचप्रकारके एकेन्द्रिय, तिनविषें त्रसकायकी प्राप्तिके अर्थि उद्यम तथा उत्थान कहिये उठना इत्यादिककी शक्तिरहित हुवा हजारनि दुःखनिकूं प्राप्त भया अनन्तकालपर्यंत स्थावरकायमें भ्रमण करे है। गाथा--

बहुदुक्खावत्ताए संसारणदीए पावकलुसाए।
भमइ वराणो जीवो अण्णाणणिमीलिदो सुचिरं ॥१७६७॥

अर्थ--बहुतप्रकारके शरीरतें उपज्या अर मनतें उपज्या है दुःख जामें, अर पापकरि मलिन ऐसी संसाररूप नदी विषें अज्ञानभावकरि मुद्रित है ज्ञानरूप नेत्र जाका ऐसा वराक संसारी जीव चिरकाल भ्रमण करे है। गाथा--

विसयामिसारगाढं कुजोणिणेमि सुहदुक्खदढखीलं।
अण्णाणन्तुबधरिदं कसायदढपट्टयाबन्धं ॥१७६८॥
बहुजम्मसहस्सविसालवत्तणि मोहवेगमदिचवलं।
संसारचक्कमारुहिय भमदि जीवो अणप्पवसो ॥१७६९॥

अर्थ--ऐसा संसाररूप चक्र ऊपरि चढ्या जीव परवश हुवा भ्रमण करे है। कैसाक है संसारचक्र? विषयनिका अभिलाषरूप जे आरा तिनकरि दृढ है, बहुरि नरकादिक कुयोनि तेही जाके नेमि कहिये पूठी है, अर सुखदुःखरूप जामें

दृढ कीला है, अर अज्ञानभावरूप तुम्बकरि धारया है, अर कषायरूप दृढपट्टिकाका जाके बन्ध है, अर बहुत जन्मके सहस्र रूप विस्तीर्ण जाका परिभ्रमणका मार्ग है, अर मोहरूप जाका वेग-अतिचंचल है, ऐसा संसाररूप चक्रपरि चढया जो जीव तिसका निकलना बहुत कठिन है। गाथा—

भारं णरो वहन्तो कहंचि विस्समदि ओरुहिय भारं।
देहभरवाहिणो पुण ण लहन्ति खणं पि विस्समिदुं ॥१८००॥

अर्थ—भारकूं वहता पुरुष तो कोऊ स्थानविषै भारकूं उतारि विश्रामकूं प्राप्त होय है। बहुरि देहका भारकूं वहता पुरुष क्षणमात्रहू विश्राम करिवेकूं नहीं प्राप्त होय है। अर जहां औदारिक वैक्रियकका भार उतारे है, तहांहू इनतै अनन्तगुणे परमाणूनिके स्कन्धरूप तैजस कार्माण शरीरका बडा भार बणि रह्या है, जिसतै आत्माका केवलज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तसुख अनन्तवीर्य प्रकट नहीं होय सके है। गाथा--

कम्माणुभावदुहिदो एवं मोहंधयारगहणम्मि।
अन्धोव दुग्गमग्गे भमदि हु संसारकंतारे ॥१८०१॥

अर्थ—जैसे विषममार्गमें अन्धा परिभ्रमण करे, तैसे मोह अन्धकारकरि गहन जो संसाररूप वन ताविषै कर्मके प्रभावकरि दुःखित जीव भ्रमण करे है। गाथा—

दुक्खस्स पडिगरेंतो सुहमिच्छन्तो य तह इमो जीवो।
पाणवधादीदोसे करेइ मोहेण संछण्णो ॥१८०२॥

अर्थ—यह संसारी जीव दुःखसूं भयरूप हुवा दुःखका प्रतीकार जो इलाज ताहि करता अर सुखकूं अभिलाष करता मोहकरि आच्छादित हुवा हिंसादिकदोषही करे है। भावार्थ--संसारी जीव दुःखतै भयवान् होइ अर सुखकी वांछा करता मिथ्यादर्शनका प्रभावकरि विपरीत इलाज करे है! दुःखकूं दूरि करि सुखकी उत्पत्ति करनेमें समर्थ ऐसे जे महाव्रत अणुव्रत तिनमें निरादर करि अपने दुःख करनेवाले जे पंच पाप—प्राणीनिकी हिंसा, असत्य, परस्त्रीसेवन, परधनमें वांछा, बहु आरम्भ-बहु परिग्रह इनमें तीव्र राग करि प्रवर्ते है, अभक्ष्य भक्षण करे है, अयोग्य अन्याय ग्रहण करे है, इनितै

नरकादिकमें घोरदुःख बहुतकालपर्यन्त भोगवे है। मिथ्यात्वके उदयकरि दुःखके कारणनिकूं सुख जानि अंगीकार करे है। गाथा--

दोसेहिं तेहिं बहुगं कम्मं बन्धदि तदो णवं जीवो।
अध तेण पच्चइ पुणो पविसित्तु व अग्गिमग्गीदो ।।१८०३।।
बन्धन्तो मुच्चन्तो एवं कम्मं पुणो पुणो जीवो।
सुहकामो बहुदुक्खं संसारमणादियं भमइ ।।१८०४।।

अर्थ--ते हिंसादिक दोष तिनकरिके जीव नवीन नवीन बहुतकर्मकूं तैसे बांधत है जैसे तिस कर्मकरि बहुरि परिपाककूं प्राप्त होइ बाधाकूं प्राप्त होइ जैसे अग्नितें निकसि बहुरि अग्नीमे प्रवेश करे! ऐसे ससारी जीव कर्मकरि वारवार बधता अर वारवार छूटता सुखका इच्छक हुवा बहुतदुःखरूप अनादिसंसारमें भ्रमण करे है। इहां पंचपरिवर्तनका विशेषरूप ग्रन्थ बधनेके भयकरि नहीं कह्या है। ऐसे ससारानुप्रेक्षा वर्णन करी।

अब लोकानुप्रेक्षा पंदरा गाथानिकरि कहे हैं। गाथा--

आहिंडयपुरिसस्स व इमस्स णीया तहिं तहिं होंति।
सव्वे वि इमो पत्तो सम्बन्धे सव्वजीवेहि ।।१८०५।।

अर्थ--संसारमें परिभ्रमण करता इस पुरुषके तिसतिस पर्यायमें बांधव स्वजन समस्त सबंध होइ हैं। इस संसार मे समस्त जीवनिकरि सहित समस्तसबधनिकूं अनेकवार प्राप्त भया है।

माया वि होइ भज्जा भज्जा मायत्तणं पुणमुवेदि।
इय संसारे सव्वे परियट्टन्ते हु सम्बन्धी ।।१८०६।।

अर्थ--ससारमे माताहू भार्या होत है, बहुरि भार्या जो स्त्री सो मातापणाकूं प्राप्त होय है। इस प्रकार संसारविषै समस्तसबध निरंतर पलटे है। गाथा--

जणणी वसन्ततिलया भगिणी कमला य आसि भज्जाओ ।

धणदेवस्स य एक्कम्मि भवे संसारवासम्मि ॥१८०७॥

अर्थ— इस संसारवासमें अन्यपर्यायनिमें जे अनेक संबंध होइ, ते तो दूरिही रहो। एकही भवविषै धनदेव नामा वणिकपुत्रकै वंसततिलका माताही अपनी भार्या भई ! अर एक उदरमें उपजी ऐसी कमला नामा बहणहू स्त्री होत भई ! जो एकजन्ममें येता अपवाद पाया, तो अन्यजन्मकी कहा कथा है ? गाथा—

राया वि होइ दासो दासो रायत्तणं पुणमुवेदि ।

इय संसारे परिवट्टन्ते ठाणाणि सव्वाणि ॥१८०८॥

अर्थ—पापकर्मका उदय आवे है तदि राजा तो दास होय है, बहुरि दास राजा होय है । इस संसारमें समस्तस्थान जे पदस्थ ते पलटत हैं । गाथा—

कुलरूवतेयभोगाधिगो वि राया विदेहदेसवदी ।

वच्चघरम्मि सुभोगो जाओ कीडो सकम्मेहिं ॥१८०९॥

अर्थ—कुलवान्, रूपवान्, तेजका धारक अर अन्यलोकनितें भोगनितें अधिक ऐसा विदेहदेशका स्वामी सुभोग नामा राजा आपके अशुभकर्म के वशकरिके विष्टाके गृहमें कीडा होत भया ! इस संसारमें पापपुण्यका समस्त चरित्र है । गाथा—

होऊण महड्ढीउ देवो सुभवण्णगंधरूवधरो ।

कुणिमम्मि वसदि गब्भे धिगत्थु संसारवासस्स ॥१८१०॥

अर्थ—शुभवर्ण, शुभगंध, शुभरूपका धारकहू महान् ऋद्धिका धारक देव होयकरिके बहुरि आयुका अंतकरि महामलिन दुर्गंध गर्भस्थानकमै प्रवेश करे है ! तातें संसारके वासकूं धिक्कार होहू ! गाथा—

इधइं परलोगे वा सत्तू पुरिसस्स हुंति णीया वि ।

इहइं परत्त वा खाइ पुत्तमंसाणि सयमादा ॥१८११॥

अर्थ—जे अपने अति निज हैं, तेहू इस लोकमें वा परलोक में पुरुषके अपने शत्रु होय हैं। निजमाताही इस लोक में वा परलोकमें अपने पुत्रका मांस खाइ है! इससिवाय अनर्थ कहा है? गाथा–

होऊण रिऊ बहुदुक्खकारओ बन्धवो पुणो होदि।
इय परिवट्टइ णीयत्तणं च सत्तुत्तणं च जये ॥१८१२॥

अर्थ—जो पूर्वे बहुत दुःखका करनेवाला वैरी होयकरिके बहुरि इसही लोकमें स्नेहकरि सहित अपना बांधव होय है। जगतविषै इस प्रकार निजपणा अर शत्रुपणा क्षणमात्रमें रागद्वेषके वशतें पलटे है। गाथा–

विमलाहेदुं वंकेण मारिओ णियभारियागब्भे।
जाओ जाओ जादिभरो सुदिट्ठी सकम्मेहिं ॥१८१३॥

अर्थ—विमला नाम स्त्री के निमित्त वक्र नामा अपना सेवककरिके मारचा जो सुदृष्टि नामा पुरुष, सो अपने कर्मकरिके अपनी स्त्री के गर्भमें उत्पन्न भया। अर पाछे जातिस्मरण जो पूर्वजन्मका स्मरणकूं प्राप्त भया। गाथा—

होऊण बभणो सोत्तिओ खु पावं करित्तु माणेण।
सुणको व सूगरो वा पाणो वा होइ परलोए ॥१८१४॥

अर्थ—वेदांती ब्राह्मण होइकरिके अर अभिमानकरि पाप उपजायकरिके अर मरिकरि श्वान होय है, वा चांडाल होय है। गाथा–

दारिद्दं अद्धिढत्तं णिंदं च थुदिं च वसणमब्भुदयं।
पावदि बहुसो जीवो पुरिसित्थिणवुंसयत्तं च ॥१८१५॥

अर्थ—संसारी जीव लाभांतरायके उदयतें दरिद्र होय है। बहुरि लाभान्तरायके क्षयोपशमतें बहुतधनका धनी होय है, वांछिततें अधिक संपदा प्राप्त होय है। अयशस्कीर्ति नाम कर्मके उदयतें निंदाकूं प्राप्त होय है। यशस्कीर्ति नाम कर्मके उदयतें जगतमें उज्ज्वल जस विस्तरे है। असातावेदनीयकर्मके उदयतें व्यसन, कष्ट, दुःखकूं प्राप्त होय है।

सातावेदनीयके उदयतं देवमनुष्यगतिमें सुखकूं प्राप्त होय है। वेदके उदयकरिके वारंवार पुरुष-स्त्री-नपुंसकपणाकूं प्राप्त होय है। गाथा–

कारी होइ अकारी अप्पडिभोगो जणो हु लोगम्मि।
कारी वि जणसमक्खं होइ अकारी सपडिभोगो ॥१८१६॥

अर्थ—इस संसारविषं पुण्यरहित पुरुष दोष अपराध नहीं करे तोहू लोकमें उसका अपराध करना प्रकट होय है। अर पुण्यसहित पुरुष जनांके प्रत्यक्ष देखतं कीया हुवाहू अपराध जगतविषं प्रकट नहीं होय है। भावार्थ–जीवके पापका उदय आवे तदि विनाकीया दोषका करना प्रकट होइ जगत सदोषी कहे है। अर पुण्य उदय आवं तदि कीया हुवा अपराधहू जगतमें प्रकट नहीं होय है।

सरिसीए चन्दिगाये कालो वेस्सो पिओ जहा जोण्हो।
सरिसे वि तहाचारे कोई वेस्सो पिओ कोई ॥१८१७॥

अर्थ—जैसे एक मासके दोय पक्ष, तिनमै चंद्रमाकी चांदणी समान है, अर समानकालही चंद्रमाका उदय है–शुक्लपक्षमें पहलो रात्रिविषं चांदणी विस्तरे है, कृष्णपक्षमें पाछिली रात्रिमे चांदणीसमान काल रहे है, अर चंद्रमाकी कलाहू समानही रहे है, तोहू लोकमै कृष्णपक्ष द्वेष करनेजोग्य समस्तके अप्रिय है, अर शुक्लपक्ष समस्तके प्रिय है; तैसे आचरण क्रिया कार्य उपकार अपकार समान करतेहू कोऊ समस्तके द्वेष करनेयोग्य अप्रिय होय है, कोऊ समस्तके राग करनेयोग्य प्रिय होय है। तातं पुण्यपापके प्रबल उदयमें कर्तव्य नहीं चलिसके है। कर्मके उपशम होतं समस्त करना सफल होय है।

इय एस लोगधम्मो चिंतिज्जन्तो करेइ णिव्वेदं।
धण्णा ते भयवन्ता जे मुक्का लोगधम्मादो ॥१८१८॥

अर्थ- -इस प्रकार इस लोकका स्वभाव चिंतन कीया हुवा जीवके संसार देह भोगनिमें विरक्तता उपजावे है। लोकमें ते ज्ञानवान् सामर्थ्यवान् धन्य हैं–पूज्य हैं, जे इस लोकके स्वभावमें रागद्वेष छांडि अपने आत्मस्वभावमें राचे हैं। गाथा–

बिज्जू व चंचलं फेणदुब्बलं वाधिमहियमच्चुहदं ।
णाणी किह पेच्छन्तो रमेज्ज दुक्खुद्धुदं लोगं ।।१८१९।।

अर्थ—यो मनुष्यलोक बिजुलीवत् चचल है, फेन जो झाग तिसकीनांई दुर्बल है, अर व्याधिकरि मथित है, अर मृत्युकरि ताडित है, अर दुःखकरि आकुल है, ऐसा इस मनुष्यलोककूं देखता संता ज्ञानी इसमें कैसे रमै ? ऐसे लोक स्वभावका चिंतवन पनरा गाथानिमें कह्या ।

अब अशुभभावना, ताकूं अशुचिहू कहिये है, ताकूं आठ गाथानिमें वर्णन करे हैं ।

असुहा अत्था कामा य हुन्ति देहो य सव्वमणुयाणं ।
एओ चेव सुभो णवरि सव्वसोक्खायरो धम्मो ।।१८२०।।

अर्थ--इनि मनुष्यनिके ये अर्थ जे धनादिक, अर काम जे पंचइन्द्रियनिके विषय ते अशुभ हैं–जीवके अकल्याण करनेवाले हैं । अर देहमें लालसा है सो अशुभ है–अनन्तानन्त जन्ममरण करावनेवाली है । केवल यो धर्म है, सो समस्त सुखका करनेवाला है, अर शुभ है–समस्तकल्याणका बीज है । अब धनतें उपज्या अनर्थकूं दिखावे हैं । गाथा—

इहलोगियपरलोगियदोसे पुरिसस्स आवहइ णिच्चं ।
अत्थो अणत्थमूलं महाभयं मुत्तिपडिपंथो ।।१८२१।।

अर्थ—इस संसारमें मे ए धन हैं ते इस लोकसम्बन्धी काम, क्रोध, मद, मोह, अभिमान, भय, मायाचार, ईर्षा, बहु आरम्भ, बहुपरिग्रह, हिंसादिक समस्तदोषनिकूं प्राप्त करे है–समस्त कामादिक भयादिक समस्त धनतें होय हैं । तातें धन है सो समस्त इस लोक सम्बन्धी दोषनिकूं नित्यही प्राप्त करे है, अर परलोकमें दुर्गतिकूं प्राप्त करे है । तातें अर्थ जो धन है, सो महा अनर्थका मूल है । वैर, कलह, दुर्ध्यान, ममता धनहोतें बधै है । महाभयका कारण है, अर मुक्तिके दृढ अर्गल है । जातें तीव्र रागका बधावनेवाला धन, तातें मुक्ति अतिदूरि वर्ते है । मुक्ति तो वीतरागतातें होइ है । अब कामका अशुभपणा कहे हैं । गाथा—

कुणिमकुडिभवा लहुगत्तकारया अप्पकालिया कामा ।
उवधो लोए दुक्खावहा य ण य हुन्ति ते सुलहा ।।१८२२।।

अर्थ—बहुरि कामविषय हैं ते सिडी हुई दुर्गन्ध देहरूप कुटीतें उत्पन्न भये हैं, अर जगतमें लघुपणाका करनेवाले हैं, अर अल्पकाल रहे हैं, अर दोऊ लोकमें दुःखका बहनेवाला हैं, तोहू ये भोग सुलभ नहीं हैं। भावार्थ—ये कामभोग अत्यन्तदुर्गन्ध देहतें उपजे हैं, अर भोगी कामी जगतमें निंद्य होइ हैं, अर कामभोगका कालभी अति अल्प है, अर काममें आसक्त जो कामी सो इस लोकमें कलंक, अपवाद अर परलोकमें नरकादिक दुर्गतिकूं प्राप्त होय है, अर ऐसे अनर्थकारीहू कामभोग पूर्वले पुण्यविना नहीं मिले हैं, हाय हाय करता दुर्गति जाय है। ऐसें कामकृत अशुभपणा दिखाया। अब देहका अशुभपणा दिखावे हैं। गाथा—

अट्ठिदलिया छिरावक्कवद्धिया मंसमट्टियालित्ता।
बहुकुणिमभण्डभरिदा विहिंसणिज्जा खु कुणिमकुडो॥१८२३॥

अर्थ—देहकूं कुटीसमान वर्णन करे हैं। सो देहरूप कुटी कैसीक है? हाडनिके खंडनिकरि रची है, अर नसाजालरूप बकलकरि बन्धी है, अर मांसरूप मांटीकरि लिप्त है, अर महादुर्गन्ध सिड्या हुवा मांस-रुधिर-मल-मूत्र-रूप भांड करि भरया है, अर ग्लानि करने योग्य है, दुर्गन्ध कुटीसमान है। ऐसे देहरूप कुटीका अशुभपणा दिखाया। गाथा—

इंगालो धोव्वन्तो ण सुद्धिमुवयादि जह जलादीहिं।
तह देहो धोव्वन्तो ण जाइ सुद्धिं जलादीहिं॥१८२४॥

अर्थ—जैसें अंगारेकूं जलादिककरिधोयेहू शुद्धिकूं नहीं प्राप्त होय है–अपना श्यामपणाकं नहीं छांडे है, तैसे जलादिककरि प्रक्षालन किया देह शुद्धताकूं नहीं प्राप्त होय है। गाथा—

सलिलादीणि अमेज्झं कुणइ अमेज्झाणि ण दु जलादीणि।
मेज्झममेज्झं कुव्वन्ति सयमवि मेज्झाणि संताणि।१८२५।

अर्थ—अमेध्य कहिये महा अपवित्र शरीर सो जलादिकनिकूं अशुद्ध करे है, अर जलादिक अपवित्र शरीरकूं पवित्र नहीं करे है। गाथा—

तारिसयममेज्झमयं सरीरयं किह जलादिजोगेण ।
मेज्झं हवेज्ज मेज्झं ण हु होदि अमेज्झमयघडओ ॥१८२६॥

अर्थ—तैसा अशुचिमय शरीर जलादिकका धोवनेकरि वयूं पवित्र होय है कहा ? कदाचित् नहीं होइ । जैसे मल का घडा जलादिककरि शुद्ध नहीं होइ है, तैसे मलमय हाड, चाम, मांस, रुधिर, मल, मूत्रादिकमय शरीर जलादिककरि शुद्ध नहीं होय है । गाथा—

णवरि हु धम्मो मेज्झो धम्मत्थस्स वि णमन्ति देवा वि ।
धम्मेण चेव जादि खु साहू जल्लोसधादीया ॥१८२७॥

अर्थ—केवल एक धर्मही पवित्र है, धर्मविषै तिष्ठतेकूं देवहू नमस्कार करे हैं, अर धर्मकरिके ही साधुके जल्लौषधादिक ऋद्धि प्रकट होइ हैं । इहां प्रकरण पाइ जल्लौषधादिक ऋद्धि कौन कौन हैं, तिनकूं कहे हैं—

ऐसा प्रकरण है—मनुष्य दोय प्रकारके हैं । एक आर्य, एक म्लेच्छ, ऐसे दोय जाति हैं । तिनमें आर्य दोय प्रकार के हैं । एक ऋद्धिनिकूं प्राप्त भये ते ऋद्धिप्राप्तार्य मनुष्य हैं । एक जिनकूं ऋद्धि नहीं प्राप्त भई ते अनृद्धिप्राप्तार्य मनुष्य हैं । तिन ऋद्धिरहित आर्यनिके पंच भेद हैं । क्षेत्रआर्य, जातिआर्य, कर्मआर्य, चारित्रआर्य, दर्शनआर्य । तिनमें जे मनुष्य काशी कोशलादिक उत्तमदेशमें उपज्या, ते क्षेत्रआर्य हैं । अर इक्ष्वाकुवंश भोजवंश इत्यादिक उत्तमकुलमें उत्पन्नभये ते जातिआर्य हैं । अर कर्मार्य तीनप्रकार हैं । सावद्यकर्मार्य, अल्पसावद्यकर्मार्य, असावद्यकर्मार्य । तिनमें जे पापकर्मसहित जीविका करैं, ते सावद्यकर्मआर्य हैं । अर अल्पपापसहित जीविका करैं, ऐसे व्रतीश्रावक ते अल्पसावद्यकर्मार्य हैं । अर समस्तपापरहित जो जीविका करैं, सो असावद्यकर्मार्य हैं । इनमें सावद्यकर्मार्य छप्रकार हैं ।

असि जो खड्गादिक आयुध बांधि जीविका करै, सो असिकर्मार्य है । अर धनसंपदादिकनिका आगमन तथा खर्च हिसाब लेखादिकनिके लिखनेमें निपुण होइ जीविका करै, सो मषिकर्मार्य है । हल, फावडा, दांतलादिक जे खेतीके उपकरणनिकरि धान्यादिकका वाहणां, छेदना इत्यादिककरि धान्य उपजाय खेतीसूं जीविका करै, ते कृषिकर्मार्य हैं । आलेख्य गणितशास्त्रादिक बहत्तरि कला इत्यादिक विद्याका पठनपाठनादिककरि जीविका करै, ते विद्याकर्मार्य हैं । बहुरि नाई, धोबी, लुहार, सुनार, कुंभार, खाती इत्यादिक शिल्पिकर्म करि आजीविका करे, ते शिल्पिकर्मार्य हैं । बहुरि चन्दनकर्पूरा-

दिक सुगन्धद्रव्य तथा घृततैलादिक रस अर शालिनै आदिलेय शाली, गोहूँ, चरणा, मूंग, जव, इत्यादिक धान्य अर कपास, वस्त्र, मणि, मोती, सुवर्ण, रूपा इत्यादिक नानाप्रकार द्रव्यनिका बेचना खरीदना इत्यादिक विणजकरि आजीविका करे, ते वणिक्कर्मार्य हैं। ऐसे छ प्रकारके कहै, ते अविरतमें प्रवृत्तितै सावद्यकर्मार्य हैं। अर श्रावकके अणुव्रतादिक धारण करि अन्यायका त्यागकरि न्यायरूप यत्नाचारतैं जीविका करे हैं, बहुतपापसहित जीविका नहीं करे, ते अल्पपापमें प्रवर्तनेतैं अर बहुतपापतैं पराङ्मुख होनेतैं अणुव्रती श्रावक अल्पसावद्यकर्मार्य हैं। अर समस्त पापका तथा आरम्भादिकनिका मन, वचन, कायकरि त्यागी होय कर्मनिके क्षय करनेमें उद्यमी होय ऐसे निर्ग्रंथमुनि असावद्यकर्मार्य हैं। ऐसे सावद्यकर्मार्य, अल्पसावद्यकर्मार्य असावद्यकर्मार्य तीनप्रकार कर्मार्य नामा तीसरा भेद कह्या।

बहुरि चारित्रार्य दोय प्रकार हैं। अभिगतचारित्रार्य, अनभिगतचारित्रार्य। जे चारित्रमोहके उपशमतैं तथा चारित्रमोहके क्षयतैं बाह्य उपदेशकूं नहीं अपेक्षा करिके आत्माकी उज्ज्वलतातैं चारित्रपरिणामकूं प्राप्त भये ऐसे उपशांतकषाय गुणस्थानके धारक वा क्षीणकषायगुणस्थानकै धारक, अभिगतचारित्रार्य है। बहुरि जे अन्तरंगमें चारित्रमोहका क्षयोपशम होते सन्ते बाह्य उपदेशके निमित्ततैं संयमके परिणामकूं ग्रहण किये ते अनभिगतचारित्रार्य हैं।

बहुरि दर्शनार्य दश प्रकार हैं। आज्ञा, मार्ग, उपदेश, सूत्र, बीज, संक्षेप, विस्तार, अर्थ, अवगाढ ऐसे दशप्रकार श्रद्धानके भेदतैं सम्यक्त्वके दश भेद हैं। तिनमें जो सर्वज्ञ वीतराग अरहंतभगवानकी आज्ञामात्रकरि जाके श्रद्धान भया, जो समस्तपदार्थनिकूं एककाल क्रमरहित समस्त अतीत-अनागत-वर्तमानपर्यायनिसहित जाणे, "ऐसे सर्वज्ञ अर रागद्वेषरहित ऐसे वीतराग भगवान् असत्यार्थ नहीं कहै-सर्वज्ञवीतरागका कह्या मेरे प्रमाण है" ऐसे सर्वज्ञके वचन जे परमागम तातैं जो श्रद्धान भया, सो आज्ञासम्यक्त्व है ॥ १ ॥ निर्ग्रंथरूप मोक्षमार्गकूं श्रवणकरि निश्चय भया जो निर्ग्रंथ वीतरागता ही मोक्षका मार्ग है अन्य नहीं, ऐसा जो श्रद्धान सो मार्गसम्यक्त्व है ॥ २ ॥ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेवादिकनिके चरित्रनिके उपदेश ग्रहण करनेतैं उपज्या जो श्रद्धान, सो उपदेश सम्यक्त्व है ॥ ३ ॥ बहुरि दीक्षाको मर्यादा के प्ररूपण करनेवाले आचारसूत्र तिनके श्रवणमात्रतैं उपज्या जो श्रद्धान, सो सूत्रसम्यक्त्व है ॥४॥ बहुरि सिद्धान्तसूत्रके बीजपदके ग्रहणपूर्वक सूक्ष्म अर्थरूप तत्त्वार्थका श्रद्धान होइ, सो बीजसम्यक्त्व ॥५॥ जीवादिकपदार्थनिका सामान्यसंबोधनमात्रकरि उपज्या श्रद्धान, सो सक्षेपसम्यक्त्व है ॥६॥ अंगपूर्व है विषय जिनका

ऐसे जीवादिपदार्थनिका विस्ताररूप प्रमाणनयादिकनिका निरूपणकरि प्राप्त भया जो श्रद्धान, सो विस्तारसम्यक्त्व है ।।७।। वचनके विस्तारविनाही पदार्थनिका ग्रहणकरि उपजी जो निर्मलता, सो अर्थसम्यक्त्व है ।।८।। आचारांगादिक द्वादशांगके ज्ञानकरि उपज्या श्रद्धान, सो अवगाढसम्यक्त्व है ।।६।। परमावधिज्ञान तथा केवलज्ञान केवलदर्शनकरि प्रकाशित जे जीवादिकपदार्थनिका प्रकाशरूप परमावगाढसम्यक्त्व है ।।१०।। ऐसें क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कर्मार्य, चारित्रार्य, दर्शनार्य पंचप्रकारकरिके ऋद्धिरहित जो अनृद्धिप्राप्तार्य, तिनके पंच भेद वर्णन किये ।

अब ऋद्धि जिनके तपके बलकरि उपजी ऐसे ऋद्धिप्राप्तार्य अष्टप्रकार है। बुद्धिऋद्धि, क्रियाऋद्धि, विक्रियाऋद्धि, तपऋद्धि, बलऋद्धि, औषधऋद्धि, क्षेत्रऋद्धि ये अष्टप्रकारकी मूलऋद्धि हैं । इनमें बुद्धऋद्धि अष्टादश प्रकार है–१. केवलज्ञान. २.अवधिज्ञान, ३.मनःपर्ययज्ञान, ४.बीजबुद्धि, ५.कोष्ठबुद्धि, ६.पदानुसारित्व, ७.संभिन्नश्रोतृत्व, ८. दूरादास्वादनसमर्थता, ६. दूरदर्शनसमर्थता, १०.दूरस्पर्शनसमर्थता, ११. दूरघ्राणसमर्थता, १२.दूरश्रवणसमर्थता, १३. दशपूर्वित्व, १४.चतुर्दशपूर्वित्व, १५.अष्टाङ्गमहानिमित्तज्ञता, १६ प्रज्ञाश्रवणत्व, १७.प्रत्येकबुद्धता, १८.वादित्व ऐसे अष्टादश बुद्धिऋद्धि के नाम कहे । तिनमें समस्तज्ञानावरणके अत्यन्तक्षयतें लोकालोकवर्ती समस्तपदार्थनि के गुणपर्याय त्रिकालसम्बन्धी एककालमें क्रमरहित प्रत्यक्ष जाने, सो केवलज्ञानऋद्धि है ।।१।। बहुरि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी मर्यादासहित मूर्तिकपदार्थकूं प्रत्यक्ष जाने, सो अवधिज्ञान नामाऋद्धि है।।२।। बहुरि अपने मनमें वा अन्यअनेक जीवनिके मनमें चितवनकिया पदार्थ वा चितवन करेगा वा चितवनकरे है वा अर्थचिन्तवन किया वा चितवन करि विस्मरण भया ऐसा मूर्तिकपदार्थकूं प्रत्यक्ष जाने, सो मनःपर्ययज्ञानऋद्धि है ।।३।।

जैसे आछी रीति हल आदिककरि सुधारया अर सारांश सहित ऐसे क्षेत्रमें कालादिकनिकी सहायतें बाया एक बीज अनेक कोटि बीजका देनेवाला होइ है; तैसे मनइन्द्रियावरण, श्रुतावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमकी आधिक्यता होते सन्ते एक बीजपदकूं ग्रहण करनेतें अनेकपदके अर्थनिका ज्ञान होना, सो बीजबुद्धि नामा ऋद्धि है ।।४।। बहुरि जैसे कोठ्यारविषें कोठ्यारीकरिके स्थापित किये अर भिन्न भिन्न धरे मिले नहीं, ऐसे बहुत धान्यबीजनिका कोष्ठ जो कोठ्यार तिसविषें धान्य जुदे जुदे तिष्ठे है, जब निकासे तदि न्यारे न्यारे विनाशरहित निकसि आवे अथवा जैसे एकमकान में स्थापन किये नाना जातिके रत्न, मणि, मोती, सोना जब निकासो तदि भिन्न भिन्न जेता प्रमाणरूप स्थाप्या था, तितना प्रमाण लिये भिन्न भिन्न निकसै मिले, नहीं घटे, बढे नहीं; तैसे परके उपदेशतें ग्रहण किये जे शब्द अर्थ तिन बहुत शब्द-अर्थकूं जिस अवसरमे देखो, तिस अवसरमें बुद्धिमे जैसे के तैसे रहै, घटं बटै नहीं–अक्षरादिक आगे पाछे होय

नहीं, सो कोष्ठबुद्धिऋद्धि है ॥५॥ पदानुसारि ऋद्धिका स्वरूप कहे हैं—जो कोऊ प्रथमें तैं आदिका वा मध्यका वा अन्तका एकपदका अर्थ अन्यतैं श्रवणकरिके अर अवशेष समस्तग्रंथका वा अर्थका जानना, सो पदानुसारित्व नामा ऋद्धि है ॥६॥

बहुरि संयमीनिके मध्य कोऊ मुनिके तपविशेषका बलके लाभकरि समस्त आत्मप्रदेशनिमें श्रोत्रेन्द्रियके परिणाम रूप श्रवण करनेमें समर्थ ऐसी शक्ति प्रकट भई है, तातैं द्वादशयोजन लम्बा अर नवयोजन चौडा जो चक्रवर्तिका कटक ताके विषं हाथी, घोड़े, ऊंट, गर्दभ, मनुष्य इत्यादिकनिके नानाप्रकारके एककाल युगपत् उपजे जे अनेकशब्द तिनकूं एक कालमें भिन्न भिन्न श्रवण करे, सो सभिन्नश्रोतृत्व नामा ऋद्धि है ॥७॥ बहुरि तपकी शक्तिका विशेषकरि प्रकट हुवा जो अन्य जीवनिके ऐसा क्षयोपशम नहीं होय तैसा रसनेन्द्रियावरणका क्षयोपशमतैं अर अन्य जीवनिके नहीं होय, ऐसा श्रुतावरण अर वीर्यान्तरायके क्षयोपशमतैं अर अंगोपांग नामकर्मके लाभतैं नवयोजनप्रमाण जो रसना इन्द्रियका उत्कृष्ट विषय तातैंहू बारै बहुतयोजन दूरक्षेत्रतैं आया रसके आस्वादनमें सामर्थ्य प्रकट होइ सो दूरादास्वादनसमर्थ नामा ऋद्धि है। भावार्थ—तपके प्रभावतैं रसनेन्द्रियावरण अर श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय इनका क्षयोपशम अर अंगोपांग नाम कर्म का लाभ ऐसा होइ है—जातैं रसनेन्द्रियका उत्कृष्टविषय नवयोजनका है, तातैंहू बहुतयोजनदूरिके रसके आस्वादनेमें सामर्थ्य प्रकट होइ, सोदूरादास्वादनसमर्थ ऋद्धि है ॥८॥ ऐसेही घ्राण इन्द्रियका नवयोजनका विषय है, तिसतैं दूरिकी वस्तुका गन्ध ग्रहण करनेका सामर्थ्य जातैं प्रकट होइ, सो दूरघ्राणसमर्थता नाम ऋद्धि है ॥९॥

बहुरि नेत्रेन्द्रियावरण अर श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय के क्षयोपशमतैं ऐसी देखनेकी शक्ति प्रकट होइ, जो, नेत्रेन्द्रियका उत्कृष्टविषय संतालीस हजार दोयसे तरेसठि योजन अर एकयोजनका बीस भागमें सप्तभागका है, तिसतैंहू बहुतयोजन दूरि तिष्ठती वस्तुके देखनेकी सामर्थ्य प्रकट होइ, सो दूरदर्शनसमर्थता नामा ऋद्धि है ॥१०॥ ऐसे ही स्पर्शनेन्द्रियावरण अर श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यान्तरायके क्षयोपशमकरि ऐसी स्पर्शनेन्द्रियमें जाननेकी शक्ति होय है, जो, स्पर्शनेन्द्रियका नवयोजनका उत्कृष्ट विषय है, तिसतैं बहुतयोजन दूरि तिष्ठती वस्तुके जाननेकी सामर्थ्य, सो दूरस्पर्शनसमर्थता नामा ऋद्धि है ॥११॥ बहुरि कर्ण इन्द्रियका द्वादशयोजनका विषय है, सो प्रकृष्ट श्रोत्रेन्द्रिय अर श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यान्तरायके प्रकर्ष क्षयोपशमतैं अर अंगोपांग नाम कर्मके लाभतैं द्वादश योजनतैं अधिक बहुतयोजन दूरिका श्रवण करे, सो दूरश्रवणसमर्थता नामा ऋद्धि है ॥११॥

बहुरि महारोहिणीकूं आदि लेइ आर प्राप्त भई अर प्रत्येक अपना अपना रूप अर अपना अपना सामर्थ्य प्रकट करनेकूं अर अपना अपना सामर्थ्य कहनेकूं प्रवीण अर वेगवान् ऐसी विद्यादेवतानिकरि जिसका चारित्र चलायमान नहीं होइ अर दशपूर्वरूप दुस्तरसमुद्रके पार होना, सो दशपूर्वित्व नामा ऋद्धि है। भावार्थ—दशमापूर्वका जाननेका सामर्थ्य तपके प्रभावतें जब प्रकट होय है, तब दशमपूर्वमें रोहिणीकूं आदि करि अनेक विद्या देवता मुनीश्वरनिके निकट चलायमान करनेकूं प्रकट होइ है, जो, भो मुने ! अब ध्यानादिकतपकरि कहा करो हो ! तुमारे तपकरि हम आपकी आज्ञाकारिणी हाजरि हैं, जो आप आज्ञा करो तो समस्त पृथ्वीमें रत्नवर्षा करें, नगर रचें, महल मन्दिर राज्य संपदा रचें, समस्तकूं आपके चरणनिमें नमाय आज्ञाकारी करें इत्यादिक कहै, अर नानाप्रकारका अपना सामर्थ्य प्रकट करे, अर अनेक विक्रियासहित अपना रूप दिखावें, हाव भाव विलास विभ्रमादिरूपकरि मुनीश्वरनिका चित्त चलायमान करचा चाहै, परन्तु विद्या देवतानिकरि जिनका परिणाम चलायमान नहीं होय, दृढध्यानमे रत रहै, तिसके दशपूर्वित्वऋद्धि होइ है। अर जो विद्यानिके लोभतें चलायमान होय है, सो मुनि साधुधर्मतें भ्रष्ट होइ मिथ्यात्वी असंयमी होय है। तातें दशपूर्वसमुद्रके पारहो जाय, तिसके दशपूर्वित्वऋद्धि होय है ।।१३।। बहुरि समस्त श्रुतका ज्ञानका धारक श्रुतकेवलीपणा सो चतुर्दशपूर्वित्वऋद्धि है ।।१४।।

बहुरि अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न, स्वप्न ये निमित्तज्ञानके अष्ट अंग हैं। इनि अष्टांगनिमित्तका जानना, सो अष्टांगनिमित्तज्ञता नाम ऋद्धि है। तिनमें अन्तरिक्ष जो आकाश तिसविषें सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, तारानिका उदय अस्तादिक देखनेकरि ऐसा ज्ञान होइ, जो, पूर्वें ऐसे तो हुई होगी, अर अब आगाने ऐसा होना दीखे है, सो अन्तरिक्ष नाम निमित्तज्ञान है ।।१।। बहुरि पृथ्वीकी कठोरता, कोमलता, सचिक्कणता रूक्षतादिकनिकूं देखि तथा पूर्वादिकदिशानिमें सूतके पडनेकरि ऐसा ज्ञान होइ, जो, इस क्षेत्रमें वृद्धि वा हानि तथा राजादिकनिकी हारि, जीति ऐसें भई है, अर ऐसें होयगी, तथा भूमिविषें तिष्ठते सुवर्णरूप्यादिकनिका जानना सो भौम नामा निमित्तज्ञान है ।।२।। बहुरि हस्त पाद मस्तकादिक तो अंग अर कर्ण, नेत्र, ललाट, ग्रीवा इत्यादिक उपांग इनि अंगउपांगनिके देखनेकरि तथा स्पर्शनादिककरि जो त्रिकालका भावी सुख दुःखादिककूं जानना, सो अंग नामा निमित्तज्ञान है ।।३।। बहुरि अक्षरअनक्षररूप शुभ अशुभ शब्दके श्रवणकरि इष्टानिष्टफलका प्रकट करना, सो स्वर नामा निमित्तज्ञान है ।।४।।

बहुरि मस्तक, मुख, ग्रीवा इत्यादिकनिविषें तिल मुस, लसणादिकनिकूं देखि त्रिकाल सम्बन्धी सुख दुःखका

जानना, सो व्यजन नामा निमित्तज्ञान है ।।५।। बहुरि श्रीवृक्षका लक्षण, स्वस्तिक जो माथ्या ताका लक्षण, अर भृंगार, झारी, कलश इत्यादि लक्षण शरीरमे देखनेतें त्रिकालसम्बन्धी स्थान, मान, ऐश्वर्यादिकका जानना, सो लक्षण नामा निमित्त ज्ञान है ।।६।। बहुरि वस्त्र, शस्त्र, छत्र, उपानत् जो पगरखी अर आसन शयनादिकनिकूं शस्त्र, कंटक, मूषा इत्यादिककरि छिद्या देखि त्रिकालसम्बन्धी लाभ अलाभ सुखदुःखादिककूं जानै—जो ऐसे हुया होगा, अर ऐसे होइ है, अर आगानें ऐसे होइगा, ऐसा ज्ञान सो छिन्न नाम निमित्तज्ञान है ।।७।। बहुरि वात-पित्त-कफके प्रकोपरहित पुरुषकूं पाछिली रात्रिका भागविषे स्वप्नमें चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, पर्वत, समुद्रका मुखविषै प्रवेश करना, तथा समस्त पृथ्वीमण्डलकूं आच्छादन करना इत्यादिक तो शुभ स्वप्न हैं, अर घृततैलकरि लिप्त अपना देहका स्वप्नमें देखना, अर खर ऊंट ऊपरि चढि दक्षिण दिशामे गमन करना इत्यादिक अशुभ स्वप्नके देखनेतें आगामी कालमें जीवना मरना तथा सुखदुःखादिकका जानना, सो स्वप्न नामा निमित्तज्ञान है ।।८।। एते जे अष्टांगनिमित्तनिमें प्रवीणपणा होना, सो अष्टांगनिमित्तज्ञान नामा ऋद्धि है ।।१५।।

बहुरि कोऊ सूक्ष्म अर्थतत्त्वका विचार ऐसा गहन है—जो, चौदहपूर्वके धारी श्रुतकेवलीही जाने, अन्यज्ञानी जानने में समर्थ नहीं, परन्तु कोऊ मुनिके अत्यन्त श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय नामा कर्मके क्षयोपशमतें असाधारण ऐसी बुद्धि की शक्ति प्रकट होइ है—जो, द्वादशांग चतुर्दशपूर्वका अध्ययन ज्ञानविनाही अतिसूक्ष्मतत्त्वकूं संसयरहित सत्यार्थनिरूपण करे, सो प्रज्ञाश्रवणत्व ऋद्धि है ।।१६।। बहुरि परके उपदेशविनाही अपनी शक्तिके विशेषतेंही ज्ञानके तथा संयमके विधान मे निपुणपणा होइ, सो प्रत्येकबुद्धता नाम ऋद्धि है ।।१७।। बहुरि जो इन्द्रादिकदेवहू प्रतिपक्षी होइ, विवाद करे तो तिनकूं हू उत्तररहित करिदे, अर अन्यके मतके समस्त छिद्रनिकूं जाणि ले, आप परकरिके नहीं जीत्या जाय, वादमें परकूं तिरस्कृत कर दे, सो वादित्व नाम ऋद्धि है ।।१८।। ऐसें बुद्धिऋद्धि के अष्टादश भेद कहे ।

अब दूसरी क्रियाऋद्धि दोय प्रकार है । १. चारणत्व, २. आकाशगामित्व । तिनमें चारणऋद्धि के अनेक भेद हैं । तिनमै नदी, तलाब, बावडी इत्यादिकके जलके ऊपरि गमन करे, अर जलकाय का जीवांकी विराधना नहीं होय, अर भूमि की नांई जलमें पगका उठावना अर मेलना इत्यादिकमें समर्थ होइ, सो जलचारण ऋद्धि के धारक हैं ।।१।। बहुरि भूमितें च्यारि अंगुल ऊंचा आकाशमें जंघानिकूं शीघ्रतातें निराधार उठावता मेलता सैकडा हजारा योजन गमन करनेमें समर्थ, ते जंघाचारण ऋद्धि के धारक हैं ।।२।। ऐसेही तन्तुऊपरि गमन करे अर तन्तु नहीं टूटे, सो तन्तुचारणऋद्धि है ।।३।।

बहुरि पुष्पनिऊपरि गमन करे अर पुष्पके जीवनिके विराधना नहीं होइ, सो पुष्पचारणऋद्धि है ।।४।। बहुरि पत्रनिऊपरि गमन करे अर पत्रके जीवनिके बाधा नहीं होय, सो पत्रचारणऋद्धि है ।।५।। बहुरि आकाशको श्रेणीरूप गमन करे, सो श्रेणीचारण है ।।६।। बहुरि अग्निकी शिखाऊपरि गमन करे अर अग्निकायके जीवनिके बाधा नहीं होइ, सो अग्निशिखाचारणऋद्धि है ।।७।। इत्यादिक चारणऋद्धिके अनेक भेद हैं । बहुरि क्रियाऋद्धि का दूसरा भेद जो आकाशगामित्व, ताका स्वरूप ऐसा है–पर्यंकासनकरि बैठे तथा कायोत्सर्गकरि खडे चरणनिका उठावने मेलनेकी विधिविना जो आकाशमें गमन करनेमें समर्थता, सो आकाशगामिनी ऋद्धि है ।

बहुरि विक्रियाऋद्धि अनेक प्रकार है—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, अप्रतिघात, अन्तर्द्धान, कामरूपित्व । इत्यादि विक्रियाऋद्धि अनेकप्रकार हैं । तिनमें जो अणुमात्र सूक्ष्मशरीर करना, सो अणिमा ऋद्धि है ।।१।। मेरुतेंहू महत् शरीररूप विक्रिया करनेमें समर्थता, सो महिमा ऋद्धि है ।।२।। अर पवनतेंहू हलका शरीर करने का सामर्थ्य, सो लघिमा ऋद्धि है ।।३।। बहुत भारया शरीर करनेका सामर्थ्य, सो गरिमा नामा ऋद्धि है ।।४।। बहुरि भूमिविषै तिष्ठिकरि अगुलीका अग्रभागकरि मेरुका शिखरकूं स्पर्शन करनेका सामर्थ्य, तथा सूर्य चन्द्रमा के विमानकूं स्पर्शन करने का सामर्थ्य, सो प्राप्ति नामा ऋद्धि है ।।५।। बहुरि जलविषै भूमिकीनांई गमन अर भूमिमें जलकीनांई उन्मज्जन निमज्जन करनेका सामर्थ्य, सो प्राकाम्य नामा ऋद्धि है ।।६।। त्रैलोक्यका प्रभुपणा प्रकट करनेका सामर्थ्य, सो ईशित्व नामा ऋद्धि है ।।७।। सर्वजीवनिकूं वश करनेका सामर्थ्य, सो वशित्व नामा ऋद्धि है ।।८।। बहुरि पर्वतके मध्यमें आकाशकीनांई गमनागमनकी शक्ति" जैसे आकाशमें गमनागमन करे तैसे पर्वतमें गमनागमन करनेका सामर्थ्य", सो अप्रतिघात नामा ऋद्धि है ।।।६।। अदृश्य होने का सामर्थ्य सो अन्तर्धान ऋद्धि है ।।१०।। युगपत् अनेक आकाररूप करनेका सामर्थ्य, सो कामरूपित्व नाम ऋद्धि है । ।।१।। ऐसे वैक्रियक ऋद्धिका वर्णन किया ।

अब तपोऽतिशय ऋद्धि सप्तप्रकार है–१. उग्रतपोऋद्धि, २. दीप्ततपोऋद्धि ३. तप्ततपोऋद्धि, ४.महातपोऋद्धि, ५. घोरतपोऋद्धि. ६.घोरपराक्रमऋद्धि, ७.घोरब्रह्मचर्यऋद्धि । तिनमें एकउपवास, बेला, तेला चोला, पचोपवास, पक्षोपवास, मासोपवास इत्यादिक अनशनतपके मध्य एक तपकूं आरम्भ करिके मरणपर्यन्त उसतपतें पाछानहीं आवे, सो उग्रतप नाम ऋद्धि है ।१। बहुरि तेला, चोला, पंचोपवास, पक्षोपवासादिक निरन्तर महान् उपवासादिक करतेहू जिनके काय-वचन-मनका बल दिन दिन बधता जाय, अर मुखमें दुर्गन्ध नहीं होइ, अर कमलादिककी सुगन्धकीनांई मुखमेंते सुगन्धनिश्वास प्रगट होइ,

अर शरीरकी महादीप्ति प्रगट होइ, सो, दीप्ततपोऋद्धिके धारक हैं ।२। बहुरि जिन साधुनिका भोजन किया हुवा आहार, मलमूत्र, रुधिरादिकरूप परिणमनकूं प्राप्त नहीं होइ "जैसे तप्तायमान लोहका कडाहेमें जल सूकि जाय, तैसे शीघ्रही शुष्क होइ" मलमूत्र रुधिरादिकरूप नहीं परिणमै, ते तप्ततपोऋद्धिके धारक हैं ।३। बहुरि सिंहनिःक्रीडितादिक जे महान् तप, तिनके करनेमें उद्यमी ते महातपोऋद्धि के धारक हैं ।४।

बहुरि जिनके शरीरमें पूर्वोपार्जित असाताकर्मके तीव्र उदयतैं वात, पित्त, कफ, सन्निपाततैं उत्पन्न भया ज्वर, कास, श्वास, नेत्रशूल, कोढ, प्रमेह, उदरशूल, स्फोटक, कठोदर इत्यादिक नाना प्रकारके रोगनिकरि तीव्रवेदना संताप प्रकट भया, तोहू अनशनादिक कायक्लेशकूं नहीं त्यागते, अनशनादिक तपकूं बडी प्रीतितैं रक्षा करते, अर किसीका शरण इलाज नहीं वांछा करते; भयानक स्मशान भूमि, पर्वतका शिखर, गुफा, पर्वतनिके दराडा, शून्य ग्रामादिक जिनमें दुष्ट, यक्ष, राक्षस, पिशाच अनेक विकार करे, अर जहां कठोर स्यालिनीनिके शब्द अर सिंह, व्याघ्र सर्प अन्य नाना प्रकारके भयानक वनके जीव अर शिकारी चोर भीलादिक दुष्टजीव जिन स्थाननिमें विचरे, ऐसे स्थानक जिन साधुनिकूं रुचै, अन्यजननिका शरण इलाज नहीं चाहते बसैं; ते घोरतपके धारक हैं ।५। बहुरि पूर्वे वर्णन किये अनेकरोगनिकरि सहित अर पूर्वोक्त निर्जनस्थानके बसनेमें प्रीतियुक्त अर ग्रहण किये तपके बधावनेमें तत्पर, ते मुनि घोरपराक्रम ऋद्धिके धारक हैं ।६। बहुरि चिरकालपर्यन्त सेवन किया है अचलब्रह्मचर्य जानें ऐसे साधु प्रकृष्टचारित्र मोहके क्षयोपशमतैं नष्ट भये हैं खोटे स्वप्न जिनके ते घोरब्रह्मचर्य ऋद्धि के धारक हैं ।७। ऐसे सप्तप्रकार तपोऋद्धि का वर्णन किया ।

बहुरि बलऋद्धि तीन प्रकारकी है—मनोबलऋद्धि, १.वचनबलऋद्धि, २.कायबलऋद्धि । तिनमें मनःश्रुतज्ञानावरण अर वीर्यान्तरायके क्षयोपशमकी प्रकर्षता होते सन्ते जो अन्तर्मुहूर्तमें समस्त द्वादशांग श्रुतका अर्थके चिंतवनमें सामर्थ्य-शक्ति प्रकट होइ, सो मनोबलऋद्धि है ।।१।। बहुरि मनःश्रुतावरण अर जिह्वाश्रुतावरण अर वीर्यान्तरायके क्षयोपशमातिशय होत सन्ते अन्तर्मुहूर्तमें समस्त श्रुतज्ञानके उच्चारणकी शक्ति प्रकट होइ अर निरन्तर उच्चस्वरकरि उच्चारण होतेहू खेद जिनके नहीं उपजे, अर कंठकी हीनता नहीं होय, सो वचनबलऋद्धि है ।।२।। बहुरि वीर्यान्तरायके क्षयोपशमतैं ऐसा असाधारण कायबल प्रकट होइ जातैं मासोपवास, चातुर्मासके उपवास वा संवत्सरपर्यन्त प्रतिमायोग धारतैंहू कायमें खेद क्लेश नहीं उपजै; सो कायबलऋद्धि है ।।३।। ऐसे बलऋद्धि तीनप्रकार वर्णन करी ।

अब अष्ट प्रकार औषध ऋद्धिकूं कहे हैं—जो असाध्यहू समस्तरोगनिका अभाव करनेमें समर्थ सो औषधऋद्धि अष्टप्रकार है–आमर्शौषधि ऋद्धि १. क्ष्वेलौषधि ऋद्धि २ जल्लौषधिऋद्धि ३. मलौषधिऋद्धि ४. विडौषधिऋद्धि ५. सर्वौषधि ऋद्धि६. आस्याविषऋद्धि७. दृष्ट्यविषऋद्धि ८ । जिनके हस्तपादादिक अंगका आमर्श जो स्पर्शन, सोही औषधिरूप होइ रोगनिका नाश करे, ते आमर्शौषधि ऋद्धिके धारक हैं ।।१।। अर जिनका क्ष्वेल जो कफ, सोही औषधिरूप होइ रोगनिका नाश करे, ते क्ष्वेलौषधि ऋद्धिके धारक हैं ।।२।। अर जल्ल जो समस्त अंगका पसेव, मलके ऊपरि लग्या रज सोही जिनके रोगका नाश करनेवाला होइ, ते जल्लौषधि ऋद्धिके धारक हैं ।।३।। जिनके कर्णमल तथा दंतमल नासिकामलही रोगका नाश करनेवाला होइ, ते मलौषधि ऋद्धिके धारक हैं ।।४।। बहुरि जिनका विट् जो विष्ठा सोही रोगका नाश करनेमें समर्थ होइ, ते विडौषधि ऋद्धिकूं धारे हैं ।।५।। बहुरि जिनका अंग तथा उपांग तथा नख, दंत, केशादिककूं स्पर्श करनेवाला पवनादिकही समस्तरोगनिका नाश करे, ते सर्वौषधि ऋद्धि के धारक हैं ।।६।। बहुरि जिनके मुखमें प्राप्त भया उत्कृष्ट विषहू निर्विषताकूं प्राप्त होइ, ते आस्याविष ऋद्धिके धारक है । अथवा जिनके मुखतें निकले वचनके श्रवण करनेतें महान् विषकरि व्याप्तहू विषरहित होय है, ते आस्याविष ऋद्धिके धारक हैं ।।७।। बहुरि औषधऋद्धिके धारक साधुनिकी दृष्टिके पतनमात्रकरि उत्कटविषकरि दूषित होइ, तेहू विषरहित होइ, ते दृष्ट्यविष ऋद्धिके धारक हैं ।।८।।

भावार्थ—साधुके तपके प्रभावतें औषध ऋद्धि ऐसी उपजै है, तिसके प्रभावतें साधुका अंग, उपांग, केश, नख, दंत, मल, मूत्र, कफ, पसेव, नाशिकामल इत्यादिकके स्पर्शनकरिके रोग दूरि होय हैं वा मलादिक तथा शरीरादिककूं स्पर्शनकरि पवन लगे है, सो समस्त रोगीनिका रोग दूरि करे है । तथा सर्पादिकनिके विषकरि व्याप्त हैं तिनके विष दूरि होय हैं । ऐसे अष्टप्रकार औषधि ऋद्धि का वर्णन किया ।

अब छप्रकार रसऋद्धिकूं कहे हैं–आस्यविषा १. दृष्टिविषा. २. क्षीरास्रावी ३. मध्वास्रावी ४. सर्पिरास्रावी ५. अमृतास्रावी ६ । उत्कृष्टतपके बलका धारक मुनीश्वर क्रोधकरि कोईकूं कहै, तूं मरि जा! तो तिसही क्षणमें महाविषकरि व्याप्त होइ मरिजाय, सो आस्यविषऋद्धि है ।।१।। उत्कृष्टतपके धारक यति क्रोधकरि जाकूं देखे, सोही उत्कृष्टविषकरि व्याप्त होय मरे है, ते दृष्टिविष ऋद्धिके धारक हैं ।।२।। यद्यपि वीतरागमार्गी क्रोधकरि कहेहू नहीं, अर क्रोधकरि देखेहू नहीं, शत्रु, मित्रमें जिनके समानबुद्धि है, तथापि तपके प्रभावतें ऐसी शक्ति प्रकट भई, सो शक्तिका प्रभाव दिखाया है । अर दिगम्बर यति दुर्गतिका कारण निद्यकर्म कदाचित् ही नहीं करे हैं । बहुरि जिनके हस्तमें प्राप्त हुवा नीरसहू आहार क्षीररसके

गुणरूप परिणमनकूं प्राप्त होइ, ते क्षीरास्रावी ऋद्धिके धारक हैं । अथवा जिनके वचन क्षीणमनुष्यनिकूं दुग्धरसकीनांई तृप्ति करनेवाला होइ, ते क्षीरास्रावी ऋद्धिके धारक हैं ।।३।। बहुरि जिनके हस्तपुटमें प्राप्त भया नीरसहू आहार, मधुर-रसकी शक्तिरूप परिणमे अथवा जिनके वचन दुःखकरि पीडित श्रोताजननिके मिष्टगुणकूं पुष्ट करे, ते मध्वास्रावी ऋद्धि के धारक हैं ।।४।। बहुरि जिनके हस्तपुटमें प्राप्त हुवा रूक्षहू अन्न घृतरसकी शक्तिके उदयकूं प्राप्त होय अथवा जिनके वचन श्रवण करते प्राणीनिकूं घृतरसकीनांई आनन्दित करे, तृप्ति करे, ते सर्पिरास्रावी ऋद्धिके धारक हैं ।।५।। बहुरि जिनके हस्तमें प्राप्त हुवा जैसा तैसा आहार सो अमृतपणाकूं प्राप्त होय अथवा जिनके कहे वचन प्राणीनिका अमृत-कीनांई उपकार करे, ते अमृतास्रावी ऋद्धिके धारक हैं ।।६।। ऐसे छप्रकार रसऋद्धि का वर्णन किया ।

अब क्षेत्रऋद्धि दोयप्रकार है—एक अक्षीणमहानसऋद्धि, एक अक्षीणमहालयऋद्धि । लाभांतरायके क्षयोपशमकी अधिकताते तपस्वीनिके ऐसी शक्ति प्रकट होइ है, जो गृहस्थ तपस्वीनिके अर्थि जिस पात्रतें निकासि भोजन देवे, तिस पात्रतें चक्रवर्तिका कटकहू जीमिजाय तोहू तिस दिनविषै पात्रमें भोजन नहीं घटै, सो अक्षीणमहानसऋद्धिके धारक हैं । बहुरि जिस क्षेत्रमें अक्षीणमहालयऋद्धिकूं प्राप्त भया मुनीश्वर बसै, तिस क्षेत्रमें देव मनुष्य तिर्यंच परस्पर निराबाध हुये सुखसूं तिष्ठे, सकडाई नहीं होइ, ते अक्षीणमहालय ऋद्धिके धारक हैं ।।२।। ऐसे क्षेत्रऋद्धि के दोय भेद कहे । आत्मामे अनन्त शक्ति है, सो तपके प्रभावतें जैसे जैसे कर्मका क्षय क्षयोपशम होइ तैसे तैसे शक्ति प्रकट होइ है । तपका अद्भुत प्रभाव है, कोटि जिह्वातें असंख्यातकालपर्यन्त तपका महिमा कहनेमें नहीं आवै है ।

ऐसे ऋद्धिप्राप्त आर्यके भेद कहे, ते समस्त सत्यरूप धर्मसेवनेका महिमा है । जातें महान् अशुचि मलिनदेहकूं भी धारण करि जो तपश्चरणादिककरि परमधर्म सेवन करे हैं, तिनके अनेक प्रकारकी ऋद्धि प्रकट होइ है । तातें अशुचि-देहकूं धर्मसेवनमें लगावनाही अपना कल्याण है । ऐसे अशुचिभावना वर्णन करी ।

अब चौदह गाथानिकरि आस्रवभावनाकूं कहे हैं । गाथा—

जम्मसमुद्दे बहुदोसवीचिए दुक्खजलयराइण्णे ।

जीवस्स परिब्भमणम्मि कारणं आसवो होदि ।।१८२८।।

अर्थ--संसाररूप समुद्रविषै जीवका परिभ्रमणका कारण आस्रव है । कैसाक है संसारसमुद्र ? जिसमें बहुतदोष रूप लहरि उठे हैं, अर दुःखरूप जलचरजीवनिकरि भरया है । गाथा—

संसारसागरे से कम्मजलमसंवुडस्स आसवदि ।
आसवणीणावाए जह सलिलं उदधिमज्झम्मि ॥१८२९॥

अर्थ—जैसे समुद्रके मध्य छिद्रसहित फूटी नावमें जल प्रवेश करे है; तैसे संसारसमुद्रमें संवररहित पुरुषके कर्मरूप जल प्रवेश करे है । गाथा—

धूली णेहुत्तुप्पिदगत्ते लग्गा मलो जधा होदि ।
मिच्छत्तादिसिणेहोल्लिदस्स कम्मं तधा होदि ॥१८३०॥

अर्थ—जैसे सचिक्कणतासहित जो शरीर तिसविषै लगी जो धूलि, सो मैल होइ है; तैसे मिथ्यात्व–असंयम–कषायरूप चिकणाई सहित आत्माके कर्म होनेके योग्य जे पुद्गल द्रव्य ते कर्म होय हैं । भावार्थ—समस्त लोक पुद्गलद्रव्य करि भरचा है । तिन पुद्गलनिमें निरन्तर परिणमन होनेतें कर्मरूप होने जोग्यहू अनन्तानन्त पुद्गलवर्गणा समस्तलोकमे भरी है, जहां आत्माके प्रदेश तहांहू भरी है । जिस कालमें ससारी आत्मा मिथ्यात्व अविरत कषाय जोगरूप अपना परिणाम करे है, तिस कालमें कर्मके जोग्य पुद्गलस्कन्ध कर्मरूप होइ आत्मामें एकक्षेत्रावगाहरूप होनेकूं प्रवेश करे है, सो आस्रव है । अब कर्म होनेके योग्य पुद्गलद्रव्य समस्त लोकमें भरे हैं, ऐसा दिखावे हैं । गाथा—

ओगाढगाढणिचिदो पुग्गलदव्वेहिं सव्वदो लोगो ।
सुहमेहिं बादरेहिं य दिस्सादिस्सेहिं य तहेव ॥१८३१॥

अर्थ—यो तीनसै तीयालीस घनरज्जुप्रमाण समस्त लोक, सो दृश्य अर अदृश्य ऐसे सूक्ष्मबादर पुद्गलद्रव्यनिकरि नीचे ऊपरि मध्यमें अत्यन्त गाढागाढा भरचा है । पुद्गलद्रव्यविना एक प्रदेशहू लोकाकाशका नहीं है । तिनमें कर्म होने के योग्यहू अनन्तानन्त पुद्गलपरमाणु भरचा है । सो जैसे जलमें पड्या तप्तलोहका गोला सर्वतरफतें जलकूं खचे है, तैसे मिथ्यात्वकषायादिककरि तप्तायमान ससारी आत्मा सर्वतरफतें कर्मके योग्य पुद्गलनिकूं ग्रहण करे हैं । ऐसे समय समय समयप्रबद्ध ग्रहण करे है । पाछें जैसे एकवार ग्रहण किया आहार रुधिर, मांस, वीर्य, मल, मूत्र, अस्थि, चाम, केशादिक नानास्वरूप परिणमे हैं, तैसे एकवार ग्रहण किया कार्माण समयप्रबद्ध ज्ञानावरणादिक अष्टप्रकाररूप परिणमे है । अब मिथ्यात्वादिकनिकूं कहे है । गाथा—

मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोगा य आसवा होंति ।

अरहन्तवुत्तअत्थेसु विमोहो होइ मिच्छत्तं ॥१८३२॥

अर्थ—मिथ्यात्व, अविरत, कषाय अर योग ये आस्रव होइ हैं । कर्मवर्गणाके आवनेके द्वाररूप मिथ्यात्व ५. अविरत १२, कषाय २५, योग १५, ये सत्तावन आस्रव हैं—कर्म आवने के द्वार हैं । तिनमें जो अरहन्त भगवानका कह्या जे सप्ततत्त्वादिक अर्थनिमें विमोह जो अश्रद्धान, सो मिथ्यात्व होय है । अब असंयमकूं कहे हैं । गाथा—

अविरमणं हिंसादी पंच वि दोसा हवन्ति णायव्वा ।

कोधादीया चत्तारि कसाया रागदोसमया ॥१८३३॥

अर्थ—हिंसा, असत्य, चोरी, कुशीलसेवन, परिग्रहमें ममता ये पंच दोष, ते अविरमण हैं । इनकूं ही असंयम कहिये हैं । छकायके जीवनिकी दया नहीं, अर पंच इन्द्रिय अर छठ्ठा मनका वशीभूतपणा नहीं, ये बारह अविरति हैं । पंचपापका त्यागीके बारह अविरतका अभाव है । अर क्रोध, मान, माया, लोभ ये च्यारि कषाय हैं, सो रागद्वेषमय हैं । अब रागद्वेषका माहात्म्य दिखावे हैं । गाथा--

किहदा राओ रंजेदि णरं कुणिमे वि जाणुगं देहे ।

किहदा दोसो वेसं खणेण णीयपि कुणइ णरं ॥१८३४॥

अर्थ---अशुचि अर अनुरागके अयोग्यभी देहके विषं ज्ञातामनुष्यकूं यो रागभाव कैसे रंजायमान करे है ? अशुचि असारदेहमें अज्ञानी रंजायमान होत है । ज्ञानी होइ, मलिन विनाशीक कृतघ्नी देहमें रंजायमान होय, सो बडा आश्चर्य है ! तातें जगतके भुलावनेमें रागभाव बडा प्रबल है । बहुरि दोषकी प्रबलता ऐसी है, जो अपना निजबांधव ताहिहू क्षणमात्रमें द्वेष करनेयोग्य करे है । तातें रागद्वेषही जगतकूं विपरीतमार्गमे प्रवर्तन करावे है । गाथा—

सम्मादिट्ठो वि णरो जेसिं दोसेण कुणइ पावाणि ।

धित्तेसि गारविंदियसण्णामयरागदोसाणं ॥१८३५॥

अर्थ—जिनके दोषकरिके सम्यग्दृष्टिहू पापनिमे प्रवृत्ति करे ऐसे गारव, इन्द्रिय, संज्ञा, मद, राग, द्वेषनिकूं धिक्कार होहू । ऋद्धिगारव, रसगारव, सातगारव ये तीनप्रकार गारव हैं । मेरोसी ऋद्धिसंपदा कौनके है ? मैंऋद्धिसंपदाकरि अधिक हूं, ऐसे ऋद्धिकरि आपकूं बडा मानना, सो ऋद्धिगारव है ।।१।। बहुरि छ रससहित भोजन मिलनेका अभिमान, जो मैं रंकपुरुषकीनांई नहीं, मेरा ऐसा पुण्य है, जो, अनेक प्रकारके रसयुक्त भोजन हाजरि धरे हैं ! कौन ग्रहण करे ! कौन अवलोकन करे ! ऐसा रसगारव है ।।२।। बहुरि साताका उदय होते अभिमान करे—जो, मेरे पुण्य उदय है, मेरे हानि, वियोग, रोग दुःख नहीं होइ, कोई पापीके होयगा । मैं कहा पापी हूं ! मेरे दुःख कदाचित् नहीं होइ, ये मोकूं भरोसा है । ऐसे साताकर्मके उदयतें सुख रहे, ताका अभिमान, सो सातगारव है ।।३।। अर अपने अपने विषयनिमें लंपटता चाहना, सो पंच इन्द्रिय हैं ।।५।। अर भोजनकी अभिलाषा सो आहारसंज्ञा है ।।१।। भयकी इच्छा जो "छिपि रहना, कहां जाऊं ! कौन मेरी रक्षा करे ! कहा होसी !" ऐसा कायरपणा, सो भयसंज्ञा है ।।२।। अर कामकी आतुरताकरिके मैथुनमें अभिलाष सो मैथुनसंज्ञा है ।।३।। परिग्रहमें अभिलाष, सो परिग्रहसंज्ञा है ।।४।। सोही गोमटसारग्रंथमें संज्ञानिका लक्षण अर संज्ञाकी उत्पत्तिका बहिरंगकारणनिकूं कहे हैं । गाथा—

इह जाहि बाहिया वि य जीवा पावन्ति दारुणं दुक्खं ।
सेवन्ता वि य उभये ताओ चत्तारि सण्णाओ ।।१३४।। (गो.जी.)

अर्थ—जे आहार भय मैथुन परिग्रहरूप वांछाकरिके जीव इसभवमें इनके विषयनिकूं सेवन करे तो, तथा नहीं सेवन करे तो विषयनिकी प्राप्ति होते वा नहीं होते घोरदुःखनिकूं प्राप्त होइ, ते च्यारि संज्ञा हैं । इनहीकरिके संसारी जीव नानाप्रकारके दुःखनिकूं भोगवे हैं । तिनमें च्यारिप्रकारका सुन्दर आहारकूं देखना, तथा पूर्व भोग्या जो आहार तिसकूं यादि करना, तथा आहारकी कथाके श्रवण करनेमें उपयोग लगावना, तथा उदरका रीतापणा होना इत्यादिक बाह्यकारणनिकरि तथा असातावेदनीयकर्मकी उदीरणा वा तीव्र उदयकरिके जो आहारमें वांछा उपजे सो आहारसंज्ञा है ।।१।। बहुरि अतिभयंकर व्याघ्रादिक दुष्टजीवका देखना, दुष्ट तिर्यंच मनुष्य व्यंतरादिकनिकी कथाका श्रवण करना—स्मरणमें उपयोग लगावना, तथा शक्तिरहितपणा इत्यादिक बहिरंगकारण अर भयनोकषायका तीव्र उदयरूप अन्तरंगकारणनिकरि भयसंज्ञा उत्पन्न होइ है ।।२।। बहुरि पुष्टरसका भोजन करना, अर काम कथाका श्रवण अर अनुभव करना,

अर कामचेष्टामें उपयोग रखना, अर कुशील विटादिक कामीपुरुषनिका सेवन, गोष्ठी, प्रीति इत्यादिक बहिरंगकारणनि करि, तथा स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद इनि तीन वेदनिमैंतें कोऊएक वेदकी उदीरणारूप अन्तरंगकारणकरि मैथुनमें वांछा रूप मैथुनसंज्ञा होइ है ।।३।। बहुरि बाह्य नानाप्रकारके धनधान्य वस्त्र रत्नादिक वस्तुके देखनेकरि, तथा परिग्रहकी कथा का श्रवणादिककरि परिग्रहमे आसक्ततारूप बहिरंगकारण अर लोभकषायकी उदीरणारूप अन्तरंगकारणकरि परिग्रहमे वांछा, सो परिग्रहसंज्ञा है ।।४।। सो छट्ठा गुणस्थानपर्यंन्त च्यारि संज्ञा है । अप्रमत्तादिकमें आहारसंज्ञाका अभाव है । ऐसे ये च्यारि संज्ञा अर अष्ट मद ये महान् अनर्थके मूल इनकूं धिक्कार होहू ! अर रागद्वेषनिकूं धिक्कार होहू ! इनि दोषनि करि सम्यग्दृष्टि पुरुषहू पापनिकूं करे है । गाथा—

जो अभिलासो विसएसु तेण ण य पावए सुहं पुरिसो ।

पावदि य कम्मबन्धं पुरिसो विसयाभिलासेण ।।१८३६।।

अर्थ—जो पुरुषके पंच इन्द्रियनिके विषयनिमें अभिलाष है, ताकरि, पुरुष सुखकूं नहीं प्राप्त होय है । विषयनिके अभिलाषकरि पुरुष कर्मबन्धकूं प्राप्त होय है । गाथा—

कोई डहिज्ज जह चंदणं णरो दारुगं च बहुमोल्लं ।

णासेइ मणुस्सभवं पुरिसो तह विसयलोहेण ।।१८३७।।

अर्थ—जैसे कोऊ मनुष्य बहुमूल्य चन्दनकूं काष्ठके निमित्त दग्ध करे, तैसे पुरुष विषयांका लोभकरिके निर्वाणका कारण जो मनुष्यभव, ताका नाश करे है । गाथा—

धुट्टिय रयणाणि जहा रयणद्दीवा हरेज्ज कट्ठाणि ।

माणुसभवे वि धुट्टिय धम्मं भोगे भिलसदि तहा ।।१८३८।।

अर्थ—जैसे कोऊ पुरुष रत्नद्वीपमें प्राप्त होइकरिहू रत्ननिकूं छांडिकरिके रत्नद्वीपतैं काष्ठ ग्रहण करे, तैसे मनुष्य भवविषै धर्मकूं त्यागिकरिके भोगनिकूं अभिलाष करे है । भावार्थ—जैसे रत्नद्वीपमे प्राप्त होइकरिकेंहू कोऊ रत्न त्यागि काष्ठका भार बांधे है, तैसे मनुष्यभवविषै धर्मकूं त्यागि भोगनिका अभिलाष करे है । गाथा—

गंतूण णंदणवणं अमयं छंडिय विसं जहा पियइ ।
माणुसभवे वि छड्डिय धम्मं भोगे भिलसदि तहा ॥१८४०॥

अर्थ—जैसे कोऊ पुण्यहीन पुरुष नन्दनवनमे जायकरिके अर अमृतकूं त्यागिकरिके विषकूं पीवे है, तैसे मूढजन मनुष्यभवमें धर्मकूं छोडि भोगनिमें वांछा करे है । गाथा—

पावपओगा मणवचिकाया कम्मासवं पकुव्वन्ति ।
भुञ्जन्तो दुब्भत्तं वणम्मि जह आसवं कुणइ ॥१८४१॥

अर्थ--पापमें युक्त जे मनवचनकायके जोग, ते कर्मनिका आस्रव करे हैं । जैसे खोटे आहारकूं भोजन करता पुरुष आपके वणमें राधिरुधिरका आस्रव करे है । गाथा—

अणुकंपासुद्धवओगो वि य पुण्णस्स आसवदुवारं ।
तं विवरीदं आसवदारं पावस्स कम्मस्स ॥१८४२॥

अर्थ--अनुकम्पा जो जीवदया अर शुभोपयोग ये पुण्यके आवनेके द्वार हैं । अर जीवनिमें निर्दयता अर अशुभोपयोग ये पापकर्मके आस्रवके द्वार हैं । जिसके दर्शनचारित्र-मोहनीयका विशिष्ट क्षयोपशमतें उपजा जो शुभराग, तातें परम भट्टारक महादेवाधिदेव परमेश्वर अर्हंत–सिद्ध–आचार्य–उपाध्याय–साधुनिके गुणनिका श्रद्धानमें तथा सर्वज्ञकी आज्ञामें प्रवर्त्या उपयोग तथा समस्तजीवनिकी दयामें प्रवर्त्या उपयोग, सो शुभोपयोग है । सो पुण्यास्रवका कारण है । तथा दर्शन चारित्र-मोहनीयका विशिष्ट उदयतें उपज्या जो अशुभराग, ताकरि परमभट्टारक देवाधिदेव परमेश्वर अर्हंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधुनिते अन्य उन्मार्गीनिका गुणानिमें, उपदेशमें प्रवर्त्या जो उपयोग, सो अशुभोपयोग है । तथा विषयनिके सेवनेमें, कषायरूप होनेमें, दुष्टशास्त्र जे हिंसाके प्ररूपक शास्त्रनिके श्रवणमें, दुष्टनिकी संगतिमें, दुष्टनिके आश्रय, दुष्टनिके सेवनमें, उत्कट आचरण करनेमें प्रवृत्तिकूं प्राप्त हुवा जो उपयोग, सो अशुभोपयोग है;–पापके आस्रवका कारण है ।

इहां विशेष ऐसा जानना—शुभयोग पुण्यास्रवका कारण है, अशुभ मनोवचनकायके योग पापास्रवका कारण है । प्राणीनिकी हिंसा, परका विना दिया धनका ग्रहण करना, मैथुनसेवनादिक ये अशुभ काययोग हैं । बहुरि असत्यभाषण,

कठोरवचन, धर्मविरुद्धवचन ये अशुभ वचनयोग हैं। बहुरि परजीवनिका घातका चितवन करना, ईर्षाभाव, अदेखसका भाव ये अशुभ मनोयोग हैं। ते पापास्रव करै हैं। अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्यादिक शुभकाययोग हैं। सत्य, हित, मित, वचन बोलना, सो शुभ वचनयोग है। अरहन्तादिकनिकी भक्ति, तपश्चरणमें रुचि, श्रुतका विनयादिक, सो शुभ मनोयोग है। ये शुभयोग पुण्यास्रव करे हैं।

अब ज्ञानावरणादिक अष्टकर्मके आस्रवके कारणनिकूं कहे हैं—मोक्षका मूलसाधन जो मत्यादिकज्ञान, ताकी कोऊ प्रशंसा करे सो अन्तरङ्गमें बुरी लागे, सुहावे नहीं, सो प्रदोष है, अथवा तत्त्वके ज्ञानकी कथनीमें हर्षका अभाव सो प्रदोष है। बहुरि कोऊ कारणकरि कोऊ सम्यग्ज्ञानकी कथनी पूछे, ताकूं कहै मैं——नहीं जाणूं वा ऐसे नहीं है, ऐसे सम्यग्ज्ञानकूं छिपावना, सो निह्नव है। अथवा अपना गुरु अप्रसिद्ध तिसकूं छिपाय प्रसिद्ध गुरुका नाम प्रकट करना, सो निह्नव है। बहुरि आपकरि अभ्यास किया सम्यग्ज्ञान देनेके जोग्यहू योग्यशिष्यकै अर्थि नहीं देना, सो मात्सर्य है। बहुरि केई धर्मानुरागी ज्ञानका अभ्यास करते होइ, तिनके व्यवच्छेद करना, स्थान बिगाडि देना, पुस्तकका संयोग बिगाडि देना, पढावने वालेका सम्बन्ध बिगाडि देना, सो अन्तराय है। बहुरि परकरि प्रकाश्या ज्ञानकूं कायकरि वचनकरि वर्जन करना, सो आसादना है। बहुरि अपनी बुद्धिकी दुष्टताकरिके प्रशंसायोग्य ज्ञानकूं दूषण लगावना, सो उपघात है। ये समस्त प्रदोष-निह्नव-मात्सर्य-अन्तराय-आसादना-उपघातरूप परिणाम ज्ञानावरण अर दर्शनावरण कर्मके आस्रवका कारण हैं।

बहुरि आचार्य जो संघका स्वामी अर उपाध्याय जो ज्ञानाभ्यास करावनेके अधिकारी तिनतें प्रतिकूल रहना, अपूठा रहना, तथा अकालमें अध्ययन करना, तथा जिनेन्द्रके वचननिमें श्रद्धान नहीं करना, शास्त्राभ्यास में आलसी रहना, अनादरतें शास्त्रार्थका श्रवण करना, धर्मतीर्थका रोकना, अर आपके बहुश्रुतीपणाका गर्व करना, मिथ्यात्वका उपदेश देना, बहुश्रुतीनिका अपमान करना, अपना पक्षका ग्रहणमें पंडितपणा, अपनी पक्षका परित्याग करना, बिनासम्बन्ध प्रलाप करना, सूत्रविरुद्ध वाद करना, शास्त्रनिका वेचना, प्राणिहिंसादिक ये समस्त ज्ञानावरण कर्मके आस्रवके कारण हैं। बहुरि परके देखनेमें मत्सरता अर देखनेमें अन्तराय करना, परके नेत्र उपाडना, परकी इन्द्रियनितें वैर करना, नेत्रनिका बडा करना—फाडना, बहुत दीर्घकाल सोवना, दिनमें निद्रा लेना, आलस्य करना, नास्तिकताका ग्रहण करना, सम्यग् दृष्टिनिकूं दूषण लगावना, कुतीर्थ जो खोटे तीर्थकी प्रशंसा करना, प्राणनिका घात करना, यतिजननिकी ग्लानि करना ये समस्त दर्शनावरणकर्मके आस्रवके कारण हैं।

अब वेदनीयकर्मके आस्रवके कारण कहे हैं—अनिष्टवस्तु जो अपना विरोधी द्रव्यका समागम अर वांछितका वियोग अर अनिष्ट कठोरवचनका श्रवणादिक बाह्यकारणकी अपेक्षातें अर असातावेदनीयका उदयतें उपज्या जो पीडारूप परिणाम, सो दुःख है । अर अपने उपकारक बांधवमित्रादिकनिका सम्बन्धका अभाव होतां, ताकूं बारंबार चितवन करते पुरुषके अभ्यन्तर मोहनीयकर्मका भेद जो शोक, ताके उदयतें चिताखेदलक्षण मलिनपरिणाम होय, सो शोक है । बहुरि कठोरवचनके श्रवणतें तथा अपवाद तिरस्कारादिक के होनेतें अन्तःकरणमें मलिन होइकरिके जो तीव्र पश्चात्ताप करे, सो ताप है । बहुरि परिताप होनेतें अश्रुपात नाखता, प्रचुर विलाप करिके अर अंगमें विकारादिक करता प्रकट शब्द करि रुदन करे, सो आक्रन्दन है । अर आयु, इन्द्रिय, बल, श्वासोश्वासरूप प्राणनिका वियोग करना, सो बध है । बहुरि संक्लेशपरिणामकरि ऐसा रुदन विलाप करे—जाके श्रवणतें अन्यजीवनिका परिणाम कांपने लगिजाय, दया उपजि आवें—सो परिदेवन है । ये दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, बध, परिदेवनरूप परिणाम क्रोधादिककरि आपके करे; अर आप समर्थ होइ कषायका वशतें अन्यजीवनिके करे; अर आपके अर अन्यके दोऊनिके करे, तातें असातावेदनीयकर्मका आस्रव होइ है ।

दुःखशब्दकरि औरहू असातावेदनीयका कारण कहे हैं । अशुभप्रयोग करना, परका अपवाद निंदा करना, पूठि पाछे परके दोष कहना, दयाका अभाव करना, परजीवनिके ताप उपजावना, अंग उपांग छेदन करना, भेदन करना, लाठी मूंकीतें ताडना करना, त्रास उपजावना, तर्जना करना, छेदन करना, छोलना, काटना, बांधना, रोकना, मर्दन करना, दमन करना, बहुत दूर चलावना, फेंकना, परकी निन्दा करना, अपनी प्रशंसा करना, संक्लेश प्रकट करना, निर्दयपणाकरि प्राणीनिका नाश करना, महान् आरम्भ करना, महान् परिग्रह बधावना, विश्वासघात करना, वक्रस्वभाव राखना, पापकर्मनितें जीविका करना, अनर्थदंड ग्रहण करना, विष मिलावना, जीवनिके मारनेकूं पकडनेकूं जाल पासी वा गुरा पींजरा यंत्र इत्यादिक उपाय रचना, खोटे शास्त्र देना, पापके भाव करना ये समस्त आपके तथा आप अर पर दोऊनिके किया हुवा असातावेदनीयकर्मके आस्रवके कारण हैं ।

अब सातावेदनीयके आस्रवके कारणनिकूं कहे हैं । भूत जे समस्त प्राणी अर व्रती जे हिंसादिकपापनिके त्यागी, तिनविषें अनुकम्पा करना । अनुग्रहबुद्धिकरि भीज्या हुवा, परके पीडाकूं देखि आपमें पीडा तिष्ठतीकीनांई जानि, कंपाय-

मान होना, सो अनुकम्पा है । जाके दया है, ताके सामान्य समस्त प्राणीनिमें दुःख देखि कांपना है । अर महाव्रती अणुव्रतीमें दुःख आया देखि दुःख मेटनेकी इच्छारूप हुवा, आपमें आया दुःखकीनांई विशेष कम्पायमान होना, सो भूतव्रतिनिमें अनुकम्पा है । परके उपकारके अर्थि अपना आहार वस्त्रादिक देना, सो दान है । संसारका अभावके अर्थि वीतरागतामें उद्यमी है, तोहू पूर्वोपार्जित कर्मके उदयतें रागसहित होना, सो सरागता है, सरागके जो छकायका जीवनि की हिंसाका त्याग अर इन्द्रियनिके विषयनिमें अनुरागका त्याग, सो सरागसंयम है । और संयमासंयम तथा पराधीनपणातें बन्दिगृहादिकनिमे भोगोपभोगका रुकना, सो अकामनिर्जरा है । अज्ञानी मिथ्यादृष्टीनिका तप, सो बालतप है । निर्दोष क्रियाका आचरण, सो योग है, ताकू ध्यान कहिये है । शुभपरिणामनिकी भावनापूर्वक क्रोधादिकषायका अभाव, सो क्षमा है । लोभका त्याग, सो शौच है । ऐसे इन भूतव्रतोनिमें अनुकम्पा अर दानका देना सरागसंयम, तथा संयमासंयम, अकामनिर्जरा, बालतप, योग तथा क्षमा, शौच इनिरूप परिणाम सातावेदनीयका आस्रवका कारण है । तथा अरहन्त भगवानकी पूजाके करनेमें तत्परता, बाल वृद्ध तपस्वीनिके वैयावृत्यमें उद्यम, सरलपरिणाम, विनयादिक समस्त सातावेदनीयकर्मके आस्रवका कारण है ।

अब दर्शनमोहनीयकर्मके आस्रवके कारणपरिणामनिकू कहे हैं । जाके ज्ञानावरणकर्मके अत्यन्त क्षयतें उपज्या केवलज्ञान, सो केवली है । अर रागद्वेषमोहरहित अर बुद्धिके अतिशय ऋद्धिकरि युक्त जे गणधरदेव, तिनकरि प्रकाश्या, सो श्रुत है । अर रत्नत्रयके धारक मुनीश्वरनिका समूह, सो संघ है । अहिंसादिलक्षण धर्म है । भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी कल्पवासी ये च्यारि प्रकारके देव हैं । केवली, और श्रुत, और संघ, अर धर्म, अर देव इनिका अवर्णवाद करना, सो दर्शनमोहके आस्रवका कारण है ।

जो गुणवन्त महान पुरुषनिका अणहोता असत्य दोष अपनी बुद्धिकी मलिनतातें प्रकट करना, सो अवर्णवाद है । तिनमें केवलीके अन्नके पिण्डका आहार करना कहै, तथा केवली कंबल—ऊनके वस्त्र पहरे रहे हैं, केवली निहार करे हैं, केवलीके तुम्बीपात्र है, केवलीके दर्शनपूर्वक ज्ञान होय है, इत्यादिक अपनी बुद्धिकी मलिनतातें समस्तदोषरहित केवलीके झूंठा दोष कहना, सो केवलीका अवर्णवाद है ।

बहुरि ऐसे कहे—श्रुत जो शास्त्र, तामै मांसभक्षण, मच्छीमच्छका भक्षण, तथा मधु जो सहत ताका भक्षण, तथा

मदिरापान करना, तथा कामपीडित साधुके मैथुनसेवन करना, रात्रिभोजन करना इत्यादि निर्दोष है, श्रुतमें निर्दोष कह्या है ऐसे कहना, सो श्रुतका अवर्णवाद है ।

बहुरि ये जैनके दिगम्बर मुनि शूद्र है, स्नानरहित हैं, मलकरि लिप्त हैं, अशुचि हैं, निर्लज्ज हैं, इहांही प्रत्यक्ष दुःख भोगे हैं, परलोकमें कैसे सुखी होयगे ? ऐसे कहना, सो संघका अवर्णवाद है ।

बहुरि जिनेन्द्रका उपदेश्या दशलक्षण धर्म निर्गुण है, इसके सेवनेवाले असुर होयगे—ऐसे कहना, सो धर्मका अवर्णवाद है । बहुरि देव मांसभक्षण करे हैं, मदिरा पीवे हैं इत्यादिक कहना, सो देवका अवर्णवाद है । ऐसे केवलीका अवर्णवाद, श्रुतका अवर्णवाद, सघका अवर्णवाद, धर्मका अवर्णवाद, देवका अवर्णवाद, सो दर्शनमोहनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं ।

अब चारित्रमहनीयकर्मके आस्रवके कारण परिणामनिकूं कहे है । जगतके उपकार करनेमें समर्थ जो शीलव्रत, तिनकी निन्दा करना, आत्मज्ञानी तपस्वीनिकी निन्दा करना, धर्मका विध्वंस करना, धर्मके साधनमे अन्तराय करना, तथा शीलवानकूं शीलतें चिगावना, देशव्रतीकूं तथा महाव्रतीकूं व्रतनितें चलायमान करना, मद्यमांसमधुका त्यागीनिके चित्तमें भ्रम उपजावना—जातें त्यागमें शिथिल होजाय, चारित्रमें दूषण लगावना, क्लेशरूप लिंग—भेष धारना, क्लेशरूप व्रत धारना, आपके अर परके कषाय उपजावना इत्यादिक कषायवेदनीयके आस्रवके कारण हैं ।

बहुरि नानाप्रकार पर कोई क्रीडा करे तिसकी क्रीडामे तत्परता, अन्यके क्रीडाकी सामग्रीमें उद्यम करना, उचित क्रियाका वर्जन नहीं करना, नानाप्रकारकी पीडाका अभाव करना, देशादिकमे उत्सुकपणाका अभाव, सो रतिवेदनीय-कर्मका आस्रवका कारण है । अन्यजीवनिके अरति प्रकट करना, परकी रतिका विनाश करना, पापरूप जिनका स्वभाव तिनकी संगति करना, अकल्याणरूप खोटी क्रियामें उत्साह करना ये अरतिवेदनीयकर्मका आस्रव करे है ।

अपने शोक होय तामें विषादी होय चिंतवन करना, परके दुःख प्रकट करना, अन्यकूं शोकमे लीन देखि आनन्द धारना, सो शोकवेदनीयकर्मके आस्रवका कारण है ! बहुरि अपना भयरूप परिणाम करना, परकं भय उपजावना, निर्दय पणाकरि परकूं त्रास देना इत्यादिक भयवेदनीयका आस्रवका कारण है । बहुरि सत्यधर्मकूं प्राप्त भये च्यारि वर्णके धारक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तिनका कुलकी क्रिया आचारकी ग्लानि करना, परका अपवाद करना, सो जुगुप्सा-

वेदनीयके आस्रवके कारण है। बहुरि अतिक्रोधके परिणाम, अतिमानीपणा, ईर्षाका व्यवहार, असत्यवचन, अतिमायाचार में तत्परपणा, अतिरागभावका करना, परस्त्री सेवन करना, परस्त्रीका रागभावतें आदर करना, स्त्रीकेसे भाव आलिंगनादिक करना, इनि भावानतें स्त्रीवेदका आस्रव होय है।

अल्प क्रोध, कुटिलताका अभाव, विषयनिमें उत्सुकताका अभाव, निर्लोभता, स्त्रीके सम्बन्धमें अल्प राग, अपनी स्त्रीमें संतोष, ईर्षाका अभाव, गन्ध, पुष्प, माल्य आभरणमें अनादर इत्यादिक पुरुषवेदके आस्रवका कारण है। बहुरि क्रोध, मान, माया, लोभ च्यारयूं कषायनिका प्रचुरपरिणामका होना, तथा गुह्य इन्द्रियका छेदना, स्त्रीपुरुषनिके कामके अंग छांडि अनंगमें व्यसनीपणा, शीलवन्तनिकूं उपसर्ग करना, व्रतीनिकूं दुःख देना, गुणनिके धारकनिका मथन करना, दीक्षाकूं ग्रहण करनेवालेनिकूं दुःख देना, परस्त्रीका संगमवाञ्छते तीव्र राग करना, आचाररहित निराचारी होना, सो नपुंसकवेदके बन्धका कारण है।

अब च्यारिप्रकारकी आयुके मध्य नरक आयुके बन्धका कारण कहे हैं। हिंसाका कारण बहुत आरम्भ अर बहुत परिग्रहका संचय करना, सो नरक आयुका आस्रवका कारण है। विशेष कहे हैं—मिथ्यादर्शनकरि मिथ्या आचरण, उत्कृष्ट अभिमानीपणा, शिलाभेदसदृश क्रोध, तीव्रलोभमें अनुराग, निर्दयपणा, परजीवनिके संताप उपजावनेका परिणाम रखना, परके घातका परिणाम रखना, परके बन्धनका अभिप्राय, समस्तजीवनिका घात करनेका परिणाम, जिसत प्राणीनिका घात होइ ऐसा असत्यवचनका स्वभाव रखना, परद्रव्यके हरनेके परिणाम, मैथुनका उपसेवन, पापका कारण अभक्ष्य आहार, वैरको स्थिरता, यतीनको निन्दा, तीर्थंकरांकी अवज्ञा, कृष्णलेश्या के परिणाम, रौद्रध्यानकरि मरण इत्यादिक नरक आयुका आस्रवका कारण है।

बहुरि मायाचारका परिणाम तिर्यंचयोनिका कारण है। मिथ्याधर्मका उपदेश, बहु आरम्भ, बहुपरिग्रह, कपट, कूटकर्म करना, पृथ्वीका भेदसमान क्रोध, शीलरहितपणा, शब्द चिह्न वचननिकरि तीव्र मायाचारमें प्रीति, परके परिणामनिमें भेद करना, अनर्थ प्रकट करना, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श इनिका विपरीत करना, जाति कुल शीलमें दूषण लगावना, विसंवादका अभिप्राय रखना, परके उत्तमगुणनिकूं छिपावना, विना होते अवगुण प्रकट करना, नील कपोत लेश्या के परिणाम, आर्तध्यानतें मरण करना, इत्यादि तिर्यंच आयुके आस्रवके कारण हैं।

बहुरि अल्प आरम्भ, अल्पपरिग्रहपणा मनुष्य आयुके आस्रवका कारण है। बहुरि मिथ्यादर्शनसहित बुद्धि, विनयवान् स्वभावपणा, सरलप्रकृति, मार्दव, आर्जव, सांचे आचरणमें सुख मानना, अपना सुख जनावना, वालू रेतमें लीकसमान क्रोध, सरलव्यवहारमें प्रवृत्ति, सतोषमें रति, प्राणीनिका घातमें विरक्तता, खोटे कर्मनितें निवृत्ति होना, आपके निकट आया तिसमें मिष्ट संभाषण, प्रकृतिहीतें मधुरता, लौकिकव्यवहारतें उदासीनता, ईर्षारहितपणा, अल्पसंक्लेशपणा, देवता गुरु अतिथिकी पूजादानका अपने द्रव्यमैंतें विभाग करना, कपोतलेश्याके परिणाम, मरणकालमें धर्मध्यानीपणा, अर स्वभावहीतें विनासिखाया कोमलपणा ये मनुष्य आयुके आस्रवके कारण हैं।

बहुरि सरागसंयम, अकामनिर्जरा, अज्ञानतप ये देव आयुके आस्रवका कारण हैं। तथा कल्याण करनेवाला मित्र का सम्बन्ध, धर्मके स्थान आयतनकी सेवा, सत्यार्थधर्मका श्रवण, धर्मका महिमा जैसे होइ तैसे करना, सम्यक्त्व धारना, प्रोषधोपवास करना, इनतें देव आयुका आस्रव होय है। तत्त्वज्ञानरहित मिथ्यादृष्टिका तप करना है, सो बालतप है। ते बालतपके धारक भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवनिमें तथा बारमां स्वर्गपर्यन्त स्वर्गनिमें वा मनुष्यतिर्यंचनिमें उपजे है। बहुरि पराधीन हुवा क्षुधा तृषाका निरोध भोगना, बन्दिगृहादिकनिमें ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, मलधारण करना, दुर्वचनादिक का आताप सहना, दीर्घकाल रोगधारण ये अकामनिर्जराके धारक व्यन्तर मनुष्य तिर्यंचनिमें उत्पन्न होय है। बहुरि संक्लेशरहित होइ वृक्षतें पडनेवाले, पर्वततें गिरनेवाले, भोजनके त्यागमें, जलप्रवेश करनेमे, अग्निप्रवेश करनेमें, विषभक्षण में, धर्मके माननेवाले व्यन्तर तथा मनुष्यतिर्यंचनिमे उपजे हैं। बहुरि शीलवान्, व्रतवान्, दयावान्, जलरेखासमान क्रोधके धारक, अर भोगभूमिमें उपजनेवाले, व्यन्तरादिकदेवनिमे जन्म धारण करे हैं। बहुरि सम्यग्दृष्टि भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देवनिमें नहीं उपजे हैं—कल्पवासी देवनिहीमे उत्पन्न होय हैं।

अब अशुभनामके कारणनिकूं कहे हैं। मन, वचन, कायकी कुटिलता राखना, अर विसंवाद करना, तातें अशुभ-नामकर्मका बन्ध होय है। अशुभयोगनिका विशेष ऐसे जानना—मिथ्यादर्शन धरना, परकी पूठि पाछै खोटी कहना, चित्त का अस्थिरपणा, ताखडी, बाट, कूडा, राखना, सुवर्ण, मणि रत्नादिक खोटेकूं आछेमें मिलावना, कूडी खोटी साक्षी भरना, अंग उपांग काटना, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श इनकी विपरीतता करना, अनेक जीवनिकूं दुःख देनेवाले जंत्र पींजरे बनावना, कपटकी प्रचुरता, परकी निन्दा, अपनी प्रशंसा करना, झूंठ वचन बोलना, परका द्रव्य ग्रहण करना, महा

आरम्भका महान् परिग्रहका मद करना, उज्ज्वल आभरण वस्त्र, उज्ज्वलवेषका मद करना, रूपका मद करना, कठोर निद्य वचन असत्यप्रलाप, क्रोधके वचन धीठताके वचन कहना, सौभाग्यमें उपयोग करना, वशीकरणके प्रयोग करना, परजीवनिके कौतूहल उपजावना, आभरण पैरनेमें आदरतें अनुराग करना, जिनमन्दिर के चन्दनादिक गन्ध अर पुष्पमाल्यादिक धूपदीपादिकनिका चोरना, हास्य करना, ईंटनिके पकावनेके प्रयोग दावाग्निके प्रयोग करना, देवकी प्रतिमाका विनाश करना, तथा प्रतिमाका स्थान जो मन्दिर ताका नाश करना, मनुष्यादिकनिके बैठने रहनेके मकानकूं मलमूत्रादिककरि बिगाडना, बागबगीचे वनका विनाश करना, क्रोध, मान, माया, लोभका तीव्रपणा, पापकर्मनितें जीविका करना, इत्यादिकनितें अशुभनाम कर्मके आस्रव होय है ।

बहुरि मन, वचन कायकी सरलता अर पूर्वं कहे तीसूं उलटे परिणाम ते समस्त शुभनाम कर्मके आस्रवके कारण हैं । तथा धर्मात्माकूं देखि हर्षकूं प्राप्त होना, सम्यग्भाव रखना, संसारभ्रमणतें भयभीत रहना, प्रमाद वर्जना इत्यादिक शुभनाम कर्मके आस्रवके कारण हैं ।

अब अनन्त अर उपमारहित है प्रभाव जाका अर अचिंत्यविभूतिविशेषका कारण त्रैलोक्यमें विजय करनेवाला ऐसा तीर्थंकरनामा नामकर्मके आस्रवके कारण षोडशकारण भावना हैं, तिनका संक्षेप ऐसा है—जिनेन्द्रका उपदेश्या निर्ग्रन्थलक्षण मोक्षका मार्गमें जो रुचि अर निःशंकितत्वादि अष्ट अंगनिकी उज्ज्वलतारूप दर्शनविशुद्धि है ।।१।। ज्ञानदर्शनचारित्रविषें अर दर्शनज्ञानचारित्रके धारकनिमें आदर करना—सत्कार करना तथा कषायका अभाव करना, सो विनय सम्पन्नता है ।।२।। अहिंसादिक व्रतनिमें तथा व्रतके पालनेके अर्थि क्रोध, मान, माया, लोभका त्यागस्वभाव शीलनिविषें मनवचनकायकरि निर्दोषप्रवृत्ति करना, सो शीलव्रतेष्वनतीचार भावना है ।।३।। ज्ञानकी भावना पढना पढावना, उपदेश करना इत्यादिक श्रुतज्ञानके अर्थमें निरन्तर उपयोग रखना, सो अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है ।।४।। शरीरसम्बन्धी दुःख, तथा मानसिक दुःख तथा इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, वांछितका अलाभ इत्यादिक संसारके दुःखनितें नित्य भयभीतता, सो संवेगभावना है ।।५।। धर्मात्मा पुरुषनिके उपकारके अर्थि आहार औषध शास्त्र अभयदानका सम्यग्भावनितें भक्तिपूर्वक देना सो शक्तितस्त्याग है ।।६।। अपना वीर्यकूं नहीं छिपायकरिकें जिनेन्द्रके मार्गके अनुकूल अनशनादिक कायक्लेश करना, सो शक्तितस्तप है ।।७।। मुनीश्वरनिके कोऊ कारणतें व्रत, तप, शील, संयममें विघ्न आवे, तिनका विघ्न दूरि

करि रक्षा करना, जैसे अनेकवस्तुनिकरि भरया भण्डारमें अग्नि लागे, तो तिसका बुझावना रक्षा है, तैसे साधुनिके विघ्न दुःख दूरि करि, तप, व्रत, शील, संयमकी रक्षा करना सो साधुसमाधि है ।।८।।

गुणवंतनिकै दुःख प्राप्त होते निर्दोषविधिकरि उनका दुःख दूरि करना, टहल करना, सो वैयावृत्य है ।।९।। केवलीनिके गुणनिमै अनुराग सो अर्हद्भक्ति है ।।१०।। समस्तसंघके अधिपति, दीक्षाशिक्षाके दायक आचार्यनिके गुणनिमैं अनुराग, सो आचार्यभक्ति है ।।११।। स्वमत परमतके ज्ञाता ऐसे बहुतश्रुतीनिके गुणनिमैं अनुराग, सो बहुश्रुतभक्ति है ।।१२।। श्रुतज्ञानके गुणनिमै अनुराग, सो प्रवचनभक्ति है ।।१३।। षट् आवश्यकनिका यथाकाल प्रवर्तन करना, सो आवश्यकापरिहाणि नामा भावना है ।।१४।। ज्ञानके प्रकाशकरि तथा महान् तपकरि तथा जिन पूजाकरि जिनधर्मका उद्योत करना, सो मार्गप्रभावना है ।।१५।। धर्मात्मा पुरुषनिविषै अतिस्नेह करना जैसे गऊ वत्सविषै प्रीति करे, तैसे प्रीति करना, सो प्रवचनवत्सलत्व है ।।१६।। ये षोडशभावना तीर्थंकरनाम कर्मके आस्रवकूं कारण हैं ।।

अब गोत्रकर्मके आस्रव के कारणनिमैं नीचगोत्रनाम कर्मके आस्रवके कारणनिकूं कहे है ।। परके दोष होते वा अनहोते प्रकट करनेकी इच्छा, सो परनिंदा है । अर आपविषै विद्यमान वा अविद्यमान गुणनिके प्रकट करनेकी इच्छा, सो आत्मप्रशंसा कहिये । परके सांचे गुणनिकूं हू आच्छादन करना अर अपने झूंठेहू गुण प्रकट करना, सो परनिंदा आत्मप्रशंसा है । अर परके गुण होइ तिनकूं ढांकना अर आपके अनहोते गुण प्रकट करना, ते नीचगोत्रके आस्रव के कारण है ।। विशेष ऐसा जानना—जाति कुल बल रूप श्रुत आज्ञा ऐश्वर्य तपका मद करना, परकी अवज्ञा करना, परकी हास्य करना, परके अपवाद करने का स्वभाव रखना, धर्मात्मा पुरुषनिकी निंदा करना, अपनी उच्चता दिखावना, परके यशकूं बिगाडि देना, असत्य कीर्ति उपजावना, गुरुनिका तिरस्कार करना, गुरुनिका दोष विख्यात करना, गुरुनिका स्थान बिगाडना, अपमान करना, गुरुनिकै पीडा उपजावना, अवज्ञा करना, गुणनिकूं लोप करना, गुरुनिकूं अंजुली नहीं जोडना, गुरुनिकी स्तुति नहीं करना, गुरुनिके गुण नहीं प्रकाशना, गुरुनिकूं आवते नहीं खड़ा होना, तीर्थंकरादिकनिकी आज्ञादिकका लोप करना ये समस्त नीचगोत्रके बन्धके कारण हैं ।।

अब उच्चगोत्रके आस्रवके कारणनिकूं कहे हैं ।। अपनी निंदा करना, परकी प्रशंशा करना, परके भले गुणनिकूं प्रकट करना, अवगुणनिकूं ढ़ांकना, गुणवंतनिविषै विनयकरि नम्रीभूत रहना, आपमैं ज्ञानादिककीगुणन

अधिकयता होतैंहू ज्ञानादिकनिकृत मदकूं प्राप्त नहीं होना—अहंकार नहीं करना, सो उच्चगोत्रके आस्रवका कारण है ।। औरहू कह्या है— जाति, कुल, बल, रूप, वीर्य, विज्ञान, ऐश्वर्य, तप इनिकरि अधिक होय, तातें आपकी उच्चता नहीं चिंतवन करना, अन्यजीवनको अवज्ञा नहीं करना, अन्यजीवनितें उद्धतपणा छांडना, परकी निंदा, परकी ग्लानि, परको हास्य, परका अपवादका त्याग करना; बहुरि अभिमानरहित रहना; धर्मात्माजनका पूजा सत्कार करना— देखतें ही उठि खड़ा होना, अंजुली जोडना, नम्रीभूत होना, वंदना करना; बहुरि अबारके अवसरमें अन्यपुरुषनिकै ऐसे गुण होना दुर्लभ तैसे गुण आपमै होतैंहू उद्धतपणा नहीं करना; अहंकारका अभाव करना—जैसें भस्म में ढक्या अग्निकी नांई अपना माहात्म्य नहीं प्रकट करना; धर्मके कारणनिमैं परम हर्ष करना; सो समस्त उच्चगोत्रके आस्रव के कारण हैं ।।

अब अन्तरायकर्मके आस्रवके कारण परिणामनिकूं कहे हैं ।। दान देनेमें विघ्न करनेतें दानांतरायका आस्रव होय है ।। कोऊकै लाभ होता होय तिस लाभके कारणकूं बिगाडै, तातें लाभांतरायकर्मका आस्रव होय है । परके भोग बिगाडनेतें भोगांतरायका अर परका उपभोग बिगाडनेतें उपभोगांतरायका, परका वीर्य बिगाडनेतें वीर्यांतरायकर्म-का आस्रव होय है ।। इनका विस्तार कहे हैं—कोऊ ज्ञानाभ्यास करता होय ताके निषेध करनेतें; तथा कोऊका सत्कार होता होय तिसके विनाशनेतें; तथा दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य. स्नान, विलेपन, अतर, सुगन्ध, पुष्पमाल्यादिक, वस्त्र, आभरण, शय्या, आसन, भक्षण करने योग्य भक्ष्य, भोजन करनेयोग्य भोज्य, पीवनेयोग्य पेय, आस्वादनेयोग्य लेह्य, इत्यादिकनिमैं विघ्न करनेतें, तथा विभवसमृद्धि देख आश्चर्य करनेतें, तथा अपने द्रव्य होतेहू नहीं खर्चनेतें, द्रव्यकी अति-वांछातें, देवतानिकै चढी वस्तूके ग्रहण करनेतें, निर्दोष उपकरणके त्यागनेतें, परकी शक्ति–वीर्य विनाशनेतें; धर्मका छेद करनेतें; सुन्दर आचारके धारक तपस्वी गुरुका घात करनेतें; जिनप्रतिमाकी पूजाके बिगाडनेतें; तथा दीक्षित, तथा दरिद्री, दीन, अनाथ इनकूं कोऊ वस्त्र पात्र स्थान देते होय, तिनके निषेध करनेतें; परकूं बंदिगृहमैं रोकनेतें; बांधनेतें; गुह्य अंगके छेदनेतें; कर्ण, नासिका ओष्ठके काटनेतें; जीवनिकै मारनेतें; अन्तराय नामा कर्मका आस्रव होय है ।।

जैसैं कोऊ मद्यपानी अपनी रुचिविशेषतें मद मोह विभ्रमके करनेवाली मदिरा पीयकरिकै अर तिसके उदयके वशतें अनेकविकारकूं प्राप्त होय है; तथा जैसें रोगी अपथ्यभोजन करि अनेक वातपित्तकफादिजनित विकार-निकूं प्राप्त होय है; तैसें आस्रवविधिकरि ग्रहण कीया अष्टप्रकारका ज्ञानावरणादिक कर्म तथा एकसो अठतालीस

प्रकार उत्तरकर्म तथा असंख्यात लोकप्रमाण उत्तरोत्तर कर्मकी प्रकृतितें उपज्या विकारकूं प्राप्त होय है ।। बहुरि कोऊ प्रश्न करै—जो, आयुकर्मविना सप्त कर्मप्रकृतिनिका आस्रव समय समय निरंतर अनादिकालतें होय है, तदि तत्प्रदोषादिक-निकरि ज्ञानावरणादिकनिकाही नियम कैसे रह्या ? ताका उत्तर—एककालमे जो समयप्रबद्ध आवे है, तिसके परमाणु ज्ञानावरणादिक सप्तकर्मनिकूं बटे है, तथा अपने अपने बटमें यथायोग्य अपनी अपनी उत्तरप्रकृतिनिकूं बटे है । तातें समस्त कर्मप्रकृतिकै प्रदेशबंधप्रति नियम नहीं कह्या है । जो ये पूर्वें तत्प्रदोषादिक भाव कहे, ते अनुभागप्रति कारण का नियम हैं ! इनि भावनितें जो कर्म आवै, सो अनुभागप्रति नियम जनावे है । जैसें कोऊ पुरुषका भाव दानके देनेमें विघ्न करनेवाला भया, तदि उस समयमें जो कर्मका आस्रव भया, सो सप्तकर्मनिकूं बटि गया, परन्तु दानांतरायकर्म में तो रस प्रचुर पड्या, अर अन्य प्रकृति थोथी रहि गई, प्रकृति स्थिति प्रदेश तीनप्रकार बन्ध भया । अनुभाग कषायरूप भावनि-प्रमाण कोऊमै तीव्र रह्या, कोऊमै मन्द रह्या, ऐसें जानना ।।

अब इहां ऐसा संक्षेप जानना—आस्रव सत्तावन प्रकारके हैं । मिथ्यात्व पंचप्रकार है— १ एकांत, २ विपरीत, ३ विनय, ४ संशय, ५ अज्ञान ये पंच मिथ्यात्वके प्रकार है । पंच इन्द्रिय अर छठ्ठा मनकूं वशीभूत नहीं करना अर छकायके जीवनिकी हिंसाका त्याग नहीं ये बारह प्रकार अविरत हैं । अर पचीस कषाय हैं । अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, संज्वलन क्रोध मान माया लोभ, हास्य, रति अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ये पचीस कषाय हैं । सत्य-मनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभयमनोयोग ये च्यारि मनके योग है । सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग, अनुभयवचनयोग ये च्यारि वचनयोग हैं । औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारमिश्र, कार्माण ये सप्त काययोग हैं । ऐसें मिथ्यात्व ५ । अविरत १२ । कषाय २५ । योग १५ । ये सत्तावन आस्रव हैं, कर्म इनद्वारे होइ आवे हैं । तिनमें मिथ्यात्वद्वारें कर्म तो एक मिथ्यात्वगुणस्थानहीमें आवे हैं अर अविरतद्वारें कर्म देशसंयमपर्यंतही आवे हैं । तिनमें त्रसबधद्वारें कर्म च्यारि गुणस्थानपर्यंतही है अर कषायद्वारें कर्म सूक्ष्मसांपरायपर्यंत दश गुणस्थानपर्यंत आवे हैं ।। अर योगद्वारें कर्म तेरहमें गुणस्थानपर्यंत आवे हैं ।। ऐसें आस्रवभावना संक्षेपतें कही ।। विस्ताररूप गोमट्टसार नाम ग्रन्थतें जानना ।।

अब दश गाथानिमैं संवरभावना कहे हैं ।। गाथा—

मिच्छत्तासवदारं रुंभइ सम्मत्तदिढकवाडेण ।

हिंसादिदुवाराणिवि दढवदफलहेहिं रुंभंति ।।१८४३।।

अर्थ—सम्यक्त्वरूप दृढकपाटकरिके मिथ्यात्वरूप आस्रवद्वारकूं रोकै अर दृढव्रतरूप आगलकरिकैं हिंसादिकद्वारनिकूं रोकै; तब मिथ्यात्वद्वारैं अर अव्रतद्वारैं कर्म आवै छा, ताका संवर होय है ।। गाथा—

उवसमदयादमाउहकरेण रक्खा कसायचोरेहिं ।

सक्का काउं आउहकरेण रक्खाव चोराणं ।।१८४४।।

अर्थ—कषायनिका उपशम अर जीवनिकी दया अर इन्द्रियनिका दमन येही आयुध हैं हस्तमें जाके ऐसा पुरुष कषायचोरनितै अपनी रक्षा करे है । जैसं जिसका हस्तमें आयुध, सो पुरुष चोरनितैं रक्षा करनेकूं समर्थ होय है । गाथा—

इन्दियदुद्दन्तस्सा णिग्घिप्पन्ति दमणाणखलिणेहिं ।

उप्पहगामी णिग्घिप्पन्ति हु खलिणेहिं जह तुरया ।।१८४५।।

अर्थ—जैसें उत्पथमार्गमें गमन करनेवाले घोडे लगामकरि निग्रहकूं प्राप्त करिये हैं; तैसे इन्द्रियरूप दुष्ट घोडे विषयनितैं रोकनेरूप लगामकरि निग्रहकूं प्राप्त करिये हैं ।।

अणिहुदमणसा इन्दियसप्पाणि णिगेण्हिदुं ण तीरन्ति ।

विज्जामन्तोसहधीणेणव आसीविसा सप्पा ।।१८४६।।

अर्थ—जैसें विद्या मंत्र औषधिकरि रहित पुरुष आसीविषजातिका सर्पके निग्रह करनेकूं समर्थ नहीं हैं; तैसें मनकूं नहीं निश्चल करनेवाला चपलचित्तका धारक पुरुषहू इन्द्रियरूप सर्पनिकै वश करनेकूं नहीं समर्थ होय है ।। गाथा—

पावपयोगासवदाराणिरोधो अप्पमादफलिगेण ।
कीरइ फलिगेण जहा णावाए जलासवणिरोधो ॥१८४७॥

अर्थ—विकथादिक पंचदश प्रमाद, ते पापप्रयोग हैं। जैसे नावमें जल आवनेके द्वारकूं काष्ठका फलककरि रोकिये है; तैसे अप्रमादरूप फलककरि पापप्रयोग रोकिये हैं ॥ भावार्थ— जिसकै अपने स्वरूपकी निरंतर सावधानी है—प्रमाद नहीं होय है, तिसकै विकथादिरूप प्रमादकरि आस्रव नहीं होय है। जिसकै अपने स्वरूपकी सावधानी नहीं, सो ४ विकथा, ४ कषाय, ५ इन्द्रिय, १ निद्रा, १ स्नेह इनि पन्द्रह प्रमादनितैं अन्ध होइ कर्मका आस्रव करे है ॥ गाथा—

गुत्तिपरिखाइगुत्तं संजमणयरं ण कम्मरिउसेणा ।
बंधेइ सत्तुसेणा पुरं व परिखादिहिं सुगुत्तं ॥१८४८॥

अर्थ—जैसे खाई कोट इत्यादिककरि रक्षा कीया पुरकूं शत्रुकी सेना भंग करनेकूं समर्थ नहीं है; तैसे मनवचनकायकी गुप्तिरूप खाई कोटकरि रक्षा कीया संयमनगरकूं कर्मरूप वैरीकी सेना भंग करनेकूं नहीं समर्थ होइ है ॥ गाथा—

समिदिदिढणावमारुहिय अप्पमत्तो भवोदधिं तरदि ।
छज्जीवणिकायवधादिपावमगरेहिं अच्छित्तो ॥१८४९॥

अर्थ—प्रमादरहित पुरुष हैं ते समितिरूप दृढ नावमें बैठिकरिकै छहकायके जीवनिकी हिंसातैं उपज्या जे पापरूप जलचर तिनकरि नहीं स्पर्शे ससारसमुद्रकूं तिरे हैं ॥

दारेव दारवालो हिदये सुप्पणिहिदा सदी जस्स ।
दोसा धंसंति ण तं पुरं सुगुत्तं जहा सत्तु ॥१८५०॥

अर्थ- -जैसे भलेप्रकारकरि रक्षा कीया पुरुष, ताहि शत्रु वैरी विध्वंस करनेकूं नहीं समर्थ होय है; बहुरि जैसे द्वारविषै द्वारपाल अयोग्यपुरुषकूं मांहि नहीं प्रवेश करने दे है; तैसे वस्तुके स्वरूपका स्मरण जिसकै सत्यार्थ, तिसके

अन्तरंगमें दोष प्रवेश करि तिरस्कार नहीं करि सके है ।। गाथा—

जो खु सविविप्पहूणो सो दोसरिऊण गेज्झओ होइ ।

अन्धलगोव वरंतो अरीणमविदिज्जओ चेव ।।१८५१।।

अर्थ—जो अपना रूप अर परका रूपका स्मरणरहित है, पर्यायमें आपा मानता अन्ध होइ रह्या है; सो पुरुष दोषरूप वैरीनिकै ग्रहण करनेयोग्य होय है ।। जैसें एकाकी अन्धपुरुष वनमें संचार करता नष्ट होय है; तैसें भेद विज्ञानरहित पुरुष अनेकदोषनिकरि लिप्त होय है ।। गाथा—

अमुयन्तो सम्मत्तं परीसहसमोगरे उदीरन्तो ।

णेव सदी मोत्तव्वा एत्थ दु आराधणा भणिया ।।१८५२।।

अर्थ—सम्यक्त्वकूं नही छांडता पुरुषकूं परीषहनिकी सेनाका समूह उदीरणाकूं प्राप्त होतेंहू स्मृति जो भेदविज्ञान स्वरूपका स्मरण ताहि त्यागना जोग्य नहीं है। इस भावनिमैंही आराधना भगवान् कही है। ऐसें संवरभावना वर्णन करी ।।

अब निर्जरानुप्रेक्षा बारह गाथानिकरि कहे हैं ।। गाथा—

इय सव्वासवसंवरसंवुडकम्मासवो भवित्तु मुणी ।

कुव्वन्ति तवं विविह सुत्तुत्तं णिज्जराहेदुं ।।१८५३।।

अर्थ—ऐसें समस्त अवसरमें संवरके कारणनिकरि रुके हैं कर्मके आस्रव जिनके, ऐसे भये मुनि निर्जराका कारण नानाप्रकारका जिनसूत्रमें कह्या तपकूं करे हैं ।। गाथा—

तवसा विणा ण मोक्खो संवरमित्तेण होइ कम्मस्स ।

उवभोगादीहिं विणा धणं ण हु खीयदि सुगुत्तं ।।१८५४।।

अर्थ—तपश्चरणविना संवरमात्रकरिकेंही कर्मका छूटना नहीं होय है। जैसें भले-प्रकार रक्षा कन्या धन

उपभोगादिकविना नहीं क्षीण होय है ।। गाथा—

पुव्वकदकम्मसडणं तु णिज्जरा सा पुणो हवे दुविहा ।
पढमा विवागजादा विदिया अविवागजाया य ।।१८५५।।

कालेण उवायेण य पच्चन्ति जहा वणप्फदिफलाइं ।
तह कालेण तवेण य पच्चन्ति कदाणि कम्माणि ।।१८५६।।

अर्थ—पूर्वकालमें बांध्या कर्मका जो छूटना, सो निर्जरा है । सो निर्जरा दोयप्रकार है । एक अपने उदय का कालमें अपना रस देइ निर्जरै, सो सविपाक निर्जरा है । अर उदयकालविनाही तपश्चरणादिकके प्रभावतें, विना रस दीया कर्म निर्जरै, सो अविपाकनिर्जरा है । जैसें वनस्पतिका फल काल पायकरि वृक्षकी डाहलीकैंहू क्रमकरि पके है, अर पालमैं देइ उपायकरिकैं शीघ्रतातैंहू पके है; तैसें पूर्वें उत्पन्न कीये कर्म अवसर पाय उदय देयकरिकैंहू निर्जरे है, अर तपके प्रभावकरिकैंहू पकि निर्जराकूं प्राप्त होय है । ऐसें दोय प्रकार निर्जरा है ।। गाथा—

सव्वेसिं उदयसमागदस्स कम्मस्स णिज्जरा होइ ।
कम्मस्स तवेण पुणो सव्वस्स वि णिज्जरा होइ ।।१८५७।।

अर्थ—समस्तही उदयकूं प्राप्त भया कर्म ताकी निर्जरा होय है; जो उदयमें आय समय समय अपना रस देवैगा, सो समय समय निर्जरैहोगा । अर समस्तही कर्मकी तपकरिकैंहू निर्जरा होय ही है ।। भावार्थ—कर्मकी निर्जरा उदयकालमें रस देयकरिकैंभी होय है, अर तपके प्रभावतैंहू होय है ।। गाथा—

ण हु कम्मस्स अवेदिदफलस्स कस्सइ हवेज्ज परिमोक्खो ।
होज्ज व तस्स विणासो तवग्गिणा डज्झमाणस्स ।।१८५८।।

अर्थ—फल दियेविना किसही कर्मका छूटना नहीं होय है । अपना फल देयकरिकैंही खिरे है, सो तो सविपाकनिर्जरा है । बहुरि तपकरिकैं दग्ध कीया कर्म अपना रस दियेविनाहू निर्जरे है, सो अविपाकनिर्जरा है ।। गाथा—

डहिऊण जहा अग्गी विद्ध सदि सुबहुगंपि तणरासी ।
विद्ध सेदि तवग्गी तह कम्मतणं सुबहुगंपि ।।१८५६।।

अर्थ—जैसें अग्नि आप प्रज्वलित होंईकरिकें अर बहुततृणकी राशिकूं दग्ध करै है; तैसें तपरूप अग्नि बहुतहू कर्मरूप तृणका विध्वंस करे है ।। गाथा—

कम्मं विपरिणमिज्जइ सिणेहपरिसोसएण सुतवेण ।
तो तं सिणेहमुक्कं कम्मं परिसडदि धूलिव्व ।।१८६०।।

अर्थ—समस्त कर्मके रसकूं शोषण करनेवाला दर्शनज्ञानचारित्रसहित तपकरिकैं समस्तकर्मका परिणमन ऐसा होय है—जो स्थिति घटि जाय अर अनुभागका अभाव हो जाय, तदि सचिक्कणरहित कर्म धूलिकीनांई खिरि जाय है–गिरि जाय है ।। भावार्थ—जैसें धूलिमें चिकणाई विनशि जाय, तदि आपैंही भींतिऊपरितें झडि जाय है; तैसें सम्यक्तपके प्रभावकरि कर्मका रस सूकि जाय, तदि कर्मपरमाणु आत्मातें झडि जाय हैं ।। गाथा—

धादुगदं जह कणयं सुज्झइ धम्मन्तमग्गिणा महदा ।
सुज्झइ तवग्गिधन्तो तह जीवो कम्मधादुगदो ।।१८६१।।

अर्थ—जैसें पाषाणमें मिल्या हुवा सुवर्ण महान् अग्निकरि धम्या हुवा शुद्धताकूं प्राप्त होय है; तैसें कर्मधातुमें मिल्या हुवा जीव महान् तपरूप अग्निकरि धम्या हुवा शुद्धरूपकूं प्राप्त होय है ।। अब इहां कोऊ कहै– जो, तप ही आचरण करना, संवरकरि कहा प्रयोजन है ? इस शकाकूं निराकरण करता कहे हैं ।। गाथा—

तवसा चेव ण मोक्खो संवरहीणस्स होइ जिणवयणे ।
ण हु सोत्ते पविसन्ते किसिणं परिसुस्सदि तलायं ।।१८६२।।

अर्थ—जिनेन्द्रका परमागममें भगवान् ऐसें कह्या है—संवररहित पुरुषकैं तपकरिकैंहो मोक्ष नहीं होय है । संवरसहित तपश्चरणकरिकैंहो मोक्ष होय है । जैसें जिस तलावमें जलका प्रवाह निरतर आवता होय, सो तलाव समस्त

नहीं शुष्क होय है, पहलो नवीन जल आवता रुकि जाय, तदि ग्रीष्मके सूर्यका आतापकरि तलाब सूकिही जाय है। तैसे संवरपूर्वक तपही मोक्षका कारण है। गाथा—

एवं पिणद्धसंवरवम्मो सम्मत्तवाहणारूढो ।

सुदणाणमहाधणुगो झाणादितवोमयसरेहिं ॥१८६३॥

संजमरणभूमीए कम्मारिचमू पराजिणिय सव्वं ।

पावदि संजमजोहो अणोवमं मोक्खरज्जसिरिं ॥१८६४॥

अर्थ—ऐसे पूर्वोक्त प्रकार पहर्या है संवररूप बकतर जानें ऐसा, अर सम्यक्त्वरूप वाहन ऊपरि चढ्या, अर श्रुतज्ञानरूप महान् धनुषकूं धारण करता, संयमीरूप योद्धा संयमरूप रणभूमिविषें कर्मरूप वैरीनिकूं ध्यानादि तपोमय बाणनिकरि जीतिकरिके उपमारहित मोक्षके राज्यकी लक्ष्मीकूं प्राप्त होय है। ऐसे निर्जरानुप्रेक्षा कही।

अब धर्मभावनाकूं नवगाथानिमें कहे है। गाथा—

जीवो मोक्खपुरक्कडकल्लाणपरंपरस्स जो भागी ।

भावेणुववज्जदि सो धम्मं तं तारिसमुदारं ।।१८६५॥

अर्थ—जो जीव मोक्षपर्यंन्त कल्याणनिकी परम्परा का भाजन है-पात्र है, सो जीव समस्त सुख देनेमें प्रवीण ऐसा उदार धर्मकूं प्राप्त होय है। जो निर्वाणके योग्य नहीं सो उत्तमधर्मकूं नहीं धारण करिसके है। जिसके कर्मनिकी स्थिति घटि जाय अर पापप्रकृतिनिमें रस मन्द रहि जाय, तिसका भाव धर्मके धारण करने का होय है। गाथा—

धम्मेण होदि पुज्जो विस्ससणिज्जो पिओ जसंसी य ।

सुहसज्झो य णराण धम्मो मणणिव्वुदिकरो य ॥१८६६॥

अर्थ—पुरुष जगतमें धर्मकरि पूजने योग्य होय है। धर्मके प्रभावतें समस्तजगतके विश्वास करने योग्य होय है, सर्वके प्रिय होय है, यशवान् होय है। मनुष्यनिके धर्म है सो सुखकरि साधने योग्य है, मनमें आनन्द करने वाला है। गाथा—

जावदियाइं कल्लाणाइं सग्गे य मणुग्रलोगे य ।
ग्रावहदि ताणि सव्वाणि मोक्खं सोक्खं च वरधम्मो।।१८६७।।

ग्रर्थ—इस मनुष्यलोक में वा देवलोकमें जितने कल्याण हैं, तिन समस्त कल्याणनिकूं ग्रर निर्वाणके ग्रनन्त ग्रविनाशी सुखकूं यो श्रेष्ठ धर्म प्राप्त करे है । गाथा—

ते धण्णा जिणधम्मं जिणदिट्ठं सव्वदुक्खणासयरं ।
पडिवण्णा विढधिदिया विसुद्धमणसा णिरावेक्खा ।१८६८।।

ग्रर्थ—जे दृढधैर्य के धारण करनेवाले ग्रर उज्ज्वल मन के धारक, ग्रर इसलोक परलोकमें ख्याति लाभ पूजादिकको ग्रपेक्षारहित हुये समस्त दुःखनिके नाश करने वाला ग्रर जिनेन्द्रका देख्या ऐसा सत्यार्थधर्मकूं धारण करे हैं । ते जगतमें धन्य हैं । धर्मरहित पुरुषनिकरि तो जगत भरया है, केवल महात्मापुरुष विरले हैं, ते धन्य हैं । गाथा—

विसयाडवीए उम्मग्गविहरिदा सुचिरमिंदियस्सेहिं ।
जिणदिट्ठणिव्वुदिपहं धण्णा ग्रोदरिय गच्छन्ति ।।१८६९।।

ग्रर्थ—विषयरूप वनीमें इन्द्रियरूप दुष्ट ग्रश्वनिकरि चिरकालपर्यन्त उत्पथमार्गमें विहार करते कोऊ धन्य पुरुष हैं ते इन्द्रियरूप दुष्ट घोडेनितें उतरिकरि जिनेन्द्रका दिखाया निर्वाणका मार्गप्रति गमन करे हैं । गाथा—

रागेण य दोसेण य जगे रमन्तम्मि वीदरागम्मि ।
धम्मम्मि णिरासादम्मि रदी ग्रदिदुल्लहा होइ ।।१८७०।।

ग्रर्थ—जगद्वर्ती लोक रागकरि द्वेषकरि क्रीडा करते सन्ते निरास्वाद वीतरागधर्ममें रति करना ग्रत्यन्त दुर्लभ है । भावार्थ—जगतके लोक इन्द्रियनिके विषयनिमें रमि रहे हैं, ग्रर कषायनिकरि मलिन होइ रहे हैं, ग्रर विषयनिमें ही सुखरूप ग्रास्वादनकरि रमि रहे हैं, विषयनिके ग्रास्वादनके लोलुपी संसारी जीवनिकी विषयरहित वीतरागधर्म में रति होना ग्रत्यन्त दुर्लभ है । गाथा—

सफलं माणुसजम्मं तस्स हवदि जस्स चरणमणवज्जं ।

संसारदुक्खकारणकम्मागमदारसंरोधं ॥१८७१॥

अर्थ— जिस मनुष्यके, संसारके दुःख करनेवाले कर्म, तिनके आगमनका द्वार रोकनेमें समर्थ, ऐसा निर्दोष चारित्र होय है, तिसहीका मनुष्यजन्म सफल है । गाथा—

जह जह णिव्वेदुवसम वेरग्गदयादमा पवढ्ढन्ति ।

तह तह अब्भासयर णिव्वाणं होइ पुरिसस्स ॥१८७२॥

अर्थ— इस मनुष्यके, धर्मानुराग अर कषायनिकी मन्दता अर वैराग्यता अर समस्त प्राणीनिकी दया अर इन्द्रियनिका दमन जैसे जैसे बधत है, तैसे तैसे निर्वाण अतिशयकरि समीपताकूं प्राप्त होय है । गाथा—

सम्मद्दंसणतुम्बं दुवालसंगारयं जिणिदाणं ।

वयणेमियं जगे जयइ धम्मचक्कं तवोधारं ॥१८७३॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवानका धर्मचक्र जगतमें जयवन्त प्रवर्तै है । कैसाक है धर्मचक्र ? जाके सम्यग्दर्शनरूप मध्य का तुम्ब है, अर आचारांगादिक द्वादश अंग हो जाके आरा हैं, पंचमहाव्रतादिरूप जाके नेमि है, अर तपरूप जाके धार है, ऐसा भगवान का धर्मचक्र कर्मरूप वरीनिकूं जीति परमविजयकूं प्राप्त होय हैं । ऐसे धर्मभावना वर्णन करी । गाथा—

अब बोधिदुर्लभावना अष्टगाथानिमैं वर्णन करे हैं । गाथा—

दंसणसुदतवचरणमइयम्मि धम्मम्मि दुल्लहा बोही ।

जीवस्स कम्मसत्तस्स संसरंतस्स संसारे ॥१८७४॥

अर्थ— संसारविषै परिभ्रमण करता कर्मनिकरि लिप्त जो जीव, ताके दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तपरूप धर्मविषै बोधि जो रत्नत्रयकी परिपूर्णता तथा आराधनासहित मरण होना दुर्लभ है । गाथा—

संसारम्मि अणन्ते जीवाणं दुल्लहं मणुस्सत्तं ।

जुगसमिलासं जोगो जह लवणजले समुद्दम्मि ॥१८७५॥

अर्थ—जैसे लवणसमुद्रको पूर्वदिशामें क्षेप्या जूडा अर पश्चिमदिशाके लवणसमुद्रमें क्षेपी समिला इन दोऊनि का संयोग होना दुर्लभ है। तैसे अनन्त संसारविषै जीवनिके मनुष्यपणा होना दुर्लभ है। गाथा—

असुहपरिणामबहुलत्तणं च लोगस्स अदिमहल्लत्तं।
जोणिबहुत्तं च कुणदि सुदुल्लहं माणुसं जोणी ॥१८७६॥

अर्थ—इस लोकमें मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, प्रमाद इत्यादिक अशुभपरिणामनिका बहुलपणा है। मिथ्यात्व असंयमादिक भाव निरन्तर बहुतवार बहुत प्रवर्तत हैं। अर मनुष्य विना अन्यजीवनिका बहुतपणा है। अर योनिका बहुलपणा है—चोरासी लक्ष योनिस्थान हैं अर तिनमें एकसो साढा निन्याणवै लक्ष कुलकोडी है, ते मनुष्य योनिकूं दुर्लभ करे हैं।

भावार्थ—यो जीव अनन्तानन्त काल तो निगोदहीमें बस्यो है। अर कदाचित् कोई जीव निगोदतै निकलै तो पृथ्वीकायमें, जलकायमें, पवनकायमें तथा अग्निकायमें, तथा प्रत्येकवनस्पतिमें उत्पन्न होइ बहुरि निगोदमें जाय है। कैसा है निगोद? अनन्तकालहूमें तातै निकलना कठिन है। अर अनन्तानन्तकालमें कदाचित् बहुरि निकसे तो फेरि पंचस्थावरनिमें उपजि बहुरि निगोद जाय है! ऐसे अनन्तवार एकेन्द्रियमें परिभ्रमण करते करते त्रसपणा पावना दुर्लभ है! अर कदाचित् त्रसहू होइ, तो वेन्द्रीतै तेन्द्रियपना पावना दुर्लभ है, तातै चौन्द्रियपना पावना दुर्लभ है। अनन्तवार स्थावरमें अर विकलत्रयमें ही परिभ्रमण करता अनन्तकाल व्यतीत करे है, पंचेन्द्रियपना पावना अत्यन्त दुर्लभ है। अर कदाचित् बहुत भ्रमण करते करते पंचेन्द्रियहू होइ, तो सिंह, व्याघ्र, सर्प, स्याली, चीता, मत्स्य इत्यादिक दुष्टजीवनिमें उपजि नरककूं प्राप्त होइ असंख्यात काल दुःख भोगि फेरिहू तिर्यंच होइ फेरि बारम्बार निगोदमें विकलत्रयमें वा दुष्टतिर्यंचनिमें वा नरकमें उत्पन्न होइ होइ अनन्तकाल व्यतीत करते करते कदाचित् मनुष्यपर्याय धारे हैं, जातै मनुष्यपर्याय का विभागही अति थोड़ा है। गाथा—

देसकुलरूवमारोग्गमाउगं बुद्धिसवणगहणाणि।
लद्धे वि माणुसत्ते ण हुन्ति सुलभाणि जीवस्स ॥१८७७॥

अर्थ—अर जो कदाचित् मनुष्यपणा होय तो उत्तमदेशमें उपजना दुर्लभ है। अनेकपापरूप धर्मरहित मूढनिकरि व्याप्त देशमें उपजि मनुष्यजन्मकू वृथा ढोरकीनांई व्यतीत करे है। अर जो उत्तमदेशमेंहू उपजै तो उत्तमकुलमें उपजना अतिदुर्लभ है। हीन नीच मांसभक्षी, मद्यपानी अनर्थके करने वाले वा नीचजीविकाके करनेवाले वा चांडाल कलाल, लुहार, धोबी, नीलगर इत्यादिकनिके कुलमें उपज्या तो देशादिक पावनाहू वृथा है! अर जो उत्तमकुलमेंहू उपजै तो सुन्दररूप, नयन, नासिका, कर्णादिक इन्द्रिय अर हस्तपादादिक अंग अर अंगुल्यादिक उपांग इनको हीनाधिकतारहित जगतके आदरनेयोग्य सुन्दररूप पावना दुर्लभ है। अर देशकुल रूपादिक भी पावै अर रोगसहित शरीर पाया तो समस्त पावना वृथा है। रात्रिदिन हाय हाय करता वेदनाजनित आर्तध्यानकूं प्राप्त होइ दुर्गति जाय है। अर नीरोग शरीर भी कदाचित् पाव तो दीर्घायु होना दुर्लभ है। जातें देश कुल रूप आरोग्यादिक समस्त सामग्री पायकरिकेंहू कोऊ गर्भहीमें मरण करै है! कोऊ एकदिन, दोय दिन, महिना, दोय महिना, बरस, दो बरस, पांच बरस, बीस बरस इत्यादिक अल्प आयु पायकरिके मरण करे है, तातें दीर्घायु पावना अतिदुर्लभ है। अर दीर्घायु भी पावै तो उज्ज्वलबुद्धि पावना दुर्लभ है। अर बुद्धि भी पावै तो संसारके विषयकषायनिमें रचे है। धर्मश्रवण करना दुर्लभ है। अर धर्मश्रवण करे तो ग्रहण होना दुर्लभ है। तातें मनुष्यपणा पाये भी उत्तम देश, उत्तमकुल, रूप, आरोग्य, दीर्घायु, उज्ज्वलबुद्धि, धर्मश्रवण, धर्मग्रहण होना अतिदुर्लभ है। गाथा—

लद्धेसु वि तेसु पुणो बोधी जिणसासणम्मि ण हु सुलहा।
कुपधाकुलो य लोगो जं वलिया रागदोसा य ॥१८७८॥

अर्थ—बहुरि देशकुलादिक प्राप्त होतेहू जिनशासनमें बोधि जे दीक्षाके सन्मुखबुद्धि पावना दुर्लभ है। जातें रागद्वेष बड़े बलवान् हैं। इनके उदयतें लोक कुमार्गमें आकुल भये प्रवर्ते हैं, रत्नत्रयमार्गमें चारित्रमोहके उदयतें प्रवर्तन करना दुर्लभ है। गाथा—

इय दुल्लहाय वोहीए जो पमाइज्ज कह वि लद्धाए।
सो उल्लट्टइ दुक्खेण रदणगिरिसिहरमारुहिय ॥१८७९॥

अर्थ—ऐसे बोधि जो रत्नत्रय ताका प्राप्त होना दुर्लभ है। अर कदाचित् बोधिकूं प्राप्त होइकरिके प्रमादी होइ जो बोधितें छूटे है, सो रत्नगिरिके शिखर चढिकरिके अर प्रमादी हुवा दुःखकरि नीचे पडे है। गाथा—

फिडिदा सन्ती बोधी ण य सुलहा होइ संसरन्तस्स ।
पडिदं समुद्दमज्झे रदणं व तमंधयारम्मि ॥१८८०॥

अर्थ—जैसे अंधकारके अवसरविषै समुद्रमें पटक्या रत्नका पावना दुर्लभ है, तैसे संसारमें परिभ्रमण करते जीवकं, नष्ट हुवा बोधि जो रत्नत्रय ताका फिरि पावना दुर्लभ है ।

ते धण्णा जे जिणवर दिट्ठे धम्मम्मि होंति संबुद्धा ।
जे य पवण्णा धम्मं भावेण उवट्ठिदमदीया ॥१८८१॥

अर्थ—जे जिनवरकरि देखे धर्ममें प्रबुद्ध होय हैं, ते धन्य हैं । बहुरि जे उद्यमरूप भये भावनिकरि धर्मकूं प्राप्त होय हैं, ते धन्य हैं । ऐसें बोधिदुर्लभभावना नवगाथानिमै वर्णन करी ॥ अब धर्मध्यानके प्रकरणमें आया द्वादशभावनाका स्वरूप वर्णन करि अब प्रकरणकूं समेटे हैं ॥ गाथा—

इय आलंबणमणुपेहाओ धम्मस्स होंति ज्झाणस्स ।
ज्झायंतो ण वि णस्सदि ज्झाणे आलंबणेहिं मुणी ॥१८८२॥

अर्थ—ये बारह अनुप्रेक्षा धर्मध्यानका आलंबन हैं । इन भावनानिका आलबन करिकं ध्यान करता मुनि ध्यान ध्यानके सबधमें नहीं विनसे है, ध्यानकी शुद्धता होय है ॥ अब धर्मध्यानके ध्याताके औरहू आलंबन कहे हैं ॥ गाथा—

आलंबणं च वायण पुच्छणपरिवट्टणाणुपेहाओ ।
धम्मस्स तेण अविरुद्धाओ सव्वाणुपेहाओ ॥१८८३॥

अर्थ—जातैं निर्दोषग्रन्थका वा अर्थका वा ग्रंथ अर्थ दोऊनिका योग्यपुरुषनिकूं पढावना-शिक्षा करना वा आप पढना, सो वाचना है । बहुरि अपने संशयके दूरि करनेके अर्थि वा तत्त्वका दृढनिश्चयके अर्थि विनयपूर्वक बहुज्ञानीनिकूं पूछना, सो पृच्छना है । बहुरि आगमतें वा बहुज्ञानीनितें जान्या जो अर्थ ताका मनकरि निरंतर अभ्यास, सो

अनुप्रेक्षा है। बहुरि पीछला सीख्या ग्रंथका शुद्ध पाठ करना—ग्रंथ अर्थ दोऊनिकी समालि करनी, सो परिवर्तन है ।। सो वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, परिवर्तन इनि च्यारि प्रकारको स्वाध्यायतें बुद्धि तो अतिशयरूप होइ है, अर प्रशंसायोग्य उज्ज्वलपरिणाम होय है, अर सर्वोत्कृष्ट धर्मानुराग होय है, संसार देह भोगनितें विरक्तता होय है, तपकी वृद्धि होय है। तातें समस्त द्वादश अनुप्रेक्षा धर्मध्यानका निर्दोष अबाध आलंबन है, तातें धर्मध्यानीके द्वादश भावनाका अवलंबन श्रेष्ठ है ।।

आलंबणेहिं भरिदो लोगो झाइदुमणस्स खवयस्स ।
जं जं मणसा पेच्छदि तं तं आलम्बणं हवइ ।।१८८४।।

अर्थ—ध्यान करनेका है मन जाका ऐसा क्षपकके समस्त लोक ध्यानके आलंबननिकरि भरया है। वीतरागी हुवा जिस जिस वस्तूकूं देखे है, सो सो वस्तु ध्यानका आलंबन है। जातें ध्यान करिये है, सो समस्त विषयकषायकूं निग्रह करि परम साम्यभावके प्राप्त होनेकूं करे है। अर वीतरागी मुनिके समस्त पदार्थनिमें साम्यभाव प्रकट भया, तातें वीतरागी मुनिनिकें समस्तपदार्थही ध्यानके अवलंबन है ।। गाथा—

इच्चेवमदिक्कन्तो धम्मज्झाणं जदा हवइ खवओ ।
सुक्कज्झाणं झायदि तत्तो सुविसुद्धलेस्साओ ।।१८८५।।

अर्थ—जिस अवसरविषें वीतरागी क्षपक इस प्रकार धर्म ध्यान वर्णन कीया तिसकूं उल्लंघन करै तदि लेश्याकी उज्ज्वलताकूं प्राप्त भया संता शुक्लध्यानकूं ध्यावत है ।। ऐसें एकसो सडसठि गाथानिमें धर्मध्यानका वर्णन कीया ।। अब बारह गाथानिमें शुक्लध्यानका वर्णन करै हैं। गाथा—

ज्झाणं पुधत्तसवितक्कसवीचारं हवे पढमसुक्कं ।
सवितक्केक्कत्तावीचारं ज्झाणं विदियसुक्कं ।।१८८६।।
सुहुमकिरियं खु तदियं सुक्कज्झाणं जिणेहिं पण्णत्तं ।
वेंति चउत्थं सुक्कं जिणा समुच्छिण्णकिरियं तु ।।१८८७।।

अर्थ—पहला ध्यान तो पृथक्त्ववितर्कवीचार प्रथम शुक्लध्यान है। एकत्ववितर्क अवीचार दूजा शुक्लध्यान है। सूक्ष्मक्रिया नामा तीसरा शुक्लध्यान है। समुच्छिन्नक्रिया नामा चौथा शुक्लध्यान है। अब पृथक्त्वसवितर्कसवीचार नाम प्रथमध्यानकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

दव्वाइं अरोयाइं तीहिं वि जोगेहिं जेरा ज्झायन्ति।
उवसंतमोहणिज्जा तेरा पुधत्तंत्ति तं भरिगया ॥१८८८॥

अर्थ—जातें जिनके मोहका उपशम होगया ते साधु अनेकद्रव्यनिमें मनवचनकायकरिके ध्यावत हैं, तिस कारणकरि तिस प्रथमध्यानकूं पृथक्त्व कह्या है। पृथक्त्व नाम नानाका है—अनेकका है। सो नानाप्रकारके योगनिकरि अनेक अर्थनिकूं ध्यावै, तातें तो पृथक्त्व कहिये है। गाथा—

जम्हा सुदं वितक्कं जम्हा पुव्वगदअत्थकुसलो य।
ज्झायदि ज्झाणं एवं सवितक्कं तेरा तं झाणं ॥१८८९॥

अर्थ—जातें वितर्क नाम श्रुतका है। जातें पूर्वगत अर्थमें कुशल होइ इस ध्यानकूं ध्यावै, तातें इस ध्यानकूं सवितर्क कहिये हैं। पूर्वनिके अर्थका जाननेवालेकै आदिके दोय शुक्लध्यान होइये हैं। गाथा—

अत्थारा वंजरागारा य जोगारा य संकमो हु वीचारो।
तस्स य भावेण तय सुत्ते उत्तं सवीचारं ॥१८९०॥

अर्थ—जातें भावनिकरि अर्थनिका पलटना तथा अक्षरनिका पलटना तथा मनवचनकायके योगनिका पलटना, ताकूं वीचार कहिये हैं। तातें सूत्रविषै प्रथमशुक्लध्यानकूं सवीचार कहिये हैं। जातें अनेकद्रव्यनिनें अनेकयोगनिकरि ध्यावै, तातें याकूं पृथक्त्व कहिये। अर वितर्क नाम श्रुतका है, श्रुतके अर्थसहित जो ध्यान, सो सवितर्क है। अर इस ध्यानमें अर्थ पलटे है, शब्द पलटे है, योग पलटे है, यातें याकूं सवीचार कहिये हैं। तातें पहला शुक्लध्यानकूं पृथक्त्व-वितर्कविचार कहिये हैं। ऐसें प्रथमशुक्लध्यानका स्वरूप कह्या। अब एकत्ववितर्क अवीचार नामा द्वितीय शुक्लध्यानकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

भगव.
आरा.

जेणेगमेव दव्वं जोगेणेगेण अण्णदरगेण ।
खीणकसाओ ज्झायदि तेणेगत्तं तयं भणियं ।।१८८१।।

जम्हा सुदं वितक्कं जम्हा पुव्वगदअत्थकुसलो य ।
ज्झायदि ज्झाणं एवं सवितक्कं तेण त ज्झाणं ।।१८८२।।

अत्थाण वंजणाण य जोगाणं संकमो हु वीचारो ।
तस्स अभावेण तयं झाण अविचारमिति वुत्तं ।।१८८३।।

अर्थ—तीन योगनिमैंतं एकयोगकरिकें एकद्रव्यकूं क्षीणकषाय जो समस्त मोहकर्मका नाश करि क्षीणकषाय नाम बारमा गुणस्थानका धारक ध्यावे, तिसकारणकरि इस ध्यानकूं एकत्व कहिये हैं। प्रथमध्यानकीनांई नानाद्रव्यनिका नानायोगनिकरि ध्यावना नाहीं है, इस ध्यानमें एकयोगकरि एकद्रव्यका ध्यावना है, तातें इसकूं एकत्व कहिये। बहुरि वितर्क नाम श्रुतका है, जातें पूर्वके अर्थका जाननेवाला इस ध्यानकूं ध्यावे है, तातें याकूं सवितर्क कहिये हैं। जातें अर्थनिका व्यंजननिका योगनिका पलटनेकूं वीचार कहिये हैं, इस ध्यानमें अर्थव्यंजनयोगनिका पलटना नाहीं है, तातें इस ध्यानकूं अवीचार कह्या है। भावार्थ—एकद्रव्यकूं एकयोगकरि श्रुतका ज्ञानी शब्द अर्थ योगनिका पलटनेविना ध्यावे है, तातें एकत्ववितर्क अवीचार नामा दूजा शुक्लध्यान कह्या। अब सूक्ष्मक्रिय नामा तीसरा शुक्लध्यानकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

अवितक्कमवीचारं सुहुमकिरियबंधणं तदियसुक्कं ।
सुहुमम्मि कायजोगे भणिदं तं सव्वभावगदं ।।१८८४।।

सुहुमम्मि कायजोगे वट्टन्तो केवली तदियसुक्कम् ।
झायदि णिरु भिदुं जे सुहुमत्तणकायजोगं पि ।।१८८५।।

अर्थ—जिसमें श्रुतज्ञानका अवलंबन नहीं, अर अर्थव्यंजनयोगका पलटना नहीं, सूक्ष्मकाययोगमें समस्त-पदार्थनिकं एककाल जानता तिष्ठै, ताकूं सूक्ष्मक्रिय नाम ध्यान कहिये हैं। सूक्ष्मकाययोगमें तिष्ठता सूक्ष्मकाययोगकूं

रोकिकरि जो केवली भगवान् निश्चल रहै, सो सूक्ष्मक्रियध्यान तीसरा है। अब समुच्छिन्नक्रिय नाम चौथा ध्यानकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

अवियक्कमवीचारं अरिणयट्टिमकिरियमं च सीलेसिं।
ज्झारणं रिगरुद्धयोगं अपच्छिमं उत्तमं सुक्कं ॥१८६६॥
तं पुरण रिगरुद्धजोगो सरीरतियरणासरणं करेमाणो।
सवण्हु अपडिवादी ज्झायदि ज्झारणं चरिमसुक्कं ॥१८६७॥

भगव. आरा.

अर्थ—कैसाक है चौथा शुक्लध्यान ? अवितर्क कहिये श्रुतका अवलंबनरहित है। बहुरि अवीचार कहिये पदार्थ व्यंजन योग इनिका पलटनेकरि रहित है। जातें ये दोऊ ध्यान भगवान् केवलीकै आयुका अंतर्मुहूर्त काल अवशेष रहे होइ हैं, तातें केवलीकै समस्त आवरणके अभावतें समस्तपदार्थनिका जानना एककालमें प्रकट भया तदि श्रुतका अवलंबन नहीं है, अर अर्थ व्यंजन योगनिका पलटना भी नहीं है। इनका पलटना तो क्रमवर्ती ज्ञान जिनकै होय तिनकै होय है। बहुरि समस्तकर्मका नाश करेविना नहीं बाहुडे है। तातें अनिवृत्ति कहिये हैं। बहुरि श्वासोश्वासादिक समस्त मनवचनकायके हलनचलनरहित है, तातें समुच्छिन्नक्रिय कहो वा अक्रिय कहो। बहुरि समस्तशीलनिका अधिपति जो यथाख्यातचारित्र, ताका सहचारी ध्यान है, तातें ध्यानकूं शैलेश्य कहिये हैं। बहुरि समस्तयोगनिका निरोधरूप है अर या पाछें और ध्यान नहीं, तातें याकूं अपश्चिम कहिये हैं। ऐसा सर्वोत्कृष्ट उत्तमध्यान है। सो यो चतुर्थ ध्यान योगनिका अभाव करनेतें निरुद्धयोग है। अर औदारिक तैजस कार्माण शरीरके नाश करनेवाला है। अर उलटा नहीं आवै तातें अप्रतिपाति है। सो चौथा शुक्लध्यान सर्वज्ञभगवान् ध्यावे है।

भावार्थ—ऐसा जानना–जो मोहनीयकर्मकी अठाईस प्रकृति हैं। तिनमैं तीनप्रकार दर्शनमोहनीय अर च्यारि प्रकार अनंतानुबंधी कषाय इन सप्त प्रकृतिनिका अविरत, देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्त इनि च्यारि गुणस्थाननिमैंतें कोऊ एक गुणस्थानमें नाश करिकै अर क्षायिक सम्यग्दृष्टि होइकरिकै अर आठमें गुणस्थानमें इकईसप्रकार मोहनीयका नाशके अर्थि प्रथमशुक्लध्यानको प्रारंभ करि अर आठमें नवमें दशमें गुणस्थानमें समस्त इकईसप्रकार मोहनीयका नाश करि

क्षीणकषायनाम बारमा गुणस्थानमे श्रुतज्ञानतें एकपदार्थ ग्रहण करि अर योगनिके पलटनेकरि रहित एकत्ववितर्क नाम दूसरा शुक्लध्यानतें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय इनिका नाशकरि केवलज्ञान उपजावे है।

भगव. आरा. बहुरि भगवान् केवली आयुपर्यंत विहार करि अर जब आयुका अंतर्मुहूर्त अवशेष रहिजाय, तदि जोगनिकी हलनचलन क्रिया रुके, ताकूं सूक्ष्मक्रियध्यान कहिये है। अर जोगनिका निरोधरूप व्युपरतक्रियानिवृत्ति नाम ध्यान है। जातें भगवान् केवलीकें समस्तपदार्थ अनंतगुणपर्यायसहित एकसमयमे साक्षात् प्रकट भये, अर अनंतसुखवीर्यादिक प्रकट भये। अब कोऊ पदार्थका ध्यान प्रकट होना रह्या नहीं, जिसका ध्यान करे। परतु संसारमें ध्यान करनेवालेकें मनवचनकायके जोग तो रुके है अर कर्मनिकी निर्जरा होय है, सो भगवान् केवलीकंहू आयुका अंतर्मुहूर्त बाकी रहिजाय तदि आपैआप जोगनिका तो निरोध होय है अर कर्मनिकी निर्जरा होय है, सो भगवानके ध्यानके दोऊ कार्य देखि उपचारतें ध्यान कह्या है। अर मुख्यपने केवलीकें ध्यावना कुछ रह्या है नहीं। आयुका अंत होइ तदि योगनिका अभाव होयही अर समस्त अघातिया कर्म झडैही। तातें ध्यानकासा कार्य देखि ध्यान कह्या है। ऐसे द्वादशगाथानिमैं शुक्लध्यानका वर्णन समाप्त कीया। अब ग्यारह गाथानिमै ध्यानका फल कहे हैं। गाथा—

इय सो खवओ ज्झाणं एयग्गमणो समस्सिदो सम्मं।
विवुलाए णिज्जराए वट्टदि गुणसेढिमारूढो ॥१८९८॥

अर्थ- -ऐसें एकाग्र है मन जाका ऐसा सम्यग्ध्यानकूं अंगीकार करता जो क्षपक सो गुणश्रेणीकूं आरूढ हुवा प्रचुर निर्जरामै वर्ते है—अंतर्मुहूर्तपर्यंत समय-समय असंख्यातगुणी कर्मकी निर्जरा करे है। अब ध्यानका माहात्म्य वर्णन करे हैं। गाथा—

सुचिरमवि संकिलिट्टं विहरंतं झाणसंवरविहूणं।
ज्झाणेण संवुडप्पा जिणदि अहोरत्तमेत्तेण ॥१८९९॥

अर्थ—ध्यान नामा संवरकरि रहित पुरुष किंचित् ऊन कोटिपूर्वपर्यंत क्लेशसहित तपश्चरण करता जिस कर्मकूं जीते है, तिस कर्मकूं ध्यानकरि संवररूप पुरुष अंतर्मुहूर्तमें जीते है। गाथा—

एवं कसायजुद्धंमि हवदि खवयस्स आउधं झाणं।
झाणविहूणो खवओ जुद्धे व णिरावुधो होदि ॥१९०१॥

अर्थ—ऐसें क्षपककै कषायनिके युद्धमें ध्यान आयुध है, ध्यानरहित क्षपक आयुधरहित है। जैसें रणभूमिमें आयुधरहित मल्ल वैरीके जीतनेकूं समर्थ नहीं होय है; तैसें ध्यानरूप आयुधकरि रहित क्षपक कर्मरूप वैरीके जीतनेकूं समर्थ नहीं होय है।

रणभूमीए कवचं, होदि झाणं कसायजुद्धम्मि।
जुद्धे व णिरावरणो झाणेण विणा हवे खवओ ॥१९०२॥

अर्थ—जैसें रणभूमिमें योद्धाकी रक्षा बकतरके पहरनेतें है; तैसें कषायनिके रणविषें क्षपककै ध्यान है सो बकतर है। जैसें रणभूमिविषें बकतरादिक आवरणरहित जोद्धा है; तैसें ध्यानरहित क्षपक है। गाथा—

झाणं करेइ खवयस्सोवट्ठंभं विहीणचेट्ठस्स।
थेरस्स जहा जंतस्स कुणदि जट्ठी उवट्ठंभं ॥१९०३॥

अर्थ—जैसें गमन करता वृद्धपुरुषकै लाठी अवलंबनरूप है–गिरतेकूं थांभे है; तैसें हीनचेष्टाका धारक क्षपककै ध्यान अवलंबनरूप है, रत्नत्रयतें चिगने नहीं देय है।

मल्लस्स णेहपाणं व कुणइ खवयस्स दढबलं झाणं।
झाणविहीणो खवओ रंगे व अपोसिवो मल्लो ॥१९०४॥

अर्थ—जैसें मल्लकै दुग्ध घृतादिकका पीवना दृढ बल करे है; तैसें क्षपककै यो ध्यान बलकी दृढता करे है। जैसें रणभूमिमें विना पोष्या मल्ल वैरीनिकूं नहीं जीति सके है; तैसें संन्यासका अवसरमें ध्यानरहित क्षपक कर्म-वैरीनिकूं नहीं जीति सके है।

वइरं रदणेसु जहा गोसीसं चंदणं व गन्धेसु।
वेरुलियं व मणीणं तह ज्झाणं होइ खवयस्स ॥१६०५॥

अर्थ—जैसे रत्ननिमैं हीरा प्रधान है, अर सुगंधद्रव्यनिमैं गोसीर चंदन प्रधान है, अर मणीनिमैं वैडूर्यमणि प्रधान है; तैसे क्षपकके समस्त व्रततपनिमैं ध्यान प्रधान है।

झाणं किलेससावदरक्खा रक्खाव सावदभयम्मि।
झाणं किलेसवसणे मित्तं मित्तंव वसणम्मि ॥१६०६॥

अर्थ—जैसे दुष्ट तिर्यंचनिके भयमें कोऊ योद्धा रक्षक होय है; तैसे क्लेशरूप दुष्टतिर्यंचनिके भयमें ध्यान रक्षक है। जैसे क्लेशव्यसनकष्टमें जो अपना मित्र होइ, सोही सहायी है; तैसे कष्टनिमै व्यसननिमैं ध्यानही मित्र है। गाथा—

ज्झाणं कसायवादे गब्भघरं मारुदेव गब्भघरं।
झाणं कसायउण्हे छाही छाहीव उण्हम्मि ॥१६०७॥

अर्थ—जैसे प्रबल पवन चलती होय तहां कोई अनेक गृहनिके बीचि गर्भगृहमें आय बैठ्या पुरुषकै पवनकी बाधा नहीं होय है; तैसे कषायरूप प्रबल पवनतैं ध्यानरूप गर्भगृहमें तिष्ठता पुरुषकै बाधा नहीं होय है। जैसे ग्रीष्मकी आतापमें छाया आताप निवारण करे है; तैसे कषायनिकी आतापकूं ध्यान छायाकीनांई निवारण करे है।

झाणं कसायडाहे होदि वरदहो दहोव डाहम्मि।
झाणं कसायसीदे अग्गी अग्गीव सीदम्मि ॥१६०८॥

अर्थ—जैसे ग्रीष्मकी दाहमें श्रेष्ठ जलका भरघा हुवा द्रह दाहकूं दूरि करे है; तैसे कषायनिके दाहके विषै ध्यान आताप हरनेकूं द्रहसमान है। तथा जैसे शीतजनितवेदनामें अग्नि उपकारक है; तैसे कषायरूप शीतके दूरि करनेकूं ध्यान अग्निसमान है। गाथा—

झाणं कसायपरचक्कभए बलवाहणड्ढओ राया ।

परचक्कभए बलवाहणड्ढओ होइ जह राया ॥१६०८॥

अर्थ—जैसे परचक्रका भयकूं होते बलवान् वाहनपरि चढ्या राजा रक्षा करे है; तैसे कषायरूप परचक्रका भय होते बलवान् साम्यभावरूप वाहनउपरि चढ्या ध्यान रक्षा करे है । गाथा—

झाणं कसायरोगेसु होदि वेज्जो तिगिंछिदे कुसलो ।

रोगेसु जहा वेज्जो पुरिसस्स तिगिंछिदे कुसलो ॥१६१०॥

अर्थ—जैसे रोग होते पुरुषकै रोगका इलाज करि नीरोग करनेवाला प्रवीण वैद्य है; तैसे कषायरोगकूं होते रोगकूं नाश करनेकूं समर्थ यो ध्यान प्रवीण वैद्य है । गाथा—

झाणं विसयछुहाए य होइ अण्णं जहा छुहाए वा ।

झाणं विसयतिसाए उदयं उदयं व तण्हाए ॥१६११॥

अर्थ—जैसे क्षुधावेदनाकी पीडाकूं अन्न दूरि करे है; तैसे विषयनिकी चाहनारूप क्षुधावेदनीके मेटनेकूं ध्यान समर्थ है । जैसे तृषाकी पीडा मेटनेकूं शीतल मिष्टजल समर्थ है; तैसे विषयनिकी तृष्णा मेटनेकूं ध्यान समर्थ है । गाथा—

इय झायंतो खवओ जइया परिहीणवायिओ होइ ।

आराधणाए तइया इमाणि लिंगाणि दंसेई ॥१६१२॥

अर्थ—जैसे ध्यानकूं करता क्षपकमुनि जिस अवसरमें वचनरहित होजाय, रोगादिकके वशतें जुबान थकि जाय, तो तिस अवसरमें आपके अंतःकरणमें च्यारि आराधनामै सावधानीके ऐते चिह्न वैयावृत्य करनेवालेकूं दिखावै, जिन चिह्ननितें अपना मांहिला अभिप्राय परिणाम ऊपरले टहल करनेवालेनिको प्रकट होजाय । गाथा—

हुंकारंजलिभमुहंगुलीहिं अच्छीहिं वीरमुट्ठीहिं।
सिरचालणेण य तहा सण्णं दावेदि सो खवओ ॥१६१३॥

अर्थ—हुंकार करनेकरि, अंजुली जोडनेकरि, भ्रकुटिका क्षेपण करिकै पंच, अंगुलीनिकं दिखावनेकरिकै, उपदेशदाताप्रति प्रसन्नदृष्टिकरि देखनेकरिकै, वीरकीनांई मुष्टिके बंधनकरिकै, मस्तकके चलावनेकरिकै इत्यादि अनेक संज्ञा—समस्या करिकै अपना आराधनामैं दृढ अभिप्रायकूं दिखावै, अपना धैर्य दिखावै, धर्ममें सावधानी दिखावै, वेदनाका विजयकूं तथा निर्भयताकूं तथा स्वरूपकी सावधानीकूं तथा संजममें दृढता उपदेशकी ग्रहणताकूं दिखावै। जुबान थकि जाय, बोलनेका सामर्थ्य घटि जाय, तोहू अपना धर्ममें लीनपणा समस्याकरि प्रकट दिखावै। गाथा—

तो पडिचरया खवयस्स दिंति आराधणाए उवओगं।
जाणंति सुदरहस्सा कदसण्णा कायखवएण ॥१६१४॥

अर्थ—क्षपक संज्ञाकरि अपना संकेत जिनकूं जणाया ऐसे वैयावृत्य करनेवाले मुनि हैं ते क्षपकका आराधनामें उपयोग दीया जाणत हैं; जो, हमारा परिश्रम सफल है, यह क्षपक धर्ममें सावधान है, परिणाम कायर नहीं है, उज्ज्वल है, ऐसं संज्ञा समस्यासूं जाणत हैं। ऐसं ध्यानका फल महिमा सोलह गाथानिमैं वर्णन कीया।

इति भगवती आराधना नाम ग्रंथविषै सविचारभक्तप्रत्याख्यान मरणके चालीस अधिकारनिविषै ध्यान नामा संतीसमां अधिकार दोयसै सात गाथानिमैं समाप्त कीया। ३७। अब अष्टादश गाथानिमैं लेश्या नामा अडतीसमां अधिकार वर्णन करे हैं।

इय समभावमुवगदो तह ज्झायंतो पसत्तझाणं च।
लेस्साहिं विसुज्झंतो गुणसेढिं सो समारुहदि ॥१६१५॥

अर्थ—ऐसे समभावकूं प्राप्त भया अर प्रशस्तध्यानकूं ध्यावता जो मुनि, सो लेश्याकी उज्ज्वलताकूं प्राप्त होय है, सो गुणनिकी श्रेणीकूं चढे है। गाथा—

जह बाहिरलेस्साओ किण्हादीओ हवंति पुरिसस्स ।
अब्भंतरलेस्साओ तह किण्हादी य पुरिसस्स ॥१६१६॥

अर्थ—जैसें पुरुषकै बाह्यलेश्या कृष्णादिक होय हैं; तैसें कृष्णादिकलेश्या पुरुषकै अभ्यंतर होय हैं । बाह्यलेश्या तो शरीरका रंग, सो आत्माका उपकारक अपकारक नहीं है । अर कषायनिकरि मन-वचन-कायकी परिणतिके विषैं रंग सो अभ्यंतरलेश्या है ।

भगव. आरा.

किण्हा णीला काओ लेस्साओ तिण्णि अप्पसत्थाओ ।
पइसइ विरायकरणो संवेगमणुत्तरं पत्तो ॥१६१७॥

अर्थ—कृष्ण नील कापोत ये तीन लेश्या अप्रशस्त हैं, बुरी हैं । जिसकै वीतरागपरिणाम हैं अर सर्वोत्कृष्ट धर्मानुरागकूं जो प्राप्त भया है, सो पुरुष इनि तीन लेश्यानिका त्याग करै । गाथा—

तेओ पम्मा सुक्का लेस्साओ तिण्णि विदुपसत्थाओ ।
पडिवज्जेइय कमसो संवेगमणुत्तरं पत्तो ॥१६१८॥

अर्थ—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या, ये तीन लेश्या प्रशस्त हैं-सराहनेयोग्य हैं । जो उत्कृष्ट धर्मानुरागकूं प्राप्त होइ, सो इनि तीन लेश्यानिकूं क्रमकरि प्राप्त होय है । अब इहां प्रकरण पाय लेश्यानिका लक्षणादिक संक्षेपतैं श्रीगोम्मटसार नाम सिद्धांतग्रंथतैं लिखिये है । अर विशेष जाननेका इच्छुक होय ते सोलह अधिकारकरि लेश्याका वर्णन श्रीगोम्मटसारतैं जानहु ।

ऐसा संक्षेप है—जो संसारी आत्माकी परिणति है, सो मन-वचन-कायके योगनिके द्वारैं है । अर कषायनिकरि लिप्त जे योगनिकी प्रवृत्ति, ते लेश्या जानो । इननी लेश्यानिकरिही प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, अनुभागबंध, ऐसें च्यारि प्रकारका बंध होय है । कषायनिका उदयस्थान असंख्यात लोकमात्र है, तिनकै असंख्यातका भाग दीये बहुभागप्रमाण तो अशुभलेश्याके स्थान हैं अर एकभागप्रमाण शुभलेश्याके स्थान हैं । इन छहू लेश्यावालेनिके जे कार्य हैं, तिनना ऐसा

दृष्टांत जानना—षट् लेश्याके धारक छह पुरुष कोऊ देशांतरकूं गमन करै थे, सो मार्ग भूलि वनमें प्रवेश कीया। तिस वनमें फलनिका भरया एक आम्रका वृक्ष देख्या, देखिकरि वृक्षके फलभक्षणका उपाय अपनी अपनी लेश्याके अनुसार चिंतवन करते भए। कृष्णलेश्याके धारककै तो ऐसा चिंतवन भया—जो, इस वृक्षकूं मूल पेडमैंतें काटि जमीमैं पटकि फलभक्षण करना। अर नीललेश्याका धारककै ऐसा परिणाम भया—जो, पेडकूं तो नहीं काटना अर डाहलेनिकूं काटि फलभक्षण करना। अर कपोत लेश्यावालेकै ऐसा परिणाम भया—जो, इसकी डाहलो काटि फलभक्षण करना। अर पीतलेश्यावालेकै ऐसा परिणाम भया—जो फलसहित है सो डालो काटि फलभक्षण करना। अर पद्मलेश्याके धारककै ऐसा परिणाम भया—जो अन्यवृक्षकं काहेकूं बाधा करै? जो फल खाइवेमें आवेगा, सोही तोडना। अर शुक्ललेश्याके धारककै ऐसा परिणाम भया—जो, भूमिऊपरि स्वतःही पडे फलभक्षण करना—वृक्षकूं बाधा नहीं होइ तैसें मोकूं फलभक्षण करना। ऐसें छह लेश्याके कर्म कहे। अब छह लेश्याके लक्षण कहे हैं।

जिसकै ऐसा परिणाम होय, ताकै कृष्णलेश्या है। तीव्र क्रोधी होय, एकबार वैर हुवा पाछै कोटि दान सन्मान करतेहू वैर नहीं छाडे, भंडवचन बोलनेका स्वभाव होय, युद्ध करनेका स्वभाव होय, धर्मदयारहित होय, दुष्ट होय, कोऊ उपायकरिहू जो वश नहीं होय, जो भोजन धन स्थानादिक देतेंहू, आदर सत्कार नम्रतादिक करतेंहू, मिष्टवचन कहतेंहू, यशकीर्तन करतेहू वश नहीं होय—अधिकाधिक विपरीतता धारै। यह लक्षण कृष्णलेश्याके धारकके कहे। औरहू कृष्णलेश्याके धारकके लक्षण कहे हैं—मंद कहिये स्वच्छंद होय, वा क्रियामैं मंद होय, बुद्धिहीन होय, वर्तमानकार्यकूं नहीं जानता होय, विज्ञान जो हित अहितके ज्ञानरहित होय, विषयनिमैं लंपटी होय, मानी अहंकारी होय, मायाचारी होय, करनयोग्यमें आलसी होय। ये कृष्णलेश्याके धारकके लक्षण कहे।

अब नीललेश्याके धारक के लक्षण कहे हैं। बहुत निद्रा जाकै होय, मायाचारकी जाकै अधिकता होय, धनधान्यादिकमैं जाकै तीव्र वांछा होय। ये नीललेश्याके धारक जीवके लक्षण कहे।

अब कापोतलेश्याके धारकके लक्षण कहे हैं—अन्यमैं कोप करै, बहुतप्रकार परकी निंदा करै, परकूं दूषण लगावै, शोक बहुत करै, भय बहुत राखै, परकूं नहीं सहि सकै, परका तिरस्कार करै, अपनी बहुतप्रकार प्रशंसा करै,

कोईका विश्वास नहीं करै, परकूं आपसमान मानै-जाणै। कोई आपकी बड़ाई करै तिसऊपरि संतुष्ट होय, आपकै अन्यकै हानि वृद्धि होतो नहीं जानै, रणविषै अपना मरण चाहै, अपनी स्तुति करै तिसकूं बहुत धन देवै, करनेयोग्यका विचार नहीं करै, ये कापोतलेश्याके धारक जीवके लक्षण होत हैं।

अब तेजोलेश्याका लक्षण कहे हैं—जो करनेयोग्य, नहीं करनेयोग्यकूं जानै, तथा सेवनेयोग्य नहीं सेवनेयोग्यकूं जानै, समस्तजीवनिमैं समदर्शी होय, दयाविषै वा दानविषै प्रीतियुक्त होय, मन-वचन-कायमें कोमलता होय। ये तेजोलेश्यावान् जीवके लक्षण होत हैं।

अब पद्मलेश्याके लक्षण कहे हैं-जो त्यागी होय, दानी होय, भद्रपरिणामी होय, शुभकार्य करनेका जाका स्वभाव होय, शुभकार्य करनेमें उद्यमी होय, कष्ट आवै वा उपद्रव आवै तिनकूं समभावतैं सहनेका जाका स्वभाव होय, मुनिजन तथा गुरुजनकी पूजा प्रशंसा करनेमें जाकै प्रीति होय। ये पद्मलेश्यावान् जीवके लक्षण हैं।

अब शुक्ललेश्याके लक्षण कहे हैं—जो पक्षपात नहीं करै, आगामी चाहरूप निदान नहीं करै, समस्तलोकनिमैं समभावरूप होय, रागद्वेषरहित होय, पुत्र मित्र कलत्रादिकनिमैं स्नेहरहित होय सो शुक्ललेश्याके धारक जीवके लक्षण हैं। ऐसें षट्लेश्या धारकनिके लक्षण कहे। औरहू गत्यादिक समस्त लेश्यानिकरिही बधे है, जातैं कषायाधिकारमें कषायनिकी शक्तिके च्यारि स्थान कहे हैं।

प्रथम तीव्रतर स्थान तो पाषाणकी लीकसमान है। दूजा पृथ्वीके भेदसमान तीव्र स्थान है। तीजा धूलिमैं भेदसमान मंद स्थान है। चोथा जलमें लीकसमान मंदतर स्थान है। ऐसैं तीव्रतर, तीव्र, मंद, मंदतर कषायनिके स्थान हैं। ते ये कषायनिके शक्तिस्थान असंख्यातलोकमात्र हैं। तिनकै असंख्यातका भाग दीजै, तहां बहुभागप्रमाण तो कषायनिके तीव्रतर शक्तिस्थान हैं। अर तिस एक भागकै असंख्यातका भाग दीजे, तिनमें बहुभागप्रमाण कषायनिके तीव्र शक्तिस्थान हैं। बहुरि जो एक भाग रह्या, तिसकै फेरि असंख्यातका भाग दीजे, तिनमें बहुभागप्रमाण कषायनिके मंद शक्तिस्थान हैं। बहुरि जो एक भाग रह्या, तिसप्रमाण कषायनिके मंदतर स्थान हैं। तिनमें जे कषायनिके पाषाणकी लीकसमान तीव्रतर स्थान हैं, तिनमैं तो एक कृष्णलेश्याही है। तिस कृष्णलेश्याके असंख्यात लोकप्रमाण परिणामनिके

असंख्यातका भाग दीजिये, तिनमै बहुभागमात्र कृष्णलेश्याके परिणामनिमै आयु नहीं बधे है । अर एक भागप्रमाण परिणामनिमै जो आयु बधै, तो एक नरकायु बधे, और नहीं बधै ।

भगव
आरा.

भावार्थ—तीव्रतर कषायके स्थाननिविषै एक कृष्णलेश्याही है । तिस कृष्णलेश्याके बहुतस्थाननिमै तो आयु बंधे नहीं । अर अल्पस्थाननिमै आयु बधै तो एक नरकहीकी बधै । बहुरि पृथ्वीभेदसमान कषायनिके तीव्र स्थान तिनमें केते स्थान तो केवल एक कृष्णलेश्याहीके हैं, तिनमें नरक आयुही बधे है । अर केतेक कृष्ण नील दोय लेश्याके स्थान कहे, तिनमैभी एक नरकका आयुही बधे है । अर कितने कृष्ण नील कापोत इनि तीन लेश्याके स्थान है तिनमें कितने स्थान नरक आयुके बंधनेयोग्य है, कितने नरक तिर्यंच दोय आयुके बधनके योग्य हैं, कितने स्थानक नरक तिर्यंच मनुष्य तीन आयुके बधनके योग्य हैं । बहुरि इस भूमेदसमान तीव्र कषायहीके शक्तिस्थान कृष्णादिक च्यारि लेश्याके योग्य है । तिनमै नरक तिर्यंच मनुष्य देव च्यारू आयुके बधनेकी योग्यता है । कितने कृष्णादिक पंचलेश्याके योग्य स्थान हैं, तिनमैहू च्यारू आयु बधनेकी योग्यता है । कितने कृष्णादिक छहू लेश्यायोग्य स्थान हैं, तिनमैहू च्यारू आयुके बंधनेकी योग्यता है । ऐसें तीव्र भूमेदसमान कषायके शक्तिस्थाननिमें लेश्याके स्थान छह अर आयुबंधके स्थान आठ कहे ।

धूलिभेदसमान कषायनिके मंदस्थान तिनमैं कितने शक्तिस्थान तो कृष्णादिक छह लेश्याके योग्य हैं, तिन छह लेश्याके योग्य परिणामनिमैं केते परिणाम तो नरकादिक च्यारि आयुके बंधनके योग्य हैं । कितने परिणाम नरकविना तीन आयुके बंधनके योग्य हैं । कितने परिणाम मनुष्य आयु अर देव आयु दोय आयुके बंधनके योग्य हैं,

। बहुरि कितने परिणाम नीलादिक पंच लेश्याके योग्य हैं, तिनमैं एक देव आयुहीका बंध है । कितने कपोतादिक च्यारि लेश्याके परिणाम हैं, तिनमें एक देव आयुहीका बधनेकी योग्यता है । कितने परिणाम पीतादिक तीन लेश्याके योग्य हैं, तिनमें कितने परिणामनिमें तो देव आयुका बंध है, कितनेमें आयुबंध नहीं है । बहुरि कितने परिणाम पद्मादि दोय लेश्याके योग्य हैं, तिनमें आयुका बंध नहीं है । कितने परिणाम शुक्लश्लेयाके योग्य है तिनमें भी आयुबंध नही है । ऐसें धूलिभेदसमान कषायनि के मंदशक्तिके स्थाननिमें लेश्याके स्थान छह कहे । अर आयुबंधके स्थानहू छह कहे । अर आयुबधके अभावके तीन स्थान कहे ।

बहुरि मंदतर जलरेखासमान कषायनिके शक्तिस्थाननिविषें एक शुक्ललेश्याही है। अर इसमें आयुका बंध नहीं है। ऐसें कषायनिके शक्तिस्थान च्यारि कहे, तिनमें तीव्रतर पाषाणकी लीकसमान कषायनिके असंख्यात स्थाननिमें एक कृष्णलेश्याही है, तातें लेश्यास्थान एक है। अर कितने स्थान आयुबंधनकैं जोग्य नहीं। कितने नरकायुकैं योग्य है। तातें आयुबंधाबंधस्थान दोय हैं। बहुरि पृथ्वीभेदसमान कषायके तीव्र शक्तिस्थाननिमैं कितने कृष्णलेश्याके, कितने कृष्ण नील दोयके, कितने कृष्णादिक तीनके, कितने कृष्णादिक च्यारिके, कितने कृष्णादिक पांचके, कितने कृष्णादिक छहके स्थान छह भये। अर इसमें आयुबंधके आठ स्थान हैं। केवल कृष्णके परिणामनिमैं नरकायुका, कृष्णनीलकेमैं नरकायुका, कृष्णनीलकपोतकेमं नरकायुका तथा नरकतिर्यक् आयुका, नरक तिर्यक् मनुष्य तीन आयुका ऐसें तीन स्थान हैं। कृष्णादिक च्यारि लेश्याके स्थानमे च्यारि आयुका एक स्थान है। कृष्णादि पंच लेश्याके स्थानमें च्यारि आयुका बंध है। कृष्णादि छह लेश्यानिके स्थानमें च्यारि आयुका एक स्थान है। ऐसे आयुबंधके आठ स्थान कहे।

बहुरि धूलिभेदसमान कषायनिके मंद शक्तिस्थाननिमें कितने कृष्णादि छह लेश्याके, कितने नीलादि पंच लेश्याके, कितने कपोतादि च्यारि लेश्याके, कितने पीतादि तीन लेश्याके, कितने पद्मादि दोय लेश्याके, कितने एक शुक्ल-लेश्याके, ऐसे लेश्यास्थान छह हैं। बहुरि कृष्णादिक छह लेश्याके स्थानमें आयुबंधके योग्य तीन प्रकार हैं। कितने च्यारि आयुके बंधके योग्य हैं, कितने नरकबिना तीन आयुके बंधके योग्य हैं, कितने मनुष्य देव दोय आयुके बंधके योग्य हैं। बहुरि नीलादि पंच लेश्याका स्थानमें एक देवायुका बंध है। कपोतादि च्यारि लेश्याके स्थानमें एक देवायुका बंध है। पीतादि तीन लेश्याके स्थानविषें कितनेकमें देवायुका बंध है। कितनेमें आयुबंध नहीं है। पद्मादि दोय लेश्याके स्थानमें आयुका बंध नहीं है। शुक्ललेश्याके स्थानविषेंहू आयुका बंध नहीं है। ऐसें धूलिभेदसमान कषायनिके मंद शक्तिस्थाननिमें लेश्याके स्थान तो छह कहे, अर आयुका बंध अबंध स्थान नव कहे। अब जलरेखासमान कषायनिके मंदतर शक्तिस्थानमें एक शुक्ललेश्याही है। अर इस मंदतर शक्तिस्थानकी शुक्ललेश्यामें आयुबंधकी योग्यता नहीं है।

कषायनिके चत्वारि शक्तिस्थानानि	तीव्रतर शिलाभेद समान.		तीव्र भूभेदसमान.								मंद धूलिभेदसमान.									मन्दतर जलरेखा-समान
चतुर्दशलेश्यास्थान १४	१ कृष्ण.		कृष्णादि १.	कृष्णादि २.	कृष्णादि ३.			कृष्णादि ४.	कृष्णादि ५.	कृष्णादि ६.	कृष्णादि ६.			नीलादि ५.	कपोतादि ४.	पीतादि ३.		पद्मादि २.	शुक्ल १.	शुक्ल १.
विंशतिरायुबंधाबंधस्थान २०	०	नरकायु १	नरकायु १.	नरकायु १	नरकायु १.	नरक तिर्यंच २.	नरक तिर्यंच, मनुष्य ३.	सर्व ४.	सर्व ४.	सर्व ४.	सर्व ४	नरकविना ३.	मनुष्य देव २	देवायु १.	देवायु १.	देवायु १	०	०	०	०

लेश्याके आधीनही गति है। तिनमैं कृष्णादिक तीन लेश्याके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदकरि नवप्रकार, तथा शुक्ललेश्यादिक शुभलेश्या तीनके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदकरि नवप्रकार, बहुरि कापोतलेश्याका उत्कृष्ट अंशतैं आगे तेजोलेश्या का उत्कृष्ट अंशतैं पहलो कषायनिका उदयस्थानके विषै आठ मध्यम अंश हैं, ऐसैं लेश्याके छब्बीस अंश भये। तहां आयुकर्मके बंधके योग आठ मध्यम अंश जानने। ते आठ मध्यम अंश अपकर्ष काल आठ तिनविषै संभवे हैं। वर्तमान जो भुज्यमान मनुष्य आयु ताकूं अपकर्ष्य अपकर्ष्य कहिये, घटाय घटाय बांधै सो अपकर्ष कहिये है। ताका उदाहरण कहे हैं—

किसी कर्मभूमिका मनुष्य वा तिर्यंचका भुज्यमान आयु पैंसठिसैं इकसठि वर्षका है तिस आयुके तीन भाग करिये, तिसमैं दोय त्रिभागके नियालीससैं चौवन वर्ष पर्यंत तो परभवसंबंधी आयुबंध करनेकी योग्यताही नहीं है, अर आयुके दोय भाग गये इकईससैं सत्यासी वर्ष रहै, तहां तीसरा भाग लागतेंही प्रथमसमयसूं लगाय अंतर्मुहूर्त पर्यंत काल-विषै परभवसंबंधी आयु बांधै, अर जो तिस अंतर्मुहूर्तमे नहीं बांधे तो तिस एकभागका २१८७ इकईससैं सत्यासी वर्षके तीन भाग कीजे, तिनमें चौदासैं अठावन वर्षप्रमाण दोय त्रिभागमें तो परभवसंबंधी आयुबंध करनेकी योग्यता नहीं है, अर एक भाग जो ७२९ सातसैं गुणतीस वर्षप्रमाण त्रिभाग रह्या, तिसका पहला समयसूं लगाय अंतर्मुहूर्तपर्यंत परभव-संबंधी आयुबंध करनेकी योग्यता है, अर जो तहांभी नहीं बंधै तो तिस सातसैं गुणतीसका दोय त्रिभाग जो च्यारिसैं छियासी वर्षपर्यंत तो आयु नहीं बंधै, अर दोयसैं तीयालीस वर्ष रह्या तिसकी आदिका अंतर्मुहूर्तमे आयु बांधै, अर जो तहां नहीं बंधै तो १६२ एकसो बासठि वर्ष गये पाछै इक्यासी वर्ष रहे, तिसकी आदिका अंतर्मुहूर्तमे बांधै, अर तहांहू नहीं बंधै तो इक्यासीका दोय त्रिभाग जो चौवन वर्ष गये पाछै सत्ताईस वर्ष रहे, तिसकी आदिका अंतर्मुहूर्तमें बांधे, अर तहांभी नहीं बंधे तो सत्ताईसका दोय त्रिभाग जो अठारह वर्ष गये पाछै नव वर्ष रहे, तिसकी आदिका अंतर्मुहूर्तमे बांधै, अर तहांभी नहीं बंधै तो नव वर्षके दोय त्रिभाग जो छह वर्ष गये तीन वर्षकी आदिका अंतर्मुहूर्तमे बंधे, अर तहांहूं नहीं बंधै तो तीन वर्षका दोय त्रिभाग जो दोय वर्ष गये पाछै एक वर्षकी आदिका अंतर्मुहूर्तमे बंधै, ऐसैं आयुके आठ अपकर्ष होय हैं अर आठ अपकर्षमें आयुका बंध होयही ऐसा नियम नही है।

अर आठसिवाय नवमा अपकर्ष होय नहीं है, तो आयुबंध कहां होइ सो कहे हैं। भुज्यमान आयुका आवलीके

असंख्यातवे भागप्रमाण काल अवशेष रहिजाय तिसके पहलो अंतर्मुहूर्त कालमात्र समयप्रबद्धनिकरि परभवका आयुको बांधि पूर्ण करे है। सो यो नियम कर्मभूमिके मनुष्यतिर्यंचनिका है। पूर्वे कहे जे आठ अपकर्षनिविषै केई जीव आठवार, केई सातवार, केई छहवार, केई पांचवार, केई च्यारवार, केई तीनवार, केई दोयवार, केई एकवार आयुके बध होने योग्य परिणाम तिनकरि परिणमे है। आयुके बंध होनेयोग्य परिणाम अपकर्षनिविषैही होइ ऐसा कोई स्वभावही है, कारण नहीं है। अर ऐसा कछु नियम नहीं है—जो इन अपकर्षनिविषै आयुका बंध होय ही होय। इन आठ त्रिभागनिविषै आयुके बध होनेकी योग्यता है, जो बंध होय तो होय, न होय तो नहीं होय। अर जाकै आठ त्रिभागनिमैं भी नहीं होइ, तिसके भुज्यमान आयुका अवशेष रह्या जो आवलीका असंख्यातवां भाग ताके पहलो अंतर्मुहूर्तप्रमाण समयप्रबद्धनिमैं आयुबध होयही, ऐसा नियम है। अर आठ त्रिभागसिवाय त्रिभाग नहीं कह्या है।

बहुरि देवनारकीनिकै आयुका छह महिना अवशेष रहे, तब आयुबंध करनेकी योग्यता है। पहलो आयुबंधकी योग्यताही नहीं है। तहां छह महीनामैं त्रिभाग त्रिभागकरि आठताईं अपकर्ष हो है, तिनविषै आयुबंध करनेकी योग्यता है। बहुरि एकसमय अधिक कोटिपूर्ववर्षतै लगाय तीनपल्यपर्यंत असंख्यात वर्षमात्र आयुके धारक भोगभूमियां तिर्यंच मनुष्य ये निरुपक्रम आयु है, इनकी आयु विषशस्त्रादिकके निमित्ततैं नहीं छिदे है, इनके अपने आयुका नव महीना अवशेष रहे आठ अपकर्षनिकरि परभवके आयुका बध होनेकी योग्यता है।

२
४
१
३
९
२७
८१
२४३
७२९
२१८७
६५६१

बहुरि इतना और विशेष जानना—जिस गतिसंबधी आयुबध प्रथम अपकर्षविषै होइ पीछे जो द्वितीयादिक अपकर्षनिविषै आयुका बध होइ, तो तिस प्रथमादि अपकर्षमे आयुका बंध भया सोही होइ द्वितीयादिकनिमैं अन्य आयुका बध नहीं होइ। किसी जीवकै आयुका बध एक अपकर्षहीविषै होय, केईकै दोय करि, केईकै तीन वा च्यारि वा पांच वा छह वा सात वा आठ अपकर्षनिकरि आयुका बध होय है। तहां आठ अपकर्षनिकरि परभवकी आयुके बंध करनहारे जीव थोरे है; तिनतै संख्यातगुणे सात अपकर्षनिकरि आयुके बंध करनेवाले हैं, तिनतै संख्यातगुणे छह अपकर्षनिकरि बध करनेवाले हैं। ऐसैं संख्यातगुणे संख्यातगुणे पांच च्यारि तीन दोय एक अपकर्षनिकरि आयुबध करनेवाले जानने। ऐसैं आयुके बधनेको योग्य लेश्यानिका मध्यम आठ अंश तिनको आठ अपकर्षनिकरि उत्पत्तिका क्रम कह्या। तिन मध्यम अंशनितै अवशेष रहे जे लेश्यानिके अठारह अंश ते च्यारि गतिविषै गमनकूं कारण है, मरण इन अठारह अंशनिकरि सहित होय, सो मरणकरि यथायोग्यगतिकूं जीव प्राप्त होय है।

शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट अंशसहित मरै, ते सर्वार्थसिद्धि नाम इंद्रकविमानमें प्राप्त होय हैं। शुक्ललेश्याका जघन्य अंशकरि मरै, ते जीव शतार सहस्रार स्वर्गविषै उपजे हैं। शुक्ललेश्याके मध्यम अंशकरि मरै, ते जीव आनत-स्वर्गके ऊपरि सर्वार्थसिद्धि इंद्रकका विजयादिक विमानपर्यंत यथासंभव उपजे हैं।

पद्मलेश्याके उत्कृष्ट अंशकरि मरे, ते जीव सहस्रार स्वर्गकूं प्राप्त होय हैं। पद्मलेश्याके जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव सनत्कुमार माहेंद्रस्वर्गकूं प्राप्त होय हैं। पद्मलेश्याके मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव सहस्रार स्वर्गके नीचे अर सनत्कुमार माहेंद्रके ऊपरि यथासंभव उपजे हैं।

बहुरि तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरे ते जीव सनत्कुमार माहेंद्रस्वर्गका अंतका पटलविषै चक्र नामा इंद्रकसंबंधी श्रेणीबद्ध विमाननिविषै उपजे हैं। तेजोलेश्याका जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव सौधर्म ईशानका पहला ऋतु नामा इंद्रक वा श्रेणीबद्ध विमाननिविषै उपजे हैं। बहुरि तेजोलेश्याके मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव सौधर्म ईशानका दूसरा पटलका विमल इन्द्रकतैं लगाय सनत्कुमार माहेंद्रका द्विचरम पटलका बलिभद्र नामा इंद्रकपर्यंत विमाननिविषै उपजे हैं।

बहुरि कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरे, ते जीव सातवीं नरकपृथ्वीका एकही पटल है ताका अवधिस्थानक नामा इंद्रकबिलविषै उपजे है। कृष्णलेश्याके जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव पंचम पृथ्वीका अंतपटलका तिमिस्र नामा इंद्रकविषै उपजे हैं। कृष्णलेश्याका मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव अवधिस्थान इंद्रकका च्यारि श्रेणीबद्ध बिल तिनविषै वा छठ्ठी पृथ्वीका तीनों पटलनिविषै वा पंचम पृथ्वीका चरमपटलविषै यथायोग्य उपजे है।

बहुरि नीललेश्याके उत्कृष्ट अंशकरि मरेते जीव पचमपृथ्वीका द्विचरमपटलका अंध नामा इंद्रकविषै उपजे हैं। केई पांचमा पटल विषैभी उपजे हैं। अरिष्टा पृथ्वीका अंतका पटलविषै कृष्णलेश्याका जघन्य अंशकरि मरे हुयेभी केई जीव उपजे हैं। विशेष इतना जानना-बहुरि नीललेश्याका जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव बालुकाप्रभा पृथ्वीका संप्रज्वलित नाम इंद्रकविषै उपजे हैं। बहुरि नीललेश्याका मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव वालुकाप्रभा पृथ्वीका संप्रज्वलितइंद्रकतैं नीचै अर चोथी पृथ्वीका सातों पटल अर पंचम पृथ्वीका अंध इंद्रकके ऊपरि यथायोग्य उपजे हैं।

कापोतलेश्याके उत्कृष्ट अंशकरि मरे, ते जीव तीसरी पृथ्वीका आठवाँ द्विचरम पटल ताके संज्वलित नाम इंद्रकविषें उपजे है। केई अंतका पटलसबधी सप्रज्वलित नाम इंद्रकविषें भी उपजे हैं। बहुरि कापोतलेश्याका जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव घर्मा पहली पृथ्वीका पहला सीमतक नाम इंद्रकविषें उपजे हैं। कापोतलेश्याके मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव पहली पृथ्वीका सीमंतक इंद्रकतें नीचें बारह पटलनिविषें, बहुरि मेघा तीसरी पृथ्वीका द्विचरम संप्रज्वलित इंद्रकतें ऊपरि सात पटलनिविषें, बहुरि दूसरी पृथ्वीका ग्यारह पटलनिविषें यथायोग्य उपजे हैं।

बहुरि इहां यहु विशेष है— कृष्ण नील कपोत तीन लेश्या तिनके मध्यम अंशकरि मरे ऐसे कर्मभूमियां मिथ्यादृष्टि मनुष्य वा तिर्यंच, अर तेजोलेश्याके मध्यम अंशकरि मरे ऐसे भोगभूमियां मिथ्यादृष्टि तिर्यंच मनुष्य ते भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देवनिविषें उपजे है। बहुरि कृष्ण नील कपोत पीत इनि च्यारि लेश्याके मध्यम अंशकरि मरे ऐसे तिर्यंच वा मनुष्य भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी वा सौधर्मस्वर्ग ईशानस्वर्गके वासी देव मिथ्यादृष्टि, ते बादर पर्याप्तक पृथ्वीकायिक अप्कायिक वनस्पतिकायिकविषें उपजे हैं। भवनत्रयादिककी अपेक्षा इहां पीतलेश्या जाननी। तिर्यंचमनुष्यनिकी अपेक्षा कृष्णादिक तीन लेश्या जाननी। बहुरि कृष्ण नील कपोतके मध्यम अंशकरि मरे ऐसे तिर्यंच वा मनुष्य ते तेजस्कायिक वातकायिक विकलत्रय असैनी पंचेंद्रिय साधारणवनस्पति इनिविषें उपजे हैं। बहुरि भवनत्रय आदि सर्वार्थसिद्धिपर्यंत देव अर घर्मादिक सातों पृथ्वीसंबधी नारकी ते अपनी अपनी लेश्याके अनुसारि यथायोग्य मनुष्यगति वा तिर्यंचगतिकूं प्राप्त होय हैं।

इहां इतना जानना— जिस गतिसंबंधी पूर्वें आयु बध्या होय, तिसही गतिविषें जो मरण होतें लेश्या होइ, ताके अनुसारि उपजे हैं। जैसें मनुष्यकै पूर्वें देवायुबंध भया, बहुरि मरण होतें कृष्णादि अशुभ लेश्या होइ तो भवनत्रिकविषें उपजै, ऐसैंही अन्यत्र जानना। ऐसें लेश्याके आधीन गतिका वर्णन किया।

अब गुणस्थाननिमैं कहे हैं—असंयतपर्यंत च्यारि गुणस्थानपर्यंत तो छहू लेश्या हैं। देशविरत आदि तीन गुणस्थाननिमैं पीतादिक तीन शुभलेश्याही हैं। तातैं ऊपरि अपूर्वकरणतें लगाय सयोगीपर्यंत छह गुणस्थाननिविषें एक शुक्ललेश्याही है। अयोगीगुणस्थान लेश्यारहित है। जातैं तहां योगकषायका अभाव है। उपशांतकषायादिक जहां कषाय नष्ट होगये ऐसे तीन गुणस्थाननिमैं कषायका अभाव होतेंहूं लेश्या उपचार करि कहिये हैं।

एदेसिं लेस्साणं विसोधणं पडि उवक्कमो इणमो ।
सव्वेसिं संगाणं विवज्जणं सव्वहा होई ॥१६१६॥

अर्थ—इन लेश्यानिकै उज्ज्वल करनेप्रति यो इलाज है । जो, समस्त परिग्रहका सर्वथा त्याग करना । परिग्रह-धारीनिकै लेश्याकी शुद्धता नहीं है । गाथा—

लेस्सासोधी अज्झवसाणविसोधीए होइ जीवस्स ।
अज्झवसाणविसोधी मंदकसायस्स णादव्वा ॥१६२०॥

अर्थ—जीवकै लेश्याकी शुद्धता परिणामनिकी शुद्धताकरि होइ है । अर परिणामनिकी शुद्धता मंदकषायके धारककै होइ है । गाथा—

मन्दा हुन्ति कसाया बाहिरसंगविजडस्स सव्वस्स ।
गिण्हइ कसायबहुलो चेव हु सव्वंपि गंथकलिं ॥१६२१॥

अर्थ—समस्त बाह्यपरिग्रहरहितके कषाय मंद होय है । जातै तीव्रकषायका धारकही समस्त परिग्रहरूप कालिमाकू ग्रहण करे हैं । तातै बाह्यपरिग्रहका अभावतै ही कषायनिकी मंदता होइ है । गाथा—

जह इन्धणेहिं अग्गी वड्ढइ विज्झाइ इंधणेहिं विणा ।
गंथेहिं तह कसाओ वड्ढइ विज्झाइ तेहिं विणा ॥१६२२॥

अर्थ—जैसे अग्नि है सो इंधनकरि बधै हैं, इंधनविना बुझि जाय है, तैसे कषाय हैं ते परिग्रहकरि बधै हैं, परिग्रहबिना शांत होइ जाय है । गाथा—

जह पत्थरो पडन्तो खोभेइ दहे पसण्णमवि पंकं ।
खोभेइ पसंतंपि कसायं जीवस्स तह गंथो ॥१६२३॥

अर्थ—जैसे जलके दहविषै पडता जो पत्थर, सो शांतहू कर्दमकू क्षोभरूप करे है, तैसे जीवके बध्या हुवाहू कषायकू परिग्रह है सो उदीरणाकू प्राप्त करे है । गाथा—

अब्भन्तरसोधीए गंथे णियमेण बाहिरे चयदि ।
अब्भन्तरमइलो चेव बाहिरे गेण्हदि हु गंथे ॥१६२४॥

अर्थ—अभ्यंतरपरिणामनिकी शुद्धताकरिकें नियमतें बाह्यपरिग्रहकूं त्यागै है । जाका अभ्यंतर परिणाम उज्ज्वल होजाय तिसकै बाह्यपरिग्रहका त्याग होयही है । अर जिसके अभ्यंतरपरिणाम मलिन है, सो बाह्यपरिग्रहकूं ग्रहण करैही । जिसकै अभ्यंतर राग है, सो परिग्रह ग्रहण करै । जिसकै अभ्यंतर राग नष्ट हो गया, सो बाह्यपरिग्रहमें ममत्व नहीं करे है । गाथा—

अब्भन्तर सोधीए बाहिरसोधी वि होदि णियमेण ।
अब्भन्तरदोसेण हु कुणदि णरो बाहिरे दोसे ॥१६२५॥

अर्थ—अभ्यंतर शुद्धताकरिकें बाह्यशुद्धता नियमतें होइ है । अर अभ्यंतर दोषकरिकें पुरुष बाह्य दोषनिकूं करे है ॥ गाथा—

जह तण्डुलस्स कोण्डयसोधी सतुसस्स तीरदि ण कादुं ।
तह जीवस्स ण सक्का लिस्सासोधी ससंगस्स ॥१६२६॥

अर्थ—जैसे तुषसहित तंदुलकी अभ्यंतर लाली दूरि करि उज्वलता करनेकूं नहीं समर्थ होइये है, तैसे परिग्रह-सहित जीवके लेश्याकी शुद्धता करनेकूं नहीं समर्थ होइए है । अब लेश्याके भेदतें आराधनामैं भेद होइ, तिनकूं निरूपण करे है ।

सुक्काए लेस्साए उक्कस्सं अंसयं परिणमित्ता ।
जो मरदि सो हु णियमा उक्कस्साराधओ होइ ॥१६२७॥

अर्थ—शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट अंशरूप परिणमिकरिकैं जो मरण करे है, सो नियमतें उत्कृष्ट आराधनाका धारक होय है । गाथा—

खाइयदंसणचरणं खओवसमियं च णाणमिदि मग्गो।
तं होइ खीणमोहो आराहित्ता य जो हु अरहन्तो ॥१६२८॥

अर्थ--उत्कृष्ट आराधनाका धारकके क्षायिक सम्यग्दर्शन, क्षायिकचारित्र, अर क्षायोपशमिक ज्ञान ये मोक्षका मार्ग है, सो बारमा गुणस्थानका धारक इनिकूं आराधिकरिके अरहंत होइ हैं ॥ गाथा--

जे सेसा सुक्काए दु अंसया जे य पम्मलेस्साए।
तल्लेस्सापरिणामो दु मज्झिमाराधणा मरणे ॥१६२९॥

अर्थ--बहुरि अवशेष जे शुक्ललेश्याके अंश अर पद्मलेश्याके बाकीके अंश हैं, तिनके परिणाम मरणकालमें मध्यम आराधनाके हैं। गाथा--

तेजाए लेस्साए ये अंसा तेसु जो परिणमित्ता।
कालं करेइ तस्स हु जहण्णियाराधणा भणिदा ॥१६३०॥

अर्थ--बहुरि ये तेजोलेश्या के अंश है तिनरूप परिणमिकरिके जो मरण करे है, तिसके जघन्य आराधना परमागम में कही है। गाथा--

जो जाए परिणमित्ता लेस्साए संजुदो कुणइ कालं।
तल्लेसो उववज्जइ तल्लेस्से चेव सो सग्गे ॥१६३१॥

अर्थ--जो संयमी जैसी लेश्यारूप अपना परिणमनकरि मरण करे हैं, सो तैसी लेश्यावाले स्वर्गमें तिस लेश्याका धारक देव होय है। गाथा--

अध तेउपउमसुक्कं अदिच्छिदो णाणदंसणसमग्गो।
आउक्खया दु सुद्धो गच्छदि सुद्धिं चुयकिलेसो ॥१६३२॥

भगव. आरा.

अर्थ—बहुरि जो तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्याकूं उल्लंघन करि लेश्याके अभावकूं प्राप्त भये हैं, ते ज्ञानदर्शनकरि पूर्णताने प्राप्त भये आयुका क्षय होतें समस्तक्लेश रहित शुद्ध हुवा निर्वाणकूं प्राप्त होय है।

भगव. आरा

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यान मरणके चालीस अधिकारनिविर्षं लेश्या नामा अडतीसमा अधिकार अठारह गाथानिमें समाप्त किया। अब आराधनाके फलका गुणतालीसमा अधिकार इकतालीस गाथानिमें वर्णन करे हैं। गाथा—

एवं सुभाविदप्पा ज्झाणोवगओ पसत्थलेस्साओ।
आराधणापडाय हरइ अविग्घेण सो खवओ ॥१९३३॥

अर्थ—ऐसे भलेप्रकार आत्माकी भावना करता अर ध्यानकूं प्राप्त भया अर प्रशस्तलेश्याका धारक जो क्षपक सो निर्विघ्नताकरि आराधनापताकाकूं हरे है-ग्रहण करे है। गाथा—

तेलोक्कसव्वसारं चउगइसंसारदुक्खणासयरं।
आराहणं पवण्णो सो भयवं मुक्खपडिमुल्लं ॥१९३४॥

अर्थ—त्रैलोक्यका समस्त सार अर चतुर्गतिसंसारके दुःखके नाश करनेवाली, अर मोक्षप्रति मोल ऐसी जो आराधना, ताहि प्राप्त होइ, सो भगवान् है। गाथा—

एवंजधक्खादविधिं संपत्ता सुद्धदंसणचरित्ता।
केई खवन्ति खवया मोहावरणान्तरायाणि ॥१९३५॥

अर्थ—ऐसे यथाख्यातचारित्रकी विधिकूं प्राप्त भये अर शुद्ध है सम्यग्दर्शन अर सम्यक्चारित्र जिनके ऐसे केई क्षपक मोहनीय अर ज्ञानावरण दर्शनावरण अर अन्तराय कर्मका नाश करे है। गाथा—

केवलकप्पं लोगं संपुण्णं दव्वपज्जयविधीहिं।
ज्झायन्ता एयमणा जहन्ति आराहया देहं ॥१९३६॥

अर्थं—बहुरि केवलज्ञानके ज्ञेयपणाकरिके योग्य ऐसा सम्पूर्ण लोककूं द्रव्यपर्यायके भेदनिकरि एकाग्र हुवा जाणता ऐसे आराधक जे भगवान् अरहन्त ते देहकूं त्यागे है। गाथा—

सव्वुक्कस्सं जोगं जुञ्जन्ता दंसणे चरित्ते य ।
कम्मरयविप्पमुक्का हवन्ति आराधया सिद्धा ॥१९३७॥

अर्थ—आराधना के धारक सर्वोत्कृष्ट योगकूं दर्शनचारित्रमें युक्त करते कर्मरूप रजकरि रहित भये सिद्ध होत हैं । गाथा—

भगव. आरा.

इयमुक्कस्सियमाराधणमणुपालेत्तु केवली भविया ।
लोगग्गसिहरवासी हवन्ति सिद्धा धुयकिलेसा ॥१९३८॥

अर्थ—ऐसे उत्कृष्ट आराधनाकूं अनुक्रमतें पालिकरिके, अर केवलज्ञानी होइकरिके, अर समस्तकर्मबन्धरूप क्लेशकूं उडायकरिके लोकाग्रशिखर में बसनेवाले सिद्ध होय हैं । गाथा—

अह सावसेसकम्मा मलियकसाया पणट्ठमिच्छत्ता ।
हासरइअरइभयसोगदुगुंछावेयणिम्महणा ॥१२३९॥
पंचसमिदा तिगुत्ता सुसंवुडा सव्वसंगउम्मुक्का ।
धीरा अदीणमणसा समसुहदुक्खा असंमूढा ॥१९४०॥
सव्वसमाधाणेण य चरित्तजोगे अधिट्ठिदा सम्मं ।
धम्मे वा उवजुत्ता ज्झाणे तह पढमसुक्के वा ॥१९४१॥
इय मज्झिममाराधणमणुपालित्ता सरीरयं हिच्चा ।
हुन्ति अणुत्तरवासी देवा सुविसुद्धलेस्सा य ॥१९४२॥

अर्थ—अथवा जिनके कर्म नहीं क्षिपे, अवशेष रहि गये ऐसे, अर मथित भये हैं कषाय जिनके, अर नष्ट भया है मिथ्यात्व जिनका, अर हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा अर वेद इनकूं मथन करि मन्द करि दीये अर पंचसमिति करि सहित, अर तीन गुप्तिकरि सहित, अर संवरकूं धारते, अर समस्तसंगरहित, अर धीरवीर, अर परिणाम में दीनतारहित,

अर सुखदुःखमे समभावसहित, अर देहमें वा रागादिकांमे मूढतारहित, समस्त सावधानीकरि चारित्रकूं पालनेमें सम्यक् आरूढ भये, धर्मध्यानमे वा प्रथम शुक्लध्यानमें जे उपयुक्त ते पुरुष ऐसे मध्यम आराधनाकूं पालिकरिके अर शरीरकूं छांडिकरिके शुक्ललेश्याके धारक अनुत्तरविमाननिमे वसनेवाले अहमिंद्रदेव होय है । गाथा—

दंसणणाणचरित्ते उक्किट्ठा उत्तमोपधाणा य ।
इरियावहपडिवण्णा हवन्ति लवसत्तमा देवा ॥१६४३॥
कप्पोवगा सुराजं अच्छरसहिया सुहं अणुहवन्ति ।
तत्तो अणन्तगुणिदं सुहं दु लवसत्तमसुराणं ॥१६४४॥

अर्थ—जे इहां दर्शनज्ञानचारित्रविषे उत्कृष्ट हैं, उत्तम हैं, प्रधान हैं, ईर्यापथकूं प्राप्त भये हैं, ते "लवसत्तम देवाः" कहिये अहमिंद्रदेव होय हैं । अप्सरांनिकरि सहित कल्पवासी देव जो सुख अनुभवे हैं, तातें अनन्तगुणितसुख अहमिंद्रदेव अनुभवे हैं-भोगे हैं । गाथा—

णाणम्मि दंसणम्मि य आउत्ता संजमे जहक्खादे ।
वढ्ढिदतवोवधाणा अवहियलेस्सा सददमेव ॥१६४५॥
पजहिय सम्मं देहं सददं सव्वगुणावढ्ढिदगुणड्ढा ।
देविन्दचरमठाणं लहन्ति आराधया खवया ॥१६४६॥

अर्थ—ज्ञानमें, दर्शनमें, यथाख्यातचारित्रमें जे अत्यन्त युक्त हैं, अर तपके परिकरकूं बधावते हैं अर निरंतर लेश्याकी उज्ज्वलताकूं प्राप्त भये हैं अर निरन्तर सर्वगुणनिकरि वधितगुणनिकरि सहित हैं ऐसे आराधना के धारक क्षपक देह का सम्यक् त्याग करिके सोलमा स्वर्गका इन्द्र होय हैं । गाथा—

सुयभत्तीए विसुद्धा उग्गतवोणियमजोगसंसुद्धा ।
लोगंतिया सुरवरा हवन्ति आराधया धीरा ॥१६४७॥

जदि दा सुभाविदप्पा वि चरिमकालम्मि संकिलेसेण ।
परिवडदि वेदणट्टो खवग्रो संथारमारूढो ॥१६५७॥

किं पुण जे श्रोसण्णा णिच्चं जे वा वि णिच्चपासत्था ।
जे वा सदा कुसीला संसत्ता वा जहाछंदा ॥१६५८॥

गच्छंहि केइ पुरिसा पक्खी इव पंजरंतरणिरुद्धा ।
सारणपंजरचकिदा श्रोसण्णागा पविहरन्ति ॥१६५९॥

श्रविसुद्दभावदोसा कसायवसगा य मंदसंवेगा ।
श्रच्चासादणसीसा मायाबहुला णिदाणकदा ॥१६६०॥

सुहसादा किमज्झा गुणसायी पावसुत्तपडिसेवी ।
विसयासापडिबद्धा गारवगरुया पमाइल्ला ॥१६६१॥

समिदीसु य गुत्तीसु य श्रभाविदा सीलसंजमगुणेसु ।
परतत्तीसु पसत्ता श्रणाहिदा भावसुद्धीए ॥१६६२॥

गथाणियत्ततण्हा बहुमोहा सबलेसवणासेवी ।
सद्दरसरूवगंधे फासेसु य मुच्छिदा घडिदा ॥१६६३॥

परलोगणिप्पिवासा इहलोगे चेव जे सुपडिबद्धा ।
सज्झायादीसु य जे श्रणुट्ठिदा संकिलिट्ठमदी ॥१६६४॥

सव्वेसु य मूलुत्तरगुणेसु तह ते सदा श्रइचरन्ता ।
ण लहन्ति खवोवसमं चरित्तमोहस्स कम्मस्स ॥१६६५॥

भगव.
श्रारा.

भगव.
आरा.

अर्थ—जो वर्तमानमें भलेप्रकार आया है आत्मा जानें अर संस्तरमें आरूढ भया ऐसाहू क्षपक जो मरणके अवसरमें रोगादिककी वेदनाकरि पीडित हुवा सक्लेशकारकें पतन करे है; तो जे नित्यही अवसन्न हैं, नित्यही पार्श्वस्थ हैं, सदाकाल कुशील हैं समक्त हैं, स्वच्छद है, ते नहीं पतन करें कहा ? अपि तु पतन करैहो । जैसें कर्दममें फंस्या वा मार्गमें थकि गया तिसकूं अवसन्न कहिये है, तैसें जो उपकरणमें, वसतिकामें, संस्तर के सोधनेमें, स्वाध्यायमें, विहार करत भूमिके सोधनेमें गोचरीकी शुद्धितामें ईर्यासमित्यादिकनिमें, स्वाध्यायके कालका अवलोकनमे, स्वाध्यायका विसर्जन जो समाप्ति इत्यादिकमें अनुद्यमी रहै-प्रवर्तनेमें उद्यमी नहीं रहै, छह आवश्यकनिमें आलसी वा आवश्यकमें हीनता करें वा अधिकता करें, वा वचनकायतें आवश्यक करें भावनितें नहीं करें, चारित्रके पालने में खेदकूं प्राप्त होय, सो अवसन्नजातिका भ्रष्टमुनि है ।१।

बहुरि जैसें कोऊ पुरुष शुद्धमार्गकूं देखताहू तिस मार्गके समीप अन्यमार्गकरिकें गमन करे, तैसें कोऊ निरतिचार संयमका मार्गकूं जानताहू संयममें नहीं प्रवर्ते-संयमसाक दोखे ऐसा मार्गकरि प्रवर्ते, सो पार्श्वस्थ है । भोजन देने वाले दातारकी भोजन लीये पहली स्तुति करें वा भोजन कीये पाछें स्तवन करें, तथा उत्पादनदोष एषणादोषकरि सहित दुष्टभोजन करें, एकवसतिकामें नित्य वसें—मुनीश्वरनिका एकवसतिकामें ममता बांधि रहना चारित्रकूं नाश करे है, तथा एकसंस्तरमें नित्य शयन करें, तथा एक क्षेत्रमें बसें, तथा गृहस्थनिके गृहके मध्य बैठना, गृहस्थनिके उपकरणकरि प्रवृत्ति करना, तथा दुष्टतातें भूमिका प्रतिलेखन करना—शोधना, तथा मयूरपिच्छिका विना दुष्टप्रतिलेखनतें शोधना, वा औरहू कारणबिना पादप्रक्षालनादि वारम्बार करना, सो पार्श्वस्थ नाम भ्रष्ट मुनिके लक्षण हैं ।।२।।

बहुरि जाका लोकमें प्रकट कुत्सित कहिये खोटा स्वभाव होइ, सो कुशील है । सो कुशील अनेक प्रकार हैं । कोऊ तौ कौतुककुशील है । जो औषध लेपन विद्याके प्रयोगकरिकें सौभाग्यका कारण राजद्वारमे कौतुक दिखावें, सो कौतुककुशील है । कोऊ भूतिकर्मकुशील है । जो भूति जो धूलि वा भस्म तथा सिरसूं वा फूल वा फल वा जलादिकनिकूं मंत्रकरि रक्षा करें, वशीकरण करें, सो भूतिकर्मकुशील है । बहुरि अंगुष्ठप्रसेनिका, अक्षरप्रसेनी, शशिप्रसेनी, सूर्यप्रसेनी, स्वप्नप्रसेनी इत्यादिकविद्यानिकरि लोकनिकूं रंजायमान करें, सो प्रसेनिकाकुशील है । बहुरि विद्यामंत्र औषध औरलोकनिकूं रागी करनेवाले प्रयोगनिकरि वा असंयमीनिका इलाज करें, सो अप्रसेनिकाकुशील है । बहुरि जो अष्टांगनिमित्त जानि लोकनिकूं आज्ञा करें, सो निमित्तकुशील है । बहुरि अपनी जाति वा कुलका महिमाका प्रकाश करि जो भिक्षादिकनिकूं उपजावें, सो आजीवकुशील है । बहुरि कोऊकरि उपद्रवकूं प्राप्त भया परके शरणानें प्रवेश करें वा अनाथ-

शालामैं प्रवेश करि आशाकूं करै, सोहू आजीवकुशील है। बहुरि विद्याप्रयोगादिक करिकै परके द्रव्यहरणादिक डिभ दिखावनेमें तत्पर वा इन्द्रजालादिक करिकै जो लोककूं विस्मयरूप करै, सो कुहनकुशील है। बहुरि जो वृक्षनिकी वा गुल्म जे छोटे वृक्षनिकी पुष्पनिकी फलनिकी उत्पत्ति दिखावै वा गर्भस्थापनादिक करै, सो संमूर्छनाकुशील है। जो कीटादिक त्रसजातिका अर वृक्षादिकनिका फलपुष्पादिकनिका गर्भका नाश करै वा शाप देवै, सो प्रपातनकुशील है। बहुरि जो क्षेत्र चतुष्पद सुवर्ण इत्यादिक परिग्रह ग्रहण करै, तथा हरित कंदफलका भोजन करै, उद्देश्या आहार करै, अशुद्धवसतिका ग्रहण करै, परस्त्रीनिकी कथानिमैं जाकै राग होइ, मैथुनसेवामैं तत्पर होइ, प्रमादी होइ, विकाररूप जिनका वेश होय, ते समस्त कुशीलजातिके भ्रष्ट मुनि हैं। इनकी संगतितै कुगतिमें पतन होय है ॥३॥

अब संसक्तके लक्षण कहे हैं। जो सुन्दरचारित्रमें प्रीति नहीं करै, कुचारित्रमें प्रीतिका धारक होइ, नटकीनांई अनेक खोटे रूप भेषका ग्रहण करनेवाला होइ, पचेंद्रियनिके विषयनिमें आसक्त होइ, तीन गौरवतामें आसक्त होइ, स्त्रीनिके विषयनिमें संकल्पकूं धारता होइ, गृहस्थजननिका संसर्ग जाकूं प्रिय होय, सो संसक्तजातिका भ्रष्टमुनि है ॥४॥

जो उन्मार्गचारी संघबाह्य प्रवर्तन एकाकी करता होइ, सो स्वच्छंद है। जिसके आहार विहार, वेष, उपदेश, शयन, आसन, लोंच त्याग ग्रहण जिनसूत्री आज्ञारहित यथेच्छ होइ, सो स्वच्छंद है ॥५॥ ऐसें पंचजातिके भ्रष्ट तपस्वी कहे, इनके आराधना स्वप्नमें नहीं होय है।

बहुरि जे भावनिमैतें शंकादिकदोष दूरि नहीं कीये होइ, अर जे कषायनिके वशवर्ती हैं, अभिमानादिक कषायनिकूं त्यागनेकूं समर्थ नहीं हैं, अर जिनकै धर्ममें अनुराग अति मंद है, अर जे सम्यग्दर्शनादिक गुण अर गुणनिके धारने वाले पुरुषनिका अपमान करनेवाले है, अर प्रचुर मायाचारकूं प्राप्त भये हैं, अर निदान करनेवाले हैं, अर जे इन्द्रियनिके सुखके स्वादमें लपटी हैं, मोकूं कहा प्रयोजन है ऐसे संघके कार्यमें अनादररूप प्रवर्ते हैं, बहुरि सम्यग्दर्शनादिक गुणनिमें सूते हैं—उत्साहरहित हैं, अर मिथ्यात्व असंयम कषायनिमें प्रचुर प्रवृत्ति करावनेवाले जे वैद्यकशास्त्र मायाचारके सिखावने वाले कौटिल्यशास्त्र, स्त्रीपुरुषनिके लक्षणशास्त्र, धातु वाद काम लोभ विषय मायाचारके बधावनेवाले काव्य नाटकादिक शास्त्र, वा चोरविद्याके शास्त्र वा शस्त्रविद्याके जीवनिके मारने पकडने दाव घाव करनेके शास्त्र, तथा चित्रकला गंधर्वकलाके तथा गंधादिक करनेके खोटे शास्त्र हैं, तिनकूं पापसूत्र कहिये हैं"। इनमें जो अभ्यास आदर करवावाले हैं ते अर

भग०.
आरा.

वांछितकी विषयनि प्राप्तिके अर्थि जिननें आशा बाधि राखी है, अर तीन गारवकरि आपकूं बडा मानि रहे हैं, अर जे विकथादिक पंचदशप्रमादनिमें आसक्त हैं, अर जे पंचसमितिविषे, तीन गुप्तिविषे, अर शीलसयम गुणनिविषे भावनारहित हैं, अर जे परनिंदाविषे आसक्त हैं, अर जिनके भावनिकी शुद्धिमें अनादर है, अर जिनकी परिग्रहमें तृष्णा नहीं घटी है, अर जो मोह अज्ञान ताकी आधिक्यतासहित हैं, अर जे सदोषवस्तुका सेवनमे तत्पर है, अर जे शब्द रस रूप गंध स्पर्शरूप जे इन्द्रियनिके विषय तिनमें मूर्छित है–अति आसक्त हैं, बहुरि जे परलोकके हितमें निर्वांछिक हैं, अर जे इस लोकसंबंधी कार्यमें जाग्रत है, अर जे स्वाध्यायादिक धर्मकार्यनिमे अनुद्यमी है–आलसी है, अर जे संक्लेशरूप बुद्धिके धारक हैं, बहुरि जे समस्त मूलगुण उत्तरगुणनिमें सदाकाल अतिचारदोष लगावे हैं, ते चारित्रमोहके क्षयोपशमकूं नहीं प्राप्त होय हैं । गाथा–

एवं मूढमदीया अवन्तदोसा करेन्ति जे कालं ।
ते देवदुब्भगत्तं मायामोसेण पावन्ति ॥१६६६॥

अर्थ—ऐसें जे पूर्वोक्तप्रकार मुढबुद्धि, नहीं वमन कीये हैं दोष जिनने, ऐसे दोषनिके धारक जे काल करे हैं, ते मायाचारकरिकें असत्यवचनकरिकें देवदुर्भगता जो देवनिमें नीचता ताकूं प्राप्त होय हैं । गाथा–

किमज्झ णिरुच्छाहा हवन्ति जे सव्वसंघकज्जेसु ।
ते देवसमिदिवज्झा कप्पन्ते हुन्ति सुरमेच्छा ॥१६६७॥

अर्थ—बहुरि जे समस्त संघके कार्यनिमे उत्साहरहित हैं, "जो, मोकूं कहा ? मेंही हूं कहा ? मोसूं मेरा ही कार्य नहीं बणें ! मै कौनका करूं ?" ऐसें समस्त संघके हितमें कार्यमें वैयावृत्यमें अनादरकरि सहित हैं ते देवनिकी सभाके बाह्य वसनेवाले सुरम्लेछ होय हैं, देवनिमें म्लेछसमान हैं । गाथा—

कंदप्पभावणाए देवा कंदप्पिया मदा होंति ।
खिब्भिसयभावणाए कालगदा होंति खिब्भिसया ॥१६६८॥

अर्थ—जो असत्यवचन, निंद्यवचन आप बोलें औरनिकूं बुलावै, अर कामरतिमें लीन, सो कंदर्प भावना है । सो कंदर्पभावनाकरिके कंदर्पदेवनिमें उपजे हैं । बहुरि जो तीर्थंकरनिकी आज्ञातें प्रतिकूल होइ अर संघका तथा चैत्य जो

प्रतिमाका तथा जिनसूत्रका विनयरहित अविनयी होइ, मायाचारी होय, सो किल्विषभावना है । सो किल्विषभावनाकरि जो मरण करे है, सो किल्विषजातिके देवनिमें उपजे हैं । गाथा—

अभिजोगभावणाए कालगदा आभिजोगिया हुन्ति ।
तह आसुरीए जुत्ता हवन्ति देवा असुरकाया ।।१६६८।।

भगव. आरा.

अर्थ—जो साधु तंत्रमंत्रादिक बहुत भावनिनें 'अभियुंक्ते' नाम करे है, तथा हास्यादिक बहुत वाग्जालनिकूं करे हैं, सो अभियोगभावना है । अभियोगभावनाकरिके वाहनजातिका आभियोग्यदेवनिमें उपजे हैं । बहुरि जो क्रोधी मानी मायावी होइ तथा तपमे चारित्रमें संक्लेशसहित होइ अर दृढवैरमें जाकी रुचि होइ, सो आसुरी भावनासहित है । सो जीव आसुरीभावनाकरि असुरदेवनिमें उपजे है । गाथा—

सम्मोहणाए कालं करित्तु दो दुन्दुगा सुरा हुन्ति ।
अण्णंपि देवदुग्गइ उवयन्ति विराधया मरणे ।।१६७०।।

अर्थ— उन्मार्गका उपदेश देना, अर मार्ग जो रत्नत्रय ताका नाश करना, अर सांचे मार्गकूं बिगाडि अपना नवीनमार्गका स्थापन करना, मिथ्यात्वके उपदेशकरि जगतके मोह उपजावना ऐसी सम्मोहीभावनाकरि मरण करे हैं, ते संमोहजातिके स्वच्छंद देवनिमें उपजे हैं । मरणकालमे दर्शन-ज्ञान-चारित्रके विराधक है ते अन्यहू देवदुर्गतिनिकूं प्राप्त होय हैं । गाथा—

इय जे विराधयित्ता मरणे असमाधिणा मरेज्जण्ह ।
तं तेसि बालमरणं होइ फलं तस्स पुव्वुत्तं ।।१६७१।।

अर्थ—इस प्रकार जे मरणकालमें रत्नत्रयकी विराधना करि असमाधि जो धर्ममें असावधानताकरि मरण करे हैं, तिनके सो बालमरण होय है । अर बालमरणका फल पूर्वे ग्रन्थकी आदिमें वर्णन कीया, सोही संसारमें भ्रमण करावने वाला जानना ।

जे सम्मत्तं खवया विराधयित्ता पुणो मरेज्जण्हु ।

ते भवणवासिजोदिसभोमेज्जा वा सुरा होंति ॥१९७२॥

अर्थ—बहुरि जे क्षपक सम्यक्त्वकी विराधना करि अर मरण करे हैं, ते भवनवासी वा ज्योतिष्कदेव वा व्यंतरदेव होय हैं । गाथा—

दंसणणाणविहूणा तदो चुदा दुक्खवेदणुम्मीए ।

संसारमण्डलगदा भमन्ति भवसागरे मूढा ॥१९७३॥

अर्थ—बहुरि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकरि हीन ऐसे मूढ मिथ्यादृष्टि भवन व्यंतर ज्योतिषी देवनितें चयकरिके संसारमंडलकूं प्राप्त भये संसाररूप समुद्रमें भ्रमण करे हैं । कैसाक है संसारसमुद्र ? दुःखवेदनाही है लहरी जामें । भावार्थ—मिथ्यादृष्टि आराधनाका नाश करि देवदुर्गतिकूं प्राप्त होइ बहुरि संसारहीमें अनंतानंतकाल परिभ्रमण करे हैं ।

जो मिच्छत्तं गन्तूण किण्हलेस्सादिपरिणदो मरदि ।

तल्लेस्सो सो जायइ जल्लेस्सो कुणवि सो कालं ॥१९७४॥

अर्थ—जो मिथ्यात्वकूं प्राप्त होइकरिकें कृष्णादिकलेश्यारूप परिणामनें प्राप्त होइ जो मरे है, सो जिस लेश्याकूं धारण करि मरे तिसही लेश्याका धारक होय है ।

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषें आराधनाका फलका वर्णन इकतालीस गाथानिमें करि, गुणतालीसमा अधिकार समाप्त कीया ॥३९॥

आराधनामरण करि परलोक जानेका वर्णन तो लेश्याके अनुसारि कह्या । अब क्षपकका मृतकशरीर रह्या, तिसके क्षेपनेका विधानका है वर्णन जामें ऐसा, विजहना नामा चालीसमां अधिकार पेंतीस गाथानिकरि कहे हैं । गाथा—

एवं कालगदस्स दु सरीरमंतोबहिज्ज वाहिं वा ।

विज्जावच्चकरा तं सयं विकिंचन्ति जदणाए ॥१९७५॥

अर्थ—ऐसें पूर्वोक्तप्रकार मरणकूं प्राप्त भया जो क्षपक, ताका शरीरके मांहि वा बारें क्यूं कफमलादिक होइ, तो वैयावृत्यके करनेवाले यत्नाचारकरि तिसकूं दूरि करे हैं।

समणाणं ठिदिकप्पो वासावासे तहेव उडुबन्धे ।
पडिलिहिदव्वा णियमा णिसीहिया सव्वसाधूहिं ॥१९७६॥

अर्थ—सर्वही साधूनिनें वर्षवर्षमें वा ऋतुका आरम्भमें निषीधिका नियमतें प्रतिलेखन करनेयोग्य है, ऐसा मुनीश्वरनिका स्थितिकल्प है। इसका विशेष तो आगममें जानेविना लिखनेमें आवै नहीं। जो आचारांगमें स्थितिकल्प है, सो प्रमाण है। परन्तु सामान्य इसमें ऐसा है—जो, मुनिका शरीरके स्थापन करनेयोग्य स्थानकूं निषीधिका कहिये हैं। अब निषीधिका कैसीक होय, ताहि कहे हैं। गाथा—

एगंता सालोगा णादिविकिट्ठा ण चावि आसण्णा ।
वित्थिण्णा विद्धत्ता णिसीहिया दूरमागाढा ॥१९७७॥
अभिसुआ असुसिरा अघसा उज्जोवा बहुसमा य असिणिद्धा ।
णिज्जंतुगा अहरिदा अविला य तहा अणाबाधा ॥१९७८॥

अर्थ—परकरिकें अदृश्य ऐसी एकांत होइ, अर उद्योतकरि सहित होइ, नगर ग्रामादिकतें अतिदूर नहीं होइ, अतिनिकट नहीं होइ, अर विस्तीर्ण होइ, अर विध्वस्त कहिए मर्दली हुई होइ, अर अतिशयकरि अत्यंत दृढ होइ। ऐसी निषीधिका होइ, बहुरि अतिपवित्र होइ, बिलरहित होइ, घासरहित होइ, उद्योतसहित होइ, बहुतप्रकारकरि सम होइ, उच्चनीच नहीं होइ, सचिक्कणतारहित होइ। निर्जंतु होइ, रजरहित होइ, अविचल होइ, बाधारहित होइ। गाथा—

जा अवरदक्खिणाए व दक्खिणाए व अध व अवराए ।
वसधीदो वण्णिज्जदि णिसीधिवा सा पसत्थत्ति ॥१९७९॥

अर्थ—जो निषीधिका होइ सो वसति जो नगर ग्राम तातें पश्चिमदक्षिणके मध्य नैऋतविदिशामें वा दक्षिणदिशाविषें अथवा पश्चिमदिशाविषें वर्णन करी है। इनि तीन दिशामें निषीधिका प्रशंसायोग्य कही है। गाथा—

सव्वसमाधी पढमाए दक्खिणाए दु भत्तगं सुलभं ।

अवराए सुहविहारो होदि य उवधिस्स लाभो य ॥१९८०॥

अर्थ—जो निषीधिका का लाभमे कोऊ निमित्त विचारै तो ऐसा जानना—जो, वसतीकी नैऋतकोणमें पूर्वं कही तैसी वसतिका होय तो समस्तसंघमे समाधि जो आराधनाका लाभ होसी । अर दक्षिणमें प्राप्त होय तो आगै संघकूं भोजनका लाभ सुलभ होसी । अर पश्चिममें प्राप्त होय तो जानिये संघका आगानै विहार सुखरूप होसी । तथा संघमें पीछी पुस्तक कमडलादिकनिका लाभ होसी । गाथा—

जदि तेसिं वाघादो दट्ठव्वा पुव्वदक्खिणा होइ ।

अवरुत्तरा य पुव्वा उदीचिपुव्वुत्तरा कमसो ॥१९८१॥

अर्थ—जो पूर्वोक्तदिशामें निषीधिका नहीं मिलै, तो पूर्वदक्षिण कहिये अग्निकोणमें वा वायुकोणमें वा पूर्वमें वा उत्तरमें वा ईशानमें मिलै, तो, तिनका निमित्तज्ञानसूं ऐसा फल जानना । गाथा—

एदासु फलं कमसो जाणेज्ज तुमंतुमा य कलहो य ।

भेदो य गिलाणं पि य चरिमा पुण कढ्ढदे अण्णं ।१९८२।

अर्थ—इनका फल क्रमतै ऐसा जानना, अग्निविदिशामें वसतिका प्राप्त होइ तो आगानै संघमें ईर्षा होयगी । पवनविदिशामें प्राप्त होइ तो ऐसा जानना, जो, संघमें कलह होसी । पूर्वदिशामें प्राप्त होइ तो संघमें भेद पड़ेगा ऐसा फल जानना । उतरमें निषीधिका प्राप्त होइ तो, जानिये, संघमें रोग व्याधि होनी है । ईशानविदिशामें निषीधिका प्राप्त होइ तो संघमें परस्पर पक्षपात बधसी, ऐसा फल जानना ।

जं वेलं कालगदो भिक्खू तं वेलमेव णीहरणं ।

जग्गणबंधणछेदणविधी अवेलाए कादव्वा ॥१९८३॥

अर्थ—जिस अवसरविषै साधुका मरण होइ, तिस वेलाविषैही उसका देहका निकासना—लेजावना है । अर जो लेजावनेका अवसर नहीं होय—रात्रि इत्यादिकका अवसर होय, तो जागरण, बन्धन, छेदन ये तीन विधि करै । अब जागरण जो क्षपकके निर्जीवदेहके निकट जागना सो कैसे कैसे मुनि तहां जागते रहै सो कहे हैं ।

वाले बुढ्ढे सीसे तवस्सिभीरूगिलाणए दुहिदे ।

आयरिए य विकिंचिय धीरा जग्गन्ति जिदणिद्दा ।।१९८४।।

अर्थ—बालमुनि, तथा वृद्धमुनि, नवीन शिक्षकमुनि, बहुत तपश्चरण करनेमें उद्यमी ऐसे तपस्वी मुनि, तथा कायर स्वभावके धारक भीरु मुनि, तथा व्याधिसहित रोगी मुनि, तथा वेदनाकरि दुःखित मुनि, बहुरि आचार्यमुनि इनकूं वर्जिकरि धीर वीर निद्राके जीतनेवाले क्षपकका मृतकशरीरके निकट जागरण करे हैं—जागे हैं। अबकैसे मुनि बन्धनकरे हैं सो कहे हैं।

गीदत्था कदकज्जा महाबलपरक्कमा महासत्ता ।

बन्धन्ति य छिंदन्ति य करचरणंगुट्ठयपदेसे ।।१९८५।।

अर्थ—ग्रहण किया है पदार्थनिका सत्यार्थस्वरूप जिनने ऐसे, किये हैं करण जिनने, महान् है बल पराक्रम जिनमें, अर महान् आत्मवीर्य धारक ऐसे मुनि हैं ते क्षपकके शरीरके हस्त वा पादके अंगुष्ठका किंचित् प्रदेशने बांधं वा छेदं। इहां कोऊ कहै—मृतक मुनिके अंगुष्ठके प्रदेशकूं कैसे बांधे ? कैसे छेदे ? तिसका उत्तर यह है—जो, ऐसा सामान्य ही इहां लिख्या है। विशेष अन्यग्रंथनितं जाननेमें आया नहीं, यातै विशेष लिखना सूत्रकी आज्ञाविना होय नहीं। तातै जैसं भगवान् ज्ञानी देख्या तैसं प्रमाण है। ऐसें अगुष्ठके प्रदेशकूं छेदन बन्धन नहीं करे तो कहा दोष आवै ? ऐसी शंका होते दोषकूं दिखावे हैं। गाथा—

जदि वा एस ण कीरेज्ज विधी तो तत्थ देवदा कोई ।

आदाय तं कलेवरमुट्ठिज्ज रमिज्ज बाधेज्ज ।।१९८६।।

अर्थ—जो ऐसें जागरण तथा अगुष्ठप्रदेशमें छेदन बंधन नहीं करे अर कदाचित् कोई धर्मका द्रोही वा कौतुकी व्यंतरादिक देव तिस मृतककलेवरमें प्रवेश करि उठि खडा होइ वा अनेक क्रीडा करे, वा संघमें बाधा करे तो संघमें नवीन मुनि कायरमुनि मंदज्ञानी मुनिनके परिणाम दर्शन—ज्ञान—चारित्रमें शिथिल हो जाय तो बडा अनर्थ प्रकट होइ, धर्ममें उपद्रव होय। तातै जागरण छेदन बंधन करे हैं। इस लोकमें व्यंतर निरंतर भरे हैं। ग्राममें, नगरमें, वनमें, पर्वतमें, नदीमें, गुफामें, महल मठ मकानमें, वृक्ष कूप बावडी मार्ग समस्त क्षेत्रनें निरंतर विचरे हैं। तातै जागरण छेदन बंधन करनेतं कोई धर्मतं पराङ्मुख देवता उपद्रव नहीं करि सके है। गाथा—

उपसयपडियावण्णं उवसंगहिदं तु तत्थ उवकरणं ।

सागारियं च दुविहं पडिहारियमपडिहारिं वा ।।१६८७।।

भगव. आरा.

इस गाथाका अर्थ हमारे जाननेमें नहीं आया वा टीकाकारहू नहीं लिख्या है । बहुज्ञानीहोइ सो समझि अर्थ लिखियो ।

जदि विक्खादा भत्तपइण्णा अज्जाव होज्ज कालगदो ।

देउ सागारित्ति व सिवियाकरणं पि तो होज्ज ।।१६८८।।

अर्थ—मुनीश्वरनिका मरण अनेक वनमें, पर्वतनिमें, गुफानिमें, नदीनिके पुलिनमें, वृक्षनिके कोटरेनिमें होइ है, सो वहां देहकूं कौन उठावै ? कलेवर पड्या रहे है, वा जतु भक्षण करे हैं, पवनादिकनितें शुष्क होइ जाय है, अर काऊ खबरिही नही पावे है । अर कदाचित् कोऊ जाने तोहू उनका कुछ उठावनेमें वा दग्ध करनेमें गृहस्थनिका धर्म है—ऐसा कोऊ श्रावकाचार यतीका आचारमे कथनकी विख्याततताहू नहीं है । बहुरि लोकमैंहू विख्यात है–कोऊकं अग्नितें दग्ध करना है कोऊ देशमें जलमे नदीमें वहाय देना है, कोऊकं पर्वतनिमे मेलि आवना है, कोऊकं वृक्षनिकं बांधि आवना है, कोऊकं जमीमें गाडना है, कोऊकं भीतिमें चुनि देना है, कोऊके समुद्रमें नाखना है, कोऊके वनमें मेलि आवना है इत्यादिक अनेक रीति हैं । परन्तु जो भक्तप्रत्याख्यान नामा समाधिमरण लोकनिमें विख्यात होइ तथा समाधिमरणके धारीनिका अनेक लोक दर्शनकूं आवते होय सब गांवमें गृहस्थनिमें जिन मुनीश्वरनिका वा आर्यिकाका समाधिमरण प्रकट होइ, तो मुनिके समाधिमरण करनेकी उस वसतिकाका स्वामी वा अन्य गृहस्थजन आय मुनिके देहके लेजायवेकूं शिविका जो पालकी–रथी ताहि करे । पाछे कहा करे सो कहे हैं ।

तेण परं संठाविय सथारगदं च तत्थ बन्धित्ता ।

उट्ठ तरक्खणट्ठं गामं तत्तो सिरं किच्चा ।।१६८९।।

पुव्वाभोगिय मग्गेण आसु गच्छन्ति तं समादाय ।

अट्ठिदमणियत्तंता य पिट्ठदो दे अणिब्भंता ।।१६९०।।

कुसमुट्ठिं घेत्तूण य पुरदो एगेण होइ गंतव्वं ।

अट्ठिदअणियत्तंतेण पिट्ठदो लोयणं मुच्चा ।।१६९१।।

तेरण कुसमुट्ठिधाराए अव्वोच्छिण्णाए समणिपादाए ।

संथारो कादव्वो सव्वत्थ समो सगिं तत्थ ॥१९९२॥

अर्थ—संस्तरमें प्राप्त जो क्षपकका शरीर, ताही, गृहस्थजनकरि कोई जो शिविका तिसमें स्थापन करि, अर तिसमें उछलनेकी रक्षाके अर्थि बंधन करि, अर ग्रामके सन्मुख मस्तक करि, तिस मृतककी शिविकाकूं गृहस्थजन उठाय-करिके अर पूर्वे देख्या जो मार्ग तिसकरिके शीघ्रही गमन करे । अर मार्गमें खडा नहीं रहे । अर उलटा बाहुडे नहीं । पूठि पाछे अवलोकन छोडिकरि गमन करे, पाछा नहीं देखें । बहुरि एक पुरुष कुशमुष्टि जो डाभ घास तृणकी मूठी है ताहि ग्रहण करि शिविकाके आगे गमन करे । अर मार्गमें खडा नहीं रहे । अर पाछा बाहुडे नहीं । अर पाछानें अवलो-कन छांडि गमन करे । अर अगाऊ जाय पूर्वे देखी हुई जो निषीधिका ताके विषें डाभ की मूठी विछेद रहित बराबरि पटकि अर मुनिके देह स्थापन करने की भूमिकूं सर्वत्र समान करैं । अर जो तिस क्षेत्रमें डाभ तृण नहीं होइ तो कैसे भूमिकूं सम करैं सो कहे है । गाथा—

जत्थ ण होज्ज तणाइं चुण्णेहिं वि तत्थ केसरेहिं वा ।

संथरिदव्वा लेहा सव्वत्थ समा अवोच्छिण्णा ॥१९९३॥

अर्थ—जहां भूमि सम करनेकूं डाभ नहीं होइ, तृण नहीं होइ तो ईंटनिके चूर्ण करिके वा वृक्षनिकी शुष्क केसरि करिके सर्वत्र समान विछेद रहित भूमि करैं । अर जो भूमि सम नहीं होइ तो निमित्त ज्ञानीनिनै ऐसा आगे होना दीखे है । गाथा—

जदि विसमो संथारो उवरिं मज्झे व होज्ज हेट्ठा वा ।

मरणं व गिलाणं वा गणिवसभजदीण णायव्वं ॥१९९४॥

अर्थ—जो संस्तर ऊपरि विषम होइ, सम नहीं होइ, तो ऐसा जानिए जो संघमें आचार्यका मरण होसी वा आचार्यनिके रोग आसी । अर जो मध्यमें विषम होइ, तो जानिए संघमें कोई प्रधान मुनिकै मरण वा व्याधि रोग होसी । अर जो नीचैं विषम होइ तो जानिए कोऊ यतीका मरण होसी वा रोग आसी । ऐसा निमित्ततें जानिए है । अब क्षपक के शरीरकूं कैसे स्थापन करैं सो कहे है । गाथा—

जत्तो दिसाए गामो तत्तो सीसं करित्तु सोवधियं ।
उट्ठंतरक्खणट्ठं वोसरिदव्वं सरीरं तं ।।१९९५।।

अर्थ—जिस दिशामें ग्राम होइ तिस दिशाविषें क्षपकका मस्तक करि पिच्छिकासहित शरीरकूं स्थापन करे। मृतकका व्यंतरादिकरि ऊठनेकी रक्षाके अर्थि ग्रामकी वोडी (ओर) मस्तककरि उपकरण निकट धरे। मृतकके मयूरपिच्छिकादिक उपकरण स्थापनेमें गुण दिखावे हैं। गाथा—

जो वि विराधिय दसणमन्ते कालं करित्तु होज्ज सुरो ।
सो वि विवुज्झदि दठ्ठूण सदेहं सोवधिं सज्जो ।।१९९६।।

अर्थ—जो कदाचित् कोऊ क्षपक संक्लेशपरिणामनिमें अंतकालमें सम्यग्दर्शनकी विराधना करिके अर व्यंतर असुरादिक देव जाय उपज्या होय अर उस स्थानकमें आवे तो अपना शरीरकूं पीछीसहित देखे तो फेरि ज्ञान उपजि सम्यक्त्व ग्रहण करे—जो, मै पूर्वे संयमी था, अब मै कैसे विकारी भया हूं ! ऐसे धर्ममें दृढ होजाय। तातें मृतकमुनिके निकट उपकरण स्थापन करनेमे गुण कह्या है। बहुरि आराधना समस्तमें विख्यात होइ जिसका पार पडना बडी प्रभावना है। इस आराधनाके धारकके मरणतें निमित्त विचारिये तो संघमें आगानें भावीकाहू कितनाक निश्चय होय है, सो कहे है।

णत्ता भाए रिक्खे जदि कालगदो सिवं तु सव्वेंसि ।
एको दु समे खेत्ते दिवड्ढखेत्ते मरन्ति दुवे ।।१९९७।।
सदभिसभरणी अद्दा सादा असलेस्स जिट्ठ अदरवरा ।
रोहिणिविसाहपुणव्वसु त्तिउत्तरा मज्झिमासेसा ।१९९८। ★

★ यह गाथा न० १९९८ प० सदासुखजी की प्रति मे नही है। मुद्रित प्रति मे है। उसका अर्थ—जो नक्षत्र पंद्रह मुहूर्तके रहते हैं उनको जघन्यमुहूर्त कहते है, शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, अश्लेषा, इन छह नक्षत्रोमे से किसी एक नक्षत्रपर अथवा उसके अंशपर यदि क्षपकका मरण होगा तो सर्व संघका क्षेम होता है। तीस मुहूर्तके नक्षत्रोंको मध्यम नक्षत्र कहते है, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिर, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, पूर्वा, पूर्वाषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वभाद्रपदा और रेवती इन पन्द्रह नक्षत्रो पर अथवा उसके अंशोंपर क्षपकका मरण होनेसे और एक मुनिका मरण होता है। उत्कृष्ट पचचालीस मुहूर्तके नक्षत्रो को उत्कृष्ट नक्षत्र कहते हैं, उत्तर फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपदा, पुनर्वसु, रोहिणी इन छह मुहूर्त मे से किसी मुहूर्त पर अथवा उसके अंश पर क्षपकका मरण होने प और दो मुनियो का मरण होता है।

अर्थ —जघन्यनक्षत्रमें आराधनाके धारकका मरण होइ तो जानिये-समस्त संघका कल्याण होसी। मध्यमनक्षत्रमें मरण होइ तो एकका मरण और होसी। महान् नक्षत्रमें मरण करे तो दोयका मरण होना जाने। गाथा—

गणरक्खत्थं तह्मा तणमयपडिविबयं खु कादूण।

एक्कं तु समे खेत्ते विवड्ढखेत्ते दुवे देज्ज ॥१९९९॥

अर्थ—तातें गणरक्षाके अर्थि मध्यमनक्षत्रमें तृणमय एक प्रतिबिम्ब जो एक पूलो सो वहां निकट मेलना योग्य है। अर उत्तम नक्षत्रमें तृणमय दोय मुष्टि धरे। गाथा—

तट्ठाणसावणं चिय तिक्खुत्तो ठविय मडयपासम्मि।

विदियवियप्पिय भिक्खू कुज्जा तह विदितदियाणं ॥२०००॥

अर्थ—तिस स्थानमें मृतकके निकट तृणमय पिंड स्थापना करि "द्वितीयोऽर्पितः" ऐसे कहै। तथा द्वितीय तृतीय स्थापन कीया ऐसे कहि तृणमय पूला दोय मेले। गाथा—

असदि तणे चुण्णेहिं च केसरचछारिट्ठियादिचुण्णेहिं।

कादव्वोथ ककारो उवरिं हिट्ठा तकारो से ॥२००१॥

अर्थ—अर उस क्षेत्र में तृण नहीं होइ तो पुष्पनि की केसरि वा भस्म वा ईंटनिका चूर्ण करिके उपरि ककार लिखि नीचें तकार लिखें। अर जो पींछी कमंडल उपकरण होइ तो तिसकूं सम्यक् प्रति लेखन करि अर्पण करि दे, स्थापन करि दे। ऐसे मृतक क्षपक के स्थापन की विधि कहि। अब संघ के मुनि तहां क्षपक की समाधि मरण करने की वस्तिका में कहा करैं सो कहै है। गाथा—

उवगहिदं उवकरणं हवेज्ज जं तत्व पाडिहरियं तु।

पडिबोधित्ता सम्मं अप्पेदव्वं तयं तेसिं ॥२००२॥ ★

★ यह गाथा नं० २००२ पं० सदासुखजी की प्रति में नही है। मुद्रित प्रति मे है, उसमे इसका अर्थ इस प्रकार है—मृतकको निषीधिका के पास ले जानेके समय जो कुछ वस्त्रकाष्ठादिक उपकरण गृहस्थों से याचना करके लाया गया था उसमें जो कुछ लौटकर देने योग्य होगा वह गृहस्थों को समझाकर देना चाहिये।

आराधणपत्तीयं काउसग्गं करेदि तो संघो ।
अधिउत्ताए इच्छागारं खवयस्स वसधीए ॥२००३॥

अर्थ— तौंठा पाछे समस्त संघ आपके आराधनाके अर्थि कायोत्सर्ग करें । जैसे इनूंके आराधना हुई तैसे हमारै हू आराधना होऊ । इस अभिप्रायकूं धारि कायोत्सर्ग समस्त संघ के साधु करें । बहुरि जिस वस्तिकामें क्षपकके आराधना भई तिस वस्तिकाके अधिपति देवताकूं समस्त मुनि इच्छाकार करें । भो स्थान के स्वामी हो ! तिहारी इच्छा करिकें इस क्षेत्रमें सघ तिष्ठवे की इच्छा करें है । जातें मुनीश्वरनिका ऐसा सदा काल ही आचार है । जिस वस्तिकादि स्थानमें प्रवेश करें तहां तो ऐसा वचन कहि प्रवेश करें । "युष्माकमिच्छया अत्रासितुमिच्छामि" भो स्थान के स्वामी हो ! तुम्हारी इच्छा करि इस क्षेत्रमें स्थिति रहने की इच्छा करूं हूं । अर स्थान छांडि जाय तदि आशीर्वाद देय जाय । ऐसा नित्य ही नियोग है । गाथा—

सगणत्थे कालगदे खमणमसज्झाइयं च तद्दिवसं ।
सज्झाइ परगणत्थे भयणिज्जं खमणकरणेपि ॥२००४॥

अर्थ—अपने गणमे तिष्ठता मुनि कालकूं प्राप्त होते तिस दिनविषै समस्त संघ उपवास करे, अर तिस दिन स्वाध्याय नहीं करे । अर परगणमै तिष्ठता मुनि मरणकूं प्राप्त होइ तो स्वाध्याय नहीं करे अर उपवास करे वा नहीं करे । गाथा—

एदं पडिट्ठवित्ता पुणो वि तदियदिवसे उवेक्खन्ति ।
संघस्स सुहविहार तस्स गदी चेव णादुं जे ॥२००५॥

अर्थ—ऐसें क्षपकके शरीरकूं स्थापन करिकें बहुरि तृतीय दिवसविषै कोऊ निमित्तके जाननेवाला संघका सुख रूप विहार जाननेकूं अर क्षपकको गति जाननेकूं तृतीय दिनविषै क्षपकके शरीरकूं अवलोकन करे । गाथा—

जदिदिवसे संचिट्ठदि तमणालद्धं च अक्खद मडयं ।
तदिवरिसाणि सुभिक्खं खेमसियं तम्हि रज्जम्मि ।२००६।

अर्थ—जितने दिन क्षपकका मृतकशरीर वनके जीवनिकरि अखंड तिष्ठै–वनके जीव भक्षण नहीं करे, तितने वर्ष तिस राज्यमें सुभिक्ष क्षेम कल्याण रहे है । ऐसे निमित्ततें जाने । गाथा—

जं वा दिसमुवणीदं सरीरयं खगचदुप्पदगणेहिं ।
खेमं सिवं सुभिक्खं विहरिज्जो तं दिसं संघो ॥२००७॥

अर्थ—पक्षी तथा चतुष्पादनिके समूह क्षपकका शरीरका खंड जिस दिशामें ले गया होइ, तिस दिशामें क्षेम शिव सुभिक्ष जाणिकरि तिस दिशामें संघ विहार करे । भावार्थ–क्षपकका कलेवरकूं तीसरे दिन कोऊ निमित्त जानने वाला देखे । जिस दिशामें उसके अंगका खंड पक्षी चतुष्पादकरि लेगया देखे तिस दिशामें क्षेम सुभिक्ष जाणि विहार करे । गाथा

जदि तस्स उत्तमंगं दिस्सदि दंता च उवरिगिरिसिहरे ।
कम्ममलविप्पमुक्को सिद्धि पत्तोत्ति णादव्वो ॥२००८॥
वेमाणिओ थलगदो समम्मि जो दिसि य वाणवितरओ ।
गड्डाए भवणवासी एस गदी से समासणे ॥२००९॥

अर्थ—क्षपककी गतिभी संक्षेपकरि ऐसी जानी जाइ है–जो, क्षपकका मस्तक वा दंत पर्वतके शिखरऊपरि दीखै तो ऐसा जानना–जो, कर्ममलरहित सिद्ध भया । अर मस्तक स्थलगत उन्नतभूमिमें तिष्ठता दीखै, तो ऐसा जान्या जाय–जो, वैमानिक देव भया । अर समभूमिमें दीखै. तो ज्योतिष्कदेवनिमैं वा व्यंतरदेवनिमै प्राप्त भया । अर खाडेमैं दीखै, तो भवनवासीनिमैं प्राप्त भया । ऐसे निमित्ततै स्थूलपणाकरि गति जानी जाइ है ।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिमै चोतीस गाथानिकरि विजहन नामा चालीसमा अधिकार समाप्त कीया ॥४०॥ अब सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणकी महिमा नव गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

ते सूरा भयवन्ता आहच्चइदूण संघमज्झम्मि ।
आराधणापडायं चउप्पयारा हिदा जेहिं ॥२०१०॥

अर्थ—जे शूरवीर ज्ञानवंत संघके मध्य प्रतिज्ञा करि च्यारिप्रकार आराधनापताका ग्रहण करी, ते जगतमें धन्य हैं । गाथा–

ते धण्णा ते णाणी लद्धो लाभो य तेहिं सव्वेहिं ।
आराधणा भयवदो सयला आराधिदा जेहिं ॥२०११॥

भगव. आरा.

अर्थ--जिनूनें ए भगवान्सम्बन्धी आराधना पाई, ते धन्य है, ते ज्ञानवंत हैं, तिनूनें समस्त लाभ पाया। जे आराधना अनंतकालहूमें प्राप्त नहीं ते प्राप्त भई, इससिवाय कोऊ तीन लोकमें लाभ नहीं है गाथा--

किं णाम तेहिं लोगे महाणुभावेहिं हुज्ज ण य पत्तं।

आराधणा भगवदी सयला आराधिदा जेहिं ॥२०१२॥

अर्थ--इस लोकके विषै जिन आराधनानिकूं महाप्रभाववान् पुरुषहू नहीं प्राप्त भये ऐसी भगवान् सर्वज्ञकरि आराधना करी जो भगवती आराधनाकूं जे समस्तप्रकारकरि आराधना करी, तिनका कहा महिमा कहूं ? । गाथा--

ते वि य महाणुभावा धण्णा जेहिं च तस्स खवयस्स।

सव्वादरसत्तीए उवविहिदाराधणा सयला ॥२०१३॥

अर्थ--ते महानुभाव निर्यापकहू धन्य हैं, जिनूनें सर्व आदरकरिकै समस्त शक्ति करिकै तिस क्षपकके समस्त आराधना कराई। गाथा--

जो उवविधेदि सव्वादरेण आराधणं कु अण्णस्स।

संपज्जदि णिव्विग्धा सयला आराधणा तस्स ॥२०१४॥

अर्थ--जो पुरुष अन्य धर्मात्मा पुरुषके समस्तप्रकार आदर करि, शरीरकी वैयावृत्यकरि, धर्मोपदेश करि, धर्ममें दृढता करि, आहार पान औषध स्थानके दान करि, आराधना करावे है, तिस पुरुषकै निर्विघ्न समस्त आराधना परिपूर्ण होइ है। अन्य धर्मात्मा पुरुषकू आराधनामरण करायनेमें जे सहायी होय हैं, ते च्यारि आराधनाकी पूर्णता पाय लोकाग्रस्थानमें निवास करे हैं। बहुरि जे आराधना करनेवालेके दर्शनकूं जाय हैं, तिनकी महिमा कहे हैं। गाथा--

ते वि कदत्था धण्णा य हुन्ति जे पावकम्ममलहरणे।

ण्हायन्ति खवयतित्थे सव्वादरभत्तिसंजुत्ता ॥२०१५॥

अर्थ--ते पुरुषहू जगतमें धन्य हैं, कृतार्थ हैं--जे पापकर्मरूप मैलके हरनेवाले क्षपकरूप तीर्थमें समस्त आदर भक्तिकरि संयुक्त स्नान करे हैं। अर जे भक्तिसयुक्त भये क्षपकके दर्शनमें प्रवर्तें हैं, ते धन्य हैं--कृतार्थ हैं। अब क्षपककै तीर्थपणां दिखावे हैं।

गिरिणदियादिपदेसा तित्थाणि तवोधणेहिं जदि उसिदा ।
तित्थं कधं ण हुज्जो तवगुणरासी सयं खवउ ॥२०१६॥

अर्थ--जो तपस्वीजन जिस पर्वत इत्यादिकके प्रदेशनिकूं प्राप्त होइ हैं, ते पर्वत नद्यादिक जगतमें तीर्थ मानि सेवन करिये हैं, तो तपगुणकी राशि ऐसा क्षपक आप तीर्थ कैसे नहीं होय ? । गाथा--

पुव्वरिसीणं पडिमाओ वन्दमाणस्स होइ जदि पुण्णं ।
खवयस्स वन्दओ किह पुण्णं विउलं ण पाविज्ज ॥२०१७॥

अर्थ--जो पूर्वे ऋषि मुनि भये, तिनकी प्रतिमानिकूं वंदना करते पुरुषकै पुण्य होय है, तो साक्षात् क्षपककूं वंदना करता पुरुष प्रचुरपुण्यकूं कैसे नहीं प्राप्त होय ? ॥

जो ओलग्गदि आराधयं सदा तिव्वभत्तिसंजुत्तो ।
संपज्जदि णिव्विग्घा तस्स वि आराहणा सयला ॥२०१८॥

अर्थ--जो तीव्र भक्तिसंयुक्त होइ आराधनाके धारककी सदाकाल सेवन करे है, तिस पुरुषकै निर्विघ्न आराधना प्राप्त होइ है-अर तिसके आराधना सफल होय है ।

इति भगवती आराधना नाम ग्रंथविषै पंडितमरणके तीन भेदनिमैं सविचारभक्तप्रत्याख्यान--मरणका वर्णनके चालीस अधिकार उगणीससै गाथानिमै समाप्त कीये । अब पंडितमरणका दूजा भेद जो अविचारभक्तप्रत्याख्यान ताकूं उगणीस गाथानिमैं वर्णन करे हैं । तिनमै तीन गाथानिमैं अविचारभक्तप्रत्याख्यानका सामान्य भेद वर्णन करे हैं । गाथा--

सविचारभत्तवोसरणमेवमुववण्णिदं सवित्थारं ।
अविचारभत्तपच्चक्खाणं एत्तो परं वुच्छं ॥२०१९॥

अर्थ--ऐसें सविचार भक्तप्रत्याख्यानकूं विस्तारसहित वर्णन कीया । अब आगै अविचार भक्तप्रत्याख्यानकूं कहूंगा । गाथा--

तत्थ अविचारभत्तपइण्णा मरणम्मि होइ आगाढो ।

अपरक्कम्मस्स मुणिणो कालम्मि असंपुहुत्तम्मि ॥२०२०॥

अर्थ--अल्पशक्तिका धारक जो मुनि ताकै आयुका बहुतकाल नहीं अवशेष रहै अर मरण शीघ्र आजाय तदि अविचार भक्तप्रत्याख्यानका अवसर जानना । गाथा--

तत्थ पढमं णिरुद्धं णिरुद्धतरयं तहा हवे विदियं ।

तदियं परमणिरुद्धं एदं तिविधं अवीचारं ॥२०२१॥

अर्थ--तहां अविचारभक्तप्रत्याख्यान ऐसे तीनप्रकार है । प्रथम निरुद्ध, द्वितीय निरुद्धतर, तृतीय परमनिरुद्ध । ऐसें तीन नाम कहे । अब निरुद्ध भक्तप्रत्याख्यान पच गाथानिकरि कहे हैं । तिनमैं निरुद्ध ऐसे मुनिकै होइ है--

तस्स णिरुद्धं भणिदं रोगादंकेहिं जो समभिभूदो ।

जंघाबलपरिहीणो परगणगमणम्मि ण समत्थो ॥२०२२॥

जावय बलविरियं से सो विहरदि ताव णिप्पडीयारो ।

पच्छा विहरदि पडिजग्गिज्जन्तो तेण सगणेण ॥२०२३॥

अर्थ--जो मुनि रोगकी पीडाकरि पीडित होइ, अर परगणादिकमै विहार करनेका जंघामै बल घटि गया होई, परसंघमें जायवेकू असमर्थ होई, तिस मुनिके निरुद्धभक्तप्रत्याख्यान कह्या । जितने बल वीर्य देहमें रहै, तितने परकरि इलाज टहल वैयावृत्य नहीं करावै । आहारके अर्थि जानेमें, निहार करनेमें, विहार करनेमें, परका सहाय नहीं चाहै । अर जब शरीर थकिजाय, तदि अपने संघके मुनीश्वरनिके सहायकरि प्रवृत्ति करै । गाथा--

इय सण्णिरुद्धमरणं भणियं अणिहारिमं अवीचारं ।

सो चेव जधाजोग्गं पुव्वुत्तविधी हवदि तस्स ॥२०२४॥

अर्थ--ऐसें जंघामैं बलकी हीनताकरिके तथा शरीर रोगमें व्याधिकरि पीडित होनेकरि अपने संघमें निरुद्ध होगया--परगणमें जानेकू समर्थ नहीं भया, तातै याकू निरुद्ध कहिये । बहुरि सविचार भक्तप्रत्याख्यानमें कही जो विधि

तिसके अभावतें याकूं अनिहारित कहिये। बहुरि अनियतविहारादिक विधि आचरणके अभावतें अवीचार कहिये। अपने संघहीमें आचार्यनिके समीपविषं अवीचार कहिये शुद्ध होइ करिके अर अपनी निंदा गर्हा करता ऐसा जितने आपमें शक्ति रहै तितने परसूं प्रतीकार नहीं करावता विहार करै–प्रवर्तन करे। जदि समस्तचेष्टाहीन होजाय, तदि परकरि अनुग्रह कीया संता विहार करे। गाथा—

दुविधं तं पि अणीहारिमं पगासं च अप्पगासं च।

जणणादं च पगासं इदरं च जणेण अण्णादं ॥२०२५॥

अर्थ—अवीचार भक्तप्रत्याख्यान दोयप्रकार है। एक प्रकाश, एक अप्रकाश। तिनमें जो लोकनिके जाननेमें होइ, सो प्रकाश है। अर जो लोकनिमैं विख्यात नहीं होइ, सो अप्रकाश है। भावार्थ–लोकनिमें कोऊका समाधिमरण विख्यात होइ, सो प्रकाश है। विख्यात नहीं होइ, सो अप्रकाश है। गाथा–

खवयस्स चित्तसारं खित्तं कालं पडुच्च सजणं वा।

अण्णम्मि य तारिसयम्मि कारणे अप्पगासं तु ॥२०२६॥

अर्थ—बहुरि क्षपकको बुद्धिके बलकूं तथा क्षेत्रकूं तथा कालकूं तथा स्वजननिकूं तथा औरहू कारणनिकूं प्रकाशवे योग्य नहीं होतें समाधिमरणकी प्रकटता नहीं होइ है, तातें अप्रकाश कहिये हैं। जो क्षपक क्षुधादिक परिषह सहनेमें असमर्थ होइ तथा वसतिका एकांतमें नहीं होइ वा अज्ञानी धर्ममें विघ्न करनेवाला होइ, तहां समाधिमरण तो करावे, परन्तु देश-काल-द्रव्य-भावकी योग्यताविना प्रकट नहीं करे, सो अविचारभक्तप्रत्याख्यानका निरुद्ध नाम भेदमें अप्रकाश वर्णन कीया। अब निरुद्धतर नामा दूजा भेदकूं च्यारि गाथानिकरि वर्णन करे हैं। गाथा–

बालग्गिवग्घमहिसगयरिछ पडिणीय तेण मेच्छेहिं।

मुच्छाविसूचियादीहिं होज्ज सज्जो हु वावत्ती ॥२०२७॥

जाव ण वाया खिप्पदि बलं च विरियं च जाव कायम्मि।

तिव्वाए वेदणाए जाव य चित्तं ण विक्खित्तं ॥२०२८॥

णच्चा संवट्टिज्जं तमाउगं सिग्घमेव तो भिक्खू ।
गणियादीणं सण्णिहिदाणं आलोचए सम्मं ॥२०२९॥

अर्थ— सर्पकरिकैं तथा अग्निकरिकैं तथा व्याघ्रकरिकैं तथा महिषकरिकै तथा गजकरिकैं तथा रींछकरिकैं तथा शत्रुकरिकै तथा चोरनिकरिकैं तथा म्लेछनिकरिकैं तथा मूर्छाकरिकैं तथा विसूचिकादिककरिकैं जो तत्काल शीघ्रतातैं आपत्ति आजाय तो, जितन वाणी नहीं थकै–वचन नहीं बिनसै, तथा जितने कायमें बल वीर्य नहीं बिनसै, तथा जितने तीव्रवेदनाकरिके चित्त विक्षिप्त नहीं होइ, तितनें मो साधु अपना आयुकूं संकुचित होता जाने शीघ्रही आपके निकट कोई आचार्यादिक तिनकूं सम्यक् आलोचना करै अर आराधनाका शरण ग्रहण करिकैं मरण करै, सो अवीचार भक्तप्रत्याख्यानका निरुद्धतर नामा दूजा भेद है । गाथा–

एवं णिरुद्धदरयं विदियं अणिहारिमं अवीचारं ।
सो चेव जधाजोग्गो पुव्वुत्तविधि हवदि तस्स ॥२०३०॥

अर्थ— ऐसैं विहाररहित अत्यंतनिरोधरूप अविचारभक्तप्रत्याख्यानका निरुद्धतर नामा दूसरा भेद कह्या । इस विषेंहू जो पूर्वें भक्तप्रत्याख्यानमें विधि कही, सोही यथायोग्य जाननी । जो सिंह व्याघ्र अग्नि जलादिककरि अचानक शीघ्र ही मरण आजाय, तो तहां आचार्यादिकनिसैं आलोचनादिकहू नहीं होइ सकै, जो निकटवर्ती साधु होइ तिसहीसैं आलोचना करि शीघ्र मरण करै, तिसके निरुद्धतर नामा मरण होइ है । ऐसैं च्यारि गाथानिमैं निरुद्धतरका वर्णन कीया। अब परमनिरुद्धभेदकूं सप्तगाथानिकरि वर्णन करे हैं। गाथा—

वालादिएहिं जइया अक्खित्ता होज्ज भिक्खुणो वाया ।
तइया परमणिरुद्धं भणिदं मरणं अवीचारं ॥२०३१॥

अर्थ—सर्प व्याघ्र सिंह अग्नि चौरादिककरि उपद्रवतैं जो क्षपककी वाणी नष्ट होजाइ जुबान बंद होजाइ, तदि साधुकै परमनिरुद्ध नामा अविचारभक्तप्रत्याख्यान होय है ।

गुच्चा संवट्टिज्जं तमाउगं सिग्घमेव तो भिक्खू ।
अरहन्तसिद्धसाहूण अन्तिगे सिग्घमालोचे ॥२०३२॥

अर्थ—तींठापाछें भिक्षु जो साधु सो अपना आयु शीघ्र संकुचित होता जाणिकरिके अपने मनमेंही अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इनिकूं अलोचना करै। गाथा—

आराधणाविधी जो पुव्वं उववण्णिदो सवित्थारो ।
सो चेव जुज्जमाणो एत्थ विही होदि णादव्वो ॥२०३३।

अर्थ—जो पूर्वे आराधनाकी विधि विस्तारसहित वर्णन करी, सोही विधि अवसरके योग्य इहांहू जाणवो जोग्य है। गाथा—

एवं आसुक्कारमरणे वि सिज्झन्ति केइ धुदकम्मा ।
आराधयित्तु केई देवा वेमाणिया होंति ॥२०३४॥

अर्थ—इसप्रकार शीघ्र मरण होतेंहू केते महामुनि शुक्लध्यानकरि कर्मनिकूं उडाय सिद्धिकूं प्राप्त होय हैं। अर कई आराधनाकूं आराधिकरि वैमानिक देव होइ हैं। अब कोऊ आशंका करै—जो, अल्पकालकरि निर्वाण कैसें होइ? सो शंका दूरि करिवेके अर्थि कहे हैं।

आराधणाए तत्थ दु कालस्स बहुत्तणं ण हु पमाणं ।
बहवो मुहुत्तमत्ता संसारमहण्णवं तिण्णा ॥२०३५॥

अर्थ— तिस आराधनाविषें कालका बहुतपणांका प्रमाण नहीं है। बहुत जीव अंतर्मुहूर्तमात्र आराधनामें तिष्ठि संसारसमुद्रकूं तिरि गये हैं, जातें क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकज्ञान जो केवलज्ञान, क्षायिकचारित्र जो यथाख्यातचारित्र, तप जो शुक्लध्यान ये अन्तर्मुहूर्तमें उपजे हैं। अर इनि च्यारि आराधनाकूं हुये पीछे अन्तर्मुहूर्तमें सिद्धि होइ है।

भगव. आरा.

खणमेत्तेण अणादियमिच्छादिट्ठी वि वद्धणो राया।
उसहस्स पादमूले संबुज्झित्ता गदो सिद्धिं ॥२०३६॥

अर्थ—अनादिमिथ्यादृष्टिहू बर्द्धन नामा राजा वृषभदेवस्वामीका चरणनिके निकट प्रबोधकूं प्राप्त होइकरि क्षणमात्रकरि सिद्धिकूं प्राप्त भया। गाथा—

सोलसतित्थयराणं तित्थुप्पण्णस्स पढमदिवसम्मि।
सामण्णणाणसिद्धी भिण्णमुहुत्तेण संपण्णा ॥२०३७॥

अर्थ—षोडश तीर्थंकरनिका तीर्थमें उत्पन्न भये साधुनिके दीक्षा लीनी तिसका प्रथम दिवसके विषै अन्तर्मुहूर्त करिके सामान्यज्ञानकी सिद्धि होत भई। ऐसे परमनिरुद्धमरणका वर्णन सप्त गाथानिमें किया।

इति भगवती आराधना नाम ग्रन्थविषै पंडितमरणका वर्णनमें भक्तप्रत्याख्यानका वर्णन समाप्त किया। अब पंडितमरणका दूसरा भेद जो इंगिनीमरण ताहि चौतीस गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

एसा भत्तपइण्णा वाससमासेण वण्णिदा विधिणा।
इत्तो इंगिणिमरणं वाससमासेण वण्णेसि ॥२०३८॥

अर्थ—या भक्तप्रतिज्ञा विस्तारसंक्षेपरूप विधिकरिके वर्णन करी। यातें आगे इंगिनीमरणकूं संक्षेपविस्तारकरिके वर्णन करिस्यूं। ऐसे इंगिनीमरण कहनेकी शिवकोटि स्वामी प्रतिज्ञा करी। गाथा—

जो भत्तपदिण्णाए उवक्कमो वण्णिदो सवित्थारो।
सो चेव जंधाजोग्गो उवक्कमो इंगिणीए वि ॥२०३९॥

अर्थ—जो भक्तप्रत्याख्यानको क्रमविस्तारसहित वर्णन कियो, सोही यथायोग्य इंगिनीमरणविषैहू आरम्भ जानना। गाथा—

पव्वज्जाए सुद्धो उवसंपज्जित्तु लिंगकप्पं च।
पवयणमोगहित्ता विरणयसमाधीए विहरित्ता ॥२०४०॥
रिणप्पादित्ता सगरणं इंगिरिणविधिसाधरणाए परिरणमिया।
सिदिमारुहित्तु भाविय अप्पारणं सल्लिहित्तारणं ॥२०४१॥
परियाइगमालोचिय अरणुजारिणत्ता दिसं महजरणस्स।
तिविधेरण खमावित्ता सवालवुड्ढाउलं गच्छं ॥२०४२॥
अरणुसट्ठिं दाऊरण य जावज्जीवाय विप्पओगच्छी।
अब्भदिगजादहासो रिणदि गरणादो गुरणसमग्गो ॥२०४३॥

अर्थ— इंगिनीमरण कैसे होइ ? सो कहे हैं–जो दीक्षाग्रहणविषै योग्य होय, शुद्ध होय अर आचारांगके अनुकूल, योग्य वीतरागलिंग ग्रहण करिके, अर जिनेन्द्रका प्ररूप्या आचारांगादिकका अवगाहन करिके, अर विनयमें तथा समाधिके परिणामनिकी सावधानीमें प्रवर्तन करिके, अर अपने संघकूं रत्नत्रयमें दृढताने प्राप्त करिके, अर इंगिनीमरणकी विधिका साधनके अर्थि परिणमन करिके, अर परिणामनिकी विशुद्धतारूप श्रेणी चढिकरिके, अर अपने आत्माकूं शोधनकरिके, अर जो रत्नत्रयमें जे अतीचार लागे होय तिनकूं शोधिकरिके, अर जो आपपाछै नवीन आचार्य होइगे तिनकूं जरणायकरिके, अर च्यारि प्रकारका संयमीनिका बालवृद्धसहित समस्तसंघतै मन–वचन–काय–करिके क्षमा ग्रहण करायकरिके, अर संघकूं हितरूप शिक्षा देइकरिके अर यावज्जीव समस्तसंघतै वियोगका अर्थी हुवा, तथा संघमेंतै निकसि एकाकी होइ परम आराधनाके पालनेमें उपज्या है परम हर्ष जाके ऐसा, गुणनिकरि परिपूर्ण हुवा संघतै एकाकी निकलै। गाथा—

एवं च रिणक्कमित्ता अन्तो वाहिं च थंडिले जोगे।
पुढवीसिलामए वा अप्पारणं रिणज्जवे एक्को ॥२०४४॥

अर्थ— ऐसे संघबारै निकसिकरिकै अर गुफादिकनिके मांहि वा बाहिर स्थंडिल कहिये चौडे सम उअन जीवरहित योग्यस्थानमें शुद्धपृथ्वीमें वा शिलामय संस्तरविषै आपकूं एकाकी असहाय स्थापन करै। गाथा—

पव्वुत्ताणि तणाणि य जाचित्ता थंडिलम्मि पुव्वुत्ते ।
जदणाए संथरित्ता उत्तरसिरमधव पुव्वसिरं ॥२०४५॥
पाचीणाभिमुहो वा उदीचिहुत्तो व तत्थ सो ठिच्चा ।
सीसे कदंजलिपुडो भावेण विसुद्धलेस्सेण ॥२०४६॥
अरहादिअन्तिगं तो किच्चा आलोचणं सुपरिसुद्धं ।
दंसणणाणचरित्तं परिसारेदूण णिस्सेसं ॥२०४७॥
सव्व आहारविधिं जावज्जीवाय वोसरित्ताणं ।
वोसरिदूण असेसं अब्भन्तरबाहिरे गंथे ॥२०४८॥
सव्वे विणिज्जिणन्तो परीषहे विदिबलेण संजुत्तो ।
लेस्साए विसुज्झन्तो धम्मं ज्झाणं उवगमित्ता ॥२०४९॥
ठिच्चा णिसिवित्ता वा तुवट्टिदूणव सकायपडिचरणं ।
सयमेव णिरुवसग्गे कुणदि विहारम्मि सो भयवं ॥२०५०॥

अर्थ—पूर्वोक्त तृण जे हैं तिनकू याचना करिके अर पूर्वोक्त स्थण्डिलस्थानविषे तृणनिका यत्नाचारकरि संस्तर करिके अर उत्तरशिर अथवा पूर्वशिर संस्तर करै । बहुरि तिस संस्तरमे पूर्वदिशाके सन्मुख वा उत्तरके सन्मुख तिष्ठि-करिके, विशुद्ध लेश्यारूप भावकरिके, अर मस्तकविषै अंजुली करि, अर अरहन्तादिकनिके समीप उज्ज्वल आलोचना करिके, अर दर्शन-ज्ञान-चारित्रकूं समस्तपणातै उज्ज्वल करिके, समस्त च्यारिप्रकारके, आहारकूं यावज्जीव त्याग करिके, अर समस्त अभ्यन्तर बाह्यपरिग्रहकू छांडिकरिके, समस्त परीषहनिकूं जीतिकरिके, अर धैर्यके बलकरिके संयुक्त लेश्याकरि उज्ज्वल होता धर्मध्यानकूं प्राप्त होयकरिके, अर उपसर्ग नहीं होय तो खडे रहनेकरि वा बैठनेकरि वा शयनकरि वा विहारविषै अपने कायका आपही सो भगवान् क्षपक उपचार करे है–परन्तु वैयावृत्य नहीं करावै ।

भावार्थ—इंगिनीमरण करनेवाला साधु समस्तसंघसूं क्षमाग्रहण करायकरिके अर निर्जनवनभूमिमें प्राप्त होय अर तहां को निर्जन्तु तृणनिकरि पूर्वमस्तक वा उत्तरमस्तक करि संस्तर करै, अर तिस संस्तरमें पूर्वदिशाके सन्मुख वा उत्तर सन्मुख बैठिकरि अंजुली मस्तक चढाय अरहन्तादिकनिकूं भावमें धारि आलोचना करिके अर रत्नत्रयकूं उज्ज्वल करै। बहुरि मरणपर्यन्त च्यारि आहारका त्याग करै। अर समस्त अन्तरंग बहिरंग परिग्रहका त्याग करै। अर परीषहनिकूं समभावनिकरि सहै। 'अर खड़ा होना, बैठना, शयन करना, गमन करना इत्यादिक आपही आपका उपचार करै—परसूं करावना नहीं चाहै। अर उपसर्ग आवै तो आपका उपचार आपहू नहीं करै। उपसर्ग नहीं होइ तदि सोवना, बैठना, खड़ा होना इत्यादिक आपका आप करै। गाथा—

सयमेव अप्पणो सो करेदि आउन्टणादि किरियाओ।

उच्चारादीणि तधा सयमेव विकिंचिदे विधिणा ॥२०५१॥

अर्थ—बहुरि सो क्षपक हस्तपादादिक अंगनिका पसारना, खेंचना, पलटना इत्यादिक अपने देहमें आपही क्रिया करै–परका तहां करनेका सम्बन्ध ही नहीं। तथा मलमूत्रका मोचन यथाविधि शुद्धभूमिमें आपही करै। गाथा—

जाधे पुण उवसग्गे देवा माणुस्सिया व तेरिच्छा।

ताधे णिप्पडियम्मो ते अधियासेदि विगदभओ ॥२०५२॥

अर्थ—बहुरि जिसकालमें देवनिकरि कीया वा मनुष्यनिकरि कीया वा तिर्यंचनिकरि कीया उपसर्ग आजाय तो तिसकाल भयरहित हुवा तिन उपसर्गनिकूं सहै–उपसर्गमें समभाव नहीं छाडै–कायरता नहीं करै। गाथा—

आदितियसुसंघडणो सुभसंठाणो अभिज्जधिदिकवचो।

जिदकरणो जिदणिद्दो ओघबलो ओघसूरो य ॥२०५३॥

अर्थ—कैसाक है इंगिनीमरणका धारक क्षपक? आदिका तीन संहननका धारक है। वज्रर्षभनाराच, वज्र-नाराच, नाराच ये आदिके तीन संहनन हैं। बहुरि सुन्दर जाका संस्थान होय, बहुरि उपसर्ग परीषहनिकरि नहीं भेद्या

भगव. आरा.

जाय ऐसा धैर्यरूप जाके बकतर होय, बहुरि इन्द्रियनिकूं जीतनेवाला होइ, बहुरि निद्राकूं जीत लई होय, बहुरि महान् बलवान् होय, बहुरि अत्यंत शूरवीर होय, कायर नहीं होय, तिसके एकविहारीपणां होइ इंगिनीमरण होय है। गाथा—

बीभत्थभीमदरिसणविगुव्विदा भूदरक्खसपिसाया।

खोभिज्जो जदि वि तयं तधवि ण सो संभमं कुणइ ॥२०५४।

अर्थ—यद्यपि भयानक है दर्शन जिनका महाभयंकर अनेक विक्रिया करते भूतराक्षस-पिशाच क्षपककं क्षोभ करै-चलायमान कीया चाहै, तोहू संभ्रम-भयकूं प्राप्त नहीं होय। गाथा—

इड्ढिमदुलं वि उव्विय किण्णरकिंपुरिसदेवकण्णाओ।

लोलन्ति जदिवियतगं तधवि ण सो विम्भयं जाई।२०५५।

अर्थ—जो कदाचित् किन्नर किंपुरुष देवकन्या मिलिकरिके असदृश ऋद्धिकूं विक्रियाकरिके नानाप्रकार हाव-भाव विलास विभ्रम रूप लावण्य प्रीति प्रेमकरि ललचावै, तोहू ते विस्मयकूं प्राप्त नहीं होय है। गाथा—

सव्वो पोग्गलकाओ दुक्खत्ताए जदि तमुवणमेज्ज।

तध विहु तस्स ण जायदि ज्झाणस्स विसोत्तिया को वि।२०५६।

अर्थ—समस्त जगतके पुद्गलनिकी जाति जो दुःखरूप होय तिसका तिरस्कार करै तोहू तिस क्षपकके किंचितूहू ध्यानके विपरीतपणा नहीं करि सके है। गाथा—

सव्वो पोग्गलकाओ सोक्खत्ताए जदि वि तमुवणमेज्ज।

तध वि हु तस्स ण जायदि ज्झाणस्स विसोत्तिया को वि।२०५७।

अर्थ—समस्त जगतके पुद्गलसमूह जो सुख देनेरूप परिणमै, तोहू तिस क्षपकका ध्यानके चलायमानपणा किंचितूहू नहीं उपजै है। गाथा—

सच्चित्ते साहरिदो तत्थोवेक्खदि वियत्तसव्वंगो ।
उवसग्गे य पसन्ते जदणाए थण्डिलमुवेदि ॥२०५८॥

अर्थ—जो व्याघ्र सिंह दुष्टमनुष्यादिक क्षपककूं उठाय सचित्तभूमिमें पटकि दे तो समस्त अंगतैं ममता छांडि उदासीन हुवा जिस भूमिमें लेजाय तहांही तिष्ठै । बहुरि उपसर्ग मिटि जाय तो यत्नाचारपूर्वक सचित्तभूमिकूं छांडि सुन्दर जन्तुरहित निर्दोषभूमिमें जाय तिष्ठै—उपसर्ग दूरि भये पीछैं कर्दम हरितभूम्यादिक सचित्तभूमिमें नहीं तिष्ठै । गाथा—

एवं उव सग्गविधि परीसहविधिं च सोधिया सन्तो ।
मणवयणकायगुत्तो सुणिच्छिदो णिज्जिदकसाग्रो ॥२०५६॥

इहलोए परलोए जीविदमरणे सुहे य दुक्खे य ।
णिप्पडिबद्धो विहरदि जिददुक्खपरिस्समो धिदिमं॥२०६०॥

अर्थ—ऐसैं उपसर्गकी विधि अर परीषहनिकी विधिकूं सहता, अर मन-वचनकायकूं गुप्तिरूप करता, अर सत्यार्थका निश्चय करता, अर कषायनिकूं जीतता, अर जीत्या है दुःखका परिश्रम जाने, अर धैर्यवान् ऐसा क्षपक है सो इसलोकके पदार्थनिमें अर परलोकमें तथा जीवनेमें, मरणमें, सुखमें, दुःखमें कहांहू परिणामकरि नहीं बंधे है—आप अलिप्त रहे है । गाथा—

वायणपरियट्टणपुच्छणाग्रो मोत्तूण तधय धम्मथुदिं ।
सुत्तच्छपोरिसीसु वि सरेदि सुत्तत्थमेयमणो ॥२०६१॥

अर्थ—जिस अवसरमें वाचना, परिवर्तन, पृच्छना, तथा धर्मस्तुतिकूं त्यागिकरिकैं धर्मोपदेशरूप सूत्रका अर अर्थका चितवन करै । मरण नजीक आवते संते वाचना पृच्छना परिवर्तनका अवसर नहीं है । एक धर्मरूप उपदेशहीकूं स्मरण करे है । गाथा—

एवं अट्ठुवि जामे अनुवट्टो तच्च ज्झादि एयमणो ।
जदि आधच्चा णिद्दा हविज्ज सो तत्थ अपविण्णो ।२०६२।

अर्थ— ऐसे अष्टप्रहर शयनक्रियारहित एकाग्रमन हुवा तहां ध्यान करै। अर जो हटकरिकै निद्रा आय प्राप्त होइ तो तहां प्रतिज्ञा नहीं जाननो। गाथा—

सज्झायकालपडिलेहणादिकाश्रो ण सन्ति किरियाश्रो।
जम्हा सुसाणमज्झे तस्स य झाणं अपडिसिद्धं ॥२०६३॥

अर्थ—इनि इंगिनीमरण करनेवालेके स्वाध्यायकालमें प्रतिलेखनादि जो भूमिशोधना दिशादिक सोधनादि क्रिया नहीं है। यातें याके स्मशानभूमिमेंहू ध्यानका निषेध नहीं है। गाथा—

श्रावासगं च कुणदे उवधोकालम्मि जं जहिं कमदि।
उवकरणंपि पडिलिहइ उवधोकालम्मि जदणाए ॥२०६४।

अर्थ—बहुरि दोऊ कालविषं आवश्यक क्रिया करे है। जो उपकरण पीछी है सोहू यत्नाचारकरि दोऊ कालमें सोधे-देखे-प्रतिलेखन करै। गाथा—

सहसा चुक्करकलिदे णिसीधियादीसु मिच्छकारे सो।
श्रासिश्रणिसीधियाश्रो णिग्गमणपवेसणं कुणइ ॥२०६५॥

अर्थ—बहुरि इंगिनी नाम मरणके धारक चूकिकरि शीघ्रतातें जो स्खलित हो जाय, गिरि जाय तो "मै मिथ्या करी" ऐसें मिथ्याकार करै। बहुरि स्थान वसतिका गुफा इनमेंतें निकसतें तो आशिका जो आशीर्वाद देर जाय अर प्रवेश करै जब निषेधिका करे। जो, "भो स्थानके स्वामी हो! तुमारी इच्छाकरि इहां स्थिति रह्यो चाहूं हूं" ऐसे निषेधिका करै। साधुका समाचारमें मिथ्याकार आशिका निषेधिका जो कही है, सो समस्त क्रिया करै। गाथा—

पादे कंटयमादिं अच्छिम्मि रजादियं जदावेज्ज।
गच्छदि अधाविधिं सो परणोहरणे य तुसिणीश्रो।२०६६।

अर्थ—चरणनिमें कंटकादिक प्रवेश करि जाय तथा नेत्रनिमें रज तृणादिक जो प्रवेश करे तो आप जैसेके तैसे तिष्ठै. अन्य कोऊ आय कंटकादिक निकासे तो आप मौनी हुवा तिष्ठै—कछू कहे नहीं। गाथा—

वेउव्वणमाहारयचारणखीरासवादिलद्धीसु ।
तवसा उप्पण्णासु वि विरागभावेण सेवदि सो ॥२०६७॥

अर्थ—वैक्रियक ऋद्धि, आहारक ऋद्धि, चारण ऋद्धि, क्षीरस्रावी इत्यादिक ऋद्धि तपके प्रभावकरि उत्पन्न होतेहू वे वीतरागभावके धारक ऋद्धिनिकूं नहीं सेवन करे हैं। गाथा—

मोणाभिग्गहणिरदो रोगादंकादिवेदणाहेदुं ।
ण कुणदि पडिकारं सो तहेव तण्हाछुहादीणं ॥२०६८॥

अर्थ—मौनव्रतकूं धारता साधु जो रोगकी वेदना मेटनेके अर्थि तथा तृष्णा क्षुधादिकके मेटने के अर्थि प्रतीकार जो इलाज सो नहीं करे है। गाथा—

उवएसो पुण आइरियाणं इंगिणिगदो वि छिण्णकधो ।
देवेहिं माणुसेहिं व पुट्ठो धम्मं कधेदित्ति ॥२०६९॥

अर्थ—बहुरि आचार्यनिको यो उपदेश है—जो इंगिनी नाम संन्यासकूं प्राप्त भया मुनि कथा आलाप नहीं करै, तोहू देव मनुष्य धर्मकथा पूछै तो धर्म कहे हैं। गाथा—

एवमधक्खादविधिं साधित्ता इंगिणी धुदकिलेसा ।
सिज्झन्ति केई केई हवन्ति देवा विमाणेसु ॥२०७०॥

अर्थ—केई मुनि तो ऐसे यथाख्यातचारित्रविधिकरि इंगिनीमरणकूं साधिकरिके उड़ाये हैं क्लेश जिनूनं ऐसे सिद्ध होय हैं। अर केई मुनि विमाननिमें कल्पवासी तथा अहमिंद्र होय है। गाथा—

एवं इंगिणिमरणं वाससमासेण वण्णिदं विधिणा ।
पाओगमणणिमित्तो समासदो चेव वण्णेसिं ॥२०७१॥

भक्त. प्रत्या.

अर्थ--जैसे इंगिनीमरणकूं, विधिकारके विस्तारकरिके तथा संक्षेपकरिके वर्णन किया। अब आगे संक्षेपतें प्रायोपगमनमरणकूं वर्णन करूंगा।

इति भगवती आराधनाग्रन्थविषैं पंडितमरणका दूसरा भेद जो इंगिनी, ताहि चोतीस गाथानिमें वर्णन किया। अब पंडितमरणका तीजा भेद जो प्रायोपगमन, ताहि नव गाथानिकरि कहे है। गाथा--

पाओवगमणमरणस्स होदि सो चेव वुवक्कमो सव्वो।

वुत्तो इंगिणिमरणस्सुक्कमो जो सवित्थारो ॥२०७२॥

अर्थ--इंगिनीमरणकी जो विधि विस्तारसहित कही, सोही समस्तविधि प्रायोपगमन मरणकी होइ है। गाथा--

णवरिं तणसंथारो पाओवगदस्स होदि पडिसिद्धो।

आदपरपओगेण य पडिसिद्धं सव्वपरियम्मं ॥२०७३॥

अर्थ--प्रायोपगमनमें इंगिनीतें इतना विशेष है--इंगिनीमरणमें तो तृणनिका संस्तर है अर अपना वैयावृत्य उठना, बैठना, सोवना, चालना आपका आप करे है। अर प्रायोपगमनमें तृणमय संस्तरहू नहीं अर अपना समस्त प्रतीकार आप करै नहीं, अन्यकरि करावे नहीं है। गाथा--

सो सल्लेहिददेहो जम्हा पाओवगमणमुवजादि।

उच्चारादिविकिंचणमवि णत्थि पओगदो तम्हा ॥२०७४॥

अर्थ--जातें सम्यक् किया है शरीरका कृशपणा जानें ऐसा साधु प्रायोपगमन संन्यासकूं प्राप्त होय है, तातें अपने प्रयोगतें मलमूत्रादिकहू नहीं करे है। गाथा--

पुढवी आऊतेऊवणप्फदितसेसु जदि वि साहरिदो।

वोसट्ठचत्तदेहो अधाउगं पालए तत्थ ॥२०७५॥

अर्थ--जो कोऊ दुष्ट वैरीकरि पृथ्वीमें, जलमें, अग्निमें, वनस्पतिमें, त्रसनिमें पटकि दे तो वहांही छोड्या है देहमें ममता जिनने ऐसा तहांही मरणपर्यन्त तिष्ठि आयुकूं तहांही पूर्ण करै। गाथा--

मज्जणयगंधपुप्फोवयारपडिचारणे पि कीरन्ते ।
वोसट्टचत्तदेहो अधाउगं पालए तधवि ॥२०७६॥

अर्थ--जो कोऊ अभिषेक करे वा सुगन्धपुष्पादिककरि पूजा स्तवन करे तोहू त्याग्या है देहतें ममता जानें ऐसा रागी द्वेषी नहीं होय है-आयुपर्यन्त तैसेहो पूर्ण करे है । गाथा—

वोसट्टचत्तदेहो दु णिक्खिवेज्जो जहिं जधा अंगं ।
जावज्जीवं तु सयं तहिं तमंगं ण चालेज्ज ॥२०७७॥

अर्थ—छोड्या है देह जानें ऐसा प्रायोपगमनका धारी जिस क्षेत्रमें जैसे अंग पडि गया, तैसे यावज्जीव पड्या रहै-स्वय अपने अंगकूं चलावे, हलावे नहीं है । जैसे कोऊ सूका काठ वा मृतक का शरीर तैसे अचल तिष्ठे । गाथा—

एवं णिप्पडियम्मं भणन्ति पाओवगमणमरहन्ता ।
णियमा अणिहारं तं सिया य णीहारमुवसग्गे ॥२०७८॥

अर्थ—ऐसे स्वपरकृत प्रतीकार रहित प्रायोपगमनकूं अरहन्त भगवान् कह्या है सो शरीर नियमतें उपसर्ग विना तो अनाहार कहिये अचल है अर उपसर्गविषं मनुष्य तिर्यंच देवादिक चलायमान करे हैं तदि चल होय है । गाथा—

उवसग्गेण य साहरिदो सो अण्णत्थ कुणदि जं कालं ।
तम्हा वुत्तं णीहारमदो अण्णं अणीहारं ॥२०७९॥

अर्थ—उपसर्ग करिके हरण किया हुवा सो साधु अन्यक्षेत्रमें काल करे है, तातें याकूं नीहार कहिये हैं । यातें अन्यरीति उपसर्गविना चलायमान नहीं होय तातें अनाहार है । गाथा—

पडिमापडिवण्णा वि हु करन्ति पाओवगमणमप्पेगे ।
बोहट्ठं विहरन्ता इंगिणिमरणं च अप्पेगे ॥२०८०॥

अर्थ--जिनके आयुका अवशेषकाल अति अल्प रहि गया ऐसे केतेक साधु तो प्रतिमायोग धारण करता प्रायोपगमन संन्यासकूं करे है। कितने बहुतकाल प्रवर्तन करते इंगिनीमरणकूं प्राप्त होय है।

इति भगवती आराधनाविषें पंडितमरणके तीन भेदनिमें प्रायोपगमन नाम तीसरे मरणका नव गाथानिमें वर्णन किया। अब पंडितमरणमे प्रायोपगमनमरणकरि जे आत्मकल्याण किया, तिनका छह गाथानिमे वर्णन करे है। गाथा

आगाढे उवसग्गे दुब्भिक्खे सव्वदो विदुत्तारे।

कदजोगिसमधियासिय कारणजादेहिं वि मरन्ति ॥२०८१॥

अर्थ---समस्तप्रकारतें दुस्तर कहिये पार नहीं हुया जाय ऐसा दृढ महान् उपसर्ग आवतें तथा दुर्भिक्ष आवतें तथा औरहू मरणका कारण होतें किया है ध्यान जानें ऐसा योगी प्रायोपगमन संन्यासकरि मरण करे है। अब तिनहींका उदाहरण कहे हैं। गाथा—

कोसलय धम्मसीहो अट्ठं साधेदि गिद्धपुट्ठेण।

णयरम्मि य कोल्लगिरे चन्दसिरिं विप्पजहिदूण ॥२०८२॥

अर्थ---कोशलनगरविषें कुलगिरिपर्वतमें धर्मसिंह नामा चन्द्रश्री नाम स्त्रीकूं त्यागिकरिके गृद्धपिच्छकरिके अपना आत्म अर्थ साध्या। गाथा---

पाडलिपुत्ते धूदाहेदुं मामयकदम्मि उवसग्गे।

साधेदि उसभसेणो अट्ठं विक्खाणसं किच्चा ॥२०८३॥

अर्थ---पटना नाम नगरविषें पुत्रीके अर्थि मामाका किया उपसर्ग सहिकरि, वृषभसेन नामा अपना आत्माका अर्थ जो आराधनाकी पूर्णता, ताहि करी। गाथा---

अहिमारएण णिवदिम्मि मारिदे गहिदसमणलिंगेण।

उड्डाहपसमणत्थं सत्थग्गहणं अकासि गणी ॥२०८४॥

अर्थ—अहिमारक नाम चोर मुनिका लिंग धारणकरि राजाकूं मारते सन्ते संघका स्वामी गणी जो आचार्य सो समस्तसंघका उपद्रव दूरि करने के अर्थि वा संघका तथा धर्मका अपवाद दूरि करने के अर्थि आप शस्त्रग्रहण करता भया। गाथा—

सगडालएण वि तधा सत्तग्गहणेण साधिदो अत्थो।

वररुइपओगहेदुं रुट्ठे णंदे महापउमे ॥२०८५॥

अर्थ—वररुचिका प्रयोगके अर्थि नन्द नामा राजाकूं रोषरूप होते शकडाल नामा भी शस्त्रग्रहणकरिकंहू अपना आराधनारूप अर्थकूं साध्या। गाथा—

एवं पण्डियमरणं सवियप्पं वण्णिदं सवित्थारं।

वुच्छामि बालपण्डियमरणं एत्तो समासेण ॥२०८६॥

अर्थ—ऐसें पंडितमरण अपने भेद जे भक्तप्रत्याख्यान, इंगिनी, प्रायोपगमन तिनकरि सहित विस्तारकरि वर्णन किया। अब आगे संक्षेपकरि बालपंडितमरणकू कहूं।

इति भगवती आराधना नाम ग्रन्थविषै पंडितमरणका वर्णन किया ॥४॥ अब बालपंडितमरण देशव्रती श्रावककै होय है तिसकूं दश गाथानिमें वर्णन करिये हैं।

देसेक्कदेसविरदो सम्मादिट्ठी मरिज्ज जो जीवो।

तं होदि बालपण्डिदमरणं जिणसासणे दिट्ठं ॥२०८७॥

अर्थ—जो एकदेशविरत सम्यग्दृष्टि जीव मरण करे है, सो जिनेन्द्रका शासनमें बालपंडितमरण कह्या है। इहां ऐसा विशेष जानना—जो सम्यग्दर्शन ग्रहण करिके पंचपापनिका एकदेश त्याग करे है, सो देशव्रती नाम पावे है। तिस देशव्रतमें ग्यारह स्थान हैं, तिनका ऐसा संक्षेप जानना—प्रथम तो सम्यग्दृष्टि होइ। मिथ्यादृष्टि जीवके देशव्रत नहीं होइ है। सो सम्यग्दर्शन तीन प्रकार है। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक तिनमें अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके पहली उपशम सम्यक्त्व ही होइ है। अर मिथ्यात्व छूटि उपशमसम्यक्त्व होइ, ताकूं प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहिये है। सोही लब्धिसार नामा सिद्धांतमें कह्या है। गाथा—

भगव.
श्रारा.

चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भजविसुद्धसागारो ।
पढमुवसमं स गिण्हदि पंचमवरलद्धिचरिमम्हि ॥ १ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन होय है सो च्यारों गतिहीमें अनादिमिथ्यादृष्टि वा सादिमिथ्यादृष्टि, संज्ञी, पर्याप्त, गर्भज, मंदकषायी, गुणदोषका विचाररूप साकार जो ज्ञानोपयोगयुक्तकै पंचमी करणलब्धिका उत्कृष्ट जो अनिवृत्तिकरण तिसका अन्तसमयविषै प्रथमोपशमसम्यक्त्व होय है, बहुरि जाग्रतकै होय है तथा भव्यहीकै होय है । जातै मिथ्यात्वगुणस्थानतै छूटि उपशमसम्यक्त्वग्रहण होइ, ताका नाम प्रथमोपशम है । अर उपशमश्रेणीकी आदिमें क्षयोपशमसम्यक्त्वतै उपशमसम्यक्त्व होइ, सो द्वितीयोपशम है । तातै प्रथमोपशमसम्यक्त्वकूं मिथ्यादृष्टिही ग्रहण करै है । अर प्रथमोपशमसम्यक्त्व असंज्ञी अपर्याप्त सम्मूर्छनकै नहीं होय है, सूतेकै नहीं होय है । बहुरि प्रथमोपशम सम्यक्त्व होनेतै पहले मिथ्यादृष्टिगुणस्थानविषै पंचलब्धि होइ हैं, तिनका संक्षेपतै वर्णन करिये है । गाथा—

खयउवसमियविसोही देसणपाउग्गकरणलद्धी य ।
चत्तारि वि सामण्णा करणं सम्मत्तचारित्ते ॥ २ ॥

अर्थ—१. क्षयोपशम, २. विशुद्धि, ३. देशना, ४. प्रायोग्य, ५. करण, ये पंच लब्धि हैं । तिनमें आदिकी च्यारि लब्धि तो सामान्य हैं—भव्य अभव्य दोऊनिकै हो जाइ हैं । अर करणलब्धि भव्यहीकै सम्यक्चारित्रकूं साध्य होत संतै होइ है । गाथा—

कम्ममलपडलसत्ती पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा ।
होदूणुदीरदि जदा तदा खओवसमियलद्धी दु ॥ ३ ॥

अर्थ—कर्मनिविषै मल जो अप्रशस्त ज्ञानावरणादिक तिनका समूहकी शक्ति जो अनुभाग, सो जिस कालविषै समयसमयप्रति अनन्तगुणा घटता अनुक्रमकरि उदय होइ, तिस कालविषै क्षयोपशमलब्धि हो है । जातै उत्कृष्ट अनुभाग का अनन्तवां भागमात्र जे देशघातिस्पर्द्धक तिनका उदय होतै भी उत्कृष्ट अनुभागका अनन्त बहुभागमात्र जे सर्वघातिस्पर्द्धक तिनके उदयका अभाव सो तो क्षय, अर तेई सर्वघातिस्पर्द्धक जे उदय अवस्थाकूं नहीं प्राप्त भये, तिनकी सत्तामें अवस्था सो उपशम तिनकी प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि जाननी । गाथा—

आदिमलद्धिभवो जो भावो जीवस्स सादपहुदीणं ।
सत्थाणं पयडीणं बंधणजोगो विसुद्धिलद्धी सो ॥ ४ ॥

अर्थ—पहली जो क्षयोपशमलब्धि तातें उपज्या जो जीवकै सातादिक प्रशस्त बन्ध करनेको कारण धर्मानुरागरूप शुभपरिणाम होइ, ताकी जो प्राप्ति सो विशुद्धि लब्धि है, सो ठीक ही है, अशुभकर्मका अनुभाग घटें संक्लेशताकी हानि अर ताका प्रतिपक्षी विशुद्धि ताकी वृद्धि होनी युक्त ही है । गाथा—

छद्दव्वणवपयत्थोपदेसयरसूरिपहुदिलाहो जो ।
देसिदपदत्थधारणलाहो वा तदियलद्धी दु ॥ ५ ॥

अर्थ—छह द्रव्य नव पदार्थनिकूं उपदेश करनेवाले आचार्यादिकका लाभ तिनके उपदेशकी प्राप्ति अथवा उपदेशित पदार्थके धारनेकी प्राप्ति, सो तीसरी देशनालब्धि है । तु शब्दकरि नरकादिकविषें जहां उपदेश देनेवाला नहीं तहां पूर्वभवविषें धारया हुवा तत्त्वार्थके संस्कारका बलतें सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति जाननी । गाथा—

अन्तोकोडाकोडीविट्ठाणे ठिदिरसाण जं करणं ।
पाउग्गलद्धि णामा भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥ ६ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त तीन लब्धिसंयुक्त जे जीव समयसमय विशुद्धताकरि वर्द्धमान होत सन्ते आयुबिना सात कर्मनिकी अन्तःकोटाकोटी सागरमात्र स्थिति अवशेष राखें तिस कालविषें जो पूर्व स्थिति थी, ताको एक कांडक घातकरि छेदि तिस कांडकके द्रव्यको अवशेष रही स्थितिविषें निक्षेपण करे है । बहुरि घातियानिका लता-दारुरूप अघातियानिका निंब-कांजीरूप द्विस्थानगत अनुभाग इहां अवशेष रहे है । पूर्व अनुभाग था ताकें अनन्तका भाग दीये बहुभागमात्र अनुभागकूं छेदि अवशेष रह्या अनुभागविषें प्राप्त करे है । तिस कार्य करने की योग्यता की प्राप्ति प्रायोग्यता लब्धि है । सो भव्यकै वा अभव्यकै भी समान होहै । गाथा—

जेट्ठवरट्ठिदिबंधो जेट्ठवराट्ठिदितियाण सत्ते य ।
ण य पडिवज्जदि पढमुवसमसम्मं मिच्छजीवो हु ॥ ७ ॥

भगव. आरा.

अर्थ—संक्लेशी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके संभवता ऐसा उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अर उत्कृष्ट स्थिति-अनुभाग-प्रदेशका सत्त्व बहुरि विशुद्ध क्षपकश्रेणी के मांहि संभवता ऐसा जघन्य स्थितिबन्ध अर जघन्य स्थिति-अनुभाग-प्रदेशका सत्त्व इनको होतें जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वकूं नहीं ग्रहण करे है। गाथा—

भगव
आरा.

सम्मत्तहिमुहमिच्छो विसोहिवड्ढीहिं वड्ढमाणो हु।
अन्तोकोडाकोडिं सत्तण्हं बन्धणं कुणइ ॥ ८ ॥

अर्थ—प्रथमोपशमसम्यक्त्वके सन्मुख भया मिथ्यादृष्टि जीव सो विशुद्धिताकी वृद्धिकरि वर्द्धमान होत सन्ते प्रायोग्यलब्धिका प्रथमसमयतें लगाय पूर्वस्थितिके संख्यातवें भागमात्र अन्तःकोटाकोटी सागरप्रमाण आयुबिना सातकर्मकी स्थितिबन्ध करे है। गाथा—

तत्तो उदधिसदस्स य पुधत्तमेत्तं पुणो पुणोदरिय।
बन्धम्मि पयडिम्हि य छेदपदा होंति चोत्तीसा ॥ ९ ॥

अर्थ—तिस अन्तःकोटाकोटीसागर स्थितिबन्धतें पल्यका संख्यातवां भागमात्र घटता स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तपर्यंत समानता लिये करै। बहुरि तातें पल्यका संख्यातवां भागमात्र घटता स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तपर्यंत करै ऐसे क्रमतें संख्यात स्थितिबन्धापसरणनिकरि पृथक्त्व सो सागर घटें पहला प्रकृतिबन्धापसरणस्थान होइ। बहुरि तिसही क्रमतें तिसतें भी पृथक्त्व सो सागर घटें दूसरा प्रकृतिबन्धापसरणस्थान होइ।। ऐसेही इसही क्रमतें इतना स्थितिबन्ध घटें एक एक स्थान होइ। ऐसे प्रकृतिबन्धापसरण के चोतीस स्थान होहैं। इहां पृथक्त्व नाम सातें आठका है। तातें इहां पृथक्त्व सो सागर कहनेतें सातसैं वा आठसैं सागर जानना। अब इहां कैसी कैसी प्रकृतिनिका बन्धमेतें व्युच्छेद होइ है, इहांतें लगाय प्रथमोपशमसम्यक्त्वपर्यंत बंध नहीं होइ। ऐसे बन्धापसरण हैं। तिन चोतीस बन्धापसरणका वर्णन कीये कथनी बहुत हो जाय। जो विशेष जान्या चाहै, सो लब्धिसारग्रन्थतें जानहू। औरहू विशेष प्रायोग्यलब्धिमें जानना।

अब पंचमी करणलब्धि सो अभव्यके नहीं होय, भव्यहीके होइ है। अधःकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण ये तीन करण हैं। करण नाम परिणामनिका है। तिनमें अल्प अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अनिवृत्तिकरणका काल है। यातें संख्यात

गुरणा अपूर्वकरणका काल है। यातें संख्यातगुरणा इस अधःप्रवृत्तिकरण के अन्तर्मुहूर्तप्रमाण हो है। जातें अन्तर्मुहूर्त के संख्यात भेद हैं। बहुरि इस अधःप्रवृत्तिकरण के कालविषं अतीत अनागत वर्तमान त्रिकालवर्ती नानाजीव सम्बन्धी विशुद्धतारूप इस करणके समस्त परिणाम असंख्याततलोकप्रमारण हैं। लोकके प्रदेशनिका प्रमाणतें असंख्यातगुणे हैं। ते परिणाम अधःप्रवृत्तिकरणका काल जो अन्तर्मुहूर्तके जेते समय हैं तितने में सदृश वृद्धि लिए हैं। जातें इहां नीचले समयवर्ती कोई जीवके परिणाम उपरले समयवर्ती कोई जीवके परिणामनिके सदृश हो हैं, तातें याका नाम अधःप्रवृत्तिकरण है। अधःकरण मांडें कोई जीवको स्तोक काल भया, कोईको बहुत काल भया, तिनके परिणाम इस करणविषं संख्या वा विशुद्धताकरि समान भी होहै। ऐसा जानना, तातें याको अधःकरण कहिये हैं।

बहुरि अधःप्रवृत्तिकरणके परिणामनिके प्रभावतें समय समयप्रति अनन्तगुणी विशुद्धिताकी वृद्धि होय है। बहुरि स्थितिबन्धापसरण होय है। पूर्वं जेता प्रमाण लिये कर्मनिका स्थितिबन्ध होता था, तातें घटाइ घटाइ स्थितिबन्ध करे है। बहुरि सातावेदनीयको आदि देकरि प्रशस्त कर्मप्रकृतिनिका समयसमय अनन्तगुणां अनन्तगुणां बधता गुड खांड शर्करा अमृत समान चतुःस्थान लिए अनुभागबन्ध हो है। बहुरि असातावेदनीय आदि अप्रशस्त कर्मप्रकृतिनिका अनंतगुणां २ घटता निम्ब-कांजीरसमान द्विस्थान लिये अनुभाग बन्ध हो है। विषहलाहलरूप नहीं होइ है। ऐसे अधःकरणका परिणामनितें च्यार आवश्यक होइ हैं। अधःकरणका अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत भये दूसरा अपूर्वकरण होइ है। अधःकरणके परिणामनितें अपूर्वकरणके परिणाम असंख्याततलोकगुणे हैं, सो नानाजीवनिकी अपेक्षा है। एकजीवकी अपेक्षा एकसमयमें एक ही परिणाम होइ है। तातें एकजीवकी अपेक्षा जेते अपूर्वकरणके अन्तर्मुहूर्तकालके समय हैं तेते परिणाम हैं। ऐसेही अधःकरण के भी एकजीवके एकसमयमें एकही परिणाम होय है। नानाजीवनिकी अपेक्षा एकसमयके योग्य असंख्यात परिणाम हैं। ते अपूर्वकरणके परिणाम भी समय समय सदृश चयकरिवर्द्धमान हैं। जातें उपरले समयसम्बंधी परिणाम हैं ते नीचले समयसंबधी परिणामनितें समान नहीं है। प्रथम समयकी उत्कृष्टविशुद्धतातेंहू द्वितीय समयसमयसंबंधी जघन्य विशुद्धता भी अनंतगुणी है। ऐसे परिणामनिका अपूर्वपणा है, तातें दूसरा करणकूं अपूर्वकरण कह्या है।

दूसरे करणका प्रथमसमयतें लगाय अंतसमयपर्यंत अपने जघन्यतें अपना उत्कृष्ट अर पूर्वसमयके उत्कृष्टतें उत्तर समयका जघन्यपरिणाम क्रमतें अनंतगुणी विशुद्धता लिये सर्पकी चालवत् जानने। इहां अनुकृष्टि नाहीं है। अपूर्वकरणके

भगव.
आरा.

पहले समयतें लगाय यावत्सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीका पूर्ण काल अर जिस कालविषै गुणसंक्रमण करि मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीरूप परिणमावे है, तिस कालका अन्तसमयपर्यंत १. गुणश्रेणी, २. गुणसंक्रमण, ३. स्थितिखंडन, ४. अनुभागखंडन ये च्यारि आवश्यक हो हैं। बहुरि स्थितिबन्धापसरण है सो अधःकरणका प्रथमसमयतें लगाय तिस गुणसंक्रमण पूर्ण होने का कालपर्यंत होहै।

यद्यपि प्रायोग्यलब्धितेंही स्थितिबन्धापसरण होय है, तथापि प्रायोग्यलब्धिके सम्यक्त्व होनेका अनवस्थितपना है, नियम नाहीं, ताते नहीं ग्रहण किया। बहुरि स्थितिबन्धापसरण काल अर स्थितिकांडकोत्करणकाल ये दोऊ समान अन्तर्मुहूर्तमात्र हैं। तहां पूर्वं बांध्या था ऐसा सत्तामें कर्मपरमाणुरूप द्रव्य तामैंसूं काढि जो द्रव्य गुणश्रेणीविषै दिया ताका गुणश्रेणीका कालमें समयसमयप्रति असंख्यातगुणां असंख्यातगुणां अनुक्रम लिए पंक्तिबंध जो निर्जराका होना, सो गुणश्रेणी निर्जरा है ॥ १ ॥

बहुरि समय समयप्रति गुणकारका अनुक्रमतें विवक्षितप्रकृतिके परमाणु पलटिकरि अन्यप्रकृतिरूप होइ परिणमै, सो गुणसंक्रमण है ॥ २ ॥ बहुरि पूर्वं बांधी थी सत्तारूप कर्मप्रकृतिनिकी स्थिति तिसका घटावना, सो स्थितिखंडन है ॥ ३ ॥ बहुरि पूर्वं बांध्या था ऐसा सत्तारूप अप्रशस्त कर्मप्रकृतिनिका अनुभाग ताका घटावना, सो अनुभागखण्डन कहिये ॥ ४ ॥ ऐसे च्यारि कार्य अपूर्वकरणविषै अवश्य होइ हैं। अपूर्वकरण के प्रथमसमयसंबंधी प्रशस्त अप्रशस्त प्रकृतिनिका जो अनुभागसत्त्व है, तातें ताके अन्तसमयविषै प्रशस्तनिका अनन्तगुणां बधता अर अप्रशस्तनिका अनन्तगुणां घटता अनुभागसत्त्व होहै। इहां समयसमयप्रति अनन्तगुणी विशुद्धता होनेतें प्रशस्तप्रकृतिनिका अनंतगुणां अर अनुभाग-कांडकघातका माहात्म्यकरि अप्रशस्तप्रकृतिनिका अनंतवें भाग अनुभाग अंतसमयविषै संभवे है। इन स्थितिखण्डादिक होनेके विधानका कथन बहुतविस्तारसहित लब्धिसार नाम ग्रन्थतें जानना। इहा नामका प्रकरणके वशतें जनाया है।

बहुरि दूसरा अपूर्वकरणविषै कहे स्थितिखडादिक कार्यविशेषतें तीसरा अनिवृत्तिकरणविषै भी जानने। विशेष इतना—इहां समानसमयवर्ती नानाजीवके सदृश परिणाम हैं। जातें जितने अनिवृत्तिकरणके अन्तर्मुहूर्त के समय हैं तितने ही अनिवृत्तिकरण के परिणाम हैं तातें नाहीं है निवृत्ति कहिये परस्पर परिणामनिमें भेद जिनके ते अनिवृत्तिकरण हैं। तातें समयसमयप्रति एक एक परिणामही है। बहुरि इहां औरही प्रमाण लिए स्थितिखंड अनुभागखंड स्थितिबंधका प्रारम्भ हो है। जातें अपूर्वकरणसंबंधी जे स्थितिखंडादिक तिनका ताके अंतसमयविषैही समाप्त

चना भया। इहां अंतरकरणादिक विधि है सो श्रीलब्धिसारग्रन्थमें है। इहां प्रयोजन ऐसा है–जो, अनिवृत्तिकरण के अंत समयविषं दर्शनमोह अर अनंतानुबंधी चतुष्क इनके प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभागनिका समस्तपनें उदय होनेके अयोग्यरूप उपशम होनेतें तत्त्वार्थ के श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शनकूं पाय औपशमिक सम्यग्दृष्टि होइ है। तहां प्रथमसमयविषं द्वितीयस्थिति तिष्ठता मिथ्यात्वद्रव्यकूं स्थितिकांडक अनुभागकांडक घातविना गुणसंक्रमणका भाग देइ मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्वमोहनीय रूपकरि तीन प्रकार करे है। एक दर्शनमोहका द्रव्य तीन शक्तिरूप न्यारे न्यारे होई तिष्ठे है। ऐसे मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व होनेका कारण पंच लब्धिनिका संक्षेपतें वर्णन जनाया।

इस उपशमसम्यक्त्वका जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल है। उपशमसम्यक्त्वका काल पूर्ण भये पोछैं नियमतें तीन दर्शनमोहकी प्रकृतिविषं एकका उदय होइ। तहां जो सम्यक्त्व मोहनीयका उदय होतें उपशम सम्यक्त्वतें छूटि जीव वेदक-सम्यग्दृष्टि होय है, सो सम्यक्त्वमोहनीयका उदयतें वेदकसम्यग्दृष्टि चल–मल–अगाढरूप तत्वको श्रद्धान करे है। सम्यक्त्व मोहनीयके उदयतें श्रद्धानविषं चलपना होय है, तथा मल जो अतिचार सो लागे है, वा शिथिल श्रद्धान रहे है, इस वेदक-सम्यक्त्वहीकूं क्षयोपशमसम्यक्त्व कहिये है। जातें दर्शनमोहके सर्वघातिस्पर्धकनिका उदयका अभावरूप है लक्षण जाका ऐसा क्षय होतें अर देशघातिस्पर्द्धकरूप सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होतें बहुरि तिस सम्यक्त्वमोहनीयके वर्तमानसमयसंबंधीतें ऊपरिके निषेक उदयकूं न प्राप्त भये तिनसंबंधी स्पर्धकनिका सत्तामें अवस्थारूप है लक्षण जाका, ऐसा उपशम होतें वेदक सम्यक्त्व होय है। तातें याहीका दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है, भिन्न नहीं है। बहुरि उपशमसम्यक्त्वका अंतर्मुहूर्त काल बीते पाछैं मिश्र जोसम्यक्मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय होइ जाय तो तत्त्व अतत्त्व दोऊनिकूं एककाल श्रद्धान करता मिश्र-गुणस्थानी होय है। अर मिथ्यात्वका उदय होय जाय तो मिथ्यादृष्टि–विपरीतश्रद्धानी होय है। जैसे ज्वरकरि पीडित पुरुषकूं मिष्टभोजन नहीं रुचै, तैसे ताकूं धर्म जो अनेकांतरूप वस्तुका स्वभाव तथा रत्नत्रयरूप मोक्षकामार्ग सो रुचे नहीं है।

अर जो उपशमसम्यक्त्वके अंतर्मुहूर्तकालमे जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली अवशेष रहे च्यारिप्रकार अनतानुबधीमैतें कोई एक क्रोधको वा मानको वा मायाको वा लोभको उदय होय तो सम्यक्त्वत छूटि सासादन नाम पावै, सो जघन्य एकसमय, उत्कृष्ट छह आवलीप्रमाण काल सासादन नाम पाइ नियमतें मिथ्यादृष्टि होय है। ऐसे उपशमसम्यक्त्वका अन्तर्मुहूर्तकाल पूर्ण भये पोछैं सम्यक्त्वमोहनीयका उदय होय तो क्षायोपशमसम्यक्त्वी होय, अर मिश्रप्रकृतिका उदय होय तो मिश्रगुणस्थानी होय अर मिथ्यात्वका उदय होतें मिथ्यात्वी नियमतें होइ है।

अब क्षायिकसम्यक्त्व होनेका संक्षेप कहे हैं। जातें दर्शनमोहकी क्षपणाका आरम्भ करै सो कर्मभूमिका मनुष्य करै—भोगभूमिका मनुष्य नहीं करै, वा समस्त देव नारकी तिर्यंचनिकै क्षायिकसम्यक्त्वका प्रारम्भ नहीं होय। अर जो कर्मभूमिका मनुष्य आरंभ करै सो तीर्थंकर वा अन्य केवली वा श्रुतकेवलीके पादमूलविषै तिष्ठता होइ सो दर्शनमोहनीय क्षपणाका आरम्भ करे है, जातें केवली श्रुतकेवलीकी निकटता बिना ऐसी विशुद्धता नहीं होइ है। अधःकरणका प्रथम-समयसूं लगाय यावत् मिथ्यात्व मिश्र मोहनीयका द्रव्य सम्यक्त्वप्रकृतिरूप होइ संक्रमण करै तावत् अन्तर्मुहूर्तकालपर्यंत दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भक कहिये तिस प्रारम्भक कालके अनन्तरवर्ती समयतें लगाय क्षायिकसम्यक्त्व ग्रहणके प्रथम समयतें पहले निष्ठापक हो है। सो जहां प्रारम्भ किया था तहां ही वा सौधर्मादिकल्प वा कल्पातीतविषै वा भोगभूमिके मनुष्यतिर्यंचविषै वा घर्मा नाम नरकपृथ्वीविषै निष्ठापक होइ है। जातें पूर्वै बांधी है आयु जानै ऐसा कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि मरि च्यारयों गतिविषै उपजे है, तहां क्षपणाकूं पूर्ण करे है।

अब अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ अर दर्शनमोहनीय इनकी कैसी क्षपणा होइ सो कहे है—कोऊ वेदक-सम्यग्दृष्टि असंयत वा देशसंयत वा प्रमत्त वा अप्रमत्त इनिमेंतें एक गुणस्थानमें तिष्ठता पूर्वै तीन करणकी विधिकरिके अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभके उदयावलीमे तिष्ठते निषेकनिकूं छोडि अर उदयावलीबारै उपरितन स्थितिमें तिष्ठते समस्त निषेकनिकूं विसयोजन करता अनिवृत्तिकरणके अंतके समयविषै समस्त अनंतानुबंधीके द्रव्यकूं द्वादश कषाय अर नव नोकषायरूप परिणमन करावे है, सो अनंतानुबंधीका विसंयोजन है। इहांहू विसंयोजनमें गुणश्रेणी अर स्थिति-कांडघातादिक बहुत विधि है। अनंतानुबंधीका विसंयोजन किये पीछें अंतर्मुहूर्त काल विश्राम करि अन्यक्रिया नहीं करिता पीछें बहुरि तीन करणनिकरि अनिवृत्तिकरणका कालविषै मिथ्यात्व मिश्र सम्यक्त्वमोहनीयको क्रमतें नष्ट करे है। सो इन करणनिके सामर्थ्यतें जो जो कर्मनिका स्थिति—अनुभागनिका घात होनेका विधान है, सो श्रीलब्धिसारतें जानहू। ऐसे सप्तप्रकृतिनिकूं नष्ट करि क्षायिकसम्यक्त्वी होय है। ऐसे तीनप्रकार सम्यक्त्व होनेका विधान अतिसंक्षेपतें वर्णन किया।

अनंतानुबंधी ४, मिथ्यात्व १, सम्यग्मिथ्यात्व १, सम्यक्त्व १ इन सात प्रकृतिनिका उपशतें उपशमसम्यक्त्व होइ अर इन सप्तप्रकृतिनिके क्षयतें क्षायिकसम्यक्त्व होय है। बहुरि अनंतानुबंधी कषायनिका अप्रशस्त उपशमको होतें अथवा

विसंयोजन होतें बहुरि दर्शनमोहका भेद जो मिथ्यात्वकर्म अर सम्यग्मिथ्यात्वकर्म इन दोऊनिकूं प्रशस्त उपशमरूप होतें वा अप्रशस्त उपशम होतें वा क्षय होने के सन्मुख होतें बहुरि सम्यक्त्वप्रकृतिरूप देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होतेंही जो तत्त्वार्थका श्रद्धान है लक्षण जाका ऐसा सम्यक्त्व होइ सो वेदक ऐसा नाम धारक है। जहां विवक्षित प्रकृति उदय आवने योग्य नहीं होइ अर स्थिति अनुभाग घटने बधने वा संक्रमण होने योग्य होइ तहां अप्रशस्तोपशम जानना। बहुरि जहां उदय आवने योग्य नहीं होइ अर स्थिति अनुभाग घटने बधने वा संक्रमण होने योग्य भी नहीं होइ तहां प्रशस्तोपशम जानना। बहुरि तिहां सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होतें देशघातिस्पर्धकनिके तत्त्वार्थश्रद्धान नष्ट करनेकी सामर्थ्यका अभाव है, अर श्रद्धानकूं चल मल अगाढ दोषकरि दूषित करे है। जातें सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयके तत्त्वार्थश्रद्धानके मल उपजावने मात्रहीका सामर्थ्य है। तिह कारणतें तिस सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघातिपना है। तिस सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयकूं अनुभव करता जीवके उत्पन्न भया जो तत्त्वार्थश्रद्धान, सो वेदकसम्यक्त्व है, इसहीकूं क्षायोपशमिकसम्यक्त्व कहिये हैं। जातें दर्शनमोहके सर्वघातिस्पर्द्धकनिका उदयका अभाव है लक्षण जाका ऐसा क्षय होतें बहुरि देशघातिस्पर्द्धकरूप सम्यक्त्व-प्रकृतिका उदय होतें, बहुरि तिसहीका वर्तमानसमयसंबधीतें ऊपरिके निषेक उदयकूं नहीं प्राप्त भये तिनसंबंधी स्पर्द्धकनिका सत्ता अवस्थारूप है लक्षण जाका ऐसा उपशम होतें वेदकसम्यक्त्व हो है, तातें याहीका दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है।

भगव.
आरा.

अब इस सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयतें जो श्रद्धानके चलादिक दोष लागे हैं तिनिका लक्षण कहे हैं। प्रथमेही "जे आप्त आगम पदार्थरूप" श्रद्धानके भेदनिविषें चलायमान होइ, सो चल है। जैसे अपना कराया हुवा अर्हंतप्रतिबिम्बादिक विषें "यहु मेरा देव है" ऐसे ममता करि बहुरि अन्यका कराया अर्हंतप्रतिबिम्बादिकविषें "यहु अन्यका है" ऐसे परका मानि परिणाममें भेद करे है, तातें चल कह्या है। इहां दृष्टांत कहे हैं—जैसे नानाप्रकार कल्लोलनिकी पंक्तिविषें जल एकही तिष्ठे है, तथापि भी नानारूप होइ चले है; तैसे सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयतें श्रद्धान है सो भ्रमणरूप चेष्टा करे है। भावार्थ-जैसे जल तरंगनिविषें चंचल होइ परन्तु अन्यभावकूं न भजे; तैसे वेदकसम्यग्दृष्टिहू अपना वा अन्यका कराया जिन-बिम्बादिकविषें "यहु मेरा है, यहु अन्यका है" इत्यादिक विकल्प करे है, परन्तु अन्य रागी द्वेषी देवादिककूं नाहीं भजे है।

अब मलिनपणा कहे हैं। जैसे शुद्ध सोनाहू मलका संयोगतें मैला होइ है, तैसे सम्यक्त्वहू सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयतें

शंकादिक मलदोषका संयोगतें मलिन होय है । अब अगाढ कहे हैं । जैसे वृद्धका हस्तकी लाठी स्थानमें तिष्ठतीहू कंपायमान रहे है-गिरै नहीं, तोहू दृढ नहीं है, तैसे आप्त आगम पदार्थनिका श्रद्धानरूप अवस्था तिसविषै तिष्ठता हुवा भी परिणाममें कांपे है, दृढ नहीं रहै, ताकूं अगाढ कहिये है । ताका उदाहरण ऐसा-समस्त अरहंत परमेष्ठीनिकै अनन्तशक्तिपना समान होतेहू जाकै ऐसा विचार होइ इस शांतिनाथस्वामीही समर्थ है, बहुरि इस विघ्ननाशन आदि क्रियाविषै पार्श्वनाथ स्वामीही समर्थ है इत्यादि प्रकारकरि रुचि-प्रतीतिकी शिथिलता है, तातें बूढेका हाथविषै लाठीका शिथिलसंबंधपनाकरि अगाढका दृष्टान्त है । ऐसे सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयकरि श्रद्धानमें चल मल अगाढ दोष क्षयोपशमसम्यक्त्वमें आवे हैं अर कर्मका नाश करनेकूं समर्थ हैं ।

बहुरि अनन्तानुबंधी ४, दर्शनमोहनीय ३, इन सातप्रकृतिनिका सर्व उपशम होनेकरि औपशमिकसम्यक्त्व होय है । अर इन सात प्रकृतिनिका क्षयतें क्षायिक सम्यक्त्व होय है । इन दोऊ सम्यक्त्वमें शंकादिक मलनिका अंशभी नाहीं, तातें निर्मल है । अर परमागममें कहे पदार्थनिके श्रद्धानमें कहूंभी नहीं स्खलित होइ है, तातें दोऊ सम्यक्त्व निश्चल है । अर आप्त आगम पदार्थ भगवान्के कहे तिनमें तीव्र रुचि धारे हैं, तातें दोऊही सम्यक्त्व गाढरूप हैं । जातें चल मल अगाढ दोष उत्पन्न करनेवाली सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयका अभाव है; तातें ये दोऊ सम्यक्त्व निर्दोष हैं । अब व्यवहारसम्यक्त्वका विशेष कहे हैं । जो सत्यार्थ आप्त आगम गुरुका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है । आप्तका स्वरूप ऐसा है-जो क्षुधा, तृषा, जन्म, जरा, मरण, राग, द्वेष, शोक, भय, विस्मय, मद, मोह, निद्रा, रोग, अरति, चिंता, स्वेद, खेद ये अठारह दोषरहित होय; अर समस्त पदार्थनिके भूत भविष्यत वर्तमान त्रिकालवर्ती समस्त गुणपर्यायनिकूं क्रमरहित एककाल प्रत्यक्ष जानता ऐसा सर्वज्ञ होय; बहुरि परमहितरूप उपदेशका कर्ता होय सो आप्त अंगीकार करना । जातें जो रागी द्वेषी होइ सो सत्यार्थवस्तुका रूप नहीं कहे । अर जो आपही काम, क्रोध, मोह, क्षुधा, तृषादिक दोषसहित होइ, सो अन्यकूं निर्दोष कैसे करै ? अर जाकै इन्द्रियांके आधीन ज्ञान होय अर क्रमवर्ती होय सो समस्तपदार्थनिकूं अनन्तानन्तपरिणतिसहित कैसे जानै ? अर दूरवर्ती स्वर्ग नरक मेरु कुलाचलादिनिकूं अर पूर्वे भये जे भरतादिक तथा राम रावणादिक, अर सूक्ष्म परमाणु आदिक सर्वज्ञ बिना कौन जाने ? बहुरि परमहितोपदेशक बिना जगतके जीवनिका उपकार कैसे होय ? तातें वीतराग सर्वज्ञ परमहितोपदेशक बिना आप्तपणा नहीं संभवे है ।

जिनके शस्त्रादिक ग्रहण करना सो असमर्थता अर भयभीतपणा प्रकट दिखावे है, अर स्त्रीनिका संग वा आभ-

रणादिक प्रकट कामीपणा, रागीपणा, दिखावे है, तिनके आप्तपणा कदाचित् नहीं संभवे है। तातें परीक्षा करि जाके सर्वज्ञता अर वीतरागता अर परमहितोपदेशकता ये तीन गुण होइ, सो आप्त है। जाके वीतरागताही होइ अर सर्वज्ञपणा नहीं होइ तो वीतरागता तो घटपटादिक अचेतनद्रव्यनिकैहू क्षुधा, तृषा, राग, द्वेषादिकके अभावतें पाइये हैं, तिनके आप्तपणा का प्रसंग आवै। वा सर्वज्ञत्व विशेषण आप्तका नहीं होय तो इन्द्रियनिके आधीन किंचित् किंचित् मूर्तिक स्थूल निकटवर्ती वर्तमान वस्तुके जाननेवाले के वचनकी प्रमाणता होइ, सो अल्पज्ञके कहे वचन प्रमाण नहीं। तातें अल्पज्ञानीके आप्तपणा नहीं संभवे है। तातें वीतराग "सर्वज्ञ" ऐसा कह्या। अर वीतरागता अर सर्वज्ञपणा दोय विशेषणही आप्तके कहिये तो वीतरागसर्वज्ञपणा तो मोक्षस्थानमें सिद्धनिकैहू पाइये है, यातें परमहितोपदेशकपणाबिना आप्तपणा नहीं बने है। तातें सर्वज्ञता वीतरागता परमहितोपदेशकता अरहन्तहीके संभवे है।

बहुरि श्रुत जो आगम, ताका लक्षण श्रीरत्नकरण्ड नाम परमागममें ऐसा कह्या है। श्लोक–आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकं। तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥१॥ अर्थ—एते गुणसहित होय सो शास्त्र है। आप्त जो सर्वज्ञ वीतराग, ताको दिव्यध्वनिकरि प्रकट किया होय, अर जाका अर्थ तथा शब्द वादिप्रतिवादीकरि तिरस्कारकूं नहीं प्राप्त होइ, एकांतीनिकी मिथ्यायुक्तिकरि छेद्या नहीं जाय, बहुरि प्रत्यक्ष अनुमानकरि जामें विरोध नहीं आवै, अर वस्तुका जैसा स्वभाव है तैसा तत्त्वभूत उपदेशका करनेवाला होइ, बहुरि समस्तजीवनिका हितरूप होइ, किसही जीवका अहितकूं नहीं करता होय, अर कुमार्गका दूरि करनेवाला होय सो शास्त्र है। जातें अल्पज्ञानीका कह्या तथा रागी द्वेषीका कह्या तो प्रमाणही नहीं है। तातें आप्तका उपदेश्या आगम है सो ही प्रमाण है। अर जाका अर्थ परवादीनिकरि बाधाकूं प्राप्त होइ, प्रमाणकरि बाधित होइ सो काहेका आगम? बहुरि जामें प्रत्यक्षप्रमाणसूं बाधा आजाय वा अनुमानसूं बाधा आजाय, सो काहेका आगम? बहुरि जामें सारभूत जीवका कल्याणरूप उपदेश नहीं, सो काहेका आगम? बहुरि जो जीवनिका घात करनेवाला दुःखदायी होय, सो शास्त्र नहीं है, शस्त्र है, बुद्धिवानूंनिके आदरने जोग्य नहीं है। अर जो संसारके कुमार्गकूं प्रवर्तन करावै, सो खोटा आगम है।

अब गुरुका लक्षण ऐसा है। श्लोक–विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः। ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥१॥ अर्थ—जो पंच इन्द्रियनिके विषयनिकी आशाकरि रहित होय, जाके इन्द्रियनिके विषयनिमें वांछा नष्ट होगई

होइ, बहुरि जाके किंचिन्मात्रहू प्रारम्भ नहीं होय, अर जाके तिलतुषमात्र परिग्रह नहीं होय, अर जो ज्ञान ध्यान तपमें लीन होय—रक्त होय, सो तपस्वी प्रशंसायोग्य है। ऐसे आप्त आगम गुरुमें जाके दृढ श्रद्धान होइ सो सम्यग्दृष्टि है। जातें कार्तिकेय स्वामीहू स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाविषै सम्यक्त्वका लक्षण ऐसा कह्या है—जो अनेकान्तस्वरूप तत्त्वकूं निश्चयकरि सप्तभंगकरि सहित श्रुतज्ञानकरि वा नयनिकरि जीव अजीवादिक नवप्रकारके पदार्थनिकूं श्रद्धान करे है, सो शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। तथा जो जीव पुत्रकलत्रादिक समस्त अर्थनिमें मद गर्व नहीं करे है—उपशमभाव जे मन्दकषायरूप भाव तिनकूं भावनारूप करे है अर आपकूं तृणवत् लघु माने है अर विषयनिकूं सेवन करे है अर समस्त आरम्भमें वर्ते है, तोहू जाके मोहका ऐसा विलास है सो समस्तविषयनिकूं हेय माने है—त्यागने योग्य माने है, चारित्रमोहकी प्रबलतातें विषयनिमें आरंभमें प्रवर्तताहू अतिविरक्त है—नहीं राचे है, जो उत्तम सम्यक् गुणनिके ग्रहणमें आसक्त है, अर उत्तम साधुजननिमें विनयसंयुक्त जाकी प्रवृत्ति है, अर साधर्मीनिमें जाके अत्यन्त अनुराग है, अर देहसूं मिलि रह्याहू अपने आत्माकूं अपना ज्ञानगुणकरि भिन्न जाने है, अर जीवसूं मिल्या देहकूं कंचुक जो वस्त्र वा बकतरसमान भिन्न जाने है, सो शुद्धसम्यग्दृष्टि है। गाथा—

णिज्जियदोसं देवं सव्वजीवाणदयावरं धम्मं।
वज्जियगंथं च गुरुं जो मण्णदि सो हु सद्दिठी ॥१॥

अर्थ—जो अठारा दोषरहित सर्वज्ञकूं तो देव माने है, अर समस्त जीवनिकी दयामें तत्पर, ताकूं धर्म माने है, अर समस्तपरिग्रहरहितकूं गुरु माने है, सो सम्यग्दृष्टि है। गाथा—

दोससहियं पि देवं जीवहिंसाइसंजुदं धम्मं।
गंथासत्तं च गुरुं जो मण्णदि सो हु कुद्दिट्ठी ॥२॥

अर्थ—जो रागद्वेषादिक दोषसहितकूं देव माने है, अर जीवहिंसा सहित धर्म माने है, अर परिग्रहमें आसक्तकूं गुरु माने है, सो मिथ्यादृष्टि है। कोऊ देव मनुष्यादिक इस जीवकूं लक्ष्मी नहीं दे है। अर इस जीवका कोऊ उपकार नहीं करे है। उपकार अर अपकारकूं अपना उपार्जन किया पुण्यपापरूप कर्म करे है। कोऊकूं कोऊ अशुभकर्म हरनेको

अर शुभकर्म देनेको तीन लोकमें देव दानव इन्द्र अहमिन्द्र जिनेन्द्र समर्थ नहीं है। कर्म तो अपने शुभ अशुभ परिणाम के अनुकूल बंधे हैं। अर द्रव्य क्षेत्र काल भावका निमित्तकूं पाय अपना रस देय निर्जरे है। तातैं पर तो निमित्तमात्र है। जो भक्तिकरि पूजे हुये व्यन्तर योगिनी यक्ष क्षेत्रपालादिकही लक्ष्मी देवे तो धर्म करना व्यर्थ हो जाय। समस्तव्यन्तरनिहीकूं पूजि अपना हित करे, पूजा दान ध्यान शील संयमादिक निष्फल हो जाइ। जातै सुख आवै सो सातावेदनीयकर्मके उदयतैं आवै, अर दुःख आवे सो असातावेदनीयकर्मके उदयतैं आवे। अर कर्म कोऊकूं कोऊ देनेकूं समर्थ नहीं है। तातैं अन्यकूं दूषण देना वा राग करना मिथ्या है। जो हितके इच्छुक हो तो परमधर्ममें प्रवर्तन करो।

अथच.
आरा.

बहुरि जिस जीवके जिस देशमें, जिस कालमें, जिस विधानकरिके जन्म वा मरण, सुख, दुःख, लाभ, अलाभ, संयोग वियोग होना जिनेन्द्र भगवान् केवलज्ञानकरि निश्चित जान्या है–देख्या है; तिस जीवके तिस देशमें, तिस कालमें, तिस विधान करिके तैसेही होयगा। इसकूं अन्यथा करनेकूं, चलायमान करनेकूं इन्द्र वा अहमिन्द्र वा जिनेन्द्र समर्थ नहीं है। ऐसे जो निश्चयनयतैं समस्तद्रव्यनिके समस्तपर्यायगुणनिके परिणमनकूं जाने है, सो शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। अर जो इसमें शंका करे सो मिथ्यादृष्टि है। बहुरि जो तत्त्व जाननेकूं समर्थ नहीं है सो जिनेन्द्रके वचननिहीमें श्रद्धान करे है। जो जिनेन्द्र भगवान् दिव्यज्ञानतैं देखिकरि कह्या है, सो समस्त मैं सम्यक् इच्छा करूं हूं–प्रमाण करूं हूं, ग्रहण करूं हूं ऐसा जाके दृढ निश्चय है, सो मन्दज्ञानीहू सम्यग्दृष्टि है।

सम्यग्दर्शनके पचीस दोष हैं तिनकूं टारि श्रद्धानकूं उज्ज्वल करना। तिनमें मूढता तीन ३, अष्ट मद, शंकादिक दोष आठ ८, अनायतन छह ये पचीस दोष हैं। तिनमें मूढताकूं वर्णन करे हैं–नदीस्नानमें धर्ममानै, समुद्रको लहरिनिके स्नानमें धर्म माने, पाषाणका बालूका पुंज करनेमें धर्म मानै, पर्वततैं पडनेमें अग्निमें, प्रवेश करनेमें धर्म मानै, संक्रांतिमें दान करनेमें, ग्रहणमें स्नानकरनेमें धर्म मानै, सो लौकिकमूढ है। बहुरि हमारा वांछित देव देगा ऐसी आशाकरि रागद्वेष करि मलिनदेवनिकी सेवा करना; तथा ग्रह, भूत, पिशाच, योगिनी, यक्ष, क्षेत्रपाल, सूर्य, चन्द्रमा, शनैश्चरादिकनिकूं वांछितकी सिद्धिके अर्थि पूजा करना दान करना; सो देवमूढता है। तथा जे च्यारि निकायके देवनिके स्वरूपकरि रहित अर देवाधिदेव सर्वज्ञपणाकरि रहित जिनका विकारी रूप वा तिर्यंचनिकेसे मुख, जिनका हस्तीकासा मुख, सिंहकासा मुख, गर्दभमुख, वानराकेसे मुख, सूरकेसे मुख, पूंछ सींग इत्यादिसहितकूं देव मानना, तथा त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, चतुर्भुज,

इत्यादिक प्रकट विव्य देवके रूपरहित विकराल जिनके रूप तथा लिंग योनि इत्यादिक विपरीत रूप जिनकूं देखे लज्जा उपजे तिनमें देवत्वबुद्धि करै, अर देव मानि पूजा वन्दना करै, देवनिके अर्थि बकरा, भैंसा इत्यादिकनिकूं मारि चढावै, तथा देवतानै मद्यमांसके भक्षक जानै, सो समस्त तीव्र मिथ्यात्वके उदयतैं देवमूढता कहिये है ।

भगव

आरा.

जे आरम्भ परिग्रह हिंसाकरि सहित, पाखंडी, कुलिंगी, विषयनिके लोलुपी, अभिमानीनिकूं गुरु मानि सत्कार वन्दना पूजादिक करै; सो गुरुमूढता जाननी । बहुरि ज्ञानका मद, कुलमद, जातिमद, बलमद, ऐश्वर्यमद, तपोमद, रूपमद, शिल्पिमद, ये आठ मद सम्यक्त्वके घातक हैं । इन्द्रियजनित विनाशीक ज्ञानमें अहंकार करना तथा जाति, कुल, रूप, बल, ऐश्वर्य ये कर्मके उदयजनित हैं, तथा पर हैं, विनाशीक हैं, इनमें आपा धरना सो अष्ट मद मिथ्यात्वके उदयतैं हैं । तथा कुदेव, कुधर्म, कुगुरु, अर इनके सेवक तिनकूं अनायतन कहे हैं । रागी, द्वेषी, मोही तथा जे देवपणारहित ये कुदेव, अर जामें तीव्र हिंसाकी प्रवृत्ति दयारहित सो कुधर्म, अर परिग्रहधारी विषयकषायांके वशीभूत सो कुगुरु, तीन तो ये भये । अर कुदेव कुधर्म कुगुरु इनि तीननिके सेवन करनेवाले ये छह ही 'आयतन' कहिये धर्मके स्थान नहीं हैं । तातैं इनकूं अनायतन कहिये हैं । इनकी प्रशंसा करना, इनमें भले गुण जानना मिथ्यात्वके उदयतैं हैं ।

बहुरि शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टिता, अनुपगूहन, अस्थितीकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना ये आठ दोष सम्यक्त्व के हैं । इनिके अभावतैं इनिके प्रतिपक्षी अष्टगुण हैं । तिनमें जो सर्वज्ञभासित धर्ममें संशयका अभाव, सो निःशङ्कित है । सर्वज्ञ वीतरागही आराधनायोग्य देव है—अन्य रागी, द्वेषी नहीं । रत्नत्रयके धारक विषयकषायनिके जीतने वाले निर्ग्रन्थ ही गुरु हैं—अन्य आरंभी परिग्रही नहीं । दयाभावही धर्म है—हिंसाभाव धर्म नहीं, देवगुरुके निमित्तकरि हुई हिंसा पापही फले है धर्मकूं नहीं उपजावे है । ऐसे देव-गुरु-धर्मके स्वरूपमें संशयरहित निःशंक प्रवर्ते; ताके निःशङ्कित गुण होय है । बहुरि इहलोकभय, परलोकभय, मरणभय, वेदनाभय, अनरक्षाभय, अगुप्तिभय, अकस्माद्भय इनि सप्त-भयनिकरि रहित निःशंकित गुण होय है । दश प्रकारके परिग्रहके वियोग होनेका भय सो इस लोकका भय है । अर दुर्गति जानेका भय, सो परलोकका भय है । प्राणनिका नाश होनेका भय सो मरणका भय है । रोगका भय, सो वेदनाभय है । कोऊ हमारा रक्षक नहीं ऐसा अनरक्षाभय होय है । चोरनिका भय, सो अगुप्तिभय है । अचानक कोऊ आपत्ति दुःख आवै ताका भय, सो अकस्माद्भय है । इनि सप्तभयनिका अभाव जाकै होय, सो निःशंकित गुणका धारक नियमतैं सम्यग्दृष्टि होय है ।

सम्यग्दृष्टि इस लोकके भयके जीतनेकूं ऐसे चिंतवन करे है—नखतैं लगाय शिखापर्यंत समस्त देहकूं अवगाहन करि जो ज्ञान तिष्ठे है, सो मेरा अविनाशी निज धन है, अनादिनिधन है, नवीन उत्पन्न नहीं, अर अनन्तकालमें विनसे नहीं, यह मेरे निश्चय है। अर जो धन धान्य स्त्री पुत्र परिवार कुटुम्ब राज्य संपदा हैं ते परद्रव्य हैं, विनाशीक हैं। जहां उत्पत्ति है तहां प्रलय है, अर जिसका संयोग है तिसका वियोग है। इनका मेरे अनेकवार संयोग भया अर वियोग भया, जातैं परिग्रहके नाश होतें मेरा नाश नहीं अर परिग्रहका उत्पाद होतें मेरा उत्पाद नहीं—उत्पाद विनाश दोऊ परद्रव्यनिमें हैं। तातैं परद्रव्यका नाश होतें स्वभाव अचल है—नाश नहीं। ऐसो सम्यग्दृष्टि अपना रूपकूं अखंड अविनाशी ज्ञाता दृष्टा वेदे है—अनुभवे है। तातैं दशप्रकारका परिग्रह विनशनेका भय—जो मेरी धनसंपदा, मेरा स्त्री पुत्र कुटुम्ब, मेरा ऐश्वर्य मति कदाचित् विनशि जाय ऐसैं परिणाममें शंका, सो इसलोकका भय—ताकूं सम्यग्ज्ञानी नहीं प्राप्त होय है।

परलोकमें दुर्गति जानेका भय, सो परलोकभय है, सो सम्यग्दृष्टिके नहीं है। सम्यग्दृष्टि ऐसा विचार करे है—ज्ञान है सो मेरा बसनेका लोक है, इस अविनाशी ज्ञान लोकहीमें मेरा निश्चल बसना है, अर जे नरक स्वर्ग मनुष्य तिर्यंच महादुःखनिके भरे लोक है सो मेरा लोक नहीं है—पुण्यपापतैं उपज्या है। पुण्यका उदय होइ तदि जीव शुभगतिकूं प्राप्त होय है, पापका उदय होइ तदि दुर्गतिकूं प्राप्त होय है, सुगति दुर्गति दोऊ विनाशिक हैं, कर्मकृत हैं, मैं चिदानन्द चैतन्य ज्ञाता दृष्टा अखंड शिवनायक कर्मतैं भिन्न अपने ज्ञानलोकमें रहूं। ज्ञानलोकबिना अन्य मेरा लोकही नहीं, ऐसो चिंतन करते परलोकका भय नहीं होय है। जो सुगतिदुर्गतिसंबन्धी इन्द्रियजनित सुख दुःखमें आपा धारे है, ताके परलोकका भय है। अर जो निःशंक कर्मकलंकरहित अपना स्वरूपकूं अविनाशि अखण्ड अनुभवे हैं, ताके परलोकका भय नहीं होय है।२।

अब रोगकी वेदनाका भयकूं निराकरण करे है। जो अचल निजज्ञानकूं वेदे है—अनुभवे है, सो वेदना है, सो अनुभव करने वाला जीव अर जिस भावकूं वेदे है—अनुभवे है सोहू जीव है, जो अपने स्वभावकूं वेदना—अनुभवना सो वेदना तो अविनाशीक है, मेरा रूप है, सो देहमें नहीं है। अर जो कर्मकरि करी हुई सुख दुःखरूप वेदना है सो मोहका विकार है, पुद्गलमें है, विनाशीक है, देहमें जाके ममता है ताके है। अर देहका घात करनेवाले रोगादिक ते देहमें हैं, देहका नाश करेगा। मैं ज्ञाता दृष्टा अमूर्तिक अविनाशी ताका एकप्रदेशकूं चलायमान करनेकूं समर्थ नहीं है। ऐसे देहतैं अर देहमें उपजी वेदनातैं अपने स्वरूपकूं अखंड अविनाशी अनुभवे है, ताके वेदनाभय नहीं प्राप्त होय है।

अब मरणभयका निराकरण करे हैं। प्राणनिके नाशकूं मरण कहिये हैं। सो पंच इन्द्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, आयु, श्वासोश्वास ये दश प्राण हैं, सो देहके हैं। इनका विनाश होतें देहका विनाश होय है। ज्ञानप्राणसंयुक्त अमूर्त अखंड ऐसा मैं आत्मा, तिसका नाश नहीं है। ऐसे देहतें अर देहजनित मूर्तीक विनाशीक दशप्राणनितें आपकूं भिन्न अनुभवे है, ताकै मरणका भय नहीं होय है। जो मूढ देहका मरणकूं आत्माका मरण होना अनुभवे है, ताकै मरणका भय होइ। यातें सम्यग्दृष्टि अपने आत्माकूं ज्ञान दर्शन सुख सत्ता इत्यादि भावप्राणरूप अनुभवे, ताकै मरणभय नहीं होय है।

अब कोऊ हमारा रक्षक नहीं ऐसा अनरक्षक भयकूं कहे हैं। जगतविषैं जो सत् है तिसका विनाश नहीं है, ऐसे वस्तुकी स्थिति प्रकट है। सत् का विनाश नहीं, असत् का उत्पाद नहीं। मेरा ज्ञान सत् है, सो तीन कालमें इसका नाश है नहीं, ऐसा मेरे निश्चय है। यातैं मेरा चैतन्यस्वभावका अन्य कोऊ रक्षक नहीं, अर अन्य कोऊ भक्षक नहीं, पर्याय उपजे हैं पर्याय विनसे हैं। मेरा स्वभाव पुद्गल पर्यायतें भिन्न अविनाशी ज्ञानमय है। याका रक्षक भक्षक कोऊ है नहीं। तातें सम्यग्दृष्टि निःशंक निर्भय अपना ज्ञानमय निजस्वभावकूं वेदे है–अनुभवे है।

चोरका भय सो अगुप्तिभय है, ताहि जनावे है। जो वस्तुका निजस्वरूप है सोही सर्वोत्कृष्ट गुप्ति है। अपना निजस्वरूपविषैं कोऊ परद्रव्य प्रवेश करनेकूं अशक्त है, मेरा सर्वोत्कृष्ट चैतन्य स्वरूप है, अन्य कोऊ इसमें प्रवेश नहीं करि सके है। अर मेरा चैतन्य रूप कोऊ हरनेकूं समर्थ नहीं है, मेरा स्वरूप अक्षय अनन्तज्ञानस्वरूप अविनाशी धन है। तिसकूं चोर कैसे ग्रहण करै? इसमें कोऊ अन्यद्रव्यका प्रवेशही नहीं। ज्ञान–दर्शन–सुख–वीर्यरूप मेरा अविनाशी धन कोऊ हरनेकूं समर्थ नहीं। ऐसे अनुभव करता निःशंक निर्भय अपने ज्ञानस्वभावमें तिष्ठते सम्यग्दृष्टिके अगुप्तिभय नहीं होय है।

अब अकस्माद्भयकूं निराकरण करे हैं। मेरा स्वरूप स्वभावहीतें शुद्ध है, ज्ञानस्वरूप है, अनादिका है, अविनाशी है, अचल है, सिद्ध है, एक है, इसमें दूजे का प्रवेश नहीं है। चैतन्यका विलासरूप समस्तद्रव्यनिका जामें प्रकाश हो रह्या है, अर समस्तविकल्परहित अनन्तसुखका स्थान है, जिसमें अचानक कुछ होना नहीं है। तातें ज्ञानी सम्यग्दृष्टि अपना स्वरूपमें अनन्तानन्त काल होतेंहू द्रव्यकृत, क्षेत्रकृत, कालकृत, भावकृत कुछहू उपद्रव होना नहीं माने है। केवल ऐसा साहस सम्यग्दृष्टि जीवही करनेकूं समर्थ है। जो भयकरिके चलायमान जो त्रैलोक्य तानें छांडी है प्रवृत्ति जातें ऐसा

वज्रपातकू पडतेंहू अपने स्वभावकी निश्चलताकरिके समस्तही शंकाकूं त्यागिकरिके अर अपना स्वरूपकूं अविनाशी ज्ञानमय जानत है, अर ज्ञानतें नहीं च्युत होय है। भावार्थ—ऐसा वज्रपात पड़ै जो लोक चालते हालते खाते पीते जैसे के तैसे अचल रहिजाय, ऐसा भयंकर कारण होतेंहू जो अपना ज्ञानमय आत्माकूं अविनाशी जानता भयकूं नहीं प्राप्त होय, तिसके निःशंकित अंग होय है।

बहुरि इन्द्रियजनित सुखमें जाके अभिलाष नहीं, धर्मसेवनकरि धर्मके फलकू नहीं चाहै, सो निःकांक्षित गुण है। जातें सम्यग्दृष्टिकूं इन्द्रियनिके विषयजनित सुख दुःखरूप भासे है। कैसे हैं विषयनिके सुख? कर्मके परवश हैं, पुण्य कर्मका उदय होइ तदि विषय मिले हैं। बहुरि मिलें तोहू थिर नहीं हैं—अन्तसहित हैं। बहुरि बीचिबीचि इष्टवियोगादिक अनेकदुःखनिके उदयकरि सहित है, पापका बीज है। ऐसे इन्द्रियजनितसुखमें बांछाका अभाव सो निःकांक्षित अंग है।

बहुरि रोगी दरिद्री देखि ग्लानि नहीं करे, तथा आपके अशुभकर्मका उदय देखि ग्लानि नहीं करै, तथा पुद्गलनिको मलिनता देखि ग्लानि नहीं करे, जातें देह तो रोगमय है अर कर्मके उदयकी अनेक परिणति हैं, पुद्गलनिके नाना परिणमन हैं, इनके परिणमन देखि रागद्वेषकरि परिणामकूं मलिन नहीं करै, ताके निर्विचिकित्सा अंग होइ।

बहुरि जो भयतें, लज्जातें, लाभतें हिंसाके आरम्भकूं धर्म नहीं मानै, अर जिनेन्द्रकी आज्ञामे लीन हुवा मिथ्यादृष्टि एकांतीनिका चलायमान किया तत्त्वतें नहीं चलै, सो अमूढदृष्टि नामा अंग है। तथा मिथ्यादृष्टिनिका प्ररूप्या एकान्तरूप कुमार्ग तथा कुमार्गीनिका आचरण, कुमार्गीनिका ज्ञान ध्यान तप त्याग देखि मन–वचन–कायकरि प्रशंसा नही करै। तथा मंत्र यंत्र तंत्र पूजा मडल होम यज्ञादिककरि तथा व्यन्तरादिक देवनिकी पूजाकरि तथा ग्रहादिकनिकी पूजादिककरि अशुभ कर्मका अभाव होना अर साताका उदय होनेका श्रद्धान नहीं करै। जातें अशुभकर्मके उदय दूरि करनेकूं अर शुभकर्मके देनेकूं त्रैलोक्यमें कोऊ समर्थ नहीं है। अपने परिणामनिकरि बांध्या हुवा कर्म आपके शुद्धपरिणामकरिही निर्जरै और कोऊ दूरि करनेकूं समर्थ नहीं है। ऐसा दृढश्रद्धान सो अमूढदृष्टि है।

बहुरि जो परके दोषकूं आच्छादन करै–ढांकै, अर अपना भला कर्तव्य तिसका प्रकाश नही करै। जातें संसारी जीव रागद्वेषके वशीभूत है, अपना आपा भूलि रहे हैं, परमार्थतें पराङ्मुख हैं, स्वरूपका अवलोकनरहित है, ज्ञानावरण करि आच्छादित हैं, तातें परवश हुवा दोषरूप प्रवर्तें हैं। इनका दोष प्रकट किये अवज्ञा होयगी; तथा यो धर्ममें प्रवर्तें है,

धर्मको हास्य होयगी; तातें परके दोषकूं ढांके अर अपनी बडाई नहीं करे, "जो मैं केवलज्ञानरूप परमात्मरूप होइ विषय कषायनिमें फसि रह्या हूं!" ऐसे आत्मनिन्दा करै, अर जैसे सर्वज्ञ भगवान् देख्या है तैसे होयगा, ऐसे भवितव्यभावनामें रत होइ, ताके उपगूहन अंग होइ है।

कोऊ पुरुष रोगकरि वा उपसर्गकरि वा क्षुधातृषाकी वेदनाकरि वा व्रत पालनेमे शिथिलताकरि तथा असहायता करि तथा निर्धनताकरि मुनिधर्मतें वा श्रावकधर्मते चलायमान होता होय ताकूं धर्मोपदेश देनेकरि तथा शरीरकी टहल चाकरी करि वा औषध भोजनपान देनेकरि वा निराकुल वसतिका वा गृहादिक देनेकरि वा उपद्रवादिक दूरि करनेकरि धर्ममें स्तम्भन करे, धर्मतें चलबा नहीं दे, ताके स्थितिकरण अंग है।

बहुरि जो धर्मविषें वा धर्मात्मा पुरुषविषें वा धर्मायतन कहिये जिनमन्दिर, जिनप्रतिमाविषें वा सत्यार्थधर्मके प्ररूपक जिनेन्द्रका आगमके पठनविषें, श्रवणविषें, उपदेश देनेविषें जिनके अत्यन्त प्रीति होय ताकै वात्सल्य अंग होय है।

संसारी जीवनिके अपनी स्त्रीविषें वा पुत्रादिककुटुम्बविषें वा धनपरिग्रहादिकविषें तीव्र अनुराग लगि रह्या है, धर्म में, धर्मात्मापुरुषनिमें राग नहीं है, सत्यार्थ स्वपरका निर्णय करि जो परमधर्मकूं जाणे, अर चतुर्गतिका दुःखसूं भयभीत होय, अर जाकूं विषय विषसमान भासै, अर आत्मिक सुख जाकूं सुख दीखै, ताके धर्ममें वात्सल्य होय है।

बहुरि अपने आत्माके मांहि अनादिके मिथ्यात्वादिक मल, रागादिक कामादिक मल तिनकूं दूरि करि अपने आत्मा का प्रभाव रत्नत्रय धारणकरि प्रकट करना, सो प्रभावना नाम अंग है। तथा दान तप जिनपूजा त्याग इत्यादिकरि जिन धर्मका प्रभाव जगतमें प्रगट करै, मिथ्यादृष्टिहू देखि प्रशंसा करै "जो, ऐसा शील जैनीहीके होय, जिनका निर्लोभपणा, दयालुपणा, दातारपणा, क्षमावानपणा, तथा त्याग, वैराग्य, शील, संयम, सत्य इत्यादिक देखि बालगोपालहू महिमा करै," ताके प्रभावना अंग होइ है। जो महाव्रत अणुव्रत धारै, सो प्राण जातेंहू हिंसा, झूठ, परधनहरण, कुशील, परिग्रहमें नहीं प्रवृत्ति करे। ऐसा धर्मका महिमा प्रकट दिखावे, अपनी मन–वचन–कायकी प्रवृत्ति करि धर्मकी निन्दा नहीं करावे, अर अभ्यन्तर अपने आत्माकूं मिथ्यात्वादिकनितें मलिन नहीं होने देवै, ताके प्रभावना नाम अंग होय है। ऐसे सम्यक्त्व के अष्ट गुण कहे। कार्तिकेय स्वामी ऐसे कह्या है—

जो ण कुणदि परतत्ति पुणुपुणु भावेदि सुद्धमप्पाणं ।
इन्दियसुहणिरवेक्खो णिस्संकाई गुणा तस्स ।। १ ।।

अर्थ—जो जीव परकी निंदा नहीं करे है, अर बारंबार रागादिरहित शुद्ध आत्माकूं भावे है–अनुभवे है, अर इन्द्रियजनितसुखमें जिनके वांछाका अभाव है, तिनके निःशंकितादि गुण जानिये हैं ।

औरहू प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य ये सम्यक्त्वके लक्षण हैं । संवेग, निर्वेद, निन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य, अनुकंपा ये सम्यक्त्वके अष्टगुण हैं । धर्ममें अत्यन्त अनुराग होना, सो संवेग है । संसार देह भोगनितें विरक्तता, सो निर्वेद है । आपका दोष चिंतवन करि अन्तःकरणमें आपकी निन्दा करनी, अपना प्रमादीपणा, विषयानुरागीपणा, कषायनिके आधीनपणा, संयमरहितपणा देखि आपकूं निन्दना, सो निंदा है । गुरुनिके निकट अपने दोष प्रकट करि आपकी निन्दा करना, सो गर्हा है । बहुरि क्रोध मान माया लोभका मन्द होना, सो उपशमभाव है । बहुरि पंचपरमेष्ठी के गुणनिमें वा सम्यग्दृष्टि व्रतीनिके गुणनिमें अनुराग करना, सो भक्ति है । बहुरि धर्मात्मा जीवनिमें प्रीति करना, सो वात्सल्य है । बहुरि समस्तजीवनिमें दुःख देखि अन्तरंगमें कंपायमान होना, सो अनुकम्पा है । जाके सम्यग्दर्शन होइ ताके ये अष्टगुण प्रकट होयहो हैं । ऐसे सम्यक्त्वका संक्षेप वर्णन किया । सम्यग्दर्शनसहित एकदेशव्रतकूं धारण करि मरण करे है, सो बालपंडितमरण है अब गृहस्थके देशव्रत कैसे है, सो कहे हैं । गाथा—

पंच य अणुव्वदाइं सत्तयसिक्खाउ देसजदिधम्मो ।
सव्वेण य देसेण य तेण जुदो होदि देसजदी ।।२०८८।।

अर्थ—पंच अणुव्रत अर सप्त शिक्षाव्रत ये बारा व्रत देशयति जो एकदेशव्रती ताका धर्म है । जो श्रावक ये बारा व्रत समस्तपणाकरि वा इनिका एकदेशकरि जो युक्त होय, सो श्रावक एकदेश यति वा एकदेश संयमी वा व्रती होइ है । अब पंच अणुव्रत तिनके नाम कहे हैं । गाथा—

पाणवधमुसावादादत्तादाणपरदारगमणेहिं ।
अपरिमिदिच्छादो वि अ अणुव्वयाइं विरमणाइं ।।२०८९।।

अर्थ—हिंसा, असत्य, अदत्तादान, परदारगमन, परिमाणरहित परिग्रह इनि पंच पापनिका एकदेशत्याग, सो पंच अणुव्रत है। अब तीनप्रकार गुणव्रतके नाम कहे हैं। गाथा—

जं च दिसावेरमणं अणत्थदंडेहि जं च वेरमणं।
देसावगासियं पि य गुणव्वयाइं भवे ताइं ॥२०८०॥

अर्थ—जो मरणपर्यंत दश दिशानिमें गमनादिककी मर्यादा करना, सो दिग्विरति व्रत है। अर अनर्थदंडनिका त्याग, सो अनर्थदंडविरति व्रत है। अर कालकी मर्यादकरि क्षेत्रमें गमन करनेकी मर्यादा, सो देशावकाशिक है। ऐसे तीन गुणव्रत हैं। अब च्यारि प्रकार शिक्षाव्रतनिकूं कहे हैं। गाथा—

भोगाणं परिसंखा सामाइयमतिहिसंविभागो य।
पोसहविधी य सव्वो चदुरो सिक्खाउ वुत्ताओ ॥२०८१॥

अर्थ—भोगोपभोगकी मर्यादा, सो भोगोपभोगपरिमाणव्रत है। सामायिककी प्रतिज्ञा करना, सो सामायिक नाम शिक्षाव्रत है। अतिथि जे तीन प्रकारके पात्र तिनिकूं योग्य वस्तु का दान देना सो अतिथि सविभागव्रत है। च्यारि पर्व्वनिमें उपवासादिक प्रोषध विधि करना, सो प्रोषधोपवास नामा शिक्षाव्रत है। ऐसे च्यारि शिक्षाव्रत कहे। पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत ऐसे ये बारह व्रत गृहस्थ अवस्थामें श्रावकके कहे।

इहां ऐसा विशेष जानना—सम्यग्दर्शनका धारक जीवके समस्त व्रतादिक होइ हैं। तातें जो पहली जिनेन्द्रभाषित सूत्रकी आज्ञाप्रमाण तत्वार्थनिका श्रद्धानस्वरूप सम्यग्दर्शन धारण करिके; अर जो जूवा, मांस, मद्य, वेश्या, शिकार, चोरी, परस्त्री इन सात व्यसनका त्याग; अर पंच उदुम्बरफलादिकका त्याग; तथा जिनमें त्रसजीवनिकी उत्पत्ति ऐसा बीजफलादिकका त्याग करे है; सो दर्शनप्रतिमाका धारक श्रावक है।

बहुरि जो विशुद्धता बधि जाय तो व्रत नामा दूसरी प्रतिमा, तिसमें बारा व्रत धारण करे है। तिन व्रतनिका ऐसा सक्षेप है—जो अपनी बुद्धिपूर्वक नियम करना, सो व्रत है। जिनमें जो अपने संकल्पतें त्रसजीवनिकी हिंसा करनेका त्याग करे; मन बचन कायके संकल्पकरि त्रसजीवनिका घात नहीं करे; अन्यतें मन बचन कायकरिके नहीं करावे; अन्य करता होय तिसकूं मन बचन कायकरि भला नहीं जानै—प्रशंसा नहीं करै; रोगादिककी पीडाकरि वा धनके लोभकरि

वा भयकरि, वा लज्जाकरि कदाचित् अपना प्राण जाय तोहू बे-इन्द्रियादिक त्रसका घात नहीं करे; जातें गृहस्थके एकेन्द्रियकी हिंसाका त्याग तो बणि सके नहीं; चाकी, चूला, उखली, बुवारी, परींडा, अर द्रव्यका उपार्जन ये छह कर्म पापही के हैं; तातें पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, पवनकाय, वनस्पतिकाय इनिके आरम्भमें तो अत्यन्त घटाय यत्नाचार पूर्वक प्रवर्तन करे; अर संकल्पी त्रसहिंसाका त्याग करे; अर गमन, आगमन, भोजन, पान, सेवा वाणिज्यादिक आरम्भमें यत्नाचार पूर्वक प्रवर्ततेंहू जो कदाचित् विराधना होइ तो आपके हिंसा करनेका संकल्प है नहीं, कोऊ लाख धन देकरि एक कीडीकूं मरावे, वा भयकरि मरावे, तो प्राण जाहु, वा धन जाहु, परन्तु लोभ भय वेदनाके वशिहोय अपने संकल्पतें एक जीवकूं नहीं मारे, ताके अहिंसा नामा अणुव्रत होय है। जातें रागादिकनिकी उत्पत्ति सो हिंसा है, अर रागादिकनिकी उत्पत्तिका अभाव, सो अहिंसा है। जो वीतरागताकूं नहीं विस्मरण होता निरन्तर यत्नाचाररूप प्रवर्तै अर दयाधर्मकूं एक क्षण विस्मरण नहीं होय, ताके अहिंसा नाम अणुव्रत है।

बहुरि जो हिंसाके करनेवाले वचन नहीं बोले, वा कर्कश वचन नहीं कहै, वा अन्यके दुःख उत्पन्न करने वाला सत्यवचनहू नहीं कहै, अन्यकूं असत्यवचन नहीं बुलावे, तथा जो वचन कहै सो समस्त छकायके जीवनिके हितरूप कहै अर प्रमाणीक कहै, अर समस्त जीवनिके संतोष करनेवाला वचन कहै, अर धर्मका प्रकाश करने वाले वचन कहै, ताके सत्य नामा अणुव्रत होइ है।

बहुरि बिना दिया धनका ग्रहण करना, सो चोरी है। यातें कोऊ आपमे धन स्थाप्या होइ, वा कोऊ नगर ग्राम वन उपवनमें पड्या होइ, वा जमीमें गड्या होइ, वा कोऊ भूमिमें पटकि गया होइ, वा आपकूं सोंपि भूलि गया होइ, ऐसा परधनका जो त्याग करे, सो अचौर्य नामा अणुव्रत है। तथा बहुत मोलकी वस्तु अल्पमोलमें नहीं ग्रहण करै, अर गिरया, पड्या, भूल्या, विस्मरण हुवा परके वस्तुको नहीं ग्रहण करे तथा अल्पलाभमें संतोष करै, ताके अचौर्य नामा अणुव्रत है।

बहुरि जो अपनी विवाहिता स्त्रीबिना अन्य समस्त स्त्रीनिका त्याग करे, ताके ब्रह्मचर्य नाम अणुव्रत है। बहुरि जो धनधान्यादिक समस्त परिग्रहका परिणाम करि तिसतें अधिकमे तृष्णाका अभाव करि संतोष धारण करै, ताके परिग्रहपरिणाम नामा अणुव्रत होय है। ऐसे पंच अणुव्रत कहे।

बहुरि लोभके नाशके अर्थि जो यावज्जीव दश दिशानिका परिमाण, सो दिग्विरतिव्रत है। बहुरि जिसतें आपका

भगव.
आरा.

कार्य तो कुछहू सिद्ध नहीं होय अर जातें नित्य पापकर्मका बन्ध होइ, सो अनर्थदंड होय है। सो अनर्थदंड अनेक प्रकार है। तथापि सामान्यपणाकरि पंच भेद कहे है। पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुतिसेवन, प्रमादचर्या, ये पंचप्रकार अनर्थदंडके नाम हैं। तिनमे जो खेती करनेका, पशु पालनेका, पापके विणजका, तिर्यंच मनुष्यनिकूं मारनेका, दृढ बांधनेका, पुरुषस्त्रीनिके संयोगका तथा छहकायके जीवनिका घात जातें होइ ऐसा उपदेश करना, सो पापोपदेश नामा अनर्थ दंड है।

भगव. आरा.

बहुरि हिंसाके उपकरण जे खड्ग, बाण, छुरी, कटारी, फावडा, खुरपा, कुदाल, विष, अग्नि, रस्सा, जेवडा, बेडी, सांकल, चाबका, जाल, पींजरा इत्यादिकका देना, सो हिंसादान नामा अनर्थदंड है। तथा मार्जार, कूकरा, तीतर, कूकडा इत्यादिक मांसभक्षी जीवनिका पालना तथा आयुधनिका बेचना, लोहका विणज करना, तथा लाख खलि इत्यादिक "जीवनिकी हिंसा जिनतें प्रवर्तै तिनका" विणज व्यवहार करना, सोहू हिंसादान नामा अनर्थदंड है।

बहुरि जो रागी द्वेषी हुवा अन्यजीवनिके स्त्रीपुत्रादिकनिका मरण चाहना; तथा अन्यजीवनिके राजाकरि किया तीव्रदंड, वा सर्वस्वहरण, वा चौरादिककरि धनका नाश, तथा जगतमें अपवाद, कलंक इत्यादिककी वांछा करना; तथा अन्यजीवनिका अंगका छेद, बुद्धिका नाश, मारण, ताडनकी चाह करना; परका उदय देखि क्लेशित होना; अन्यके आपदा आजाय वा अपमानादिक होय तदि आनन्द मानना; सो अपध्यान नामा अनर्थदंड है। तथा अन्य मनुष्य तिर्यंचनिकी राडि कलह देखना वा देखिकरि हर्ष मानना, अन्यजीवनिके दोष ग्रहण करना, परको धन संपदा देखि वांछा करना, अन्यकी स्त्रीका देखनेमें अनुराग करना, आपका अभिमानकी वृद्धि चाहना, परका अपमान चाहना इत्यादिक अपध्यान नामा अनर्थदंड है।

बहुरि जिस शास्त्रमें हिंसामें धर्म कह्या; तथा जिनमें भंडकथा, कामकथा, वशीकरण, कपट, छलवर्णन, तथा युद्धशास्त्र तथा रागद्वेष मिथ्यात्वके बधावनेवारे खोटे शास्त्रनिका श्रवण करना; सो दुःश्रुति नाम अनर्थदंड है। बहुरि जो प्रयोजन बिना दौडना, कूटना, जलकूं सींचना, काढना, बिनाप्रयोजन अग्निका बधावना, पवनका उडावना, वनस्पतिका छेदना इत्यादिक निष्फल व्यापार-प्रवृत्ति करना, सो प्रमादचर्या नामा अनर्थदंड है। ऐसे पंचप्रकारके अनर्थदंडनिका छोडना सो अनर्थदंडत्याग नामा दूसरा गुणव्रत है।

बहुरि जो यावज्जीव दशदिशामें गमनका प्रमाण किया, सो तो दिग्विरतिव्रत है। तिसमें जो दिनप्रति मर्याद करै–जो मैं आजि इतनी दूरही गमन करूंगा, ऐसे जो कालकी मर्याद करि गमनका परिमाण निति करै–ताके देशावकाशिकव्रत कहिये हैं। बहुरि अपनी भोगोपभोगसंपदाकूं जाणिकरिके अर रागभावके घटावनेकूं जो इन्द्रियनिके विषयनिका परिमाण करै, ताके भोगोपभोग नामा शिक्षाव्रत है। तिनमें मद्य, मांस, मधु, नवनीत जो लूण्यो, कंद, मूल, हलद, आदो, निंब, केवडा, केतकी इत्यादिकनिके पुष्प इनिमें तो नियम नहीं, ये तो बहुत त्रसजीवनिका स्थानक है, तातें यावज्जीव त्याग करना उचित है। अर जो आपके उदरशूलादिक दुःख करनेवाला जो प्रकृतिविरुद्ध है, ताका त्याग करै। जातें जो अपने दुःख होना, रोगका बधना, मरण होना, इनकूं नहीं गिणता जिह्वा इन्द्रियका लोलुपी होइ प्रकृतिविरुद्ध आहार करै है, ताके तीव्ररागजनित अशुभ कर्मका बन्ध होय है।

बहुरि जिसमें जीवनिकी विराधना तो नहीं, परन्तु उत्तमकुलमें ग्रहणयोग्य नहीं, ते अनुपसेव्य हैं। जातें शंखचूर्ण, गजके दांत, औरहू हाड, गायका मूत्र, ऊँटका दुग्ध, तांबूलका उद्‌गाल, मुखकी लाल, मूत्र, मल, कफ तथा उच्छिष्ट भोजन तथा अशुद्धभूमिमें पड्या भोजन, तथा म्लेच्छादिकनिकरि स्पर्श्या भोजन, पान तथा अस्पृश्य शूद्रका ल्याया जल, तथा शूद्रादिकका किया भोजन, तथा अयोग्य क्षेत्रमें धर्‌या भोजन, तथा मांसभोजन करनेवाले के गृह का भोजन, तथा नीचकुलके गृहनि में प्राप्त भया भोजन जलादिक अनुपसेव्य है। यद्यपि प्रासुक होइ हिंसारहित होइ तथापि अनुपसेव्यपणातें अंगीकार करनेयोग्य नहीं है। बहुरि विकार करनेवाला भेष, वस्त्र, आभरण, नीच पुरुषनिके योग्य, रागकारी कामादिकके बधावने वाले चित्राम, गीत, नृत्य, भंडवचनश्रवण इत्यादिहू अनुपसेव्य हैं। तातें अनिष्ट अर अनुपसेव्यकूं वर्जन करिके जो न्यायोपार्जित त्रसजीवनिकी विराधनारहित भोजनादिक भोग अर वस्त्रादिक उपभोग, तिनमें प्रमाण करि अंगीकार करै, तिसके भोगोपभोगपरिमाण नाम व्रत है।

जो एकबार भोगनेमे आवै, सो तो भोजन, जल, पुष्प, गंधविलेपनादिकनिकूं भोग कहिये हैं। अर जे वस्त्र, आभरण, स्त्री, शयन, आसन, असवारी, महल, इत्यादिक बारबार भोगनेयोग्य ते उपभोग हैं। तिन भोगोपभोगका यावज्जीव त्याग करना, ताकूं यम कहिये हैं। अर जो एकदिन, दोयदिन, वा रात्रि, वा पक्ष, मास, चतुर्मास, एक वर्ष इत्यादिक कालकी मर्यादारूप त्याग करना, सो नियम है। तिनमें अयोग्य अनुपसेव्य त्रसनिका घात करनेवाले भोजनका तो याव-

भगव. आरा.

ज्जीव त्याग करि यमही करै। अर योग्यविषयनिमें कालको मर्यादपूर्वक त्याग करि नियम धारै। ऐसे समस्त पंच इन्द्रियनिके विषयनिमें यमनियम करे, सो भोगोपभोगपरिमाण नामा शिक्षाव्रत है।

बहुरि जिनके पुण्यके उदयतें नानाप्रकारको भोगोपभोगसामग्री घरमे मौजूद तिष्ठे है, तिनमेंतें अल्प ग्रहण करि बहुतका त्याग करे हैं, अर आगामी कालमें भोगोपभोगकी वांछारहित हैं अर वर्तमानकालमें जे कर्मके उदयतें भोगनेमें आवे हैं, तिनमें अति उदासीन हुवा मन्दरागसहित भोगे है, तिनके व्रत इन्द्रनिकरि प्रशंसायोग्य समस्त कर्मकी स्थितिका छेद करे है।

बहुरि समस्त चेतन अचेतन द्रव्यनिविषें रागद्वेषको त्याग करि साम्यभावकूं आलम्बनकरिके अर प्रातःकाल अर संध्याकालके विषें अविचल मन–वचन–कायकूं करि अवश्य नित्यही सामायिकका अवलबन करना, सो सामायिक नामा शिक्षाव्रत है। सामायिक करनेके अर्थि क्षेत्रशुद्धता देखनी। जहां कलकलाट शब्द नहीं होय, अर जहां स्त्रीनिका आगमन नहीं होय, नपुंसकनिका प्रचार नहीं होय, तिर्यंचनिका संचार नहीं होय, वा गीत नृत्य वादित्रादिकनिका शब्दरहित कलह विसंवादरहित होय, तथा जहां डां , मांछर, मांखी, बीछू सर्पादिकनिकी बाधारहित, शात उष्ण वर्षा पवनादिकके उपद्रवरहित, एकांत अपने गृहमें निराला प्रोषधोपवास करनेका स्थान होइ, वा जिनमन्दिरमें वा नगरग्रामबाह्य वनका मन्दिर वा मठ मकान सूना गृह गुफा बाग इत्यादिक बाधारहित क्षेत्र होइ तहां सामायिक करनेकूं तिष्ठै।

बहुरि प्रातःकाल वा मध्याह्नकाल तथा सध्याकाल इन तीन कालनिमें समस्त पापक्रियाको त्याग करिके सामायिक करै। इतने कालपर्यंत मै समस्त सावद्ययोगका त्यागी हूं, इनि कालनिविषें भोजन, पान, विणज, सेवा, द्रव्योपार्जन के कारण लेण देण, विकथा आरम्भ, विसवादादिक समस्तका त्याग करं, सामायिक के अर्थि काल दे देवे, तिन कालनि मे अन्यकार्यंका त्याग करे। बहुरि सामायिकके अवसरमें आसनकी दृढता करे। जो पूर्वं अपने स्थिर आसनका अभ्यास नहीं करि राख्या होय तासूं लौकिक कार्यहो नही होय तो परमार्थका कार्य कैसे बने? तातें आसनकरि अचल होइ तिसही के सामायिक होय है।

बहुरि सामायिकका पाठ वा देववन्दना वा प्रतिक्रमणादिकके पाठके अक्षरनिमें, वा इनके अर्थमें, वा अपने स्वरूप में, वा जिनेन्द्रके प्रतिबिंबमें, वा कर्मनिके उदयादिक स्वभावमें चित्तकूं लगाय, अर इन्द्रियनिका विषयनिमें प्रवृत्तिकूं रोकि

करिके मन-वचन-कायकी शुद्धता करि सामायिक करै; तथा शीत, उष्ण, पवनकी बाधा, डांस, मांछर, मक्षिका, कीडा, कीडी, बीछू, सर्पादिककरि आया परीषहतै चलायमान नहीं होइ; तथा दुष्ट व्यंतरदेवादिक अर मनुष्य अर तिर्यंच अर अचेतनकृत उपसर्गकूं समभावनिकरि सहै, चलायमान नहीं होइ-परिणाममें सकंप नहीं होइ-देह चल जाय तोहू जिनका परिणाम क्षोभकूं नहीं प्राप्त होइ; ताके सामायिक नाम शिक्षाव्रत होय है।

बहुरि जो अष्टमी चतुर्दशी एकमासमें च्यारि पर्व तिनमें उपवास ग्रहण करै, च्यारि प्रकारका त्याग, अर स्नान, विलेपन, आभूषण, स्त्रीनिका संसर्ग, अतर, फुलेल, पुष्प, धूप, दीप, अंजन, नाशिकामें सूंघने की नाश, तथा विणज व्यवहार, सेवा, आरंभ, कामकथा इत्यादिकनिका त्याग करि, धर्मध्यानसहित रहै अर च्यारि प्रकारका आहारका त्याग करे, ताके प्रोषधोपवास होय है।

तथा स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा नाम ग्रन्थमें ऐसे कह्या है-जो एकवार भोजन करै वा नीरस आहार वा कांजिका करै, ताकेहू प्रोषधोपवास नामा शिक्षाव्रत है। बहुरि जो उत्तमपात्र जो मुनि अर मध्यमपात्र अणुव्रती गृहस्थ अर जघन्य पात्र अव्रत सम्यग्दृष्टि गृहस्थ तिनके अर्थि जो भक्तिसहित दान करे है, ताके अतिथिसंविभाग व्रत है। आहारदान, औषधदान, ज्ञानदान, वसतिकादान ये च्यारि प्रकार दान करना, सो भक्तिपूर्वक करना। राग, द्वेष, असंयम, मद, दुःख, भयादिक जिस वस्तुतैं नहीं होइ, सो वस्तु संयमीनिके अर्थि दान देने योग्य है। वैयावृत्य अर दान एक अर्थ है। जो तपस्वीनिका शरीरका टहल करना, सो वैयावृत्य है, तथा अरहन्त भगवानका पूजन सो अर्हद्वैयावृत्य है, जिनमन्दिरकी उपासना करना वा उपकरण चमर छत्र सिंहासन कलशादिक जिनमन्दिरके अर्थि देना, सो समस्त जिनमन्दिरका वैयावृत्य है, सो महान् दान है। सो बडा आदर पूर्वक करना। ऐसे दानका प्रकार समस्तही वैयावृत्यमें जानना। ऐसे संक्षेपकरि श्रावकके बारह व्रत कहे वा इनके अतीचार कहे सो श्रावकाचारादिक ग्रन्थनिमें प्रसिद्ध है। इनि बारह प्रकार व्रतनिकूं धारै सो दूसरी पैडीका धारक व्रती श्रावक है।

जातै जो सम्यग्दर्शनकरि शुद्ध हुवा संसार देह भोगनितैं विरक्त, अर पंचपरमगुरुका शरण ग्रहण करता, सप्तव्यसनका त्याग करि समस्त रात्रिभोजनादिक अभक्ष्यका त्याग करे, ताकै दर्शन नामा प्रथम स्थान है। बहुरि पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत इनि बारहव्रतनिकूं धारण करे सो व्रती श्रावक दूसरा पदका धारक है। बहुरि तीनकाल

साम्यभाव धारण करि सामायिकका नियम करे, सो सामायिक पदवीका धारक तीजा भेद है। बहुरि एक एक मासविषै च्यारि च्यारि पर्वविषै जो अपनी शक्तिकूं नहीं छिपाय करिके जो प्रोषधोपवास धारण करै, ताकै चौथा प्रोषधस्थान है। याका विशेष ऐसा—

जो सप्तमी वा त्रयोदशीके दिन मध्याह्नकाल पहली भोजन करिके, अर पाछै अपराह्नकालविषै जिनेन्द्रके मन्दिर में जायकरिकै, अर मध्याह्नसंबन्धी क्रिया करिके, च्यारि प्रकारके आहारका त्याग करि उपवास ग्रहण करै, अर समस्त गृहके आरंभका त्याग करि जिनमन्दिरमें वा प्रोषधोपवासके गृहमें वा वनके चैत्यालयमें वा साधुनिके निवासमें समस्त विषयकषायका त्याग करिके सोलह प्रहरपर्यन्त नियम करै, तहां सप्तमी, त्रयोदशीका अर्धदिन धर्मध्यान स्वाध्यायतै व्यतीत करि अर संध्याकाल संबंधी सामायिक वंदनादिक करि रात्रिनै धर्मचिंतवन धर्मकथा पंचपरमगुरुके गुणनिका स्मरणादिककरि पूर्ण करिकै, अर अष्टमी चतुर्दशीके प्रातःकालमें प्रभातसंबंधी क्रिया करिके, अर समस्तदिवसकूं शास्त्रके अभ्यासतै व्यतीत करिकै, बहुरि सध्याकालमे देववन्दना करिके, अर रात्रिकूं तैसेही धर्मध्यानतै व्यतीत करिके, प्रातःकाल देववन्दनादिक करिकै, अर पश्चात् पूजनविधिकरि अर पात्रकूं भोजन कराय करिके जो पारणा करै, ताकै प्रोषधोपवास होय है। एकहू निरारम्भ उपवास उपशांत भया जो करे है, सो बहुत प्रकारका चिरकालतै संचय किया कर्मकी लीलामात्र करिके निर्जरा करे है। अर जो पुरुष उपवासके दिनहू आरम्भ करे है, सो केवल अपने देहकूं शोषण करे है अर कर्मका लेशहू नहीं नष्ट करे है। ऐसे प्रोषध नामा चौथा स्थान है।

बहुरि जो मूल फल पत्र शाक शाखा पुष्प कन्द बीज कूंपल इत्यादि अपक्व सचित्त नहीं भक्षण करै, सो सचित्त का त्याग नामा पंचम स्थान है। जातै अग्निमें तप्त किया, तथा अग्निकरि पकाया, तथा शुष्क भया, तथा आंमिली लूणकरि मिल्या हुआ द्रव्य, तथा जंत्र जो काष्ठपाषाणादिकके अनेक प्रकारके उपकरण तिनिकरि छेद्या जे समस्त द्रव्य, ते प्रासुक हैं, सो भक्षण करनेयोग्य हैं। जो त्यागी आप सचित्त भक्षण नहीं करै, ताकूं अन्यके अर्थि सचित्त भोजन करावना युक्त नहीं है। जातै भक्षण करनेमें अर करावनेमें कुछभी विशेष नहीं है। जो पुरुष सचित्तवस्तुका त्याग करे है, सो बहुत जीवनिकी दया धारण करे है। अर जो सचित्तका त्याग किया, सो कापुरुषनिकरि नहीं जीती जाय ऐसी जिह्वाकूं जीते है अर जिनेन्द्रका वचन पालत है। ऐसे सचित्तके त्यागीका पंचम स्थान कह्या।

बहुरि जो अन्न पान खाद्य स्वाद्य ऐसे च्यारि प्रकारका भोजन रात्रिविषं करै नहीं, करावे नहीं, अन्य भोजन करे ताको प्रशंसा करै नहीं, तिसके रात्रिभोजन त्याग नामा छट्ठा स्थान है। जो रात्रिभोजनका त्याग करिके अर रात्रिके विषं आरम्भकाहू त्याग करे है, सो एकवर्षमें छह महीनेके उपवास करे है। बहुरि जो अपनी विवाही स्त्रीकाहू त्याग करि स्त्रीमात्रतें विरक्त हुवा गृहमें तिष्ठै है अर अपनी स्त्रीतें रागरूप कथा तथा पूर्वं भोगे भोगनिकी कथाकूं वर्जिकरिके कोमल शय्या आसन विकाररूप वस्त्र आभरणके त्याग करिके स्त्रीनितें भिन्नस्थानमें शय्या आसन करता ब्रह्मचर्यव्रत पाले है, ताके ब्रह्मचर्य नामा सातवां स्थान होइ है।

बहुरि जो सेवा कृषि वाणिज्य शिल्प इत्यादिक धन उपार्जन करनेके कारण तथा हिंसाके कारण आरम्भकूं त्यागिकरि, अर अपने गृहमें द्रव्य होय तिनका स्त्रीपुत्र कुटुम्बादिकनिका विभाग करि, अर अपने योग्यकूं आप ग्रहण करि, अन्यमें ममता त्यागि नवीन उपार्जनका त्याग करि, अपने परिग्रहमें संतोष करि, जो अपने निकट द्रव्य राखि लिया ताकूं अन्न वा वस्त्रादिक भोगनिमैं वा पूजा दान इत्यादिकमें व्यतीत करता वा सज्जनादिकनिकूं देता वांछारहित काल व्यतीत करै, ताकै आरम्भ त्याग नामा अष्टमस्थान होय है। इहां इतना विशेष जानना– जो आप अल्प धन अपने खाने पीने दानपूजादिक के निमित्त राख्या था, ताकूं कदाचित् चोर वा दुष्ट राजा वा दाइयादार वा कपूतपुत्रादिक हरण करै, तो नीचा नहीं उतरै, "जो, मेरा जीवनेका निमित्त धन था, सो जाता रह्या, नवीन उपार्जनका मेरे त्याग है, अब मैं कहां करूं ? कैसे जीवूं ! ऐसे अरतिकूं नहीं प्राप्त होय है, धर्मका धारक धर्मात्मा विचारे है–यह परिग्रह दोऊ लोकमें दुःखका देनेवाला है, सो मैं अज्ञानी मोहकरि अन्ध हुवा ग्रहणकरि राख्या था, सो अब देवने मेरा बडा उपकार किया, जो ऐसे बन्धनतें सहज छूट्या।" ऐसा चिंतवन करता परिग्रहत्याग नामा नवमी पैडीकूं प्राप्त होय है, उलटा आरम्भ करि परिग्रह ग्रहणमें चित्त नहीं करै है, ताकै आरम्भ त्याग नामा आठमा स्थान होय।

बहुरि जो राग, द्वेष, काम, क्रोधादिक अभ्यन्तर परिग्रहकूं अत्यन्त मन्दकरिके, अर धनधान्यादिक परिग्रहकूं अनर्थ करनेवाले जानि, बाह्यपरिग्रहतें विरक्त होइकरिके, शीत उष्णादिककी वेदना निवारणके कारण प्रमाणीक वस्त्र तथा पीतल तांबाका जलका पात्र वा भोजनका एक पात्र इनिबिना अन्य सुवर्ण रूपा वस्त्र आभरण शय्या यान वाहन गृहादिक अपने पुत्रादिकनिकूं समर्पण करि, अपने गृहमें भोजन करताहू अपनी स्त्रीपुत्रादिक ऊपरि कोऊ प्रकार उजर नहीं करता, परमसंतोषी हुवा, धर्मध्यानतें काल व्यतीत करै, ताकै परिग्रहत्याग नामा नवमा स्थान है।

बहुरि गृहके कार्य जे धनउपार्जन वा विवाहादिक वा मिष्टभोजनादिक स्त्रीपुत्रादिकनिकरि किये तिनकी अनुमोदनाका त्याग करै वा कडवा, खाटा, खारा, अलूणा भोजन जो भक्षण करनेमें आवै ताकूं खारा, अलूणा बुरा भला नहीं कहै, ताकै अनुमतित्याग नाम दशमा स्थान है।

बहुरि जो गृहकूं त्यागि मुनिनके निकटि जाय व्रत ग्रहण करि, समस्त परिग्रहका त्याग करि, कमण्डलु, पीछी ग्रहण करै, अर एक कोपीन राखै, तथा शीतादिकके परीषह निवारण करनेकूं एक वस्त्र राखै—जिसतैं समस्त अंग नहीं आच्छादन होय ऐसा बोछा (छोटा) वस्त्र राखै, वा अपने उद्देश्य कहिये आपके निमित्त किया भोजनकूं नहीं ग्रहण करता, समितिगुप्तिकूं पालता मुनिश्वरनिकी नांई भिक्षा भोजन करे, मौनतैं जाय याचनारहित लालसारहित रस, नीरस, कडवा, मीठा जो मिले तामें मलिनतारहित शुद्ध भोजन करै, ताकै उद्दिष्ट आहार त्याग नामा ग्यारमा स्थान है। ऐसे ये ग्यारह प्रतिमा वर्णन करी, इनमें जो जो स्थान होय सो सो पूर्वपूर्वसहित होय। इनि एकादशस्थाननिमैतैं कोऊ स्थान धारि जो सल्लेखनामरण करै, सो बालपंडित मरण है। सो अब कहे हैं। गाथा—

आसुक्कारे मरणे अव्वोच्छिण्णाए जीविदासाए।
णादीहि वा अमुक्को पच्छिमसल्लेहणमकासी ॥२०६२॥

अर्थ—श्रावकव्रतके धारकका शीघ्र मरण आवता सन्ता अर जीवितकी आशा नहीं छूटता संता वा अपने कुटुम्बीनिकरि नहीं छूटते पश्चिम सल्लेखनाकूं करे। भावार्थ—अणुव्रतीका मरण तो नजीक आ जाय अर आपके जीवनेमें आशा घटी नहीं अर स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, बन्धुजन आपकूं छोड्या नहीं—दीक्षा लेने दे नहीं, तदि अणुव्रतनिसहित गृहमें तिष्ठताही सल्लेखना करे। जातैं जो धर्मात्मा गृहस्थ मुनिपणा अंगीकार किया चाहै, सो अपने कुटुम्बके जननिकूं ऐसे पूछि अर बन्धुसमूहकूं अर माता पिता स्त्री पुत्रादिकनितैं आपकूं छुड़ावै। अपने बन्धुसमूहकूं ऐसे पूछै—अहो ! इस हमारे शरीरके बन्धुसमूहमें वर्तनेवाले आत्मा हो ! इस मेरे आत्माके माहि तिहारा कुछहू नहीं है, या निश्चयतैं तुम जानत हो, तातैं तुमारे तांई पूछत हूं, अबार हमारा आत्माकै ज्ञानज्योति उदय भया है, तातैं मेरा अनादिका बन्धु जो मेरा आत्मा ताकूं प्राप्त भया चाहे है, मेरा शुद्धात्माही मेरा बन्धु है, अन्य बन्धुके देहका संबंध मेरे देहतैं है, मोतैं नाहीं। अहो इस शरीर के उत्पन्न करने वाले जनक के आत्मा तथा अहो मेरे शरीरकूं उत्पन्न करनेवाली जननीके आत्मा ! मेरे आत्माकूं

तुम नहीं उत्पन्न किया है, या निश्चयकरिके तुम जानत हो, तातें अब मेरे आत्माकूं तुम छांडो । अब हमारा आत्माके ज्ञानज्योति प्रकट भया है, तातें आपका अनादिका माता पिता जो अपना आत्मा ताकूं प्राप्त होय है । अहो ! इस शरीर के रमावनेवाली रमणीके आत्मा ! मेरे आत्माकूं तू नहीं रमावत है, ऐसे तू जाणि मेरा इस आत्माकूं छांडहु, अब हमारे आत्माके ज्ञानज्योति प्रकट भया है, तातें आत्मानुभूतिही जो मेरा आत्माकूं रमावनेवाली अनादिकी रमणी ताहि प्राप्त भया चाहे है । अहो इस शरीरके पुत्रका आत्मा हो ! मेरा आत्मा तुमकूं नहीं उत्पन्न किया है, या तुम निश्चयकरि जाणो, तातें मेरे आत्माकूं छांडहु । अब मेरा आत्माके ज्ञानज्योति प्रकट भया है, तातें आपका आत्माही जो अनादितें उपज्या अपना पुत्र, ताही प्राप्त हुवा चाहे है । ऐसे बन्धुजन वा पिता माता स्त्री पुत्रनितें आपतें आपकूं छुडावै । अर जो कुटुम्बी जन आपकूं निराला नहीं होने दे, दिगम्बरी दीक्षा नहीं धारण करने दे, तो अपने गृहविषेंही पश्चिम सल्लेखना करे । गाथा—

आलोचिदणिस्सल्लो सघरे चेवारुहित्तु संथारं ।

जदि मरदि देसविरदो तं वुत्तं बालपण्डिदयं ।।२०६३।।

अर्थ—शल्यरहित हुवा पंचपरमेष्ठीके अग्रि आलोचना करि अपने गृहविषेंही शुद्ध संस्तरविषें तिष्ठिकरि जो देश विरतिका धारी गृहस्थ मरण करे, सो बालपंडितमरण भगवान् परमागममें कह्या है । गाथा—

जो भत्तपदिण्णाए उवक्कमो वित्थरेण णिद्दिट्ठो ।

सो चेव बालपण्डिदमरणे णेओ जहाजोग्गो ।।२०६४।।

अर्थ—जो भक्तप्रतिज्ञामें संन्यासका विस्तार करिके कथन किया, सोही बालपंडितमरणविषें यथायोग्य जानना योग्य है । गाथा—

वेमाणिएसु कप्पोवगेसु णियमेण तस्स उववादो ।

णियमा सिज्झदि उक्कस्सएण वा सत्तमम्मि भवे ।।२०६५।।

अर्थ—तिस बालपंडितमरण करनेवालेका उत्पाद स्वर्गनिवासी वैमानिक देवनिविषें नियमतें होय है । अर सो समाधिमरणके प्रभावतें उत्कृष्टताकरि सप्तम भवविषें नियमतें सिद्ध होय है । गाथा—

भगव. आरा.

इय बालपंडियं होदि मरणमरहंतसासणे दिट्ठं।
एत्तो पण्डिदपण्डिदमरणं वोच्छं समासेण ॥२०९६॥

अर्थ—इस प्रकार बालपंडितमरण होय है। सो अरहन्तके आगममें कह्या है। तिस परमागमके अनुसार इस ग्रंथ विषैं दिखाया। मै मेरी रुचिविरचित नहीं कह्या है। भगवानके अनादिनिधन परमागममें अनन्तकालतैं अनन्त सर्वज्ञ देव ऐसेही कह्या है। अब आगे पंडितपंडितमरणकूं संक्षेपकरि कहूंगा। ऐसे आगे कहनेकी प्रतिज्ञा करी। ऐसे बालपंडितमरणकूं दश गाथानिमें वर्णन किया। अब पंडितपंडितमरणकूं बहत्तरि गाथानिकरि कहे हैं। गाथा—

साहू जधुत्तचारी वट्टन्तो अप्पमत्तकालम्मि।
ज्झाणं उवेदि धम्मं पविठ्ठुकामो खवगसेढि ॥२०९७॥

अर्थ—आचारांगकी आज्ञाप्रमाण आचरणका धारक अर अप्रमत्त जो सप्तम गुणस्थानमें वर्तता जो साधु सो क्षपकश्रेणीमें चढनेका इच्छुक धर्मध्यानकूं प्राप्त होय है। जातैं सर्वोत्कृष्ट विशुद्धता सहित धर्मध्यान सप्तमगुणस्थानमें श्रेणीके चढनेकूं सन्मुख हुवा साधुहीके होय है—अन्यके नहीं होय है। अब ध्यानके बाह्यपरिकरकूं कहे हैं। गाथा—

सुचिए समे विचित्ते देसे णिज्जन्तुए अणुण्णाए।
उज्जुअआयददेहो अचलं बन्धेत्तु पलिअंकं ॥२०९८॥

वीरासणमादीयं आसणसमपादमादियं ठाणं।
सम्मं अधिट्ठिदो अध वसेज्जमुत्ताणसयणंवि ॥२०९९॥

पुव्वभणिदेण विधिणा ज्झायदि ज्झाणं विसुद्धलेस्साओ।
पवयणसंभिण्णमदी मोहस्स खयं करेमाणो ॥२१००॥

अर्थ—जो स्थान पवित्र होय, वा सम होय, तथा एकांत होय, वा स्थानका स्वामीकरि प्रशंसाकिया होय, ऐसे शुद्धस्थानमें सरल लम्बा वक्रतारहित अपना देहकूं धारता, अचल पर्यंकासन बांधिकरि, वा वीरासनादिक वा समपादादिक

खडा आसन वा उत्तानशयनादिक आसननिकूं आश्रय करि, पूर्वे कही जो विधि ताकरिके धर्मध्यानकूं ध्यावै। कैसाक हुवा ध्यावै ? विशुद्ध है लेश्या जाके, अर जिनसिद्धांत में लीन है बुद्धि जाकी, अर मोहका क्षयकूं करता धर्मध्यानकू ध्यावै। गाथा—

संजोयणाकसाए खवेदि झारोण तेण सो पढमं।
मिच्छत्तं सम्मिस्सं कमेण सम्मत्तमवि य तदो ॥२१०१॥

अर्थ—सप्तगुणस्थानविषै तिस धर्मध्यानकरि पूर्वे विसंयोजना करी है कषाय जानै ऐसा पुरुष प्रथम तो धर्मध्यान करि मिथ्यात्वकूं क्षिपावे। पाछै सम्यग्मिथ्यात्वकूं क्षिपावे। पाछै सम्यक्त्वमोहनीयकूं क्रमकरि क्षिपाय क्षायिकसम्यग्दृष्टि होय है। तौंठा पाछै समस्त चारित्रमोहनीयके क्षिपावनेकूं समर्थ होय है। गाथा—

अध खवयसेढिमधिगम्म कुणइ साधू अपुव्वकरणं सो।
होइ तमपुव्वकरणं कयाइ अप्पत्तपुव्वन्ति ॥२१०२॥

अर्थ—क्षायिकसम्यक्त्व हुवा पाछै क्षपकश्रेणीकूं प्रवेश करिके, सो साधु अपूर्वकरणकूं करे है। जातै जो पूर्वे प्राप्त नहीं भये ऐसे परिणामनिकूं प्राप्त होइ, सो अपूर्वकरण होय है। गाथा—

अणिवित्तिकरणणामं णवमं गुणठाणयं च अधिगम्म।
णिद्दाणिद्दा पयलापयला तध थीणगिद्धिं च ॥२१०३॥
णिरयगदियाणुपुव्वि णिरयगदिं थावरं च सुहुमं च।
साधारणादवुज्जोवतिरयगदिं आणुपुव्वीए ॥२१०४॥
इगविगतिगचदुरिंदियणामाइं तध तिरिक्खगदिणामं।
खवयित्ता मज्झिल्ले खवेदि सो अट्ठवि कसाए ॥२१०५॥

तत्तो णपुंसगित्थीवेदं हासादिछक्कपुंवेदं ।
कोधं माणं मायं लोभं च खवेदि सो कमसो ॥२१०६॥

अर्थ--अपूर्वकरणकूं उल्लंघन करि बहुरि भिक्षु जो मुनि सो अनिवृत्तिकरणगुणस्थानकूं प्राप्त होयकरिके छत्तीस प्रकृतिनिका नाश करै । ते छत्तीस प्रकृति कैसी सो कहे हैं–१. निद्रानिद्रा, २. प्रचला प्रचला, ३, स्त्यानगृद्धि. ४. नरकगति, ५. नरकगत्यानुपूर्वी, ६. स्थावर, सूक्ष्म, ८. साधारण, ९. आताप, १०. उद्योत, ११. तिर्यंगत्यानुपूर्वी, १२. एकेन्द्रिय, १३. द्वीन्द्रिय, १४. त्रीन्द्रिय, १५. चतुरिन्द्रिय, १६. तिर्यंगति ऐसे सोलह प्रकृति तो अनिवृत्तिकरणके प्रथमभागमें नष्ट होय हैं । बहुरि अप्रत्याख्यानावरण १. क्रोध, २. मान, ३. माया, ४. लोभ, प्रत्याख्यानावरण १. क्रोध. २. मान, ३. माया, ४. लोभ ऐसे मध्यकी अष्ट कषायनिकूं द्वितीयभागविषै क्षिपावै । बहुरि १. नपुंसकवेदकूं तृतीयभागमें क्षिपावै । बहुरि चतुर्थभागविषै १. स्त्रीवेदकूं क्षिपावे । बहुरि पंचमभागविषै छह नोकषायनिकूं क्षिपावे । बहुरि च्यारि भागनिविषै अनुक्रमतै १. पुरुषवेद, २. सज्वलन क्रोध, ३. मान, ४. माया इनि च्यारि प्रकृतिनिकूं क्षिपावे । ऐसे अनिवृत्तिकरणके नव भागनिविषै छत्तीस प्रकृतिनिका नाश करै । अर बादरलोभकूं सूक्ष्म करे । गाथा—

अध लोभसुहुमकिट्टिं वेदन्तो सुहुमसंपरायत्तं ।
पावदि पावदि य तधा तण्णामं संजमं सुद्धं ॥२१०७॥

अर्थ—बहुरि सूक्ष्मकृष्टिकूं प्राप्त हुवा लोभकूं अनुभव करता साधु सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानकूं प्राप्त होय है । तथा तिस गुणस्थानके नामके धारक सूक्ष्मसांपराय नाम शुद्ध संयमकूं प्राप्त होय है । गाथा—

तो सो खीणकसाओ जायदि खीणासु लोभकिट्टीसु ।
एयत्त वितक्कावीचारं तो ज्झादि सो ज्झाणं ॥२१०८॥

अर्थ—तींठापाछै सूक्ष्मकृष्टिकूं प्राप्त भया लोभका नाश होइ तदि समस्त मोहनीयके क्षिपावनेतैं क्षीणकषायनाम गुणस्थानकूं प्राप्त भया जो क्षीणकषाय नामा मुनि सो एकत्ववितर्क अवीचार नाम द्वितीयशुक्लध्यान ध्यावत है । गाथा—

झारोण य तेण प्रधक्खादेण य संजमेण घादेदि ।
सेसाणि घादिकम्माणि समयमवरंजणाणि मदो ॥२१०९॥

प्रर्थ—तिस एकत्ववितर्क प्रवीचार नाम ध्यानकरि प्रर यथाख्यात संयमकरिके जीवकूं अन्यथाभाव करनेवाले तथा चेतनकूं जडसमान करनेवाले ज्ञानावरण-दर्शनावरण-अन्तरायरूप जे शेष घातिकर्म तिनिका एककाल कहिये एक समयमें नाश करे है। गाथा—

भगव.
आरा.

मत्थयसूचीए जधा हदाए कसिणो हदो भवदि तालो ।
कम्माणि तधा गच्छन्ति खयं मोहे हदे कसिणे ॥२११०॥

प्रर्थ—जैसे तालके वृक्षकी मस्तककी सूची जो साटि ताकूं हणतें सन्तें समस्त तालका वृक्ष नष्ट होत है; तैसे मोहकर्मका घात होतें समस्तकर्म नाशकूं प्राप्त होय है। गाथा—

णिद्दापचलाग दुवे दुचरिमसमयम्मि तस्स खीयन्ति ।
सेसाणि घादिकम्माणि चरिमसमयम्मि खीयन्ति ॥२१११॥

प्रर्थ--तिस क्षीणकषायगुणस्थानके द्विचरमसमयविषं १. निद्रा २. प्रचला, ये दर्शनावरणकर्मकी दोय प्रकृति नाशकूं प्राप्त होय हैं। शेष कहिये बाकीकी ज्ञानावरणकर्मकी प्रकृति पांच, अर दर्शनावरणकी च्यारि, अर अन्तरायकर्मकी पांच ऐसे चौदहप्रकृतिनिकूं क्षीणकषायगुणस्थानके अन्तसमयविषं खिपावे हैं। गाथा--

तत्तो णंतरसमए उप्पज्जदि सव्वपज्जयणिबंधं ।
केवलणाणं सुद्धं तध केवलदंसणं चेव ॥२११२॥
अव्वाघादमसंदिद्धमुत्तमं सव्वदो असंकुडिदं ।
एयं सयलगणन्तं अणियत्तं केवलं णाणं ॥२११३॥

चित्तपडं व विचित्तं तिकालसहिदं तदो जगमिणं सो ।
सव्वं जुगदं पस्सदि सव्वमलोगं च सव्वत्तो ॥२११४॥
वीरियमणन्तरायं होइ अणन्तं तधेव तस्स तदा ।
कप्पातीदस्स महामुणिस्स विग्धम्मि खीणम्मि ॥२११५॥

अर्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तरायके क्षय होनेके अनन्तरसमयविषे त्रिकालगोचर समस्तद्रव्यपर्यायका जानने वाला अर समस्तदोषरहितपणातें शुद्ध ऐसा केवलज्ञान तथा केवलदर्शन उत्पन्न होत है । कैसाक है केवलज्ञान ? कोऊ पदार्थमें, कोऊ क्षेत्रमें, कोऊ कालमें जाका रुकना नहीं; तातें अव्याबाध है । बहुरि निश्चयात्मक है, तातें असंदिग्ध है । बहुरि समस्तगुणनिमें उत्कृष्ट है, तातें उत्तम है । बहुरि मतिज्ञानादिकीनांई संकुचित नहीं, तातें असंकुचित है । बहुरि नहीं है नाश जाका, तातें अनिवृत्त है । बहुरि अपरिपूर्ण नांहीं, तातें सकल है । अर इन्द्रियादिकनिका सहायरहित जानने में प्रवर्ते, तातें ताकूं केवलज्ञान कहिये हैं । ऐसा केवलज्ञानसहित जो सर्वज्ञ भगवान् सो जैसे भूत भावी वर्तमान पुरुषनिके अनेक चित्र जामें लिखे ऐसे चित्रपटकूं वर्तमानकालमें देखिये है, तैसे समस्त त्रिकालवर्ती गुणपर्यायनिकरि सहित सम्पूर्ण लोक अलोककूं युगपत् एकसमयविषें विचित्र चित्रपटकीनांई अवलोकन करे है । बहुरि तिसही कालविषें कल्पनारहित जो केवली महामुनि, ताके विघ्न जो अन्तरायकर्म ताकूं क्षय होतें समस्त अन्तरायरहित अनन्तवीर्य उत्पन्न होय है । गाथा—

तो सो वेदयमाणो विहरइ सेसाणि ताव कम्माणि ।
जावसमत्ती वेदिज्जमाणयस्साउगस्स भवे ॥२११६॥

अर्थ—जितनें अनुभूयमान कहिये भुज्यमान आयु-कर्मको समाप्ति होइ तितनें शेष अघातियाकर्मकूं भोगता विहार करे है-प्रवर्ते है । गाथा—

दंसणणाणसमग्गो विरहदि उच्चावयं तु परिजायं ।
जोगणिरोधं पारभदि कम्मणिल्लेवणट्ठाए ॥२११७॥

अर्थ--दर्शनज्ञानकरिके सहित पर्यायकूं पूर्ण करता प्रवर्तन करै, बहुरि आयुकूं समाप्त होतैं कर्मके नाशके अर्थि योगनिका निरोधकूं आरम्भ करै, आयुकी पूर्णता होय तदि भगवानकी इच्छाविनाही पौद्गलिकयोगका निरोध होय है। गाथा—

भगव. आरा.

उक्कस्सएण छम्मासाउगसेसम्मि केवली जादा।
वच्चन्ति समुग्घादं सेसा भज्जा समुग्घादे ॥२११८॥

अर्थ—जे उत्कृष्टपणाकरि छह महीना आयुका अवशेष रह्या केवली भये, ते नियमतें समुद्घातकूं प्राप्त होय हैं। अर जिनूने आयुका छह महीनातैं अधिक अवशेष रहे केवलज्ञान उपजाया ते समुद्घातमें भजनीय हैं-समुद्घात होय वा नहीं होय। आयुकी स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहिजाय अर वेदनीय नाम गोत्रकी स्थिति अधिक रहि जाय ताकै तो तीन कर्मनिकी स्थितिकूं आयुसमान करनेकूं नियमतें समुद्घात होय है। अर जाके तीन कर्मकी स्थिति आयुके समान होइ, सो समुद्घात नहीं करे है। गाथा—

जेसिं आउसमाइं णामगोदाइं वेदणीयं च।
ते अकदसमुग्घादा जिणा उवणमन्ति सेलेसिं ॥२११९॥

अर्थ—जिनके नाम गोत्र वेदनीय इनि तीन कर्मनिकी स्थिति आयुकी स्थितिसमान होय, ते समुद्घात कियेविना ही शैलेश्यं कहिये अयोगकेवली नाम चौदहमां गुणस्थानकूं प्राप्त होइ अठारह हजार शीलके भेदनिकी परिपूर्णताकूं प्राप्त होय हैं। गाथा—

जेसिं हवन्ति विसमाणि णामगोदाउवेदणीयाणि।
ते दु कदसमुग्घादा जिणा उवणमन्ति सेलेसिं ॥२१२०॥

अर्थ—जिनके नाम गोत्र आयु वेदनीय इनि च्यारि कर्मनिकी स्थिति विषम होय-घाटि वाधि होय, ते जिनेन्द्र समुद्घातकरि कर्मनिकी स्थिति बराबरि करि शीलके स्वामीपणाकूं प्राप्त होय हैं। गाथा—

ठिदिसन्तकम्मसमकरणत्थं सव्वेसि तेसि कम्माणं ।
अन्तोमुहुत्त सेसे जन्ति समुग्घादमाउम्मि ॥२१२१॥

अर्थ—अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयु कर्म अवशेष रहै तदि सत्तामैं तिष्ठते जे नाम वेदनीय गोत्र इनि समस्त कर्मनिकी स्थिति आयुसमान करनेके अर्थि समुद्घातकूं प्राप्त होय है। गाथा—

ओल्लं सन्तं वत्थं विरल्लिदं जध लहु विणिव्वादि ।
संवेढिय तु ण तधा तधेव कम्मं पि णादव्वं ॥२१२२॥

अर्थ—जैसे आले वस्त्रकूं पसारि छीदा करि दे, तदि शीघ्रही सूकि जाय है, तैसे समेटि इकट्ठा किया आला वस्त्र नहीं सूकै है—बहुतकालमें क्रमतें सूकै है। तैसे कर्महू समुद्घातके अवसरमें जीवके प्रदेशनिकी लार फैलनेतें शीघ्रही निर्जरै है अर समुद्घातविना क्रमतें बहुत कालमें निर्जरै है, ऐसा जानने योग्य है। गाथा—

ठिदिबन्धस्स सिणेहो हेदू खीयदि य सो समुहदस्स ।
सट्ठदि य खीणसिणेहं सेसं अप्पट्ठिदी होदि ॥२१२३॥

अर्थ—समुद्घात करते जिनेन्द्रके थितिबन्धका का कारण सचिक्कणता नाशकूं प्राप्त होय है अर कर्मकी स्थिति की चिकणाई विनसि जाय तदि जाकी चिकणाई नष्ट भई ऐसा कर्म तो आत्मातें छूटि नष्ट हो जाय है अर जाका समस्त चिकणास नहीं मिट्या, सो अल्पस्थितिरूप होय है। गाथा—

चदुहिं समएहिं दंडं कवाड पदरजगपूरणाणि तदा ।
कमसो करेदि तह चेव णियत्ती चदुहिं समएहिं ॥२१२४॥

अर्थ—जो खडा समुद्घात करै, ताके एकसमयमें आत्माके प्रदेश देहतें नीचे वा ऊपरि दंडके आकार द्वादश अंगुल प्रमाण मोटा घनरूप निकसि, अर नीचला वातवलयतें लेर ऊपरला वातवलयके अभ्यन्तरतांई वातवलयकी मोटाईकरिके ऊन चौदह राजू लम्बा अर द्वादश अंगुल मोटा ऐसा एकसमयविषैं दण्डाकार करै। बहुरि जो बैठ्याके समुद्घात होइ, तो

अपने देहतं तिगुणा मोटा अर नीचे ऊपरि वातवलयरहित लोकप्रमाण दण्डाकार अपने आत्माके प्रदेशनिकूं करै। बहुरि दूजेसमय जे दण्डाकार आत्मप्रदेश छे तेई कपाटके आकार वातवलयनिकूं छांडिकरि करै। पूर्वसन्मुख होइ तो दक्षिण उत्तर कपाट करै। अर उत्तर सन्मुख होइ तो पूर्वपश्चिम कपाट करे। खडाके द्वादश अंगुल मोटा कपाट होइ। बैठ्याके अपने शरीरतं त्रिगुणा मोटा कपाट होइ। बहुरि तीजे समयविषं आत्माके प्रदेश वातवलयविना समस्तलोकमें प्रतररूप व्याप्त होइ, सो प्रतरसमुद्घात है। बहुरि चोथे समयमें वातवलयसहित समस्त तीनसै तीयालीस राजूप्रमाण लोकमें घनरूप आत्माके प्रदेश व्याप्त होइ, सो लोकपूरण है। ऐसे च्यारि समयनिकरि दंड कपाट प्रतर लोकपूरणरूप आत्माके प्रदेशनिकूं अनुक्रमकरि करै। अर बहुरि च्यारि समयमें अनुक्रमतं समुद्घातकूं निवृत्ति करै। पंचमसमयमें प्रतररूप, छठे समयमें कपाटरूप, सातमे समयमें दंडरूप, आठमें समयमें मूलदेहप्रमाण होइ। ऐसे समुद्घातकरि कर्मनिकी स्थितिकूं आयुकी स्थितिसमान करै। गाथा—

काऊण उसमाइं णामागोदाणि वेदणीयं च।
सेलेसिमब्भुवेन्तो जोगणिरोधं तदो कुणदि ॥२१२५॥

अर्थ — ऐसे समुद्घातके प्रभावतं नाम गोत्र वेदनीयकर्मकूं आयुकर्मकी अन्तर्मुहूर्तकी स्थिति बाकी रही थी तिस समान करि अर अठारह हजार शीलके भेदनिका स्वामीपणांनं प्राप्त होइ अर तीठापाछें मन वचन कायके द्वारं आत्मप्रदेशनिका हलन चलन था तिसकूं रोकै। अब योगनिके निरोधका कम कहे हैं। गाथा—

बादरवचिजोगं बादरेण कायेण बादरमणं च।
बादरकायंपि तधा रंभदि सुहुमेण काएण ॥२१२६॥
तध चेव सुहुममणवाचिजोगं सुहमेण कायजोगेण।
रंभित्तु जिणो चिट्ठदि सो सुहमे काइए जोगे ॥२१२७॥

अर्थ—बादरकाययोगमें तिष्ठिकरिके बादर मन-वचनके योगनिकूं सूक्ष्म करै। अर सूक्ष्म मन-वचनके योगमें तिष्ठि बादरकाययोगकूं सूक्ष्म करै। बहुरि सूक्ष्मकाययोगमें तिष्ठि मन-वचन-कायके सूक्ष्म योग थे, तिनका अभाव करि सूक्ष्मकाययोगमें तिष्ठै। गाथा—

भगव. आरा.

सुहमाए लेस्साए सुहमकिरियबन्धगो तगो ताधे ।
काइयजोगे सुहुमम्मि सुहमकिरियं जिणा झादि ॥२१२८॥

अर्थ—सूक्ष्मलेश्याकरि सूक्ष्मक्रियारूप परणाया जिन सूक्ष्मकाययोगमें तिष्ठि सूक्ष्मक्रिया ध्यानकूं ध्यावे है । गाथा—

सुहुमकिरिएण झाणेण णिरुद्धे सुहुमकाययोगे वि ।
सेलेसो होदि तदो अबन्धगो णिच्चलपदेसो ॥२१२९॥

अर्थ—सूक्ष्मक्रियारूप ध्यानकरिके सूक्ष्मकाययोगकूं रोकतें सन्तें समस्त शीलनिका स्वामी होय है । बहुरि आत्मा का निश्चलप्रदेशरूप हुवा बन्धरहित होय है । गाथा—

माणुसगदितज्जादि पज्जत्तादिज्जसुभगजसकित्ति ।
अण्णदरवेदणीयं तसबादरमुच्चगोदं च ॥२१३०॥
मणुसाउगं च वेदेदि अजोगी होहिदूण तं कालं ।
तित्थयरणामसहिदाओ ताओ वेदेदि तित्थयरो ॥११३१॥

अर्थ—१. मनुष्यगति, २. पंचेन्द्रियजाति, ३. पर्याप्त, ४. आदेय, ५. सुभग, ६. यशस्कीर्ति, ७. एक वेदनीय, ८. त्रस, ९. बादर, १०. उच्चगोत्र, ११. मनुष्यायुः तिस कालमें अयोगी कहिये योगरहित होयकरिके इनि ग्यारह प्रकृतिनि के उदयकूं वेदे है । अर तीर्थंकर अयोगकेवली होय सो तीर्थंकरप्रकृतिसहित बारह प्रकृतिनिके उदयकूं अनुभवे है । गाथा—

देहतियबन्धपरिमोक्खत्थं केवली अजोगी सो ।
उवयादि समुच्छिण्णकिरियं तु झाणं अपडिवादी ॥२१३२॥
सो तेण पंचमत्ताकालेण खवेदि चरिमज्झाणेण ।
अणुदिण्णाओ दुचरिमसमये सव्वाओ पयडीओ ॥२१३३॥

अर्थ—पश्चात् अयोगकेवली भगवान् तीन देह जो औदारिक, तैजस, कार्मारण, इनि तीन शरीरके छूटनेके अर्थि समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपाति नामा शुक्लध्यानकूं ध्यावे है। पंचमात्राका उच्चारणमात्र है काल जाका, ऐसा तिस समुच्छिन्नक्रियाध्यानकरिके अयोगीगुणस्थानका द्विचरमसमयविषै उदीरणाविना समस्तकर्मकी प्रकृतिनिकूं क्षिपावे है। भगवान् केवली कृतकृत्य हैं, इनके ध्यान है नहीं, समस्तपदार्थ गुणपर्यायनिसहित एकसमयमें देखे हैं, तिनके कौनका ध्यान होइ ? परन्तु आयुके अन्तमें मन–वचन–कायके योगनिका निरोध होइ, अर समस्तकर्म छूटि नष्ट होय, तातैं ध्यानसारिसा कार्य होना देखि उपचारतैं ध्यान कह्या है–मुख्यपनाकरि ध्यान नहीं है। गाथा—

चरिमसमयम्मि तो सो खवेदि वेदिज्जमाणपयडीओ।
बारस तित्थवरजिणो एक्कारस सेससव्वण्हू ॥२१३४॥

अर्थ—बहुरि तींठापाछै अयोगिगुणस्थानके अंतके समयविषै तीर्थंकर जिन होय, सो उदयरूप बारह प्रकृति तिनकूं क्षिपावे। अर तीर्थंकरविना शेष सर्वज्ञ ग्यारह प्रकृतिनकूं क्षिपावै। गाथा—

णामक्खएण तेजोसरीरबन्धो वि खीयदे तस्स।
आउक्खएण ओरालियस्स बन्धो वि खीयदि से ॥२१३४॥
तं सो बन्धणमुक्को उड्ढं जीवो पओगदो जादि।
जह एरण्डयबीयं बन्धणमुक्क समुप्पपदि ॥२१३६॥

अर्थ—नामकर्मका क्षयकरिकै तैजसशरीरका बंध तिस जिनकै नाशकूं प्राप्त होय है। बहुरि आयु कर्मका क्षयकरिकै औदारिकशरीरका बंध नाशकूं प्राप्त होय है। तींठापाछै सो भगवान् बंधनकरिकै रहित प्रयोगतै ऊर्ध्वगमन करे है। जैसे एरण्ड का बीज बन्धनरहित हुआ ऊंचा गमन करै है–तैसे कर्मतै छूटतै जीव ऊर्ध्वगमन करै है। गाथा—

संगजहणेण बलहुदयाए उड्ढं पयादि सो जीवो।
जध लाउगो अलेओ उप्पददि जले णिबुड्डो वि ॥२१३७॥

अर्थ— जैसे जलमें निमग्नहू तुम्बी लेपरहित होइ तदि जलके ऊपरि आजाय है, तैसे समस्तकर्मक तथा नोकर्मके संगका त्यागकरिकें जीव शीघ्रही ऊर्ध्वताकूं प्राप्त होय है।

झाणेण य तह अप्पा पउइदो जेण जादि सो उड्ढं।

वेगेण पूरिदो जह ठाइदुकामो वि य ण ठादि ॥२३८॥

अर्थ— जैसे पवन तथा जलादिकका वेगकरिकें पूरित तिष्ठनेका इच्छकहू नहीं तिष्ठि सके है; तैसे ध्यानका प्रयोगतें आत्मा ऊर्ध्वगमन करे है। गाथा—

जह वा अग्गिस्स सिहा सद्दावदो चेव होहि उड्ढगदी।

जीवस्स तह सभावो उड्ढगमणलप्पवसियस्स ॥२१३९॥

अर्थ—अथवा जैसे अग्निकी शिखा स्वभावतेंही ऊर्ध्वगमन करनेवाली होइ है; तैसे कर्मरहित स्वाधीन आत्माकाहू स्वभावतेंही ऊर्ध्व गमन होय है। गाथा—

तो सो अविग्गहाए गदीए समए अणन्तरे चेव।

पावदि जयस्स सिहरं खित्तं कालेण य फुसन्तो ॥२१४०॥

अर्थ—तातें सो कर्मरहित शुद्ध जीव सरल गमन करिकें अनंतरसमयके विषे कालकरिकें क्षेत्रकूं नहीं स्पर्शन करता एकसमयमें जगतका शिखर जो सिद्धक्षेत्र तामें प्राप्त होय है। गाथा—

एवं इहइं पयहिय देहतिगं सिद्धखेत्तमुवगम्म।

सव्वपरियायमुक्को सिज्झदि जीवो सभावत्थो ॥२१४१॥

अर्थ— ऐसें इस जगतविषें तैजस कार्माण औदारिक इनि तीन शरीरनिकूं त्यागिकरि सिद्धक्षेत्रकूं प्राप्त होइकरिकें समस्तप्रकाररहित अपने स्वभावमें तिष्ठता सिद्ध होय है। गाथा—

ईसिप्पब्भाराए उवरिं अत्थदि सो जोयणम्मि सीदाए।

धुवमचलमजरठाणं लोगसिहरमस्सिदो सिद्धो ॥२१४२॥

अर्थ—ईषत्प्राग्भारा नामा अष्टमी पृथ्वीके ऊपरि किंचित् ऊन एकयोजन वातवलयका क्षेत्र है, तिसका अंत जो लोकका शिखर तिसविषं भगवान् सिद्ध तिष्ठे है। कैसाक है लोकका शिखर? ध्रुव कहिये शाश्वत है, बहुरि अचल है, बहुरि जीर्ण नहीं होय तातें अजर है। भावार्थ—अनुत्तरविमाननितें बारा योजन ऊंची तो ईषत्प्राग्भारा नामा अष्टमी पृथ्वी है, सो उज्वलवर्ण अष्टयोजन मोटी अर लोकका अंततांई चोडी लंबी है। तिसके मांहीं पृथ्वीकी मोटाईसमान पृथ्वीमें जटित हुई स्फटिकमणिमय गोल पेंतालीस लाख योजनकी चौड़ाई लीये मोक्षशिला है। सो ईषत्प्राग्भारा पृथ्वीतें निराली निकसती नहीं है। बीचि तो आठ योजन मोटी है, अर च्यारूं वोडी अनुक्रमतें घटती घटती कनारै अत्यंत पतली है। तिस पृथ्वीके ऊपरि लिपटयां दोय कोश मोटी घनोदधि पवन है। तिसके ऊपरि एक कोश मोटी घनपवन है। तिसके ऊपरि पनरासै पिचेतरि धनुष मोटी तनुपवन है। सो इन तीनू पवनकी मोटाई तीन कोश पनरासौ पिचेत्तरि धनुषकी बड़ी कोशांतें किंचित् ऊन एकयोजनप्रमाण जाननी। तिसमें तनुवातवलयका अंतमें उत्कृष्ट पांचसै पचीस धनुष अर जघन्य साढे तीन हाथकी अवगाहनातें सिद्ध भगवान् अचल तिष्ठे है। ये धनुष्य उत्सेधांगुलतें है, तातें छोटा है। तीन पवननिकी मोटाई बड़े धनुषनितें प्रमाणांगुलतें है। गाथा—

धम्माभावेण दु लोगग्गे पडिहम्मदे अलोगेण।
गदिमुवकुणदि हु धम्मो जीवाणं पोग्गलाणं च ॥२१४३॥

अर्थ—आगानें धर्मास्तिकायका अभावकरि गमन नहीं होइ है। लोक अलोकका विभाग धर्मास्तिकायकरिही है। जहां धर्मास्तिकाय नहीं, तहां जीवपुद्गलका गमन नहीं; तातें धर्मास्तिकायविना आकाश अलोक कहाया। जातें जीवपुद्गलनिका गतिरूप उपकार धर्मद्रव्यही करे है। गाथा—

जं जस्स दु संठाणं चरिमसरीरस्स जोगजहणम्मि।
तं संठाणं तस्स दु जीवघणं होइ सिद्धस्स ॥२१४४॥

अर्थ--जोगनिके त्यागके समयमें अयोगीगुणस्थानके अवसरमें जैसा चरमशरीरका संस्थान होइ, तिस संस्थानरूप जीवके प्रदेशनिका घनरूप सिद्धनिका आकार होय है। भावार्थ--सिद्धभगवानकै देहसम्बन्ध तो है नहीं, तथापि जो

अग्व.
आरा.

अंतका शरीर छूट्या, तिसमै जो आत्मप्रदेश शरीरका आकार छा सो आत्मप्रदेशांको आकार चरमशरीरसदृश जैसो छो तैसो मोक्षस्थानमें सिद्धभगवानको है। गाथा—

भगव आरा.

दसविधपाणाभावो कम्माभावेण होइ अच्चन्तं।
अच्चन्तिगो य सुहदुक्खाभावो विगददेहस्स ॥२१४५॥

अर्थ—सिद्धभगवानकै कर्मके अभावकरि दशप्रकारके प्राणनिका अभाव है। बहुरि देहरहित जो सिद्ध ताकै इन्द्रियजनित सुखदुःखका अत्यन्त अभाव है। जातै देहविना इन्द्रियजनित सुखदुःख कैसे होइ? बहुरि अतींद्रिय अविनाशी निराकुलतालक्षण सुख सिद्धभगवानकै प्रकट भया। तदि इन्द्रियजनित सुख तो वेदनाका इलाज है, ताका कहा प्रयोजन रह्या? गाथा—

जं णत्थि बन्धहेदुं देहग्गहणं ण तस्स तेण पुणो।
कम्मकलुसो हु जीवो कम्मकदं देहमादियदि ॥२१४६॥

अर्थ—जातै कर्मकरि मलिन जीव होइ, सो कर्मका कीया देहकूं ग्रहण करे है। अर सिद्धभगवानकै देहके बंधका कारण कर्म नहीं, तातै देहग्रहण नहीं है। गाथा—

कज्जाभावेण पुणो अच्चन्तं णत्थि फदणं तस्स।
ण पओगदो वि फंदणमदेहिणो अत्थि सिद्धस्स ॥२१४७॥

अर्थ—बहुरि तिस सिद्ध भगवानकै हलनचलनकरि कोऊ कार्य करना रह्या नहीं, तातै देहरहित सिद्धभगवानकै प्रयोगतै हलन चलन सर्वथा नहीं है। गाथा—

कालमणंतमधम्मोपग्गहिदो ठादि गयणमोगाढो।
सो उवकारो इट्ठो अठिदि सभावेण जीवाणं ॥२१४८॥

अर्थ—जो आकाशके प्रदेशनिमें अवगाह्याकरि सिद्धपरमेष्ठी अनतकाल तिष्ठे है, सो बाह्य सहकारिकारण जो धर्मास्तिकाय ताका उपकार है। जातै जीवका स्थितिस्वभाव नहीं है। गाथा—

तेलोक्कमत्थयत्थो तो सो सिद्धो जगं णिरवसेसं ।
सव्वेहिं पज्जएहिं य संपुण्णं सव्वदव्वेहिं ॥२१४९॥
पस्सदि जाणदि य कहा तिण्णि वि काले सपज्जए सव्वे ।
तह वा लोगमसेसं पस्सदि भयवं विगदमोहो ॥२१५०॥

अर्थ—त्रैलोक्यके मस्तकविषं तिष्ठता सो सिद्धपरमेष्ठी समस्तद्रव्यनिकरि अर समस्तपर्यायनिकरि संपूर्ण समस्त जगतकूं देखे है, जाने है । तथा पर्यायनिकरि सहित समस्त भूतभविष्यद्वर्तमान कालनिकूं तथा समस्त अलोककूं भगवान् मोहरहित जो सिद्ध परमेष्ठी, सो जाने है, देखे है । गाथा—

भावे सगविसयत्थे सूरो जुगवं जहा पयासेइ ।
सव्वं वि तधा जुगवं केवलणाणं पयासेदि ॥२१५१॥

अर्थ—जैसे सूर्य अपने विषयमें तिष्ठते पदार्थनिकूं युगपत् प्रकाश करे है; तैसे केवलज्ञान समस्तपदार्थनिकूं युगपत्प्रकाश करे है । गाथा—

गदरागदोसमोहो विभवो णिरुस्सग्गो विरग्गो ।
बुधजणपरिगीदगुणो णमंसणिज्जो तिलोगस्स ॥२१५२॥

अर्थ—नष्ट भये हैं राग द्वेष मोह जाके ऐसा, बहुरि भयरहित, मदरहित, उत्कंठाकरि रहित, कर्मरजकरि रहित, अर ज्ञानीलोकनिकरि गाया है गुण जाका ऐसा भगवान् सिद्ध है; सो तीन लोकके जीवनिकै नमस्कार करनेयोग्य है । गाथा—

णिव्वावइत्तु संसारमहग्गिं परमणिव्वुदिजलेण ।
णिव्वादि सभावत्थो गदजाइजरामरणरोगो ॥२१५३॥

अर्थ—सर्वोत्कृष्ट त्यागरूप जलकरिकें संसाररूप महान् अग्निकूं दूरि करि बुझायकरिकें जन्म जरा मरण शोककरि रहित होइ अपने निजस्वभावमें तिष्ठता निर्वाणकूं प्राप्त होय है ।

जावं तु किंचि लोए सारीरं माणसं च सुहदुक्खं ।
तं सव्व णिज्जिण्णं असेसदो तस्स सिद्धस्स ॥२१५४॥

अर्थ—लोकके विषें जितने केई शरीरसंबंधी, मनसंबंधी सुखदुःख हैं, ते समस्तपणाकरि तिस सिद्ध भगवानके निर्जराने प्राप्त भये हैं । गाथा—

जं णत्थि सव्वबाधाउ तस्स सव्वं च जाणइ जदो से ।
जं च गदज्झवसाणो परमसुही तेण सो सिद्धो ॥२१५५॥

अर्थ— जातें सिद्धपरमेष्ठीकें समस्त बाधा नहीं है अर समस्त वस्तु जानत है, अर समस्तविकल्परहित है, तिस कारणकरि सिद्धपरमेष्ठी परमसुखी कहिये उत्कृष्ट सुखी है ।

परमिढ्ढि पत्ताणं मणुसाणं णत्थि तं सुहं लोए ।
अव्वाबाधमणोवमपरमसुहं तस्स सिद्धस्स ॥२१५६॥

अर्थ—इस लोकमें परम ऋद्धिकूं प्राप्त भये जे मनुष्य तिनकें जो सुख नहीं है, सो सुख बाधारहित उपमारहित सर्वोत्कृष्ट तिनि सिद्धनिकें है । गाथा—

देविंदचक्कवट्टी इंदियसोक्खं च जं अणुहवन्ति ।
सद्दरसरूवगंधप्फरिसप्पयमुत्तमं लोए ॥२१५७॥
अव्वाबाधं च सुहं सिद्धा जं अणुहवन्ति लोगग्गे ।
तस्स हु अणन्तभागो इन्दियसोक्खं तयं होज्ज ॥२१५८॥

अर्थ--इस लोकमें जे देवनिके इन्द्र अर समस्त चक्रवर्ती जो शब्द-रस-रूप-गंध-स्पर्शात्मक इन्द्रियजनित उत्तम-सुखकूं भोगत हैं, सो समस्त इन्द्रियजनित सुख लोकके अग्रभागमें तिष्ठते सिद्धपरमेष्ठीका अव्याबाध अतीन्द्रिय सुखका अनन्तवाँ भाग है। यद्यपि इन्द्रियजनित सुख तो सुखही नहीं है--सुखाभास हैं, मूढजीवानें सुख भासे है, ये तो वेदनाका इलाज है, तृष्णाका बधावनेवाला दुर्गतिकूं लेजावने वाला है। सुख तो निराकुलतालक्षण ज्ञानानन्दमय है, तातें इन्द्रिय जनित सुख सिद्धनिके सुखका अनन्तवाँ भाग भी नहीं दुःखही है, परन्तु अतीन्द्रियसुखके अनुभवरहित मूढ बुद्धि जीवांके समझावनेकूं अनन्तवाँ भाग कह्या है। सोही औरहू कहे हैं। गाथा--

जं सव्वे देवगणा अच्छरसहिया सुहं अणुहवन्ति।
तत्तो वि अणन्तगुणं अव्वाबाहं सुहं तस्स ॥२१५९॥

अर्थ--समस्तदेवनिके समूह अप्सरांनिकरि सहित जो सुख अनुभवे हैं, तिसतें अनन्तगुण अव्याबाध सुख तिन सिद्धनिके जानना। गाथा--

तीसु वि कालेसु सुहाणि जाणि माणुसतिरिक्खदेवाणं।
सव्वाणि ताणि ण समाणि तस्स खणमित्तसोक्खेण॥२१६०॥

अर्थ--तीनकालसम्बन्धी जे मनुष्य तिर्यंच देवनिके समस्त सुख हैं ते सिद्धनिके एक क्षणमात्रके सुखके समान नहीं हैं। गाथा--

ताणि हु रागविवागाणि दुक्खपुव्वाणि चेव सोक्खाणि।
ण हु अत्थि रागमवहत्थिदूण किं चि वि सुहं णाम॥२१६१॥

अर्थ--मनुष्यनिके अर देवनिके जे इन्द्रियजनित सुख हैं, ते रागके उदयरूप दुःखपूर्वक हैं, रागभाव जामें होइ सो सुख दीखे है। तथा क्षुधाविकाबिना भोजनादिक सुख नहीं करे है। गरमी रुपाप्याबिना शीतलपवन सुख नहीं करे है। ये सांसारिक इन्द्रियजनित समस्त सुख हैं, ते दुःखपूर्वक हैं। रागभावबिना अर वेदनाबिना नाममात्रहू सुख नहीं है। अब अतीन्द्रियसुखका स्वरूप कहे हैं। गाथा--

अणुवममभेयमक्खयममलमजरमरुजमभयमभवं च।
एयंतियमच्चंतियमव्वाबाधं सुहमजेयं ॥२१६२॥

भगव. आरा. अर्थ--सिद्धनिका सुखके समान वा तातें अधिक जगतमें सुख नहीं, तातें सिद्धनिका सुख अनुपम है। बहुरि छद्मस्थके ज्ञानकरि प्रमाण करनेकूं अशक्य है, तातें अमेय है। बहुरि प्रतिपक्षीभूत जामें दुःख नहीं, तातें अक्षय है। बहुरि रागादिकमलके अभावतें अमल है। जरारहितपणातें अजर है। रोगनिके अभावतें अरुज है। बहुरि भयके अभावतें अभय है। उत्पत्तिके अभावतें अभव है। विषयादिकनिकी सहायतारहित तातें ऐकांतिक है। अन्तरहितपणातें आत्यन्तिक है। बाधारहितपणातें अव्याबाध है। अर कोऊकरि बांध्या नहीं जाय, तातें अजेय है। ऐसा अतीन्द्रियसुख सिद्धभगवानहीके है। गाथा--

विसएहिं से ण कज्जं जं णत्थि छुदादियाउ बाधाओ।
रागादिया य उवभोगहेदुगा णत्थि जं तस्स ॥२१६३॥

अर्थ--जातें सिद्धभगवानके क्षुधादिक बाधा नहीं, तातें ताके विषयनिकरि कार्य नहीं है। अर सिद्धभगवानके उपभोगके कारण रागादिकहू नहीं है। गाथा--

एदेण चेव भणिदो आसणचंकमणचिंतणादीणं।
चेट्ठाणं सिद्धम्मि अभावो हवसव्वकरणम्मि ॥२१६४॥

अर्थ--इनि पूर्वोक्त कारणनिकरिही हण्या है समस्त क्रियाकांड जानें ऐसे भगवान् सिद्धनिविषैं आसण गमन चिंतनादिक चेष्टाका अभाव भगवान् कह्या है। गाथा--

इय सो खाइयसम्मत्तसिद्धवाविरियदिट्ठिणाणेहिं।
अच्चन्तिगेहिं जुत्तो अव्वाबाहेण य सुहेण ॥२१६५॥

अर्थ--इसप्रकार सो भगवान् सिद्धपरमेष्ठी अन्तरहित क्षायिकसम्यक्त्व, सिद्धत्व, अनन्तवीर्य, अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञानकरिके तथा बाधारहित सुखकरिके युक्त सिद्धालयमें तिष्ठे है। गाथा--

अकसायत्तमवेदत्तमकारकदाविदेहदा चेव ।

अचलत्तमलेवत्तं च हुन्ति अच्चन्तियाइ से ॥२१६६॥

अर्थ——तिस सिद्धभगवानतैं कषायरहितपणा, तथा वेदरहितपणा, तथा षट्कारकरहितपणा, तथा देहरहितता, तथा अचलपणा, तथा कर्मलेपरहितपणा ये समस्तगुण प्रकट भये हैं; ते गुण विनाशरहित हैं। बहुरि कषायादिसहितपणा अनन्तानन्तकालहूमें नहीं होय है। गाथा——

जम्मणमरणजलोघं दुक्खपरकिलेससोगवीचीयं ।

इय संसारसमुद्दं तरन्ति चदुरंगणावाए ॥२१६७॥

अर्थ——जन्ममरणरूप है जलका समूह जामें, अर दुःख परिक्लेश शोकरूप हैं लहरी जामें ऐसा संसारसमुद्रकूं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक्तपरूप चतुरंग नावकरि तिरे हैं। गाथा——

एवं पण्डिदमरणेण करन्ति सव्वदुक्खाणं ।

अन्तं णिरन्तराया णिव्वाणमणुत्तरं पत्ता ॥२१६८॥

अर्थ——ऐसे पंडितपंडितमरणकरिके समस्त दुःखनिका नाश करे हैं अर आराधनाके प्रभावतैं निर्विघ्न भये सर्वोत्कृष्ट निर्वाणकूं प्राप्त भये हैं।

इसप्रकार बहत्तरि गाथानिकरि पंडितपंडितमरणके कथनकूं समाप्त किया। अब आराधनाका महिमा तथा ग्रन्थका अन्तमें ग्रन्थकर्ताका नामकी प्रकटता तथा अन्तमंगलकूं दश गाथानिमें वर्णन करि शास्त्रकूं समाप्त करे हैं। गाथा——

एवं आराधित्ता उक्कस्साराहणं चदुक्खंधं ।

कम्मरयविप्पमुक्का तेणेव भवेण सिज्झन्ति ॥२१६९॥

अर्थ——ऐसे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक्तपरूप जो उत्कृष्ट आराधना, ताहि आराधिकरि कर्मरजरहित भये तिसही भवकरि सिद्ध होय है। गाथा——

आराधयित्तु धीरा मज्झिममाराहणं चदुक्खंधं।

कम्मरयविप्पमुक्का तच्चेण भवेण सिज्झन्ति ॥२१७०॥

अर्थ— बहुरि चतुष्कंधरूप मध्यम आराधनाकूं आराधिकरि धीरवीर पुरुष तीन भवकरिके कर्मरजरहित सिद्धहोय है। गाथा

आराधयित्तु धीरा जहण्णमाराहणं चदुक्खन्धं।

कम्मरयविप्पमुक्का सत्तमजम्मेण सिज्झन्ति ॥२१७१॥

अर्थ-बहुरि चतुष्कंधरूप जघन्य आराधनाकूं आराधिकरि धीर वीर पुरुष सप्त जन्मकरिके कर्मरजरहित सिद्धहोय हैं। गाथा-

एवं एसा आराधणा सभेदा समासदो वुत्ता।

आराधणाणिबद्धं सव्वंपि हु होदि सुदणाणं ॥२१७२॥

अर्थ— इसप्रकार या आराधना भेदनिसहित संक्षेपतें कही। अर इस आराधनातें निबद्ध तो समस्त श्रुतज्ञान है। भावार्थ—समस्त श्रुतज्ञान आराधनातें भिन्न नहीं, समस्त श्रुतज्ञान आराधनाका विस्तार है। गाथा—

आराधणं असेसं वण्णेदुं होज्ज को को पुण समत्थो।

सुदकेवली वि आराधणं असेसं ण वण्णिज्ज ॥२१७३॥

अर्थ— समस्त आराधनाकूं श्रुतकेवलीहू वर्णन करनेकू नहीं समर्थ है, तो समस्त आराधना वर्णन करनेकूं अन्य कौन समर्थ होइ ? भावार्थ—श्रुतकेवलीहो वचनद्वारे समस्त आराधनाके स्वरूप कहनेकूं समर्थ नहीं! तदि अल्पबुद्धिका धारक मैं कैसे कहनेकूं समर्थ होऊं ? ऐसे ग्रन्थकर्ता अपनी बुद्धिकी उद्धतताका परिहार किया। गाथा—

अज्जजिणणंदिगणी, सव्वगुत्तगणि, अज्जमित्तणंदीणं।

अवगमिय पादमूले सम्मं सुत्तं च अत्थं च ॥२१७४॥

पुव्वायरियणिबद्धा उवजीवित्ता इमा ससत्तीए।

आराधणा सिवज्जेण पाणिदलभोइणा रइदा ॥२१७५॥

अर्थ—आर्य जिननन्दी गणी, सर्वगुप्त गणी, आर्य मित्रनन्दी इनि तीन आचार्यनिके चरणनिके निकट आराधना के सूत्र अर आराधनाके सूत्रनिका अर्थ भलै प्रकार संशयरहित जाणिकरिके; अर पूर्वले आचार्यनिकरि रची जो आराधनाकी सूत्रनिकी रचना, ताहि सेवन करिके; अर करपात्रभोजन करनेवाला जो मैं शिवाचार्य, तानैं अपनी शक्तिकरिके या भगवती आराधना रची है। जातैं भगवान् अरहन्तदेवकरि आराधी, तातैं याकूं भगवती आराधना कहिये हैं। सो यो भगवती आराधना ग्रन्थ मेरे अभिप्रायतैं अपनी रुचिकरि नहीं रच्या है। अनादिनिधन द्वादशांगरूप परमागम है, तिस परमागमका अर्थ आराधनाके सूत्रनिमै रागद्वेषरहित वीतरागी सम्यग्ज्ञानी गुरुनिकी परिपाटीतैं चल्या आया है। तिन सूत्रनिका शब्द अर अर्थ जिननन्दी गणी सर्वगुप्त गणी, मित्रनन्दी गणी इनि तीन गुरुनिके निकट मैं शिवाचार्य नामा दिगंबर मुनि भलै प्रकार जाणि अर पूर्वले सूत्रनिका संशयरहित सेवन करिके मैं भगवती आराधना ग्रन्थकी रचना करि है। गाथा—

छदुमत्थदाए एत्थ दु जं बद्धं होज्ज पवयणविरुद्धं।

सोधेन्तु सुगीदत्था तं पवयणवच्छलत्ताए ॥२१७६॥

अर्थ—जो इस भगवती आराधना नाम ग्रन्थविषै छद्मस्थपणाकरिके कोऊ रचना भगवानके परमागमतैं विरुद्ध कही होय, तो भी सम्यक् अर्थके ग्रहण करनेवाले वीतरागी मुनि हो! तुम परमागममें वात्सल्यभावकरिके शोधन करो—विरुद्ध अर्थकूं दूरि करि परमागमकी आज्ञाके अनुकूल सम्यक् अर्थशब्दकरि संयुक्त करो। यद्यपि मैं वीतरागी सम्यग्ज्ञानी गुरुनिके चरणारविंदाके निकट आराधना सूत्रका अर्थ भलै प्रकार अनुभव किया है, अर शब्दार्थतैं निर्णय करि केवल च्यारि आराधनामैं परम प्रीतिकरिके अर संसारका अभाव होनेके अर्थि इस ग्रन्थकूं रच्या है; तथापि इन्द्रियाधीन छद्मस्थ ज्ञानीके चूकनेका भरोसा नाहीं, तातैं सम्यग्ज्ञानी मुनिनिकूं प्रार्थना करी है—जो, श्रुतज्ञानमें परम प्रीतिकरि शोधन करो। गाथा—

आराधणा भगवदी एवं भत्तीए वण्णिदा सन्ती।

संघस्स सिवज्जस्स य समाधिवरमुत्तमं देउ ॥२१७७॥

अर्थ—ऐसे भक्तिकरि वर्णन करी सन्ती या भगवती आराधना, सो समस्त संघकूं अर शिवार्य जो मैं शिवाचार्य ताकूं उत्तम समाधि जो समस्त लोकनिके प्रार्थना करनेयोग्य, बाधारहित, पंडितपंडितमरणतैं उपजी ऐसी सिद्धि है ताहि द्यो। गाथा—

असुरसुरमणुयकिण्णररविससिकिंपुरिसमहियवरचरणो ।

दिसउ मम बोहिलाहं जिणवरवीरो तिहुवणिंदो ॥२१७८॥

अर्थ—असुर, सुर, मनुष्य, किंनरदेव, सूर्य, चन्द्रमा, किंपुरुष इत्यादिकनिकरि वन्दनीय है चरणारविंद जाका, अर तीन भुवनका ईश्वर ऐसा जिनवर वीर जो भगवान् वर्द्धमान तीर्थंकर परमदेव, सो हमकूं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र सम्यक्तपरूप जे च्यारि आराधना तिनमें लीनतासहित जो बोधिलाभ वा आराधनाका अवलंबनसहित मरण ताहि देहु । गाथा—

खमदमणियमधराणं धुदरयसुहदुक्खविप्पजुत्ताणं ।

णाणुज्जोदियसल्लेहणम्मि सुणमो जिणवराणं ॥२१७९॥

अर्थ—पूर्व अवस्थामें धारण किया है क्षमा अर इन्द्रियनिका दमन अर नियम जिनने, अर बहुरि नष्ट किया है कर्मरूप रज जिनने, अर इन्द्रियजनित सुख दुःखरहित, अर केवलज्ञानकरि उद्योतित करी है उल्लेखना जिनने ऐसे जिन-वरके अर्थि हमारा भले प्रकार मन-वचन-कायकरि नमस्कार होहु ।

——:※:——

हिन्दी भाषाकार की प्रशस्ति

दोहा—सत उगणीस जु अधिक षट्, संवत विक्रमभूप। माघकृष्ण द्वादशि कियो, आरंभ अधिक अनूप ॥१॥

आठ अधिक उगनीससै, संवत भादवमास । शुक्ल दोज पूरण भई, देशवचनिका जास ॥२॥

चौपई—सबनगरनिके भूपसमान, नगर सवाई जयपुर थान । रामसिंह बलधर भूपाल, सब वर्णाश्रमको प्रतिपाल ॥३॥

जैनी लोक तहां बहु बसे, बुद्धिवन्त बहु धनकरि लसे । तिनमें तेरापंथ विख्यात, शुभधर्मिनिको जहां बहु लाथ ॥४॥

जिनभाषितश्रुतमें अतिराग, न्यायसिद्धांत पढे बडभाग । तत्त्वारथको चरचा करे, नर प्रमाणविन चित नहीं धरे ॥५॥

खंडेलज श्रावककुल ठाम, तिनमै एक सदासुख नाम । गोत्र कासलीवाल जु कहै, निति जिनवाणी सेवन चहै ॥६॥

ताके मनमें भयो हुलास, सेवूं आराधन दुखनास । जो आराधनमो मन बसे, तो संसार दुःख सब नसे ॥७॥

आराधना भगवती ग्रन्थ, जामें मोक्षगमनको पंथ। शिवाचार्यकृत प्राकृत लसै, बांचत मिथ्याभाव जु नसै ॥८॥
जाकूं गणधरमुनि नित चहै, सो आराधन यातैं लहै। जाके सुनत निजातम जोइ, अनुभवकरि परमातम होइ ॥९॥
मैं याकूं अनुभव जब किया, मनुजजनमफल निजसुख लिया। काल अनन्त वितीतजु भया, आराधन अमृत अब पिया॥१०
याकूं चित्तमें धारण किया, तब मेरा मन अति हुलसिया। देशवचनिकामय जो होय, तो याकूं बांचै सब कोय ॥११॥
या विचारि उद्यम मैं किया, मंदबुद्धिमाफिक लिखि दिया। बांचि पढो अनुभव निति करो, पापपुंजमल नितिप्रति हरो१२
मेरा हित होनेकूं और, दीखै नहीं जगतमें ठौर। यातैं भगवती सरणजु गही, मरण आराधन पाऊं सही ॥१३॥
हे भगवति तेरे परसाद, मरणसमै मति होहु विषाद। पंचपरमगुरुपद करि ढोक, संयमसहित लहू परलोक ॥१४॥

दोहा—हरो जगतके दुःख सकल, करो 'सदासुख' कन्द।
लसो लोकमें भगवती, आराधना अमन्द ॥१५॥

इति श्रीशिवाचार्य विरचित भगवती आराधना नाम ग्रन्थ की देश भाषामय वचनिका समाप्त ॥

संवत् १९०८ भादवा सुदी २ बृहस्पतिवारने वचनिका का मूलखरडा लिखि पूरण कियो
लिखितं सदासुख कासलीवाल डेडाका।

समाप्त